GL H 294 59212
RIG

121559
LBSNAA

राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी
ademy of Administration
मसूरी
MUSSOORIE

पुस्तकालय
LIBRARY

अवाप्ति संख्या
Accession No. ~~945~~ 121559

वर्ग संख्या GLH
Class No. 294 5921

पुस्तक संख्या
Book No. RIG

ओ३म्

Navamandalasya

नवममण्डलस्य

Rigvedbhashyam

ऋग्वेदभाष्यम्

श्रीमदार्य्यमुनिना निर्मितम्

संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां समन्वितम्

तृतीयखण्डात्मकम्

पण्डित देवदत्तशर्मणा

धर्मकूप निवासिना

प्रकाशितम्

काश्यां

बी. एल. पावगी रामघट्ट निवासिना

स्वकीय-हितचिन्तक यन्त्रालये

मुद्रितम्

सं० १९७८ वि० सन् १९२१ ई०

मूल्यं रूप्यकचतुष्टयम्

GYAN P. K. J. Collection DEHLI

ओ३म् ।

वेद-प्रस्तावना

वैदिक काल ।

वेदों के आविर्भाव का समय आदि सृष्टि का समय था। उस समय कोई इतिहास नहीं था, कोई राजाविशेष न थे, और न कोई पुरुषविशेष उस समय में थे जिन के जीवनचरित्रों का वर्णन उस समय किया जाता। इसीलिये इस परमात्मज्ञान में गुणगुणी का वर्णन और उक्त गुणी पदार्थों का कर्मयोग में उपयोग और ईश्वरोपासन तथा ज्ञान विज्ञान का वर्णन चारों वेदों में है। अर्थात् ऋग्वेद में गुण और गुणी का वर्णन, और यजुर्वेद में उक्त पदार्थों को यज्ञादि कर्मों में लाकर, उन से लाभ उठाने का वर्णन, साम में ईश्वरोपासन और ईश्वर ज्ञान के प्रकार का वर्णन है। अथर्ववेद में ज्ञान और विज्ञान का विशेष रूप से वर्णन है। इस प्रकार चारों वेदों के चार विषय भिन्न भिन्न हैं। इस बात को "**तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे। मं० १०, सू० ६०, ९।** स्पष्ट करता है

इस मंत्र में चारों वेदों का वर्णन स्पष्ट रीति से आया है।

केवल यही मंत्र नहीं वेदों में वीसियों मंत्र ऐसे पाये जाते हैं, जिन में चारों वेदों का वर्णन स्पष्ट रुप से है। जो लोग ये कहते हैं कि ऋग्वेद सब से पहला है, अन्य सब वेद ऋग्वेद के आधार पर बनें है, उन का कथन सर्वथा निर्मूल है। कारण यह कि जिस प्रकार ऋग्वेद की स्वतन्त्र सत्ता है, इसी प्रकार अन्य वेदों की भी स्वतन्त्र सत्ता है। इस बात को सब ऋषि मुनियों ने माना है।

अस्तु !

ऋषि मुनियों की क्या कथा, किन्तु आधुनिक सायणादि भाष्यकारों ने भी इसे सर्वतंत्रसिद्धान्त करके लिखा है, कि चारों वेद एक ही काल में प्रगट हुए हैं ! इस के प्रमाण में सायणाचार्य ने "**तस्माद्यज्ञात्**" यही मंत्र अपने ऋग्वेद के भाष्य की भूमिका में प्रमाण दिया है, कि चारों वेद एक ही समय में प्रगट हुए हैं।

मालूम होता है, कि सायणाचार्य ने यह विचार शतपथ ब्राह्मण से लिया है। शतपथ ब्राह्मण में स्पष्ट लिखा है, कि परमात्माने अनायास से श्वास के समान चारों वेदों को प्रगट किया। और इसी बात का प्रतिपादन व्याससूत्रों में, और शङ्करभाष्य में भी है। "**शास्त्र योनित्वात्**" वेदान्त के इस तीसरे सूत्र में श्री स्वामी शङ्कराचार्यजी ने स्पष्ट लिखा है, कि ऋग,यजु, साम और अथर्व इन चारों वेदों के प्रकाश का कर्त्ता एक मात्र ब्रह्म है, कोई जीव-विशेष नहीं।

प्रकृत यह है, कि वेदों में ऐसे नियमों का वर्णन है, जो सर्व देश और सर्वकाल में उपयुक्त हैं। वे नियम किसी देश-विशेष वा काल-विशेष का आश्रयण नहीं करते।

तात्पर्य यह है, कि वेदों के अर्थ यौगिक हैं। अर्वाचीन ग्रन्थों के समान योगरूढ वा रूढि नहीं।

अर्थात् व्युत्पत्ति से जो अर्थ निकलते हैं, वही वेदों के मुख्य अर्थ हैं। व्युत्पत्ति को छोड़ कर ऐतिहासिक ग्रन्थों के समान वेद रूढार्थ में प्रवृत्त नहीं होते। जिन लोगों ने यौगिक अर्थ को छोड़ कर वेदों में नामों को लेकर पूर्व-सिद्ध अर्थ का प्रतिपादन किया है, उन्होंने अत्यन्त भूल की है। उदाहरणके लिये देखो—

'न सायकस्य चिकिते जनासो लोधं नयन्ति पशुमन्यमाना ना वाजिनं वाजिनाहासयन्ति न गर्दभं पुरोऽश्वान्नयन्ति ऋ० मं० ३ सू० ५३, म० २३

इस मंत्र से सायणाचार्य ने विश्वामित्र और वसिष्ठ का इतिहास निकाला है, कि एक समय में विश्वामित्र को वशिष्ठ के चेले बांध कर ले चले। तब विश्वामित्र ने उनको यह कहा, कि तुम मेरे मंत्र वेता होने के प्रभाव को नहीं जानते। मेरे साथ तुह्मारे गुरु वशिष्ठ की ऐसी तुलना है, जैसी गर्दभ और अश्व की होती है। इस प्रकार राग द्वेष के भाव विषयक इस मंत्र को लगाया है। वास्तव में इस मंत्र के ये अर्थ थे, कि (जनासः) हे मनुष्यो! तुम लोग (सायकस्य) शस्त्रवेत्ता शूरवीर के महत्व को नहीं जानते। जो युद्ध में पर-पक्ष का नाश करे उसका नाम यहां सायक है। इस प्रकार इस मंत्र के अर्थ करने से यह मंत्र राजधर्म का बोधक है, किसी पुरुष विशेष का बोधक नहीं। इसी प्रकार जिन जिन मंत्रों से सायणाचार्य ने इतिहास निकाला है वे सब मंत्र यौगिकार्थ से पुरुषों के गुणों का वर्णन करते हैं। अथवा अनादिसिद्ध ईश्वर के प्रतिपादक हैं, किसी आधुनिक पुरुष के नहीं। इस बात की सिद्धि में पुष्ट प्रमाण पुरुष सूक्त है। जिस प्रकार पुरुष सूक्त में अनादिसिद्ध परमात्मपुरुष का वर्णन है, इसी प्रकार अनादिकाल से सिद्ध पुरुष, प्रकृति और जीव, का वर्णन वेदों में पाया जाता है। और जो देव, दस्यु, विद्वान्, अविद्वान् इत्यादि पुरुषों का वर्णन वेद में पाया जाता है, वह भी प्रवाह रूप से अनादिसिद्ध पुरुषों का है। उस सर्ग के व्यक्ति विशेषापन्न पुरुषों का नहीं। तात्पर्य यह है, कि "**सूर्याचन्द्रमसौधातायथापूर्वमकल्पयत्**" ऋ० **मं०** १० सू० १९१-मं० ३। इस मंत्र में जिस प्रकार अनादिकाल से सूर्यचन्द्रमादि पदार्थों का आविर्भाव तिरोभाव, पाया जाता है, इसी प्रकार अनादि काल से सब प्रकार के पुरुषों का, जो आविर्भाव, तिरोभाव है, उन्हीं का वर्णन वेदों में है, अन्य किसी व्यक्ति विशेष का नहीं।

व्यक्ति विशेष का वर्णन हो भी कैसे सक्ता था? जब उस समय में, कोई व्यक्ति विशेष था ही नहीं, तो वर्णन कैसा! पूर्वोक्त मंत्रों में जो विश्वामित्र और वशिष्ठ का वर्णन कहा जाता है, वह इस युक्ति से भी नितान्त निस्सार है, कि वेद

विश्वामित्र, वशिष्ठ और रामचन्द्र के समय में नहीं हुए। किन्तु रामचन्द्र के समय से लाखों वर्ष पहले वेद हुए हैं।

जिनके मत में लाखों वर्ष पहले नहीं, वे भी सहस्रों वर्षों का परित्याग कदापि नहीं कर सकते। वह इस प्रकार कि वैदिक समय सहस्रों वर्ष तक संसार में रहा। जब लोग वेदोक्त ईश्वर और वेदोक्त पूजापाठ और वेदोक्त आचार, अनाचार को मानते थे। इसके अनन्तर ब्राह्मण ग्रन्थों के निर्माण का समय आया। यह समय भी रामचन्द्र जी से बहुत पहले था। इसका प्रभाव भी संसार में सहस्रों वर्ष रहा। बहुत क्या, ब्राह्मणों के समय तक रामचन्द्र जी के होने का प्रमाण नहीं पाया जाता इस लिये ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ इन चारों ब्राह्मणों में रामचन्द्र की कथा नहीं।

जो यह कहा जाता है, कि याज्ञवल्क्य और जनक का सम्वाद शतपथ के अन्तिम काण्ड में पाया जाता है, फिर कैसे कहा जाता है, कि ब्राह्मणों के समय रामचन्द्र न थे। क्योंकि रामचन्द्र और जनक का सम्बन्ध वाल्मीकीय रामायण में स्पष्ट है। इसका उत्तर यह है, कि जिस जनक का वर्णन "बृहदारण्यकोपनिषद्" वा "शतपथ" के अन्तिम काण्ड में है, वह जनक, रामचन्द्र जी का सम्बन्धी न था। किन्तु वह जनक और था। और रामचन्द्र जी के समय का जनक और था। यह एक ऐसी ही भ्रान्ति जनक कथा है, जैसा कि "छान्दोग्य" में "कृष्णाय देवकीपुत्राय" यह कथा है। छान्दोग्य में जो देवकी पुत्र कृष्ण लिखा है, वह और था, और वह कृष्ण घोर ऋषि का शिष्य था। इस बात को हम अन्यत्र भी विशेष रूप से लिख आये हैं, इसलिये यहां लिखने की आवश्यकता नहीं।

तात्पर्य यह है, कि समान नामों के होने से अथवा यों कहो कि पूर्वकाल के नाम नूतन काल में रख देने के कारण ऐसी भ्रान्ति हो जाती है। वस्तुतः ब्राह्मण ग्रन्थ प्रतिपादितजनक, वाल्मीकीय रामायणवाला जनक न था।

यदि यह वही जनक था, तो रामचन्द्र की कथा भी ब्राह्मण ग्रन्थों में आनी चाहिये थी।

हमारे विचार में उक्त प्रकार के वाक्य, ब्राह्मण ग्रन्थ और उपनिषदों में आ जाने का कारण यह भी हो सकता है, कि नवीन बातों को प्राचीन सिद्ध करने वालों का भाव सदैव से यह रहा है, कि वे प्राचीन ग्रन्थों में भी नवीन काल निर्मित वाक्य मिलादिया करते हैं। और इसके लिये पुष्ट प्रमाण यह है, कि वाल्मीकीयरामायण, मनुस्मृति, महाभारतादि ग्रन्थों में, सैकड़ों बातें नवीन समय की मिलाई गई हैं, जो हस्त लिखित प्राचीन पुस्तकों में नहीं मिलतीं अस्तु।

प्रकृत यह है, कि वेदों में इतिहास न था, किन्तु नवीन समय के सायणादि भाष्यकारों ने इतिहास प्रधान भाष्य करके वेदों में इतिहास भर दिया। यदि कोई कहे, कि वेदों में भी नवीन वाक्य मिलाये जा सक्ते थे, फिर नवीन समय को प्राचीन सिद्ध करने वालों ने उनमें मिलावट क्यों नहीं की? इसका उत्तर यह है, कि वेद इस पूज्यबुद्धि से देखे जाते थे, कि लोग उनको कण्ठ-करते थे। उनकी संख्या को निर्द्धारित करते थे, उनके पदों तक को निर्द्धारित करते थे, फिर उनमें मिलावट कैसे हो सकती थी।

मुख्य हेतु यह है, कि वेदों की भाषा ऐसी ब्रह्मवर्चस्विनी और ओजस्विनी है, जिसमें नवीन वाक्य मिला कर, उसी रंगत में ला देना कठिन ही न था, किन्तु असम्भव था।

इस बात की सिद्धि के लिये पुष्ट प्रमाण यह है, कि चारों वेदों में पुरुष सूक्त है। और उसकी भाषा चारों वेदों के साथ मिलती है, अंशमात्र भी भेद नहीं।

जो लोग यह कहते हैं, कि प्राचीन आर्यों में वर्णव्यवस्था न थी, और वर्णव्यवस्था का यह पुरुषसूक्त किसीने पीछे से मिलाया है, उन को यह समझ-लेना चाहिये कि यदि कोई मिलाता, तो एक वेद में मिलाता, चारों में कैसे क्योंकि प्राचीन आर्य तो चारों को ही कण्ठ करते चले आये हैं, फिर क्या किसी को भी यह न सूझी, कि यह पीछे का मिला हुआ पाठ है।

बहुत क्या, वेद ईश्वरीय हैं, ईश्वरीय वस्तु में कोई मनुष्य मिलावट कर ही नहीं सकता।

मुख्य विचारणीय बात यह है, कि वैदिक समय में, अर्थात् वेदों के आविर्भाव और प्रचार काल में, आर्यों का धर्म क्या था ? और वे लोग किसकी पूजा करते थे ? इस प्रश्न का विचार करना यहां अत्यावश्यक है इस विषय की विवेचना में हम ऋग्वेद की भूमिका में यह लिख आए हैं कि वैदिक समय के आर्य्य लोग पूजनीय केवल एक परमात्मा की ही पूजा करते थे। **जिसका वर्णन "स्वधयातदेकम्" मं १० सू० १२६-मं० २** इत्यादि वाक्यों में स्पष्ट है और **"हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम " ऋ० मं० १० । सू० १२१।मं०** १ इस मंत्र में इस चराचर ब्रह्माण्ड का पति एकमात्र परमात्मा ही माना है। फिर कैसे कहा जा सकता है, कि वैदिक समय में नाना देव थे। और नाना देवों की ही आर्य लोग उपासना करते थे। परमात्मा के एकत्व को समर्थन करने वाला एक मात्र यही मंत्र नहीं, किन्तु परमात्मा के एकत्व के बोधक वेद में सहस्रों मंत्र पाये जाते हैं। जैसे कि,—

"यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम"।
ऋ० ८।७।३।३

य एक इद्विदयते वसु मर्ताय दाशुषे—१।६।६।७

योदेवानां नामधा एक एव तं सम्प्रश्नं भुवना यन्त्यन्या
ऋ० ८।३।१७।२।

"तमिदं निगतं सहः स एष एक एक वृदेक एव"
अथ०-१३-४।४।१९

एकं सद्विप्रा बहुधा वदंत्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः
ऋ. २।३।२२।४६

तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय
यजु० ३१-१८

न ते विष्णो जायमानो न जातः ऋ० मं० ७-सू० ९९-२

इत्यादि सहस्रों मंत्र वेद में परमात्मा के एकत्व को बोधन करते हैं, वे सब विस्तार के भय से यहां उद्धृत नहीं किये जाते।

उक्त मंत्रों के देखने से प्रतीत होता है, कि वैदिक समय में सूर्यचन्द्रमादिकों का निर्माण कर्ता एक मात्र निराकार परमात्मा ही माना जाता था; नाना देव नहीं।

जो लोग यह कहते हैं, कि वैदिक समय में नाना देवों की उपासना थी, वे देव शब्द के सत्यार्थ न जाननें से भ्रान्ति में पड़ते हैं। तात्पर्य यह है, कि देव शब्द दिव्य गुण वाली वस्तु को भी कहता है, और सूर्य चन्द्रादि प्रकाश मान पदार्थों का भी वाचक है, और विद्वान तथा विदुषी स्त्रियों को भी कहता है। इस हेतु से अव्युत्पन्न लोगों को वेदों में नाना देव की भ्रान्ति हो गई।

वास्तव में वेद में ईश्वर रूप से अभिमत नाना देव नहीं। किन्तु इस संसार का निर्माता और विधाता एकमात्र परमात्म देव ही माना गया है। इसी अभिप्राय से कहा है, कि "**एषो हि देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः** "यजु० ३२-४। सम्पूर्ण दिशाओं में परिपूर्ण एक देव परमात्मा ही है। कोई अन्य नहीं। इसी भाव को उपनिषत्कार ऋषियोंने इस प्रकार लिया है, कि "**एकोदेवः सर्वभूतेषु-गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा** " श्वे०६-११ एक मात्र परमात्म देव ही सबभूतों में व्यापक और सब भूतों का अन्तरात्मा है। इसी भाव से

"**सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्**"

इत्यादि मंत्रो में सूर्यचन्द्रादिका का निर्माता परमात्मा कथन किया गया है। इस प्रकार वैदिक समय में लोग, एक मात्र परमात्मा को उपास्य देव और जगत्कर्त्ता मानते थे।

जो लोग यह कहते हैं, कि परमात्मा को यदि कर्त्ता माना जाय तो वह आनन्द स्वरूप नहीं रह सकता, उन से यह पूछना चाहिये कि, तुम जब कोइ शुभ काम करते हो, तो क्या तुम आनन्द का अनुभव करते हो या दुःख का।

और जो यह कहा जाता है, कि सर्व व्यापक में क्रिया नहीं होती, क्योंकि कोई जगह उस से खाली नहीं, जिसमें वह चलकर जाय। पूर्वोक्त कुतर्क करने-वाले लोगोंने क्रिया, कर्म, वा गति के तात्पर्य को नहीं समझा। क्रिया के अर्थ स्वभावभूत बलरूपशक्ति के भी हैं। अथवा ज्ञानके भी हैं। और ऐसी शक्ति सर्व व्यापक परमात्मा में हो सकती है। इसका बाधक कोई तर्क नहीं।

अन्य युक्ति यह है, कि जब (आकाश) ईथर आदि सापेक्ष विभु पदार्थ गतिशील हैं, अर्थात् कई एक गुणों की अभिव्यक्ति के कारण हैं, फिर कैसे कहा जा सकता है, कि निराकार विभु में गति नहीं होती।

वास्तव में बात यह है, कि अल्प शक्ति वाले जड़ पदार्थों के विषम दृष्टान्तों से लोगों को यह भ्रान्ति हो गई है, कि सर्वत्र भरे हुए पदार्थ में क्रिया नहीं होती। उनसे यह पूछना चाहिये, कि तुम एक शुद्ध काँच पात्र में जल वा दूध भरलो और इतना भरो, कि उस पात्र का कोई अंश भी उससे खाली न रहे। फिर उसको ज़ोर से हिलाओ तो क्या गति प्रतीत नहीं होती। यदि यह कहा जाय कि वह एकदेशी है, इस लिये गति होती है, तो उत्तर यह है, कि परिपूर्ण होने में तो वह एकदेशी नहीं।

वास्तव में यदि देखा जाय, तो जड़ पदार्थों में तो बाहर से गति का आधा-न किया जाता है। जो स्वयं गतिशील है, उसकी गति का बाधक कौन?

सर्व व्यापक में गति नहीं होती?

आनन्द स्वरूप यदि कर्त्ता माना जाय तो वह निरानन्द हो जाता है?

और प्रलयादि भावों का कर्ता ईश्वर न्यायकारी और अहंता सिद्ध नहीं होता इत्यादि कुतर्क "**बौद्धईज़्म**" वा "**जैनईज़्म**" के संपर्क से उत्पन्न हुए हैं।

वास्तव में वैदिक फिलास्फी में इनका गन्ध भी नहीं। इसी अभिप्राय से वेद में लिखा है, कि "**तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके। तद-न्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः**" **यजुः ४०।५।** वह चलता भी है, नहीं भी चलता है। दूर भी है निकट भी है। अर्थात् संसार को-

उत्पन्न करने में गतिशील है, और एक स्थान को त्याग कर स्थानान्तर में जाने के लिये एक रस और कूटस्थ नित्य है। सर्वव्यापक होने से दूर और निकट आदि धर्मों से रहित है।

ये सब भाव परमात्मा में अविरुद्ध हैं। अस्तु।

बहुत क्या, जिस प्रकार का परमात्मवाद स्फुटरीति से वेद में पाया जाता है, वैसा अन्य किसी भी धर्माभिमानी की पुस्तक में नहीं। और जैसा परमात्मा का एकत्व वेद में है, ऐसा अन्य किसी ग्रन्थ में नहीं।

प्रमाण के लिये देखो—

"**अनेजदेकम्**" यजु० ४०।४। "**तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः**" यजु० ४०।७। इत्यादि मंत्रों में परमात्मा का एकत्व और निराकारत्व स्पष्ट रीति से वर्णन किया गया है।

जिस प्रकार सर्वोपरि उपासनीयदेव का महत्व वेद में पाया जाता है, इसी प्रकार अन्य भी उत्तमोत्तम भाव वेद में पाये जाते हैं। अर्थात् वैदिक समय में दास भाव न था। और इसी लिये वेदमें दासत्वादि धर्म थे जाति न थी। अर्थात् जो एकमात्र सेवाधर्म करता था वह दास था। और वही यदि स्वामी के धर्म करता था तो स्वामी बन जाता था। और दासत्व जाति मान कर किसी का क्रय विक्रय नहीं किया जाता था। बहुत क्या, मनुष्यमात्र का समानाधिकार था। इसी लिये मनुष्यों के गुण-प्रयुक्त मनुष्यों में न्यूनाधिकभाव था। इसी का नाम गुण-कर्मानुसारिणी वर्ण-व्यवस्था है।

वैदिक पद्धति के अनुसार वैदिक समय में दम्पतीभाव भी वैदिक था। अर्थात् एक स्त्री का एक पति, और पति की एक ही पत्नी होती थी। वैदिक समय में कोई पुरुष भी ऐसा नहीं हुआ, जिसके अनेक विवाह हुए हों। वैदिक समय का लक्ष्य गृहस्थ-धर्म का देव-ऋण, पितृ-ऋण और ऋषि-ऋण इन तीनों ऋणों से उऋण होना था। आधुनिक समय के समान विषय, भोग वा दास दासी बना कर ऐश्वर्यशाली होना वैदिक-समय में लक्ष्य न था।

परस्पर प्रेम-भाव के मंत्र वेद में बहुत आते हैं, जैसा कि **"दृ ऋं ते दृह मामित्रस्य माचक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्"** यजु० अ० ३६ मं० १८। इत्यादि मंत्रों में मैत्रीभाव का उपदेश स्पष्ट रीति से किया है।

और जहां कहीं दस्युदमन वा दुष्टदमन के उपदेश पाये जाते हैं, वे संसार की मर्यादा को स्थिर करने के लिये हैं। द्वेषाग्नि को प्रदीप्त करने के लिये नहीं। अधिक क्या अहिंसा ही सार्वभौमव्रत समझा जाता था।

दार्शनिक बातें, कि जीवात्मा का नित्यत्व, पुनर्जन्म, बन्ध और मोक्ष इत्यादि भाव वेद में स्पष्ट रीति से पाये जाते हैं, जैसा कि **"योयमजोभागस्तपसा तं तपस्व"** अन्त्येष्टि संस्कार में ये कथन किया गया है, कि जो इस शरीर में जीवरूप अविनाशी वस्तु है, उसको तपस्वी बना कर, तुम परलोक का यात्री बनाओ। यह प्रार्थना ईश्वर से की गई है। **"एवं मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्"** इत्यादि वाक्यों में अमृतरूप मुक्ति का स्पष्ट रूप से वर्णन है।

इसी प्रकार वैदिकसमय की मर्यादा थी। जिस का वर्णन वेदभाष्य में विस्तारपूर्वक किया गया है। यह मर्यादा आर्यों में लाखों वर्षों तक रही। इसी का नाम वैदिक समय है।

ब्राह्मण काल।

कुछ काल पाकर ऋषियों ने वेदों के व्याख्यान ब्राह्मण ग्रन्थों का निर्माण किया।

ऐतिरेय, शतपथ, सामविधान और गोपथ ये वेदों के चार ब्राह्मण हैं। इन में आलङ्कारिक रीति से वैदिक विषयों पर विस्तार पूर्वक व्याख्या है। देवासुर-संग्राम, प्राणविद्या, ब्रह्मविद्या, नीतिविद्या, धनुर्विद्या इत्यादि बहुत सी विद्याओं का वर्णन ब्राह्मण ग्रन्थों में है। इस समय वेदविद्या को ऋषियों ने दो भागों में विभक्त कर दिया अर्थात् एक आरण्यक और दूसरा उपनिषद्। अभ्युदय की देने वाली विद्या का नाम आरण्यक, अर्थात् कर्मकाण्ड की विद्या के नाम से कहा जाता था। और केवल निश्रेयस को देने वाली विद्या का नाम

उपनिषद् था । इसी लिये उपनिषद् के ये अर्थ किये जाते थे कि, "**उपनिषीदति ब्रह्मसामीप्यं यया सोपनिषद्**" जिससे अवश्यमेव ब्रह्म की प्राप्ति हो उसका नाम उपनिषद् हुआ । ब्राह्मण ग्रन्थों के समय में वेदों के आलङ्कारिक भावों पर लोग बहुत झुक गये थे । वा यों कहो, कि उससमय एकमात्र यज्ञकर्म की ही प्रधानता समझी जाती थी । इसलिये उस से अरुचि उत्पन्न हो कर ज्ञान काण्ड का प्राबल्य होने लगा ॥

उपनिषत्-काल ।

इस समय में उपनिषदों का निर्माण हुआ । इस उपनिषत्समय में ब्रह्मवाद की इतनी प्रधानता हुई, कि "**सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत**" छां० ३।१४।१-९ ॥ इत्यादि वाक्यों द्वारा एकमात्र ब्रह्म की ही उपासना होने लगी । छान्दोग्य, और बृहदारण्यक बड़े बड़े उपनिषदों का निर्माण इसी समय में हुआ । यद्यपि इस समय का निर्द्धारण करना कठिन है, तथापि यह बलपूर्वक कहा जा सकता है, कि यह समय "बुद्ध" से सहस्रों वर्ष प्रथम था । जिस प्रकार वाल्मीकीयरामायण में गङ्गासङ्गम, प्रयाग का, और महाभारत में गंगाद्वार ब्रह्मकुण्ड हरिद्वार का, नाम प्रसिद्ध था, इसी प्रकार उपनिषदों के समय में, **वाराणसी** का नाम **काशी** प्रसिद्ध था । मालूम होता है, कि उस समय विद्यारूपी प्रकाश का प्रधानक्षेत्र यही था । इस लिये बड़े २ गूढ़-तत्त्व और रहस्यों का निर्णय इसी स्थान में किया जाता था । इस स्थान का निर्माण वाल्मीकीयरामायण से अर्वाचीनकाल में और महाभारत से प्राचीन-काल में हुआ है ।

यद्यपि इसके निर्माणकाल का ठीक २ पता लगाना कठिन है, तथापि यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है, कि **तक्षशिला** और **सारनाथादि** स्थान, जो किसी समय में बौद्धों के मुख्य क्षेत्र बन गये थे, इनका निर्माण काशी से बहुत पीछे हुआ है । इस विषय के लिये पुष्ट प्रमाण यह है, कि अजात शत्रु काशी के एक राजा ने **दृप्तबालाकी** नामक ब्राह्मण से यह पूछा कि "मुझे ब्रह्म बतलाओ ।

इसके उत्तर में ब्राह्मण ने यह कहा, कि "**ब्रह्म ते ब्रवाणि**" मैं तुम्हें ब्रह्म का उपदेश करूंगा ।

तब ब्राह्मण ने उसे सूर्य को ब्रह्म बतलाया । राजा ने सूर्य के ब्रह्म होने का खण्डन किया । फिर उसने चाँद को ब्रह्म बतलाया । राजा ने उसका भी खण्डन किया । इस प्रकार जिन जिन भौतिक पदार्थों को वह ब्रह्म बतलाता गया, राजा उनका खण्डन करता गया । अन्त में ब्राह्मण ने सिर नीचा कर लिया ; तब अजातशत्रु राजाने, उसे निराकार ब्रह्म का उपदेश किया । यह कथा बृहदारण्यक के अ० २ में अति प्रसिद्ध है । इससे सार यह निकला, कि बृहदारण्यक उपनिषद् के निर्माण काल में काशी ब्रह्मविद्या का मुख्य स्थान था । उस समय काशी में एकमात्र ब्रह्म का उपासन होता था । जो कोई भी भूल कर प्रतीक में ब्रह्मबुद्धि करता था, उसको बालाकी ब्राह्मण के समान अपना सिर नीचा करना पड़ता था ।

तात्पर्य यह है, कि ब्राह्मण ग्रन्थों की आलङ्कारिक कथाओं से जो सूर्य-चन्द्रादिकों में ब्रह्मबुद्धि भ्रम से उत्पन्न होने लगी थी, उसको औपनिषद समय ने सर्वथा दबा दिया ।

यहां यह बतला देना भी अप्रासङ्गिक नहीं, कि प्रतीकोपासन और मूर्तिपूजन में अत्यंत भेद है । प्रतीकोपासन के अर्थ किसी ज्योतिष्मान् पदार्थ में ब्रह्मबुद्धि करने के हैं । और मूर्तिपूजा किसी मूर्तपदार्थ को ब्रह्म समझ कर पूजा करने के हैं । अस्तु, कुछ हो, वैदिक-धर्मानुयायी लोगों के लिये ये दोनों मार्ग हेय हैं, उपादेय नहीं ।

इसी अभिप्राय से व्याससूत्र में इसका निषेध किया गया है, कि "**न प्रतीके नहि सः**" ४।१।४ कि प्रतीक में ब्रह्मबुद्धि नहीं करनी चाहिये, क्योंकि प्रतीक ब्रह्म नहीं ।

कई एक लोग उक्त विषय में यह भी आशङ्का किया करते हैं, कि ब्रह्मन् शब्दका वाच्य जो वैदिक–समय में देव विशेष था वा स्तोत्र अथवा अन्नादि-

पदार्थों को जो ब्रह्म शब्द कहता था उसको उपनिषद् के कर्ता ऋषियों ने जगज्जन्मादि हेतु ब्रह्म बना लिया ।

यह कथन सर्वथा युक्तिशून्य और मिथ्या है ; वेद में भी मुख्यतया ब्रह्म शब्द ईश्वर के अर्थों में ही आता था, जैसे कि **"तदेवशुक्रंतद्ब्रह्म"** **यजुः०** ३२ । १ । **"तस्मै ज्येष्ठायब्रह्मणे नमः"** **अथर्व०** १०।८।४।१।

डाक्टर विलसनादि यूरोपियन्स वा सर रमेशचन्द्र दत्तादि लेखकों के लेख पढ़कर कई एक पंडितों के भी यही विचार हो जाते हैं कि ब्रह्म शब्द ऋग्वेद में ईश्वर के अर्थ में नहीं आता। इसका उत्तर यह है, कि **"ब्रह्म गामश्वं जनयन्त ओषधीर्वनस्पतीन्पृथिवीं पर्वताँ अपः"** **मं०** १० । **सू०** ६५ **म०** ११ ब्रह्म ने पृथिवी, पर्वत, बनस्पति, गौ अश्वादि सब वस्तुओं को उत्पन्न किया एवं **"ब्रह्मणा व वृधाना"** **मं०** १ । सू० ९३ । **मं०** ६ । में ब्रह्म शब्द ईश्वर के अर्थ में आया है ।

तत्व यह है कि उपनिषदों के बनाने वालों ने ब्रह्म नाम वेद से लिया है । उन्होंने स्वयं कल्पना करके ब्रह्मवाद नहीं चलाया ।

औपनिषद समय में प्रतीकोपसना का बल पूर्वक खण्डन किया गया । जहां कहीं **"मनो ब्रह्मेत्युपासीत"** **छा०** ३।१८।१ **"आदित्यो ब्रह्मेत्यादेशः"** **छा०** ३।१९।१ इत्यादि वाक्यों में प्रतीकोपासना का कथन है, वह पूर्वपक्ष की रीति से है । सिद्धान्त पक्ष सर्वत्र उपनिषदों में यही है, कि **"तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते"** **के०** १।५ **"विरजं ब्रह्म निष्कलं"** **मुं०** २।२।९ **"सत्यंज्ञानमनन्तंब्रह्म"**, **तै०** २।१ **"अद्वैतंब्रह्म"**, **छा०** ३।१२।७ **"विज्ञानमानन्दं ब्रह्म"**, **बृ०** ३।९।२८ **"विज्ञानं सर्वे देवा ब्रह्म ज्येष्ठमुपासते"**, **तै०** २।५ **"सवायमात्माब्रह्मविज्ञानमयः"**, **बृ०** ४।४।५ बहुत क्या इत्यादि ब्रह्मोपासना के बोधक सहस्रों वाक्य उपनिषदों में पाये जाते हैं । उक्त ब्रह्मज्ञानरूपी वारिवाहिनी जान्हवीतट पर उस समय **काशी** नगरी का निर्माण हुआ था । काशी शब्द

सब से पूर्व ऋ० मं. ३ सू. ३० मं. ५ में इस प्रकार आया है, "**मघवन् काशिरित्ते**" हे ऐश्वर्य युक्त! (**काशिः**) आप की न्याय नियम युक्त दीप्ति ग्रहण करने योग्य है। यद्यपि यहां "**काशी**" ह्रस्व इकारान्त है, और उपनिषदों तथा ब्राह्मणों में दीर्घ ईकारान्त है, तथापि वेद, ब्राह्मण, तथा उपनिषदों में "**काशी**" प्रकाशिका का नाम है। इस ब्रह्मवर्चस्वी ज्योति के अभिप्राय से इस नगर का नाम काशी रक्खा गया। मालूम होता है, कि उस समय वैदिकज्ञान के सागर और उपनिषत् तत्व के वेत्ता ब्रह्मर्षि लोग इस नगर में निवास करते थे। उस समय में इस बालाकी ब्राह्मण ने काशी के अजातशत्रु राजा से यह कहा कि मैं तुम्हें ब्रह्म बतलाऊंगा।

इसबात का विवेचन करना अत्यन्त कठिन है, कि किस काल में इस काशी नगरी का निर्माण हुआ। तथापि यह अनायासपूर्वक कहा जा सकता है, कि वाल्मीकीयरामायण के समय यह नगर नहीं बना था। इस लिये उसमें इसकी कोई वर्णन नहीं। महाभारत के समय में इसका वर्णन स्पष्ट है, जैसा कि "**काशीराजश्चवीर्यवान्**" अस्तु।

मुख्य प्रसङ्ग यह है, कि उपनिषदों के समय में यह स्थान भारतवर्ष में ज्ञानका प्रसिद्ध क्षेत्र था। उपनिषदों के समय के सहस्रों वर्ष उपरान्त जब न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्वमीमांसा, उत्तरमीमांसा इन छयों दर्शनों का निमार्ण, हुआ तब भी इस नगर की प्रधानता रही। उक्त छओं दर्शनोंका निर्माण उपनिषत् और महाभारत के बीच के समय में हुआ है। हेतु इस का यह है, कि "**ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः**" महाभारत के इस वाक्य ने इस बात को स्पष्ट कर दिया, कि "**ब्रह्मसूत्र**" जिनका नाम "**व्याससूत्र**" वा "**वेदान्तसूत्र**" भी है, वे महाभारत से पूर्व बन चुके थे। और इन सूत्रों में न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग इत्यादि सूत्रों का वर्णन भलीभांति आता है। इससे स्पष्ट सिद्ध है, कि "**दर्शन**" महाभारत से पूर्व हैं।

इस प्रसङ्ग में यह भी अनुमान किया जा सकता है, कि बौद्ध-धर्म के आविर्भावकर्ता बुद्धदेव महाभारत से लगभग अढ़ाई हज़ार वर्ष पीछे हुए।

यद्यपि बौद्धदर्शन का वर्णन महाभारत में भी कहीं कहीं पाया जाता है, तथापि महाभारत का बुद्ध से पीछे होना सम्भव प्रतीत नहीं होता। और बौद्ध-दर्शन का महाभारत में वर्णन आने का अन्य हेतु है। वह यह है, कि महाभारत समय २ पर बढ़ता रहा है। और इसका पुष्ट प्रमाण अब भी हस्त लिखित पुस्तकों से मिल सकता है। पूर्वोत्तरनिर्णय करने से यह बात भलीभांति स्पष्ट हो जाती है, कि जिस समय बुद्ध देव हुए हैं, न तो उस समय भारतवर्ष में कर्म-योगी और ज्ञानयोगियों का प्राधान्य था, और न उस समय क्षात्रधर्म के उद्दीपक उद्योग की प्रधानता थी। किन्तु इससे अत्यन्त विपरीत आलस्य, मद, मत्सर, ईर्षा, द्वेष, हिंसाधर्मप्रधान वाममार्ग की प्रधानता थी। उसी समय में वेदों के हिंसा प्राधान्य और वाम मार्ग की प्रधानता सूचक अनन्त प्रकार के टीका टिप्पण हो रहे थे। औपनिषद ज्ञान की उच्चपताका जो काशी नगर में सहस्रों वर्षों से फहरा रही थी, वह भी समय के प्रभाव से, वा यों कहो कि भारत-संग्रामाग्नि ने उसे भी भस्मीभूत कर दिया था। इसी कारण बुद्ध देव उत्पन्न हुए। इनके समय में दर्शन और उपनिषदों का विशेष प्रचार न था। और संस्कृत भाषा का प्रचार भी बहुत हीनावस्था को प्राप्त हो गया था। इसी कारण बुद्ध के समय में संस्कृत संदर्भों का निर्माण नहीं हुआ। बुद्धदेव ने केवल निवृत्ति-मार्गप्रधान निर्वाण का उपदेश किया। जिसमें अभ्युदय वा उद्योग का गन्ध भी न था।

यद्यपि बुद्धधर्म के उपदेश वैदिक अभ्युदयशाली मंत्रों के आशय से रहित थे, और उनमें उपनिषदों के और दर्शनों के उत्तमोत्तम भाव भी न थे, तथापि उन उपदेशों का प्रचार बहुत जोर से हुआ। कारण यह कि उस समय हिंसा और अनाचार के भाव को दूर करने वाले सदुपदेशक की अत्यन्त आवश्यकता थी। इसी कारण सर्वसाधारण में उनके उपदेश फैल गये।

यहां कई एक लोग यह कहते हैं, कि बुद्ध के समय में आर्योंके दर्शनों का निर्माण नहीं हुआ था। और वे हेतु यह देते हैं कि दर्शनों में बौद्धमतका खण्डन पाया जाता है, इसका उत्तर यह है, कि दर्शनों के सूत्रों में कहीं भी

बुद्ध और बुद्धधर्म का निर्देश करके खण्डन नहीं किया गया। और कीया भी कैसे जाता। जब कि महाभारत के वाक्य से यह सिद्ध कर चुके कि दर्शन महाभारत से पूर्व बन चुके हैं। और यदि बुद्ध महाभारत से पहिले होता तो उसका वर्णन गीता का कर्ता अवश्य करता। क्योंकि जिसके मत में **"यद्यद्विभूतिमत्सत्वं श्रीमदूर्जितमेववा। तत्तदेवावगच्छत्वं ममतेजोंऽशसंभवम्"** ॥

जो जो विभूति वाली वस्तु है वह सब मेरे ही तेज से उत्पन्न हुई है। तो क्या जहां **"सिद्धानांकपिलोमुनिः"** का वर्णन है, वहां बुद्ध का वर्णन न आता। इससे स्पष्ट सिद्ध है कि जो कपिल सांख्य शास्त्र का निर्माता है, वह बुद्ध से बहुत पहिले हो चुका है।

जो कई एक इतिहास लेखक यह लिखते हैं, कि बुद्ध "कपिलवस्तु" में उत्पन्न हुआ और यह कपिल सांख्यदर्शनकार कपिल के नाम से प्रसिद्ध था, और कपिल के आश्रम में बुद्ध के पूर्वज भी जाकर एक समय रहे थे, यह कथा पूर्वोक्त युक्तियों से सांख्यशास्त्रकर्ता कपिल को सिद्ध नहीं करती। किन्तु किसी और कपिल का वर्णन करती है। अस्तु कुछ हो।

मुख्य प्रसङ्ग यह है, कि बुद्ध ने अपने समय में संयमी बनकर शम-दमादि भावों का प्रचार किया। और उस समय के कर्मकाण्डी और वेदाभिमानियों को अत्यन्त नीचा दिखलाया। महात्मा बुद्ध का ईसामसीह से ४७८ वर्ष पूर्व अन्तिम समय था। इनके अनन्तर इनके धर्म का इतना प्रधान्य बढ़ा, कि मगध देश ही नहीं, किन्तु सम्पूर्ण भारतवर्ष में बौद्धों का प्राबल्य हो गया। जिसको आर्यावर्त कहा जाता है, उस सीमा से पार होकर भी मालाकन्द, अफगानिस्तान, केटा-बुलोचिस्तान इत्यादि अनेक स्थान इनके पादाक्रान्त हो-गये। उस समय जड़ जलस्थलों की तो कथा ही क्या किन्तु मीमांसाशास्त्र के भाष्यकर्ता शबर स्वामी और वार्तिक के कर्ता कुमारिल भट्टादि धुरन्धर पण्डितों पर भी इनका आतङ्क जम गया। इसी प्रवाह में पड़े हुए एक स्थान में कुमारिल-भट्ट यह कहते हैं, कि—

"कुम्भकाराद्यधिष्ठानं घटादौ यदि चेष्यते ।
नेश्वराधिष्ठितत्वंस्यादस्ति चेत्साध्यहीनता "॥

घटादि कार्यों के दृष्टान्त से जो ईश्वर की सिद्धि की जाती है, वह ठीक नहीं, क्योंकि घटका कर्ता जो कुलाल है, पहले वही ईश्वर नहीं, अर्थात् जन्ममरणादि-धर्म वाला मनुष्य है । इस प्रकार यह दृष्टान्त साध्य से हीन है ।

बहुत क्या, उस समय जितने विद्वान् हुए, वे बौद्ध-धर्म के सम्पर्करूपी गंध से निर्गन्ध नहीं थे । इसी प्रकार पूर्वमीमांसा के भाष्य-कर्ता शवरस्वामीने कहीं भी ईश्वर का उल्लेख नहीं किया । यह समय वह था, जिस समय में उसी मगध देश में जिसमें बुद्ध देव हुए, वर्द्धमान महावीर नामक तीर्थङ्कर जैनों का अन्तिम तीर्थङ्कर था । इस समय न्यायशास्त्र के वेत्ता नैयायिकों ने "आत्मतत्वविवेक" इत्यादि कईएक, ईश्वरसाधक ग्रन्थों का निर्माण किया । अस्तु—

इस खण्डन मण्डन के घोर संग्राम में कई एक राजा महाराजा बौद्धधर्मानुयायी हो गये । इसका प्रभाव यहां तक हुआ, कि वैदिक लोगों के काशीनगर के महत्व को कम करने के लिये, उन्होंने काशीनगर से सात मील की दूरी पर सारनाथ को बसाया । इस नगर के बनाने का उनका तात्पर्य यह था, कि काशीनगर के महत्व को घटाकर, अपना महत्व बढ़ायें । जान्हवी तट को त्यागकर सात मील सारनाथ बनाने का, उनका यह भी तात्पर्य था, कि गङ्गा का कोई महत्व नहीं । और न वे वैदिकों के समान सायं प्रातः संध्या वन्दन करते थे, जो गङ्गा-तट की शरण लेते । कुछ हो, सारनाथ का महत्व ऐसा बढ़ा, कि बौद्धों के प्रभाव ने प्राचीन काशी को दबा दिया । इसके कारण कई एक थे ।

(१) उस समय ब्राह्मण लोग वेदों के अभ्यास को छोड़ बैठे थे ।

(२) जो उनमें से थोड़े से वेदाभ्यास करते भी थे, वे ब्राह्मण ग्रन्थों के अलङ्कारों को न समझ कर मिथ्या कथा-कहानियों में पड़ गये थे।

(३) बहुत से उनमें से ऐसे थे, जो वेदों में अश्लीलवाद, पशुयज्ञ,

और वाममार्ग के बोधक अर्थ निकाल, वेदों के महत्व को घटाते थे। इन बातों-के कारण बौद्धों का महत्व और भी बढ़ गया।

उस समय में जहां कहीं शास्त्रार्थ होता था, उस समय के वैदिक-धर्मियों-के मन्तव्यानुसार, वे वेदों में अश्लीलता, वाममार्ग और पशुयज्ञ दिखला कर बौद्ध लोग उनको जीत लिया करते थे। अधिक क्या, उसी समय के रचित ये वाक्य हैं, कि—"**त्रयोवेदस्यकर्तारो धूर्तभाण्डनिशाचराः**" अर्थात् वेदों को धूर्त, भाण्ड और राक्षसों ने बनाया है। क्योंकि उनमें लज्जाजनक बातें, यज्ञ-में पशुओं को मारना और वाममार्ग की बातें पायी जातीं हैं। इस शस्त्र से भारत के धर्म-युद्ध-क्षेत्र में बौद्धों ने विजय पाया। और आर्योंका पराजय हुआ। इसका यहांतक भयङ्कर परिणाम हुआ, कि अजातशत्रु राजा, और अशोकादि बड़े बड़े राजा बौद्ध धर्मानुयायी बन गये।

कई एक ग्रन्थकारों का मत है, कि तक्षशिला का विश्वविद्यालय भी इसी समय बना। पर यह बात हमारे विचार में सर्वथा निर्मूल है। हेतु इसके निम्न लिखित हैं—

(१) पाणिनीय सूत्रों में तक्षशिला का वर्णन है। और भगवान् पाणिनि बुद्ध से बहुत पहिले हुए।

(२) भगवान् पतञ्जलि भाष्यकार ने बौद्धधर्म का कहीं भी नाम नहीं लिया।

(३) उक्त ग्रन्थकारों ने पाली प्राकृतभाषा की चर्चा कहीं नहीं की, जो बौद्धों की प्रधान भाषा थी। इससे यह प्रतीत होता है, कि तक्षशिला पहिले वैदिक-धर्मानुयायी आर्यों का था। पीछे बौद्धों के अधिकार में आया।

अस्तु कुछ हो, यह कथान्तर है। मुख्यप्रसङ्ग यह है, कि **प्राचीन काशी** और **तक्षशिला** तथा **सारनाथ** इत्यादि स्थान जिनमें बौद्धधर्म का प्रभाव हुआ। उनमें बौद्धों की प्रतिमाओं से पृथक् कोई प्रतिमा नहीं पाई जाती। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है, कि वैदिक-धर्मानुयायी आर्य प्रतिमापूजन-प्रिय न थे। कई एक लोग यह कहते हैं, कि "**मूर्तौघनः**" ३।३।७७। "**जीविकार्थे-चापण्ये**"

५।३।९९ । इन पाणिनीय सूत्रों से तथा "**प्रतिमानाञ्चभेदक:**" इत्यादि मनु-वाक्यों से सिद्ध है कि प्रतिमापूजन पहले आर्य्यों में भी था ।

इसका उत्तर यह है कि "**मूर्तौघन:**" ३।३।७७ अष्टाध्यायी के इस सूत्र से तो यही सिद्ध किया है कि (हन्ति) को (अप्) और घन आदेश होकर अभ्रघनादि प्रयोग सिद्ध होते हैं । जिनसे मूर्त पदार्थ का काठिन्य पाया जाता है । तो क्या प्राचीन आर्य्य पृथिव्यादि पदार्थों में मूर्तत्व धर्म्म नहीं मानते थे ? इससे प्रतिमा-पूजन की सिद्धि कैसे ? ।

जो "**जीविकार्थे चापण्ये**" ५।३।९९। इस सूत्र से प्रतिमा-पूजन सिद्ध किया जाता है, वह ठीक नहीं, क्योंकि यह सूत्र यह सिद्ध करता है, कि व्यास, वशिष्ठादि ऋषि महर्षियों की जो प्रतिकृतियें बनाई जाँय, वे यदि बेंचने के अभिप्राय से बनाई जाँय, तो उनसे कन् प्रत्यय का लुक न हो ।

और यहां यह स्मरण रखने योग्य बात है, कि इससे पूर्व सूत्र, "**लुम्मनुष्ये**" ५।३।९८ इसमें मनुष्य शब्द स्पष्ट पड़ा है । जिसकी अनुवृति "**जीविकार्थे चापण्ये**" ५।३।९९। इस सूत्र में आती है । इससे यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है, कि ये प्रतिकृतियें मनुष्यों की ही बनाई जातीं थीं ईश्वर की नहीं ।

और भाष्यकार ने तो इस के उदाहरणों से यह भी स्पष्ट कर दिया, कि उनके समय में रामचन्द्र और कृष्णादिकों की प्रतिमायें न थीं ।

और जो भाष्यकार ने देव शब्द यहां लिखा है, उसका तात्पर्य विद्वानों-की प्रतिमाओं से है । क्योंकि प्रतिमा साधारण मनुष्यों की नहीं बनाई जाती । दिव्यगुणसम्पन्न पुरुषों की ही बनाई जातीं हैं । कुछ क्यों न हो, इत्यादि उदाहरणों से यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है, कि प्राचीन आर्यों में प्रतिकृति बनाने की विद्या थी । पर वे कभी ईश्वर की वा किसी मनुष्य को ईश्वर के स्थानापन्न मानकर उसकी प्रतिमा नहीं बनाया करते थे । और ना हीं उनके वेदादिधर्म ग्रन्थ ऐसा करने की उनको आज्ञा देते थे ।

और "**प्रतिमानां च भेदक:**" इस मनु-वाक्य से जो प्रतिमा सिद्ध की जाती है, यह सर्वथा साहस मात्र है । क्योंकि यह वाक्य राजधर्मप्रकरण-

का है। इसमें सीमा-विभाग के लिये जो चिन्ह बनाए जाते थे वा तौल-नाप के लिये जो सेर-पसेरी आदिकों के चिन्ह थे, उनको न्यूनाधिक करने वालों के लिये यहां दण्ड लिखा है।

बहुत क्या बुद्ध से पहले प्रतिमा बना कर पूजने की प्रथा आर्यावर्त में न थी। इसका पुष्ट प्रमाण यह है, कि मगध-देश व ब्रह्मर्षि-देश अथवा गोनर्द-देश जिसमें पाणिनि वा पतञ्जलि का उद्भव हुआ। इन देशों में प्राचीन भग्न-देवालयों में जितनी प्रतिमायें मिलती हैं, वे सब बौद्ध सम्प्रदायी लोगों की हैं। वैदिक-धर्मानुयायी आर्यों की एक प्रतिमा भी आज तक नहीं मिली, जो ईश्वर वा ईश्वर-स्थानापन्न किसी देव विशेष की हो।

इससे स्पष्ट सिद्ध हुआ, कि प्रतिमा पूजन बौद्धों से चला है। वह इस-प्रकार कि, जब बौद्धों का पूर्ण ऐश्वर्य आर्यावर्त में हो गया, और वे बुद्धदेव की प्रतिमा बनाकर उसको पूज्य समझ कर रखने लगे, और इस प्रकार उनका बुद्ध की मृत्यु के बाद भी अधिक संगठन हो गया, तो वैदिक-धर्मानुयायी आर्यनेताओं ने भी यह सोचा, कि हमको अपने संगठन की कोई न कोई आधार शिला रखनी चाहिये। इस अभिप्राय से उनमें उस समय ऐसे पुरुष-उत्पन्न होने लगे, जो बुद्धदेव के मुकाबले अपने देवी-देवताओं को रखते थे। और न केवल देवी-देवताओं को ही पूजनीय बनाते थे, किन्तु उनके गुण-कीर्तन-के पुराण भी नये नये निर्माण करते थे। इस समय में पहले पहल वैष्णव पुराणों की रचना हुई। इनका कारण यह था, कि जिन पशु-यज्ञों की निन्दा करके बुद्ध वा बौद्ध धर्मानुयायी लोगों ने इनको हानि पहुंचाई थी, उन दोषों का मार्जन करना भी अभीष्ट था। इसी प्रकार शनैः शनैः और पुराण भी बन गये। और इन्होंने भी बुद्ध के समान पूजनीय अपनी देवी-देवताओं को बना लिया। अर्थात् वैष्णवों ने विष्णु को चतुर्भुज कल्पना करके विष्णुको. विशेष देव बना लिया। और शैवों ने शिव को सर्वोपरि मानकर उसे अपनी भावनाके अनुकूल आकार देकर, अपना देव-विशेष मान लिया। इस प्रकार भारत-

वर्षमें शान्तदेव, रुद्रदेव, भैरवदेव इत्यादि नानादेवताओं के पूजन का एक भीषण-युग प्रारम्भ हो गया।

इसमें सन्देह नहीं, कि इनकी नई रचनाओं ने और नई प्रतिमाओं ने बौद्धों को तो अन्तर्ध्यान के स्थान में अन्तर्द्धान कर दिया।

पर इन के नाना देववाद ने इनमें फूटका बीज बो दिया। जो भविष्यमें बृहद्रूप को धारण करता हुआ, भारत के अभ्युदय का विनाशक हुआ।

कई एक लोग उक्त देव-पूजा विषय में यह कहते हैं, कि रुद्र-देवादिकों की पूजा वेद के आधार पर ही चलाई गई। रुद्र नाम वेद में वज्र वा बिजली का है। और वह (वृषभ) मेघ की सवारी करती है। अर्थात् बादलों में चमकती और कड़कती है। इस रीति से रुद्र का बाहन (वृषभ) बैल माना गया है। वास्तव में यह भूतल का चार पैर वाला बैल नहीं।

इस का उत्तर यह है, कि यदि इस सूक्ष्म फिलासफी को दृष्टिगत रख कर शिवलिङ्गादिकों की पूजा भारत में चलाई जाती, तो फिर दूसरे दोनों देवों के बाहन की भी कोई न कोई सङ्गति अवश्य होती। अर्थात् ब्रह्मा का बाहन हंस और विष्णु का बाहन गरुड़, इन का क्या तात्पर्य ? इस प्रश्न के करने पर वे कल्पक लोग, जो आज कल नई नई कल्पनाओं से पौराणिक-धर्म्म का मण्डन करते हैं, वे सर्वथा चुप हो जाते हैं। क्योंकि वास्तव में रुद्रादि देवों की मूर्तियें बना कर पूजने की कोई फिलासफी न थी। किन्तु केवल बौद्धधर्म को उन्हीं के शस्त्रों से पराजय करना ही अभीष्ट था। हाँ इतना अवश्य हुआ, कि विष्णुसूक्तों को पढ़ कर साकार विष्णु-देवता की कल्पना की। और रुद्रसूक्तों को पढ़ कर साकार रुद्रदेव की कल्पना की। पर इन कल्पनाओं में निरुक्त वा निघण्टु कोई आधार न था।

जिन लोगों का कथन यह है कि (रुद्र) देवता मेघस्थ विद्युत् प्रायः पर्वतों पर वर्षता और गर्जता है, इसी आधार पर (शिव-लिङ्ग) पाषाणमय-शिव पर जल चढ़ाया जाता है। उनसे यदि यह पूछा जाय, कि फिर बिल्वपत्र-

तथा विष्णु के प्रतिनिधि शालग्राम पर तुलसी क्यों चढ़ाई जाती है। तो उन की वैदिक-फिलासफी इस विषय में तनिक भी सहारा नहीं देती।

सच तो यह है, कि उस समय की कल्पनाओं का वेद से कोई सम्बन्ध न-था। हाँ केवल ब्राह्मण-ग्रन्थों के अलङ्कारों का अन्यथा उपयोग अवश्य किया गया। जैसे कि प्राणविद्या और इन्द्रियों के अलङ्कार से देवासुर-सङ्ग्राम और आध्यात्मिक-ज्ञानयज्ञ से घोड़े की बलिदान वाला अश्वमेध और इन्द्रियों की दुष्ट वृत्तियों के हवन करने से, गोमेध में गौ आदि पूज्य-पशुओं का वध सिद्ध किया गया।

उक्त विषय का पुष्ट प्रमाण हमारे पास यह है, कि मद्रास में एक गार्ग्या-यण सूत्र छपा है। जिसमें आध्यात्मिक अश्वमेधादि-यज्ञों का वर्णन है। यह ग्रन्थ सर पी. सी. चटरजी के गृह पर कलकत्ता में मैंने स्वयं देखा है। इस प्रकार जो ज्ञान-काण्ड-प्रधान ब्राह्मण-ग्रन्थों के अलंकार थे, उनको अन्यथा करके पुराणों में वर्णन किया गया। जिससे वैदिकधर्म्म से उलट कर आर्य्यों का प्राचीन-धर्म्म पुराणों के आकार में आगया। इसी समय इस **काशी** की नींव पड़ी। जिसमें अब विश्वेश्वरनाथ और विश्वनाथादि शिवलिङ्गों की प्रतिमायें हैं।

यहां यह बतला देना भी अत्यन्तोपयोगी है, कि पहली **काशी** जो उपनिषदों-के समय की थी, वह इस स्थान में न थी किन्तु राजघाट-स्टेशन से उत्तर पूर्व-की कोण में वरुणा और गंगा के संगम पर थी। कई इतिहासवेत्ता कहते हैं, कि इससे भी उत्तर सारनाथ और वरुणा नदी के बीच में थी। पर इसमें कोई सन्देह नहीं, कि यहां न थी। काशीखण्ड में उक्त बात के मण्डन का यह प्रमाण है, कि इसके प्रमाण से आदि केशव का मन्दिर "**आदौ पादोदके तीर्थे विद्धिमामा-दिकेशवम्। अग्निबिन्दोमहाप्राज्ञ भक्तानां मुक्तिदायकम्॥ काशी-खण्ड-अ० ६१-श्लोक ४**। इस में आदिकेशव को ही सब से प्राचीन ठहराया है। इस से यह भी स्पष्ट हो जाता है, कि उस समय सङ्गम को सब से श्रेष्ठ समझा जाता था, इस लिये यह आदिकेशव का मन्दिर ठीक ठीक वरुणा और गङ्गा के सङ्गम पर है।

यहां यह भी स्पष्ट कर देना उचित प्रतीत होता है, कि बुद्ध के पहले यह विष्णु को निराकार वा अव्यक्त मानते थे। प्रमाण के लिये देखो "**अपियो-भगवानीशोमनोवाचामगोचरः। स मादृशैरल्पधीभिः कथं स्तुत्यो-वचःपरः**"। **का.खं. अ० ६०-श्लो० २८**। इत्यादि श्लोकों में विष्णु को इन्द्रि-यागोचर मान कर भी बुद्ध देव की प्रतिमा की नक़ल आदिकेशव की मूर्त्ति बनाई गई। इसके प्रमाण में आदिकेशव का मन्दिर अब तक साक्षी-भूत खड़ा हुआ है। मालूम होता है, कि बुद्ध की तुलना का देवता पहले बुद्ध समय के पौराणिक आचार्य्योंने (केशव) विष्णु को रक्खा। यह नाम वेद में केशयुक्त पुरुष के लिये भी आया है। परन्तु पौराणिक-संस्कृत में मुख्यतया यह नाम विष्णु का है।

मुख्य प्रसङ्ग यह है, कि आधुनिक पौराणिक-धर्म का केन्द्र यह **काशी-**नगर बौद्धधर्म्म के मुकाबले पर बसाया गया। इतने अंश में तो उस समय के आर्य्यों ने अच्छा काम किया, कि जो उस समय में काव्य, नाटक, पुराणादि, लिखकर उन्होंने विकट-समय में संस्कृत की अत्यन्त उन्नति की। परन्तु आर्य्य-जाति का जीवन वेद उस समय रसातल को पहुँच गया। कुछ तो बुद्ध भगवान् और उनके अनुयायी पहले से ही वेदों के प्रतिकूल थे। दूसरे उस समय के पण्डितों ने वेदाभ्यास करना सर्वथा त्याग दिया था—

उस समय की पाठ्य-प्रणाली में केवल साहित्य, व्याकरण, और पुराण ही थे।

उस समय वेदों की अवनतिका मुख्य कारण, वेदों के अश्लील अर्थ और प्राकृत अर्थ भी थे। अर्थात् उस समय के पण्डित वेदों के बहुत बुरे बुरे अर्थ किया करते थे, और इस का कारण वाममार्ग की लहर थी। उन में से कुछ अर्थ हम यहां उद्धृत करते हैं।

अन्वस्य स्थूरं ददृशे पुरस्तादनस्थ ऊरुरवरम्बमाणः। शश्वती नार्यभिचक्ष्याह सुभद्रमर्य्य भोजनं बिभर्षि। ऋ.मं.८।सू. १। मं. ३४।

इस मन्त्र के सायणाचार्य्य यह अर्थ करते हैं, कि एक राजा नपुंसक-

हो गया था। उस की स्त्री उस के पुंस्त्व को वर्णन करती हुई, कहती है, कि तुम्हारा पुंस्त्व अब स्थूलतादिधर्म्मों से युक्त है। यहां अत्यन्त लज्जाकर अर्थ करके वेदों का महत्त्व घटाया है। वास्तव में इसका अर्थ यह है, कि प्रकृतिरूपी नारी मानो ईश्वरकी विभूति को वर्णन करती है, कि (अर्य) हे परमात्मन्! आपने सुन्दर विराटरूप इस भोग को धारण किया है। जो (अनस्थ) अनित्य है अर्थात् एकरस नहीं। और आप की अपेक्षा से स्थूल है।

अनस्थ के अर्थ अश्वत्थ के समान प्रवाहरूपसे नित्य के ही हैं। वह इस प्रकार तिष्ठतीति स्थः न स्थः अस्थः और न अस्थः अनस्थः। इस प्रकार अनस्थ शब्द प्रवाहरूप से नित्य को कहता है। जिस के अर्थ सायणाचार्य्य ने बिना हड्डी के करके, मनुष्य के गुप्त इन्द्रियों के किये। इस प्रकार वेदों में अश्लीलता कूट कूट कर भरी गई। जिस का अधिक विस्तार करना यहां लेख को नीरस करता है— अधिक क्या उस समय में जहां वेद में हरिश्चन्द्र शब्द मिला उस से हरिश्चन्द्र की कथा और उस के सर्वस्वदान को सिद्ध किया जाता था। एवं, "**गवामधित्वचि**" का अर्थ बैल के चमडे पर सोम कूटना किया जाता था। जिस के अर्थ वास्तव में इन्द्रियों के अधिष्ठाता मन के थे। और हरिश्चन्द्र के अर्थ ब्रह्मवर्चस्वी अर्थात् ब्रह्मतेज वाले विद्वान् के थे। यहां (हरिः) इस शब्द को चन्द्र के परे होने से सुट् का आगम हुआ है। बहुत क्या इस घोर अनर्थ के प्रवाह में कोई उस समय का विद्वान् खड़ा नहीं हो सकता था। यहां तक कि कुमारिलभट्ट ने भी अपने लिये और ही रास्ता निकाला। कुमारिलभट्ट उस समय के सर्वोपरि विद्वान् थे। पर वे भी वेदों का नाम लेकर ही उनपर अपने आत्मा का बलिदान किया करते थे। अर्थात् कतिपय वैदिक-सूक्तों पर भाष्य करके उन के महत्त्व को बोधन करने का साहस नहीं रखते थे। हां इतना उपकार उन्होंने आर्य्य-जाति पर अवश्य किया, कि संस्कृत-मीमांसा-दर्शन के मूल को दृढ़ करने वाले, उन्होंने कई एक ग्रन्थों का निर्म्माण किया, जिन में से कुमारिल का वार्तिक अति प्रसिद्ध है।

इस ग्रन्थ में कुमारिलभट्ट ने, प्रत्यक्षादि छः प्रमाणों की सङ्गति ऐसी रखी है, जिस का परित्याग इन के प्रति पक्षी वेदान्ती भी नहीं कर सके, अर्थात् वेदान्त ग्रन्थों में भी प्रमाणों का निरूपण इसी भांति किया जाता है ।

आधुनिक वेदान्तियों को इनका प्रतिपक्षी वा प्रतिद्वन्द्वी इस अभिप्राय से कहा गया है कि—

स्वयं च शुद्धरूपत्वादसत्वाच्चान्यवस्तुनः ।
स्वप्नादिवदविद्यायाः प्रवृत्तिस्तस्याः किं कृता ॥

इत्यादि कारिकायों में कुमारिलभट्ट ने अविद्यावादी वेदान्तियों का अत्यन्त बल पूर्वक खण्डन किया है, इस से यह भी स्पष्ट हो गया कि इस अविद्यावाद के वेदान्त के कर्त्ता केवल श्री स्वामीशङ्कराचार्य्यजी ही नहीं किन्तु क्षणिक-विज्ञानवाद के समान यह अविद्यावाद अर्थात् अविद्या देवी के वशीभूत होकर ब्रह्म से जीव बन जाना भी शङ्कराचार्य्य से प्रथम था । जिस का विशेष प्रचार स्वामीशङ्कराचार्य्य जी ने किया ।

यह भी दैवकी विचित्र घटना है कि जिस समय बौद्ध धर्म्म का प्राबल्य-हुआ उसी समय कुमारिलभट्ट और स्वामीशङ्कराचार्य्य जैसे विद्वान् उत्पन्न हो गए । जिनके दार्शनिक ज्ञान विज्ञान के चक्षु अत्यन्त विशाल थे ।

यद्यपि ये पूर्वोक्त विद्वान् बौद्ध धर्म्म के साम्हने वेदों को खड़ा नहीं कर सकते थे । तथापि दार्शनिक विद्या से वैदिक धर्म्म को पुनरुज्जीवित करने में इन्होंने अत्यन्त यत्न किया । वह यत्न यहां तक था कि कुमारिल भट्ट ने तो अपने आपको वेद-पथ पर भस्मीभूत कर दिया अर्थात् प्रयागराज के झूसी-नामक स्थान में कुमारिलभट्ट ने चिता जलाकर अपने शरीरका प्रायश्चित्त कर दिया इसके कारण लोग कई एक बतलाते हैं । कोई कहता है, कि बौद्धों से विद्या पढ़कर कुमारिल को बौद्धों का साम्हना करना पड़ा । इसलिये कुमारिल-भट्टने अपने शरीर को स्वयं जला देना उचित समझा । कोई कहता है, कि वे समय के प्रभाव से स्वयं भी आधे बौद्ध हो गए थे । इस बात से उनके हृदय

में अत्यन्त ग्लानि हुई। कुछ हो, इसमें सन्देह नहीं कि उनके इस दारुण प्रायश्चित्त का कोई भयङ्कर ही कारण था।

हमारे विचार में तो यही कारण ठहरता है, कि वैदिक धर्म्मानुयायी-होकर जो उन्होंने अपने बनाए हुए वार्तिक ग्रन्थ में ईश्वर का खण्डन किया। वही भयङ्कर पाप उनको सताता था इसी लिये उन्होंने अपने शरीर का उक्त प्रायश्चित्त किया।

यह भी जन श्रुति है कि जलते समय स्वामीशङ्कराचार्य्यजी ने उनसे बहुत कहा पर उन्होंने अपने शरीर के प्रायश्चित्त द्वारा ही अपना उद्धार समझा।

उनके बाद श्रीस्वामीशङ्कराचार्य्यजीने यह काम किया कि पाञ्चोंस्कन्ध जो संसार के हेतु बौद्धों ने माने थे, उनका अपने भाष्यों में बलपूर्बक खण्डन किया।

वे स्कन्ध यह थे १ रूपस्कन्ध। २ विज्ञानस्कन्ध। ३ वेदनास्कन्ध। ४ संज्ञास्कन्ध। ५ संस्कारस्कन्ध।

इनमें से विज्ञानस्कन्ध अन्य चारोंका हेतु है। तात्पर्य्य यह है कि (प्रकृति) मैटर में ही बौद्ध लोग दो प्रकार के समुदाय मानते थे (एकचित्त) अर्थात् चेतन दूसरा संज्ञा, संस्कार, वेदना, रुप, यह चार स्कन्ध जड़ रूप संघात हैं; इन दोनों प्रकार के (स्कन्ध) अर्थात् (वृक्ष के) स्थूल डाल के समान इस समुदाय का नाम ही वृक्ष है—

जिस प्रकार स्कन्धादि शाखायों को छोड़कर वृक्ष कोई अन्य वस्तु नहीं एवं पाञ्चों स्कन्धों को छोड़कर आत्मा कोई अन्व वस्तु नहीं। यही सिद्धान्त बुद्धभगवान् और उनके शिष्य बौद्धों का था, बुद्ध के सम्प्रादायी लोगों का नाम बौद्ध है।

इस सिद्धान्त का खण्डन व्यास दर्शन के सूत्र १८ दूसरे अध्याय के दूसरे पाद में है यहां यह आशंका अवश्यमेव उत्पन्न होती है कि जब दर्शनों के समय में बुद्ध और उनके सिद्धान्त थे ही नहीं तो वेदान्त दर्शन में इसका वर्णन कैसे आ गया?

इसका उत्तर यह है किप्रकृति रूप मैटर में शक्ति मानकर सृष्टि की रचना मानने वाले कुछ लोग प्रथम भी हो चुके हैं। जिनका खण्डन उपनिषदों में भी है "**न वा अरेऽहं मोहं ब्रवीम्यविनाशी वारेऽयमात्माऽनुच्छित्तिधर्मा बृ० ४।५।१४** इत्यादि वाक्यों में पाया जाता है। मालूम होता है कि बुद्ध भी इसी बीज को लेकर उठा यह कथन कल्पित नहीं किन्तु बुद्ध के जीवन चरित्र में यह स्पष्ट है कि आषाढ़ की पूर्णिमा को जो बुद्ध को बोधी ज्ञान हुआ उसमें बुद्ध ने उक्त पाञ्चोंस्कन्धों को विचारकर यह निश्चय किया कि उक्त पाञ्चोंस्कन्धों से भिन्न संसार में कोई वस्तु नहीं।

इसी का नाम बुद्धदर्शन में दिव्यज्ञानचक्षुदर्शन दिया था।

और निर्बीज और सबीज समाधि का नाम धरकर जो आजकल के बुद्ध जीवन के रचयितायों ने बुद्ध के धर्म्म को परिष्कृत किया है वह बुद्ध के आशय से सर्वथा विरुद्ध है। क्योंकि बुद्धदेव जन्मजन्मान्तर को नहीं मानते थे उस समय के जैनों से भी उनका यही प्रभेद था।

योग शास्त्र तो, **तदाद्रष्टुःस्वरूपेऽवस्थानम्**" इत्यादि सूत्रों में चेतन की पृथक सत्ता स्वीकार स्पष्ट रीति से करता है। इतना ही नहीं किन्तु **समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात**" इत्यादि सूत्रों में ईश्वर का स्पष्ट रीति से स्वीकार करता है और बुद्ध के मत में ईश्वर का स्वीकार नहीं इतने बड़े भेद को कौन छिपा सकता है॥

इस लेख से हम बुद्धदेव की लघुता सिद्ध नहीं करते किन्तु वास्तव में बुद्धदर्शन का प्रकाश करना हम अपना धर्म्म समझते हैं जो जो बुद्धदर्शन की प्रतीकें शङ्करभाष्य वा अन्य ग्रन्थों में मिलती हैं वे बुद्ध को वैदिक धर्म्मानुयायी सिद्ध नहीं करतीं॥

जो कई एक लोग आजकल बुद्ध देव को ईश्वरवादी सिद्ध करने की चेष्टा करते हैं वेभी उन के ईश्वरवादी होने में कोई पुष्ट प्रमाण नहीं दे सकते। और ना ही उन के इस प्रकार के कोई लेख मिलते हैं। जिन से उन के ईश्वरवादी

होने की सिद्धि की जा सके, पालीभाषा में भी जो ग्रन्थ पाये जाते हैं उन में बुद्ध के ईश्वरवादी होने में कोई प्रमाण नहीं ।

अन्य युक्ति यह है कि जो संस्कृत साहित्य बुद्ध के अनन्तर बना है उस में सर्वत्र बुद्ध को अनीश्वरवादी माना है, शङ्करभाष्य तथा रामानुजभाष्य में तो यह बात अत्यन्त प्रसिद्ध है कि बुद्ध अनीश्वर वादी थे ।

रामानुजभाष्य में तो यहां तक लिखा है कि **इत्युक्तं वेदान्तवादछद्म छन्नबौद्धनिराकरणे**" यह बात हम वेदान्त वाद की आड़ लेकर जो छिपा हुआ बौद्ध है, उस के खण्डन के विषय में कह आये हैं । इसी प्रकार रामानुजभाष्य, शङ्करभाष्य और कई एक दर्शनों के टीकाओं में बुद्ध की फलासफी का वर्णन है वहां सर्वत्र बुद्ध के दर्शन की चार शाखायें बतलाई गई हैं वे यह हैं, सौत्रान्तिक, वैभाषिक, योगाचार, और माध्यमिक इन चारों में कुछ २ मत भेद है पर अनीश्वरवादि चारों समान हैं ।

बहुत क्या श्रीमद्भागवत में भी जहां बुद्ध को अवतार तक लिखा गया है वहां भी वेदमतविरोधी स्पष्ट रीति से भागवतकारने माना है । इत्यादि प्रमाणों से स्पष्ट सिद्ध है, कि बुद्ध का दर्शन और बुद्ध के सम्प्रदायी लोग जो भारतवर्ष में लंकातक और अन्यत्र काबुल कांधारादि देशों में फैले हुए थे उन के समय में वेदों का ह्रास हुआ जिस को आर्य लोग अब तक स्थापित नहीं कर सके ।

यद्यपि महीधर, उवट, सायण, इत्यादि कई एक भाष्यकारों ने वेदार्थ के प्रचार की चेष्टा की पर वह यथावत् प्रचलित न हो सकी, इसके कई एक कारण पहले हम निरूपण कर आए हैं ।

मुख्य कारण यही था कि वेदार्थ की अपूर्वता को उक्त भाष्यकार नहीं बतला सके और तो क्या वेदान्त और मीमांसा के भाष्यकार लोग जिस शैली पर भाष्य करते हैं अर्थात् १ **उपक्रमोपसंहार २ अभ्यास ३ अपूर्वता ४ फल ५ अर्थवाद ६ उपपत्ति** इन ६ प्रकार के लिङ्गों से भी वेद के भाष्य-

कारों ने काम नहीं लिया, अपने २ सम्प्रदाय की ओर प्रत्येक भाष्यकार वेदार्थ-को खेंचने का परिश्रम करता रहा इस का पुष्ट प्रमाण यह है कि जो वेदमन्त्र स्वामीशङ्कराचार्य के भाष्य में आये हैं उनके अर्थ अद्वैतवाद के किये गये हैं और जो मन्त्र रामानुज के भाष्य में आये हैं उनके अर्थ विशिष्टाद्वैत वाद के किये गये हैं। इस प्रकार वेदार्थ की कोई स्थिरता नहीं रखी गई।

बहुत से लोगों को यह भ्रान्ति है कि उवट, महीधर, सायण, ये बहुत प्राचीन हैं पर ये मालूम रहे कि ये तीनों भाष्यकार स्वामी शङ्कराचार्य के पीछे हुए हैं स्वामी शङ्कराचार्य को हुए लग भग २२०० बाईस सौ वर्ष के करीब २ हुआ है और सायणाचार्य उस समय हुए हैं कि जब गोल-कुण्डा में ब्राह्मणीशासन था। और महीधर, उवट तो सायण से भी कुछ अर्वाचीन हैं।

इन तीनों के लेखों से भी यह गन्ध स्पष्ट आता है कि यह शङ्कराचार्य से पीछे हुए हैं क्योंकि ये लोग स्वामी शङ्कराचार्य्य के मायावाद को अनेक स्थानों में उद्धृत करते हैं। अर्थात् जीव, ब्रह्म की एकता में स्वामीशङ्कराचार्य्य के मत को ही उपादेय मानते हैं। इस प्रकार इनकी नवीनता स्पष्ट है।

इस प्रस्ताव से सार यह निकला कि वेदों से कोई रसिक भाव ये लोग नहीं निकाल सके। जिससे वेदों को सरस मान कर लोग पुराणों की ओर न झुकते। और कल्पित कथाओं को छोड़कर सत्य की ओर आ जाते।

यहां कई एक लोग यह सन्देह भी बहुधा प्रकट किया करते हैं, कि वेदों में मन की स्थिरता का या अध्यात्मिक वाद का चित्तापकर्षक कोई भाव नहीं पाया जाता, जिससे मनुष्य का आध्यात्मिक आनन्द बढ़े वा आत्मरति उत्पन्न हो।

इसका उत्तर यह है, कि "**तन्मेमनः शिवसङ्कल्पमस्तु**" यजु०। ३४ १। इस वाक्य का इस प्रकरण में छः बार अभ्यास है, कि मेरा मन शुद्ध संकल्प वाला हो। क्या यह अभ्यास "**चञ्चलंहिमनःकृष्णप्रमाथीबलवद् दृढं**" इस वाक्य के उत्तर-भूत "**अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते**"

कि वह अभ्यास तथा वैराग्य द्वारा स्थिर हो सकता है, अन्यथा कदापि नहीं। इस वाक्य के अर्थ से न्यून है ?

यहां हम वेदाभ्यासोदासीनमनस्कों से यह पूछते हैं, कि क्या उक्त-वाक्य का अभ्यास अर्थात् "**तन्मेमनः शिवसंकल्पमस्तु**" इसका अभ्यास गीता के अभ्यास या वैराग्य से कम है ?

यहां तत्त्व के जिज्ञासुओं को इस बात का भी स्मरण रखना चाहिये, कि अभ्यास भी दो प्रकार का होता है। एक साधार दूसरा निराधार। अर्थात् एक जगज्जन्मादिजननी के आगे सिर झुकाकर अभ्यास किया जाता है। दूसरा अपने ही आपका अभ्यास है। वेद उस अभ्यास का वर्णन करते हैं। जिसका परमाधार पराशक्ती है। जिसके विषय में उपनिषद् वाक्य यह कहते हैं, कि "**परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च।**"

अर्थ—उस परब्रह्म की शक्ति अनन्त प्रकार की है। स्वाभाविक–ज्ञान, स्वाभाविक–क्रिया, और स्वाभाविक–बल एकमात्र उसी परब्रह्म में पाया जाता-है, अन्य किसी वस्तु में नहीं। इस परब्रह्म के अभ्यास का प्रकार जैसा वेद-में पाया जाता है, ऐसा अन्य किसी ग्रन्थ में नहीं।

वेद-मार्ग से उद्विग्न मन वाले बहुधा यह कहा करते हैं, कि जिस प्रकार-का आध्यात्मिक–ज्ञान सर्वात्मवाद अर्थात् ध्यानावस्था में एकमात्र ब्रह्म-सत्ता का ही भान हो, किसी अन्य वस्तु का नहीं, इस प्रकार का वर्णन वेद में नहीं।

इस का उत्तर यह है, कि "**ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतं ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्म कर्म्मसमाधिना**" गीता, अर्थ–आध्यात्मिक-योगी जब ब्रह्म-निष्ठ हो जाता है, तो उसे बाह्य अग्नि-होत्रादि कर्म्मों में भी एकमात्र ब्रह्म की ही सत्ता प्रतीत होती है। यहां तक कि, अग्नि, स्रुवा, हविः, अर्पण, इत्यादि पदार्थों में वह एकमात्र ब्रह्म की सत्ता को ही अनुभव करता है। अन्य तुच्छ सत्तायें उस के आध्यात्मिक दिव्यचक्षुओं से तिरस्कृत हो जाती हैं।

गीता का यह भाव भी अथर्व-वेद से लिया गया है । वहां मन्त्र का पाठ इस प्रकार है–"**ब्रह्मणाग्नी वावृधानौ ब्रह्मवृद्धौ ब्रह्माहुतौ ब्रह्मेद्धावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः**" ॥ अ० १३ । ५०२ । ४९ । इस प्रमाण से स्पष्ट रीति से सिद्ध हो जाता है, कि वेद ही आध्यात्मिक विद्या की खान है ।

वेद में मनस्पति-परमात्मा से चित्त-वृत्ति-निरोध के लिये प्रार्थना पाई जाती है । जैसे कि–**अपेहि मनस्पतेऽप क्राम परश्चर । परो निर्ऋत्या आ चक्ष्व बहुधा जीवतो मनः** । ऋ० मं० १० । सू० १६४ । मं०१ । हे मन के स्वामिन् परमात्मन् ! हम को पाप-पिशाच से छुड़ाकर मेरा मन ब्रह्म-वर्चस्वी होकर आप को उपलब्ध करने के लिये तैयार हो ।

अधिक क्या मेरे लिये सर्वत्र भद्र ही भद्र हो जैसे कि–" **भद्रं वै वरं वृणते भद्रं युञ्जन्ति दक्षिणम् । भद्रं वैवस्वते चक्षुर्बहुत्रा जीवतो मनः** ॥ ऋ० मं० १०।सू० १६४।मं० २॥

मेरे चक्षु सदैव प्रकाश का अनुभव करें । अर्थात् मेरा ज्ञान सदैव वृद्धि को प्राप्त हो । और सर्वत्र मेरा मन भद्र ही भद्र देखे । इसी का नाम मानस-योग है। इसी से "**योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः**" **यो**१।१ चित्त वृत्ति-निरोध रूपी योग की फिलासफी निकली है । अधिक क्या जिस को बौद्ध वा बुद्ध देव अर्हत् अर्थात योग्य परमहंस कहते थे । वह ऋग्वेद के मं० १ । सू.९४ म. १ इससे लिया गया है । इसी प्रकार निर्वाण पद "**निर्वाण मोहा जितसंगदोषाः**" गीता के इस श्लोक से लिया गया है । कई एक लोग यहां यह भी आशङ्का करते हैं, कि यदि वेदानुयायी आर्यों के पास निर्वाण पहले ही था, तो उन्होंने उस से लाभ क्यों नहीं उठाया ? इस का उत्तर यह है, कि आर्य्य लोग निर्वाण को बुद्ध के समान नहीं मानते थे । अथवा-यों कहो, कि उन के मत में शून्यवाद के साथ मिला हुआ निर्वाण न था। किन्तु वे लोग केवल ब्रह्मनिर्वाण को मानते थे । ब्रह्मनिर्वाण, मुक्ति, अमृतपद ये सब पर्याय शब्द हैं । इस लिये मुक्ति का वाचक निर्वाण शब्द गीतादि ग्रन्थों में है । जो यह कहते हैं, कि गीता में भी निर्वाण शब्द बुद्ध से लिया गया है, वे अत्य-

न्त भूल करते हैं। क्योंकि गीता बुद्ध से लगभग अढ़ाई हजार वर्ष पहले का ग्रन्थ है। प्रमाण इस विषय में यह है, कि गीता के समय में **काशी** का नाम **बनारस** न था। किन्तु केवल काशी था, जैसा कि "**काशीराजश्च वीर्य्यवान्, काश्यश्च महायशाः** इत्यादि। और पाणिनि जो लगभग एक सहस्र वर्ष गीता से पीछे हुआ है, उस में भी वाराणसी शब्द नहीं। किन्तु तत्पश्चात् महाभाष्यकार पतञ्जलि मुनि ने अनेक स्थानों पर वाराणसी शब्द का प्रयोग किया है। तात्पर्य्य यह है, कि बुद्ध और महर्षि पतञ्जलि के समय में काशी का नाम वाराणसी भी पड़ गया था। कारण इसका यह कि, उस समय के लोग जल, स्थल में तीर्थ बुद्धि करने लग पड़े थे। इस लिये उन्होंने इस के अर्थ यह किये कि—पवित्र जल वाले स्थान का नाम वाराणसी है। कई लोग वरणा— असी इन दोनों क्षुद्र सरितों के मध्यवर्ती होने से इसका नाम वाराणसी सिद्ध करते हैं। अस्तु यह संस्कृतज्ञों की व्युत्पत्ति से सिद्ध नहीं होता। किन्तु अपभ्रंश की रीति से बनारस को अवश्यमेव स्पष्ट कर देता है। मुख्य प्रसङ्ग यह है, कि इस प्रकार इतिहास की आलोचना करने से बुद्धदेव और उनका निर्वाण पद सर्वथा नया ठहरता है। जो महाभाष्यकार पतञ्जलि से बहुत पीछे का है। यद्यपि पतञ्जलि का समय निश्चितरूप से नहीं कहा जा सकता, और न उनका निवास-स्थान ठीक ठीक बतलाया जा सकता है, कि भगवान् महाभाष्यकार जो योगशास्त्र के भी कर्ता कहे जाते हैं, वे किस काल और किस देश में हुए हैं, तथापि यह अवश्यमेव कहा जा सकता है, कि वे तक्षशिला यूनीवर्सिटी के छात्र थे और भारत के पश्चिमोत्तरीय कोण के निवासी थे। इन्होंने जो आर्य्यावर्त की सीमा बतलाई है, वह उक्त बात को भलीभांति सिद्ध करती है। जैसे कि, प्राक्कालकवनात्—अर्थात् कालेबाग से पूर्व और हिमाचल तथा विन्ध्याचल के मध्यवर्ती देश का नाम आर्य्यावर्त है। (कालक वन) जिसका नाम आज कल कालेबाग है, वह सिन्धु नदी के उस पार है। अर्थात् अब उसकी गणना अफ़गानिस्तान में की जाती है। इस प्रकार का सिन्धु-तट का गहरा ज्ञान होने से अनुमान किया जाता है, कि पतञ्जलि भी पाणिनि मुनि के आस पास के रहने-

वाले थे। यह हम पूर्व भी सूचना मात्र से सूचित कर आये हैं, कि महर्षि-पाणिनि सिन्धुनदी के पार उस प्रदेश के रहने वाले थे, जिस देश में सिन्धु को अटक नाम से कहते हैं। अर्थात् खैराबाद और नुशहरा-छावनी से उत्तर की ओर **शालातुर** ग्राम है। इस विषय में जो प्रोफेसर भण्डारकर ने यह लिखा है, कि पातञ्जलमहाभाष्य में कृष्ण का नाम आया है। इससे पतञ्जलिमुनि ईसा से दो शताब्दी प्रथम का ही सिद्ध होता है। अधिक नहीं। इसका उत्तर यह है, कि कृष्णनाम तो वेद, उपनिषद्, महाभारत इत्यादि अनेक ग्रन्थों में आया है। ईसा की प्रथम शताब्दी ही नहीं किन्तु बुद्ध से सहस्रों वर्ष पहले जिन ग्रन्थों को यूरोपियनस्कालर मानते हैं। उनमें भी कृष्ण का नाम है, फिर पतञ्जलिमुनि के बुद्ध से पीछे होने का सिद्धान्त कैसे स्थिर हो सकता है? अन्य प्रबल युक्ति इस विषय में यह है, कि '**जनिकर्तुः प्रकृतिः**' अ० १।४।३० अष्टाध्यायी के इस सूत्र पर भाष्यकार ने उपादान-कारण और निमित्त-कारण पर विस्तृत भाष्य किया है। जिससे स्पष्ट सिद्ध होता है, कि उस समय जगत् का निमित्त-कारण ईश्वर माना जाता था। इससे अधिक प्रबलतर्क यह है, कि भगवान् पतञ्जलि ने योग-सूत्रों को बनाया है। जिनमें प्रकृति को इस संसार का उपादान-कारण माना है। और ईश्वर को निमित्त-कारण। इस लिये इस शास्त्र का नाम सेश्वर सांख्य है॥

तात्पर्य्य यह है, कि ऐसे गूढ़-दार्शनिक-भावों को लिखते हुए, उक्त महर्षि क्या कहीं भी बुद्ध का वर्णन न करता? जो प्रोफेसर भण्डारकर के अनुसार तीनसौ वा चारसौ, वर्ष पतञ्जलि से पहले ठहरता है। और जिसका प्रभाव ईसा से दोसौ वा तीनसौ, शताब्दी पहिले **तक्षशिला** पर पड़ चुका था। इससे स्पष्ट-सिद्ध है, कि महाभाष्यकारपतञ्जलि ईसा से बहुत पहले हुआ है।

इस विषय में प्रोफेसर मैक्समूलर साहब यह कहते हैं, कि संसार भर में सबसे बढ़कर व्याकरण की उन्नति यूनानी और हिन्दुओं ने की। परन्तु यूनानी भी इनके आगे तुच्छ हैं। सम्पूर्ण संसार भर में सब से बड़ा व्याकरण का पण्डित पाणिनि, भारत के उत्तरीय कोण में हुआ है।

और उक्त प्रोफेसर मैक्सम्यूलर उनको कात्यायन ऋषि का समकालीन बतलाते हैं। और इनका समय ईसा से चार सौ वर्ष प्रथम निश्चित करते हैं। पर डाक्टर गोल्डस्टकर पाणिनि का समय ईसा से एक हजार वर्ष पहिले बतलाते हैं। अस्तु॥

इन विदेशीय लेखकों के अनुसार भी पाणिनिमुनि को हुए तीन सहस्र वर्ष के लगभग हो चुके। प्रकृत यह है, कि उस समय **तक्षशिला** जो अब बौद्धोंका प्रधान क्षेत्र रावलपिण्डी के पास निकला है, जिसमें **सारनाथ** के समान एक विस्तृत म्यूजियम अर्थात् अद्भुत आलय है। वह आर्य्यों के हाथ में था। और आर्य्य-धर्म के ग्रन्थों की शिक्षा ही उस विश्वविद्यालय में दी जाती थी। पाणिनीयसूत्र और महाभाष्य के पढ़ने से मालूम होता है, कि उस समय में भी वेदों का अध्यन अध्यापन बहुत कम था। और इस तीन सहस्र वर्ष के अनन्तर जो लहरें वेदार्थ को विलुप्त करने के लिये इस भारत-सागर में उठती रही हैं, वे भी बहुदर्शी पुरुषों से अज्ञात नहीं। पाणिनि से लगभग पांच सौ वर्ष पीछे बौद्ध-धर्म की एक ऐसी प्रबल लहर उठी, जिसमें वेदों के पठन पाठन का रहा सहा नाम भी जाता रहा। और उनके प्रधान-विद्यालयों के स्थान में बौद्ध-धर्म के देवालय बन गये।

इस लहर को मिटाने के लिये जो उस समय के आर्य्यों ने उद्योग किया उसको संक्षिप्तरीति से हम पूर्व में वर्णन कर आये हैं, कि बुद्ध-शास्त्र से ही उस समय की आर्य्य-जाति ने बुद्ध-धर्म का मर्द्दन किया। अर्थात् जैसे बौद्ध-धर्म्मी लोगों ने अपना आदर्श देव एक बुद्ध-देव को बना लिया। एवं आर्य्यों ने भी उसी प्रकार अपने ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन तीन देवों को आदर्श बनाया।

पौराणिक काल।

विष्णु-सूक्त विष्णु के ऐश्वर्य्य को वर्णन करने वाले बहुत स्पष्ट हैं, इस लिये सब से पहला आदि देव विष्णु बनाया गया। इस विषय में काशी-खण्ड के निम्न लिखित प्रमाण हैं "**शुक्लेन तदाकल्प विवस्वानादिकेशवम्।**

तत्रोपतिष्ठतेऽद्यापि उत्तरेणादिकेशवात्" । ७२ । "**अतः स केशवादित्यः काश्यां भक्ततमोनुदः । समर्चितः सदा देयान् मनसो वाञ्छितं फलम्** । ७३ । **केशवादित्यमाराध्य वाराणस्यां नरोत्तमः । परमं ज्ञानमाप्नोति येन निर्वाणभाग्भवेत्** । ७४ **काशी खं.** उ. अ. ५१ । यहां यह भी समझ लेना चाहिये, कि विष्णु का केशव नाम पौराणिक है ॥

इसी प्रकार शिव वा रुद्र का नाम तो वैदिक रख लिया गया। पर रचना उसके स्वरूप की उस समय की कल्पना से की गई । बहुत क्या, कई एक कल्पित कथायें, बनाकर नीलकण्ठ जहां विराट् वा शूरवीर का वर्णन करता था, उसे समुद्रमथन की कथा का रूपक देकर शान्तस्वरूपशिव को विषभक्षीरुद्ररूप बना लिया । प्रमाण के लिये देखो, काशी खं० । उत्तरार्द्ध० अ ६३ ।

नमः शिवाय शान्ताय सर्वज्ञाय शुभात्मने ।
जगदानन्दकन्दाय परमानन्दहेतवे ॥३२॥
अरूपाय स्वरूपाय नानारूपधरायच ॥३३॥

इन श्लोकों में शिव के नाम से लिये हुए बुद्ध देव के मुकाबले में कल्पना किये हुए देव का **श्रीकंठायनमस्तुभ्यं विषकण्ठायते नमः**, इत्यादि वाक्यों में उसी देव को विषकण्ठ कहकर विषभक्षीरूप से वर्णन किया । आगे जाकर यह भी लिखा है कि, "**व्यालयज्ञयोपवीताय व्यालभूषणधारिणे**" ॥ ३८ ॥ तुम सांप का यज्ञोपवीत धारण किये हुए हो, और यही तुम्हारा भूषण है । यहां कई एक लोग यह कहते हैं कि रुद्र नाम विद्युत् का है, वह एक प्रकार की अग्नि है, अग्नि का स्वभाव जलने का है इसी कारण लोग शिव की मूर्ति अर्थात् शिवलिंग पर जल चढ़ाते हैं, कि अग्नि देव शान्त रहे । और इस की पूजा चलने का यह बीज बतलाया जाता है, कि जब बिजुली आकाश से गिरती है, तो वह लंबे आकार को धारण कर लेती है इसलिये शिव की मूर्ति लम्बे आकार की और बिना हाथ पांव की बनाई जाती है

इत्यादि मिथ्या-कल्पनाओं के कल्पक वे लोग हैं, जो प्रत्येक बात में अपनी-भावना से फिलासफी ढूँढ़ा करते हैं। भला यदि यह भी मान लिया जाय कि रुद्र की अग्नि को ठण्डा करने के लिये जल चढ़ाया जाता है, तो फिर विल्वपत्र क्यों चढ़ाया जाता है। और वे लोग यह भी कहते हैं, कि जो महादेव की पार्थिव पूजा की जाती है, वह इस भाव से है, कि रुद्ररूप=अग्नि, पृथिवी का भी देवता है। इसलिये इस रुद्र की लोग मट्टी की मूर्ति बनाकर पूजा करते हैं। यह सब कल्पनायें निराधार हैं॥

वास्तव में तत्त्व यह है, कि बौद्ध धर्म्म को रोकने के लिये वा यों कहो कि बौद्धों के समान एक आदर्श देव बनाने के लिये पौराणिकसमय के लोगों ने ऐसी प्रथा चलादी। मैं इस बात के निर्णय के लिये स्वयं **सारनाथ** में गया वहां के (Archaeological) आर्क्योलाजिकल के अनुसन्धान कर्ताओं से यह मालूम हुआ कि इस स्थान में ईसा की पहली शताब्दी तक की बौद्ध प्रतिमायें मिलती हैं और जो पौराणिक प्रतिमायें मिलीं हैं वे सब आठवीं शताब्दि के इधर की हैं। प्रमाण के लिये सारनाथ में एक त्र्यम्बक महादेव की मूर्ति है वह ईसा की आठवीं शताब्दी की है। इससे स्पष्ट सिद्ध है, कि पौराणिक-प्रतिमायें बुद्ध देव के बाद की हैं।

एवं ब्रह्मा भी एक देव कल्पना कर लिया गया, जो वेद में विद्वान् वा पूर्णब्रह्म के अर्थ में आता है। अन्य विष्णु आदि देवों के समान उस की मूर्तियें न पूजी जाने में विविध प्रकार की कथायें हैं। जिन का यहां वैदिक-भाव में कोई उपयोग नहीं। केवल इतना कह देना पर्य्याप्त होगा कि **तमेव ऋषिं तमु ब्रह्माणमाहु ऋ० मं. १० सू. १०७ मं. ७। यं कामये तंतमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ऋ० मं० १०। सू० १२५। मं० ५।** इत्यादि मंत्रों से ब्रह्मा ऋषि पदवी काही था अर्थात् वेद, विष्णु और शिव के समान इसके ऐश्वर्य्य का निरूपण नहीं करता स्यात इसी वैदिक भावने इसे केवल ब्राह्मण और ब्रह्मवेत्ता ही रक्खा। अस्तु—

और जो यह कहा जाता है कि ब्रह्मा नाम वायु का है इस लिये यह

चतुर्मुख बनाया गया क्यों कि वायु चारों ओर बहता है यह कल्पना सर्वथा मिथ्या है । वेद और वेद के प्राचीन निरणायकग्रन्थों में ब्रह्मानाम वायु का कहीं भी नहीं । प्रकृत यह है कि आदिदेव विष्णु और उससे दूसरे दर्जे का ब्रह्मा, तीसरा शिव इन्हीं का नाम त्रिदेव है ।

मुख्य प्रसङ्ग यह है कि बुद्ध की प्रतिमायें बनने के अनन्तर हिन्दुओं ने भी इनकी प्रतिमाओं का निर्माण कर लिया और स्थान स्थान पर शिवालये और मन्दिर बनने प्रारम्भ हो गये यह प्रथा यहां तक बढ़ी कि इस की पूर्ति के लिये सहस्रों स्तोत्र और कथा कथानक नये बन गये । पुराणों की कथायें तो ऐसी सहस्रमुख हो कर फैली कि प्रत्येकपुराण में एक ही प्रकार की कथायें बहुधा पाई जाती हैं, और जो यह कहा जाता है कि महादेव की गौरी स्त्री होना भी वेद से निकाला गया है इस लिये त्रिदेव कल्पना वैदिक मन्तव्य है इस का उत्तर यह है कि जिस प्रकार केनोपनिषद् में हेमवती नाम आया है वह हिमालय की पुत्री सिद्ध नहीं करता और छांदोग्य उपनिषद् में कृष्ण नाम आया है वह महाभारत के कृष्ण को सिद्ध नहीं करता वेद में अर्जुन शब्द आया है वह पाण्डव अर्जुन को सिद्ध नहीं करता एवं "**गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षत्येक पदी द्विपदी सा चतुष्पदी**" ऋ. मं० १ । सू० १६४ मं० ४१ यहां गौरी दीप्तिमती विद्यावती सामान्य स्त्री के नाम में आया है ।

ऐसे ऐसे शब्दों को ढूँढ़ भाल कर जो पुरुष रुद्रादि कल्पित देवों के स्त्री पुत्रों को सिद्ध वेद के सहारे से करते हैं वेद को दूषित करते हैं । और वे लोग यह भी कहते हैं कि विद्युत् गौरवर्ण की होती है और वह रुद्रदेव वज्र की चमक होने से उस की शक्तिरूप से स्त्री स्थानीय है । इसी हेतु से उन्होंने गौरी को रुद्र की अर्धाङ्गिनी माना है । इसी प्रकार एक अलङ्कार से अन्य कल्पित अलङ्कारों को सिद्ध करते हुये कई एक यहां तक बढ़ जाते हैं कि त्रिशूल रुद्र के साथ इस वास्ते रक्खा है कि (रुद्र) बिजुली को त्रिधातु का रोकता है इत्यादि कल्पनायें भी रुद्रादि देवों के विषय में की जाती हैं । यदि इसी प्रकार नाम आजाने से मिथ्या निकालना हो तो "**सोमोगौरी**

अधिश्रितः" इस वाक्य से (सोमनाथ) शिव की स्त्री गौरी सिद्ध हो सक्ती है। इस प्रवाह में पड़कर लोगों ने पौराणिक कथायें बना दीं। यह प्रवाह केवल पुराणों तक ही नहीं रहा किन्तु महाभारत में और रामायण में भी ऐसे ऐसे प्रक्षिप्त-स्थल मिला दिये गये जिस से यह पता चलना कठिन हो गया कि यह किस समय के ग्रन्थ हैं।

तात्पर्य यह है कि जैसे वाल्मीकीयरामायण में विशिष्ट, विश्वामित्र, नारद थे, उसी प्रकार महाभारत में भी विश्वामित्रादिकों की कथाएं और नारदादिकों के उपदेश ज्योंके त्यों मिला दिये गये।

यहां तक ही यह अवस्था अर्थात् प्रवाह समाप्त नहीं हुआ किन्तु मनुस्मृति आदि प्राचीन ग्रन्थों की भी यही दशा की गई, जिन मनुस्मृति के श्लोकों को वाल्मीकि ऋषि प्रमाण कोटि में रखते थे वे अब मनु में नहीं पाए जाते। इस सत्यानृतका निर्णय तो प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों के सञ्चय करने से अब भी हो सकता है। हमने एक प्रमाणिकपुरुष से सुना है कि एक लायबरेरी ऐसी मिली है जिस में प्राचीन समय की मनुस्मृति है अर्थात् उसमें ३००) सौ श्लोक नहीं पाए जाते जो किसी समय नए मिलाए गए हैं, जिनसे मनुके ग्रन्थ की प्राचीनता नहीं रहती अस्तु इसका उत्तर केवल कण्ठोक्ति से देना निष्फल है, हम ऐसे यत्न में है कि इन प्राचीन पुस्तकों को उपलब्ध करके मुद्रित करादें। यहां एक यह आशङ्का उत्पन्न होती है कि समय पर जब अन्य पुस्तकों मे लोग प्रक्षिप्तअंश को डाल कर अपना मन्तव्य पूरा करते रहे तो वेदोपनिषद् ब्राह्मग्रन्थ इनमें हस्ताक्षेप करके प्रक्षेप क्यों न किया ? इसका उत्तर यह है कि वेद में प्रक्षेप करना तो सर्वथा असम्भव था क्योंकि उसकी भाषा की बनावट ऐसी है कि जिस में लौकिक भाषा मिल ही नहीं सकती और न उसमें प्रक्षेप से कोई प्रयोजन सिद्ध होता था क्योंकि उसमें किसी मनुष्य का इतिहास ही न था। प्रमाण के लिये देखो **आदिसर्ग** वाल्मीकियरामायण वा **आदिपर्व** महाभारत इन दोनों में प्रक्षेप स्फुट है अर्थात् रामको अवतार सिद्ध करने वाले जो श्लोक इस में मिलते हैं वह सब पीछे के हैं, अस्तु।

इस प्रक्षिप्त कथा से यहां प्रसङ्ग बढ़कर वेदार्थ बहुत दूर पड़ जाता है मुख्य प्रसङ्ग यह है कि इस प्रक्षिप्त बादकी दूसरी लहर ने भी वेदों को छिपा दिया क्योंकि लोग बुद्ध के स्थान किसी अन्य आर्य्यपुरुष को रखना चाहते थे इसी प्रवाह में राम कृष्णादि मर्य्यादापुरुषोत्तम पुरुष अवतार बन गए अर्थात् साक्षात् ईश्वर का रूप मान कर लोग उनकी पूजा करने लगे ।

इसका सबसे प्रबलप्रमाण यह है कि पाणिनीयसूत्र जो लगभग तीन-सहस्र वर्ष के हैं उनमें कहीं रामकृष्ण की मूर्त्ति वा अवतार का नाम नहीं ।

इसी प्रकार महाभाष्य में भी कहीं इनकी मूर्त्ति वा अवतार का नाम नहीं और तो क्या दशावतार वा चौबीस अवतार की कथा, जो पुस्तक बुद्ध देव से प्रथम बने हुए हैं उनमें कहीं नहीं ।

इस से भी पुष्ट प्रमाण यह है कि आर्य्यों का मुख्य विद्यालय **तक्षशिला** जिसका हम ऊपर वर्णन कर आए हैं उसमें **विष्णु** वा **शिव** तथा **राम कृष्णादि** कों की आज तक एक भी प्रतिमा नहीं मिली, मिलती भी कैसे जब यह प्रतिमा पूजा **युग** ही बुद्ध देव के अनन्तर चला तो पहले कैसे मिले ।

इस से हमारा यह तात्पर्य्य नहीं कि प्रतिमा निम्माण की विद्या प्राचीन आर्य्यों में न थी, अथवा वीर पुरुषों वा यज्ञ के पात्रों की वे प्रतिमायें न बनाते थे किन्तु तात्पर्य्य यह है कि ईश्वर का अवतार वा ईश्वर की प्रतिमा बनाकर वैदिक लोग नहीं पूजते थे । उनके लिये वेद भगवान् के प्रभावशालीमन्त्र प्रतिमायोंका काम देते थे । और वीरता रससे भरे हुए वेदोंके सूक्त उनको तेजस्वी और ओजस्वी बनाते थे । वे बुद्ध के सामान निराधार निर्वाण को नहीं ढूंढ़ते थे किन्तु निरविधिक ईश्वर के ऐश्वर्य्य में निमग्न हो कर सच्चे निर्वाण पद को उपलब्ध किया करते थे और ईश्वर से इस निम्न लिखित उपदेश की प्रार्थना करके महाबोधी विज्ञान को प्राप्त होकर आप्त पुरुष बना करते थे वह उपदेश यह है कि ।

पवस्वसोम देववीतये वृषेन्द्रस्य हार्दि सोम धानमाविश ।

पुरा नो बाधाद्दुरितादति पारय क्षेत्रविद्धिदिश आहा विपृच्छते
ऋ० मं० ९-सू ७०-मं० ९

हे प्रमात्मन् आप हमारे हृदय में निवास कीजिये और दुःखों की बाधा से प्रथम ही आप हमें सन्मार्ग का उपदेश करें। जिस प्रकार सन्मार्ग का उपदेष्टापुरुष सन्मार्ग का उपदेश करता है इस प्रकार आप हमें सन्मार्ग बतलाकर और सच्चे रास्ते में चलाकर पवित्र कीजिये।

एवं (**अतप्ततनूर्नतदामोअश्नुते**) इस वाक्य में बलपूर्वक यह कथन किया है अतपस्वी पुरुष जिसने तप से अपने आप को पकाया नहीं अर्थात् कच्चा है वह उस परमात्मपुरुष के अमृतपद को कदापि लाभ नहीं कर सकता। इस प्रकार तप और विज्ञान को खान वीरता और धीरता का धाम जो एकमात्र वेद था वह आर्य्यजाति ने सर्वथा अपने दिल से भुला दिया। जो अन्य सब अकिञ्चनों को भिक्षा देकर प्राणप्रदान करता था वह आर्य्यधर्म्म अपने इस प्राचीन वेदरूपी कोश को भूल कर स्वयं भिक्षू बन बैठा। यहां तक कि बुद्ध धर्म्म का अनुकरण करके भिक्षु-मंडल इस देश में इतना बढ़ा कि वैदिक ऐश्वर्य्य इस देश में स्वप्नस्थानीय हो गया अर्थात् जहां **जीवेम शरदःशतम् पश्येम शरदःशतम्, यजु० ३६।२४** । कि मैं सौ वर्ष तक जीऊं और सौ वर्ष तक परमात्मा की इस विशाल विश्व को देखूं और उसके पवित्र यशका श्रमण करूं इत्यादि वेद भगवान् के मनोहर उपदेश भुलाकर लोगों ने जीना भी एक भार ही समझ लिया सब कोई दीपशिखा के अस्त होने के समान आत्मनाश रूप निर्वाण को अपने जीवन का लक्ष्य समझने लगा। इसी की नकल हमारे वैदिक सन्यासियोंने भी की यह प्रथा यहां तक बढ़ी कि बन, पर्वत, सब सन्यासियों के झुण्डों से व्याकुल हो गये। इस प्रवाहमें तीसरी लहर नवीन वेदान्त की उत्पन्न हो गई जिसने वेदार्थ को और भी छिपा दिया अर्थात् (**तत्र वेदा अवेदा**) (**न वेदा न यज्ञा न तीर्थं ब्रुवन्ति**) इत्यादि स्तोत्र बना कर वेदों के ऐश्वर्य को मिटादेने की अत्यन्त चेष्टा की गई।

संसार को स्वप्न समझने वालों के भाव को पूर्ण करने के लिये परमात्मने चौथा युग इनके वेदार्थ को विनाश करनेवाला वह काल उत्पन्न किया जिसमें वेद और वेदाङ्गों के सहस्रों ग्रन्थ अवैदिकाग्नि के स्थालीपाकस्थानीय बन कर-भस्मीभूत हो गये, इस अवस्था में परमात्मा को अभीष्ट था, कि कोई सत्कर्म्मी-मर्य्यादापुरुषोत्तम उत्पन्नहोकर वेदार्थ का उद्धार करके भारत में फिर प्राचीन-समय की झलक को दिखाये । वा यों कहो कि वेदरूपी सूर्य्य के प्रभामण्डल-से इन सब तुच्छदीप्तियों को तिरस्कृतकरके एकमात्र वैदिकप्रकाश को सर्वत्र प्रदीप्त करे ।

उस मर्य्यादापुरुषोत्तम का नाम महर्षिदयानन्द सरस्वती था । इन्होंने अपने समय में वेदार्थ का इस बल से प्रचार किया जो इन से प्रथम कुमारिलभट्ट के सिवाय आज तक अन्य किसी ने नहीं किया । यद्यपि कुमारिलभट्ट और शङ्कराचार्य्य पौराणिक समय के युवावस्था के प्रभाव में हुए, तथापि इन में वैदिकरक्षा के प्रवाह अत्यन्त वेग से लहरें मारते थे । इसी अभिप्राय से श्री स्वामी शङ्कराचार्य्य जी एकस्थान में यह लिखते हैं कि, "वेदस्य हि स्वार्थे निरपेक्षं प्रामाण्यं पुरुष वचसान्तु मूलान्तरापेक्षं रवेरिव रूपाविषये ॥ शं० भा० सू० पा० । एक-मात्र वेद का प्रमाण ही स्वतः प्रमाण माना जा सकता है । अन्य सब पुस्तक-परतः प्रमाण हैं । इस अर्थके ग्रन्थन से सब लोग भलीभांति जानसकते हैं, कि स्वामी शङ्कराचार्य्यजी की वेदोंपर कैसी अटल श्रद्धा थी । इसी प्रकार कुमारिलभट्ट एक स्थान पर यह लिखते हैं कि, "एवं ये युक्तिभिः प्राहुस्तेषां दुर्लभमुत्तरमन्वेष्यो व्यवहारोयमनादिर्वेदवादिभिः" वेदवादियों को अनादि-काल से वेद का व्यवहार मानना चाहिये । अर्थात् "सूर्य्याचन्द्रमसौ-धाता यथा पूर्वमकल्पयत् । ऋ० मं० १० । सू० १९० ॥ इत्यादि मंत्रों में जो प्रवाहरूपसे सृष्टि की रचना मानी है, उसमें कोईदोष नहीं आता । इस प्रकार उक्त दोनोंमहापुरुषों ने पौराणिकसमय में भी वैदिकधर्म्मकी जड़ वेदको पक्का किया । यद्यपि कुमारिल और शङ्कराचार्य्यादि वैदिक-धर्म्म के मण्डनकर्ताओं

के प्रभाव से हिन्दूसमय में भी वेद आर्य्यजाति में परमप्रमाण माना जाता रहा, तथापि उस समय में जो वेदों पर यह दोष लगाये जाते थे, कि वेद नानादेवताओं की पूजा बतलाते हैं, उन में पशुयज्ञ है तथा पुरुषमेधयज्ञ भी है। इसी प्रकार दास-भाव और दासी भाव की शिक्षा वेद देते हैं, तथा शूद्रजाति को वेद कीट पतंग के समान मानते हैं। वेदों के पठन पाठन का केवल ब्राह्मण को ही अधिकार है अन्य को नहीं, इत्यादि सहस्रोंकलङ्क जो वेदों पर लगाये जाते थे, इन का समुचित उत्तर देनेवाला कोई भी न था। इस न्यूनता को पूर्ण करनेवाला आर्य्यधर्म्म का उद्धारक अचार्य्य महर्षि स्वामी दयानन्द ही उत्पन्न हुआ।

मेरे हिन्दूधर्म्मानुयायीभाई यद्यपि महर्षि श्री स्वामी दयानन्दसरस्वती को इतना गौरव देने को उद्यत न होंगे जितना मेरे हृदय में है तथापि इस बात को सभी मुक्तकण्ठ से कहेंगे कि कुमारिलभट्ट और शङ्कराचार्य्य के अनन्तर आर्य्यधर्म्म का रक्षक एक ही पुरुष उत्पन्न हुआ। जिसका नाम महर्षि स्वामी-दयानन्दसरस्वती था। जिनके प्रभाव से बिखड़ी हुई हिन्दूजाति अर्थात् नाना प्रकार के देवीदेवताओं मठ और शमशानों को मानने वाली हिन्दूजाति आज वेद-रूपी झण्डे के तले आकर अपने आप को वैदिक मानने के लिये उद्यत है।

इस एकत्व के उत्पन्न करने से स्वामी दयानन्द का यश आज इस बीस-वीं शताब्दी में नभोमण्डल के बृहत्पत्र पर अङ्कित हो गया, जिसको किसी समय की प्रबल से प्रबल लहर भी मिटा वा हटा नहीं सकती।

इसी प्रबलभाव ने मेरे उत्साह को उत्तेजित किया जो मैं वेदों की उत्तमता को अपनी परमपूजनीय हिन्दूजातिरूपीदेवी के नैवेद्य चढ़ाने को उद्यत हुआ मेरे विचार में वेदों में कोई इतिहास नहीं। और न वेदों में दास-दासी-विक्रय वा शुनःशेपादि-सूक्तों में नरमेध का विधान है। यह कलङ्क मिथ्यार्थ करके वेदोंपर लगाए गए हैं। जैसा कि "हरिश्चन्द्रोमरुद्गणः। ऋ० मं० ९। सू० ६६। मं० २६। इस वाक्य से राजाहरिश्चन्द्र की सिद्धी की अवेदज्ञपुरुषों को शङ्का हो जाती है। और सोमोगौरीअधिश्रितः, इस से शिव की स्त्री गौरी की आशङ्का हो

जाती है। वास्तवमें सर्वानन्दप्रद विद्वानों के समूह का नाम यहां "इरिश्चन्द्रो मरुद्गणः" है, इसी प्रकार अन्य आक्षेप भी सर्वथा निर्मूल हैं।

इन सब बातों का उल्लेख हमने अपने भाष्य के स्थान २ पर किया है। और जो अनेकस्थानों में सायणादि भाष्यकारोंने अन्यथाभाष्य करके वेदों के महत्वको घटाया है, ऐसे स्थलों को हमने विस्तारपूर्वक लिखकर निर्दोष किया है।

यदि कोई यह आशङ्का करे कि सायण, महीधरादि भाष्यकारों को अप्रमाण कोटि में ठहरा कर तुम्हाराभाष्य प्रामाणिक कैसे?

इसका उत्तर यह है, कि सायण, महीधरादि भाष्यकार उस समय में हुए हैं, जिस समय में तन्त्रग्रन्थ बने हैं। जिन से हिन्दूधर्म्मका रहा सहा रूप भी विकृत हो गया। उक्त विषय में प्रमाण यह है, कि सन् ११७४ ईसवी उड़ीसा में जगन्नाथपुरी का मन्दिर बना, यह बात मन्दिर पर अङ्कित है कि अमुक समय में यह मन्दिर बना उस समय भारत में सर्वत्र तान्त्रिक अश्लीलता का राज्य था उसी समय में उक्त भाष्यबने इस विषय में यह भी प्रमाण है कि सपर्य्यगाच्छुक्रमकाय मव्रणम् यजु० ४०।८ इस मंत्र के भाष्य में महीधरने जीव के सूक्ष्म, स्थूल और लिङ्गशरीर, इन तीनों शरीरोंका वर्णन किया है। और तीनों शरीरों का वर्ण वेदान्त के बहुत नवीनग्रन्थों में पाया जाता है अर्थात् १३ वीं वा १४ वीं शताब्दी से प्रथम के ग्रन्थों में यह नहीं मिलता इस से अनुमान किया, जा सकता है, कि महीधर, सायण से भी नवीन काल में हुए हैं। और सायणाचार्य्य इन से तो कुछ प्राचीन पाये जाते हैं। परन्तु मं० १०। सू० १२९ के भाष्यमें सायाणाचार्यने शुक्तिरजत का दृष्टान्त देकर, इस जगत् को मिथ्या सिद्ध किया है। और ब्रह्म के अनिर्वचनीय होने के दोष को हटाकर माया को अनिर्वचनीय माना है। इस से स्पष्ट सिद्ध है, कि यह भी नवीन समय था। अनुमान के पीछे चलने की क्या आवश्यकता जब सायणाचार्य्य स्वयं राजा बुक्क को महेश्वर का अवतार सिद्ध करते हैं, कि—

यस्यनिःश्वासितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलंजगत्
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थं महेश्वरम् ।
यत्कटाक्षेण तद्रूपं दधद्बुक्कमहीपतिः
आदिशन्माधवाचार्य्यं वेदार्थस्य प्रकाशने ॥

मैं उस महेश्वर को वन्दना करता हूं, जिस के श्वास प्रश्वास स्थानीय वेद हैं। और उसी महादेव के रूप को धारण करके मुझ सायणाचार्य को राजाबुक्क ने कहा, कि तुम वेदार्थ-प्रकाशनामक टीका वेदों पर लिखो यह राजाबुक्क १४ वीं शताब्दी में गोलकुण्डे में हुआ है जो किसी समय विजयनगर की प्रधान राजधानी थी। इस प्रकार सायणाचार्य्य को हुए आज लगभग छः सौ वर्ष हुए और महीधर अपनी भूमिका में यह लिखते हैं, कि मैंने अपनाभाष्य सायण और उवट को देख के बनाया इस प्रकार यह सायण से भी नवीन है। अस्तु कुछ हो इस कथा से हमारा तात्पर्य यह है, कि सायणाचार्य्य भी तान्त्रिक-समय और पौराणिकसमय की गन्ध से निर्गन्ध न था इस लेख से सायणाचार्य्य के पाण्डित्यका तिरस्कार करना हमारा प्रयोजन नहीं। हमारे विचार में सायणाचार्य ने वेदप्रकाश बनाकर वेदमार्गको सर्वसाधारण के लिये सुगम कर दिया। परन्तु यदि सायणाचार्य्य वीररस-प्रधान सूक्तों को क्षुद्र-देवों वा अङ्सोमस्तुति में न लगाते तो आज एक ईश्वरीय साहित्य मनुष्यमात्र की शान्ति और धीरवीरतादि धर्म्मोंका कोश बनकर प्राचीन आर्य्य-धर्म्मावलम्बी-हिन्दूजातिको अभ्युदयशाली अवश्य बनाता अस्तु, मुख्यप्रसङ्ग यह है, कि जब तन्त्रग्रन्थोंका निर्माण हुआ है, उसी समय में सायण हुए इसी कारण सायण महीधरादि टीकाकारों ने वेद में इतिहास और नाना प्रकार के अर्थवाद और अश्लीलवाद वेदों में भर दिये अतः इनकी तान्त्रिक-प्रथा वैदिक प्रथा के अनुकूल नहीं। इस प्रस्तावना से हमारा-तात्पर्य्य सायण और महीधर की प्रभुता के घटाने का नहीं। और न हिन्दूधर्म की एक विराटरूप से बनी हुई संमतिको शिथिल करने का है।

हमारे विचारमें बुद्धके बादके हिन्दुओंने अत्यन्त प्रशंसनीय काम किया

जो वैदिक धर्मके झण्डेके तले न केवल शिखासूत्रधारियोंको किया, किन्तु प्रत्येक-हिन्दूमताभिमानीको अपनी ओर खैंच लिया।

परन्तु इतना अवश्य कहना पड़ता है, कि पौराणिक समयके प्रभावने वेद और उपनिषदोंको बहुत दबा दिया। और उस प्राचीन काशी के औपनिषद-वाद को सर्वथा मिटा दिया। जिसका हम पहिले वर्णन कर आये हैं। इस स्थानमें पुनः इस बातका स्फुट कर देना अत्यन्तोपयोगी प्रतीत होता है कि उस समय के हिन्दुओंने जहां कहीं भी कोई मठ वा मण्डप, कूप वा तड़ाग पाया उसका नाम उसीके आकार पर रखकर उसे अपने शिवार्चनके भावमें ले लिया। उदाहरणके लिये देखो काशीमें मीरघाट और लाहौरी टोलेके मध्यमें एक धर्मकूप-स्थान है। अनुसन्धान करनेसे यह प्रतीत होता है, कि यह स्थान पहिले बौद्धों का था। प्रमाण यह है, कि इस कूपके किनारे पर जो स्थान बनाये गये उनकी गहरीनींव खोदने पर बौद्धोंकी प्रतिमायें निकलीं। इस बातकी साक्षी बाबू माधोप्रसादजी देते हैं, कि हमारे स्थानोंके तलेसे बौद्ध-प्रतिमायें निकलीं।

अब यहां यह विचार करनेकी बात है, कि पौराणिक-धर्मके अनन्तर फिर किसी बौद्धने अपने मन्दिर बनाकर अपनी प्रतिमायें यहां रख दीं यह कथन सर्वथा असम्भव है। क्योंकि इस बातको सब इतिहास वेत्ता जानते हैं, कि इस नई काशीमें कभी भी बौद्धों का प्रभाव नहीं हुआ। अन्य युक्ति यह है, कि जब पुराणोंमें बौद्धधर्म का स्फुट रीतिसे वर्णन है, फिर पौराणिक-काल बुद्धसे पहिले कैसे रक्खा जा सकता है अस्तु।

इस स्थानका नाम बौद्धोंके समयमें धर्मकूप वा निर्वाण-मण्डप भी था। इसका प्रमाण यह है, कि "निर्वाणमण्डपं नाम तत्स्थानं जगतीतले" काशी खण्ड, उत्तरार्द्ध अ० ७९। श्लो० ९६ में यह कथन किया है, कि यह स्थान निर्वाणमण्डप के नामसे प्रसिद्ध था। मालूम होता है, कि यह बहुत ऊँचा स्थान था। और इस पर मण्डप बना कर बौद्धोंने इसका नाम निर्वाण-मण्डप रक्खा। और इसके साथ जो कूप बनाया उसका नाम धर्मकूप रक्खा

जिसको उनकी भाषा में धम्मकूप भी कहा जाता था। जब निःश्रेयस वादी आर्यों का प्रभाव बढ़ गया तब इसका नाम धर्मेश्वर-महादेव हो गया। इसकी कथा काशी खण्ड उत्तरार्द्धके ७९ के अध्यायमें विस्तारपूर्वक है। जिसमें धर्म=यमके साथ सम्बन्ध मिला कर इस स्थानको परमपूज्य और सनातनकालका सिद्ध किया है, जैसे कि "अनेकानीह पीठानि सन्ति काश्यां पदेपदे परं धर्मेश पीठस्य काचिच्छक्तिरनुत्तमा" काशी खण्ड, उत्तरार्द्ध ७९ श्लो० ७। यद्यपि काशी में अनेक स्थान हैं, परन्तु धर्मेश की शक्ति सर्वोपरि है। और इसके निर्वाणके स्थानमें निःश्रेयसको परम धाम माना। जिसप्रकार बौद्धोंके बाह्य-देववादको मिटा कर, अपने देवालय बनाना उस समयके हिन्दुओंका परमकर्त्तव्य था इसी प्रकार बौद्धोंके निर्वाणको मिटा कर निःश्रेयस धाम अर्थात् कल्याणका धाम बनाना भी इनका परमकर्तव्य था। इसी अभिप्रायसे "नैःश्रेयस्याश्रयोधाम तद्याम्यां मण्डपोस्तिमे" का० ख० उ० अ० ७९ श्लो० ५४ में यह कथन किया है कि निःश्रेयसका परमधाम दक्षिण दिशामें यह मेरा मण्डप है। इससे यह भी प्रतीत होता है, कि उस समयकी नईकाशी भी इस स्थानसे पूर्वोत्तरके कोणमें राजघाटके आस पास थी। इसी लिये इस मण्डप को यामी-दक्षिण दिशामें कथन किया है।

मण्डप शब्द हमारे अभिप्राय को यहां बहुत स्पष्ट करता है कि मण्डप नाम सभास्थान का है। जो निर्वाणमण्डप निर्वाणके विचार करनेवाली सभा का नाम बौद्धों का था उसको इन्होने निःश्रेयस मण्डप बना लिया। इसीप्रकार ज्ञानवापी आदि अन्य स्थलोंकी भी विशेष व्याख्या है जो अनुपयुक्त समझ कर यहां छोड़दी गयी। सार यह कि इस धर्मेश वा धर्मेश्वर को वेदोपनिषदों के सिद्धान्तके साथ मिलानेके लिये उस समय के पण्डितों ने यह सोचा, कि जबतक परब्रह्मको कोई आकार न दिया जाय तबतक धर्मेश्वर साकार कैसे बने? इस लिये उन्होंने ऐसे श्लोकों की रचना की, कि "यमसर्वगतस्यापि प्रासादोयं परात्परम्। परंब्रह्म यदाम्नातं परमोपनिषद्गिरा॥ अमूर्तंतदहंमूर्तो भूयां भक्तकृपावशात्। काशीखण्ड उत्तरार्द्ध अ० ७९ श्लोक ९१। जिसको उपनिषदों

की वाणी सर्वगत और अमूर्त कथन करती है, वही मैं भक्तों पर कृपा करनेके लिये मूर्तरूपको धारण करता हूं। अस्तु कुछ भी हो इस स्थानमें उपनिषदोंकी-वाणीको भुलाकर उस उपनिषद् नादको सर्वथा भुला दिया, जो प्राचीनकाशी-के मन्दिरों में इस प्रकार दिव्यध्वनि कर रहा था कि-"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभि संविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्म" तै० ३।१।"सर्वं खल्विदं ब्रह्म" छां० ३।१४।१। ब्रह्मैवेदं विश्वम्" मु० २।२।११। "सत्यं ह्येव ब्रह्म" बृ० ५।४।१। "ब्रह्मवादिनो हि प्रवदन्ति नित्यम् श्वे० ३।२१। तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः" अथ० १०।८।४।१ "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" तै० २।१। प्रज्ञानं ब्रह्म" ऐ० ३।१। विज्ञानमानन्दं ब्रह्म" बृ० ३।९।२८। तपसा चीयते ब्रह्म मु० १।१।८। ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति" मु० ३।२।९ हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम्" मु० २।९। यदा-पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम् मु० ३।१।३। ब्रह्मविदां वरिष्ठः" मु० ३।१।४। स वेदैतत्परमं ब्रह्मधाम" मु० ३।२।१। "क्रियावन्तः श्रोत्रिया ब्रह्मनिष्ठाः" मु० ३।२।१०। "ब्रह्मिष्ठोऽसीति तस्मात्त्वाऽहं ब्रवीमि" प्र० ३।२। "ब्रह्मविदाप्नोति परम्" तै० ब्र० १। "तदेव ब्रह्मत्वं विद्धि नेदं-यदिदमुपासते" के० १।४। आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कदाचन" तै० २।४। स वा एष महानज आत्माऽजरोऽमरोऽमृतोऽभयो ब्रह्म" बृ० ४।४।२५।

उक्त ब्रह्मनाद के स्थान में आज पौराणिक-साहित्य की ही श्रुति श्रोत्रिय ब्रह्मनेष्ठपद को पादाक्रान्त कर रही है। इस अवस्था में आर्य्यजाति का यह कर्तव्य है, कि वह अपने वेदरूप आत्मा और औपनिषद ज्ञानरूप मन को समाहित करें। क्योंकि जिस पुरुष के आत्मा और मन सावधान नहीं वह मनस्वी और ब्रह्मवर्चस्वी तथा तेजस्वी कदापि नहीं बन सकता।

इसी अभिप्राय से कृष्णजी यह कहते हैं, कि "इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मिचेतना" कि सब इन्द्रियों में मैं मनरूप शक्ति हूं। और मृतकवस्तु अर्थात् जड़वस्तुओं में मैं चेतनाशक्ति हूं। उक्त मन और चेतनाशक्ति यदि

आर्य्यजाति में डालना चाहते हो, तो उपनिषद् ज्ञानरूपीमन और वेदरूपआत्मा इस आर्य्यजाति को प्रदान करो। क्योंकि इस बात को विदेशी और भिन्नधर्म्माव-लम्बी विद्वान् भी शोकग्रस्त होकर अनुभव करते हैं, कि जो हिन्दुसमाज अपने प्राचीन-धर्म्म से नितान्त हट गया है, और उसने अपने वीरता प्रधान वैदिकसूक्तों के स्थान में लीलाप्रधान कथाओं को मुख्य रक्खा है, वही इनके समाज की अत्यन्त हानि का कारण हुआ। इस अवस्था में प्राचीन-वैदिक धर्म्म का वेदों के सच्चे अर्थ करके पुनरुज्जीवित करना हमारा परमधर्म्म है। यहां हम आर्य्य जाति का प्रतिनिधि हिन्दूशब्द मानकर यह कहते हैं कि, यद्यपि हिन्दूजाति के जातित्व के शरीर को पौराणिक धर्म्म ने बौद्ध-धर्म्म को पराजितकरके परिपुष्ट तथा गूढ़जत्रु और सुडौल बना दिया, जैसा कि हम पहले भी वर्णन कर आए हैं, तथापि वेदरूपी आत्मा और उपनिषद् ज्ञानरूपमनको संस्कृत करना आर्य्यमात्र का परम कर्त्तव्य है। इस अभिप्राय से वैदिक-समय से लेकर आज तक का संक्षिप्त धार्म्मिक इतिहास लिखकर इस प्रस्तावना में वैदिक-साहित्य का माहात्म्य किया गया। किसी और अभिप्राय से नहीं।

इस विषय का विशेष वर्णन हम दशममण्डल की भूमिका में करेंगे।

सोमेश्वरो जगद्योनिर्नवमेऽस्मिन् निरूपितः।
मुनिना वैदिकं तत्त्वं दशमे व्याकरिष्यते ॥१॥

* इति श्रीमदार्य्यमुनिनोपनिबद्धा वेदप्रस्तावना समाप्ता *

संवत् १९७६ चैत्रशुक्ला दशमी,

काशी।

ओ३म्

ऋग्वेदभाष्यकी विषयसूची ।

पृ०	पंक्ति	विषय
२	५	परमात्माके सोमादि अनन्तनामों का वर्णन ।
६	१३	उषाके अलङ्कार से शुद्धि का वर्णन ।
१३	५	परमात्माके गुणकर्म स्वभावोंका वर्णन ।
१४	५	परमात्माके निराकार रूपका वर्णन ।
१७	१२	वेदोंमें विधिवादका वर्णन ।
२३	११	ऐश्वर्यके पात्रों का वर्णन ।
२९	४	निःश्रेयस का वर्णन ।
३४	१५	सोम नामक परमात्माके जगदुत्पादक होनेका वर्णन ।
४४	१	इन्द्रके विशेषार्थ का वर्णन ।
४६	१२	ज्ञान यज्ञका वर्णन ।
५६	१८	परमात्माके विभूति योग का वर्णन ।
५५	१८	ब्रह्मशब्दके अनेकार्थवाची होने का वर्णन ।
६२	१५	परमात्माकी सर्वव्यापकताका वर्णन ।
७३	१५	परमात्माकी विभूतिरूप जीव और प्रकृति का वर्णन ।
७८	११	अज्ञान की शत्रुता का वर्णन ।
८२	१३	कर्मयोगीके कर्तव्यका वर्णन ।
८५	१९	उषाकालके ऐश्वर्य का वर्णन ।
९०	५	उपासनाके प्रकार का वर्णन ।
९९	२२	सोमोगौरी अधिश्रितः के वैदिक अर्थोका वर्णन ।
१०५	२०	वैदिकधर्म की प्रवृत्ति की प्रार्थना का वर्णन ।
११७	१५	सात्त्विकभाव का वर्णन ।

पृ०	पंक्ति	विषय
१३४	१५	परमात्मनिष्ठ विश्वास का वर्णन ।
१४२	२	परमात्मा की विभूतियों का वर्णन ।
१५२	९	सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन ।
१६८	१४	दिव्यज्योतियों की शीघ्रगतियों का वर्णन और उनकी दुर्गमता में वेद का प्रमाण ।
१७१	७	अनाचारी और दुष्टों के दण्डदाता परमात्मा के रुद्र रूप का वर्णन।
१७९	९	मन वाणी तथा शरीर की शुद्धि का वर्णन ।
१८४	१०	पाप के त्याग का उपाय ।
१८७	१	मुक्तिधाम का वर्णन ।
१८९	९	प्रार्थना के फल का विचार ।
१९९	३	परमात्मा के साक्षात्कार के लिये संयम योगका वर्णन ।
२०९	३	परमात्मा का सूर्य्यादिकों के प्रकाशिकरूप से वर्णन ।
२२०	१८	शूरबीर के गुणों का वर्णन ।
२२६	१	उपासना के भेदों का वर्णन ।
२३१	११	ब्रह्मानन्द का वर्णन ।
२४०	१८	श्रवण मननादि साधनों का वर्णन ।
२६१	४	वेदके अन्यथा अर्थ करने वाले भाष्यकारों का खण्डन ।
२९१	१९	परमात्माके न्याय का निरूपण ।
३२१	१६	सदुपदेशके महत्व का वर्णन ।
३३५	२१	सदाचार का वर्णन ।
३४९	१६	परमात्मा के विभुत्व का वर्णन ।
३७५	२०	सेनापति और प्रजाके सम्बन्ध का वर्णन ।
४२६	११	परमात्माके स्वतः प्रकाशत्व का वर्णन ।
४४३	१०	ध्यानयोग का वर्णन ।
४७४	१६	परमात्मा के सर्वाधिकरणत्वका वर्णन ।
४८०	९	परमात्मा के सख्यभाव का वर्णन ।
४८५	८	अज्ञान की निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्तिका वर्णन ।

पृ०	पंक्ति	विषय
४८९	१०	प्राणायाम का वर्णन ।
४९६	१७	कर्मयोग और ज्ञानयोग द्वारा सदाचार का वर्णन ।
५०९	१७	परमात्मा से पवित्रता लाभ करने का उपाय ।
५१४	१६	ईश्वर उपासकों के सद्गुणों का वर्णन ।
५२८	१४	शान्तिभाव से परमात्मा के नियमानुकूल चलने का उपदेश ।
५२९	१६	निष्काम यज्ञोंका वर्णन ।
५३७	८	प्रकृति रूपी कारण का वर्णन ।
५४५	८	इस तनू को ब्राह्मी अर्थात् ब्रह्मसम्बन्धिनी बनाने का उपदेश ।
५५३	१५	ज्ञान तथा कर्मेन्द्रियों के संशोधन का प्रकार ।
५६०	१६	परमात्मा की उपासना का प्रकार ।
५६२	३	कर्मयोग के फल का निरूपण ।
५६५	८	कर्मयोगी के उद्योग का वर्णन ।
५६८	१	अव्याहतगति विषयक प्रार्थना का वर्णन ।
५७९	१६	सत्य की रक्षा का वर्णन ।
५८०	३	कर्म्मयोगी की दृढ़ता का वर्णन ।
५८२	२	अभ्युदय को लाभ करने वाले पुरुषों के लक्षण ।
५८५	१८	सन्मार्ग की प्राप्ति के साधक यज्ञों का वर्णन ।
५८८	१०	नानाप्रकार के ऐश्वर्य्यों का वर्णन ।
५९०	३	देवताभाव का फल अभ्युदय और दैत्यभाव का फलदण्ड ।
५९१	६	सात्विक भाववाले अन्तःकरण का वर्णन ।
५९६	१५	अन्तःकरण की स्वच्छता का वर्णन ।
५९८	१८	परमात्मा विषयक अटल विश्वास और उसके साधक वेदोपनिषद् वाक्यों का निरूपण ।
५९९	१०	ब्रह्मशब्द के अर्थपर विचार ।
६००	१	लौकिक दृष्टि से वेदार्थ करनेवाले भाष्यकारों का खण्डन और वेद से वेदार्थ करने का प्रदर्शन ।

ओ३म्

अथ नवमं मण्डलम् ।

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑सुव ।
यद्भ॒द्रं तन्न॒ आसु॑व ॥ यजु॰ ३० । ३ ।

दयानन्दः समाख्यातो, यस्यान्ते च सरस्वती ।
एतन्नामान्वितः स्वामी, दयानन्दः सरस्वती ॥ १ ॥
सेतुर्लोकव्यवस्थाया, नौरासीद्वेदवारिधेः ।
वेदस्य स्थापना तेन, ह्यकारि भूतले पुनः ॥ २ ॥
एकषष्ठितमे सूक्ते, नवमे मण्डले तथा ।
द्वितीयमन्त्रं सम्प्राप्य, तद्भाष्यमन्ततां गतम् ॥ ३ ॥
इत्यालोच्य प्रखिन्नेन, मयाऽऽर्य्यमुनिनाऽधुना ।
शेषं विधास्यते भाष्यं, स्वामिमार्गानुगामिना ॥ ४ ॥
न्यायवैशेषिकाद्यं वै शास्त्रषट्कं पुरा किल ।
व्याख्यातं मुनिना येन भाष्यं तेनैव तन्यते ॥ ५ ॥

अथाऽस्मिन्मण्डले सौम्यस्वभावस्य परमात्मनो गुणा वर्ण्यन्तेः—
अब इस मण्डल में सौम्यस्वभाव परमात्मा के गुणों का वर्णन करते हैं:-

अथ दशर्चस्य प्रथमस्य सूक्तस्य—

॥१॥ १—१० मधुच्छन्दा ऋषिः । पवमानः सोमो देवता ।
छन्दः—१, २, ६ गायत्री । ३, ७—१० निचृद्
गायत्री । ४, ५ विराड् गायत्री ।
षड्जः स्वरः ॥

स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया ।
इन्द्राय पातवे सुतः ॥ १ ॥

स्वादिष्ठया । मदिष्ठया । पवस्व । सोम । धारया । इन्द्राय । पातवे । सुतः ॥ १ ॥

पदार्थः—(सोम) हे सौम्यस्वभाव परमात्मन्! (स्वादिष्ठया) आनन्दवर्द्धकेन (मदिष्ठया) आह्लादजनकेन (धारया) स्वभावेन नः (पवस्व) पवित्रान् कुरु यः (इन्द्राय) ऐश्वर्य्यस्य (पातवे) वर्द्धनाय (सुतः) प्रसिद्धः ॥

पदार्थ—(सोम) हे सौम्यस्वभाव परमात्मन्, (स्वादिष्ठया) आनन्द के बढ़ाने वाले (मादिष्ठया धारया) आह्लाद के वर्द्धक स्वभाव से आप हमें (पवस्व) पवित्र करें जो स्वभाव, आप का (इन्द्राय) ऐश्वर्य्य के (पातवे) बढ़ाने के लिये (सुतः) प्रसिद्ध है ॥

भावार्थ—यों तो परमात्मा के अपहतपाप्मादि अनन्त गुण हैं, पर शान्त स्वभाव परमात्मा के शान्ति के देनेवाले सौम्य स्वभावादि ही हैं, परमात्मा के सौम्यस्वभाव के धारण करने से पुरुष शान्तिसम्पन्न हो जाता है। फिर उसको अपने स्वरूप में एक प्रकार का आनन्द प्रतीत होने लगता है। जिससे एक प्रकार का हर्ष उत्पन्न होता है। मद यहां हर्ष का नाम है किसी मादक द्रव्य का नहीं। कई एक टीकाकारों ने इस मण्डल को मदकारक सोम द्रव्य में लगाया है वह भूल की है क्योंकि इस मण्डल में परमात्मा के गुण, कर्म्म, स्वभावों का वर्णन है किसी द्रव्य विशेष का नहीं ॥१॥

रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहतम् ।
द्रुणा सधस्थमासदत् ॥ २ ॥

रक्षःऽहा । विश्वऽचर्षणिः । अभि । योनिम् । अयःऽहतम् । द्रुणा । सधऽस्थम् । आ । असदत् ॥ २ ॥

पदार्थः—हे परमात्मन्, भवान् (रक्षोहा) रक्षसां हन्ता, (विश्वचर्षणिः) समस्तस्य जगतो द्रष्टा, (अभियोनिम्) सर्वस्योत्पत्तिस्थानम् (अयोऽहतम्) शस्त्रास्त्रैरच्छेद्यः, (द्रुणा) गतिशीलः (सधस्थम्) मध्यस्थरूपेण सर्वत्र (आसदत्) स्थिरश्च अस्ति ॥

पदार्थ—हे परमात्मन्, आप (रक्षोहा) राक्षसों के हनन करनेवाले हो, (विश्वचर्षणिः) सम्पूर्ण विश्वके द्रष्टा हो, (अभियोनिम्) सबके उत्पत्तिस्थान हो, (अयोऽहतम्) किसी शस्त्र अस्त्र से छेदन नहीं किये जाते (द्रुणा) गतिशील और (सधस्थं) मध्यस्थरुपसे सर्वत्र (आसदत्) स्थिर हो।

भावार्थ—हे परमात्मन्! आप सर्वत्र परिपूर्ण और विश्व के द्रष्टा हो तथा पापकारी हिंसक राक्षसों के हन्ता हो. आप हमारे हृदय में आकर विराजमान हों ॥२॥

वरिवोधातमो भव मंहिष्ठो वृत्रहन्तमः ।
पर्षि राधो मघोनाम् ॥ ३ ॥

वरिवःऽधातमः । भव । मंहिष्ठः । वृत्रहन्ऽतमः । पर्षि । राधः । मघोनाम् ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे परमात्मन्, त्वं (वरिवोधातमः) समस्तधनानां दाता (भव) भव, वरिव इति धननामसु पठितम् निघण्टौ ॥२।१०॥ (मंहिष्ठः) सर्वोपरिदाता भव (वृत्रहन्तमः) निखिलाज्ञानानां

नाशको भव किंच (मघोनाम्) सर्वैश्वर्य्यपूरकं (राधः) धनम् (पर्षि) अस्मभ्यं देहि ॥

पदार्थ—(वरिवोधातमः) हे परमात्मन् ! आप सम्पूर्ण धनों के देने वाले (भव) हो वरिव इति धननामसु पठितम्, नि २।१० (मंहिष्ठः) सर्वोपरिदाता हो (वृत्रहन्तमः) सब प्रकार के अज्ञानों के नाशक हो (मघोनाम्) सब प्रकार के ऐश्वर्यों के पूर्ण करनेवाले हो (राधः) धनों को (पर्षि) हमको दें ।

भावार्थ—परमात्मा से सब ऐश्वर्यों की प्राप्ति होती है, और परमात्माही अज्ञान से बचाकर मनुष्य को सन्मार्ग में लेजाता है, इसलिये सर्वोपरि देव परमात्मा से ऐश्वर्य की प्रार्थना करनी चाहिये ॥३॥

अभ्यर्ष महानां देवानां वीतिमन्धसा ।
अभि वाजमुत श्रवः ॥ ४ ॥

अभि । अर्ष । महानाम् । देवानाम् । वीतिम् । अन्धसा ।
अभि । वाजम् । उत । श्रवः ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! त्वम् (महानां) महताम् (देवानाम्) विदुषाम (वीतिम्) पदवीम् प्रापयितासि (अन्धसा) धनाद्यैश्वर्य्येण (अभि, वाजम्) सर्वविधं बलं (अभ्यर्ष) देहि (उत) अथच (श्रवः) अन्नादिकं प्रापय ॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! आप (महानां) बड़े (देवानाम्) विद्वानों के (वीतिम्) पदवी को प्राप्त कराने वाले हैं और (अन्धसा) धनादि ऐश्वर्य से (अभि, वाजं) सब प्रकार के बल को (अभ्यर्ष) प्राप्त करायें (उत) और (श्रवः) अन्नादि ऐश्वर्य को प्राप्त करायें ।

भावार्थ—परमात्मा की कृपा से मनुष्य देवपदवी को प्राप्त होता है, और परमात्मा की कृपा से सब प्रकार का बल मिलता है, इसलिये मनुष्य को चाहिये की वह एकमात्र परमात्मा की शरण को प्राप्त हो ॥४॥

त्वामच्छा चरामसि तदिदर्थं दिवेदिवे ।
इन्दो त्वे न आशसः ॥ ५ ॥ १६ ॥

त्वाम् । अच्छ । चरामसि । तत् । इत् । अर्थम् । दिवेऽदिवे । इन्दो इति । त्वे इति । नः । आऽशसः ॥ ५ ॥

पदार्थः—(इन्दो) हे परमात्मन् ! (त्वां) भवन्तं (अच्छ) अक्लेशेन (चरामसि) वयं प्राप्नुयाम किंच (दिवे, दिवे) प्रतिदिनं (तत्, त्वे अर्थे) त्वदर्थम (इत्) एव (नः) अस्माकं जीवनं स्यात् इत्येव (आशसः) प्रार्थनाः सन्ति ॥

पदार्थ—(इन्दो) हे परमात्मन् ! (त्वां) तुमको (अच्छ) भली भांति (चरामसि) हम लोग प्राप्त हों और (दिवेदिवे) प्रतिदिन हे परमात्मन् ! (तत्, त्वेअर्थे) आपके लिये (इत्) ही (नः) हमारा जीवन हो यही (नः) हमारी (आशसः) प्रार्थना है ।

भावार्थ—जो पुरुष प्रतिदिन निष्काम कर्म्म करते हुए अपने जीवनको व्यतीत करते हैं, और ईश्वर से भिन्न किसी अन्य देव की उपासना नहीं करते वे परमात्मस्वरूपको प्राप्त होते हैं ॥५॥१६॥

अथ रूपकालङ्कारेण श्रद्धां सूर्य्यस्य पुत्रीरूपेण वर्णयति ।

अब रूपकालङ्कार से श्रद्धा को सूर्य्य की पुत्रीरूप से वर्णन करते हैं:—

पुनाति ते परिस्रुतं सोमं सूर्यस्य दुहिता ।
वारेण शश्वता तना ॥ ६ ॥

पुनाति । ते । परिऽस्रुतम् । सोमम् । सूर्यस्य । दुहिता ।
वारेण । शश्वता । तना ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (ते) तव (परिस्रुतं) सर्वत्र विस्तृतप्रभावं (सोमं) सौम्यस्वभावं (सूर्य्यस्य, दुहिता) सूर्य्यस्य पुत्री (पुनाति) पवित्रयति (वारेण) बाल्यादारभ्य (शश्वता) निरन्तरं (तना) शरीरेण पुनाति ॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (ते) तुम्हारे (परिस्रुतं) जिसका सर्वत्र प्रभाव फैल रहा है ऐसे (सोमं) सौम्यस्वभाव को (सूर्य्यस्य, दुहिता) सूर्य्य की पुत्री (पुनाति) पवित्र करती है, और (वारेण) बाल्यपन से (शश्वता) निरन्तर (तना) शरीर से पवित्र करती है ।

भावार्थ—जो पुरुष श्रद्धाद्वारा ईश्वर को प्राप्त होता है वह मानों प्रकाश की पुत्रीद्वारा अपने सौम्यस्वभाव को बनाता है । जिस प्रकार सूर्य्य की पुत्री उषा मनुष्यों के हृदय में आह्लाद उत्पन्न करती है इसी प्रकार जिन मनुष्यों के हृदय में श्रद्धा देवी का निवास है वे लोग उषा देवी के समान सब के आह्लादजनक सौम्यस्वभाव को उत्पन्न करते हैं ।

कई एक लोग इसके ये अर्थ करते हैं कि सूर्य्य की पुत्री कोई व्यक्तिविशेष श्रद्धा थी यह अर्थ वेद के आशय से सर्वथा विरुद्ध है, क्योंकि उसका सौम्यस्वभाव के साथ क्या सम्बन्ध ? यहां स्वभाव के साथ उसी श्रद्धा देवी का सम्बन्ध है जो मनुष्य के शील को उत्तम बनाती है ॥६॥

तमीमण्वीः समर्य आ गृभ्णन्ति योषणो दश।
स्वसारः पार्ये दिवि॥ ७॥

तम्। ई। अण्वीः। सऽमर्ये। आ। गृभ्णन्ति। योषणः।
दश। स्वसारः। पार्ये। दिवि॥ ७॥

पदार्थः—(तं) तं पुरुषं (समर्ये) ज्ञानयज्ञे (आ, गृभ्णन्ति) सुष्ठु गृह्णन्ति (दश) दशसंख्याकाः (स्वसारः) स्वयंगतिशीलाः (योषणः) वृत्तयो याः (अण्वीः) अतिसूक्ष्माः सन्ति। (पार्ये, दिवि) प्रकाशरूपे ज्ञानभावे दश धर्मस्वरूपाणि तं प्राप्नुवन्ति॥

पदार्थ—(तं) उस पुरुष को (समर्ये) ज्ञानयज्ञ में (आ) भली प्रकार (गृभ्णन्ति) ग्रहण करती हैं (दश) दश संख्यावाली (स्वसारः) स्वयंगतिशील (योषणः) वृत्तियें जो (अण्वीः) अति सूक्ष्म हैं (पार्ये, दिवि) प्रकाशरूप ज्ञान के भाव में दश धर्म्म के स्वरूप उसे आकर प्राप्त होते हैं॥

भावार्थ—जो पुरुष श्रद्धा के भावों से युक्त होता है उसे धृति, क्षमा, दम, स्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य, और अक्रोध, ये धर्म्म के दश रूप आकर प्राप्त होते हैं। तात्पर्य्य यह है कि वेद, शास्त्र और ईश्वर पर श्रद्धा रखने वाले पुरुष को ही धार्मिक भाव आकर प्राप्त होते हैं अन्य को नहीं॥७॥

तमीं हिन्वन्त्यग्रुवो धमन्ति बाकुरं दृतिम्।
त्रिधातु वारणं मधु॥ ८॥

तम् । ईं । हिन्वन्ति । अग्रुवः । धमन्ति । बाकुरम् ।
दृतिम् । त्रिऽधातु । वारणम् । मधु ॥ ८ ॥

पदार्थः—(तं) तं पुरुषं (अग्रुवः) उग्रगतयः (हिन्वन्ति) प्रेरयन्ति किंच (बाकुरं) भासमानं (दृतिं) शरीरं स पुरुषः (धमन्ति) प्राप्नोति यत्र (त्रिधातु) प्रकारत्रयेण (वारणं) अपरेषां वारकं (मधु) मधुमयं शरीरं संगच्छते ॥

पदार्थ—(तं) उस पुरुष को (अग्रुवः) उग्रगतियें (हिन्वन्ति) प्रेरणा करती हैं और (बाकुरं) भासमान (दृतिं) शरीर को वह पुरुष प्राप्त होता है जिसमें (त्रिधातु) तीन प्रकार से (वारणं) दूसरों का वारण करने वाला (मधु) मधुमय शरीर मिलता है।

भावार्थ—जो पुरुष श्रद्धा के भाव रखने वाले होते हैं, उनके सूक्ष्म, स्थूल और कारण तीनों प्रकार के शरीर दृढ़ और शत्रुओं के वारण करने वाले होते हैं। अर्थात् शारीरिक, आत्मिक, और सामाजिक तीनों प्रकार के बल उन पुरुषों को आकर प्राप्त होते हैं जो श्रद्धा का भाव रखते हैं ॥८॥

अभीऽममघ्न्या उत श्रीणन्ति धेनवः शिशुम् ।
सोममिन्द्राय पातवे ॥ ९ ॥

अभि । इमम् । अघ्न्याः । उत । श्रीणन्ति । धेनवः ।
शिशुम् । सोमम् । इन्द्राय । पातवे ॥ ९ ॥

पदार्थः—(इमं) अमुं (सोमं) सौम्यस्वभावं श्रद्धालुं पुरुषं (शिशुं) शैशव एव (अभि) सर्वप्रकारेण (अघ्न्याः)

अहिंसनीयाः (धेनवः) गावः (श्रीणन्ति) तर्पयन्ति (इन्द्राय) ऐश्वर्य्यं (पातवे) वर्द्धयितुम् (उत) अथवा उक्तश्रद्धालुं पुरुषं अहिंसनीयाः वाचः ऐश्वर्य्यप्राप्तये संस्कृतं कुर्वन्ति ॥

पदार्थ—(इमं) उस (सोमं) सौम्यस्वभाव वाले श्रद्धालु पुरुष को (शिशुं) कुमारावस्था में ही (अभि) सब प्रकार से (अघ्न्याः) अहिंसनीय (धेनवः) गौवें (श्रीणन्ति) तृप्त करती हैं (इन्द्राय) ऐश्वर्य्य की (पातवे) वृद्धि के लिये । (उत) अथवा उक्त श्रद्धालु पुरुष को अहिंसनीय वाणियें ऐश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये संस्कृत करती हैं (वाचं धेनुमुपासीत) शतप०

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते हैं कि जो पुरुष श्रद्धा के भाव वाले हैं उनको गौ आदि ऐश्वर्य्य और सदुपदेशरूपी पवित्र वाणियें उनकी रक्षा के लिये सदा उद्यत रहती हैं । इस मन्त्र में गौ को (अघ्न्या) = अहिंसनीय माना गया है; इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि गोमेध आदि यज्ञों के अर्थ किसी हिंसाप्रधान यज्ञ के नहीं किन्तु गावः इन्द्रियाणि, मेध्यन्ते यस्मिन् स गोमेधः, जिसमें ज्ञान-यज्ञद्वारा इन्द्रियें पवित्र की जायँ उसका नाम गोमेध है । इसी प्रकार अश्वमेध, नरमेध, आदि यज्ञ भी ज्ञानप्रधान यज्ञों के ही बोधक हैं, हिंसारूप यज्ञों के बोधक नहीं ॥९॥

अस्येदिन्द्रो मदेष्वा विश्वा वृत्राणि जिघ्नते ।
शूरो मघा च मंहते ॥ १० ॥ १७ ॥

अस्य । इत् । इन्द्रः । मदेषु । आ । विश्वा । वृत्राणि । जिघ्नते । शूरः । मघा । च । मंहते ॥ १० ॥

पदार्थः—(इन्द्रः) विज्ञानी पुरुषः (अस्येत्) अनेनैव भावेन (विश्वा) सर्वाणि (वृत्राणि) अज्ञानानि (आ, जिघ्नते) नाशयति (च) किंच अनेनैव श्रद्धाभावेन (शूरः) वीरपुरुषः (मदे) स्वकीयवीर्य्यमदे दृप्तः (मघा) ऐश्वर्य्यं (मंहते) प्राप्नोति ॥

पदार्थ—(इन्द्रः) विज्ञानी पुरुष (अस्येत्) इसी भाव से (विश्वा) सम्पूर्ण (वृत्राणि) अज्ञानों को (जिघ्नते) नाशकरता है (च) और इसी श्रद्धा के भाव से (शूरः) शूरवीर (मदेषु) अपनी वीरता के मदमें मस्त होकर (मघा) ऐश्वर्य्यों को (मंहते) प्राप्त होता है ।

भावार्थ—श्रद्धा के भाव से ही विज्ञानी पुरुष अज्ञानरूपी शत्रुओं का नाश करता है और श्रद्धा के भाव से ही वीर पुरुष युद्ध में शत्रुओं को जीतता है, श्रद्धा के भाव से ही ऐश्वर्य को प्राप्त होता है ॥१०॥

इति प्रथमं सूक्तं सप्तदशो वर्गश्च समाप्तः ।

पहला सूक्त, और सत्रहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ सौम्यस्वभावयुक्तं परमात्मानं वर्णयति ।

अब सौम्यस्वभावयुक्त परमात्मा का वर्णन करते हैं ।

अथ दशर्चस्य द्वितीयस्य सूक्तस्य—

१—१० मेधातिथिर्ऋषिः । पवमानः सोमो देवता । छन्दः— १, ४, ६ निचृद्गायत्री । २, ३, ५, ७—९ गायत्री । १० विराड् गायत्री । षड्जः स्वरः ॥

पवस्व देववीरति पवित्रं सोम रंह्या ।
इन्द्रमिन्दो वृषा विश ॥ १ ॥

पर्वस्व । देवऽवीः । अति । पवित्रम् । सोम । रंह्या ।
इन्द्रम् । इन्दो इति । वृषा । आ । विश ॥ १ ॥

पदार्थः—(सोम) हे सौम्यस्वभावयुक्त ! (देववीः) दिव्यगुणयुक्त परमात्मन् ! त्वं (पवस्व) अस्मान् पवित्रान् कुरु किंच (इन्दो) हे ऐश्वर्य्ययुक्त परमात्मन् ! भवान् (इन्द्रं) ऐश्वर्य्यं प्रापयतु तथा (वृषा) हे आनन्दवर्धक ! त्वं (रंह्या) वेगेन (विश) अस्मद्धृदयं विश (पवित्रं) पवित्रान् कुरु तथा (अति) अवश्यं रक्ष ॥

पदार्थ—(सोम) हे सौम्यस्वभाव ! और (देववीः) दिव्य-गुणयुक्त परमात्मन् ! आप (पवस्व) हमें पवित्र करें और (इन्दो) हे ऐश्वर्य्ययुक्त परमात्मन् ! आप (रंह्या) शीघ्र ही (विश) हमारे हृदय में प्रवेश करें और (पवित्रं) पवित्र तथा (अति) अवश्य रक्षा करें ।

भावार्थ—परमात्मा की कृपा से ही पवित्रता प्राप्त होती है और परमात्मा की कृपा से ही पुरुष सब प्रकार के ऐश्वर्य्य से सम्पन्न होता है । जिस पुरुष के मन में परमात्मदेव का आविर्भाव होता है वह सौम्यस्वभावयुक्त होकर कल्याण को प्राप्त होता है ॥ १ ॥

आ वच्यस्व महि प्सरो वृषेन्दो द्युम्नवत्तमः ।
आ योनिं धर्णसिः सदः ॥ २ ॥

आ । वच्यस्व । महि । प्सरः । वृषा । इन्दो इति । द्युम्नवत्ऽतमः । आ । योनिम् । धर्णसिः । सदः ॥ २ ॥

पदार्थः—(वृषा, इन्दो) हे सर्वमनोरथपूरक ! (द्युम्न-

वत्तमः) यशस्विन् (महि) महन् परमात्मन्, त्वं मह्यं (आ) व्यापकं (पसरः) ज्ञानं (वच्यस्व) उपदिश यतो भवान् (सदः) सद्विज्ञानं (योनिं) संसारस्य कारणभूतां प्रकृतिं च (आ) सर्वत्र (धर्णसिः) धृतवानस्ति ॥

पदार्थ—(वृषेन्दो) हे सब कामनाओं के पूर्ण करने वाले (द्युम्नवत्तमः) यशस्वी (महि) महान् परमात्मन् ! आप हमें (आ) सर्वव्यापी (पसरः) ज्ञान का (वच्यस्व) उपदेश करें क्योंकि आप (सदः) सद्विज्ञान को (योनिं) संसार के कारणभूत प्रकृति को (आ) सब ओर से (धर्णसिः) धारण किये हुए हैं ॥

भावार्थ—परमात्मा कोटानकोटिब्रह्माण्डों का आधार है, उसी के शासन में द्युलोक, भूलोक, स्वर्लोक इत्यादि लोकलोकान्तर परिभ्रमण करते हैं, वही इस चराचर ब्रह्माण्ड का आधार है। मनुष्य को उसी परमात्मा की उपासना करनी चाहिये ॥ २ ॥

अधुक्षत प्रियं मधु धारा सुतस्य वेधसः ।
अपो वसिष्ट सुक्रतुः ॥ ३ ॥

अधुक्षत । प्रियम् । मधु । धारा । सुतस्य । वेधसः । अपः । वसिष्ट । सुऽक्रतुः ॥ ३ ॥

पदार्थः—स परमात्मा (अपः) स्वकीयगुणकर्म्मस्वभावैः (वसिष्ट) सर्वान् वशे करोति सः (सुक्रतुः) सत्कर्मास्ति (सुतस्य, वेधसः) इष्टस्य पदार्थस्य दाता च (मधु, धारा) अमृतवर्षैः (प्रियं) प्रियवस्तुभिश्च (अधुक्षत) परिपूर्णं करोति ॥

पदार्थ—वह परमात्मा (अपः) अपने गुण, कर्म्म, स्वभाव से

(वसिष्ठ) सब को अपने वशीभूत कर रहा है वह (सुक्रतुः) सत्कर्म्मों वाला है (सुतस्य, वेधसः) अभिलषित पदार्थों का देने वाला है और (मधु, धारा) अमृत की वृष्टिओं से और (प्रियं) प्रिय वस्तुओं से (अधुक्षत) परिपूर्ण करने वाला है ।

भावार्थ—परमात्मा के गुण, कर्म्म, स्वभाव ऐसे हैं कि जिस से एकमात्र परमात्मा ही सुकर्म्मा कहा जा सकता है, अर्थात् परमात्मा के ज्ञानादि गुण और सृष्टि के रचनादि कर्म्म तथा अचल, नित्य, ध्रुवादि स्वभाव सदा एक रस हैं इसी अभिप्राय से उपनिषदों में यह कथन किया है कि "न तस्य कार्य्यं करणञ्च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते । परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ॥" श्वे० ६।८॥ न उस से मट्टी के घट के समान कोई कार्य्य उत्पन्न होता है और न वह मट्टी के समान अन्य किसी पदार्थ का कारण है किन्तु वह अपनी स्वाभाविक शक्तियों से इस संसार की रचना करता हुआ सर्वकर्ता और सर्वनियन्ता कहलाता है ॥ ३ ॥

महान्तं त्वा महीरन्वापो अर्षन्ति सिन्धवः ।
यद्गोभिर्वासयिष्यसे ॥ ४ ॥

महान्तम् । त्वा । महीः । अनु । आपः । अर्षन्ति । सिन्धवः । यत् । गोभिः । वासयिष्यसे ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (महान्तं) सर्वतोमहान्तं (त्वा) भवन्तं (महीः) पृथिवी (आपः) जलं तथा (सिन्धवः) स्यन्दनशीलाः पदार्थाः (अर्षन्ति) आश्रयन्ति (यत्) यतस्त्वं (गोभिः) स्वशक्तिभिः सर्वं (वासयिष्यसे) नियमयसि ॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (महान्तं) सब से बड़े (त्वा) तुमको (महीः) पृथिवी और (आपः) जल तथा (सिन्धवः) स्यन्दनशील सब पदार्थ (अर्षति) आश्रय किये हुए हैं (यत्) क्योंकि तुम (गोभिः) अपनी शक्तियों से सब का (वासयिष्यसे) नियमन करते हो ॥

भावार्थ—परमात्मा की शक्ति में पृथिवी, जल, वायु इत्यादि सम्पूर्ण तत्व तथा लोक लोकान्तर परिभ्रमण करते हैं। उसी महतोभूत के आश्रित होकर यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ठहरा हुआ है। इसका वर्णन, "एतस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेवैतद् यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदः" "एतस्य वाक्षरस्यप्रशासने गार्गि सूर्य्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठतः" "भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्य्यः भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः" इत्यादि प्रमाणों द्वारा जिसका ब्राह्मण और उपनिषदों में वर्णन किया गया है उसी पूर्ण पुरुष का वर्णन इस मन्त्र में है। मालूम होता है कि पूर्वोक्त प्रमाण जो परमात्मा को सर्वाधार वर्णन करते हैं वे इसी मन्त्र के आधार पर हैं ॥ ४ ॥

समुद्रो अप्सु मामृजे विष्टम्भो धरुणो दिवः ।
सोमः पवित्रे अस्मयुः ॥ ५ ॥ १८ ॥

समुद्रः । अप्ऽसु । ममृजे । विष्टम्भः । धरुणः । दिवः ।
सोमः । पवित्रे । अस्मऽयुः ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! त्वं (समुद्रः) समुद्ररूपोऽसि "सम्यग् द्रवन्त्यापो यस्मात्स समुद्रः=यस्य शक्त्या जलादिपदार्थजातानि सूक्ष्मतां यान्ति तस्य नाम समुद्रः" एव परमात्मा समुद्रः किंच यः (अप्सु) सूक्ष्मभावेषु (ममृजे) शुद्धसत्तया विराजते तथा यः (विष्टंभः) सर्वस्तम्भनः (दिवः) द्युलोकस्य

(धरुणः) धर्ता (सोमः) सौम्यः (अस्मयुः) सर्वप्रियोऽस्ति सः (पवित्रे) सर्वशुभकार्य्येषु पूज्यः ॥

पदार्थ—हे परमात्मन्! आप (समुद्रः) समुद्ररूप हैं "सम्यग् द्रवन्ति आपो यस्मात्स समुद्रः "जिस की शक्ति से जलादि सब पदार्थ सूक्ष्म भाव को प्राप्त हो जाते हैं उसका नाम समुद्र है इस प्रकार परमात्मा का नाम समुद्र है और (अप्सु) सूक्ष्म पदार्थों में (ममृजे) जो अपनी शुद्ध सत्ता से विराज मान है तथा जो सब का (विष्टम्भः) थाम्भने वाला (दिवः) द्युलोक का (धरुणः) धारण करने वाला (सोमः) सौम्यस्वभाव, और (अस्मयुः) सर्वप्रिय है वही परमात्मा (पवित्रे) सम्पूर्ण शुभ काम में पूजनीय है।

भावार्थ—परमात्मा सबको प्यार करता है, वह सर्वाधिकरण सर्वाश्रय तथा सर्व नियन्ता है ॥ ५ ॥ १८ ॥

अचिक्रदद्वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः ।
सं सूर्येण रोचते ॥ ६ ॥

अचिक्रदत् । वृषा । हरिः । महान् । मित्रः । न । दर्शतः ।
सम् । सूर्येण । रोचते ॥ ६ ॥

पदार्थः—(हरिः) दुष्टदमनः, सर्वेषां (मित्रः, न) मित्रसदृशः, (दर्शतः) सन्मार्गप्रदर्शकः (सं) सम्यक्प्रकारेण (सूर्य्येण) स्वविज्ञानेन (रोचते) प्रकाशमानो भवति (वृषा) सर्वकामप्रदः स परमात्मा (अचिक्रदत्) सर्वान् स्वाभिमुखमाह्वयति ॥

पदार्थ—(हरिः) दुष्टों के दलन करने वाला और सबका (मित्र)

मित्र के (न) समान (दर्शतः) सन्मार्ग दिखलाने वाला और (सं) भली प्रकार (सूर्य्येण) अपने विज्ञान से (रोचते) प्रकाश मान हो रहा है (वृषा) सर्वकामप्रद वह परमात्मा (अचिक्रदत्) सब को अपनी ओर बुला रहा है॥

भावार्थ—वह परमात्मा जो आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक तापरूपी शत्रुओं का नाश करने वाला, मित्र की तरह सब प्राणिओं का सन्मार्गप्रदर्शक तथा आत्मज्ञानद्वारा सब के हृदय में प्रकाशित है उसी के आह्वानरूप वेदवाणियें हैं और वही परमात्मा सब कामनाओं का पूर्ण करने वाला है, इस लिये उसी एकमात्र परमात्मा की शरण में सबको जाना उचित है॥ ६॥

गिर॑स्त इन्द्र ओज॑सा मर्मृज्यन्ते॑ अप॒स्युवः॑।
याभि॒र्मदा॑य शुम्भ॑से॥ ७॥

गिरः॑। ते॒। इन्दो॒ इति॑। ओज॑सा। म॒र्मृज्यन्ते॑। अ॒प॒स्युवः॑। याभिः॑। मदा॑य। शुंभ॑से॥ ७॥

पदार्थः—(इन्दो) हे परमैश्वर्य्यप्रद परमात्मन्! (ते) तव (ओजसा) प्रतापेन (अपस्युवः) कर्मबोधिकाः (गिरः) वाचः (मर्मृज्यन्ते) लोकान् पवित्रयन्ति (याभिः) याभिः त्वं (मदाय) आनदन्दातुं (शुम्भसे) विराजसे॥

पदार्थ—(इन्दो) हे परमैश्वर्य्यप्रद परमात्मन्! (ते) आप के (ओजसा) प्रताप से (अपस्युवः) कर्म्मबोधक (गिरः) वाणियें (मर्मृज्यंते) लोगों को शुद्ध करती हैं (याभिः) जिन के द्वारा आप (मदाय) आनन्द प्रदान के लिये (शुम्भसे) विराजमान हैं।

भावार्थ—परमात्मा अपने कर्म्मबोधक वेदवाक्यों से सदैव पुरुषों को सत्कर्मों में उद्बोधन करता है, जिस से वे ब्रह्मानन्दोपभोग के भागी बनें जैसा कि अन्यत्र भी वेदवाक्यों में वर्णन किया है "क्रतो स्मर क्लिबे स्मरकृत ऌ स्मर यजु० ४०।१५।" "कुर्वन्नेवेह कर्म्माणि जिजीविषेच्छत ऌ समाः यजु० ४०।२। " इत्यादि वाक्यों में कर्म्मयोग का वर्णन भली भांति पाया जाता है उसी कर्म्मयोग का वर्णन इस मन्त्र में है। उपनिषदों में इसको इस प्रकार वर्णन किया है "उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्यवरान्निबोधत क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत् कवयो वदन्ति कठ० ३।१४। =" उठो जागो अपने कर्त्तव्यों को समझ कर अपना आचरण करो तथा अन्य लोगों को कर्त्तव्यपरायण बनाओ यह भाव उपनिषत्कार ऋषिओं ने भी उक्त वेद मन्त्रों से लिया है।

कई एक लोग यह कहते हैं कि वेदों में विधिवाद नहीं अर्थात् ऐसा करो, ऐसा न करो इस प्रकार विधि तथा निषेध के बोधक वेदवाक्य नहीं मिलते। उनको स्मरण रखना चाहिये कि जब वेद ने गिराओं का विशेषण "अपस्युवः" यह कर्मों का उद्बोधक दिया फिर विधिवाद अर्थात् अनुज्ञा में क्या न्यूनता रह जाती है। विधि, विधान, अनुज्ञा, आज्ञा यह सब एकार्थवाची शब्द हैं। इस प्रकार वेदों ने शुभ कर्म्मों के करने का विधान सर्वत्र किया है। एवं निषेध के बोधक भी सहस्रशः वेदवाक्य पाए जाते हैं जैसा कि "मा शिश्नदेवा अपि गुर्ऋतं नः ऋग् ७।२१।५=" मूर्त्यादि चिह्नों के पुजारी मेरी सच्चाई को नहीं पाते। एवं "नन-मूर्ध्वन्न तिर्य्यञ्चं न मध्यपरिजग्रभत् यजु. ३२।२। " परमात्मा को किसी स्थान में कोई बन्द नहीं कर सकता। इत्यादि अनेक मन्त्र निषेधबोधक पाए जाते हैं। इस प्रकार वेद का विधि, निषेध द्वारा हित का शासक होना ही इसकी अपूर्वता है ॥७॥

तं त्वा मदाय घृष्वय उ लोककृत्नुमीमहे ।
तव प्रशस्तयो महीः ॥ ८ ॥

तम् । त्वा । मदाय । घृष्वये । ऊँ इति । लोककृत्नुम् । ईमहे । तव । प्रऽशस्तयः । महीः ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे परमेश्वर ! (तं) प्रसिद्धं (त्वा) भवन्तं (ईमहे) वयं प्राप्नुयाम यो भवान् (लोककृत्नुं) सम्पूर्णसंसारस्य रचयितास्ति स त्वं (मदाय) आनन्दाय (उ) किंच (घृष्वये) दुःखनिवृत्त्यै प्राप्तो भव (तव) भवतः (प्रशस्तयः) स्तुतयः (महीः) पृथ्वीमात्रे लभ्यन्ते ॥

पदार्थ—हे परमेश्वर ! (तं) उस (त्वा) तुझको (ईमहे) हम प्राप्त हों जो तू (लोककृत्नुं) सम्पूर्ण संसार का रचने वाला है। (मदाय) आनन्द की प्राप्ति (उ) और (घृष्वये) दुःखों की निवृत्ति के लिये प्राप्त हो (तव) तुम्हारी (प्रशस्तयः) स्तुतियें (महीः) पृथिवी भर में पाई जाती हैं।

भावार्थ—हे परमात्मन्! आप का स्तवन प्रत्येक वस्तु कर रही है, और आप सम्पूर्ण संसार के उत्पत्ति, स्थिति, संहार करने वाले हैं। आपकी प्राप्ति से सम्पूर्ण अज्ञानों की निवृत्ति होती है इस लिये हम आप को प्राप्त होते हैं ॥८॥

अस्मभ्यमिन्दविन्द्रयुर्मध्वः पवस्व धारया ।
पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव ॥ ९ ॥

अस्मभ्यम् । इन्दो इति । इन्द्रऽयुः । मध्वः । पवस्व ।
धारया । पर्जन्यः । वृष्टिमान्ऽइव ॥ ९ ॥

पदार्थः—(इन्दो) हे ऐश्वर्य्ययुक्त (इन्द्रयुः) सर्वव्यापक परमात्मन् ! (मध्वः) आनन्दस्य (धारया) वृष्ट्या (वृष्टिमान्) वर्षुकः (पर्जन्यः) मेघः (इव) यथा भवान् (अस्मभ्यं) अस्मान् (पवस्व) पुनातु ॥

पदार्थ—(इन्दो) हे परमैश्वर्य्ययुक्त और (इन्द्रयुः) सर्वव्यापक परमात्मन् ! (मध्वः) आनन्द की (धारया) वृष्टि से (वृष्टिमान्) वर्षा करने वाले (पर्जन्यः) मेघ के (इव) समान आप (अस्मभ्यं) हमको (पवस्व) पवित्र करें ।

भावार्थ—जिस प्रकार मेघ अपनी वृष्टि से भूमि का सिञ्चन कर देता है, उसी प्रकार हे परमात्मन् ! आप अपनी आनन्दरूप वृष्टि से हमको पवित्र तथा सिक्त करें ॥९॥

गोषा इन्दो नृषा अस्यश्वसा वाजसा उत ।
आत्मा यज्ञस्य पूर्व्यः ॥ १० ॥ १९ ॥

गोऽसाः । इन्दो इति । नृऽसाः । असि । अश्वऽसाः ।
वाजसाः । उत । आत्मा । यज्ञस्य । पूर्व्यः ॥ १० ॥

पदार्थः—(इन्दो) हे परमैश्वर्य्ययुक्त परमात्मन् ! भवान् (यज्ञस्य) समस्तस्य यज्ञस्य (पूर्व्यः) आदिकारणमस्ति । भवान् अस्मभ्यम् (गोषाः) गवां (अश्वसाः) अश्वानां (वा-

जसाः) अन्नानां (नृषाः) मनुष्याणां (उत) किंच (आत्मा) आत्मबलस्य दाता (असि) असि ॥

पदार्थ—(इन्दो) हे ऐश्वर्य्ययुक्त परमात्मन् ! आप (यज्ञस्य) सम्पूर्णयज्ञों के (पूर्व्यः) आदि कारण हैं । आप हमको (गोषाः) गायें (अश्वसाः) घोड़े (वाजसाः) अन्न (नृषाः) मनुष्य (उत) और (आत्मा) आत्मिक बल इन सब वस्तुओं के देने वाले (असि) हो ।

भावार्थ—हे परमात्मन् ! आपकी कृपा से अभ्युदय और निःश्रेयस दोनों फलों की प्राप्ति होती है जिन पर आप कृपालु होते हैं, उनको हृष्ट पुष्ट गौ और बलीवर्द तथा उत्तमोत्तम घोड़े एवं नाना प्रकार की सेनायें इत्यादि अभ्युदय के सब साधन देते हैं । और जिन पर आपकी कृपा होती है उन्हीं को आत्मिक बल देकर यम नियमों द्वारा संयमी बनाकर निःश्रेयस प्रदान करते हैं ॥१०॥१९॥

द्वितीयं सूक्तमेकोनविंशो वर्गश्चसमाप्तः ।

दूसरा सूक्त और उन्नीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ दशर्चस्य तृतीयस्य सूक्तस्य—

१–१० शुनःशेप ऋषिः । पवमानः सोमो देवता । छन्दः—
१, २ विराड् गायत्री । ३, ५, ७, १० गायत्री ।
४, ६, ८, ९ निचृद् गायत्री । षड्जः स्वरः ॥

अथ पूर्वोक्तस्य परमात्मदेवस्य गुणा निर्दिश्यन्ते ।

अब पूर्वोक्त परमात्मदेव के गुणों का कथन करते हैं ।

एष देवो अमर्त्यः पर्णवीरिव दीयति ।

अभि द्रोणान्यासदम् ॥ १ ॥

एषः । देवः । अमर्त्यः । पर्णवीःऽइव । दीयति । अभि । द्रोणानि । आऽसदम् ॥ १ ॥

पदार्थः—(एष, देवः) पूर्ववर्णितः परमात्मा (अमर्त्यः) अविनाशी अस्ति । सः (आसदम्) सर्वं व्याप्तुं (अभि, द्रोणानि) प्रतिब्रह्माण्डं (पर्णवीः) विद्युत् (इव) यथा (दीयति) प्राप्तः ॥

पदार्थ—(एषः देवः) जिस परमात्म देव का पूर्व वर्णन किया गया वह (अमर्त्यः) अविनाशी है (आसदम्) सर्वत्र व्याप्त होने के लिये वह परमात्मा (अभि, द्रोणानि) प्रत्येक ब्रह्माण्ड को (पर्णवीः) विद्युत् शक्ति के (इव) समान (दीयति) प्राप्त है ॥

भावार्थ—दीव्यतीतिदेवः=जो सबको प्रकाश करे उसको देव कहते हैं सर्वप्रकाशक देव अनादिसिद्ध और अविनाशी है, उसकी गति प्रत्येक ब्रह्माण्ड में है वही परमात्मा इस संसार की उत्पत्ति, स्थिति, संहार का करने वाला है उसी की उपासना सबको करनी चाहिये ॥१॥

एष देवो विपा कृतोऽति ह्वरांसि धावति ।
पवमानो अदाभ्यः ॥ २ ॥

एषः । देवः । विपा । कृतः । अति । ह्वरांसि । धावति । पवमानः । अदाभ्यः ॥ २ ॥

पदार्थः—(एष, देवः) अयं पूर्ववर्णितः परमात्मा देवः (विपा) मेधाविभिर्विद्वद्भिः विप इति मेधाविनामसु पठितम्

निघ० ३ । १५ ॥ (अति) विस्तरेण (कृतः) वर्णितः (अदाभ्यः) उपासितः (पवमानः) पवित्रो देवः सः (ह्वरांसि) उपासकहृदये (धावति) प्राप्नोति ॥

पदार्थ—(एषः देवः) यह पूर्वोक्त देव (विपा) मेधावी विद्वानों ने (अति) विस्तार से (कृतः) वर्णन किया है "विप इति मेधाविनामसु पठितं" नि० ३।१५। (अदाभ्यः) उपासना किया हुआ (पवमानः) यह पवित्र देव (ह्वरांसि) उपासकों के हृदय में (धावति) प्राप्त होता है ॥

भावार्थ—जिस परमात्मा का विद्वान् लोग वर्णन करते हैं वह उपासना करने से उपासकों के हृदय में आविर्भाव को प्राप्त होता है ॥२॥

एष देवो विपन्युभिः पवमान ऋतायुभिः ।
हरिर्वाजाय मृज्यते ॥ ३ ॥

एषः । देवः । विपन्युऽभिः । पवमानः । ऋतयुऽभिः । हरिः । वाजाय । मृज्यते ॥ ३ ॥

पदार्थः—(एष, देवः) पूर्वोक्तो देवः (विपन्युभिः, ऋतायुभिः) सत्यवचनैर्विद्वद्भिः (पवमानः) पवित्रतया वर्णितः (हरिः) सर्वदुःखहारकः परमात्मा (वाजाय) ज्ञानयज्ञाय (मृज्यते) उपास्यते ॥

पदार्थ—(एष देवः) यह पूर्वोक्तदेव (विपन्युभिः, ऋतायुभिः) सत्यवक्ताविद्वानों द्वारा (पवमानः) पवित्र वर्णन किया गया है (हरिः) यह सब दुःखों का दूर करने वाला परमात्मदेव (वाजाय) ज्ञानयज्ञ के लिये (मृज्यते) उपास्य रक्खा जाता है ॥

भावार्थ—जिस पूर्णपुरुष को विद्वान् लोग इन्द्रियागोचर कथन करते हैं वही पूर्ण पुरुष ज्ञानयज्ञद्वारा ज्ञानियों के ज्ञानगम्य होकर उपास्य भाव को प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

एष विश्वानि वार्या शूरो यन्निव सत्वभिः ।
पवमानः सिषासति ॥ ४ ॥

एषः । विश्वानि । वार्या । शूरः । यन्ऽइव । सत्वऽभिः ।
पवमानः । सिसासति ॥ ४ ॥

पदार्थः—(एषः) पूर्वोक्तो देवः (विश्वानि) सर्वाणि (वार्या) धनानि (सिषासति) विभजति । (इव) यथा (शूरः) वीरः (सत्वभिः) आत्मपराक्रमैः (यन्) आक्रामन् सर्वमसत्यमपाकरोति ॥

पदार्थ—(एषः) यह पूर्वोक्तदेव (विश्वानि) सम्पूर्ण (वार्या) धनों का (सिषासति) विभाग करता है । (इव) जिस प्रकार (शूरः) शूरवीर (सत्वभिः) अपने पराक्रमों से (यन्) आक्रमण करता हुआ सच झूठ का निपटारा कर देता है ।

भावार्थ—परमात्मदेव अपने ऐश्वर्यों का विभाग पात्र अपात्र समझ कर करता है । जिस को वह अपने ऐश्वर्य का पात्र समझता है उसको ऐश्वर्य देता है और जिसको अपात्र समझता है उससे ऐश्वर्य हर लेता है, जिस प्रकार पात्र अपनी बनावट और अपने गुण, कर्म्म, स्वभाव से उपादेय वस्तु का पात्र बनता है उसी प्रकार पुरुष भी अपने गुण, कर्म्म, स्वभाव से पात्रता को प्राप्त होता है, वा यों कहो कि पूर्वकृतप्रारब्ध कर्म्मों से वह उपादेय वस्तु को प्राप्त होने योग्य बनता है ।

जो लोग निष्कर्म्म मन्दभागी और आलसी हैं वे सदैव ईश्वर के ऐश्वर्य्य से वञ्चित रहते हैं। इसी लिये उनको अपात्र कहा है। उक्त मन्त्र में शूरवीर का दृष्टांत इस अभिप्राय से दिया है कि जिस प्रकार शूरवीर के निपटारा करने के बाद किसी को असंतोष तथा ननुनच करने का अवकाश नहीं मिलता उसी प्रकार परमात्मा के निपटारा करने पर फिर किसी को झगड़े अथवा ननुनच करने का अवकाश नहीं रहता ॥४॥

एष देवो रथर्यति पवमानो दशस्यति ।
आविष्कृणोति वग्वनुम् ॥ ५ ॥ २० ॥

एषः । देवः । रथर्यति । पवमानः । दशस्यति । आविः ।
कृणोति । वग्वनुम् ॥ ५ ॥

पदार्थः—(एष, देवः) अयं देवः परमात्मा (पवमानः) सर्वं पुनानः (रथर्यति) सर्वस्य शुभं काङ्क्षति (दशस्यति) मनोवाञ्छितं प्रापयति च तथा (वग्वनुं) सत्यम् (आविष्कृणोति) प्रकटयति ॥

पदार्थ—(एष, देवः) यह परमात्मदेव (पवमानः) सबको पवित्र करता हुआ (रथर्यति) सदा सबका शुभ चाहता है और (दशस्यति) मनो वाञ्छित फलों की प्राप्ति कराता है तथा (वग्वनुं) सत्य को (आविष्कृणोति) प्रकट करता ।

भावार्थ—वही परमात्मा सबके लिये पवित्रता का धाम है। सब लोग आत्मिक, शारीरिक, तथा सामाजिक पवित्रताएँ उसी से प्राप्त करते हैं, इस लिये वही परमदेव एकमात्र उपासनीय है ॥५॥२०॥

एष विप्रैरभिष्टुतोऽपो देव वि गाहते ।
दधद्रत्नानि दाशुषे ॥ ६ ॥

एषः । विप्रैः । अभिऽस्तुतः । अपः । देवः । वि । गाहते ।
दधत् । रत्नानि । दाशुषे ॥ ६ ॥

पदार्थः--(एषः) अयं परमात्मा (विप्रैः) मेधाविभिः (अभिष्टुतः) वर्णितः (अपोदेवः) कर्मणामध्यक्षः (विगाहते) समस्तस्य जगतः सृष्टिस्थितिलयकर्ता (दाशुषे) यजमानाय (रत्नानि) विविधं धनं (दधत्) दद्यात् ॥

पदार्थ—(एषः) यह परमात्मा (विप्रैः) मेधावी लोगों के द्वारा (अभिष्टुतः) वर्णन किया गया है "विप्र इति मेधावि नामसु पठितम्" निरु० ३।१९।१९ (अपो, देवः) कर्मों का अध्यक्ष है (विगाहते) सम्पूर्ण संसार की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करने वाला है (दाशुषे) यजमानों को (रत्नानि) नाना प्रकार के धन (दधत्) देय ।

भावार्थ—विद्वान् लोग जिस परमात्मा का नाना प्रकार से वर्णन करते हैं वही इन्द्रियागोचर और एकमात्रज्ञानगम्य परमात्मा सर्वाधार, सर्वकर्त्ता, अजर, अमर, और कूटस्थनित्य है इसी की उपासना सब को करनी चाहिये ॥६॥

एष दिवं वि धावति तिरो रजांसि धारया ।
पवमानः कनिक्रदत् ॥ ७ ॥

एषः । दिवम् । वि । धावति । तिरः । रजांसि । धारया ।
पवमानः । कनिक्रदत् ॥ ७ ॥

पदार्थः—(एषः) उक्तः परमात्मा (दिवं) द्युलोकं (वि) नानाप्रकारेण (रजांसि) परमाणुपुञ्जस्य (धारया) प्रबलवेगेन

(तिरोधावति) आच्छादयति (पवमानः) सर्वेषां पविता परमात्मा (कनिक्रदत्) स्वीयप्रबलगत्या सर्वत्र गर्जति ॥

पदार्थ—(एषः) उक्त परमात्मा (दिवं) द्युलोक को (वि) नानाप्रकार से (रजांसि) परमाणुपुञ्ज के (धारया) प्रबल वेगों से (तिरो, वि. धावति) ढक देता है (पवमानः) सबको पवित्र करने वाला परमात्मा (कनिक्रदत्) अपनी प्रबलगति से सर्वत्र गर्ज रहा है ।

भावार्थ—परमात्मा नाना प्रकार के परमाणुओं से द्युलोकादि लोक लोकान्तरों को आच्छादन करता है और अपनी सत्तासे सर्वत्र विराजमान हुआ सब को शुभ मार्ग की ओर बुलारहा है ॥७॥

एष दिवं व्यासरत्तिरो रजांस्यस्पृतः ।
पवमानः स्वध्वरः ॥ ८ ॥

एषः । दिवम् । वि । आ । असरत् । तिरः । रजांसि ।
अस्पृतः । पवमानः । सुऽअध्वरः ॥ ८ ॥

पदार्थः—(एषः) स परमात्मा (दिवं) द्युलोकं (व्यासरत्) प्राप्तोऽस्ति (रजांसि) परमाणुषु लोकलोकान्तरम् (तिरः) आच्छाद्य (अस्पृतः) अविनाशिभावेन (पवमानः) पवित्रतया (स्वध्वरः) अहिंसकत्वेन च विराजते ॥

पदार्थ—(एषः) वही परमात्मा (दिवं) द्युलोक को (व्यासरत्) प्राप्त है (रजांसि) परमाणु में लोक लोकान्तरों को (तिरः) आच्छादन करके (अस्पृतः) अविनाशी भाव से (पवमानः) पवित्र और (स्वध्वरः) अहिंसकरूप से विराजमान है ।

भावार्थ—वह नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव परमात्मा सर्वत्र विराजमान है, और उसी की सत्ता से सब लोक लोकान्तर परिभ्रमण करते हैं ॥८॥

एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः ।
हरिः पवित्रे अर्षति ॥ ९ ॥

एषः । प्रत्नेन । जन्मना । देवः । देवेभ्यः । सुतः । हरिः । पवित्रे । अर्षति ॥ ९ ॥

पदार्थः—(एषः) अयं परमात्मा (देवः) (प्रत्नेन) अनादिकालेन (जन्मना) आविर्भावेन (देवेभ्यः) विद्वद्भ्यः (सुतः) सुप्रसिद्धः (हरिः) सर्वदुःखविनाशकः (पवित्रे) मनुष्यस्य पवित्रहृदये (अर्षति) प्रकटति ॥

पदार्थ—(एषः, देवः) यह परमात्मा (प्रत्नेन) अनादि काल से "प्रत्नमिति पुराणनामसु पठितम्" निरु० ३।२०।२७ (जन्मना) आविर्भाव से (देवः) उक्तदेव (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये (सुतः) सुप्रसिद्ध (हरिः) सब दुःखों का हरने वाला (पवित्रे) मनुष्य के पवित्र हृदय में (अर्षति) प्रकट होता है ॥

भावार्थ—जो लोग अपने अन्तःकरण को पवित्र करते हैं और परमात्मा के निष्पापादि भावों को धारण करते हैं उनके हृदय में परमात्मा आकर प्रकट होता है ॥

जो मन्त्र में जन्म शब्द आया है इसके अर्थ जन्मधारण के नहीं किन्तु, जनी-प्रादुर्भावे धातु से मनिन् प्रत्यय करने से जन्म शब्द सिद्ध होता है जिसके अर्थ आविर्भाव के हैं, किसी उत्पत्ति विशेष के नहीं । इसी

अभिप्राय से मन्त्र में प्रत्न शब्द को विशेषण देकर जन्म का वर्णन किया है, जिसके अर्थ अनादि सिद्ध आविर्भाव के हैं न कि उत्पत्ति के।

तात्पर्य यह है कि वह अनादि सिद्ध परमात्मा निष्पाप आत्माओं में प्रकट होता है ॥९॥

एष उ स्य पुरुव्रतो जज्ञानो जनयन्निषः ।
धारया पवते सुतः ॥ १० ॥ २१ ॥

एषः । ऊँ इति । स्यः । पुरुऽव्रतः । जज्ञानः । जनयन् । इषः । धारया । पवते । सुतः ॥ १० ॥

पदार्थः—(एषस्यः) सोऽयं परमात्मा (पुरुव्रतः) अनन्तकर्मा (जज्ञानः) सर्वत्र प्रसिद्धः (इषः) सर्वं लोकलोकान्तरं (जनयन्) उत्पादयन् (सुतः) स्वसत्तया विराजमानः (धारया) स्वपीयूषवर्षेण (पवते) सर्वं पवित्रयति

पदार्थ—(स्यः) वह पूर्वोक्त परमात्मा (पुरुव्रतः) अनन्तकर्मा है (जज्ञानः) सर्वत्र प्रसिद्ध (इषः) सम्पूर्ण लोक लोकान्तरों को (जनयन्) उत्पन्न करता हुआ (सुतः) स्वसत्ता से विराजमान (एषः) यही (धारया) अपनी सुधामयी वृष्टि की धाराओं से (पवते) सबको पवित्र करता है ।

भावार्थ—जो परमात्मा अनन्तकर्मा है वही अपनी शक्ति से सब लोक लोकान्तरों को उत्पन्न करता है और वही अपनी पवित्रता से सबको पवित्र करता है ।

अनन्तकर्मा, यहां परमात्मा को उसकी अनन्त शक्तियों के अभिप्राय

से वर्णन किया है किसी शारीरिक कर्म के अभिप्राय से नहीं ॥१०॥२१॥

तृतीयं सूक्तमेकविंशो वर्गश्च समाप्तः ॥

तीसरा सूक्त और इक्कीसवां वर्ग समाप्त हुआ ।

अथाभ्युदयाय विजयाय आत्मसुखाय च निःश्रेयसं वर्ण्यते ।

अब उक्त परमात्मा से अभ्युदय के लिये विजय, और आत्मसुख के लिये निःश्रेयस की प्रार्थना वर्णन करते हैं ।

अथ दशर्चस्य चतुर्थस्य सूक्तस्य–

१--१० हिरण्यस्तूप ऋषिः। पवमानः सोमो देवता। छन्दः–
१, ३, ४, १० गायत्री। २, ५, ८, ९ निचृद् गायत्री।
६, ७ विराड् गायत्री । षड्जः स्वरः ॥

सना च सोम जेषि च पवमान महि श्रवः ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ १ ॥

सन । च । सोम । जेषि । च । पवमान । महि । श्रवः ।
अथ । नः । वस्यसः । कृधि ॥ १ ॥

पदार्थः--(सोम) हे सौम्यस्वभावयुक्त परमात्मन् ! (महि, श्रवः) सर्वतो दातृतमः (च) तथाच (पवमान) पवित्र त्वं (जेषि) पापिनो जय (च) किंच सदा (नः) अस्मभ्यं (वस्यसः, कृधि) कल्याणं देहि (सन) नो भज ॥

पदार्थ—(सोम) हे सौम्यस्वभाव परमात्मन् ! (महिश्रवः)

सर्वोपरिदाता तथा (च) और (पवमान) पवित्र (जेषि) पापियों का का नाश करो (च) किंतु सदा के लिये (नः) हमको (वस्यसस्कृधि) कल्याण देयँ (सन) हमारी रक्षा करें ।

भावार्थ—परमात्मा, अभ्युदय और निःश्रेयस दोनों के दाता हैं । जिन लोगों को अधिकारी समझते हैं उनको अभ्युदय, नाना प्रकार के ऐश्वर्य प्रदान करते हैं, और जिसको मोक्ष का अधिकारी समझते हैं उसको मोक्ष सुख प्रदान करते हैं ।

जो मन्त्र में, जेषि, यह शब्द है इसके अर्थ परमात्मा की जीत को बोधन नहीं करते किन्तु तदनुयायियों की जीत को बोधन करते हैं । क्योंकि परमात्मा तो सदा ही विजयी हैं। वस्तुतः न उसका कोई शत्रु और न उसका कोई मित्र है। जो सत्कर्म्मी पुरुष हैं वे ही उसके मित्र कहे जाते हैं और जो असत्कर्म्मी हैं उन्हीं में शत्रुभाव आरोपित किया जाता है । वास्तव में यह दोनों भाव मनुष्यकल्पित हैं । ईश्वर सदा सब के लिये समदर्शी है ॥१॥

सना ज्योतिः सना स्व१र्विश्वा च सोम सौभगा ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ २ ॥

सन । ज्योतिः । सन । स्वः । विश्वा । च । सोम ।
सौभगा । अथ । नः । वस्यसः । कृधि ॥ २ ॥

पदार्थः—(सोम) हे सौम्यस्वभावयुक्त परमात्मन् ! (सन, ज्योतिः) सदा ज्योतीरूपंदेहि (च) अथच (सन, स्वः) सदा सुखंदेहि (विश्वा) सर्व (सौभगा) सौभाग्यदातृ वस्तु देहि (अथ) किंच (नः) अस्मभ्यं (वस्यसस्कृधि) मुक्तिं देहि ॥

पदार्थ—(सोम) हे सौम्यस्वभाव परमात्मन्! (सन, ज्योतिः) सदा ज्योतिःस्वरूप हो (च) और (सन, स्वः) सदा सुखस्वरूप हो (विश्वा) सम्पूर्ण (सौभगा) सौभाग्यदायक वस्तुयें आप हमको दें (अथ) और (नः) हमको (वस्यसस्कृधि) मुक्ति सुख दें।

भावार्थ—परमात्मा नित्य शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव है उसी की कृपा से नाना विधि के सौभाग्य मिलते हैं और मोक्ष सुख मिलता है ॥२॥

सना दक्षमुत क्रतुमप सोममृधो जहि ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ३ ॥

सन । दक्षम् । उत । क्रतुम् । अप । सोम । मृधः । जहि ।
अथ । नः । वस्यसः । कृधि ॥ ३ ॥

पदार्थः—(सोम) हे सौम्यस्वभाव परमात्मन्! (क्रतुं) अस्मच्छुभकर्माणि (सन) रक्षतु (अथ) किंच (मृधः) पापकर्माणि (अप, जहि) अस्मत्तोऽपनय (उत) अथ (दक्षं) सुनीतिं (वस्यसः) मुक्तिं (कृधि) कुरु ॥

पदार्थ—(सोम) हे सौम्यस्वभाव परमात्मन्! (क्रतुम्) हमारे शुभ कर्मों की आप (सन) रक्षा करें (अथ) और (मृधः) पाप कर्मों को (अप, जहि) हमसे दूर करें (उत) और (दक्षम्) सुनीति और (वस्यसः) मुक्ति सदा (कृधि) करो।

भावार्थ—जो पुरुष शुद्धभाव से परमात्मपरायण होते हैं परमात्मा उनके पापकर्मों को हरलेता है और नाना प्रकार के चातुर्य्य उनको प्रदान करता है ॥३॥

पवीतारः पुनीतन सोममिन्द्राय पातवे ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ४ ॥

पवितारः । पुनीतन । सोमम् । इन्द्राय । पातवे । अथ ।
नः । वस्यसः । कृधि ॥ ४ ॥

पदार्थः—(पवीतारः) हे विद्वांसः, यूयं (इन्द्राय, पातवे) ऐश्वर्य्याधिकारिणे पुरुषाय (सोमं) सौम्यस्वभावं परमात्मानं (पुनीतन) वर्णयत (अथ) अथेदं प्रार्थयध्वं यत् (नः) अस्मान् स परमात्मा (वस्यसः,कृधि) मोक्षानन्दभाजः करोतु ॥

पदार्थ—(पवीतारः) हे विद्वान् लोगो! तुम (इन्द्राय, पातवे) ऐश्वर्य्याधिकारी पुरुष के लिये (सोमं) सौम्यस्वभाव वाले परमात्मा का (पुनीतन) वर्णन करो (अथ) और यह प्रार्थना करो कि (नः) हमको वह परमात्मा (वस्यसस्कृधि) मोक्ष सुख का भागी बनाएं ।

भावार्थ—विद्वान् लोग जब किसी पुरुष को दीक्षित करें तो शान्त्यादिगुणसम्पन्न परमात्मा का सब से प्रथम उपदेश करें । तदनन्तर अभ्युदय और निःश्रेयस का विस्तृत उपदेश करके इस सांसारिक यात्रा में दक्ष बनाएं ॥४॥

त्वं सूर्ये न आ भज तव क्रत्वा तवोतिभिः ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ५ ॥ २२ ॥

त्वम् । सूर्ये । नः । आ । भज । तव । क्रत्वा । तव ।
ऊतिऽभिः । अथ नः । वस्यसः । कृधि ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे परमात्मन्! (त्वम्) भवान् (नः) अस्मभ्यं (सूर्ये) ज्ञानं प्रदातुम् (आभज) आगत्य तिष्ठतु (क्रत्वा) यज्ञेन (अथ, तव, ऊतिभिः) अथ च स्वीयरक्षाभिः (नः) अस्मान् (वस्यसः, कृधि) सुखिनः करोतु ॥

पदार्थ—हे परमात्मन! (त्वं) तुम (नः) हमको (सूर्य्ये) ज्ञान-प्रदान के लिये (आभज) आकर प्राप्त हो। (क्रत्वा) यज्ञों द्वारा (अथ तव, ऊतिभिः) और अपनी रक्षाद्वारा (नः) हमको (वस्यसस्कृधि) सुखी बनाएं ॥

भावार्थ—हे परमात्मन्! आप ज्ञान और कर्मद्वारा हमारी सर्वदा रक्षा करें और ऐहिक, तथा पारलौकिक सुख से हमको सदैव सम्पन्न करें ॥ ५ ॥ २२ ॥

तव क्रत्वा तवोतिभिर्ज्योक्पश्येम सूर्यम् ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ६ ॥

तव । क्रत्वा । तव । ऊतिऽभिः । ज्योक् । पश्येम । सूर्यम् ।
अथ । नः । वस्यसः । कृधि ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे परमात्मन्! (तव, क्रत्वा) वयं तव ज्ञानयोगद्वारेण (तव, ऊतिभिः) कर्मयोगद्वारेण च (ज्योक्) शश्वत (सूर्यम्) भवतः प्रकाशरूपम् (पश्येम) अनुभवेम (अथ) अथच (नः) अस्माकम् (वस्यसः) कल्याणम् (कृधि) कुरु।

पदार्थ—हे परमात्मन्! हम (तव, क्रत्वा) आपके कर्मयोग (तवोतिभिः) और ज्ञानयोगद्वारा सदैव (सूर्य्य) आपके प्रकाशस्वरूप

को (ज्योक्) निरन्तर (पश्येम) अनुभव करें (अथ) और (नः) हमारे (वस्यसः) कल्याण को (कृधि) करिये ।

भावार्थ—ज्ञानयोगी तथा कर्मयोगी पुरुष अपने आत्मभूत सामर्थ्य से परमात्मा के स्वरूप का अनुभव करके सदैव आनन्द का लाभ करते हैं ॥ ६ ॥

अभ्यर्ष स्वायुध सोम द्विबर्हसं रयिम् ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ७ ॥

अभि । अर्ष । सुऽआयुध । सोम । द्विऽबर्हसम् । रयिम् ।
अथ । नः । वस्यसः । कृधि ॥ ७ ॥

पदार्थः—(सोम) हे जगदुत्पादक परमात्मन्! भवान् (रयिम्) ऐश्वर्यं (अभ्यर्ष) अस्मभ्यं प्रयच्छ, यदैश्वर्यम् (द्विबर्हसम्) द्यावापृथिव्योर्मध्ये सर्वोत्कृष्टमस्ति (स्वायुध) भवान् सर्वविधाज्ञानस्य नाशकः अतएव (नः) अस्माकमपि अज्ञानं नाशय (वस्यसः कृधि) आनन्दं च विधेहि ॥

पदार्थ—(सोम) "सूते चराचरं जगदिति सोमः परमात्मा = जो चराचर जगत् को उत्पन्न करे उसका नाम यहां सोम है" हे जगदुत्पादक परमात्मन्! आप (रयिं) हमको ऐश्वर्य (अभ्यर्ष) प्रदान करें जो ऐश्वर्य (द्विबर्हसं) द्युलोक और पृथिवी लोक के मध्य में सर्वोपरि है (स्वायुध) आप सब प्रकार से अज्ञान के दूर करने वाले हैं, इस लिये (नः) हमारे अज्ञान का नाश करके हमको (वस्यसस्कृधि) आनन्दप्रदान करें ॥

भावार्थ—स्वप्रकाश परमात्मा अज्ञान को निवृत्त करके सदैव सुखका प्रकाश करता है ॥ ७ ॥

अभ्य१र्षानपच्युतो रयिं समत्सु सासहिः ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ८ ॥

अभि । अर्ष । अनपऽच्युतः । रयिम् । समत्ऽसु । ससहिः ।
अथ । नः । वस्यसः । कृधि ॥ ८ ॥

पदार्थः—(अनपच्युतः) स कूटस्थनित्यः परमात्मा (रयिम्) स्वभक्तेभ्य ऐश्वर्यम् (अभ्यर्ष) प्रयच्छति (अथ) अथान्यत (समत्सु) संग्रामेषु (सासहिः) अन्यायिनः शत्रून् पराजित्य स्वभक्तेभ्यः (वस्यसस्कृधि) श्रेयः प्रददाति ॥

पदार्थ—(अनपच्युतः) वह कूटस्थनित्य परमात्मा (रयिम्, अभ्यर्ष) अपने भक्तों को ऐश्वर्यप्रदान करता है (अथ) और (समत्सु) संग्रामों में (सासहिः) अन्यायकारी शत्रुओं को पराजित करके अपने भक्तों को (वस्यसस्कृधि) सुखप्रदान करता है ।

भावार्थ—जो लोग न्यायशील हैं उनको परमात्मा विजयी बनाता है और अन्यायकारी दुरात्माओं का सदैव दमन करता है ॥८॥

त्वां यज्ञैरवीवृधन्पवमान विधर्मणि ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ९ ॥

त्वां । यज्ञैः । अवीवृधन् । पवमान । विऽधर्मणि । अथ ।
नः । वस्यसः । कृधि ॥ ९ ॥

पदार्थः—(पवमान) हे सर्वस्य पवित्रकर्त्तः परमात्मन् ! (त्वाम्) भवन्तम् (यज्ञैः) उपासनादिभिः (अवीवृधन्) उपा-

स्त्वेन स्थापयन्ति (विधर्मणि) पापीयविषयेभ्योरक्षतु नः (अथ) अथ च (वस्यसः, कृधि) आनन्दभाजः करोतु भवान् ॥

पदार्थ—(पवमान) हे सब को पवित्र करने वाले परमात्मन्! (त्वां) आप को (यज्ञैः) उपासनादि यज्ञों द्वारा (अवीवृधन्) उपास्य बनाते हैं (विधर्मणि) पापीय विषयों से आप हमारी रक्षा करें (अथ) और (वस्यसः कृधि) आनन्द के भागी बनायें ॥ ९ ॥

रयिं नश्चित्रमश्विनमिन्दो विश्वायुमा भर ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ १० ॥ २३ ॥

रयिम् । नः । चित्रम् । अश्विनम् । इन्दो इति । विश्वऽआयुम् । आ । भर । अथ । नः । वस्यसः । कृधि ॥ १० ॥

पदार्थः—(इन्दो) हे सर्वैश्वर्यसम्पन्न भगवन्! (नः) अस्मान् (चित्रम्) अनेकविधम् (अश्विनम्) सर्वव्याप्यैश्वर्यं सम्पाद्य समर्द्धयतु (अथ) तथा च (विश्वम्, आयुम्) सर्वविधमायुः (रयिम्) धनं च सम्पाद्य समर्द्धयतु ॥

पदार्थ—(इन्दो) हे सर्वैश्वर्यसम्पन्न परमात्मन्! (नः) हमको (चित्रम्) नाना प्रकार के (अश्विनम्) सर्वत्र व्याप्त होने वाले ऐश्वर्यों से सम्पन्न करें (अथ) और (विश्वम्, आयुम्) सब प्रकार की आयु से (रयिम्) धन से भर पूर करें ॥

भावार्थ—परमात्मा सत्कर्मों द्वारा जिन पुरुषों को ऐश्वर्य के पात्र समझता है उनको सब ऐश्वर्यों से और ज्ञानादि गुणों से परिपूर्ण करता है ॥१०॥

चतुर्थं सूक्तं त्रयोविंशो वर्गश्च समाप्तः ।

चौथा सूक्त और तेईसवां वर्ग समाप्त हुआ ।

एकादशर्चस्यपञ्चमसूक्तस्य १—११ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ आप्रियो देवता ॥ छन्दः—
१, २, ४-६ गायत्री । ३, ७ निचृद् गायत्री । ८ निचृदनुष्टुप् । ९, १० । अनुष्टुप् ।
११ विराडनुष्टुप् ॥ स्वरः १—७ षड्जः । ८—११ गान्धारः ॥

सं.—अथ परमात्मनः स्वतः प्रकाशत्वं वर्ण्यते ।

सं.—अब परमात्मा की स्वतः प्रकाशता का वर्णन करते हैं ।

समिद्धो विश्वतस्पतिः पवमानो विराजति ।
प्रीणन्वृषा कनिक्रदत् ॥ १ ॥

सम्ऽइद्धः । विश्वतः । पतिः । पवमानः । वि । राजति ।
प्रीणन् । वृषा । कनिक्रदत् ॥ १ ॥

पदार्थः—(समिद्धः) योहि सर्वत्र प्रकाशकः (विश्वतस्पतिः) यश्च सर्वथा पतिरस्ति (पवमानः) पावयिता सः (विराजति) सर्वत्र द्योतते विभूत्या प्रकाशते (प्रीणन्) सएवेश्वरः सर्वजनेषु तृप्तिमुत्पादयन् (वृषा) सर्वकामान् वर्षुकः (कनिक्रदत्) स्वविचित्रभावैरुपदिशन् नः पुनातु ॥

पदार्थ—(समिद्धः) जो सर्वत्र प्रकाशमान है (विश्वतस्पतिः) सब प्रकार से जो स्वामी है (पवमानः) पवित्र करने वाला परमात्मा (विराजति) सर्वत्र विराजमान हो रहा है (प्रीणन्) वह सब को आनन्द देता हुआ (वृषा) सब कामनाओं का पूरक (कनिक्रदत्) अपने विचित्र भावों से उपदेश करता हुआ हम को पवित्र करे ।

भावार्थ--इस संसार में परमात्मा ही केवल ऐसा पदार्थ है जो स्वसत्ता से विराजमान है अर्थात् जो परसत्ता की सहायता नहीं चाहता अन्य प्रकृति तथा जीव परमात्मसत्ता के अधीन होकर रहते हैं इसी अभिप्राय से परमात्मा को यहाँ समिद्ध कहा गया है अर्थात् स्वप्रकाशरूपता से वर्णन किया गया है ॥१॥

तनूनपात्पवमानः शृङ्गे शिशानो अर्षति ।
अन्तरिक्षेण रारजत् ॥ २ ॥

तनू३ऽनपात् । पवमानः । शृङ्गे इति । शिशानः । अर्षति ।
अन्तरिक्षेण । रारजत् ॥ २ ॥

पदार्थः—(तनूनपात्) सर्वशरीराणामधिकरणरूपेण धारकः (पवमानः) सर्वेषां पावयिताऽस्ति (शृङ्गे, शिशानः) योहि कूटस्थनित्योऽस्ति तथा (अर्षति) सर्वं व्याप्य तिष्ठति (अन्तरिक्षेण, रारजत्) यश्च द्यावापृथिव्योरधिकरणरूपेण विराजते स नः पुनातु ॥

पदार्थ—(तनूनपात्) तनूं न पातयतीति तनूनपात् अर्थात् जो सब शरीरों को अधिकरण रूप से धारण करे उसका नाम यहाँ तनूनपात् है वह परमात्मा (पवमानः) सब को पवित्र करने वाला है (शृङ्गे, शिशानः) जो कूटस्थनित्य है और (अर्षति) सर्वत्र व्याप्त है और (अन्तरिक्षेण, रारजत्) जो द्युलोक और पृथिवीलोक के अधिकरण रूप से विराजमान हो रहा है वह परमात्मा हमको पवित्र करे

भावार्थ--इस मन्त्र में परमात्मा को क्षेत्रज्ञरूप से वर्णन किया गया है अर्थात् प्रकृति तथा प्रकृति के कार्य पदार्थों में परमात्मा कूटस्थ रूपता से विराजमान है इस भाव को उपनिषदों में यों वर्णन किया है कि

"यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्यामन्तरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरम्" बृ. ३।७।१ जो परमात्मा पृथिवी में रहता है और पृथिवी जिसको नहीं जानती तथा पृथिवी उसका शरीर और वह शरीरी रूप से वर्तमान है शरीर के अर्थ यहाँ शीर्यते इति शरीरम् जो शीर्णता अर्थात् नाश को प्राप्त हो उसको शरीर कहते हैं, परमात्मा जीव के समान शरीर शरीरी भाव को धारण नहीं करता किन्तु साक्षी रूप से सर्व शरीरों में विद्यमान है भोक्ता रूप से नहीं इसी अभिप्राय से "सम्भोगप्राप्तिरितिचेन्न वैशेष्यात्" १।२।८, ब्रह्मसूत्र में यह वर्णन किया है कि परमात्मा भोक्ता नहीं क्यों कि वह सब शरीरों में विशेष रूप से व्यापक है और गीता में 'क्षेत्रज्ञमपि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषुभारत' इस श्लोक में इस भाव को भली भाँति वर्णन किया है कि सब क्षेत्ररूपी शरीरों में क्षेत्रज्ञ परमात्मा है मालूम होता है कि गीता उपनिषद् तथा ब्रह्मसूत्रों में यह भाव इत्यादि पूर्वोक्त मन्त्रों से आया है ॥२॥

ईळेन्यः पवमानो रयिर्विराजति द्युमान् ।
मधोर्धाराभिरोजसा ॥ ३ ॥

ईळेन्यः । पवमानः । रयिः । वि । राजति । द्युऽमान् ।
मधोः । धाराभिः । ओजसा ॥ ३ ॥

पदार्थः—(ईळेन्यः) उपासनीयः परमात्मा (पवमानः) शुद्धरूपः (रयिः) सर्वविधसुखप्रदः (मधोर्धाराभिः) आनन्दवृष्टिभिः तथा (ओजसा) प्रतापेन च (विराजति) उत्कर्षप्राप्नोति सच (द्युमान्) ज्योतिःस्वरूपोऽस्ति ॥

पदार्थ—(ईळेन्यः) उपासनीय परमात्मा (पवमानः) जो शुद्धस्वरूप है (रयिः) "राति सुखमिति रयिः=जो सब प्रकार के सुखों

को देने वाला है" वह (मधोर्धाराभिः) आनन्द की वृष्टि से तथा (ओजसा) प्रभावशाली प्रताप से (विराजति) विराजमान है और वह परमात्मा (द्युमान्) प्रकाशस्वरूप है।

भावार्थ—उपासक को चाहिये कि वह उपास्यदेव की उपासना करे जो स्वप्रकाश और सबको पवित्र करने वाला तथा आनन्द की वृष्टि से सबको आनन्दित करता है वही धारणाध्यानादि योगज वृत्तियों से साक्षात् करने योग्य है ॥३॥

बर्हिः प्राचीनमोजसा पवमानः स्तृणन्हरिः ।
देवेषु देव ईयते ॥ ४ ॥

बर्हिः । प्राचीनम् । ओजसा । पवमानः । स्तृणन् । हरिः ।
देवेषु । देवः । ईयते ॥ ४ ॥

पदार्थः—(बर्हिः) सर्वोत्कृष्टः परमात्मा (ओजसा) स्वतेजसा सर्वम् (पवमानः) पुनानः (प्राचीनम्) प्रवाह रूपेण संसारम् (स्तृणन्) कार्यरूपेण विपरिणमयन् (हरिः) अन्ते स्वस्मिन् अन्तर्भावयति (देवेषु) सर्वदिव्यवस्तुषु (देवः) सर्वाधिकद्योतमानः सएव ध्यानेन (ईयते) साक्षात्क्रियते ॥

पदार्थ—(बर्हिः) "बृंहतीति बर्हिः = सब से बड़ा" परमात्मा जो (ओजसा) अपने प्रकाश से सबको (पवमानः) पवित्र करता है और (प्राचीनम्) प्रवाह रूप से अनादि संसार को (स्तृणन्) कार्यरूप करता हुआ (हरिः) अन्त में "हरतीति हरिः" अपने में लय कर लेता है (देवेषु) सब दिव्य वस्तुओं में (देवः) "दीव्यतीति देवः = जो सर्वोपरि दीप्तिमान् है वह ध्यान द्वारा (ईयते) साक्षात्कार किया जाता है।

भावार्थ—वह देव जो सब दिव्य वस्तुओं में दिव्य स्वरूप है वही एक मात्र उपासनीय है अन्य नहीं । इस देव शब्द की व्याख्या "एषो देवः प्रदिशोनु सर्वा" यजु० ३२ । ४ ॥ इस वेद वाक्य में स्पष्ट रीति से पायी जाती है और "एको देवः सर्वभूतेषु गूढः" श्वे०-६।११। इत्यादि उपनिषद्वाक्यों में इसी देव का वर्णन पाया जाता है । इसी देवका इस मन्त्र में जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय का एकमात्र हेतु कथन किया है । ज्ञात होता है कि "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद् विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म" तै०-३।१। इत्यादि वाक्यों में जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय का हेतु जो ब्रह्म को माना गया है वह इसी वेदमन्त्र के आधार पर है । केवल भेद इतना है कि उपनिषद्वाक्यों में ब्रह्म शब्द है यहां बर्हि शब्द है ब्रह्म और बर्हिः दोनों एकार्थवाची शब्द हैं । क्योंकि दोनों "बृहि वृद्धौ" इस धातु से सिद्ध होते हैं ।

जिन लोगों ने बर्हिः के माने कुशासन और हरिः के माने यहां हरे रङ्गवाले सोम के किये हैं उन्हों ने अत्यन्त भूल की है । क्योंकि उपक्रम उपसंहार में यहां परमात्मा का वर्णन है और परमात्मवाची शब्द ही इस मण्डल में अधिकता से पाये जाते हैं ॥४॥

उदातैर्जिहते बृहद्द्वारो देवीर्हिरण्ययीः ।
पवमानेन सुष्टुताः ॥ ५ ॥ २४ ॥

उत् । आतैः । जिहते । बृहत् । द्वारः । देवीः । हिरण्ययीः । पवमानेन सुऽस्तुताः ॥ ५ ॥

पदार्थः—(देवीः, हिरण्ययीः) प्रकृतेर्दिव्यशक्तयः धनाद्यैश्वर्यदात्र्यः (पवमानेन) पूजार्हपरमात्मना सह (सुष्टुताः)

उपवर्णिताः (बृहद्द्वारः) ऐश्वर्यमूलानि भवन्ति (आतैः) तद्वि-ज्ञानेन विज्ञानिनः दिग्भिः (उद्, जिहते) सर्वत्र व्याप्नुवन्ति ॥

पदार्थ—(देवीः, हिरण्ययीः) प्रकृति की दिव्य शक्तियें जो धनादि ऐश्वर्यों के देने वाली हैं वह (पवमानेन) शुद्ध परमात्मा के साथ (सुष्टुताः) वर्णन की हुयीं (बृहद्द्वारः) ऐश्वर्य का मूल होती हैं और (आतैः) उनके विज्ञान से विज्ञानी लोग दिशाओं द्वारा (उद् जिहते) सर्वत्र फैल जाते हैं ॥

भावार्थ—जो लोग प्रकृति पुरुष की विद्या को जानते हैं कि परमात्मा निमित्त कारण और प्रकृति संसार का उपादान कारण है अर्थात् प्रकृति में ही नाना प्रकार की विद्याओं के बीज भरे पड़े हैं उस के तत्त्व ज्ञान से वे लोग सब दिशाओं में फैल सकते हैं तात्पर्य यह है कि अभ्युदय तथा निःश्रेयस दोनों के विज्ञान से होते हैं एक के विज्ञान से नहीं ॥५॥१४॥

अथ परमात्मन उपासनार्थमुषःकालस्य महत्त्वं वर्णयतिः—

अब पूर्वोक्त परमात्मा की उपासनार्थ उषःकाल का महत्व कथन करते हैं ।

सुशिल्पे बृहती मही पवमानो वृषण्यति ।
नक्तोषासा न दर्शते ॥ ६ ॥

सुऽशिल्पे इति सुऽशिल्पे । बृहती इति । मही इति । पवमानः । वृषण्यति । नक्तोषसा । न । दर्शते इति ॥६॥

पदार्थः—(नक्तोषासा) रात्रिरुषःकालश्च (दर्शते) ईशोपासनार्हौस्तः (सुशिल्पे) सुष्ठु कलाकौशलादिविद्यासाध-नार्हौ चस्तः (बृहती) महान्तौ (मही) पूज्यौ सफलनीयौ

चस्तः अत्र च (पवमानः) उपास्यमानः परमात्मा (वृषण्यति) सर्वान्कामान्ददाति अभक्तांश्च (न) न ददाति ॥

पदार्थ—(नक्तोषासा) रात्रि और उषःकाल (दर्शते) परमात्मा की उपासना करने योग्य हैं (सुशिल्पे) और सुन्दर २ कला कौशलादि विद्याओं के अनुसन्धान करने योग्य हैं (बृहती) बड़े और (मही) पूज्य अर्थात् सफल करने योग्य हैं इनकालों में (पवमानः) उपास्यमान परमात्मा (वृषण्यति) सब कामनाओं को देता है और जो इस प्रकार के उपासक नहीं उनकी कामनाओं को (न) नहीं पूर्ण करता।

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते हैं कि उष काल अपने स्वाभाविक धर्म से ऐसा उत्तम है कि ऐसा अन्य कोई काल नहीं, इसमें मनुष्य की ईश्वरोपासना की ओर स्वाभाविक रुचि होती है इस लिये इस ब्रह्म मुहूर्त का वर्णन वेदों में बहुधा आता है इसी भाव को लेकर मनुआदि ग्रन्थों में ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत, इत्यादि कहा है कि ब्रह्म मुहूर्त में उठे और परमात्मा का चिन्तन करे ॥६॥

उभा देवा नृचक्षसा होतारा दैव्या हुवे ।
पवमान इन्द्रो वृषा ॥ ७ ॥

उभा । देवा । नृऽचक्षसा । होतारा । दैव्या । हुवे ।
पवमानः । इन्द्रः । वृषा ॥ ७ ॥

पदार्थः—(इन्द्रः) अन्नाद्यैश्वर्यस्य दाता परमेश्वरः (वृषा) सर्वकामप्रदः (पवमानः) यः सर्वस्य पवित्रकारकः तम् (उभा) उभौ (देवा) दिव्यशक्तिशालिनौ ज्ञानयोगकर्मयोगौ (नृचक्षसा) ईश्वरप्रत्यक्षकारकौ (होतारा) अद्भुतसामर्थ्यप्रदौ (दैव्या) यौच दिव्यशक्तिसम्पन्नौ स्तः ताभ्यामहम् (हुवे) ईश्वरं साक्षात्करोमि ॥

पदार्थ—(इन्द्रः) इरामन्नाद्यैश्वर्यं ददातीतीन्द्रः परमात्मा जो इरा अन्नादि ऐश्वर्यों को देय उस का नाम इन्द्र है और (वृषा) वह इन्द्ररूप परमात्मा वर्षतीतिवृषा जो सब कामनाओं को देने वाला है (पवमानः) सब को पवित्र करने वाला है उस परमात्मा को (उभा) दोनों (देवा) दिव्य शक्तियों वाले जो कर्म योग और ज्ञानयोग हैं (नृचक्षसा) और ईश्वर के साक्षात् कराने वाले (होतारा) अपूर्व सामर्थ्य देने वाले ज्ञान तथा कर्म द्वारा (दैव्या) जो दिव्य शक्ति सम्पन्न हैं उनसे मैं (हुवे) परमात्मा का साक्षात्कार करता हूं ॥

भावार्थ—ज्ञानयोगी और कर्मयोगी पुरुष जैसा परमात्मा का साक्षात्कार कर सकता है इस प्रकार अन्य कोई भी नहीं कर सकता क्योंकि कर्म द्वारा मनुष्य शक्ति बढ़ा कर ईश्वर की दया का पात्र बनता है और ज्ञान द्वारा उसका साक्षात्कार करता है इसी अभिप्राय से "ना-यमात्मा प्रवचनेन लभ्यो नमेधया न बहुना श्रुतेन यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा वृणुते तनुंस्वाम्" कठ. २। २३ ॥ अर्थात् बहुत पढ़ने पढ़ाने से परमात्मा का साक्षात्कार नहीं होता किन्तु जब पुरुष सत्कर्मी बनकर अपने आप को ईश्वर के ज्ञान का पात्र बनाता है तो वह उसको लाभ करता है। पात्र से तात्पर्य यहां अधिकारी का है और वह अधिकार ज्ञान तथा कर्म दोनों से उत्पन्न होता है केवल ज्ञान से नहीं इसका नाम समसमुच्चय है अर्थात् ज्ञान योग तथा कर्मयोग दोनों साधनों से सम्पन्न होने पर जिज्ञासु परमात्मा को लाभ करता है अन्यथा नहीं।

जिन लोगों ने क्रमसमुच्चय मान कर केवल ज्ञान की ही मुख्यता सिद्ध की है उन के मत में वेद का कोई प्रमाण ऐसा नहीं मिलता जो कर्म से ज्ञान को बड़ा व मुख्य सिद्ध करे क्योंकि "कुर्वन्नेवेह कर्माणि" यजुः ४०–२ इत्यादि मन्त्रों में कर्म का वर्णन यावदायुष कर्तव्यत्वेन वर्णन किया है और जो "तमेव विदित्वाति मृत्युमेति" यजुः ३१।१८।

इस प्रमाण को देकर कर्म की मुख्यता का खण्डन करते हैं सो ठीक नहीं क्यों कि इस में भी विदित्वा और एति ये दोनों क्रिया हैं अर्थात् उसको जान कर प्राप्त होते हैं ये भी दोनों क्रिया हैं इससे सिद्ध है कि जानना भी एक प्रकार की क्रिया ही है इस लिये ज्ञायतेऽनेनेति ज्ञानम् ऐसी व्युत्पत्ति करने पर ज्ञान भी एक कर्म की विशेष अवस्था ही सिद्ध होता है कुछ भिन्न वस्तु नहीं इसी अभिप्राय से "न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते । परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च" श्वे.६।८। इत्यादि उपनिषद् वाक्यों में क्रिया की प्रधानता पाई जाती है क्योंकि "ज्ञानबलाभ्यां सहिता क्रिया ज्ञानबलक्रिया" अर्थात् ज्ञान और बल के सहित जो क्रिया उसका नाम ज्ञान बल क्रिया है और व्याकरण का सामान्य नियम ये पाया जाता है कि अप्रधान में तृतीया होती है और ज्ञान बल में तृतीया है इस लिये क्रिया से उक्त वाक्य में कर्म की प्रधानता पाई जाती है। अथवा यों कहो कि "एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति" सांख्य योग अर्थात् ज्ञानयोग और कर्म योग दोनों सूक्ष्म विचार करने में एक ही हैं अर्थात् अवबोधात्मक कर्म का नाम ज्ञान है और केवल अनुष्ठानात्मक कर्म का नाम कर्म है और जो मुक्ति का साक्षात् साधन अवबोधात्मक कर्म है इस लिये वहाँ भी ज्ञान कर्म का समुच्चय है अर्थात् मिलाप है दोनों मिल कर ही मुक्ति के साधन हैं एक नहीं ॥७॥

भार॑ती पव॑मानस्य सर॑स्वतीळा॑ म॒ही ।
इ॒मं नो॑ य॒ज्ञमाग॑मन्ति॒स्रो दे॒वीः सु॒पेश॑सः ॥ ८ ॥

भार॑ती । पव॑मानस्य । सर॑स्वती । इळा॑ । म॒ही । इ॒मम् । नः॒ । य॒ज्ञम् । आ । ग॒म॒न् । ति॒स्रः । दे॒वीः । सु॒ऽपेश॑सः ॥८॥

पदार्थः—(भारती) ईश्वरविषयकबुद्धिः (सरस्वती) विज्ञानबुद्धिः इला, मही) सर्वपूज्या बुद्धिः (तिस्रः) इमास्तिस्रोऽपि (सुपेशसः, देवीः) सुस्वरूपा देव्यः (पवमानस्य) अखिलजनशोधकस्येश्वरस्य (इमम्, यज्ञम्) एतंयज्ञमभि (नः) अस्मभ्यम् (आगमन्) आगत्य प्राप्नुयुः ॥

पदार्थ—(भारती) बिभर्त्तीति भरतस्तस्येयं भारती=ईश्वरविषयिणी बुद्धि (सरस्वती) सरोविद्यतेऽस्या इति सरस्वती विविधज्ञानविषयिणी बुद्धि और (इळा, मही) सर्वपूज्या बुद्धि (तिस्रः,) ये तीनों प्रकार की (सुपेशसः, देवीः) सुन्दर बुद्धियें (पवमानस्य) सब को पवित्र करने वाले परमात्मा के (इमं, यज्ञम्) इस ज्ञानरूपी यज्ञ में (नः) हमको (आगमन्) प्राप्त हों ॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे पुरुषो ! तुम ज्ञानयज्ञ में विद्या प्राप्ति के लिये प्रार्थना करो । इसी अभिप्राय से उक्त मन्त्र में विद्याविधायक भारती, सरस्वती और इला ये नाम आये हैं । भारती, सरस्वती और विद्या ये एकार्थवाची शब्द हैं । इस प्रकार परमात्माने विद्यावृद्धि के लिये जीवों की प्रार्थना द्वारा उपदेश किया है । जैसा कि " धियोयोनः प्रचोदयात् " इस वेदमन्त्र में विद्या वृद्धि का उपदेश है ऐसा ही उक्तमन्त्र में विद्या वृद्धि के लिये उपदेश है ॥८॥

त्वष्टा॑रमग्र॒जां गो॒पां पु॑रो॒यावा॑नमा हु॑वे ।
इन्दु॒रिन्द्रो॒ वृषा॒ हरि॒: पव॑मानः प्र॒जाप॑तिः ॥ ९ ॥

त्वष्टा॑रम् । अ॒ग्र॒ऽजाम् । गो॒पाम् । पु॒रः॒ऽयावा॑नम् । आ । हु॒वे ।
इन्दु॑: । इन्द्र॑: । वृषा॑ । हरि॑: । पव॑मानः । प्र॒जाऽप॑तिः ॥९॥

पदार्थः—(त्वष्टारम्) प्रलयकाले परमाणुरूपेण सृष्टेः

कर्तारम् (अग्रजाम्) सर्वेषामादिभूतम् (गोपाम्) सर्वेषां रक्षितारम् (पुरोयावानम्) सर्वाग्रणीदेवम् (आहुवे) वयमुपास्यत्वेन मन्येमहि सएव (इन्दुः) प्रेम्णा सर्वेषां क्लेदयिता (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (वृषा) सर्वकामान् वर्षुकः (हरिः) दुःखानांहर्ता (पवमानः) पवित्रात्मा (प्रजापतिः) अखिलजनरक्षकश्चास्ति ॥

पदार्थ—(त्वष्टारम्) त्वक्षतीति त्वष्टा = जो इस सृष्टि को प्रलय काल में परमाणुरूप कर देता है उसका नाम त्वष्टा है (अग्रजाम्) अग्रेजाता अग्रजा = जो सब से प्रथम हो अर्थात् सबका आदिमूल कारण हो उसका नाम अग्रजा है (गोपाम्) गोपायतीति गोपाः = जो सर्वरक्षक हो उसका नाम यहां गोपा है (पुरोयावानम्) जो सर्वाग्रणी है उस देव को (आहुवे) हम उपास्य समझें वही देव (इन्दुः) सबको प्रेमभाव से आर्द्र करने वाला (इन्द्रः) परमैश्वर्यवाला (वृषा) सब कामनाओं की वर्षा करने वाला (हरिः) और सब दुःखों को हर लेने वाला (पवमानः) पवित्रात्मा और (प्रजापतिः) सब प्रजा का पालन करने वाला है ।

भावार्थ—इस मन्त्र में परमात्मा ने सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयकर्ता पुरुष विशेष का इस ज्ञान यज्ञ में उपास्य रूप से निर्देश किया है और त्वष्टादि द्वितीयान्त इस लिये हैं कि उपासनात्मक क्रिया के ये सब कर्म हैं अर्थात् इनकी उपासना उक्त यज्ञ में की जाती है ॥९॥

अथोक्तज्ञानयज्ञ उपासनीयस्य परमात्मनो गुणा वर्ण्यन्तेः—

अब उक्त यज्ञ में उपासनीय परमात्मा के गुण कथन करते हैं:—

वनस्पतिं पवमानमध्वा समङ्ग्धि धारया ।
सहस्रवल्शं हरितं भ्राजमानं हिरण्ययम् ॥ १० ॥

वनस्पतिम् । पवमान । मध्वा । सम् । अङ्ग्धि । धारया ।
सहस्रऽवल्शम् । हरितम् । भ्राजमानम् । हिरण्ययम् ॥१०॥

पदार्थः—(पवमान) हे सर्वस्य पावयितः परमात्मन् ! भवान् (मध्वा, धारया) सुष्टुवर्षेण (वनस्पतिम्) इमं वनस्पतिम् (समङ्ग्धि) सिञ्चतु कथम्भूतम् (सहस्रवल्शम्) अनेक शाखम् (हरितम्) हरितवर्णम् (भ्राजमानम्) देदीप्यमानम् (हिरण्ययम्) भास्वरम् तं सिञ्चतु ॥

पदार्थ—(पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! आप (मध्वा, धारया) सुवृष्टि से (वनस्पतिम्) इस वनस्पति को (समङ्ग्धि) सींचें जो वनस्पति (सहस्रवल्शं) अनन्त प्रकार की है, (हरितं) हरे रङ्गवाली है, (भ्राजमानं) नाना प्रकार से देदीप्यमान है और (हिरण्ययं) सुन्दर ज्योति वाली है ॥

भावार्थ—परमात्मा से प्रार्थना है कि वह चराचर ब्रह्माण्डगत वनस्पति को सिञ्चन करे । इस स्वभावोक्ति अलङ्कार द्वारा परमात्मा के वृष्टिकर्तृत्व भावका निरूपण किया है । इसी प्रकार अन्यत्र भी वेदमन्त्रों में "कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः" अथ० ३ । ६ । २७ । ५ । इत्यादि स्थलों में वनस्पतिको परमात्मा के ग्रीवास्थानी वर्णन किया है । इसी प्रकार वनस्पति को विराट्स्वरूप की शोभा वर्णन करते हुए ईश्वर से स्वभावसिद्ध प्रार्थना है ॥१०॥

विश्वे देवाः स्वाहाकृतिं पवमानस्या गत ।
वायुर्बृहस्पतिः सूर्योऽग्निरिन्द्रः सजोषसः ॥ ११ ॥ २५ ॥

विश्वे । देवाः । स्वाहाऽकृतिम् । पवमानस्य । आ । गत ।
वायुः । बृहस्पतिः । सूर्यः । अग्निः । इन्द्रः । सऽजोषसः ॥११॥

पदार्थः—(पवमानस्य) सर्वपूज्यपरमात्मनः (स्वाहाकृतिम्) सुवाचम् (वायुः) सर्वविधविद्याज्ञः (बृहस्पतिः) सुवक्ता (सूर्यः) दार्शनिकतत्वप्रकाशकः (अग्निः) प्रतिभाशाली (इन्द्रः) विद्यात्मकैश्वर्यवान् (विश्वे, देवाः) इमे सर्वे विद्वांसः (सजोषसः) मिथः सखायः (आगत) अस्मिन् ज्ञानयज्ञे आगच्छन्तु ॥

पदार्थ—(पवमानस्य) सर्वपूज्य परमात्मा की (स्वाहाकृतिं) सुन्दरवाणी को (वायुः) सर्व विद्याओं में गति वाला (बृहस्पतिः) सुन्दर वक्ता (सूर्य्यः) दार्शनिक तत्त्वों का प्रकाशक (अग्निः) प्रतिभाशाली (इन्द्रः) विद्यारूपी ऐश्वर्य्यवाला (विश्वे, देवाः) ये सब विद्वान् (सजोषसः) परस्पर प्रेमभाव रखने वाले (आगत) इस ज्ञान रूपी यज्ञ में आकर उपस्थित हों ।

भावार्थ—इस सूक्त के उपसंहार में विद्वानों की सङ्गति कथन की है कि उक्तगुणसम्पन्न विद्वान् लोग ज्ञानयज्ञ में आकर विविधप्रकार के ज्ञानों को उपलब्ध करें । तात्पर्य्य यह है कि इस मन्त्र में ज्ञानयज्ञ को सर्वोपरि वर्णन किया है । वस्तुतः ज्ञानयज्ञ सर्वोपरि है । इसी अभिप्राय से गीता में कहा है कि "श्रेयान् द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परन्तप !" हे शत्रुतापक अर्जुन ! द्रव्यमय यज्ञों से ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ है ॥११॥

इति पञ्चमं सूक्तं पञ्चविंशो वर्गश्च समाप्तः ॥

५वां सूक्त और २५ वां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ नवर्चस्य षष्ठसूक्तस्य-

१-९ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः-१, २, ७ निचृद् गायत्री । ३-६, ९ गायत्री । ८ विराड् गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अथ परमात्मनः सकाशाद्बलमाह्लादश्च प्रार्थ्यते:—

अब परमात्मा से बल और आह्लाद की प्रार्थना की जाती है :—

मन्द्रया सोम धारया वृषा पवस्व देवयुः ।
अव्यो वारेष्वस्मयुः ॥ १ ॥

मन्द्रया । सोम । धारया । वृषा । पवस्व । देवऽयुः ।
अव्यः । वारेषु । अस्मऽयुः ॥ १ ॥

पदार्थः—(सोम) हे शान्त्यादिगुणसम्पन्न परमात्मन् ! भवान् (मन्द्रया) आह्लादिकया (धारया) वृष्ट्या (पवस्व) अस्मान्पुनातु यतोभवान् (वृषा) सर्वकामनाप्रदः (देवयुः) देवप्रियः (वारेषु, अव्यः) पृथिव्यादिविविधलोकेषु व्यापकश्चास्ति भवान् (अस्मयुः) अस्मान्सदेच्छन् प्रीणातु ॥

पदार्थ—(सोम) हे शान्त्यादिगुणसम्पन्न परमात्मन् ! आप (मन्द्रया) आह्लाद करने वाली (धारया) वृष्टि से (पवस्व) हमको पवित्र करें क्योंकि आप (वृषा) सब कामनाओं के देने वाले हैं । (देवयुः) देवताओं के प्रिय हैं और (वारेषु, अव्यः) पृथिव्यादि लोक लोकान्तरों में व्यापक हैं आप (अस्मयुः) हमको प्राप्त होकर आनन्दित करें ।

भावार्थ——परमात्मा इस ब्रह्माण्ड में सर्वत्र विराजमान है। दैवीसम्पत्तिवाले लोग उसको पा सकते हैं। इस अभिप्राय से परमात्मा को इस मन्त्र में देवप्रिय कथन किया गया है। वस्तुतः परमात्मा न किसी का प्रिय और न किसी का द्वेषी है ॥१॥

अभि त्यं मद्यं मदमिन्दविन्द्र इति क्षर ।
अभि वाजिनो अर्वतः ॥२॥

अभि । त्यम् । मद्यम् । मदम् । इन्दो इति । इन्द्रः । इति । क्षर । अभि । वाजिनः । अर्वतः ॥२॥

पदार्थः——(इन्दो) हे प्रेममय ! परमात्मन् ! भवान् (त्यं, मदं, मद्यम्) तमाह्लादजनकं प्रेममयं मद्यम् (अभिक्षर) वर्षतु यः (अभि, वाजिनः) अखिलबलकारकवस्तुषु मदर्हः (अर्वतः) यश्चैश्वर्येण सर्वत्रव्याप्तिं कारयति ॥

पदार्थ——(इन्दो) हे प्रेममय (इन्द्र) परमात्मन्, आप (त्यं, मदं, मद्यम्) उस आह्लाद जनक अपने प्रेममय मद की (अभि क्षर) वृष्टि करें जो (अभि, वाजिनः) सब बलकारक वस्तुओं में से हमारे योग्य है (अर्वतः) और जो ऐश्वर्य द्वारा सर्वत्र व्याप्त करानेवाला है ॥

भावार्थ——इस मन्त्र में सर्वोपरि हर्षजनक परमात्मा के प्रेम की प्रार्थना की गयी है ॥२॥

अभि त्यं पूर्व्यं मदं सुवानो अर्ष पवित्र आ ।
अभि वाजमुत श्रवः ॥३॥

अभि । त्यम् । पूर्व्यम् । मदम् । सुवानः । अर्ष । पवित्रे ।
आ । अभि । वाजम् । उत । श्रवः ॥३॥

पदार्थः—भवान् (त्यम, पूर्व्यम्, मदम्) तं नित्यानन्दम् (सुवानः) उत्पादयति येन जनः शश्वत्प्रीयते अतो भवान् (अभि, वाजम्) सर्वविधबलम् (उत) तथा (श्रवः) कीर्तिम् (अर्ष) मह्यम्प्रयच्छ ॥

पदार्थ—(पवित्र) हे सबको पावन करने वाले परमात्मन्! आप (त्यं, पूर्व्यं, मदं) उस नित्यानन्द को (सुवानः) प्रदान करने वाले हैं जिससे मनुष्य सदैव के लिये आनन्दलाभ करता है इसलिये आप (अभि, वाजं) सब प्रकार का बल (उत) और (श्रवः) ऐश्वर्य हमको (अर्ष) प्रदान करें ॥३॥

अनु द्रप्सास इन्दव आपो न प्रवतासरन् ।
पुनाना इन्द्रमाशत ॥४॥

अनु । द्रप्सासः । इन्दवः । आपः । न प्रवता । असरन् ।
पुनानाः । इन्द्रम् । आशत ॥४॥

पदार्थः—(द्रप्सासः) गमनशील ईश्वरः (इन्दवः) ऐश्वर्यसम्पन्नः (अनु) सर्वत्र अश्नुते (प्रवता, आपः, न) स्यन्दमानं जलमिव (असरन्) सरति स एव (पुनानाः) लोकं शोधयन् (इन्द्रम्) ऐश्वर्यम् (आशत) ददाति ।

पदार्थ—(द्रप्सासः) गतिशील परमात्मा (इन्दवः) ऐश्वर्य-सम्पन्न (अनु) सर्वत्र व्याप्त हो रहा है (प्रवता, आपः, न) बहते हुए जलों

के समान (असरन्) गति करता है । उक्त परमात्मा (पुनानाः) पवित्र करता हुआ (इन्दुं) ऐश्वर्य्य को (आशत) देता है ।

भावार्थ—जिस प्रकार सर्वत्र बहते हुए जल इस पृथिवी को नाना प्रकार के लतागुल्मादिकों से सुशोभित करते हैं इसी प्रकार परमात्मा अपनी व्यापकता से प्रत्येक प्राणों में आह्लाद उत्पन्न करता है ॥४॥

यमत्यमिव वाजिनं मृजन्ति योषणो दश ।
वने क्रीळन्तमत्यविम् ॥५॥२६॥

यम् । अत्यम्ऽइव । वाजिनम् । मृजन्ति । योषणः । दश ।
वने । क्रीलन्तम् । अतिऽअविम् ॥५॥२६॥

पदार्थः—(यम्, अत्यम्) यं सर्वगं परमात्मानम् (योषणः, दश) दश प्रकृतयः (वाजिनम्, इव) जीवात्मानमिव (मृजन्ति) शोधयन्ति स जीवात्मा योहि (वने) शरीररूपेवने (क्रीलन्ति) विहरति तथा च (अत्यविम्) इन्द्रियग्रामात्परोस्ति ॥

पदार्थ—(यं) जिस (अत्यं) सर्वव्यापक परमात्मा को (योषणः, दश) दश प्रकार की प्रकृतियें (वाजिनम्, इव) जीवात्मा के समान (मृजन्ति) शोभायुक्त करती हैं वह जीवात्मा जो (वने) शरीर रूपी वन में (क्रीळन्ति) क्रीड़ा कर रहा है और (अत्यविम्) इन्द्रियसंघात से परे है ।

भावार्थ—जिस प्रकार पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्मेन्द्रिय ये दशो मिल कर जीवात्मा की महिमा को बढ़ाते हैं इसी प्रकार पांच सूक्ष्म भूत और स्थूलभूत ये दोनों प्रकृतियें मिल कर परमात्मा के महत्व को वर्णन करते हैं कई एक लोगों ने दश के अर्थ यहां दश उँगुलियें दी हैं उनके मत में सोम रस दश उँगुलियों से लपेट कर खाया जाता है इस

लिये दश से उन्हों ने दश उँगलियें ली हैं पहले तो ये बात अन्यथा है कि सोमरस उँगुलियों से खाया जाता है क्योंकि सोमरस पीने की चीज है खाने की नहीं, अन्य युक्ति ये है कि इस मण्डल के प्रथम सूक्त मं० ७ में गृभ्णन्ति योषणा दश ये पाठ आया है जिस से दश इन्द्रियों का ग्रहण किया गया है उँगुलियों का नहीं ॥५॥२६॥

तं गोभिर्वृषणं रसं मदाय देववीतये ।
सुतं भराय सं सृज ॥६॥

तम् । गोभिः । वृषणम् । रसम् । मदाय । देववीतये ।
सुतम् । भराय । सं । सृज ॥६॥

पदार्थः—(तम्) पूर्वोक्तं परमात्मानम् (वृषणम्) कामपूरकं (मदाय) आह्लादाय (रसम्) रसरूपम् (देववीतये) ऐश्वर्यमुत्पादयितुम् (भराय) धारयितुम् (सुतम्) स्वतः सिद्धम् (संसृज) ध्यानविषयीकुरुत ॥

पदार्थ—(तम्) उक्त परमात्मा को (वृषणम्) जो कामनाओं का देने वाला है (मदाय) आह्लाद के लिये (रसम्) रस रूप है (देववीतये) ऐश्वर्य उत्पन्न करने के लिये (भराय) धारण करने के लिये (सुतम्) स्वतः सिद्ध उस परमात्मा को (संसृज) ध्यान का विषय बनाओ ।

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करता है कि हे जीव तू सर्वोपरि ब्रह्मानन्द के देने वाले ब्रह्म को एकमात्र लक्ष्य बनाकर उस के साथ तू अपनी चित्तवृत्तियों का योग कर इसका नाम आध्यात्मिक योग है रसके अर्थ यहां ब्रह्म के हैं किसी रस विशेष के नहीं क्योंकि "रसो वै सः रसं ह्येवायं लब्ध्वा आनन्दी भवति" तै० २ । ७ ।

अर्थात् वह ब्रह्म आनन्द स्वरूप है और उसके आनन्द को लाभ करके जीव आनन्दित होता है ॥६॥

देवो देवाय धारयेन्द्राय पवते सुतः ।
पयो यदस्य पीपयत् ॥७॥

देवः । देवाय । धारया । इन्द्राय । पवते । सुतः । पयः । यत् । अस्य । पीपयत् ॥७॥

पदार्थः—(देवः) प्रकाशस्वरूपः परमात्मा (देवाय) दिव्यशक्तये (इन्द्राय) ऐश्वर्यवते जिज्ञासवे (धारया) आनन्द वृष्ट्या (पवते) पवित्रीकरणं धारयति (सुतः) आनन्दस्याविर्भावकः सोऽस्ति (यत्) यतः (अस्य) इमं जिज्ञासुम् (पयः) पानार्हमानन्दं (पीपयत्) पाययति अत आविर्भावक आनन्दस्यास्ति ॥

पदार्थ—(देवः) दीव्यतीति देवः प्रकाशस्वरूप परमात्मा (देवाय) दिव्यशक्तिधारी (इन्द्राय) परमऐश्वर्य वाले जिज्ञासु के लिये (धारया) आनन्द की वृष्टि से (पवते) पवित्र करता है (सुतः) आनन्दों का आविर्भाव करने वाला है (यत्) जो (अस्य) इस पूर्वोक्त जिज्ञासु को (पयः) पानार्ह आनन्द को (पीपयत्) पिलाता है इसलिये वह आनन्दों का आविर्भाव करने वाला है ॥

भावार्थ—परमात्मा ही सब आनन्दों का आविर्भाव करनेवाला है । वह जिन पुरुषों को ब्रह्मानन्द का पात्र समझता है उनको आनन्द प्रदान करता है, यहां देव शब्द के अर्थ परमात्मा और दूसरे देव शब्द के अर्थ जिज्ञासु के—"स्याच्चैकस्य ब्रह्मशब्दवत्" ब्र० सू० २।३।५। इस सूत्र से ब्रह्मशब्द के समान हैं अर्थात् "तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व

तपो ब्रह्मेति" तै० ३।२। इस वाक्य में पहले ब्रह्म शब्द के अर्थ ईश्वर के हैं, दूसरे ब्रह्मशब्द के अर्थ तप के हैं, जिस प्रकार इसमें एक ही स्थान में दो अर्थ हो जाते हैं उसी प्रकार उक्त मन्त्र में देव शब्द के दो अर्थ करने में कोई दोष नहीं॥७॥

आत्मा यज्ञस्य रंह्या सुष्वाणः पवते सुतः।
प्रत्नं नि पाति काव्यम्॥८॥

आत्मा। यज्ञस्य। रंह्या। सुस्वानः। पवते। सुतः।
प्रत्नम्। नि। पाति। काव्यम्॥८॥

पदार्थः—पूर्वोक्तः परमात्मा (यज्ञस्य, आत्मा) यज्ञस्य आत्माऽस्ति (सुष्वाणः) सर्वस्य प्रेरकः तथा (सुतः) आनन्दस्य आविर्भावयिता (रंह्या) सर्वत्रगत्या (पवते) पुनाति, स एवं (प्रत्नं, काव्यम्) प्राचीनं काव्यम् (निपाति) निरन्तरं रक्षति॥

पदार्थ—पूर्वोक्त परमात्मा (यज्ञस्य, आत्मा) यज्ञ का आत्मा है (सुष्वाणः) सर्वप्रेरक और (सुतः) आनन्द का आविर्भावक (रंह्या) सर्वत्र गति रूप से (पवते) पवित्र करता है वही परमात्मा (प्रत्नं, काव्यम्) प्राचीन काव्य की (निपाति) रक्षा करता है॥

भावार्थ—परमात्मा सब यज्ञों का आत्मा है अर्थात् ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, ध्यानयज्ञ, ज्ञानयज्ञ इत्यादि कोई यज्ञ भी उसकी सत्ता के बिना नहीं हो सकता इसी अभिप्राय से ब्रह्मज्ञान की कई एक पुस्तकों में परमात्मा को अधियज्ञ रूप से वर्णन किया है, जो इस मन्त्र में काव्य शब्द आया है वह 'कवते इति कविः' इस व्युत्पत्ति से ज्ञानी का अभिधायक है और 'कवेः कर्म काव्यम्' इस प्रकार सर्वज्ञ परमात्मा की रचना रूप

वेद का नाम यहां काव्य है किसी आधुनिक काव्य का नहीं, तात्पर्य यह है कि वह अपने ज्ञानरूपी, वेद-काव्य द्वारा उपदेश करके सृष्टि की रक्षा करता है ॥ ८ ॥

एवा पुनान इन्द्रयुर्मदं मदिष्ठ वीतये ।
गुहा चिद्दधिषे गिरः ॥९॥२७॥

एव । पुनानः । इन्द्रऽयुः । मदम् । मदिष्ठ । वीतये । गुहा । चित् । दधिषे । गिरः ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (गुहा) भवान् स्वज्ञानमय्यां गुहायां (गिरः) वेदवाचः (दधिषे) धारयति (चित्) यतः (इन्द्रयुः) भवान् ऐश्वर्यमभिलाषुकः अतः (वीतये) ऐश्वर्याय ताभिः (मदं, मदिष्ठ) आनन्दं वर्द्धयतु ॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (गुहा) आपने अपनी ज्ञानरूपी गुहा में (गिरः) वेदरूपी वाणियों को (दधिषे) धारण किया है (चित्) क्योंकि (इन्द्रयुः) आप ऐश्वर्य के चाहनेवाले हैं इसलिये (वीतये) ऐश्वर्य के लिये (मदं, मदिष्ठ) उनके द्वारा हमारे आनन्द को बढ़ाइये ॥

भावार्थ—परमात्मा के ज्ञान में वेद सदैव रहते हैं आदि सृष्टि में परमात्मा लोकोपकार के लिये उनका आविर्भाव करता है इसी अभिप्राय से यहां काव्य अर्थात् वेद को प्रत्न अर्थात् सनातन विशेषण दिया है वेदों के नित्य मानने का भी यही प्रकार है अर्थात् प्रत्येक सर्ग के आदि में परमात्मा अपने ज्ञानरूप वेदों का आविर्भाव करता है और प्रलय काल में परमात्मा के ज्ञानरूप से वेद विराजमान रहते हैं ॥९॥

इति षष्ठं सूक्तं सप्तविंशतितमो वर्गश्च समाप्तः ॥

छठा सूक्त और सत्ताईसवां वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ नवर्चस्य सप्तमस्य सूक्तस्य—

१–९ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः । पवमानः सोमो देवता । छन्दः—१, ३, ५–९ गायत्री । २ निचृद्गायत्री । ४ विराड्गायत्री । षड्जः स्वरः ॥

अथ परमात्मनो विविधगुणाकरत्वं वर्ण्यते—

अब परमात्मा को अनेक धर्मों का आधार कथन करते हैं:—

असृग्रमिन्दवः पथा धर्मन्नृतस्य सुश्रियः ।
विदाना अस्य योजनम् ॥१॥

असृग्रम् । इन्दवः । पथा । धर्मन् । ऋतस्य । सुऽश्रियः ।
विदानाः । अस्य । योजनम् ॥१॥

पदार्थः—(इन्दवः) विज्ञानिनः (अस्य) अस्य परमात्मनो हि (योजनम्) सम्बन्धम् (विदाना) जानन्तः (सुश्रियः) विविधशोभाः दधति (ऋतस्य) तथा च सत्यस्यास्य परमात्मनः (धर्मन्) धर्माणि तिष्ठन्तः (असृग्रम्) सुगुणान् लभन्ते ॥

पदार्थ—(इन्दवः) विज्ञानी पुरुष (अस्य) इस परमात्मा के (योजनम्) सम्बन्ध को (विदाना) जानते हुए (सुश्रियः) अनन्त प्रकार की शोभाओं को धारण करते हैं (ऋतस्य) और इस सत्यरूप परमात्मा के (धर्मन्) धर्म में रहते हुए (असृग्रम्) अच्छे गुणों को लाभ करते हैं ॥

भावार्थ—जो पुरुष परमात्मा और प्रकृति के सम्बन्ध को जा-

नते हैं और परमात्मा के यथार्थ ज्ञान को जानकर उसके धर्मपथ पर चलते हैं वे संसार में ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं॥ १॥

प्र धारा मध्वो अग्रियो महीरपो वि गाहते।
हविर्हविष्षु वन्द्यः॥२॥

प्र। धाराः। मध्वः। अग्रियः। महीः। अपः।
वि। गाहते। हविः। हविष्षु। वन्द्यः॥२॥

पदार्थः—(हविष्षुः) सर्वेष्वादेयपदार्थेषु (हविः) सर्वाधिकग्राह्योऽस्ति (वन्द्यः) विश्ववन्दनीयः स एव (अग्रियः) अग्रणीः परमात्मा (मध्वः, धाराः) मधुरधाराभिः (महीः) पृथिवीम् (अपः) द्युलोकञ्च (विगाहते) अवगाहते॥

पदार्थ—(हविष्षु) 'हूयते गृह्यत इति हविः' संपूर्ण ग्रहणयोग्य पदार्थों में से जो (हविः) सर्वोपरि ग्राह्य है और (वन्द्यः) सम्पूर्ण विश्व से वन्दनीय है वह (अग्रियः) अग्रणी परमात्मा (मध्वः, धाराः) मीठी धाराओं से (महीः) पृथिवी लोक तथा (अपः) द्युलोक को (विगाहते) अवगाहन करता है॥ २॥

भावार्थ—सर्वजनवन्दनीय परमात्मा लोकलोकान्तरों में सर्वत्र ही अपने मधुर आनन्द की वृष्टि करता है॥ २॥

प्र युजो वाचो अग्रियो वृषाव चक्रदद्वने।
सद्माभि सत्यो अध्वरः॥३॥

प्र। युजः। वाचः। अग्रियः। वृषा। अव। चक्रदत्। वने।
सद्म। अभि। सत्यः। अध्वरः॥३॥

पदार्थः--हे परमात्मन् ! भवान् (अध्वरः) अहिंसकः सत्यवर्त्मनोदर्शकश्चास्ति (सत्यः) सत्यस्वरूपः (वृषा) अखिलकामवर्षणशीलः तथा (अग्रियः) सर्वाग्रणीः तथा (प्रयुजः, वाचः) उपयुक्तवाचां प्रकाशकः अस्ति (वने, सद्म, अभि) याज्ञिकोपासनासु (अव, चक्रदत्) संस्थाप्यते ॥

पदार्थ--हे परमात्मन् ! आप (अध्वरः) "नध्वरतीत्यध्वरः अध्वानं राति वा अध्वरः" हिंसावर्जित हैं और सत्य का रास्ता दिखलाने वाले हैं (सत्यः) सत्य स्वरूप हैं (वृषा) कामनाप्रद तथा (अग्रियः) सब से अग्रणी और (प्रयुजः, वाचः) उपयुक्तवाणी के बोलनेवाले हैं (वने, सद्म, अभि) याज्ञिक उपासनाओं में (अव, चक्रदत्) उपास्य ठहराये जाते हैं ।

भावार्थ--परमात्मा सत्यस्वरूप अर्थात् त्रिकालाबाध्य है ऐसे सत्यादि पदों से उपनिषदों में "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" ये लक्षण किये गये हैं ॥ ३ ॥

परि यत्काव्या कविर्नृम्णा वसानो अर्षति ।
स्वर्वाजी सिषासति ॥४॥

परि । यत् । काव्या । कविः । नृम्णा । वसानः । अर्षति ।
स्वः । वाजी । सिसासति ॥४॥

पदार्थः--स परमात्मा (कविः) सर्वज्ञः (नृम्णा) ऐश्वर्यम् (वसानः) धारयति (पर्यर्षति) सर्वगतिरस्ति (स्वर्वाजी) आनन्दमयबलवान् तथा (काव्या, सिषासति) कविकर्माणि प्रचिचारयिषति ॥

पदार्थ—वह परमात्मा (कविः) सर्वज्ञ है "कवते जानाति सर्वमिति कविः" जो सबको जाने उसका नाम कवि है और (नृम्णा) ऐश्वर्यों को (वसानः) धारण करनेवाला (पर्यर्षति) सर्वत्र प्राप्त है (स्ववांजी) आनन्दरूप बलवाला है तथा (काव्या, सिषासति) कवित्वरूप कर्मों के प्रचार की इच्छा करता है ॥४॥

पवमानो अभि स्पृधो विशो राजेव सीदति ।
यदीमृण्वन्ति वेधसः ॥५॥२८॥

पवमानः । अभि । स्पृधः । विशः । राजाऽइव । सीदति ।
यत् । ई । ऋण्वन्ति । वेधसः ॥५॥

पदार्थः—(पवमानः) सर्वस्यपावयिता (अभि, स्पृधः) सर्वोत्कर्षेण वर्तमानः (विशः, राजा, इव, सीदति) प्रजाः राजेवानुशास्ति (यद्, ईम्) सम्यक् (ऋण्वन्ति) सत्कर्मसु प्रेरयति (वेधसः) सर्वोपरिज्ञाता विधाता चास्ति ॥

पदार्थ—(पवमानः) "पवते, इतिपवमानः" सबको पवित्र करने वाला (अभिस्पृधः) सबको मर्दन करके विराजमान है (विशः राजा, इव सीदति) प्रजाओं को राजा के समान अनुशासन करता है (यद्, ईम्) भली भाँति (ऋण्वन्ति) सत्कर्मों में प्रेरणा करता है (वेधसः) सर्वोपरि बुद्धिमान् है ॥

भावार्थ—राजा की उपमा यहाँ इस लिये दी गयी है कि राजा का शासन लोकप्रसिद्ध है इस अभिप्राय से यहाँ राजा का दृष्टान्त है, ईश्वर के समान बलसूचना के अभिप्राय से नहीं और जो मन्त्र में बहुवचन है वह व्यत्यय से है ॥ ५ । २८ ।

अव्यो वारे परि प्रियो हरिर्वनेषु सीदति ।
रेभो वनुष्यते मती ॥६॥

अव्यः । वारे । परि । प्रियः । हरिः । वनेषु । सीदति ।
रेभः । वनुष्यते । मती ॥६॥

पदार्थः—स परमेश्वरः (अव्यः, वारे) प्रकाशमानस्वादिलोकेषु (परि, सीदति) संतिष्ठते (प्रियः) सर्वहितकरोऽस्ति (हरिः) अखिलजनस्य दुःखं हरति (वनेषु) उपासनादिभक्तिषु तस्यैवोपासनया (मती, वनुष्यते) बुद्धिः शुध्यति (रेभः) वेदादिशब्दप्रकाशकोऽस्ति ॥

पदार्थ—वह परमात्मा (अव्यः, वारे) "अव्यते प्रकाशते इति अविर्स्वादिलोकः" प्रकाशवाले लोकों में (परि, सीदति) रहता है (प्रियः) सर्वप्रिय है (हरिः) सब के दुःखों को हरण करनेवाला है, (वनेषु) उपासनादि भक्तियों में उसी की उपासना से (मती, वनुष्यते) बुद्धि निर्मल होती है (रेभः) वेदादि शब्दों का प्रकाशक है ॥

भावार्थ—परमात्मा सब लोकलोकान्तरों में व्यापक है और भक्तों की बुद्धि में विराजमान है अर्थात् जिसकी बुद्धि उपासनादि सत्कर्मों से निर्मल हो जाती है उसी की बुद्धि में परमात्मा का आभास पड़ता है ॥६॥

स वायुमिन्द्रमश्विना साकं मदेन गच्छति ।
रणा यो अस्य धर्मभिः ॥७॥

सः । वायुम् । इन्द्रम् । अश्विना । साकम् । मदेन । गच्छति । रण । यः । अस्य । धर्मभिः ॥७॥

पदार्थः—(यः) यः पुरुषः (अस्य, धर्मभिः) अस्य परमात्मनः धर्मैः सह वर्त्तमानः (रणा) रमते (सः) समनुष्यः (वायुम्) ज्ञानिना (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवता (अश्विना) ज्ञानयोगिकर्मयोगिभ्यां च (साकम्) सह (मदेन) गर्वेण (गच्छति) याति ॥

पदार्थ—(यः) जो पुरुष (अस्य, धर्माभिः) इस परमात्मा के धर्मों को धारण करता हुआ (रणा) रमण करता है (सः) वह (वायुम्) ज्ञानी यज्ञकर्मा पुरुष के और (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवाले पुरुष के (अश्विना) ज्ञानयोगी और कर्मयोगी पुरुष के (साकम्) साथ (मदेन) अभिमान से (गच्छति) चल सकता है ॥

भावार्थ—जो पुरुष परमात्मा के अपहतपाप्मादि धर्मों को धारण करता है वह ज्ञानी विज्ञानी आदिकों की सब पदवियों को प्राप्त होता है अर्थात् अभिमान के साथ वह ज्ञानी विज्ञानी विद्वानों के मद को मर्दन कर सकता है ॥ ७ ॥

आ मित्रावरुणा भगं मध्वः पवन्त ऊर्मयः ।
विदाना अस्य शक्मभिः ॥८॥

आ । मित्रावरुणा । भगम् । मध्वः । पवन्ते । ऊर्मयः । विदानाः । अस्य । शक्मभिः ॥ ८ ॥

पदार्थः—येषां विदुषाम् (मध्वः, ऊर्मयः) मधुरवृत्तयः (भगम्) ईश्वरैश्वर्यमभि प्रवर्तन्ते तथा (मित्रावरुणा) ईश्वरस्य प्रेमाकर्षणशक्तिमभि च प्रवर्त्तन्ते, ते (विदाना) विद्वांसः (अस्य, शक्मभिः) परमात्मानन्दैः (आपवन्ते) कृत्स्नं जगत्पुनन्ति ॥

पदार्थ—जिन विद्वानों की (मध्वः, ऊर्मयः) मीठी वृत्तियें (भगम्) ईश्वर के ऐश्वर्य की ओर लगती हैं तथा (मित्रावरुणा) ईश्वर के प्रेम और आकर्षणरूप शक्ति की ओर लगती हैं वे (विदाना) विज्ञानी (अस्य, शवसाभिः) इस परमात्मा के आनन्द से (आ, पवन्ते) सम्पूर्ण संसार को पवित्र करते हैं ॥

भावार्थ—ईश्वरपरायण लोग केवल अपने आप का ही उद्धार नहीं करते किन्तु अपने भावों से सम्पूर्ण संसार का उद्धार करते हैं ॥८॥

अस्मभ्यं रोदसी रयिं मध्वो वाजस्य सातये ।
श्रवो वसूनि सञ्जितम् ॥९॥२९॥

अस्मभ्यम् । रोदसी इति । रयिम् । मध्वः । वाजस्य । सातये । श्रवः । वसूनि । सं । जितम् ।

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (रोदसी) द्यावापृथिव्योर्मध्ये (मध्वः, वाजस्य) महतोबलस्य (सातये) प्राप्तये (रयिम्) धनम् (श्रवः) ऐश्वर्यम् (वसूनि) रत्नानि च (सञ्जितम्) प्रयच्छतु मह्यम् ॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (रोदसी) दिव और पृथिवी लोक के मध्य में (मध्वः, वाजस्य) बड़े बल की (सातये) प्राप्ति के लिये (रयिम्) धन (श्रवः) ऐश्वर्य (वसूनि) रत्न (सञ्जितम्) हमको आप देवें ॥

भावार्थ—परमात्मा जब प्रसन्न होता है तो नाना प्रकार की विभूतियों का प्रदान करता है क्योंकि जो विभूतियें हैं वह सब परमात्मा का ऐश्वर्य है जैसा कि "यद्यद्विभूतिमत्सत्वं श्रीमदूर्जितमेववा ।

तत्तदेवावगच्छत्वं मम तेजोंशसंभवम्" गीता । अर्थात् जो कुछ विभूति वाली या शोभा वाली या बल वाली वस्तु है वह सब परमात्मा के ऐश्वर्य की सूचक है ॥९॥

इति सप्तमं सूक्तमेकोनत्रिंशत्तमोवर्गश्च समाप्तः ॥७॥२९॥

यह सातवां सूक्त और उनतीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥ ७॥२९॥

अथ नवर्चस्य अष्टमसूक्तस्य–

१–९ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः । पवमानः सोमो देवता । छन्दः–१, २, ५, ८ निचृद्गायत्री । ३, ४, ७ गायत्री । ६ पाद निचृद्गायत्री । ९ विराड् गायत्री । षड्जः स्वरः ॥

सम्प्रति सोमात्परमात्मनो निखिलकार्यसिद्धिः कथ्यते ।

अब उक्त सोमस्वभाव परमात्मा से कामनाओं की सिद्धि कथन करते हैं ।

एते सोमा अभि प्रियमिन्द्रस्य काममक्षरन् ।
वर्धन्तो अस्य वीर्यम् ॥१॥

एते । सोमाः । अभि । प्रियम् । इन्द्रस्य । कामम् । अक्षरन् ।
वर्धन्तः । अस्य । वीर्यम् ॥१॥

पदार्थः—(अस्य, इन्द्रस्य) अस्य जीवात्मनः (अभि, प्रियम्, कामम्) अभितइष्टां कामनाम् (अक्षरन्) ददत् (वीर्यम्)

तद्बलं च (एते, सोमाः) असौ परमात्मा (वर्धन्तः) समिद्धं कुर्वन्नास्ते ।

पदार्थ—(अस्य) इस (इन्द्रस्य) जीवात्मा की (अभिप्रियम्, कामम्) अभीष्ट-कामनाओं को (अक्षरन्) देता हुआ (वीर्यम्) उसके बल को (एते, सोमाः) उक्त परमात्मा (वर्धन्तः) बढ़ाता है ॥

भावार्थ—"बलमसि बलं मे देहि वीर्यमसि वीर्यं मे देहि" अथ० २।३।१७ जिस प्रकार इस मन्त्र में परमात्मा से बल वीर्यादिकों की प्रार्थना है इसी प्रकार इस मन्त्र में भी परमात्मा से बल वीर्यादिकों की प्रार्थना है ॥१॥

पुनानासंश्चमूषदो गच्छन्तो वायुमश्विना ।
ते नो धान्तु सुवीर्यम् ॥२॥

पुनानासंः । चमूसदंः । गच्छन्तः । वायुम् । अश्विना । ते । नः । धान्तु । सु । वीर्यम् ॥२॥

पदार्थः—(पुनानासः) सर्वजनं पुनानः परमात्मा (चमूषदः) प्रतिसैनिकबलं विद्यमानः (अश्विना) प्रत्येकं कर्मयोगिनं ज्ञानयोगिनं च तथा (वायुम्) गमनशीलं विद्वांसं च (गच्छन्तः) प्राप्नुवन् (ते) स ईश्वरः (नः) अस्माकम् (सुवीर्यम्) सुतेजः (धान्तु) धारयतु ॥

पदार्थ—(पुनानासः) सबको पवित्र करने वाला परमात्मा (चमूषदः) जो प्रत्येक सैनिक बल में रहता है (अश्विना) प्रत्येक कर्मयोगी और ज्ञानयोगी को तथा (वायुम्) गतिशील विद्वान् को (गच्छन्तः) जो प्राप्त है (ते) वह परमात्मा (नः) हमको (सुवीर्यम्) सुन्दरबल (धान्तु) धारण कराये ॥२॥

इन्द्रस्य सोम राधसे पुनानो हार्दि चोदय ।
ऋतस्य योनिमासदम् ॥३॥

इन्द्रस्य । सोम । राधसे । पुनानः । हार्दि । चोदय ।
ऋतस्य । योनिम् । आसदम् ॥३॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! भवान् (ऋतस्य, योनिम्) सत्यरूपिणो यज्ञस्य जनकः (आसदम्) कृत्स्नानां सत्यवादिनां हृत्सु वर्तमानोऽस्ति (सोम) हे सौम्यस्वभाव भगवन् ! (हार्दि) अभिलषितसिद्धये (इन्द्रस्य) जीवात्मानम् (राधसे) ऐश्वर्यार्थम् (चोदय) प्रेरयतु, यतः (पुनानः) सर्वस्य शोधको भवानेव ॥

पदार्थ—(ऋतस्य, योनिम्) हे परमात्मन्! आप सत्यरूपी यज्ञ के कारण हो (आसदम्) प्रत्येक सत्यवादी के हृदय में स्थिर हो (सोम) हे सौम्य स्वभाव परमात्मन ! (हार्दि) अभिलषित कामनाओं की सिद्धि के लिये (इन्द्रस्य) इस जीवात्मा की (राधसे) ऐश्वर्य के लिये (चोदय) आप प्रेरणा करें क्योंकि (पुनानः) आप सब को पवित्र करने वाले हैं ॥

भावार्थ—सत्य का स्थान एकमात्र परमात्मा ही है इसी अभिप्राय से "ऋतंचसत्यं चाभीद्धात्तपसः" इस मन्त्र में यह लिखा है कि दीप्तिमान परमात्मा से ऋत और सत्य अर्थात् ऋत शास्त्रीयसत्य, और सत्य वस्तुगतसत्य ये दोनों प्रकार के सत्य परमात्मा के आधार पर ही स्थिर रहते हैं इस अभिप्राय से यहाँ परमात्मा को ऋत की योनि कहा गया है योनि के अर्थ यहाँ कारण के हैं ॥३॥

मृजन्ति त्वा दश क्षिपो हिन्वन्ति सप्त धीतयः ।
अनु विप्रा अमादिषुः ॥४॥

मृजन्ति । त्वा । दर्श । क्षिपः । हिन्वन्ति । सप्त । धीतयः ।
अनु । विप्राः । अमादिषुः ॥४॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (त्वा, दश, क्षिपः) भवन्तं पञ्च सूक्ष्मभुताः पञ्च च स्थूलभूता एते दश (मृजन्ति) ऐश्वर्यवन्तं कुर्वन्ति तथा (सप्त, धीतयः) सप्तमहदादिप्रकृतयः भवन्तम् (हिन्वन्ति) गतिरूपेण वर्णयन्ति (अनु) ततः (विप्राः) मेधाविनः भवन्तं साक्षात्कृत्य (अमादिषुः) प्रहृष्टा भवन्ति ॥

पदार्थ—हे परमात्मन्! (त्वा, दश, क्षिपः) तुम को पाँच सूक्ष्म भूत और पांच स्थूलभूत (मृजन्ति) ऐश्वर्यसम्पन्न करते हैं और (सप्त, धीतयः) महदादि सात प्रकृतियें तुम्हें (हिन्वन्ति) गति रूप से वर्णन करती हैं (अनु) इस के पश्चात् (विप्राः) मेधावी लोग आप को उपलब्ध करके (अमादिषुः) हर्षित होते हैं ।

भावार्थ—पाँच सूक्ष्म और पांच स्थूलभूत उसकी शुद्धि व ऐश्वर्य का कारण इस अभिप्राय से वर्णन किये गये हैं कि उन्हीं भूतों के कार्यरूप इन्द्रिय कर्म और ज्ञान द्वारा उसको उपलब्ध करते हैं और उस उपलब्धि को पाकर विद्वान् लोग आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥४॥

देवेभ्यस्त्वा मदाय कं सृजानमति मेष्यः ।
सङ्गोभिर्वासयामसि ॥५॥३०॥

देवेभ्यः । त्वा । मदाय । कं । सृजानम् । अति । मेष्यः ।
सं । गोभिः । वासयामसि ॥५॥

पदार्थः—(मेष्यः) अज्ञानवृत्तयः (सृजानम्) संसारस्य रचयितारम्भवन्तम् (अति) अतिक्रामन्ति । (देवेभ्यः, त्वा) दिव्यवृत्तयो ये देवास्तेभ्यः त्वदीयः (कम्) आनन्दः (मदाय) आह्लादाय भवतु, येन वयं भवन्तम् (सम) सम्यक् (गोभिः) इन्द्रियैः (वासयामसि) वासयाम ॥

पदार्थ—(मेष्यः) अज्ञान की वृत्तियें (सृजानम्) संसार के रचने वाले तुमको (अति) अति क्रमण करजाती हैं (देवेभ्यः, त्वा) दिव्य वृत्तियों वाले देवताओं के लिये तुम्हारा (कम्) आनन्द (मदाय) आह्लाद के लिये हो ताकि हम आपको (सम्) भली प्रकार (गोभिः) इन्द्रियों द्वारा (वासयामसि) निवास देवें ।

भावार्थ—जो पुरुष अज्ञानी हैं उनकी बुद्धि का विषय ईश्वर नहीं होता इस लिये कहा गया है कि उनकी बुद्धि को अति क्रमण कर जाता है और जो लोग शुद्ध इन्द्रियों वाले हैं वह लोग उसको बुद्धि का विषय बना कर आनन्द को उपलब्ध करते हैं ॥ ५ । ३० ॥

पुनानः कलशेष्वा वस्त्राण्यरुषो हरिः ।
परि गव्यान्यव्यत ॥ ६ ॥

पुनानः । कलशेषु । आ । वस्त्राणि । अरुषः । हरिः ।
परि । गव्यानि । अव्यत ॥६॥

पदार्थः—सपरमात्मा (वस्त्राणि, अरुषः) विद्युदिव तेजोमयवस्त्रं दधानः (आ) समस्तवस्तूनि आत्मनि निधाय कलशेषु) प्रतिब्रह्माण्डं व्याप्य (पुनानः) जगत् पुनाति, तथा (हरिः) सर्वोपद्रावकः (गव्यानि, पर्यव्यत) पृथिव्यादि सर्वलोकानाच्छादयति ॥

पदार्थ—वह परमात्मा (वस्त्राणि, अरुषः) विद्युत् के समान तेज रूप वस्त्रों को धारण करता हुआ (आ) प्रत्येक वस्तु को अपने भीतर रख कर (कलशेषु) प्रत्येक ब्रह्माण्ड में आप व्यापक होकर (पुनानः) सबको पवित्र कर रहा है और (हरिः) सबके दुःखों को हरने वाला (गव्यानि, पर्यव्यत) प्रत्येक पृथिव्यादि ब्रह्माण्डों को आच्छादन कर रहा है ॥

भावार्थ—परमात्मा इस संसार की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय का कारण है इसी लिये उसको हरि रूप से कथन किया है वह परमात्मा विद्युत् के समान गति शील होकर सब को चमत्कृत करता है उसी की ज्योति को ज्ञानवृत्ति द्वारा उपलब्ध करके योगी आनन्दित होते हैं ॥६॥

मघोन आ पवस्व नो जहि विश्वा अपद्विषः ।
इन्दो सखायमा विश ॥७॥

मघोनः । आ । पवस्व । नः । जहि । विश्वाः । अप । द्विषः । इन्दो इति सखायम् । आ । विश ॥७॥

पदार्थः—(इन्दो) हे परमैश्वर्यसम्पन्न परमात्मन् ! भवान् (नः, मघोनः) अस्मान्विविधधनवतः कुरुताम (आ, पवस्व) सर्वथा पावयतु च (विश्वा) सर्वान् (अप, द्विषः) दुष्टान् अपहन्तु तथा (सखायम्) आविश (सज्जनान्) सर्वत्र तनोतु च ॥

पदार्थ—(इन्दो) हे परमैश्वर्य वाले परमात्मन् ! आप (मघोनः) हमको ऐश्वर्यसम्पन्न करें (आ, पवस्व) और सब प्रकार से पवित्र करें (विश्वा,) सब (अपद्विषः) दुष्टों का नाश करें और (सखायम्, आविश) सज्जनों को सर्वत्र फैलायें ॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करता है कि हे पुरुषो ! तुम इस प्रकार के प्रार्थनारूप भाव को हृदय में उत्पन्न करो कि तुम्हारे सत्कर्मी सज्जनों की रक्षा हो और दुष्टों का नाश हो ॥७॥

वृष्टिं दिवः परि स्रव द्युम्नं पृथिव्या अधि ।
सहो नः सोम पृत्सु धाः ॥८॥

वृष्टिम् । दिवः । परि । स्रव । द्युम्नम् । पृथिव्याः । अधि ।
सहः । नः । सोम । पृत्ऽसु । धाः ॥८॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (दिवः) द्युलोकात् (वृष्टिं, परिस्रव) वृष्टिं परिक्षर तथाच (द्युम्नम्) अन्नाद्यैश्वर्यं सम्पादय तथा च (पृथिव्याः, अधि) सर्वत्र पृथिवीमध्ये (नः) अस्मभ्यम् (सहः) बलं दत्त्वा (पृत्सु, धाः) युद्धेषु जापय ।

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! (दिवः) द्युलोक से (वृष्टिं, परि, स्रव) वृष्टि द्वारा (द्युम्नम्) अन्नादि ऐश्वर्यों को दीजिये और (पृथिव्याः, अधि) सर्वत्र पृथिवी में (नः) हमको (सहः) बल देकर (पृत्सु, धाः) युद्धों में विजयी करिये ॥

भावार्थ—जो लोग परमात्मविश्वासी होते हैं परमात्मा उनको युद्धों में विजयी और धनादि ऐश्वर्यों से नानाविधऐश्वर्यसम्पन्न करता है ॥८॥

नृचक्षसं त्वा वयमिन्द्रपीतं स्वर्विदम् ।
भक्षीमहि प्रजामिषम् ॥९॥२१॥

नृऽचक्षसम् । त्वा । वयम् । इन्द्रऽपीतम् । स्वःविदम् । भक्षीमहि । प्रऽजाम् । इषम् ॥९॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (इन्द्रपीतम्) विदुषामभ्यस्तम् (नृचक्षसम्) सर्वजनानां द्रष्टारम् (स्वर्विदम्) सर्वज्ञम् (त्वाम्) भवन्तं संसेव्य (प्रजाम्, इषम्) सर्वविधसन्तानधनाद्यैश्वर्य (भक्षीमहि) भजेमहि ।

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (इन्द्रपीतम्,) विद्वानों के द्वारा गृहीत किये गये (नृचक्षसम्) "नृन् चष्टे पश्यति यःस नृचक्षास्तम्" सर्वद्रष्टा (स्वर्विदम्) सर्वज्ञ (त्वाम्) आपकी कृपा से (प्रजाम्, इषम्) संसार के ऐश्वर्य को (भक्षीमहि) भोगें ॥

भावार्थ—जो लोग विद्वानों के सदुपदेश से सर्वज्ञत्वादि गुणयुक्त परमात्मा की उपासना करते हैं वे संसार के आनन्द को भोगते हैं ॥९॥

इत्यष्टमं सूक्तमेकत्रिंशत्तमो वर्गश्च समाप्तः ।

यह आठवाँ सूक्त और इकतीसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ नवर्चस्य नवमसूक्तस्य—

१—९असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः । पवमानः सोमो देवता । छन्दः—१, ३–५, ८ गायत्री । २, ६, ७, ९ निचृद्गायत्री । षड्जः स्वरः ॥

अथ सौम्यस्वभावस्य परमात्मनोऽन्ये गुणा वर्ण्यन्ते ।

अब सौम्यस्वभाव परमात्मा के अन्य गुणों का वर्णन करते हैं ।

परि प्रिया दिवः कविर्वयांसि नप्त्योर्हितः ।
सुवानो याति कविक्रतुः ॥१॥

परि । प्रिया । दिवः । कविः । वयांसि । नप्त्योः । हितः ।
सुवानः । याति । कविऽक्रतुः ॥१॥

पदार्थः—(कविक्रतुः) सर्वज्ञः (सुवानः) सर्वस्योत्पादकः (नप्त्योः, हितः) जीवप्रकृत्योर्हितकारकः (कविः) मेधावी (वयांसि) व्याप्तिशीलः (दिवः, प्रिया) द्युलोकप्रियः (परि, याति) सर्वत्र व्याप्नोति ॥

पदार्थ—(कविक्रतुः) सर्वज्ञ (सुवानः) सब को उत्पन्न करने वाला (नप्त्योः, हितः) जीवात्मा और प्रकृति का हित करने वाला (कविः) मेधावी (वयांसि) व्याप्तिशील (दिवः, प्रिया) द्युलोक का प्रिय (परि, याति) सर्वत्र व्याप्नोति ॥

भावार्थ—"न पततीति नप्ती" जिसके स्वरूप का नाश न हो उसका नाम यहाँ नप्ती है इस प्रकार जीवात्मा और प्रकृति का नाम यहाँ नप्ती हुआ इन दोनों का परमात्मा हित करने वाला है अर्थात् प्रकृति को ब्रह्माण्ड की रचना में लगा कर हित करता है और जीव को कर्म फल भोग में लगा कर हित करता है । "वियन्ति व्याप्नुवन्ति—इति वयांसि" जो सर्वत्र व्याप्त हो उस को वयस् कहते हैं और बहुवचन यहाँ ईश्वर के सामर्थ्य के अनन्तत्व बोधन के लिये आया है, तात्पर्य यह निकला कि जो प्रकृति पुरुष का अधिष्ठाता और संसार का निर्माता तथा विधाता है उस को यहाँ कविक्रतु आदि नामों से वर्णन किया है ॥१॥

प्रप्र क्षयाय पन्यसे जनाय जुष्टो अद्रुहे ।
वीत्यर्ष चनिष्ठया ॥२॥

प्रऽप्र । क्षयाय । पन्यसे । जनाय । जुष्टः । अद्रुहे । वीती । अर्ष । चनिष्ठया ॥२॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (पन्यसे) कर्मयोगिणे (अद्रुहे) सर्वस्य हितं कुर्वते च (जनाय) मनुष्याय हितं कर्तुं तद्हृदये भवान् (प्र प्र, क्षयाय) नितान्तं विराजसे (च) तथा (वीती) तत्तृप्तये (निष्ठया, जुष्टः) ऐश्वर्यधारया संयुतः सन् (अर्ष) प्रयच्छैश्वर्यम् ।

पदार्थ—हे परमात्मन् (पन्यसे) जो पुरुष कर्मयोगी है तथा (अद्रुहे) जो किसी के साथ द्वेष नहीं करता (जनाय) ऐसे मनुष्य के हृदय में आप (प्र, प्र, क्षयाय) अत्यन्त विराजमान होते हैं (च) और (वीती) उसकी तृप्ति के लिये (निष्ठया, जुष्टः) ऐश्वर्य की धारा से संयुक्त होकर (अर्ष) ऐश्वर्य देवें ।

भावार्थ—यद्यपि परमात्मा सर्व व्यापक हैं तथापि ऐश्वर्य के प्रदाता होकर उन्हीं पुरुषों के हृदय में विराजमान हो रहे हैं जो पुरुष कर्मयोगी और रागद्वेष से रहित हैं, इस लिये पुरुष को चाहिये कि वह राग द्वेष के भाव से रहित होकर निष्काम भाव से सदैव कर्मयोग में लगा रहे ॥२॥

स सूनुर्मातरा शुचिर्जातो जाते अरोचयत् ।
महान्मही ऋतावृधा ॥३॥

सः । सूनुः । मातरा । शुचिः । जातः । जाते इति । अरोचयत् । महान् । मही इति । ऋतऽवृधा ॥३॥

पदार्थः—(सः) सकर्मयोगी (शुचिः) पवित्रोऽस्ति (महान्) विशालात्माऽस्ति (ऋता, वृधा) यज्ञस्य वर्धयित्रोः (मही) महतोः (जाते) विश्वस्य जनयित्रोः (मातरा) मातापितृरूपिणोः द्युलोकपृथिवीलोकयोः (जातः, सूनुः) सत्यः पुत्रोऽस्ति (अरोचयत) सकर्मयोगेण तावैश्वर्यसम्पन्नौ करोति ॥

पदार्थ—(सः) वह कर्मयोगी पुरुष (शुचिः) पवित्र है (महान्) विशालात्मा वाला है (ऋता, वृधा) यज्ञ के बढ़ाने वाले (मही) महान् (जाते) विश्व के उत्पन्न करने वाले (मातरा) जो माता पिता रूप द्युलोक और पृथिवी लोक हैं तिनका (जातः, सूनुः) वह सच्चा पुत्र है (अरोचयत्) और वह कर्मयोग से उनको ऐश्वर्य सम्पन्न करता है ।

भावार्थ—द्युलोक और पृथिवीलोक के मध्य में कर्म योगी ही एक ऐसा पुरुष है जो अपने कर्मों द्वारा संसार को प्रकाशित करता है इसी अभिप्राय से उसको द्युलोक और पृथिवीलोक का सच्चा पुत्र कहा गया ॥३॥

स स॒प्त धी॒तिभि॑र्हि॒तो न॒द्यो॑ अजिन्वद॒द्रुहः॑ ।
या एक॒माक्षि॑ वावृ॒धुः ॥४॥

सः । स॒प्त । धी॒तिऽभिः॑ । हि॒तः । न॒द्यः॑ । अ॒जि॒न्व॒त । अ॒द्रुहः॑ । याः । एक॑म् । आक्षि॑ । व॒वृ॒धुः ॥४॥

पदार्थः—(सः) स परमात्मा (सप्त, नद्यः) इडापिङ्गलादि सप्त नाडीः, यदा (धीतिभिः) बुद्धिवृत्तिभिः (हितः) गृहीतो भवति तदा (अजिन्वत्) योगेन तर्पयति (याः, अद्रुहः)

याः स्वकर्तव्यं पालयन्त्यः (एकम्, अक्षि) केवलं तमव्ययं परमात्मानम् (वावृधुः) प्रकटयन्ति ॥

पदार्थ—(सः) वह परमात्मा (सप्त, नद्यः) इडा, पिङ्गलादि सात नाड़ियों को "नदन्तीति नद्यः" (धीतिभिः) 'धीयते सर्वकर्मसु इति धीतिर्बुद्धिः' जब बुद्धि की वृत्तियों से (हितः) धारण किया जाता है तो (अजिन्वत्) योग द्वारा तृप्त करता है (याः, अद्रुहः) जो नाडियें स्वकर्तव्य पालन करती हुयीं (एकम्, अक्षि) उस एक अविनाशी परमात्मा को (वावृधुः) प्रकाशित करती हैं ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में योगविद्या का वर्णन किया गया है, भाव यह है कि जब पुरुष अपने प्राणायाम द्वारा इडा पिङ्गलादि नाड़ियों को तृप्त कर देता है तो वह उस अभ्यास से एकाग्र चित्त होकर अविनाशी परमात्मा के भाव को अनुभव करता है ॥४॥

ता अभि सन्तमस्तृतं महे युवानमा दधुः ।
इन्दुमिन्द्र तव व्रते ॥५॥३२॥

ताः । अभि । सन्तम् । अस्तृतम् । महे । युवानम् । आ । दधुः । इन्दुम् । इन्द्र । तव । व्रते ॥५॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे परमैश्वर्यशालिपरमात्मन् ! (तव, व्रते) तव व्रतस्य पूर्तये (इन्दुम्) जीवात्मानम् (युवानम्) नित्यं यौवनसम्पन्नम (सन्तम्) सत्कर्माणम् (अस्तृतम्) अच्छेद्यम् (ताः) ता योगजबुद्धिवृत्तयः (महे) महत्वलाभाय (अभि) सम्यक् (आदधुः) दधाति ।

पदार्थ—(इन्द्र) हे परमैश्वर्यशालिन् परमात्मन् (तव, व्रते) तुम्हारे व्रत की पूर्ति के लिये (इन्दुं) जीवात्मा को (युवानम्) जो नित्य नूतन है (सन्तम्) सत्कर्मी (अस्तृतम्) जो अच्छेद्य है उसको (ताः,) वे (अभि) भलीभाँति योगजबुद्धिवृत्तियें (महे) महत्त्व की प्राप्ति के लिये (आदधुः) धारण करती हैं।

भावार्थ—कर्मयोगी पुरुष अपने निष्काम कर्म द्वारा उस तत्व को प्राप्त होता है जिस को योग में एकतत्त्वाभ्यास लिखा है अर्थात् उस तत्व की प्राप्ति के लिये कर्मयोगी होना आवश्यक है ॥५॥३२॥

अभि वह्निरमर्त्यः सप्त पश्यति वावहिः।
क्रिविर्देवीरतर्पयत् ॥६॥

अभि। वह्निः। अमर्त्यः। सप्त। पश्यति। वावहिः।
क्रिविः। देवीः। अतर्पयत् ॥६॥

पदार्थः—(अमर्त्यः) यो मृत्युरहितः (वह्निः) प्रकाशमानश्च (वावहिः) यश्च सर्वेषां प्रेरकः (सप्त, देवीः) भूम्यादि सप्त देव्यः (अतर्पयत्) यं वर्णयन्ति (क्रिविः) यः सर्व सद्गुणपूर्णः सः (पश्यति) सर्वान् स्वज्ञानदृष्ट्या ईक्षते।

पदार्थ—जो (अमर्त्यः) मृत्यु रहित है (वह्निः) प्रकाशमान है (वावहिः) जो सबका प्रेरक है (सप्त, देवीः) भूम्यादि सात प्रकृतियें (अतर्पयत्) जिसको वर्णन करती हैं। (क्रिविः) जो सद्गुणों से भरा हुआ है वह (पश्यति) सबको अपनी ज्ञानदृष्टि से देखता है।

भावार्थ—जो परमात्मा महत्त्वादि सात प्रकार की प्रकृतियों से अलंकृत किया हुआ है और जिसको धारणा ध्यानादि बुद्धि की सात

वृत्तियें विषय करती हैं वह परमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण हो रहा है, एक मात्र उसी परमात्मा की उपासना करनी चाहिये ॥६॥

अवा कल्पेषु नः पुमस्तमांसि सोम योध्या ।
तानि पुनान जङ्घनः ॥७॥

अव । कल्पेषु । नः । पुमः । तमांसि । सोम । योध्या ।
तानि । पुनान । जंघनः ॥७॥

पदार्थः—(सोम) हे सौम्यस्वभाव परमात्मन् ! भवान् (तमांसि) अज्ञानम् (योध्या) येच दुष्टयोद्धारः (तानि) तांश्च (जङ्घनः) हन्तु (पुनान) हे सर्वेषां पावयितः ! (पुमन्) हे पूर्णपुरुष ! (नः) अस्मान् (कल्पेषु) सर्वदशासु (अव) रक्षतु ।

पदार्थ—हे (सोम) सौम्यस्वभाव परमात्मन् ! आप (तमांसि) अज्ञानों को और जो (योध्या) युद्ध करने योग्य हैं (तानि) उनको (जङ्घनः) हनन करो (पुनान) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (पुमन्,) हे पूर्ण पुरुष (नः) हमारी (कल्पेषु) सब अवस्थाओं में (अव) रक्षा करें ।

भावार्थ—मनुष्य का परम शत्रु एकमात्र अज्ञानही है जो पुरुष अज्ञानरूपी शत्रु को नहीं जीतता वह शूर वीर व विजयी कदापि नहीं कहला सकता, बहुत क्या पुरुष में पुरुषत्व यही है कि वह अज्ञानरूपी शत्रु को जीत कर अभ्युदय और निःश्रेयस रूपी फलों को लाभ करे इस अभिप्राय के लिये उक्त मन्त्र में अज्ञान के जीतने की परमात्मा से प्रार्थना की गई, और अज्ञानरूपी शत्रु की शत्रुता का वर्णन "पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम्।" गीता के इस श्लोक में सुप्रसिद्ध

है कि हे जीव तू ज्ञान और विज्ञान के नाश करने वाले परम शत्रु अज्ञान का सब से पहले नाश कर ॥७॥

नू नव्यसे नवीयसे सूक्ताय साधया पथः ।
प्रत्नवद्रोचया रुचः ॥८॥

नु । नव्यसे । नवीयसे । सुऽउक्ताय । साधय । पथः ।
प्रत्नऽवत् । रोचय । रुचः ॥८॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (नव्यसे) नवजीवनं सम्पादयितुम् (नु) निश्चयम् (नवीयसे, सूक्ताय) नववाणीभ्यः (साधया, पथः) विधिमार्गं विधेहि, पूर्ववच्च (रुचः) स्वदीप्तीः (रोचया) प्रकाशय ॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (नव्यसे) नूतन जीवन बनाने के लिये (नु) निश्चय करके (नवीयसे, सूक्ताय) नयी वाणियों के लिये (साधया, पथः) हमारे लिये रास्ता खोलो और पहले के समान (रुचः) अपनी दीप्तियें (रोचया) प्रकाशित करो ॥

भावार्थ—जो पुरुष अपने जीवन को नित्य नूतन बनाना चाहे उसका कर्तव्य है कि वह परमात्मा की ज्योति से देदीप्यमान होकर अपने आप को प्रकाशित करे, और नित्य नूतन वेदवाणियों से अपने रास्तों को साफ करे अर्थात् वेदोक्त धर्मों पर स्वयं चले और और लोगों को चलाये ॥८॥

पवमान महि श्रवो गामश्वं रासि वीरवत् ।
सना मेधां सना स्वः ॥९॥३३॥

पव॑मान । महि॑ । श्रवः॑ । गाम् । अश्व॑म् । रासि । वीरऽव॑त् । सन॑ । मेधाम् । सन॑ । स्वः॑ऽरिति स्वः॑ ॥९॥

पदार्थः—(पवमान) हे सर्वपावक परमात्मन् ! (महि, श्रवः) मह्यं सर्वातिरिक्तमानन्दं प्रयच्छ तथा (गाम्, अश्वम्) गवाश्वादिविविधैश्वर्यसाधनानि (रासि) मह्यं देहि, तथा (वीर-वत्) वीर्यवतो जनान् (सना) प्रयच्छ (मेधां) बुद्धिं च (स्वः) स्वर्गं च (सना) देहि ॥

पदार्थ—(पवमान) हे सबको पवित्र करनेवाले परमात्मन् ! (महि, श्रवः) हमको सर्वोपरि आनन्द प्रदान करो और (गाम्, अश्वम्) गौ अश्वादि नाना प्रकार के ऐश्वर्य के साधन (रासि) आप हमको दें । और (वीरवत्) वीरता धर्म वाले मनुष्य (सना) देवें (मेधाम्) बुद्धि और (स्वः) स्वर्ग (सना) देवें ॥

भावार्थ—जिस जाति वा धर्म पर परमात्मा की अत्यन्त कृपा होती है उसको परमात्मा नानाप्रकार के ऐश्वर्य के साधन प्रदान करता है और शुद्ध बुद्धि तथा सर्वोपरि आनन्द का प्रदान करता है ॥९॥३३॥

इति नवमं सूक्तं त्रयस्त्रिंशत्तमो वर्गश्च समाप्तः ।

यह नवमा सूक्त और तेंतीसवां वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ दशमस्य सूक्तस्य—

१—९ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः । पवमानः सोमो देवता । छन्दः—१, २, ६, ८ निचृद्गायत्री । ३, ५, ७, ९ गायत्री । ४ भुरिग्गायत्री । षड्जः स्वरः ॥

अथ पूर्वोक्तः परमात्मा यज्ञत्वेन वर्ण्यते ।

अब उक्त परमात्मा को यज्ञरूप से वर्णन करते हैं ।

प्र स्वानासो रथा इवार्वन्तो न श्रवस्यवः ।
सोमासो राये अक्रमुः ॥१॥

प्र । स्वानासः । रथाःऽइव । अर्वन्तः । न । श्रवस्यवः ।
सोमासः । राये । अक्रमुः ॥१॥

पदार्थः—(सोमासः) चराचरजगदुत्पादकः स परमात्मा (राये) ऐश्वर्याय (अक्रमुः) शश्वदुद्यतोऽस्ति (रथाः, इव) शीघ्रतरगामिविद्युदादिवत् (प्रस्वानासः) यः प्रसिद्धः (अर्वन्तः) गतिशीलाराजानः (न) इव (श्रवस्यवः) ऐश्वर्यं दातुं सदोद्यतः अस्ति ।

पदार्थ—(सोमासः) चराचर संसार का उत्पादक उक्त परमात्मा (राये) ऐश्वर्य के लिये (अक्रमुः) सदा उद्यत है (रथाः, इव) अति शीघ्र गति करने वाले विद्युदादि के समान (प्र, स्वानासः) जो प्रसिद्ध है और जो (अर्वन्तः, नः) गतिशील राजाओं के समान (श्रवस्यवः) ऐश्वर्य देने को सदा उद्यत है।

भावार्थ—जिस प्रकार बिजली की जागृतिशील ध्वनि से सब पुरुष जागृत हो जाते हैं इस प्रकार परमात्मा के शब्द से सब लोग उद्बुद्ध हो जाते हैं, अर्थात् परमात्मा नाना प्रकार के शब्दों से पुरुषों को उद्बोधन करता है, और जिस प्रकार न्याय शील राजा अपनी प्रजा को ऐश्वर्य प्रदान करता है इसी प्रकार वह सत्कर्मी पुरुषों को सदैव ऐश्वर्य प्रदान करता है ॥१॥

हिन्वानासो रथा इव दधन्विरे गभस्त्योः ।
भरासः कारिणामिव ॥२॥

हिन्वानासः । रथाःऽइव । दधन्विरे । गभस्त्योः । भरासः । कारिणांऽइव ॥२॥

*पदार्थः—सः (रथाः, इव) विद्युदिव (गभस्त्योः, दधन्विरे) स्वचमत्कृतरश्मीनां धारकः (हिन्वानासः) सततगति शीलोऽस्ति तथा च (कारिणाम्, इव) कर्मयोगिन इव (भरासः) शश्वत्सत्कर्मभारं वोढुमुद्यतोऽस्ति ।

पदार्थ—(रथा इव) विद्युत् के समान (गभस्त्योः, दधन्विरे) अपनी चमत्कृत रश्मियों को धारण किये हुये है । (हिन्वानासः) सदैव गति शील है और (कारिणाम्, इव) कर्मयोगियों के समान सदैव सत्कर्म के (भरासः) भार उठाने को समर्थ है ।

भावार्थ—जिस प्रकार कर्मयोगी सत्कर्म को करने में सदैव तत्पर रहता है इसी प्रकार संसार की उत्पत्ति स्थिति प्रलयादि कर्मों में परमात्मा सदैव तत्पर रहता है अर्थात् उक्त कर्म उस में स्वतःसिद्ध और अनायास से होते रहते हैं, इसी अभिप्राय से ब्राह्मणग्रन्थों में उसे सर्वकर्मा सर्वगन्धः सर्वरसः" ऐसा प्रतिपादन किया है कि सर्व प्रकार के कर्म और सब प्रकार के गन्ध तथा रस उसी से अपनी २ सत्ता को लाभ करते हैं ।

इस प्रकार परमात्मा सदैव गति शील है, इसी अभिप्राय से गतिकर्मा रंहति धातु से निष्पन्न रथ की उपमा दी है जो लोग उसको अक्रिय कह कर यह सिद्ध करते हैं कि शुद्ध ब्रह्म में कोई क्रिया नहीं होती, क्रिया करने की शक्ति माया के साथ मिल कर आती है अन्यथा नहीं

इसलिये ईश्वर जगत् का कारण है ब्रह्म नहीं, ऐसा कथन करने वाले वैदिक सिद्धान्त से सर्वथा भिन्न हैं क्योंकि वेदों में "भूमिं जनयन् देवएकः यजुः १७।१९।' सूर्याचन्द्रमसौधाता यथा पूर्वमकल्पयत्' 'विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता मुं० १।१।१' इत्यादि वेदोपनिषद् के वाक्यों में शुद्ध ब्रह्म में जगत्कर्तृत्व कदापि न पाया जाता यदि ईश्वर में क्रिया न होती, इससे स्पष्ट सिद्ध है कि ईश्वर में क्रिया स्वतः सिद्ध है, इसी अभिप्राय से कहा है कि "स्वाभाविकी ज्ञानबल क्रिया च" ॥२॥

राजा॑नो॒ न प्रश॑स्तिभिः॒ सोमा॑सो॒ गोभि॑रञ्जते ।
य॒ज्ञो न स॒प्त धा॒तृभिः॑ ॥३॥

राजा॑नः । न । प्रश॑स्तिभिः । सोमा॑सः । गोभिः॑ । अ॒ञ्ज॒ते॒ ।
य॒ज्ञः । न । स॒प्त । धा॒तृऽभिः॑ ॥३॥

पदार्थः—(राजानः, न) नृपाइव (सोमासः) सौम्य स्वभाववान् परमात्मा (गोभिः) स्वप्रकाशमयज्योतिभिः (अञ्जते) प्रकाशते (यज्ञः, न) यथा यज्ञः (सप्त,धातृभिः) सप्तविधहोतृभिर्विराजते तथावत् परमात्मापि प्रकृतिविकृतिरूपमहदादिसप्तप्रकृतिभिः संसारावस्थायां द्योतत इत्यर्थः ।

पदार्थ—(राजानः, न) राजाओं के समान (सोमासः) सौम्यस्वभाव वाला परमात्मा (गोभिः) अपनी प्रकाशमय ज्योतियों से (अञ्जते) प्रकाशित होता है (यज्ञःन) जिस प्रकार यज्ञ (सप्त, धातृभिः) ऋत्विगादि सात प्रकार के होताओं से सुशोभित होता है इसी प्रकार परमात्मा प्रकृति की विकृति महदादि सात प्रकृतिओं से संसारावस्था में सुशोभित होता है ॥

भावार्थ—संसार भी एक यज्ञ है और इस यज्ञ के कार्यकारी ऋत्विगादि होता प्रकृति की शक्तियें हैं, जब परमात्मा इस बृहत् यज्ञ को करता है तो प्रकृति की शक्तियें उसमें ऋत्विगादि का काम करती हैं इसी अभिप्राय से यह कथन किया है कि । तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जात मग्रतः "तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्चये" यजुः ३१।९ कि उस पुरुषमेधयज्ञ को करते हुये ऋषि लोग सर्वद्रष्टा परमात्मा को अपना लक्ष्य बनाते हैं, इस प्रकार परमात्मा का इस मंत्र में यज्ञ रूप से वर्णन किया है इसी अभिप्राय से "यज्ञो वैविष्णुः" शत० इत्यादि वाक्यों में परमात्मा को यज्ञ कथन किया है ॥३॥

परि सुवानास इन्दवो मदाय बर्हणा गिरा ।
सुता अर्षन्ति धारया ॥४॥

परि । सुवानासः । इन्दवः । मदाय । बर्हणा । गिरा ।
सुताः । अर्षन्ति । धारया ॥४॥

पदार्थः--(परिसुवानासः) संसारमुत्पादयन् (इन्दवः) सर्वप्रकाशकः परमात्मा (बर्हणा, गिरा) अभ्युदयं दधानया वेदवाचा (सुताः) वर्णितः (धारया) अमृतवर्षेण (मदाय, अर्षति) आनन्दं ददाति ।

पदार्थ—(परि, सुवानासः) संसार को उत्पन्न करता हुआ (इन्दवः) सर्वप्रकाशक परमात्मा (बर्हणा, गिरा) अभ्युदय देने वाली वेदवाणी द्वारा (सुताः) वर्णन किया हुआ (धारया) अमृत की वृष्टि से (मदाय, अर्षति) आनन्द को देता है ।

भावार्थ—द्युभ्वादि अनेक लोकों को उत्पन्न करने वाला

परमात्मा अपनी पवित्र वेदवाणी द्वारा हमको नाना विध के आनन्द प्रदान करता है ॥४॥

आपानासो विवस्वतो जनन्त उषसो भगम् ।
सूरा अण्वं वि तन्वते ॥५॥३४॥

आपानासः । विवस्वतः । जनन्तः । उषसः । भगम् । सूराः अण्वम् । वितन्वते ॥५॥३४॥

पदार्थः—(आपानासः) सर्वथा क्लेशानामपहर्ता (विवस्वतः) सूर्यात् (उषसः, भगम्) उषोरूपं स्वैश्वर्यम् (जनन्तः) जनयन् (सूराः) गन्त्रीम् (अण्वम्) सूक्ष्मप्रकृतिम् (वितन्वते) वितनोति ।

पदार्थ—(आपानासः) सब दुःखों का नाश करने वाला (विवस्वतः) सूर्य से (उषसः, भगम्) उषारूप ऐश्वर्य को (जनन्तः) उत्पन्न करता हुआ (सूराः) गतिशील (अण्वम्) सूक्ष्मप्रकृति का (वितन्वते) विस्तार करता है ।

भावार्थ—परमात्मा प्रकृति की सूक्ष्मावस्था से अथवा यों कहो कि परमाणुओं से सृष्टि को उत्पन्न करता है और सूर्यादि प्रकाश मय ज्योतियों से उषारूप ऐश्वर्यों को उत्पन्न करता हुआ संसार के दुःखों का नाश करता है ।

तात्पर्य यह है कि उषःकाल होते ही जिस प्रकार सब ओर से आह्लाद उत्पन्न होता है इस प्रकार का आह्लाद और समय में नहीं होता इस लिये उषःकाल को यहां ऐश्वर्य रूप से कथन किया है यद्यपि प्रातः सन्ध्या, मध्याह्न इत्यादि सब काल परमात्मा की विभूति हैं तथापि जिस प्रकार की उत्तम विभूति उषःकाल है वैसी विभूति अन्य काल नहीं,

तात्पर्य यह है कि उषःकाल को उत्पन्न करके परमात्मा ने सब दुःखों को दूर किया है अर्थात् उक्त काल में योगी भोगी तथा रोगी सब प्रकार के लोग उस परमात्मा के आनन्द में उषःकाल में निमग्न हो जाते हैं, एक प्रकार से उषःकाल अपनी लालिमा के समान ब्रह्मोपासनारूपी रँग से सम्पूर्ण संसार को रंजित कर देता है ॥ ५ ॥ ३४ ॥

अप द्वारा मतीनां प्रत्ना ऋण्वन्ति कारवः ।
वृष्णो हरस आयवः ॥६॥

अप । द्वारा । मतीनाम् । प्रत्नाः । ऋण्वन्ति । कारवः ।
वृष्णः । हरसे । आयवः ॥६॥

पदार्थः—(वृष्णः) सर्वकामप्रदातुः परमात्मनः (हरसे) पापनाशाय (आयवः) उपासकामनुष्याः (कारवः) कर्म योगिनः (प्रत्नाः) दृढाभ्यासाः सन्तः (मतीनाम्) बुद्धीनाम् (अपद्वारा) कुत्सितमार्गान् (ऋण्वन्ति) शोधयन्ति ।

पदार्थ—(वृष्णः) सब कामनाओं के दाता परमात्मा की (हरसे) पाप की निवृत्ति के लिये उपासना करने वाले (आयवः) मनुष्य (कारवः) जो कर्म योगी हैं (प्रत्नाः) जो अभ्यास में परिपक्व हैं वह (मतीनाम्) बुद्धि के (अप, द्वारा) जो कुत्सित मार्ग हैं उनको (ऋण्वन्ति) मार्जन कर देते हैं ।

भावार्थ—जो कर्मयोगी लोग कर्मयोग में तत्पर हैं और ईश्वर की उपासना में प्रति दिन रत रहते हैं वह अपनी बुद्धि को कुमार्ग की ओर कदापि नहीं जाने देते, तात्पर्य यह है कि कर्म योगियों में अभ्यास की दृढ़ता के प्रभाव से ऐसा सामर्थ्य उत्पन्न हो जाता है कि उनकी बुद्धि सदैव सत्मार्ग की ओर ही जाती है अन्यत्र नहीं ॥ ६ ॥

समीचीनास आसते होतारः सप्तजामयः ।
पदमेकस्य पिप्रतः ॥७॥

सम्ऽईचीनासः । आसते । होतारः । सप्तऽजामयः । पदम् । एकस्य । पिप्रतः ॥७॥

पदार्थः—(सप्त, जामयः) यज्ञकर्मणि संगमनशीलाः सप्त (होतारः) यज्ञाङ्गभूताः होत्रादयः (समीचीनासः) ये च यज्ञे दक्षास्ते (एकस्य, पदम्) केवलपरमात्मनः पदं (आसते) श्रयन्ते यदा-तदा (पिप्रतः) यथेष्टं पूरयन्ति यज्ञम् ।

पदार्थ—(सप्त, जामयः) यज्ञकर्म में संगति रखने वाले (होतारः) होता लोग (समीचीनासः) यज्ञ कर्म में जो निपुण हैं वे (एकस्य, पदम्) एक परमात्मा के पद को जब (आसते) ग्रहण करते हैं तो वे (पिप्रतः) यज्ञ को संपूर्ण करते हैं ॥

भावार्थ—जो लोग एक परमात्मा की उपासना करते हैं उन्हीं के सब कामों की पूर्ति होती है तात्पर्य यह है कि ईश्वरपरायण लोगों के कार्यों में कदापि विघ्न नहीं होता ॥ ७ ॥

नाभा नाभिं न आ ददे चक्षुश्चित्सूर्ये सचा ।
कवेरपत्यमा दुहे ॥८॥

नाभा । नाभिम् । न । आ । ददे । चक्षुः । चित् । सूर्ये । सचा । कवेः । अपत्यम् । आ । दुहे ॥८॥

पदार्थः—(कवेः) तस्य सर्वज्ञस्य परमात्मनः (अप-

त्यम) ऐश्वर्यम् (आ, दुहे) प्राप्नुयामहम् तथा च (नाभिम्) तं चराचरजगतो नियन्तारम् (नाभा, नः) स्वहृदये (आदहे) ध्यानद्वारा वासयानि यः (सूर्ये, चित्) सूर्येऽपि (चक्षुः, सचा) चक्षूरूपेण संगतोऽस्ति ।

पदार्थ—(कवेः) उस सर्वज्ञ क्रान्तकर्मा परमात्मा के (अपत्यम्) ऐश्वर्य को (आ, दुहे) मैं प्राप्त करूँ और (नाभिम्) 'नह्यति वध्नातिचराचरं जगदितिनाभिः' जो चराचर जगत् को नियम में रखता है उसको (नाभा, नः) अपने हृदय में (आदधे) ध्यानरूप से स्थित करूं, जो (सूर्ये, चित्) सूर्य में भी (चक्षुः सचा) चक्षुरूप से संगत है ॥

भावार्थ—उक्त कामधेनु रूप परमात्मा के ऐश्वर्य को वह लोग दुह सकते हैं जो लोग उस परमात्मा को अपने हृदयरूपी कमल में साक्षी रूप से स्थिर समझ कर सत्कर्मी बनते हैं और वह परमात्मा अपनी प्रकाश रूप शक्ति से सूर्य का भी प्रकाशक है, इस मंत्र में परमात्मा इस भाव को बोधन करते हैं कि हे जिज्ञासु पुरुषो! तुम उस प्रकाश से अपने हृदय को प्रकाशित करके संसार के पदार्थों को देखो जो सर्व प्रकाशक है और जिस से यह भूतवर्ग अपनी उत्पत्ति और स्थिति को लाभ करता है जैसा कि 'नाभ्या आसीदन्तरिक्षम्' "चन्द्रमा मनसोजातश्चक्षोः सूर्योऽअजायत" यजुः ३१।१२ इत्यादि मन्त्रों में वर्णन किया है कि उसी के नाभिरूप सामर्थ्य से अन्तरिक्ष लोक उत्पन्न हुआ और उसी के चक्षुरूप सामर्थ्य से सूर्य उत्पन्न हुआ चक्षु के अर्थ यहाँ 'चष्टे पश्यत्यनेनेति चक्षुः' अर्थात् अपने सात्विक सामर्थ्य से सूर्य को उत्पन्न किया जैसा कि अन्यत्र भी कहा है कि सत्वात्संजायते ज्ञानम्, बहुत क्या यतोवा इमानिभूतानिजायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्म। अर्थात् उसी से यह सब संसारवर्ग आविर्भाव को प्राप्त होता है और उससे सत्ता लाभ करके स्थिर रहता है और अन्त में परमाणु रूप हो कर उसी में लय हो जाता है उसी के जानने

की इच्छा करनी चाहिये वही सर्वोपरिब्रह्म है बृंहते वर्धते-इतिब्रह्म। जो सदैव वृद्धि को प्राप्त है अर्थात् जिससे कोई बड़ा नहीं उस का नाम यहाँ ब्रह्म है॥ ८॥

अभि प्रिया दिवस्पदमध्वर्युभिर्गुहा हितम्।
सूरः पश्यति चक्षसा॥९॥३५॥

अभि। प्रिया। दिवः। पदम्। अध्वर्युऽभिः। गुहा। हितम्। सूरः। पश्यति। चक्षसा॥९॥३५॥

पदार्थः—(सूरः) विद्वान् (अभि, प्रिया) सर्वेषांप्रियः (अध्वर्युभिः) अध्वर्य्वादिऋत्विग्भिः यत् (गुहा, हितम्) यज्ञात्मकगुहायां निहितमस्ति तथाच (दिवस्पदम्) द्युलोकस्यापि आश्रयरूपेण पदमस्ति तत् (चक्षसा) ज्ञानदृष्ट्या (पश्यति) अवलोकते॥

पदार्थ—(सूरः) "सरति ज्ञानद्वारेण सर्वत्र प्राप्नोतीतिसूरो-विद्वान्" विद्वान् (अभि, प्रिया) जो सब का प्यारा है वह (अध्वर्युभिः) अध्वर्युआदि ऋत्विजों से जो (गुहा, हितम्) यज्ञरूपी गुहा में निहित है और (दिवस्पदम्) जो द्युलोक का भी अधिकरणरूपी पद है उसको (चक्षसा) ज्ञानदृष्टि से (पश्यति) देखता है।

भावार्थ—जो इस संसार रूपी गुहा में स्थिर सूक्ष्म से अति सूक्ष्म परमात्मा है और जो भ्वादिलोकों का एकमात्र अधिकरण है उसको आत्मज्ञानी विद्वान् ही जान सकते हैं अन्य नहीं॥ ९॥ ३५।

इति दशमं सूक्तं पञ्चत्रिंशत्तमो वर्गश्च समाप्तः।

यह दशवां सूक्त और पैंतीसवाँ वर्ग समाप्त हुआ।

नवर्चस्य एकादशस्य सूक्तस्य—

१—९ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः । पवमानः सोमो देवता । छन्दः—१-४, ९ निचृद्गायत्री । ५-८ गायत्री । षड्जः स्वरः ॥

सम्प्रति उक्त परमात्मनः उपासनाप्रकारः कथ्यते:—

अब उक्त परमात्मा के उपासन का प्रकार कथन करते हैं:—

उपा॑स्मै गायता नरः॒ पव॑माना॒येन्द॑वे ।
अ॒भि दे॒वाँ इय॑क्षते ॥१॥

उप॑ । अ॒स्मै॒ । गा॒य॒त॒ । न॒रः॒ । पव॑मानाय । इन्द॑वे । अ॒भि । दे॒वान् । इय॑क्षते ॥१॥

पदार्थः—(नरः) हे यज्ञनेतारः ! यूयम् (पवमानाय) सर्वेषां पावयित्रे (इन्दवे) परमैश्वर्यवते (उपास्मै) अस्मै परमात्मने तदर्थमेव (गायत) वेदवाग्भिः स्तुत, यः (अभि, देवाँ, इयक्षते) यज्ञादिकर्मसु विदुषः संगमयितुमिच्छति ।

पदार्थ—(नरः) हे यज्ञ के नेता लोगो ! तुम (पवमानाय) सबको पवित्र करनेवाला (इन्दवे) 'इन्दतीतीन्दुः' और जो परम ऐश्वर्यवाला है (उपास्मै) उसकी प्राप्ति के लिये (गायत) गायन करो, जो (अभि, देवाँ, इयक्षते) यज्ञादि कर्मों में विद्वानों की संगति को चाहता है ।

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! तुम यज्ञादि कर्मों में विद्वानों की संगति करो और मिलकर अपने उपास्य देव का गायन करो ॥ १ ॥

अभि ते मधुना पयोऽथर्वाणो अशिश्रयुः ।
देवं देवाय देवयु ॥२॥

अभि । ते । मधुना । पयः । अथर्वाणः । अशिश्रयुः ।
देवं । देवाय । देवऽयु ॥२॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (ते) त्वाम् (अथर्वाणः) दृढविश्वासवन्तो विद्वांसः (अशिश्रयुः) आश्रयन्ते यस्त्वम् (देवाय) दिव्यशक्तिप्रदानाय (देवम्) केवल देवोऽसि तथा (देवयु) दिव्यशक्तिमिच्छुर्जनः (पयः) भवद्रसम् (मधुना) माधुर्येण (अभि) सम्यग्गृह्णाति ॥

पदार्थ—हे परमात्मन् (ते) तुमको (अथर्वाणः) "न थर्वति स्वाधिकारं नमुञ्चतीत्यथर्वा" जो अपने अधिकार को न छोड़े उसका नाम अथर्वा है, ऐसे दृढविश्वासी विद्वान् (अशिश्रयुः) आश्रयण करते हैं जो तुम (देवाय) दिव्य शक्तियों के देने के लिये (देवम्) एकमात्र देव हो, और (देवयु) "देवमिच्छतीति देवयु" दिव्य शक्ति की इच्छा करनेवाला पुरुष (पयः) आपके रस को (मधुना) मधुरता के साथ (अभि) भलीभांति ग्रहण करता है ॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे दृढविश्वासी विद्वानो ! आप लोग उस रस का पान करो जिससे बढ़कर संसार में अन्य कोई रस नहीं और उपास्यत्वेन उस देव का आश्रयण करो जिससे बढ़ कर और कोई उपास्य नहीं, वास्तव में बात भी यही है कि परमात्मा के आनन्द के बराबर और कोई आनन्द नहीं इसी अभिप्राय से कहा है कि रसोह्येवसः रसं हि लब्ध्वा एष आनन्दी भवति" तै०२।७। परमात्मा रस अर्थात् आनन्दरूप है उसके आनन्द को लाभ करके पुरुष

आनन्दित होता है इसी अभिप्राय से गीता में कहा है कि "यल्लब्ध्वा-नापरोलाभः" उसको प्राप्त करने के अनन्तर फिर कोई प्राप्तव्य वस्तु नहीं रहती ॥२॥

स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते ।
शं राजन्नोषधीभ्यः ॥३॥

सः । नः । पवस्व । शं । गवे । शं । जनाय । शं । अर्वते । शं । राजन् । शं । ओषधीभ्यः ॥३॥

पदार्थः—(राजन्, सः) हे पूर्वोक्तदीप्तिमन् परमात्मन्! (नः) अस्माकम् (गवे) इन्द्रियेभ्यः (शं, पवस्व) कल्याणं क्षर (शम्, अर्वते, जनाय) कर्मकाण्डिने च कल्याणंप्रयच्छ (शम्, ओषधीभ्यः) ओषधिभ्यश्च कल्याणकर्त्ता भव ।

पदार्थ—हे (राजन्, सः) पूर्वोक्त दीप्तिमन् परमात्मन्! (नः) हमारी (गवे) इन्द्रियों के लिये (शं, पवस्व) कल्याणकारी हों (शम्, अर्वते, जनाय) कर्मकाण्डी मनुष्यों के लिये कल्याणकारी हों (शम्, ओषधीभ्यः) और हमारी ओषधियों के लिये कल्याणकारी हों ॥

भावार्थ—यहां ओषधि आदिक केवल उपलक्षण हैं वस्तुतः प्रत्येक संसार वर्ग के लिये, इस मन्त्र में कल्याण की प्रार्थना की गई है॥

बभ्रवे नु स्वतवसेऽरुणाय दिविस्पृशे ।
सोमाय गाथमर्चत ॥४॥

बभ्रवे । नु । स्वऽतवसे । अरुणाय । दिविऽस्पृशे । सोमाय । गाथम् । अर्चत ॥४॥

पदार्थः—भो मनुष्याः! यूयम् (बभ्रवे) विश्वम्भराय (स्वतवसे) बलस्वरूपिणे (दिविस्पृशे) आद्युलोकं व्यापकाय (सोमाय) जगदुत्पादकाय (अरुणाय) सर्वव्यापकाय (नु) शीघ्रम् (गाथम्) स्तुतिम् (अर्चत) प्रादुर्भावयत॥

पदार्थ—हे मनुष्यो! तुम (बभ्रवे) 'बिभर्तीतिबभ्रुः' जो विश्वम्भर परमात्मा है और जो (स्वतवसे) बलस्वरूप है और (दिविस्पृशे) जो द्युलोक तक फैला हुआ है (सोमाय) चराचर संसार का उत्पन्न करने वाला है (अरुणाय) "ऋच्छतीत्यरुणः" जो सर्वव्यापक है उसकी (नु) शीघ्र ही (गाथम्) स्तुति (अर्चत) करो॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे पुरुषो! तुम ऐसे पुरुष की स्तुति करो जो पूर्ण पुरुष अर्थात् द्युभ्वादि सब लोकों में पूर्ण हो रहा है और तेजस्वी और सर्वव्यापक है, इस भाव को वेद के अन्यत्र भी कई एक स्थलों में वर्णन किया है जैसा कि "यस्य भूमिः प्रमान्तरिक्षमुतोदरम् दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः" अ. १०।४।७ कि जिस की भूमि ज्ञान का साधन है अन्तरिक्ष जिसका उदर स्थानीय है जिस में द्युलोक मस्तक के सदृश कहा जा सकता है उस सर्वोपरि ब्रह्म को हमारा नमस्कार है, जैसा इस मन्त्र में रूपकालङ्कार से द्युलोक को मूर्धा स्थानीय कल्पना किया है इसी प्रकार 'दिवस्पृशम्' इस शब्द में द्युलोक के साथ स्पर्श करने वाला भी रूपकालङ्कार से वर्णन किया है मुख्य नहीं।

यही भाव "नभस्पृशं दीप्तमनेकवर्णम्" गीता इत्यादि के श्लोकों में वर्णित है॥ ४॥

हस्तच्युतेभिरद्रिभिः सुतं सोमं पुनीतन।
मधावा धावता मधु॥५॥२६॥

हस्तंच्युतेभिः । अद्रिंऽभिः । सुतम् । सोमंम् । पुनीतन । मधौ । आ । धावत । मधुं ॥५॥३६॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! भवान् (हस्तच्युतेभिः, अद्रिभिः) वाग्वज्रैः (सुतम्) क्षुण्णम् (सोमम्) ममस्वभावम् (पुनीतन) पावयतु येन (मधौ) भवदीय मधुरस्वरूपे (मधु) मधुरोभूत्वा (आधावत) प्रवर्तताम् ।

पदार्थ—हे परमात्मन् ! आप (हस्तच्युतेभिः, अद्रिभिः) वाणीरूप वज्र से (सुतं) कूट २ कर (सोमं) मेरे स्वभाव को (पुनीतन) पवित्र करें ताकि (मधौ) आप के मधुर स्वरूप में (मधु) मीठा बन कर (आधावत) लगे ।

भावार्थ—परमात्मा का वागरूपी वज्र जिस पुरुष की अविद्या लता को काटता है वह पुरुष सरल प्रकृति बन कर परमात्मा के आनन्द मय स्वरूप में निमग्न होता है ॥ ५ ॥

नमसेदुपं सीदत दध्नेदभि श्रीणीतन ।
इन्दुमिन्द्रे दधातन ॥६॥

नमंसा । इत् । उपं । सीदत । दध्ना । इत् । अभि । श्रीणीतन । इन्दुम् । इन्द्रे । दधातन ॥६॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! भवान् (नमसा, इत्) मदीयनम्रवाग्भिः (उपसीदत) हृदये निवसतु (दध्ना, इत) मदीयधारणया च (उपश्रीणीतन) ध्यानविषयोभवतु (इन्दुम, इन्द्रे) मदीयंमनः स्वप्रकाशितस्वरूपे (दधातन) योजयतु ।

पदार्थ—हे परमात्मन् ! आप (नमसा, इत्) हमारी नम्रवाणियों से (उपसीदत) हमारे हृदय में निवास करो (दध्ना इत्) 'धीयतेऽनेनेति दधि' हमारी धारणा से (उप, श्रीणीतन) हमारे ध्यान का विषय बनो (इन्दुम्, इन्द्रे) हमारे मन को अपने प्रकाशित स्वरूप में (दधातन) लगाओ ।

भावार्थ—जो लोग प्रार्थना से अपने हृदय को नम्र बनाते हैं उनका मन परमात्मा के स्वरूप में अवश्यमेव स्थिर होता है ॥ ६ ॥

अमित्रहा विचर्षणिः पवस्व सोम शं गवे ।
देवेभ्यो अनुकामकृत् ॥७॥

अमित्रऽहा । विऽचर्षणिः । पवस्व । सोम । शं । गवे ।
देवेभ्यः । अनुकामऽकृत् ॥७॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् (अमित्रहा) भवान् दुष्टानां नाशकः (देवेभ्यो, अनुकामकृत्) दैवसम्पत्तिवतां कामनाप्रदश्चास्ति, यतः (विचर्षणिः) न्यायदृष्ट्या पश्यति भवान् (गवे) मद्वृत्तीः (शं, पवस्व) कल्याणप्रदानपूर्वकं पुनातु ।

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! (अमित्रहा) आप प्रेम रहित नास्तिक लोगों के हनन करने वाले हैं और (देवेभ्यो, अनुकामकृत्) और दैवीसम्पत्ति के गुण रखने वाले लोगों की कामनाओं के पूर्ण करने वाले हैं क्योंकि (विचर्षणिः) आप न्यायदृष्टि से देखने वाले हैं आप (गवे) हमारी वृत्तियों का (शं, पवस्व) कल्याण करें और पवित्र करें ॥

भावार्थ—संसार में असुर और देव दो प्रकार के मनुष्य पाये जाते हैं असुर उनको कहते हैं जो धर्म को त्याग करके केवल प्राण यात्रा में लग जाते हैं अर्थ इसके इस प्रकार हैं 'अस्यति धर्मामित्यसुरः' यद्वा—'असुषुरमते-इत्यसुरः" जो धर्म को छोड़ दे या प्राणों में ही रमण करे वह असुर है। और 'दीव्यतीति देवः' जो सदसद्विवेचिनी बुद्धि रखने वाले ज्ञानी पुरुष हैं उनको देव कहते हैं जो असुर लोग हैं उन्हीं को इस मन्त्र में अमित्र माना गया है अर्थात् दैवी सम्पत्ति वाले पुरुषों को परमात्मा बढ़ाता है और आसुरी सम्पत्ति वाले पुरुषों का संहार करता है ॥७॥

इन्द्राय सोम पातवे मदाय परि षिच्यसे ।
मनश्चिन्मनसस्पतिः ॥८॥

इन्द्राय । सोम । पातवे । मदाय । परि । सिच्यसे । मनःऽचित् । मनसः । पतिः ॥८॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन्! (मनश्चित्) भवान् ज्ञानस्वरूपः (मनसस्पतिः) सर्वेषां मनसां प्रेरकश्चास्ति (इन्द्राय, पातवे) जीवात्मनः तृप्तये (मदाय) आह्लादाय च (परिषिच्यते) उपास्यते ।

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन्! (मनश्चित्) आप ज्ञानस्वरूप हैं 'मनुते-इतिमनः' और (मनसस्पतिः) सब के मनों के प्रेरक हैं (इन्द्राय) जीवात्मा की (पातवे) तृप्ति के लिये (मदाय) आह्लाद के लिये (परिषिच्यसे) उपासना किये जाते हैं।

भावार्थ—जो लोग उपासना द्वारा अपने हृदय में ईश्वर को विराजमान करते हैं वे उसके मधुर आनन्द का पान करते हैं।

तात्पर्य यह है कि यों तो परमात्मा सर्वव्यापक होने के कारण सब के हृदय में स्थिर है पर जो लोग धारणा ध्यानादि साधनों से सम्पन्न होकर उस को अत्यन्त समीपी बनाते हैं वे ही उसके मधुर आनन्द का पान कर सकते हैं अन्य नहीं ॥ ८ ॥

पवमान सुवीर्यं रयिं सोम रिरीहि नः ।
इन्दविन्द्रेण नो युजा ॥९॥३७॥

पवमान । सुऽवीर्यम् । रयिम् । सोम । रिरीहि । नः ।
इन्दो इति । इन्द्रेण । नः । युजा ॥९॥३७॥

पदार्थः—(पवमान) हे सर्वेषां पावक ! (सुवीर्यम्) सुबलम् (रयिम्) धनं च (नः, रिरीहि) अस्मभ्यं प्रयच्छतु (इन्दो) हे सर्व प्रकाशक ! (इन्द्रेण) परमैश्वर्येण सह (नः, युजा) अस्मान् योजयतु (सोम) यतः सौम्यस्वभावो भवान् ।

पदार्थ—(पवमान) हे सब को पवित्र करने वाले (सुवीर्यम्) सुन्दरबल को (रयिम्) और धन को (नः, रिरीहि) हमको देवें, (इन्दो) हे सर्व प्रकाशक (इन्द्रेण) परमैश्वर्य के साथ (नः, युजा) हमको युक्त करें (सोम) आप सौम्यस्वभाव वाले हैं ।

भावार्थ—जो लोग सत्कर्मी बन कर ईश्वरपरायण होते हैं परमात्मा सर्वोपरि ऐश्वर्य का उन्हीं को दान देता है ॥ ९ । ३७ ॥

इत्येकादशं सूक्तं सप्तत्रिंशत्तमोवर्गश्च समाप्तः ।

यह ग्यारहवां सूक्त और सैंतीसवां वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ नवर्चस्यद्वादशस्यसूक्तस्य—

१–९ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः–१, २, ६–८ गायत्री । ३–५, ९ निचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अथ उक्तपरमात्मानंयज्ञादिकर्मणः कर्तृत्वेनवर्णयति ।

अथ उक्त परमात्मा को यज्ञादि कर्मों का कर्त्तारूप से वर्णन करते हैं।

सोमा असृग्रमिन्दवः सुता ऋतस्य सादने ।
इन्द्राय मधुमत्तमाः ॥१॥

सोमाः । असृग्रम् । इन्दवः । सुताः । ऋतस्य । सदने ।
इन्द्राय । मधुमत्ऽतमाः ॥ १ ॥

पदार्थः—(इन्द्राय) जीवात्मने (मधुमत्तमाः) योहि आनन्दमयः (ऋतस्य) यज्ञस्य (सादने) स्थितौ (सुताः) उपास्योऽयः सः (इन्दवः) प्रकाशमयः (सोमाः) सौम्यस्वभावश्चास्ति (असृग्रम्) तेनैवेदं जगत्तेने ।

पदार्थ—(इन्द्राय) जीवात्मा के लिये (मधुमत्तमाः) जो अत्यन्त आनन्द मय परमात्मा है (ऋतस्य) यज्ञ की (सादने) स्थिति में जो (सुताः) उपास्य समझा गया है वह (इन्दवः) प्रकाशस्वरूप (सोमाः) सौम्य स्वभाव वाला है (असृग्रम्) उसी के द्वारा यह संसार रचा गया है।

भावार्थ—जो सब प्रकार की सचाइयों का एक मात्र अधिकरण है और जिस से वसन्तादि यज्ञरूप ऋतुओं का परिवर्तन होता है वही परमात्मा इस निखिल ब्रह्माण्ड का अधिपति है ॥१॥

अभि विप्रा अनूषत गावो वत्सं न मातरः ।
इन्द्रं सोमस्य पीतये ॥२॥

अभि । विप्राः । अनूषत । गावः । वत्सं । न । मातरः ।
इन्द्रम् । सोमस्य । पीतये ॥ २ ॥

पदार्थः—तमीश्वरं लब्धुम् (गावः) इन्द्रियाणि (मातरः, वत्सं, न) यथामातृः वत्स आश्रयते तद्वत् आश्रयन्ते तथैव च (विप्राः) विज्ञानिनः (सोमस्य, पीतये) सौम्यस्वभावम् निर्मातुम् (इन्द्रम्) परमात्मानम् (अभ्यनूषत) विभूषयन्ति ।

पदार्थ—उस परमात्मा को पाने के लिये (गावः) इन्द्रियें (मातरः, वत्सम्, न) जैसे माता को बछड़ा आश्रयण करता है इसी प्रकार आश्रयण करती हैं उसी प्रकार (विप्राः) विज्ञानी लोग (सोमस्य, पीतये) सौम्य स्वभाव के बनाने के लिये (इन्द्रम्) परमात्मा को (अभि अनूषत) विभूषित करते हैं ।

भावार्थ—जब तक पुरुष सौम्यस्वभाव परमात्मा का आश्रयण नहीं करता तब तक उसके स्वभाव में सौम्य भाव नहीं आ सकते और उसका आश्रयण करना साधारण रीति से हो तो कोई अपूर्वता उत्पन्न नहीं कर सकता जब पुरुष परमात्मा में इस प्रकार अनुरक्त होता है जैसा कि वत्स अपनी माता में अनुरक्त होते हैं अथवा इन्द्रियें अपने शब्दादि विषयों में अनुरक्त होती हैं इस प्रकार की अनुरक्ति के बिना परमात्मा के भावों को पुरुष कदापि ग्रहण नहीं कर सकता ॥२॥

मदच्युत्क्षेति सादने सिन्धोरूर्मा विपश्चित् ।
सोमो गौरी अधि श्रितः ॥३॥

मदऽच्युत् । क्षेति । सदने । सिन्धोः । ऊर्मा । विपःऽचित् । सोमः । गौरी इति । अधि । श्रितः ॥ ३ ॥

पदार्थः—यथा (ऊर्मा) वीचयः (सिन्धोः) नदीराश्रयन्ते अथ च (विपश्चित्) विद्वान् (गौरी, अधि, श्रितः) वेदवाचँ अधितिष्ठति, तथैव (सोमः, मदच्युत) आनन्दप्रदः सौम्यस्वभावो भगवान् (सादने, क्षेति) यज्ञस्थले सदा सुखेन निवसति ।

पदार्थ—जिस प्रकार (ऊर्मा) तरंगें (सिन्धोः) नदी का आश्रयण करती हैं और (विपश्चित्) विद्वान् (गौरी, अधि, श्रितः) वेदवाणी में अधिष्ठित होता है इसी प्रकार (सोमः, मदच्युत) आनन्द का देने वाला सौम्य स्वभाव परमात्मा (सादने, क्षेति) यज्ञस्थल को प्रिय समझता है ।

भावार्थ—कर्म यज्ञ, योगयज्ञ, जप यज्ञ, इस प्रकार यज्ञ नाना प्रकार के हैं परन्तु ' यजनं यज्ञः' जिसमें ईश्वर का उपासना रूप अथवा विद्वानों की संगति रूप अथवा दानात्मक कर्म किये जायँ उसका नाम यहां यज्ञ है और वह यज्ञ ईश्वर की प्राप्ति का सर्वोपरि साधन है इसी अभिप्राय से 'यज्ञो वै विष्णु श. ' । ३७ । परमात्मा का नाम भी यज्ञ है इसी भाव को वर्णन करते हुये गीता में यह कहा है कि 'एवं बहुविधायज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे' इस प्रकार के कई एक यज्ञ वेद में वर्णन किये गये हैं ॥३॥

दिवो नाभा विचक्षणोऽव्यो वारे महीयते ।
सोमो यः सुक्रतुः कविः ॥ ४ ॥

दिवः । नाभा । विऽचक्षणः । अव्यः । वारे । महीयते ।
सोमः । यः । सुऽक्रतुः । कविः ॥ ४ ॥

पदार्थः—(यः) यः परमात्मा (दिवः, नाभा) द्युलोकस्य नाभिरस्ति (विचक्षणः) सर्वज्ञोऽस्ति (अव्यः) सर्वेषां भजनीयः (वारे, महीयते) सर्वेषां श्रेष्ठानां श्रेष्ठतमश्च (सोमः) सौम्यस्वभाववांश्चास्ति (सुक्रतुः) सत्कर्मा (कविः) क्रान्तकर्मा चास्ति ।

पदार्थ—(यः) जो परमात्मा (दिवः, नाभा) द्युलोक का नाभि है (विचक्षणः) सर्वज्ञ है (अव्यः) सब का भजनीय है (वारे महीयते) जो सब श्रेष्ठों में श्रेष्ठतम है (सोमः) सौम्यस्वभाव वाला है (सुक्रतुः) सत्कर्मा है और (कविः) क्रान्तकर्मा है ॥

भावार्थ—जिस प्रकार 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' तै २।१ सत्य ज्ञान और अनन्तादि गुणोंवाला ब्रह्म है यह वाक्य सिद्धवस्तु को बोधन करता है इसी प्रकार उक्त मंत्र भी सिद्ध वस्तु का बोधक है—और जो इस में महीयते कहा गया है ये भी सिद्धवस्तु का बोधक है परन्तु इस से ये शङ्का कदापि नहीं होनी चाहिये कि इस में कर्तव्य का उपदेश नहीं, क्योंकि जब महीयते कह दिया तो अर्थ ये निकले कि वह पूजा जाता है पूजा एक प्रकार का कर्म है उसी को कर्तव्य कहते हैं तात्पर्य ये निकला कि-परमात्मा ने इस मंत्र में उपदेश किया है कि तुम लोग उक्त गुण सम्पन्न परमात्मा का पूजन करो अर्थात् सन्ध्यावन्दनादि कर्मों से उसे वन्दनीय समझो ॥४॥

यः सोमः कलशेष्वाँ अन्तः पवित्र आहितः ।
तमिन्दुः परि षस्वजे ॥५॥२८॥

यः । सोमः । कलशेषु । आ । अन्तरिति । पवित्रे ।
आऽहितः । तम् । इन्दुः । परि । सस्वजे ॥५॥३८॥

पदार्थः—(यः) यःपरमात्मा (कलशेषु) वैदिकशब्देषु (आ) वर्णितः (पवित्रे, अन्तः) सब पवित्र वस्तुषु (आहितः) स्थिरोऽस्ति (सोमः) सौम्यस्वभाववांश्च (तम्, इन्दुः) तमीश्वरं विद्वांसः (परिषस्वजे) लभन्ते ।

पदार्थ—(यः) जो परमात्मा (कलशेषु) कलंशब्दातीति कलशोवैदिकशब्दः' वैदिक शब्दों में (आ) वर्णन किया गया है (पवित्रे, अन्तः) और सब पवित्र वस्तुओं में (आहितः) स्थिर है और (सोमः) सौम्यस्वभाव वाला है (तम्, इन्दुः) उसको विद्वान् लोग (परिषस्वजे) लाभ करते हैं ।

भावार्थ—विद्वान् लोग परमात्मा की अभिव्यक्ति अर्थात् आविर्भाव को सब पवित्र वस्तुओं में उपलब्ध करते हैं, तात्पर्य ये है कि जो जो विभूति वाली वस्तु है उसमें वे परमात्मा के तेज को अनुभव करते हैं,मालूम होता है कि 'यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा तत्तदेवावगच्छत्वं ममतेजोंऽशसम्भवम्' । कि जो जो विभूतिवाली वस्तु अथवा शोभा वाली वा यों कहो कि बलवाली है वह सब परमात्मा के तेज से ही उत्पन्न हुई है मालूम होता है गीता का यह भाव भी पूर्वोक्त मन्त्रों से ही लिया गया है ॥ ५ । ३८ ॥

प्र वाचमिन्दुरिष्यति समुद्रस्याधि विष्टपि ।
जिन्वन्कोशं मधुश्चुतम् ॥६॥

प्र । वाचम् । इन्दुः । इष्यति । समुद्रस्य । अधि । विष्टपि ।
जिन्वन् । कोशम् । मधुऽश्चुतम् ॥६॥

पदार्थः—(समुद्रस्य, अधि, विष्टपि) यःपरमात्मा अन्तरिक्षमध्ये (मधुश्चुतम, कोशम) सर्वविधमधुरतायाः वर्षितारं कोशम् (जिन्वति) वर्धयति (इन्दुः) परमैश्वर्यवान् स एव (वाचम, प्र, इष्यति) वेदवाणीः प्रेरयति ।

पदार्थ—(समुद्रस्य, अधि, विष्टपि) "समुद्रवन्ति यस्मादापः स समुद्रः" जो परमात्मा अन्तरिक्ष लोक के मध्य में (मधुश्चुतम्, कोशम्) सब प्रकार की मधुरताओं के सिञ्चन करने वाले कोश को (जिन्वति) बढ़ाता है (इन्दुः) वही परमैश्वर्यसम्पन्न परमात्मा (वाचम्, प्र, इष्यति) वेदवाणी की प्रेरणा करता है ॥

भावार्थ—परमात्मा के नियम से समुद्र अर्थात् अन्तरिक्ष में जलों का सञ्चय रहता है क्यों कि समुद्र के अर्थ ये हैं जिस में जलों का भलीभांति सञ्चार हो अर्थात् इतस्ततः गमन हो उसको समुद्र कहते हैं अन्तरिक्ष लोक में मेघों का इतस्ततः गमन होता है इस लिये मुख्य नाम समुद्र इन्हीं का है, तात्पर्य ये है कि जिस परमात्मा ने इन विशाल नियमों को बनाया है उसी परमात्मा ने वेदरूपी वाणी को प्रकट किया है ॥

नित्यस्तोत्रो वनस्पतिर्धीनामन्तः सबर्दुघः ।
हिन्वानो मानुषा युगा ॥७॥

नित्यऽस्तोत्रः । वनस्पतिः । धीनाम् । अन्तः । सबःऽदुघः । हिन्वानः । मानुषा । युगा ॥७॥

पदार्थः—स परमात्मा (नित्यस्तोत्रः) नित्य स्तवनीयः (वनस्पतिः) सर्व ब्रह्माण्डाधिपतिः (धीनाम्, अन्तः) बुद्धीना मवसानः (सबः, दुघः) अमृतेन तर्पकश्च (मानुषा, युगा) स्त्री पुरुषयोर्युगलस्योत्पादकश्च (हिन्वानः) सर्वस्य तृप्ति कारकश्चास्ति ।

पदार्थ—वह परमात्मा (नित्यस्तोत्रः) नित्यस्तुति करने योग्य है (वनस्पतिः) सब ब्रह्माण्डों का स्वामी है (धीनाम्, अन्तः) बुद्धियों का अन्त है (सबः, दुघः) अमृत से परिपूर्ण करने वाला है (मानुषा, युगा) और स्त्री पुरुष के जोड़ को उत्पन्न करने वाला है (हिन्वानः) सबका तृप्ति कारक है ।

भावार्थ—बुद्धियों का अन्त उसको इस अभिप्राय से कथन किया गया है कि मनुष्य की बुद्धि उसके पारावार को नहीं पा सकती इस लिये उसने मनुष्यों पर अत्यन्त करुणा करके अपने वेद रूपी ज्ञान का प्रकाश किया है ॥७॥

अभि प्रिया दिवस्पदा सोमो हिन्वानो अर्षति ।
विप्रस्य धारया कविः ॥८॥

अभि । प्रिया । दिवः । पदा । सोमः । हिन्वानः । अर्षति ।
विप्रस्य । धारया । कविः ॥८॥

पदार्थः—(कविः) क्रान्त कर्मा (सोमः) सौम्य स्वभाववान् सः (दिवस्पदा) द्युलोकस्य व्यापक रूपेणाधिकरण मास्ति (विप्रस्य) ज्ञानस्य (धारया) वर्षेण (प्रिया, अभि, अर्षति) अस्मात्प्रियं विधाय आनन्दयाति ।

पदार्थ—(कविः) क्रान्त कर्मा (सोमः) सौम्यस्वभाव वाला परमात्मा (दिवस्पदा) द्युलोक का व्यापक रूप से अधिकरण है (विप्रस्य) ज्ञान की (धारया) धारा से (प्रिया, अभि, अर्षति) हमको आनन्दित करता है ॥८॥

आ पवमान धारय रयिं सहस्रवर्चसम् ।
अस्मे इन्दो स्वाभुवम् ॥९॥३९॥७॥

आ । पवमान । धारय । रयिम् । सहस्रऽवर्चसम् । अस्मे इति । इन्दो इति । सुऽआभुवम् ॥९॥३९॥७॥

पदार्थः—(पवमान) हे सर्वेषां पावक (इन्दो) परमैश्वर्यशालि परमात्मन् । (अस्मे) अस्मभ्यम् (रयिम्) धनम् तथा (सहस्रवर्चसं, स्वाभुवम्) अत्यन्त दीप्तिमतो गृहान् (आ, धारय) धारयतु ददात्वित्यर्थः ।

पदार्थ—(पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले (इन्दो) परमैश्वर्यसम्पन्न परमात्मन् ! (अस्मे) आप हमारे लिये (रयिम्) धन को तथा (सहस्रवर्चसं, स्वाभुवम्) अत्यन्त दीप्ति वाले गृहों को (आ, धारय) धारण कराइये अर्थात् दीजिये ।

भावार्थ—परमात्मा जिन पुरुषों के कर्मों द्वारा प्रसन्न होता है उनको अनन्त प्रकार की दीप्तियों वाले गृहों को देता है और नाना विध ऐश्वर्य से उनको सम्पन्न करता है ॥९॥

वेदव्याख्यानपुण्येन मोहोममनिवर्त्यताम् ।
याचेऽहमीशतोह्यतद्वेदधर्मः प्रवर्तताम् ॥

इति द्वादशंसूक्तमेकोनचत्वारिंशत्तमो वर्गश्च समाप्तः ।

यह ऋग्वेद के छठे अष्टक में सातवां अध्याय और उनतालीसवां वर्ग, नवमण्डल में बारहवां सूक्त समाप्त हुआ ।

अथ नवर्चस्य त्रयोदशस्य सूक्तस्य–

१—९ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः । पवमानः सोमो देवता । छन्दः–१, ३, ५, ८ गायत्री । ४ निचृद्गायत्री । ६ भुरिग्गायत्री । ७ पाद निचृद्गायत्री ९ यवमध्या गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अधुना परमात्मनः यज्ञादिकर्मप्रियता दानप्रियता च विधीयते ।

अब परमात्मा की यज्ञादि कर्म प्रियता और दान प्रियता को कहते हैं ।

सोमः पुनानो अर्षति सहस्रधारो अत्यविः ।
वायोरिन्द्रस्य निष्कृतम् ॥१॥

सोमः । पुनानः । अर्षति । सहस्रऽधारः । अतिऽअविः ।
वायोः । इन्द्रस्य । निःऽकृतम् ॥१॥

पदार्थः—(सोमः) चराचर जगदुत्पादकः परमात्मा (पुनानः, अर्षति) सर्वं पावयन् सर्वत्र व्याप्नोति, तथा च (सहस्रधारः) सहस्राणि वस्तूनां धारयति (अत्यविः) अत्यन्त रक्षकोऽस्ति (वायोः) कर्मशीलस्य (इन्द्रस्य) ज्ञानशीलस्य च विदुषः (निष्कृतम्) उद्धारकोऽस्ति ।

पदार्थ—(सोमः) 'सूते चराचरं जगदिति सोमः' सब चराचर जगत् को उत्पन्न करने वाला वह परमात्मा (पुनानः, अर्षति) सबको पवित्र करता हुआ सब जगह व्याप्त हो रहा है और (सहस्रधारः) सहस्रों वस्तुओं को धारण करने वाला है (अत्यविः) अत्यन्त रक्षक है और

(वायोः) कर्मशील तथा (इन्द्रस्य) ज्ञान शील विद्वानों का (निष्कृतं) उद्धार करने वाला है ॥

भावार्थ—यद्यपि परमात्मा सर्व रक्षक है वह किसी को द्वेष दृष्टि व प्रिय दृष्टि से नहीं देखता तथापि वह सत्कर्मी पुरुषों को शुभ फल देता है और असत्कर्मियों को अशुभ, इसी अभिप्राय से उस को कर्मशील पुरुषों का प्यारा वर्णन किया है ॥ १ ॥

पर्वमानमवस्यवो विप्रमभि प्र गायत ।
सुष्वाणन्देववीतये ॥२॥

पर्वमानम् । अवस्यवः । विप्रम् । अभि । प्र । गायत । सुऽस्वानम् । देवऽवीतये ॥२॥

पदार्थः—(अवस्यवः) हे सदुपदेशेन प्रजाः रिरक्षिषवो विद्वांसः ! भवन्तः (देववीतये) दिव्यैश्वर्यप्राप्तये (सुष्वाणम्) सर्वेषां प्रेरकम् (पवमानम्, विप्रम्) सर्वेषां पावयितारं पूर्णपुरुषम् (अभि, प्र, गायत) स्तुवन्तु ॥

पदार्थ—(अवस्यवः) हे उपदेश द्वारा प्रजा की रक्षा चाहने वाले विद्वानों ! आप (देववीतये) दिव्य ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (सुष्वाणम्, पवमानम्, विप्रम्) सबको पवित्र करने वाले पूरण परमात्मा का (अभि, प्र, गायत) तुम गान करो ।

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे विद्वानों ! तुम उस पुरुष की उपासना करो जो सर्व प्रेरक है और सब को पवित्र करने वाला है और व्यापक रूप से सर्वत्र स्थिर है ॥ २ ॥

पव॑न्ते वाज॑सातये सोमाः॑ सहस्र॑पाजसः ।
गृणाना देववी॑तये ॥३॥

पव॑न्ते । वाजऽसातये । सोमाः॑ सहस्र॑ऽपाजसः । गृणानाः ।
देवऽवी॑तये ॥ ३ ॥

पदार्थः—उक्ता विद्वांसः (देववीतये) ऐश्वर्यलाभाय (गृणानाः) स्तुतिं कुर्वाणाः (सहस्रपाजसः) विविधबल सहिताः (सोमाः) सौम्यस्वभाववन्तः (वाजसातये) धर्म-युद्धेषु (पवन्ते) पुनन्ति अस्मान् ।

पदार्थ—उक्त विद्वान् (देववीतये) ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (गृणाना) स्तुति करते हुये (सहस्रपाजसः) अनन्त प्रकार के बलों वाले (सोमाः) सौम्य स्वभाव वाले (वाजसातये) धर्म युद्धों में (पवन्ते) हमको पवित्र करते हैं ।

भावार्थ—जो लोग ईश्वर पर विश्वास रख कर अनन्त प्रकार के कला कौशलादि बलों से सम्पन्न होते हैं वे ही सब प्रजा को पवित्र करते हैं अर्थात् अपने ज्ञान से प्रजा की रक्षा करते हैं ॥३॥

उत नो॒ वाज॑सातये॒ पव॑स्व बृह॒तीरिषः॑ ।
द्युमदि॑न्दो सुवीर्य॑म् ॥ ४ ॥

उत । नः वाज॑ऽसातये । पव॑स्व । बृह॒तीः । इषः॑। द्युऽमत्।
इ॒न्दोइति॑ । सुऽवीर्यं॑ ॥४॥

पदार्थः—(इन्दो) हे परमैश्वर्यशालिपरमात्मन् ! (द्युमत) दीप्तिमत (सुवीर्यम) बलम (पवस्व) अस्मभ्यं देहि (उत)

तथा च (वाजसातये) युद्धेषु (नः, बृहतीः, इषः) अस्मभ्यं प्रबलां शक्तिं प्रयच्छ।

पदार्थ—(इन्दो) हे परमैश्वर्य वाले परमात्मन्! (द्युमत्) दीप्तिवाला (सुवीर्यम्) बल (पवस्व) हमको दें (उत) और (वाजसातये) युद्धों में (नः, बृहतीः, इषः) हमको बड़ी शक्ति प्रदान करें॥४॥

ते नः॑ स॒हस्रि॑णं र॒यिं पव॑न्तामा सु॒वीर्य॑म्।
सु॒वा॒ना दे॒वास॒ इन्द॑वः॥५॥१॥

ते। नः॒। स॒हस्रि॑णम्। र॒यिम्। पव॑न्ताम्। आ। सु॒ऽवीर्य॑म्। सु॒वा॒नाः। दे॒वासः॑। इन्द॑वः॥५।१॥

पदार्थः—(इन्दवः) परमैश्वर्यवान्परमात्मा (देवासः) दिव्यशक्तिः (सुवानाः) सर्वेषामुत्पादकः (सुवीर्यम्) पर्याप्तं पराक्रमम् (आ, पवन्ताम्) सम्यक् ददातु तथा (ते) सः (सहस्रिणम्) अनेकविधम् (रयिम्) ऐश्वर्यम् (नः) अस्मभ्यम्प्रयच्छतु।

पदार्थ—(इन्दवः) परमैश्वर्ययुक्तपरमात्मा (देवासः) दिव्य शक्तिवाला (सुवानाः) सबको उत्पन्न करने वाला (सुवीर्यम्) सुन्दर बल को (आ, पवन्ताम्) भली भांति हमको देय और (ते) वह (सहस्रिणम्) अनन्त प्रकार के (रयिम्) ऐश्वर्य को (नः) हमको देय।

भावार्थ—यहां 'व्यत्ययोबहुलम्' इस सूत्र से एकवचन के स्थान में बहुवचन हुआ है इसलिये ईश्वर का ही ग्रहण समझना चाहिये किसी अन्य का नहीं॥५॥१॥

अत्यां हियाना न हेतृभिरसृग्रं वाजंसताये ।
विवारमव्यमाशवः ॥ ६ ॥

अत्याः । हियानाः । न । हेतृऽभिः । असृग्रं । वाजंऽसातये ।
विऽवारं । अव्यं । आशवः ॥६॥

पदार्थः—(अत्याः) सर्वत्र वर्तमानः (हियानाः) स्तूयमानः (हेतृभिः, न) शीघ्रगामिविद्युदादिशक्तिरिव (वाजसातये) धर्मयुद्धेषु (असृग्रम्) रक्षतु नः (विवारम् , आशवः) यद्द्रुतम ज्ञानं विनाश्य ज्ञानस्य प्रकाशकः (अव्यम्) सर्वेषां रक्षकश्च तमुपास्महे ।

पदार्थ—(अत्याः) " अतति सर्वमित्यत्यः " जो सर्वत्र परिपूर्ण हो उसका नाम अत्य है (हियानाः) प्रार्थना किया गया (हेतृभिः) शीघ्रगामी विद्युदादि शक्तियों के (न) समान (वाजसातये) धर्मयुद्धों में (असृग्रम्) हमारी रक्षा करे (विवारम्, आशवः) जो शीघ्र ही अज्ञान को नाश करके ज्ञान का प्रकाश करने वाला और (अव्यम्) सब का रक्षक है उसकी हम उपासना करते हैं ।

भावार्थ—जो पुरुष ज्ञान स्वरूप परमात्मा की उपासना करते हैं और एकमात्र उसी का भरोसा रखते हैं वे धर्म युद्धों में सदैव विजयी होते हैं ॥६॥

वाश्रा अर्षन्तीन्दवोऽभि वत्सं न धेनवः ।
दधन्विरे गभस्त्योः ॥ ७ ॥

वाश्राः । अर्षंति । इंदवः । अभि । वत्सं । न । धेनवः ।
दधन्विरे । गभस्त्योः ॥७॥

पदार्थः—(धेनवः) इन्द्रियाणि (न) यथा (वत्सम्) स्वं प्रियार्थमभियान्ति तथैव (वाश्राः) सर्वशास्त्रयोनिः (इन्दवः) परमात्मा (अभ्यर्षन्ति) स्वोपासकमभियाति (गभस्त्योः) स्वप्रकाशम् (दधन्विरे) वितनोति च ।

पदार्थ—(धेनवः) इन्द्रियें (न) जिस प्रकार (वत्सं,) अपने प्रिय अर्थ की ओर जाती हैं उसी प्रकार (वाश्राः) जो वेदादि शास्त्रों की योनि है (इन्दवः) वह परमात्मा (अभ्यर्षन्ति) अपने उपासक की ओर जाता है (गभस्त्योः, दधन्विरे) और सर्वत्र अपना प्रकाश फैलाता है ।

भावार्थ—उपासक पुरुष जब शुद्ध हृदय से ईश्वर की उपासना करता है तो ईश्वर का प्रकाश उसको आकर प्रकाशित करता है 'उपास्यतेऽनेनेत्युपासनम्.' जिससे ईश्वर की समीपता लाभ की जाय उस कर्म का नाम उपासन कर्म है समीपता के अर्थ यहां ज्ञान द्वारा समीप होने के हैं किसी देश द्वारा समीप होने के नहीं इस लिये जब परमात्मा ज्ञान द्वारा समीप होता है तो उसका प्रकाश उपासक के हृदय को अवश्यमेव प्रकाशित करता है ॥७॥

जुष्ट इन्द्राय मत्सरः पवमान कनिक्रदत् ।
विश्वा अप द्विषो जहि ॥ ८ ॥

जुष्टः । इन्द्राय । मत्सरः । पवमान । कनिक्रदत् । विश्वाः । अप । द्विषः । जहि ॥८॥

पदार्थः—(इन्द्राय) यो धर्मवतां विदुषां (जुष्टः) सहचरोऽस्ति (मत्सरः) यश्च न्यायमदेन मत्तश्चासः (पवमानः)

सर्वस्यपावयिता (कनिक्रदत्) सर्वेभ्यः सदुपदेशदाता (विश्वा) कृत्स्नानि (अप, द्विषः, जहि) मम राग द्वेषादीनि नाशयतु सः ।

पदार्थ—(इन्द्राय) जो धर्मप्रिय विद्वानों का (जुष्टः) संगी है (मत्सरः) जो न्याय रूपी मद से मत्त है वह (पवमानः) सब को पवित्र करने वाला (कनिक्रदत्) सब को सदुपदेश दाता (विश्वा) सम्पूर्ण (अप, द्विषः, जहि) जो हमारे राग द्वेषादि हैं उनको नाश करे ॥

भावार्थ—जो लोग ईश्वर परायण हो कर अपनी जीवनयात्रा करते हैं परमात्मा उन के रागद्वेषादि भावों को निवृत्त करता है ॥८॥

अपघ्नन्तो अराव्णः पवमानाः स्वर्दृशः ।
योनावृतस्य सीदत ॥ ९ ॥ २ ॥

अपऽघ्नतः । अराव्णः । पवमानाः । स्वःऽदृशः । योनौ । ऋतस्य । सीदत ॥९॥२॥

पदार्थः—(अराव्णः) दुष्टान् (अपघ्नतः) दारुणं दण्डं ददत् (पवमानाः) सतः पावयन् (स्वर्दृशः) सर्वद्रष्टा परमात्मा (ऋतस्य) सत्कर्मरूपयज्ञस्य (योनौ) वेद्याम् (सीदत) आगत्य तिष्ठतु ।

पदार्थ—(अराव्णः) दुष्टों को (अपघ्नतः) दारुण दण्ड देने वाला (पवमानाः) सत्कर्मियों को पवित्र करने वाला (स्वर्दृशः) सर्व द्रष्टा परमात्मा (ऋतस्य) सत्कर्म रूपी यज्ञ की (योनौ) वेदी में (सीदत) आकर विराज मान हो ।

भावार्थ—कर्म योगी और ज्ञान योगियों के यज्ञों में परमात्मा अपने सद्भावों से आकर सदैव विराज मान होता है तात्पर्य यह है कि

परमात्मा के भाव सत्कर्मों द्वारा अभिव्यक्त होते हैं इसी लिये आकर विराजना कथन किया गया है । वस्तुतः परमात्मा सदैव कूटस्थनित्य है कहीं जाता आता नहीं इसी अभिप्राय से कहा है कि "तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके" यजुः ४० । ५ । वह अज्ञानियों की दृष्टि में चलता है और वास्तव में नहीं चलता अज्ञानियों की दृष्टि में दूर है वास्तव में समीप, इस प्रकार वेद उसको सर्वत्र गतिरहित वर्णन करता है ॥९॥

इति त्रयोदशं सूक्तं द्वितीयो वर्गश्च समाप्तः ।

यह तेरहवां सूक्त और दूसरा वर्ग समाप्त हुआ ।

अथाष्टर्चस्य चतुर्दश सूक्तस्य-

१-८ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः-१-३, ५, ७ गायत्री । ४, ८ निचृद्गायत्री । ६ ककुम्मती गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अथोक्तपरमात्मन अन्येगुणा वर्ण्यन्ते ।

अथ उक्त परमात्मा के अन्य गुणों का वर्णन करते हैं ।

परि प्रासिष्यदत्कविः सिन्धोरूर्मावधि श्रितः ।
कारं बिभ्रत्पुरुस्पृहम् ॥ १ ॥

परि । प्र । असिस्यदत् । कविः । सिंधोः । ऊर्मौ । अधि । श्रितः । कारं । बिभ्रत् । पुरुऽस्पृहं ॥१॥

पदार्थः—(सिन्धोः, ऊर्मौ) यः समुद्रतरङ्गाणाम् (अधि,

श्रितः) निर्माता (कारम्, बिभ्रत् पुरुस्पृहम्) येन सर्वजन मनोरथरूपः संसारोनिरमायि (कविः) स एव परमात्मा (परि प्रासिष्यदत्) सर्वत्र व्याप्नोति ।

पदार्थ—(सिन्धोः ऊर्मौ) जिसने समुद्र की लहरों को (अधि-श्रितः) निर्माण किया (कारम्, बिभ्रत्, पुरुस्पृहम्) जिसने सर्वजनों के मनोरथ रूप इस कार्य ब्रह्माण्ड को बनाया (कविः) वही परमात्मा (परि, प्रासिष्यदत्) सर्वत्र परिपूर्ण हो रहा है ।

भावार्थ—उस परमात्मा ने इस ब्रह्माण्ड में नाना प्रकार की रचनाओं को बनाया है, कहीं महासागरों में अनन्त प्रकार की लहरें उठती हैं । कहीं हिमालय के उच्च शिखर नभोमण्डलवर्ती वायुओं से संघर्षण कर रहे हैं एवं नाना प्रकार की रचनाओं का रचयिता वही परमात्मा है ॥१॥

गिरा यदी सबन्धवः पञ्च व्राता अपस्यवः ।
परिष्कृण्वन्ति धर्णसिम् ॥ २ ॥

गिरा । यदि । सऽबंधवः । पंच । व्राताः । अपस्यवः ।
परिऽकृण्वंति । धर्णसिं ॥२॥

पदार्थः—(पञ्च, व्राताः) पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि (सब-न्धवः) कर्मेन्द्रियसहिताः (यदि, अपस्यवः) यदा ईश्वर पराणि भवन्ति तदा (गिरा) परमात्मस्तुत्या (धर्णसिम्) इमां पृथिवीम् (परिष्कृण्वन्ति) भूषयन्ति ।

पदार्थ—(पञ्च, व्राताः) पांचज्ञानेन्द्रियें (सबन्धवः) कर्मेन्द्रियों के साथ (यदि, अपस्यवः) जब ईश्वर परायण हो जाती हैं तो (गिरा)

परमात्मा की स्तुति से (धर्णसिम्) इस पृथिवी को (परिष्कृण्वन्ति) भूषित कर देती हैं।

भावार्थ—ज्ञानयोगी पुरुष जब शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन पांचों विषयों को हटा कर अपने पांचों ज्ञानेन्द्रियों को ईश्वर की ओर लगा देता है तो इस सम्पूर्ण संसार को अलंकृत करता है तात्पर्य यह है कि स्वभावतः बहिर्मुख इन्द्रियों को जिनको "पराञ्चि खानिव्यतृणत्स्वयंभूः" कठ ४।१। स्वयंभू विधाता ने स्वभावतः बाहर की ओर बहने वाली बनाया है, कोई एक धीर वीर पुरुष ही उनके वेग को बाहर से हटा कर उनको अन्तर्मुखी बनाता है अन्य नहीं ॥२॥

आदस्य शुष्मिणो रसे विश्वे देवा अमत्सत।
यदी गोभिर्वसायते ॥ ३ ॥

आत्। अस्य। शुष्मिणः। रसे। विश्वे। देवाः। अमत्सत।
यदि। गोभिः। वसायते ॥३॥

पदार्थः—(यदि) चेद् (विश्वेदेवाः) सम्पूर्णविद्वांसः (अस्य) इमम्पूर्वोक्तम् (शुष्मिणः) बलिनम्परमात्मानं (गोभिः, वसायते) इन्द्रियगोचरं कुर्युः (आत्) तदा पुनः ते सर्वे (अमत्सत) ध्यानविषयं तं कृत्वा नन्दन्ति ॥

पदार्थ—(यदि) अगर (विश्वेदेवाः) सम्पूर्ण विद्वान् (अस्य) पूर्वोक्त (शुष्मिणः) बलसम्पन्न परमात्मा को (गोभिः, वसायते) इन्द्रियगोचर कर सकें (आत्) तदनन्तर वे सब देव (अमत्सत) उस को ध्यान का विषय बनाकर आनन्दित होते हैं।

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो! तुम्हारे

इन्द्रिय तुमको स्वभाव से बहिर्मुख बनाते हैं तुम यदि संयमी बन कर उनका संयम करो तो इन्द्रिय परमात्मा के स्वरूप को विषय करके तुम्हें आनन्दित करेंगे, इसी अभिप्राय से उपनिषद् में कहा है कि "कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षत" क० ४।१। कोई धीर पुरुष ही प्रत्यगात्मा को देख सकता है, यहां देखने के अर्थ व इन्द्रियगोचर करने के अर्थ मूर्त्तिमान् पदार्थ के समान देखने के नहीं, किन्तु जिस प्रकार निराकार और निरूप होने पर भी सुख दुःखादिकों का अनुभव होता है इस प्रकार अनुभव का विषय बनाने का नाम यहां देखना व इन्द्रिय गोचर करना है इसी अभिप्राय से "दृश्यते त्वग्र्या बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः" कि वह सूक्ष्म बुद्धि के द्वारा देखा जा सकता है, सूक्ष्म बुद्धि से तात्पर्य यहां योगज सामर्थ्य का है अर्थात् चित्तवृत्ति निरोध द्वारा परमात्मा का अनुभव हो सकता है इसी अभिप्राय से कहा है कि "तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्" उस समय द्रष्टा के स्वरूप में स्थिति हो जाती है इसी अभिप्राय से कहा है कि "यद्गिं गोभिर्वसायते" ॥३॥

निरिणानो विधावति जहच्छर्याणि तान्वा ।
अत्रा सञ्जिघ्रते युजा ॥ ४ ॥

निऽरिणानः । वि । धावति । जहत् । शर्याणि । तान्वा ।
अत्र । सं । जिघ्रते । युजा ॥४॥

पदार्थः—उक्तः परमात्मा (निरिणानः) ज्ञानविषयो भवन् (तान्वा) स्वप्रकाशेन (द्वाराणि) स्वप्रकाशरश्मिवर्गं जहत् (विधावति) जिज्ञासुबुद्धौ तिष्ठति (अत्र, युजा) अत्र परमात्मनि योगेन (सं, जिघ्रते) उपासकाः स्वाज्ञानं घ्नन्ति ।

पदार्थ—उक्त परमात्मा (निरिणानः) ज्ञान का विषय होता हुआ (तान्वा) अपने प्रकाश से (द्वाराणि) अपनी प्रकाश रश्मियों को छोड़ता हुआ (विधावति) जिज्ञासु के बुद्धिगत होता है (अत्र, युजः) उस परमात्मा में युक्त होकर (सं, जिघ्नते) उपासक लोग अज्ञानों का नाश करते हैं ॥

भावार्थ—ध्यान का विषय हुआ वह परमात्मा जिज्ञासुओं के अन्तः करणों को निर्मल करता है और जिज्ञासुजन उस की उपासना करते हुये अज्ञान को नाश करके परम गति को प्राप्त होते हैं ॥४॥

नप्तीभिर्यो विवस्वतः शुभ्रो न मामृजे युवा ।
गाः कृण्वानो न निर्णिजम् ॥ ५ ॥ ३ ॥

नप्तीभिः । यः । विवस्वतः । शुभ्रः । न । ममृजे । युवा ।
गाः । कृण्वानः । न । निःऽनिजं ॥५॥

पदार्थः—(यः) यः परमात्मा (विवस्वतः) विज्ञानिनो जिज्ञासोः (नप्तीभिः) चित्तवृत्तिभिः (शुभ्रः) प्रकाशमानः (युवा) समीपस्थवस्तु (न) इव (मामृजे) साक्षात्कृतोभवति स साक्षात्कारश्च (गाः कृण्वानः) इन्द्रियाणि प्रीणयन् (निर्णिजम्, न) रूपमिव सम्पद्यते ।

पदार्थ—(यः) जो परमात्मा (विवस्वतः) विज्ञान वाले जिज्ञासु की (नप्तीभिः) चित्त वृत्तियों द्वारा (शुभ्रः) प्रकाशित होकर (युवा) समीपस्थ वस्तु के (न) समान (मामृजे) साक्षात्कार को प्राप्त होता है और वह साक्षात्कार (गाः कृण्वानः) इन्द्रियों को प्रसन्न करते हुये (निर्णिजं, न) रूप के समान होता है ॥

भावार्थ--जो पुरुष अपने मन को शुद्ध करते हैं वे उस पुरुष का साक्षात्कार करते हैं उन पुरुषों की चित्त वृत्तियें उसको हस्तामलक वत् साक्षाद्रूप से अनुभव करती हैं, अर्थात् शुद्धमन द्वारा साक्षात् किये हुये परमात्मध्यान में फिर किसी प्रकार का भी संशय व विपर्यय ज्ञान नहीं होता ॥५॥३॥

अति॑ श्रि॒ती ति॑र॒श्चता॑ ग॒व्या जि॑गा॒त्यण्व्या॑ ।
व॒ग्नुमि॑यर्ति॒ यं वि॒दे ॥ ६ ॥

अति॑ । श्रि॒ति । ति॒र॒श्चता॑ । ग॒व्या । जि॒गा॒ति॒ । अण्व्या॑ ।
व॒ग्नुम् । इ॒य॒र्ति॒ । यं । वि॒दे ॥६॥

पदार्थः—(अति, श्रिती) अनन्याधारः परमात्मा (अण्व्या) अणुभिः (तिरश्चता) तीक्ष्णाभिः (गव्या) इन्द्रियवृत्तिभिः (जिगाति) प्रकाश्यते (यं) यम् (वग्नुम्) शब्द प्रमाणम् (विदे) जिज्ञासवे (इयर्ति) प्रकटयति अन्यस्मै न ।

पदार्थ--(अति, श्रिती) 'श्रितिमतिक्रान्तः अतिश्रिती" जो किसी अन्यवस्तु के आश्रित न हो उसका नाम अतिश्रिती अर्थात् सबका आश्रय परमात्मा (अण्व्या) सूक्ष्म (तिरश्चता) तीक्ष्ण (गव्या) इन्द्रियों की वृत्तियों से (जिगाति) प्रकाश को प्राप्त होता है (यं) जिसको (वग्नुम्) शब्द प्रमाण (विदे) जिज्ञासु के लिये (इयर्ति) प्रकट करता है ॥

भावार्थ--जब धारणा ध्यानादि योगाङ्गों से चित्त की वृतियें निर्मल होती हैं तो उक्त परमात्मा को विषय करती हैं जो पुरुष शब्द प्रमाण पर विश्वास करते हैं वे साधन सम्पन्न वृत्तियों के द्वारा उसका अनुभव करते हैं अन्य नहीं ॥६॥

अभि क्षिपः सम॑ग्मत मर्जय॑न्तीरि॒षस्पति॑म् ।
पृ॒ष्ठा गृ॑भ्णत वा॒जिन॑ः ॥ ७ ॥

अभि । क्षिप॑ः । सम् । अ॒ग्म॒त । मर्जय॑न्तीः । इ॒षः । पति॑म् ।
पृ॒ष्ठा । गृ॒भ्ण॒त । वा॒जिन॑ः ॥ ७ ॥

पदार्थः—(क्षिपः) चित्तवृत्तयः (अभि) सर्वतः (इषस्पतिम्) सर्वैश्वर्यस्वामिनम् (मर्जयन्तीः) प्रकाशयन्त्यः (समग्मत) समाधिदशामधिगच्छन्ति तत्र च (वाजिनः) अखिल बलानाम् (पृष्ठा) आधारम् (गृभ्णत) गृह्णन्ति ।

पदार्थ—(क्षिपः) चित्तवृत्तियें (अभि) सब ओर से (इषस्पतिम्) जो सब ऐश्वर्यों का पति है उसको (मर्जयन्तीः) प्रकाशित करती हुयीं (समग्मत) समाधि अवस्था को प्राप्त होती हैं, और वहां (वाजिनः) सब बलों के (पृष्ठा) अधिकरण को (गृभ्णत) ग्रहण करती हैं ।

भावार्थ—परमात्मा सब पदार्थों का अधिकरण है अर्थात् उसी की सत्ता से सब पदार्थ स्थिर हो रहे, हैं उस बलस्वरूप परमात्मा का साक्षात्कार समाधि अवस्था के विना कदापि नहीं हो सकता ॥ ७ ॥

परि॑ दि॒व्यानि॒ मर्मृ॑शद्विश्वा॑नि॒ सोम॒ पार्थि॑वा ।
वसू॑नि याह्यस्म॒युः ॥ ८ ॥ ४ ॥

परि॑ । दि॒व्यानि॑ । मर्मृ॑शत् । विश्वा॑नि । सो॒म॒ । पार्थि॑वा ।
वसू॑नि । या॒हि॒ । अ॒स्म॒ऽयुः ॥ ८ । ४ ॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (दिव्यादिनि) विचित्राणि (पार्थिवानि) पृथिवीसम्बन्धीनि (विश्वानि, वसूनि) सर्वाणि धनानि (मर्मृशत्) प्रयच्छन् (अस्मयुः) अस्मानुद्धर्तुमिच्छन् (परि, याहि) अस्मान् प्राप्नुहि ।

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! (दिव्यानि) दिव्य (पार्थिवानि) पृथिवीलोक के (विश्वानि, वसूनि) सम्पूर्ण धनों के (मर्मृशत्) सहित (अस्मयुः) हमारे उद्धार की इच्छा करते हुये (परि, याहि) हमको प्राप्त हों ।

भावार्थ—पार्थिवानि यह कथन यहां उपलक्षण मात्र है अर्थात् पृथिवी लोक अथवा द्युलोक के जितने ऐश्वर्य हैं उनको परमात्मा हमें प्रदान करे इस सूक्त में परमात्मा के सर्वाश्रयत्व और सर्वदातृत्वादि अनेक प्रकार के गुणों का वर्णन किया है ॥ ८ । ४ ॥

चतुर्दशं सूक्तं चतुर्थोवर्गश्च समाप्तः ।

यह चौदहवां सूक्त और चौथा वर्ग पूरा हुआ ।

अथर्चस्य पञ्चदशसूक्तस्य--

१-८ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः-१, ३-५, ८ निचृद्गायत्री । २, ६ गायत्री । ७ विराड् गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अथ गुणान्तरैः परमात्मनोमहत्त्वं वर्ण्यते ।

अब अन्य गुणों से परमात्मा का महत्व कथन करते हैं ।

एष धिया यात्यण्व्या शूरो रथेभिराशुभिः।
गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम्॥ १॥

एषः। धिया। याति। अण्व्या। शूरः। रथेभिः। आशुऽभिः।
गच्छन्। इन्द्रस्य। निःऽकृतम्॥१॥

पदार्थः—(एषः) अयं परमात्मा (धिया, अण्व्या) सूक्ष्मया स्वधारणशक्त्या (याति) सर्वत्र प्राप्नोति (रथेभिः) शक्तिभिः (आशुभिः) शीघ्रगामिभिः (इन्द्रस्य, निष्कृतम्) जीवान् उद्धर्तुम् (शूरः) अविद्यादिदोषान् शमयन् (गच्छन्) जगन्निर्माणरूपकर्म करोति।

पदार्थ—(एषः) यह परमात्मा (धिया, अण्व्या) सूक्ष्म अपनी धारणशक्ति से (याति) सर्वत्र प्राप्त हो रहा है (रथेभिः, आशुभिः) अपनी शीघ्रगामिनी शक्तियों से (इन्द्रस्य, निष्कृतं) जीवात्मा के उद्धार के लिये (शूरः) "शृणाति हन्तीतिशूरः" अविद्यादि दोषों को हनन करने वाला (गच्छन्) जगद्रचनारूप कर्म करता है॥

भावार्थ—परमात्मा जीवों को कर्मों का फल भुगाने के लिये इस संसाररूपी रचना को रचता है और वह अपनी विविध शक्तियों के द्वारा सर्वत्र परिपूर्ण हो रहा है अर्थात् जिस २ स्थान में परमात्मा की व्यापकता है उस २ स्थान में परमात्मा अनन्त शक्तियों के साथ विराजमान है॥ १॥

एष पुरू धियायते बृहते देवतातये।
यत्रामृतास आसते॥ २॥

एषः। पुरु। धियाऽयते। बृहते। देवऽतातये। यत्र। अमृतासः। आसते ॥२॥

पदार्थः—(एषः) असौ परमात्मा (पुरु, धियायते) अनन्तविज्ञानानां दातास्ति (बृहते, देवतातये) शश्वत् जगति देवत्वं विवर्द्धयिषुः (यत्र) यत् प्राप्य (अमृतासः, आसते) अमृतत्वं प्राप्यते।

पदार्थ—(एषः) यह पूर्वोक्त परमात्मा (पुरु, धियायते) अनन्त विज्ञानों का दाता है (बृहते, देवतातये) सदैव संसार में देवत्व फैलाने का अभिलाषी है (यत्र) जिस ब्रह्म को प्राप्त होकर (अमृतासः, आसते) अमृतभाव को प्राप्त हो जाते हैं।

भावार्थ—परमात्मा अनन्तकर्मा है उस की शक्तियों के पारावार को कोई पा नहीं सकता, इसी अभिप्राय से कहा है "तस्मिन्दृष्टे परावरे" उस परावर ब्रह्म के जानने पर हृदय की ग्रन्थि खुल जाती है और इसी अभिप्राय से "परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते" इत्यादि वाक्यों में उपनिषत्कार ऋषियों ने भी कहा है कि उसकी शक्तियें असंख्यात हैं उसी को जान कर मनुष्य अमृत पद को लाभ कर सकता है अन्यथा नहीं ॥२॥

एष हितो वि नीयतेऽन्तः शुभ्रावता पथा।
यदी तुञ्जन्ति भूर्णयः ॥ ३ ॥

एषः। हितः। वि। नीयते। अन्तरिति। शुभ्रऽवता। पथा। यदि। तुञ्जन्ति। भूर्णयः ॥३॥

पदार्थः—(यदि, भूर्णयः) यद्युपासकाः (तुञ्जन्ति) तदाज्ञां पालयन्ति तदा (शुभ्रावता) शुभेन (पथा) मार्गेण (एषः, हितः) तं हितकरम्, (अन्तः, विनीयते) अन्तःकरणे सुस्थापयन्ति ।

पदार्थ—(यदि, भूर्णयः) यदि उपासक लोग (तुञ्जन्ति) उसकी आज्ञा का पालन करते हैं तो (शुभ्रावता) शुभ (पथा) मार्ग-द्वारा (एषः, हितः) उस हितकारक परमात्मा को (अन्तः, विनीयते) अन्तःकरण में स्थिर करते हैं।

भावार्थ—जो लोग यम नियमों का पालन करते हैं वे अपने अन्तःकरण में परमात्मसत्ता का साक्षात्कार करते हैं और परम पद को लाभ करते हैं ॥३॥

एष शृङ्गाणि दोधुवच्छिशीते यूथ्यो३ वृषा ।
नृम्णा दधान ओजसा ॥ ४ ॥

एषः । शृङ्गाणि । दोधुवत् । शिशीते । यूथ्यः । वृषा । नृम्णा । दधानः । ओजसा ॥४॥

पदार्थः—(एषः) उक्त ईश्वरः (शृङ्गाणि) अखिललोकान् (दोधुवत्) चालयति (शिशीते) सर्वत्रगोऽस्ति (यूथ्यः) सर्वपतिः (वृषा) कामनाप्रदः (ओजसा) स्वतेजसा (नृम्णा) कृत्स्नमैश्वर्यं (दधानः) धारयन् तिष्ठति ।

पदार्थ—(एषः) उक्त परमात्मा (शृङ्गाणि) सब ब्रह्माण्डों को (दोधुवत्) गतिशील करता है (शिशीते) सर्वव्यापक है (यूथ्यः)

सबका पति है (वृषा) कामनाओं की वृष्टि करने वाला है (ओजसा) अपने पराक्रम से (नृम्णा) सब ऐश्वर्यों को (दधानः) धारण कर रहा है ।

भावार्थ—वही परमात्मा कोटानुकोटि ब्रह्माण्डों का चलानेवाला है, और उसी ने इन ब्रह्माण्डों में विद्युत आदि शक्तियों को उत्पन्न करके अनेक प्रकार के आकर्षण विकर्षण आदि गुणों को उत्पन्न किया है एकमात्र उसकी उपासना करने से मनुष्य सद्गति को लाभ कर सकता है ॥४॥

एष रुक्मिभिरीयते वाजी शुभ्रेभिरंशुभिः ।
पतिः सिन्धूनां भवन् ॥ ५ ॥

एषः । रुक्मिऽभिः । ईयते । वाजी । शुभ्रेभिः । अंशुऽभिः ।
पतिः । सिंधूनां । भवन् ॥५॥

पदार्थः—(एषः, वाजी) अनन्तबलोऽयं परमात्मा (रुक्मिभिः, शुभ्रेभिः, अंशुभिः) दीप्तिमतीभिः स्वच्छाभिः प्रकाशमयशक्तिभिः (ईयते) सर्वत्र व्याप्नोति (सिन्धूनाम्) स्यन्दनशीलप्रकृतीनाम् (पतिः, भवन्) पतिःसोऽस्ति ।

पदार्थ—(एषः, वाजी) अनन्तबलवाला यह पूर्वोक्त परमात्मा (रुक्मिभिः) दीप्तिमती (शुभ्रेभिः) निर्मल (अंशुभिः) प्रकाशरूप शक्तियों से (ईयते) सर्वत्र व्याप्त हो रहा है (सिन्धूनाम्) स्यन्दनशील सब प्रकृतियों का (पतिः, भवन्) वह पति है ।

भावार्थ—प्रकृति परिणामिन नित्य है परमात्मा की कृति अर्थात् यत्न से प्रकृति परिणामभाव को धारण करती है उस से महत्तत्व और महत्तत्व से अहंकार और अहंकार से पञ्चतन्मात्र इस प्रकार सृष्टि की रचना होती है, इस अभिप्राय से उसको स्यन्दनशील अर्थात् बहनेवाली

प्रकृतियों का अधिपति कथन किया गया है उक्तप्रकार के गुणों वाला परमात्मा उस पुरुष के हृदय में अपनी अनन्त शक्तियों का आविर्भाव करता है जो पुरुष अपनी अनन्य भक्ति से उसकी उपासना करता है ॥५॥

एष वसूनि पिब्दना परुषा ययिवाँ अति ।
अव शादेषु गच्छति ॥ ६ ॥

एषः । वसूनि । पिब्दना । परुषा । ययिऽवान् । अति ।
अव । शादेषु । गच्छति ॥६॥

पदार्थः—(एषः) असौ परमात्मा (वसूनि) ऐश्वर्याणि (पिब्दना) अपहरतः (परुषा) दारुणान् राक्षसान् (अति, ययिवान्) अतिक्रम्य (शादेषु) युद्धेषु भक्तान् (अवगच्छति) बहुविधज्ञानादीनि साधनानि प्रदाय रक्षति ।

पदार्थ—(एषः) यह पूर्वोक्त परमात्मा (वसूनि) ऐश्वर्यों को (पिब्दना) छीनने वाले (परुषा) कठोर राक्षसों को (अति, ययिवान्) अतिक्रमण करके (शादेषु) युद्धों में भक्तों की (अवगच्छति) अनेक प्रकार से ज्ञानादिकों को देकर रक्षा करता है ।

भावार्थ—जो पुरुष अपने पवित्र भावों से परमात्मपरायण होते हैं परमात्मा उनकी अवश्यमेव रक्षा करता है ॥ ६ ॥

एतं मृजन्ति मर्ज्यमुप द्रोणेष्वायवः ।
प्रचक्राणं महीरिषः ॥ ७ ॥

एतम् । मृजन्ति । मर्ज्यम् । उप । द्रोणेषु । आयवः । प्रऽचक्राणम् । महीः । इषः ॥७॥

पदार्थः—(आयवः) मनुष्याः (मर्य्यम्, एतम्) ध्यातव्यमिमं परमात्मानम् (द्रोणेषु) अन्तःकरणेषु संस्थाप्य (उप, मृजान्ति) उपासते (महीः, इषः) यो ह्रीश्वरः महदन्नाद्यैश्वर्य्यं (प्रचक्राणम्) कुर्वन्नास्ते ॥

पदार्थ—(आयवः) मनुष्य (मर्य्यं, एतम्) ध्यान करने योग्य इस परमात्मा को (द्रोणेषु) अन्तःकरणों में रख कर (उप, मृजन्ति) उपासना करते हैं, (प्रचक्राणं) जो परमात्मा (महीः, इषः) बड़े भारी अन्नाद्यैश्वर्यों का दाता है ।

भावार्थ—उपासकों को चाहिये कि वे उपासनासमय में परमात्मा के विराट्स्वरूप का ध्यान करते हुए उसके गुणों द्वारा उसका उपासन करें अर्थात् उसकी शक्तियों का अनुसन्धान करते हुए उसके विराट्स्वरूप को भी अपनी बुद्धि में स्थिर करें ॥७॥

एतमु त्यं दश क्षिपो मृजन्ति सप्त धीतयः ।
स्वायुधं मदिन्तमम् ॥ ८ ॥ ५ ॥

एतं । ऊं इति । त्यं । दश । क्षिपः । मृजंति । सप्त । धीतयः । सुऽआयुधं । मदिन्ऽतमं ॥८॥५॥

पदार्थः—(एतं त्यं, उ) तं सर्वगुणसम्पन्नं परमात्मानम् (दशक्षिपः) दशेन्द्रियाणि (सप्तधीतयः) सप्तेन्द्रियवृत्तयश्च (मृजन्ति) प्रकटयन्ति च परमात्मा (स्वायुधं) स्वतन्त्रतया विराजते यश्च (मदिन्तमम्) सर्वानन्ददाताऽस्ति ।

पदार्थ—(एतं, त्यम्, उ) उस सर्वगुणसम्पन्न परमात्मा को (दश, क्षिपः) दश इन्द्रियें और (सप्त, धीतयः) और सात धारणा-

दिद्युतियें (मृजन्ति) प्रकट करती हैं (स्वायुधं) जो स्वतन्त्रसत्तावाला है और (मदिन्तमम्) सब को आनन्द देने वाला है ।

भावार्थ—परमात्मा अपनी स्वतन्त्रसत्ता से विराजमान है जब वह श्रेष्ठों का उद्धार और दुष्टों का दमन करता है तब उसे किसी शस्त्रादि साधन की आवश्यकता नहीं किन्तु उसका स्वरूप ही आयुध का काम करता है इस प्रकार के स्वतन्त्रसत्तासम्पन्न परमात्मा को हृदय में धारण करने वाले अत्यन्त आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥८॥५॥

पञ्चदशसूक्तं पञ्चमो वर्गश्च समाप्तः ।

यह पन्द्रहवां सूक्त और पांचवां वर्ग समाप्त हुआ ।

अथाष्टर्चस्य षोडशसूक्तस्य--

१–८ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ विराड् गायत्री । २, ८ निचृद्गायत्री ३–७ गायत्री । षड्जः स्वरः ॥

अथ सात्विकभावोत्पादका रसा वर्ण्यन्तेः—

अब सात्विकभाव को उत्पन्न करनेवाले रसों का वर्णन करते हैं:—

प्र ते सोतार ओण्यो३ रसं मदाय घृष्वये ।
सर्गो न तक्त्येतशः ॥१॥

प्र । ते । सोतारः । ओण्योः । रसं । मदाय । घृष्वये ।
सर्गः । न । तक्ति । एतशः ॥१॥

पदार्थः—(प्रसोतारः) भो जिज्ञासवः ! (ते) युष्माकं (मदाय) आनन्दाय (घृष्वये) शत्रुनिवर्हणाय (ओण्योः)

द्यावापृथिव्योर्मध्ये (रसं) सौम्यस्वभावप्रदाता रसः भवदर्थम् (सर्गः) सृष्टः यः (एतशः, न, तक्ति) विद्युदिव तीक्ष्णतां ददाति।

पदार्थ—(प्रसोतारः) हे जिज्ञासु लोगो! (ते) तुम्हारे (मदाय) आनन्द के लिये और (घृष्वये) शत्रुओं के नाश के लिये (ओण्योः) द्यावा पृथिवी के मध्य में (रसम्) सौम्य स्वभाव का देने वाला रस (सर्गः) बनाया है जो (एतशः, न तक्ति) विद्युत् के समान तीक्ष्णता देने वाला है।

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करता है कि हे मनुष्यो! तुम ऐसे रस का पान करो जिस से तुम में बल उत्पन्न हो और शत्रुओं पर विजयी होने के लिये तुम सिंह के समान आक्रमण कर सको। यहां इस रस के अर्थ किसी रस विशेष के नहीं किन्तु आह्लादजनक रसमात्र के हैं।

वा यों कहो कि सौम्य स्वभाव उत्पन्न करने वाले रस के हैं इस लिये इसको सोमरस भी कहा जा सकता है, और 'धात्वर्थ' भी इसका यह है कि 'रसआस्वादने रस्यते स्वाद्यत इति रसः' जो आनन्द से वा आनन्द के लिये आस्वादन किया जाय उसका नाम यहां रस है। इस प्रकरण में यह शंका नहीं करनी चाहिये कि कहीं सोम के अर्थ रस के और कहीं सोम के अर्थ ईश्वर के ऐसा व्यत्यय क्यों? इसका उत्तर यह है कि "स्याच्चैकस्य ब्रह्मशब्दवत्" २।३।५। इस ब्रह्मसूत्र में इस बात का निर्णय कर दिया है कि एक प्रकरण ही नहीं किन्तु एक वाक्य में भी तात्पर्य भेद से दो अर्थ हो जाते हैं जैसे कि "तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व तपोब्रह्म" तै० ३।२। तप से ब्रह्म की जिज्ञासा करो और तप ब्रह्म है, यहां पहले ब्रह्मशब्द के अर्थ ईश्वर के और द्वितीय ब्रह्मशब्द के अर्थ तप के हैं। और यह नियम वेद, ब्राह्मण, उपनिषद् और शास्त्र सर्वत्र ही पाया जाता है जैसे कि शतपथ में यज्ञ नाम यज्ञका भी और यज्ञ नाम ईश्वर का भी है। अग्नि नाम भौतिक अग्नि का भी और अग्नि नाम ईश्वर का भी है।

इस नियम के अनुसार यहां सोम के अर्थ कहीं सोम रस के और कहीं ईश्वर के किये गये हैं, इस में कोई दोष नहीं ॥१॥

क्रत्वा दक्षस्य रथ्यमपो वसानमन्धसा ।

गोषामण्वेषु सश्चिम ॥२॥

क्रत्वा । दक्षस्य । रथ्यं । अपः । वसानं । अंधसा । गोऽसाम् । अण्वेषु । सश्चिम ॥ २ ॥

पदार्थः—(दक्षस्य) चातुर्य्यदातारम् (रथ्यम्) स्फूर्तिदातारम् (अन्धसा, वसानम्) अन्नेभ्यो निष्पादितम् (गोऽसां) इन्द्रियाणाम् (अण्वेषु) सूक्ष्मशक्तिषु बलोत्पादकम् (क्रत्वा, सश्चिम) एवंविधं रसं कर्मभिरहमुत्पादयेयम् ।

पदार्थ—(दक्षस्य) चतुराई का देने वाला (रथ्यम्) स्फूर्ति का देने वाला (अन्धसा, वसानम्) अन्नों से जिस की उत्पत्ति है (गोषाम्) इन्द्रियों को (अण्वेषु) सूक्ष्मशक्तियों में बल उत्पन्न करने वाला रस (क्रत्वा, सश्चिम) कर्मों के द्वारा हम प्राप्त करें ।

भावार्थ—जीवों की प्रार्थना द्वारा ईश्वर उपदेश करते हैं कि हे जीवो ! तुम ऐसे रस की प्राप्ति की प्रार्थना करो जिस से तुह्मारी चतुराई बढ़े तुम्हारी स्फूर्ति बढ़े और तुम्हारी इन्द्रियों की शक्तियें बढ़ें और तुम ऐश्वर्यसम्पन्न होओ ॥२॥

अनप्तमप्सु दुष्टरं सोमं पवित्र आ सृज ।

पुनीहीन्द्राय पातवे ॥३॥

अनप्तं । अप्ऽसु । दुस्तरं । सोमं । पवित्रे । आ । सृज । पुनीहि । इंद्राय । पातवे ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! भवान् (पवित्रे) श्रेष्ठजनाय (सोमं) सोमरसम् उत्पादयतु यः (अनप्त) क्रूरकर्मभिः अप्राप्यम् (अप्ऽसु) यस्य संस्कारः दुग्धेषु क्रियते अन्यच्च (दुस्तरं) आसुरसम्पत्तिमद्भिः दुस्तरमस्ति (इंद्राय) कर्मयोगिनः (णः (पातवे) पानाय उक्तविधं रसं भवान् उत्पादयतु ।

पदार्थ—हे परमात्मन् ! आप (पवित्रे) श्रेष्ठ लोगों के लिये (सोमं) सोम रस को उत्पन्न करो जो (अनप्तम्) क्रूर स्वभाव वालों के लिये अप्राप्य है और (अप्सु) जिसका संस्कार दूध में किया जाता है और जो (दुष्टरम्) आसुरी सम्पत्ति वालों के लिये दुस्तर है (इन्द्राय) कर्मयोगी के (पातवे) पीने के लिये ऐसे रस को तुम पवित्र बनाओ ।

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो ! तुम दैवी सम्पत्ति के देने वाले अर्थात् सौम्य स्वभाव के बनाने वाले सोम रस की प्रार्थना करो ताकि तुम कर्मयोगियों को कर्मों में तत्पर करने के लिये पर्याप्त हो ।

तात्पर्य यह है कि जो पुरुष अन्नादि औषधियों के रसों को पान करके अपने कामों में तत्पर होते हैं वे पूरे २ कर्मयोगी बन सकते हैं और जो लोग मादक द्रव्यों का सेवन करते हैं वह अपनी इन्द्रियों की शक्तियों को नष्ट भ्रष्ट करके स्वयं भी नाश को प्राप्त हो जाते हैं ॥३॥

प्र पुनानस्य चेतसा सोमः पवित्रे अर्षति ।
क्रत्वा सधस्थमासदत् ॥४॥

प्र । पुनानस्य । चेतसा । सोमः । पवित्रे । अर्षति । क्रत्वा । सधऽस्थं । आ । असदत् ॥ ४ ॥

पदार्थः—(चेतसा, प्र, पुनानस्य) चित्तं पवित्रीकुर्वा-

णस्य द्रव्यस्य यः (सोमः) सोमरसोऽस्ति सः (पवित्रे) सत्कर्मसु ज्ञानमुत्पादयति ततः स मनुष्यः (क्रत्वा) शुभकर्माणि कृत्वा (सधस्थं) सद्गतिं (आसदत्) प्राप्नोति ।

पदार्थ—(चेतसा, प्र, पुनानस्य) चित्त को पवित्र करने वाले द्रव्य का जो (सोमः) सोमरस है वह (पवित्रे, अर्षति) पवित्र लोगों में ज्ञान को उत्पन्न करता है फिर वह मनुष्य (क्रत्वा) शुभकर्मों को करके (सधस्थम्) सद्गति को (आसदत्) प्राप्त होता है ।

भावार्थ—सोमरस, जो कि पवित्र और सुन्दर द्रव्यों से निकाला गया है अर्थात् जो स्वभाव को सौम्य बनाते हैं उनका रस मनुष्य में शुभ बुद्धि को उत्पन्न करता है ॥४॥

प्र त्वा नमो॑भि॒रिन्द॑व॒ इन्द्र॒ सोमा॑ असृक्षत ।
म॒हे भरा॑य का॒रिणः॑ ॥५॥

प्र । त्वा॒ । नमः॑ऽभिः । इंद॑वः । इंद्र॑ । सोमाः॑ । अ॒सृ॒क्ष॒त ।
म॒हे । भरा॑य । का॒रिणः॑ ॥ ५ ॥

पदार्थः—(इन्द्र) भोः शूरवीर ! मया (त्वा) भवदर्थं (नमःऽभिः) अन्नादिद्वारेण (इन्दवः, सोमाः) परमैश्वर्यस्य दातारः सौम्यस्वभावस्य उत्पादकाः (प्रासृक्षत) रसाः उत्पादिताः ये (कारिणः) कर्मयोगिणे (महे, भराय) अत्यन्तपुष्टिप्रदाः सन्ति ।

पदार्थ—(इन्द्र) हे शूरवीर मैंने (त्वा) तुम्हारे लिये (नमोभिः) अन्नादि द्वारा (इन्दवः, सोमाः) परमैश्वर्य के देने वाले और सौम्यस्वभाव बनानेवाले सुन्दर रस (प्रासृक्षत) उत्पन्न किये हैं जो कि (कारिणः) कर्मयोगी पुरुष के लिये (महे, भराय) अत्यन्त पुष्टि करने वाले हैं ।

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे शूरवीर लोगो! मैंने तुम्हारे लिये अनन्त प्रकार के रसों को उत्पन्न किया है जिनका उपभोग करके तुम आह्लादित होकर अन्यायकारी शत्रुओं के विजय के लिये शक्तिसम्पन्न हो सकते हो ॥५॥

अब इस बात को कथन करते हैं कि किस प्रकार का शूरवीर युद्ध में उपयुक्त हो सकता है।

पुनानो रूपे अव्यये विश्वा अर्षन्नभि श्रियः ।
शूरो न गोषु तिष्ठति ॥६॥

पुनानः । रूपे । अव्यये । विश्वाः । अर्षन् । अभि । श्रियः ।
शूरः । न । गोषु । तिष्ठति ॥ ६ ॥

पदार्थः—(अव्यये रूपे) निराकारस्य परमात्मनो विज्ञानेन (पुनानः) येन आत्मा पवित्रीकृतः (विश्वाः, श्रियः) संपूर्णम् ऐश्वर्य्यं (अभ्यर्षन्) भुञ्जानोपि (न, गोषु, तिष्ठति) य इन्द्रियवशवर्ती न भवति स एव (शूरः) वीरो भवितुमर्हति ।

पदार्थ—(अव्यये, रूपे) निराकार परमात्मा के स्वरूप के विश्वास से (पुनानः) जिसने अपने आप को पवित्र किया है (विश्वाः, श्रियः) सम्पूर्ण ऐश्वर्यों को (अभ्यर्षन्) धारण करता हुआ भी (न, गोषु, तिष्ठति) जो इन्द्रियों के वशीभूत नहीं होता वही (शूरः) वीर कहला सकता है।

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे शूरवीर पुरुषो! तुम संपूर्ण ऐश्वर्यों को भोगते हुये भी इन्द्रियों के वशीभूत मत होओ क्योंकि इन्द्रियों के वशवर्ती लोग शूरवीरता के धर्म को कदापि धारण नहीं कर सकते इस लिये शूर वीरों के लिये संयमी बनना अत्यावश्यक है ॥६॥

दिवो न सानु पिप्युषी धारा सुतस्य वेधसः ।
वृथा पवित्रे अर्षति ॥७॥

दिवः । न । सानु । पिप्युषी । धारा । सुतस्य । वेधसः ।
वृथा । पवित्रे । अर्षति ॥ ७ ॥

पदार्थः—(पवित्रे) तस्मिन् पात्रे (पिप्युषी) तर्पयित्री (वेधसः सुतस्य, धारा) मातुर्दुग्धस्य धारा वा सोमादिरसानाम् धारा (वृथा, अर्षति) वृथैव पतति यः तद्धारापात्ररूपो मनुष्यो संयमी न भवति यथा (दिवः, न, सानु) अन्तरिक्षात् पर्वतोपरि पतिता मेघधारा वृथैव भवति ।

पदार्थ—(पवित्रे) उस पात्र में (पिप्युषी) तृप्ति करने वाली (वेधसः सुतस्य, धारा) माता के दूध की या सोमादि रस की धारा (वृथा, अर्षति) वृथा ही गिरती है जो इन्द्रिय संयमी नहीं है जिस तरह (दिवः, न, सानु) अन्तरिक्ष से उन्नत शिखर पर मेघ की धारा गिर कर व्यर्थ ही हो जाती है ।

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे शूरवीर पुरुषो ! तुम संयमी बनो इन्द्रियारामी मत बनो इन्द्रियारामी पुरुषों में जो सोमादि रसों की धारायें पड़ती हैं वे मानों इस प्रकार पड़ती हैं जिस प्रकार चोटी के ऊपर पड़ता हुआ जल इधर उधर बह जाता है और उस में कोई विचित्र भाव उत्पन्न नहीं करता इसी प्रकार असंयमियों का दुग्धादि रसों का उपभोग करना है । यहां चोटी पर जल गिरने के दृष्टान्त से परमात्मा ने स्पष्टरीति से बोधन कर दिया कि जो पुरुष वीर्य ही का संयम नहीं करते न वे धीर वीर बन सकते हैं न वे ज्ञानी विज्ञानी व ध्यानी बन सकते हैं । उक्त सब प्रकार की पदवियों के लिये मनुष्य का संयमी बनना अत्यन्त आवश्यक है । इसी अभिप्राय से योगसूत्र

में कहा है कि 'ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः' यो० सा४० ३८ ब्रह्मचर्य-प्रतिष्ठा अर्थात् इन्द्रियसंयमी बनने से पुरुष को वीर्य का लाभ होता है ॥७॥

त्वं सोम विपश्चितं तना पुनान आयुषु ।
अव्यो वारं वि धावसि ॥८॥६॥

त्वं । सोम । विपःऽचितं । तना । पुनानः । आयुषु । अव्यः । वारं । वि । धावसि ॥८॥६॥

पदार्थः—(सोम) हे सौम्यस्वभाव परमात्मन् ! त्वं (आयुषु) मनुष्येषु (विपःऽचितं, तना) विद्वांसं सम्यक् प्रकारेण (पुनानः) पवित्रीकुर्वाणः (अव्यः) रक्षार्थम् (वारं) उक्तवरीतारंविद्वांसं (वि, धावसि) प्राप्नोषि ।

पदार्थ—(सोम) हे सौम्यस्वभाव परमात्मन् ! (त्वम्) आप (आयुषु) मनुष्यों में (विपश्चितं, तना) विद्वान् को भली भाँति (पुनानः) पवित्र करते हुये (अव्यः) रक्षा के लिये (वारम्) उस वरणशील को (विधावसि) प्राप्त होते हो ।

भावार्थ—जो पुरुष परमात्मा को वरण करता है अर्थात् एक-मात्र उसी पर विश्वास रख कर उसी को उपास्य देव ठहराता है उस की परमात्मा अवश्यमेव रक्षा करता है, वार शब्द का अर्थ यहाँ यह है कि 'वृणुते इति वारः' जो वरण करे वह वार है इसी प्रकार 'सुते चराचरंजगदिति सोमः' इस मंत्र में सोम के अर्थ परमात्मा के हैं । तात्पर्य यह है कि उक्त परमात्मा की उपासना करने वाला पुरुष सदैव कृतकार्य होता है क्योंकि परमात्मा उसका रक्षक होता है इस लिये उपासक के लिये परमात्मपरायण होना आवश्यक है ॥८॥

षोडशं सूक्तं षष्ठो वर्गश्च समाप्तः ।

यह सोलहवाँ सूक्त और छठा वर्ग समाप्त हुआ ।

अथाष्टर्चस्य सप्तदशस्य सूक्तस्य--

१-८ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः । पवमानः सोमो देवता । छन्दः-१, ३-८ गायत्री । २ भुरिग्गायत्री । षड्जः स्वरः ॥

अधुना उपासकस्य हृदये परमात्मप्रकाशः कथ्यते ।

अब उपासक के हृदय में परमात्मा का प्रकाश कथन करते हैं ।

प्र निम्नेनेव सिन्धवो घ्नन्तो वृत्राणि भूर्णयः ।
सोमा असृग्रमाशवः ॥१॥

प्र । निम्नेनऽइव । सिंधवः । घ्नंतः । वृत्राणि । भूर्णयः ।
सोमाः । असृग्रं । आशवः ॥ १ ॥

पदार्थः--(सोमाः) पूर्वोक्तः सौम्यस्वभाववान् परमात्मा (वृत्राणि, घ्नन्तः) अज्ञानानि नाशयन् (भूर्णयः) द्रुततरगमनशीलः (आशवः) सर्वव्यापकः (सिन्धवः, प्रनिम्नेन, इव) यथा नद्यः निम्नाभिमुखं गच्छन्ति तथैव सः (असृग्रम्) भक्तहृदयेषु प्रकाशते ।

पदार्थ--(सोमाः) उक्तसौम्यस्वभाव वाला परमात्मा (वृत्राणि, घ्नन्तः) अज्ञानों का नाश करता हुआ "वृणोत्याच्छादयत्यात्मानमितिवृत्रमज्ञानम्" (भूर्णयः) शीघ्रगतिशील (आशवः) सर्वव्यापक "अश्नुते व्याप्नोति सर्वमित्याशुः" (सिन्धवः, प्रनिम्नेन, इव,) नदियें जैसे शीघ्रगतिशील नीचे की ओर जाती हैं उसी प्रकार वह (असृग्रम्) भक्तों के हृदय में प्रकाशित होता है ।

भावार्थ—जो लोग शुद्धहृदय से उसकी उपासना करते हैं और यम नियमों द्वारा अपने आत्मा को संस्कृत करते हैं उनके हृदय में अतिशीघ्र परमात्मा का प्रकाश उत्पन्न होता है ॥१॥

अभि सुवानास इन्दवो वृष्टयः पृथिवीमिव ।
इन्द्रं सोमासो अक्षरन् ॥२॥

अभि । सुवानासः । इंदवः । वृष्टयः । पृथिवींऽइव । इंद्रं । सोमासः । अक्षरन् ॥ २ ॥

पदार्थः—(इन्दवः) सर्वैश्वर्यसम्पन्नः (सोमासः) परमात्मा (अभि, सुवानासः) भक्तैः सेव्यमानः (इन्द्रम्) स्वसेवकमैश्वर्यसम्पन्नं सम्पाद्य (अक्षरन्) दयावृष्ट्या आर्द्रयति, यथा (वृष्टयः पृथिवीम्, इव) वृष्टयः भूमिमार्द्रयन्ति तद्वत् ॥

पदार्थ—(इन्दवः) सर्वैश्वर्यसम्पन्न (सोमासः) परमात्मा (अभि, सुवानासः) भक्तों से सेवन किया गया (इन्द्रम्) सेवक को ऐश्वर्यसम्पन्न करके (अक्षरन्) दयावृष्टि से आर्द्र करता है जिस प्रकार (वृष्टयः, पृथिवीम्, इव) वृष्टियें पृथिवी को आर्द्र करती हैं इस प्रकार सबको आर्द्र करता है ।

भावार्थ—जिस प्रकार वर्षाकाल की वृष्टियें धरातल को सिक्त कर के नाना प्रकार के अंकुर उत्पन्न करती हैं इसी प्रकार परमात्मा की कृपादृष्टियें उपासकों के हृदय में नाना प्रकार के ज्ञान विज्ञानादिभावों को उत्पन्न करती हैं ॥२॥

अत्यूर्मिर्मत्सरो मदः सोमः पवित्रे अर्षति ।
विघ्नन्रक्षांसि देवयुः ॥३॥

अतिऽऊर्मिः । मत्सरः । मदः । सोमः । पवित्रे । अर्षति ।
विऽघ्नन् । रक्षांसि । देवऽयुः ॥ ३ ॥

पदार्थः—(अत्यूर्मिः) विघ्नकारकाऽखिलसंसार-बाधा अतिक्रान्तः (मत्सरः) प्रभुत्वाभिमानी (मदः) हर्षप्रदः (सोमः) उक्तपरमात्मा (रक्षांसि, विघ्नन्) दुराचारान्नाशयन् (देवयुः) सत्कर्मणः वाञ्छन् (पवित्रे, अर्षति) य उपासनया पात्रतां लब्धस्तस्मिन्विराजते ॥

पदार्थ—(अत्यूर्मिः) विघ्न पैदा करने वाली सम्पूर्ण संसार की बाधाओं को अतिक्रमण करने वाला (मत्सरः) प्रभुता के अभिमान वाला (मदः) हर्षप्रद (सोमः) उक्त परमात्मा (रक्षांसि, विघ्नन्) दुराचारियों को नष्ट करता हुआ और (देवयुः) सत्कर्मियों को चाहता हुआ (पवित्रे, अर्षति) जो कि उपासना द्वारा पात्रता को प्राप्त है, उसमें विराजमान होता है ।

भावार्थ—जिस पुरुष ने ज्ञानयोग और कर्मयोगद्वारा अपने आत्मा को संस्कृत किया है वह ईश्वर के ज्ञान का पात्र कहलाता है, उक्त पात्र के हृदय में परमात्मा अपने ज्ञान को अवश्यमेव प्रकट करता है जैसा कि "यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा वृणुते तनुं स्वाम्" क०, १।२३ । जिसको यह पात्र समझता है उसको अपना आत्मा समझ कर स्वीकार करता है ॥३॥

आ कलशेषु धावति पवित्रे परि षिच्यते ।
उक्थैर्यज्ञेषु वर्धते ॥४॥

आ । कलशेषु । धावति । पवित्रे । परि । सिच्यते । उक्थैः । यज्ञेषु । वर्धते ॥४॥

पदार्थः—स पूर्वोक्तः परमात्मा (कलशेषु, आ, धावति) वेदादिवाक्येषु वाच्यतया सम्यग् विराजते (पवित्रे, परि षिच्यते) पात्रे ह्यभिषिक्तो भवति (उक्थैः, यज्ञेषु, वर्धते) स्तुतिभिर्यज्ञेषु प्रकाश्यते ।

पदार्थ—वह पूर्वोक्त परमात्मा (कलशेषु, आ, धावति) 'कलं शवति इति कलशः' वेदादिवाक्यों में भलीभांति वाच्यरूप से विराजमान है (पवित्रे, परिषिच्यते) और पात्र में अभिषेक को प्राप्त होता है और (उक्थैः, यज्ञेषु, वर्धते) स्तुतिद्वारा यज्ञों में प्रकाशित किया जाता है।

भावार्थ—जब वेदवेत्ता लोग मधुर ध्वनि से यज्ञों में उक्त परमात्मा का स्तवन करते हैं तो मानों उसका साक्षात् रूप भान होने लगता है ॥४॥

अति त्री सोम रोचना रोहन्न भ्राजसे दिवम् ।
इष्णन्त्सूर्यं न चोदयः ॥५॥

अति । त्री । सोम । रोचना । रोहन् । न । भ्राजसे । दिवम् । इष्णन् । सूर्यम् । न । चोदयः ॥५॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (त्री, रोचना, अति) भवान् त्रीनपि लोकानतिक्रम्य (रोहन्, न) सर्वोपरि विराजमानः (दिवं, भ्राजसे) द्युलोकं दीपयति (न) तथा (इष्णन्) सर्वं व्याप्नुवन् (सूर्यम्, चोदयः) सूर्यमपि प्रेरयति ।

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! (त्री, रोचना, अति) आप तीनों लोकों को अतिक्रमण करके (रोहन, न) सर्वोपरि विराजमान होकर (दिवं, भ्राजसे) द्युलोक को प्रकाशित करते हैं (न) और (इष्णन्) सर्वत्र गतिशील होकर (सूर्यम्, चोदयः) सूर्य की भी प्रेरणा करते हैं ।

भावार्थ—परमात्मा की सत्ता से पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यौ ये तीनों लोक स्थिर हैं और उसी की सत्ता में सूर्य चन्द्रमा आदि तेजस्वी पदार्थ सब स्थिर हैं । अर्थात् उसी के नियम में विराजमान हैं 'भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः' क० २ । ६ ॥ ५ ॥

अभि विप्रा अनूषत मूर्धन्यज्ञस्य कारवः ।
दधाना॒श्चक्षसि प्रियम् ॥६॥

अभि । विप्राः । अनूषत । मूर्धन् । यज्ञस्य । कारवः ।
दधानाः । चक्षसि । प्रियं ॥६॥

पदार्थः—(कारवः) कर्मकाण्डिनः (चक्षसि, प्रियं, दधानाः) तत्र सर्वद्रष्टरि प्रेम दधानाः (विप्राः) विद्वांसश्च (यज्ञस्य, मूर्धनि) यज्ञारम्भे (अभ्यनूषत) तं परमात्मानं साधु स्तुवन्ति ।

पदार्थ—(कारवः) कर्मकाण्डी और (चक्षसि, प्रियं, दधानाः) उस सर्वद्रष्टा परमेश्वर में प्रेम को धारण करते हुये (विप्राः) विद्वान् लोग (यज्ञस्य, मूर्धनि) यज्ञ के प्रारम्भ में (अभ्यनूषत) उस परमात्मा की भलीभांति स्तुति करते हैं ।

भावार्थ—यज्ञ के प्रारम्भ में उद्गात आदि लोग पहले परमात्मा के महत्व का गायन करके फिर यज्ञ के अन्य कर्मों का आरम्भ करते हैं ॥६॥

तमु॑ त्वा वा॒जिन॒ं नरो॑ धी॒भिर्विप्रा॑ अव॒स्यवः॑ ।
मृ॒जन्ति॑ दे॒वता॑तये ॥७॥

तं । ऊं॒ इति॑ । त्वा॒ । वा॒जिनं॑ । नरः॑ । धी॒भिः । विप्राः॑ । अ॒व॒स्यवः॑ । मृ॒जंति॑ । दे॒वऽता॑तये ॥७॥

पदार्थः—हे परमेश्वर ! (अवस्यवः) रक्षामिच्छवः (विप्राः, नरः) विद्वांसो जनाः (देवतातये) यज्ञाय (तम्, उ) पूर्वोक्तगुणसम्पन्नम् (वाजिनम्) अन्नाद्यैश्वर्यस्य दातारम् (त्वा) भवन्तम् (धीभिः) बुद्धिभिः (मृजन्ति) स्वज्ञानविषयं कुर्वन्ति ।

पदार्थ—हे परमेश्वर ! (अवस्यवः) रक्षा चाहने वाले (विप्राः नरः) विद्वान् लोग (देवतातये) यज्ञ के लिये (तम्, उ) पूर्वोक्तगुणविशिष्ट (वाजिनम्)अन्नादि ऐश्वर्य के देने वाले (त्वा) आपको (धीभिः) अपनी बुद्धिओं से (मृजन्ति) बुद्धि की वृत्ति का विषय करते हैं ॥

भावार्थ—याज्ञिक लोग जब ' यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवम् ' इत्यादि मंत्रों का पाठ करते हैं केवल पाठही नहीं किन्तु उसके वाच्यार्थ पर दृष्टि देकर तत्व का अनुशीलन करते हैं तब परमात्मा का साक्षात्कार होता है । इसी अभिप्राय से कहा है कि 'धीभिः त्वामृजन्ति' अर्थात् बुद्धिद्वारा तुम्हारा परिशीलन करते हैं ॥७॥

मधोर्धारामनु क्षर तीव्रः सधस्थमासदः ।
चारुर्ऋताय पीतये ॥८॥७॥

मधोः । धाराम् । अनु । क्षर । तीव्रः । सधऽस्थम् । आ । असदः ।
चारुः । ऋताय । पीतये ॥८॥७॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! भवानस्मिन्मम यज्ञे (मधोःधाराम्, अनुक्षर) प्रेमधारां स्यन्दयतु (तीव्रः) यतो भवान् वेगवान् तथा (चारुः) दर्शनीयश्चास्ति (ऋताय, पीतये) सत्यप्राप्तये (सधस्थम्, आसदः) यज्ञस्थं मां स्वीकरोतु ।

पदार्थ—हे परमात्मन् ! आप हमारे इस यज्ञ में (मधोः, धाराम्, अनुक्षर) प्रेम की धारा बहाइये (तीव्रः) आप गतिशील हैं और (चारुः) सुन्दर हैं (ऋताय, पीतये) सत्य की प्राप्ति के लिये (सधस्थम्, आसदः) यज्ञ में स्थित हुये हमको स्वीकार करिये ।

भावार्थ—जो लोग सत्कर्मों में स्थिर हैं और सत्कर्मों के प्रचार के लिये यज्ञादि कर्म करते हैं उनके उत्साह को परमात्मा अवश्य-मेव बढ़ाता है ॥८॥

इति सप्तदशं सूक्तं सप्तमो वर्गश्च समाप्तः ॥
यह सत्रहवाँ सूक्त और सातवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथसप्तर्चस्य अष्टादशस्य सूक्तस्य--

१–७ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः । पवमानः सोमो देवता । छन्दः–१, ४ निचृद्गायत्री । २ ककुम्मती गायत्री । ३, ५, ६ गायत्री । ७ विराड् गायत्री । षड्जः स्वरः ॥

अथ विभूतिमत्सु वस्तुषु परमात्मनो महत्त्वं कथ्यते—

अब विभूतिवाली वस्तुओं में परमात्मा का महत्त्व कथन करते हैं—

परि॑ सुवा॒नो गि॑रि॒ष्ठाः प॒वित्रे॒ सोमो॑ अक्षाः ।
मदे॑षु सर्व॒धा अ॑सि ॥१॥

परि॑ । सु॒वा॒नः । गि॒रि॒ऽस्थाः । प॒वित्रे॑ । सोमः॑ । अ॒क्षा॒रिति॑ ।
मदे॑षु । स॒र्व॒ऽधाः । अ॒सि ॥१॥

पदार्थः—स भवान् (परिसुवानः) सर्वोत्पादकः (गिरिष्ठाः) विद्युदादिपदार्थेषु तिष्ठति च (पवित्रे) पवित्रपदार्थे च विराजते (सोमः) सौम्यस्वभाववांश्चास्ति (अक्षाः) सर्वत्रगः (मदेषु) सर्वेषु हर्षयुक्तवस्तुषु (सर्वधाः) सर्वविधरुचिधारकः (असि) अस्ति ।

पदार्थ—वह आप (परि सुवानः) 'परि सर्वं सुत इति परि सुवानः' सर्वोत्पादक हैं (गिरिष्ठाः) 'गृणाति शब्दं करोतीति गिरिः' आप विद्युदादि पदार्थों में स्थित हैं (पवित्रे) पवित्र पदार्थों में स्थित हैं (सोमः) सौम्य स्वभाव वाले हैं (अक्षाः) 'अक्षति व्याप्नोति सर्वमित्यक्षाः' और सर्वव्यापक हैं, (मदेषु) और हर्षयुक्त वस्तुओं में (सर्वधाः) सब प्रकार की शोभा के धारण कराने वाले (असि) हैं ॥

भावार्थ—परमात्मा विद्युदादि सब शक्तियों में विराजमान है, क्योंकि वह सर्वव्यापक है और जो २ विभूति वाली वस्तु हैं उन में सब प्रकार की शोभा के धारण कराने वाला परमात्मा ही है कोई अन्य नहीं ।

तात्पर्य यह है कि यद्यपि व्यापकरूप से परमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण है तथापि विभूति वाली वस्तुओं में उसकी अभिव्यक्ति विशेषरूप से पायी जाती है इसी अभिप्राय से कहा है कि 'मदेषु सर्वधा असि ॥१॥

त्वं विप्रस्त्वं कविर्मधु प्र जातमन्धसः।
मदेषु सर्वधा असि ॥२॥

त्वं। विप्रः। त्वं। कविः। मधु। प्र। जातं। अंधसः।
मदेषु। सर्वऽधाः। असि ॥२॥

पदार्थः—हे परमात्मन्! (त्वं, विप्रः) त्वं सर्वप्रेरकः तथा (त्वं, कविः) त्वं सर्वज्ञश्च (मधु, प्रजातम्, अन्धसः) अन्नादिषु रसानामुत्पादकस्त्वमेव तथा च (मदेषु) हर्षजनकवस्तुषु (सर्वधाः) सर्वविधशोभानां जनकः (असि) त्वमेवासि।

पदार्थ—हे परमात्मन्! (त्वं, विप्रः) 'विप्राति क्षिप्नोतीति विप्रः' आप सब के प्रेरक हैं और (त्वं, कविः) "कवते जानाति सर्वमिति कविः" आप सर्वज्ञ हैं (मधु, प्रजातम्, अन्धसः) और अन्नादिकों में रस आपही ने उत्पन्न किया है और (मदेषु) हर्षयुक्त वस्तुओं में (सर्वधाः) सब प्रकार की शोभा धारण कराने वाले (असि) आप ही हैं।

भावार्थ—परमात्माने अपनी विचित्र शक्तियों से नानाविध के रस उत्पन्न किये हैं, और नानाप्रकार के ऐश्वर्य उत्पन्न किये हैं. वस्तुतः परमात्मा ही सब ऐश्वर्यों का अधिष्ठान और सब रसों की खान है ॥२॥

तव विश्वे सजोषसो देवासः पीतिमाशत।
मदेषु सर्वधा असि ॥३॥

तवं । विश्वे । सऽजोषसः । देवासः । पीतिम् । आशत । मदेषु । सर्वऽधाः । असि ॥३॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (तव पीतिम्) भवतस्तृप्तिम् (सजोषसः) परस्परप्रेमकर्तारः (विश्वे, देवासः) सर्वे विज्ञानिनः (आशत) प्राप्नुवन्ति (मदेषु) हर्षयुक्तवस्तुषु (सर्वधाः) सर्वविधशोभानां जनकः (असि) त्वमेवासि ॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (तव, पीतिम्) आपकी तृप्ति को (सजोषसः) परस्पर प्रेम करने वाले (विश्वे, देवासः) सब विज्ञानी लोग (आशत) पाते हैं (मदेषु) हर्षयुक्त वस्तुओं में (सर्वधाः) सब प्रकार की शोभा के धारण कराने वाले (असि) आप हैं।

भावार्थ—परमात्मा के आनन्द को विज्ञानी लोग ही वस्तुतः पासकते हैं अन्य नहीं, कारण यह कि विविध प्रकार के ज्ञान के विना उसका आनन्द मिलना अति कठिन है ॥३॥

आ यो विश्वानि वार्या वसूनि हस्तयोर्दधे ।
मदेषु सर्वधा असि ॥ ४ ॥

आ । यः । विश्वानि । वार्या । वसूनि । हस्तयोः । दधे । मदेषु । सर्वऽधाः । असि ॥४॥

पदार्थः—(यः) यः परमात्मा (विश्वानि) सर्वाणि (वार्या) प्रार्थनीयानि (वसूनि) धनरत्नादीनि (हस्तयोः, आदधे) विज्ञानिनां हस्तगतानि करोति स एव (मदेषु) सर्वहर्षयुक्तवस्तुषु (सर्वधाः) सर्वविधशोभानां धारकः (असि) अस्ति ।

पदार्थ—(यः) जो परमात्मा (विश्वानि) सब (वार्या) 'वरीतुं योग्यानि वार्याणि' प्रार्थनीय (वसूनि) धन रत्नादिकों को (हस्तयोः, आदधे) विज्ञानी लोगों के हस्तगत कर देता है वही (मदेषु) सब हर्षयुक्त वस्तुओं में (सर्वधाः) सब प्रकार की शोभा को धारण कराने वाला (असि) है।

भावार्थ—जो सम्पूर्ण वस्तुओं को अपने हस्तगत करना चाहते हो तो ईश्वर के उपासक बनो ॥४॥

य इमे रोदसी मही सं मातरेव दोहते।
मदेषु सर्वधा असि ॥ ५ ॥

यः। इमे इति। रोदसी इति। मही इति। सम्। मातराऽइव। दोहते। मदेषु। सर्वऽधाः। असि ॥५॥

पदार्थः—(यः) यः परमात्मा (मातरा, इव) जीवानां मातेव (इमे, मही, रोदसी) आभ्यां महद्भ्यां द्युलोकपृथिवीलोकाभ्याम् (सं, दोहते) पय इव नानाविधधनरत्नादीनि दोग्धि स एव (मदेषु) हर्षयुक्तसर्ववस्तुषु (सर्वधाः) सर्वविधशोभानां धारकः (असि) अस्ति।

पदार्थ—(यः) जो परमेश्वर (मातरा, इव) जीवों की माता के समान (इमे, मही, रोदसी) इस महान आकाश और पृथिवी लोक से (सं, दोहते) दूध के समान नाना प्रकार के धन रत्नादिकों को दुहता है (मदेषु) वही परमात्मा हर्षयुक्त वस्तुओं में (सर्वधाः) सब प्रकार की शोभा को धारण कराने वाला (असि) है।

भावार्थ—माता शब्द यहां उपलक्षणमात्र है वास्तव में भाव

यह है कि जीवों की माता पिता के समान जो पृथिवीलोक और द्युलोक हैं इन से नानाविध भोग पैदा करने वाला एकमात्र परमात्मा ही है कोई अन्य नहीं ॥५॥

परि यो रोदसी उभे सद्यो वाजेभिरर्षति ।
मदेषु सर्वधा असि ॥ ६ ॥

परि । यः । रोदसी इति । उभे इति । सद्यः । वाजेभिः । अर्षति । मदेषु । सर्वऽधाः । असि ॥६॥

पदार्थः—(यः) यः परमात्मा (उभे रोदसी) उभयोरपिद्यावापृथिव्योर्मध्ये (वाजेभिः, पर्यषति) सहैश्वर्येण व्याप्नोति स एव (मदेषु) सर्वहर्षयुक्तद्रव्येषु सर्वविधशोभानां धारकः (असि) अस्ति ।

पदार्थ—(यः) जो परमात्मा (उभे, रोदसी) पृथिवी और आकाश इन दोनों लोकों में (वाजेभिः, पर्यषति) ऐश्वर्यों के सहित व्याप्त है वही (मदेषु) सब हर्षयुक्त वस्तुओं में (सर्वधाः) सब प्रकार की शोभा को धारण कराने वाला (असि) है ।

भावार्थ—यद्यपि परमात्मा के ऐश्वर्य से कोई स्थान भी खाली नहीं तथापि प्राकृत ऐश्वर्यों का स्थान जैसा द्युलोक और पृथिवी लोक है ऐसा अन्य नहीं इसी भाव से इन दोनों का वर्णन विशेषरीति से किया है ॥६॥

स शुष्मी कलशेष्वा पुनानो अचिक्रदत् ।
मदेषु सर्वधा असि ॥ ७ ॥

सः । शुष्मी । कलशेषु । आ । पुनानः । अचिक्रदत् । मदेषु । सर्वऽधाः । असि ॥७॥

पदार्थः—(शुष्मी) ओजस्वी (पुनानः) सर्वस्य पावयिता (सः) स परमात्मा (कलशेषु) वैदिकशब्देषु (अचिक्रदत्) ब्रवीति स एव (मदेषु) सर्वहर्षयुक्तवस्तुषु (सर्वधाः) सर्वविधशोभानां धारकः (असि) अस्ति ।

पदार्थ—(शुष्मी) ओजस्वी और (पुनानः) सब को पवित्र करने वाला (सः) वह परमात्मा (कलशेषु) "कलं शवन्ति इति कलशा-वैदिकशब्दाः" वैदिक शब्दों में (अचिक्रदत्) बोलता है (मदेषु) और हर्षयुक्त वस्तुओं में (सर्वधाः) सब प्रकार की शोभा को धारण कराने वाला (असि) वही है ।

भावार्थ—जिस प्रकार परमात्मा के अन्तरिक्ष उदर और द्युलोक मूर्धस्थानी रूपकालङ्कार से माने गये हैं इसी प्रकार उसके शब्दों की भी रूपकालङ्कार से कल्पना की गयी है वास्तव में वह परमात्मा 'अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्' कि वह शब्दस्पर्शादिगुणों से रहित है और अव्यय=अविनाशी है इत्यादि वाक्यों द्वारा शब्दादि गुणों से सर्वथा रहित वर्णन किया गया है, उपनिषदों का यह भाव भी 'सपर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणम्' यजु०, ४०।८ कि वह निराकार परमात्मा सर्वत्र व्यापक है इत्यादि वेद मन्त्रों से लिया गया है ॥७॥

अष्टादशं सूक्तमष्टमोवर्गश्च समाप्तः ।

यह अठारहवां सूक्त और आठवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथैकोनविंशतितमस्य सप्तर्चस्य सूक्तस्य--

१–७ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः–१ विराड् गायत्री । २,५,७ निचृद् गायत्री । ३,४ गायत्री । ६ भुरिग्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अथ परमात्मन ऐश्वर्य्यं प्रार्थ्यते:--

अब ऐश्वर्य की प्रार्थना करते हैं:—

यत्सो॑म चि॒त्रमु॒क्थ्यं॑ दि॒व्यं पार्थि॑वं॒ वसु॑ ।
तन्नः॑ पुना॒न आ भ॑र ॥ १ ॥

यत् । सो॒म॒ । चि॒त्रम् । उ॒क्थ्य॑म् । दि॒व्यम् । पार्थि॑वम् । वसु॑ । तत् । न॒ः । पु॒ना॒नः । आ । भ॒र॒ ॥१॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (चित्रम्) अद्भुतम् यत् (उक्थ्यम्) प्रशंसनीयम् (दिव्यम्) द्युलोकसम्बन्धि तथा (पार्थिवम्) पृथिवीसम्बन्धि (वसु) धनरत्नाद्यैश्वर्यमस्ति (तत्) तेन (नः) अस्मान् (पुनानः) पावयन् (आभर) परिपूरयितुमुपदिशतु ।

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! (यत्) जो (चित्रम्) अद्भुत (उक्थ्यम्) प्रशंसनीय (दिव्यम्) द्युलोकसम्बन्धी तथा (पार्थिवं) पृथिवीसम्बन्धी (वसु) धनरत्नादि ऐश्वर्य है (तत्) उससे (नः) हमको (पुनानः) पवित्र करते हुये (आभर) परिपूर्ण होने की शिक्षा दीजिये ।

भावार्थ—इसमें परमात्मा से विविध धनादि ऐश्वर्य पाने के लिये शिक्षा की प्रार्थना है ॥१॥

युवं हि स्थः स्वर्पती इन्द्रश्च सोम गोपती ।
ईशाना पिप्यतं धियः ॥ २ ॥

युवम् । हि । स्थः । स्वः पती इति स्वःऽपती । इन्द्रः । च । सोम । गोपती इति गोऽपती । ईशाना । पिप्यतम् । धियः ॥२॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! भवान् (इन्द्रश्च) अध्यापकश्च (युवं, हि) उभावपि (स्वर्पती) सुखस्वामिनौ (स्थः) भवथः (गोपती) वाणीपती अपि स्थः (ईशाना) शिक्षां प्रदातुमीश्वरौ च स्थः (धियः, पिप्यतम्) युवामुभावपि मद्बुद्धीः उपदेशेन समेधयतम् ।

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन्, आप (च) और (इन्द्रः,) अध्यापक (युवम्, हि) ये दोनों (स्वर्पती) सुख के पति (स्थः) हैं और (गोपती) वाणियों के पति हैं और (ईशाना) शिक्षा देने में समर्थ हैं (धियः, पिप्यतं) आप दोनों हमारी बुद्धि को उपदेश द्वारा बढ़ाइये ।

भावार्थ—इस मंत्र में परमात्मा ने जीवों को प्रार्थना द्वारा यह शिक्षा दी है कि तुम अपने अध्यापकों से और ईश्वर से सदैव शुभशिक्षा की प्रार्थना किया करो ॥२॥

वृषा पुनान आयुषु स्तनयन्नधि बर्हिषि ।
हरिः सन्योनिमासदत् ॥ ३ ॥

वृषा । पुनानः । आयुषु । स्तनयन् । अधि । बर्हिषि ।
हरिः । सन् । योनिम् । आ । असदत् ॥३॥

पदार्थः—(वृषा) सर्वकामनाम्प्रदाता (आयुषु, पुनानः) सर्वमनुष्येषु पवित्रतां जनयन् (अधि, बर्हिषि, स्तनयन्) प्रकृतिषु पञ्चतन्मात्रादिकारणान्युत्पादयन् स ईश्वरः (हरिः, सन्) सर्वाण्यज्ञानानि नाशयन् (योनिम् आसदत) प्रकृत्यात्मकयोनिं लभते ।

पदार्थ—(वृषा) सब कामनाओं का देने वाला (आयुषु, पुनानः) सब मनुष्यों को पवित्र करता हुआ (अधि, बर्हिषि, स्तनयन्) प्रकृति में पञ्चतन्मात्रादि कारणों को उत्पन्न करता हुआ वह परमेश्वर (हरिः, सन्) अज्ञानादिकों का नाश करता हुआ (योनिम्, आसदत्) प्रकृतिरूप योनि को प्राप्त होता है ॥

भावार्थ—परमात्मा जब प्रकृति के साथ मिलता है अर्थात् अपनी कृति से प्रकृति में नाना प्रकार की चेष्टायें उत्पन्न करता है तो प्रकृति में पञ्चतन्मात्रादि कार्य उत्पन्न होते हैं अर्थात् सूक्ष्म भूतों के कारण उत्पन्न होते हैं, इस कार्यावस्था में प्रकृतिरूप योनि अर्थात् उपादान कारण का परमात्मा आश्रयण करता है, जैसा कि ' योनिश्चहगीयते ' वे० १।४।२७। इस व्याससूत्र में भी योनिनाम प्रकृति का स्पष्ट है ॥३॥

अवावशन्त धीतयो वृषभस्याधि रेतसि ।
सूनोर्वत्सस्य मातरः ॥ ४ ॥

अवावशन्त । धीतयः । वृषभस्य । अधि । रेतसि । सूनोः । वत्सस्य । मातरः ॥४॥

पदार्थः—(धीतयः) सप्त प्रकृतयः (वृषभस्य) सर्वकामप्रदस्य परमात्मनः (अधिरेतसि) कार्येषु (अवावशन्त) सङ्गता भवन्ति (सूनोः, वत्सस्य) यथा वत्सार्थम् (मातरः) मातरो गावः संगच्छन्ते तद्वत् ।

पदार्थ—(धीतयः) सात प्रकृतियें (वृषभस्य) सब कामप्रद परमात्मा के (अधिरेतसि) कार्य में (अवावशन्त) सङ्गत होती हैं (सूनोः, वत्सस्य) जैसे वत्स के लिये (मातरः) गाय संगत होती हैं ॥

भावार्थ—गऊ अपने बच्चे को दुग्ध पिला कर जिस प्रकार परिपुष्ट करती है इसी प्रकार प्रकृति अपने इस कार्यरूप ब्रह्माण्ड को अपने परमाण्वादि दुग्धों द्वारा परिपुष्ट करती है, तात्पर्य यह है कि प्रकृति इस जगत् का उपादान कारण है परमात्मा निमित्त कारण है और यह संसार वत्ससमान प्रकृति और वृषभरूपी पुरुष का कार्य है ॥४॥

कुविद्वृषण्यन्तीभ्यः पुनानो गर्भमादधत् ।
याः शुक्रं दुहते पयः ॥ ५ ॥

कुवित् । वृषण्यन्तीभ्यः । पुनानः । गर्भम् । आऽदधत् । याः । शुक्रं । दुहते । पयः ॥५॥

पदार्थः—(पुनानः) सर्वस्य पावयिता परमात्मा (वृषण्यन्तीभ्यः) प्रकृतिभ्यः (कुविद् गर्भम्) बहुं गर्भं (आदधत्) दधार (याः) याः प्रकृतयः (शुक्रं, पयः) सूक्ष्मभूतेभ्यः कार्यरूपब्रह्माण्डम् (दुहते) दुहन्ति ॥

पदार्थ—(पुनानः) सबको पवित्र करने वाले परमात्मा ने (वृषण्यन्तीभ्यः) प्रकृतियों से (कुविद्, गर्भम्) बहुत से गर्भ को (आदधत्) धारण किया (याः) जो प्रकृतियें (शुक्रं, पयः) सूक्ष्म भूतों से कार्यरूप ब्रह्माण्ड को (दुहते) दुहती हैं ।

भावार्थ—तात्पर्य यह है कि जलादि सूक्ष्म भूतों से यह ब्रह्माण्ड स्थूलावस्था में आता है पञ्च तन्मात्रा के कार्य जो पांच सूक्ष्म भूत उन्हीं का कार्य यह सब संसार है, जैसा कि 'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः आकाशाद्वायुः वायोरग्निरग्नेरापोऽद्भ्यः पृथिवी तै० २।१॥ इत्यादि वाक्यों में निरूपण किया है कि परमात्मारूपी निमित्त कारण से प्रथम आकाशरूप तत्व का आविर्भाव हुआ जो एक अतिसूक्ष्मतत्त्व, और जिस का शब्द गुण है, फिर उस से वायु और वायु के संघर्षण से अग्नि और अग्नि से फिर जल आविर्भाव में अर्थात् स्थूलावस्था में आया । उसके अनन्तर पृथिवी ने स्थूल रूप को धारण किया यह कार्यक्रम है जिसको उक्त मन्त्र ने वर्णन किया है ॥५॥

उप शिक्षापतस्थुषो भियसमा धेहि शत्रुषु ।
पवमान विदा रयिम् ॥ ६ ॥

उप । शिक्ष । अपऽतस्थुषः । भियसम् । आ । धेहि । शत्रुषु ।
पवमान । विदाः । रयिम् ॥६॥

पदार्थः—(पवमान) हे सर्वस्य पावयितः भगवन् ! (अपतस्थुषः, उपशिक्ष) स्वानुकूलजनान् उपदिशतु तथा (शत्रुषु, भियसम्, आधेहि) स्वप्रातिकूलेभ्यश्च भयमादधातु अथ (विदाः, रयिम्) तद्धनानि चापहरतु ।

पदार्थ—(पवमान) 'पवत इति पवमानः संबुद्धौ तु पवमान' हे सब को पवित्र करने वाले भगवन्! आप (अपतस्थुषः, उपशिक्ष) जो आप के समीप में रहने वाले हैं उनको शिक्षा दीजिये और (शत्रुषु) भियसम्, आधेहि) शत्रुओं में भय उत्पन्न करिये तथा (विदा, रयिम्, उनके धनको अपहरण कर लीजिये।

भावार्थ—मित्रदल से तात्पर्य यहां उस दल का है जो न्याय-कारी और दोनों पर दया और प्रेम करने वाला हो। शत्रुदल से तात्पर्य उस दल का है जो"शातयतीति शत्रुः"शुभगुणों का नाश करने वाला हो इस लिये उक्त मन्त्रार्थ में अन्याय का दोष नहीं, क्योंकि न्याय यही चाहता है कि दैवी सम्पत्ति के गुण रखने वाले वृद्धि को प्राप्त हों और आसुरी सम्पत्ति के रखने वाले नाश को प्राप्त हों ॥६॥

नि शत्रोः सोम वृष्ण्यं नि शुष्मं नि वयस्तिर।
दूरे वा सतो अन्ति वा ॥ ७ ॥

नि। शत्रोः। सोम। वृष्ण्यम्। नि। शुष्मम्। नि। वयः। तिर। दूरे। वा। सतः। अन्ति। वा ॥७॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन्, (शत्रोः) तव भक्तस्यरियोः (वृष्ण्यम्) बलं (नितिर) नाशय तथा (नि, शुष्मम्) तेजः तथा (वयः, नि) अन्नाद्यैश्वर्यम् नाशय यः शत्रुः (दूरे, सत,ः) दूरे विद्यमानः (वा, अन्ति) समीपे वा।

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन्, (शत्रोः) शत्रु के (वृष्ण्यं) बल को (नितिर) नाश करिये और (नि, शुष्मम्) तेज को तथा (वयः, नि) अन्नादि ऐश्वर्य को नाश करिये जो शत्रु (दूरे सतः) दूर में विद्यमान है (वा, अन्ति) समीप में।

भावार्थ—इस मन्त्र में परमात्मा ने जीवों के भावद्वारा अन्यायकारी शत्रुओं के नाश करने का उपदेश किया है। जिस देश में अन्यायकारियों के नाश करने का भाव नहीं रहता वह देश कदापि उन्नतिशील नहीं हो सकता ॥७॥

एकोनविंशतितमं सूक्तं नवमो वर्गश्च समाप्तः ।

यह उन्नीसवां सूक्त और नवम वर्ग समाप्त हुआ ।

अथसप्तर्चस्य विंशतितमस्य सूक्तस्य—

१–७ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः १, ४–७ निचृद्गायत्री । २, ३ गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अस्मिन्सूक्ते वेदवित्सु बलप्रदानं कथ्यते :—

इस सूक्त में वेदवेत्ताओं में बलप्रदान का कथन करते हैं :—

प्र कविर्देववीतयेऽव्यो वारेभिरर्षति ।
साह्वान्विश्वा अभि स्पृधः ॥ १ ॥

प्र । कविः । देवऽवीतये । अव्यः । वारेभिः । अर्षति ।
सह्वान् । विश्वाः । अभि । स्पृधः ॥१॥

पदार्थः—स परमात्मा (कविः) मेधाव्यस्ति (अव्यः) सर्वस्य रक्षकश्चास्ति (देववीतये) विदुषां तृप्तये (अर्षति) ज्ञानं ददाति (साह्वान्) सहिष्णुरस्ति (विश्वाः) स्पृधः । कुत्सान्दुष्टान्संग्रामे (अभि) तिरस्करोति ।

पदार्थ—वह परमात्मा (कविः) मेधावी है और (अव्यः) सबका रक्षक है (देववीतये) विद्वानों की तृप्ति के लिये (अर्षति) ज्ञान को देता है (साह्वान्) सहनशील है (विश्वाः, स्पृधः) सम्पूर्ण दुष्टों को संग्रामों में (अभि) तिरस्कृत करता है ।

भावार्थ—परमात्मा विद्वानों को ज्ञानप्रदान से और न्यायकारी सैनिकों को बलप्रदान से तृप्त करता है ॥१॥

स हि ष्मा जरितृभ्य आ वाजं गोमन्तमिन्वति ।
पवमानः सहस्रिणम् ॥ २ ॥

सः । हि । स्म । जरितृऽभ्यः । आ । वाजम् । गोऽमन्तम् । इन्वति । पवमानः । सहस्रिणम् ॥२॥

पदार्थः—(सः, हि, ष्म) स हि पूर्वोक्तः (पवमानः) सर्वेषां पावयिता परमात्मा (जरितृभ्यः) स्वदुर्बलोपासकेभ्यः (आ) सम्यक् (सहस्रिणम्) अनेकविधम् (गोमन्तम्) बुद्धिसहितम् (वाजिनम्) बलम् (इन्वति) प्रयच्छति ॥

पदार्थ—(सः, हि, ष्म) वही (पवमानः) सबको पवित्र करने वाला परमात्मा (जरितृभ्यः) अपने बलहीन उपासकों को (आ) भली प्रकार (सहस्रिणम्) हजारों प्रकार के (गोमन्तम्) बुद्धि के सहित (वाजिनम्) बलों को (इन्वति) देता है ।

भावार्थ—परमात्मा परमात्मपरायण पुरुषों को अनन्त प्रकार का बल और बुद्धि प्रदान करता है ॥२॥

परि विश्वानि चेतसा मृशसे पवसे मती ।
स नः सोम श्रवो विदः ॥ ३ ॥

परि । विश्वानि । चेतसा । मृशसे । पवसे । मती । सः । नः । सोम । श्रवः । विदः ॥३॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन्, (चेतसा) अस्मन्मनसा चिन्तितानि (विश्वानि) सर्वविधधनानि भवान् (परि मृशसे) ददाति (मती, पवसे) मद्बुद्धीः स्तुतिभिः पुनाति (सनः) स भवानस्मभ्यम् (श्रवः, विदः) सर्वविधैश्वर्याणि ददातु ।

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! (चेतसा) हमारे मन के अनुकूल (विश्वानि) आप सब प्रकार के धनों को (परिमृशसे) देते हो (मती, पवसे) हमारी बुद्धि को स्तुतियों से पवित्र करते हो (सः, नः) सो आप हमारे लिये (श्रवः, विदः) सब प्रकार के ऐश्वर्यों को दीजिये ।

भावार्थ—परमात्मपरायण पुरुषों की परमात्मा सब प्रकार की रक्षा करता है और उनको ऐश्वर्य प्रदान करता है ॥३॥

अभ्यर्ष बृहद्यशो मघवद्भ्यो ध्रुवं रयिम् ।
इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ४ ॥

अभि । अर्ष । बृहत् । यशः । मघवत्ऽभ्यः । ध्रुवम् । रयिम् । इषम् । स्तोतृऽभ्यः । आ । भर ॥४॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (मघवद्भ्यः) ये भवदुपासकाः धनाद्यैश्वर्यसम्पन्नाः तेषाम् (रयिम्, ध्रुवम्) धनं सुस्थिरं करोतु

तथा (बृहद्यशः) अत्यन्तयशः (अभ्यर्ष) प्रयच्छतु तथा (इषम्, स्तोतृभ्यः, आभर) स्वस्तोतृभ्यो धनाद्यैश्वर्यं ददातु ।

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (मघवद्भ्यः) जो आप के उपासक धनादि ऐश्वर्यसम्पन्न हैं उनके (रयिं, ध्रुवम्) धनको अचल सुरक्षित कीजिये और (बृहद्, यशः) अत्यन्तयश को (अभ्यर्ष) दीजिये और (इषं, स्तोतृभ्यः, आभर) जो आप के स्तोता हैं उनके लिये धनादि ऐश्वर्य दीजिये ।

भावार्थ—परमात्मा सदाचारी और संयमी पुरुषों के धनादि ऐश्वर्य और यश को दृढ़ करता है ॥४॥

त्वं राजेव सुव्रतो गिरः सोमा विवेशिथ ।
पुनानो वह्ने अद्भुत ॥ ५ ॥

त्वं । राजाऽइव । सुऽव्रतः । गिरः । सोम । आ । विवेशिथ ।
पुनानः । वह्ने । अद्भुत ॥ ५ ॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (त्वम्, राजा, इव) भवान् राजा इव (सुव्रतः) सुकर्माऽस्ति तथा (गिरः, आविवेशिथ) वेदवाक्षु प्रविष्टोऽस्ति (पुनानः) सर्वस्य पावयितास्ति (वह्ने) हे सर्वस्य प्रेरक ! भवान् (अद्भुत) नित्यनवोऽस्ति ।

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! (त्वं, राजा इव) आप राजा की तरह (सुव्रतः) सुकर्मा हैं और (गिरः, आविवेशिथ) वेद वाणियों में प्रविष्ट हैं (पुनानः) सबको पवित्र करने वाले हैं और (वह्ने) हे सबके प्रेरक ! आप (अद्भुत) नित्य नूतन हैं ।

भावार्थ—परमात्मा सब नियमों का नियन्ता है, नियमपालने की शक्ति मनुष्यों में उसी की कृपा से आती है ॥५॥

स वह्निरप्सु दुष्टरो मृज्यमानो गभस्त्योः ।
सोमश्चमूषु सीदति ॥ ६ ॥

सः । वह्निः । अप्ऽसु । दुस्तरः । मृज्यमानः । गभस्त्योः ।
सोमः । चमूषु । सीदति ॥ ६ ॥

पदार्थः—(सः, सोमः) स परमात्मा (अप्सु) प्रतिलोकं विद्यमानः (वह्निः) सर्वेषां प्रेरकश्च तथा (दुष्टरः) दुराधर्षोऽस्ति (गभस्त्योः) स्वप्रकाशैः (मृज्यमानः) प्रकाशमानः (चमूषु, सीदति) न्यायकारिसेनासु स्वयं विराजते च ।

पदार्थ—(सः, सोमः) वह परमात्मा (अप्सु) लोक लोकान्तर में विद्यमान है और (वह्निः) सब का प्रेरक है और (दुष्टरः) दुराधर्ष है (गभस्त्योः) अपने प्रकाश से (मृज्यमानः) स्वयं प्रकाशित है (चमूषु, सीदति) न्यायकारियों की सेना में स्वयं विराजमान होता है ।

भावार्थ—यद्यपि परमात्मा के भाव सर्वत्र भावित हैं तथापि जैसे न्यायकारी सम्राजों की सेनायें में उनके रौद्र, वीर, भयानकादि भाव प्रस्फुटित होते हैं ऐसे अन्यत्र नहीं ॥६॥

क्रीळुर्मखो न मंहयुः पवित्रं सोम गच्छसि ।
दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ ७ ॥

क्रीळुः । मखः । न । मंहयुः । पवित्रम् । सोम । गच्छसि ।
दधत् । स्तोत्रे । सुऽवीर्यम् ॥ ७ ॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (क्रीळुः) भवान् क्रीडनशीलः (मखः, न मंहयुः) क्रतुरिव दातास्ति (पवित्रं, गच्छसि) सत्कर्माणं जनं समभिगच्छति (स्तोत्रे सुवीर्यं, दधत्) वेदादिशास्त्रेषु स्वबलं समर्पयति च ॥

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! (क्रीळुः) आप क्रीडन शील हैं (मखः, न, मंहयुः) यज्ञ के समान दानी हो (पवित्रं, गच्छसि) पवित्र सत्कर्मी मनुष्य को प्राप्त होते हो (स्तोत्रे, सुवीर्यं, दधत्) वेदादिसच्छास्त्रों में अपना बल प्रधान करते हैं ।

भावार्थ—संसार की यह विविध प्रकार की रचना जिस के पारावार को मनुष्य मन से भी नहीं पा सकता वह परमात्मा के आगे एक लीलामात्र है ॥७॥

विंशतितमं सूक्तं दशमो वर्गश्च समाप्तः ।

यह बीसवां सूक्त और दसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तर्चस्यैकविंशस्य सूक्तस्य—

१-७ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः १, ३ विराड् गायत्री २, ७ गायत्री । ४—६ निचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अथ विराट् परमात्मनोरथरूपेण वर्ण्यते—

अब विराट् को परमात्मा के रथरूप से वर्णन करते हैं—

एते धावन्तीन्दवः सोमा इन्द्राय घृष्वयः ।
मत्सरासः स्वर्विदः ॥ १ ॥

एते । धावन्ति । इन्दवः । सोमाः । इन्द्राय । घृष्वयः ।
मत्सरासः । स्वःऽविदः ॥१॥

पदार्थः—(एते, सोमाः) हे परमात्मन् ! भवान् (धावन्ति) सर्वत्र व्याप्नोति (इन्दवः) स्वप्रकाशेन प्रकाशितश्च (इन्द्राय, घृष्वयः) विद्वद्भिः स्तुत्यश्च (मत्सरासः) प्रभुत्वाभिमानी चास्ति (स्वर्विदः) सुखदश्च ॥

पदार्थ—(एते, सोमाः) हे परमात्मन्, आप (धावन्ति) सर्वत्र व्याप्त हो रहे हैं, (इन्दवः) स्वप्रकाश से प्रकाशित हैं, (इन्द्राय, घृष्वयः) विद्वानों द्वारा स्तुत्य हैं, (मत्सरासः) प्रभुता के अभिमान से युक्त हैं और (स्वर्विदः) सुख के देने वाले हैं ।

भावार्थ—परमात्मा स्वयंप्रकाश और अपने प्रभुत्वभाव से सर्वत्रैव विराजमान है ॥१॥

प्रवृण्वन्तो अभियुजः सुष्वये वरिवोविदः ।
स्वयं स्तोत्रे वयस्कृतः ॥ २ ॥

प्रऽवृण्वन्तः । अभिऽयुजः । सुस्वये । वरिवःऽविदः । स्वयम् ।
स्तोत्रे । वयःऽकृतः ॥२॥

पदार्थः—(प्रवृण्वन्तः) यो हि जनैः सम्यग् भज्यते (अभियुजः) यश्चान्येषां प्रेरकः (सुष्वये) सेवकाय (वरिवोविदः)

धनानां दाता च (स्वयं) स्वसत्तया विराजमानः (स्तोत्रे, वयस्कृतः) स एव स्वस्तुतिकर्त्रे अन्नादीनां प्रदाता चास्ति।

पदार्थ—(प्रवृण्वन्तः) जो लोगों से भजन किया जाता, (अभियुजः) जो दूसरों का प्रेरक, (सुष्वये) सेवक के लिये (वरिवोविदः) धन देने वाला, (स्वयं) स्वसत्ता मे विराजमान (स्तोत्रे-वयस्कृतः) और स्तोता के लिये अन्नादिकों को देने वाला है।

भावार्थ—जिन लोगों को परमात्मा की विविध प्रकार की रचना पर विश्वास है आप परमात्मा की अनन्यभक्ति करते हैं उनको परमात्मा अनन्तप्रकार के ऐश्वर्य प्रदान करता है ॥२॥

वृथा क्रीळ॑न्त इन्द॑वः सधस्थम॒भ्येक॒मित्।
सिन्धो॑रू॒र्मा व्य॑क्षरन् ॥३॥

वृथा॑। क्रीळ॑न्तः। इन्द॑वः। स॒धऽस्थ॑म्। अ॒भि। एक॑म्। इत्। सिन्धो॑ः। ऊ॒र्मा। वि। अ॒क्ष॒र॒न् ॥३॥

पदार्थः—उक्तपरमात्मनि सूर्यादिविविधग्रहाः (सिन्धोः, ऊर्मा) यथा सिन्धौ वीचयस्तद्वत् तत्रैवोत्पद्योत्पद्य विलीयन्ते, ते च ग्रहा उपग्रहाश्च (वृथा, क्रीळन्तः) यदृच्छया भ्राम्यन्ति दिवि (इन्दवः) यथा प्रकाशमया अग्नयः (सधस्थम्) यज्ञकुण्डमेत्य सङ्गच्छन्ते तथा (अभि, एकमित्) एकस्मिन्नेव परमात्मनि संगच्छन्ते।

पदार्थ—उक्त परमात्मा में विविध प्रकार के सूर्य चन्द्रमा आदि ग्रह (सिन्धोः, ऊर्मा) जिस तरह सिन्धु में से लहरें उठती हैं इस प्रकार

इसी से पैदा होकर इसी में समा जाते हैं वे ग्रह उपग्रह कैसे हैं (वृथा, क्रीळन्तः) जो अनायास से भ्रमण करते हैं (इन्दवः) जिस तरह प्रकाश-रूप अग्नियें (सधस्थम्) यज्ञकुण्ड में आके प्राप्त होती हैं इस प्रकार (अभि, एकमित्) वह एक ही परमात्मा में प्राप्त होते हैं "एति गच्छतीतिइत्"

भावार्थ—सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों में जितने ग्रह, उपग्रह हैं वे सब परमात्मा को ही आश्रित करते हैं ॥३॥

एते विश्वानि वार्या पवमानास आशत ।
हिता न सप्तयो रथे ॥४॥

एते । विश्वानि । वार्या । पवमानासः । आशत । हिताः । न । सप्तयः । रथे ॥४॥

पदार्थः—यथा (सप्तयः) सप्त सूर्यकिरणाः (रथे) अस्मिन् विराड्रूपे रथे (हिताः) निहिताः सन्ति (न) तथैव (एते, पवमानासः) सर्वेषां पावयितॄणि इमानि (विश्वानि) सर्वाणि (वार्या) ब्रह्माण्डानि (आशत) परमात्मनि निवसन्ति ।

पदार्थ—जिस प्रकार (सप्तयः) सात सूर्य की किरणें (रथे) इस विराट्रूपी रथ में (हिताः) निहित हैं (न) इसी प्रकार (एते, पवमानासः) सब को पवित्र करते हुए ये (विश्वानि) सम्पूर्ण (वार्या) ब्रह्माण्ड (आशत) परमात्मा में निवास करते हैं ।

भावार्थ—जिस प्रकार उपग्रह सूर्य आदि ग्रहों के इतस्ततः भ्रमण करते हैं इसी प्रकार सब लोक, लोकान्तर इस विराट् के इतस्ततः परिभ्रमण करते हैं ॥४॥

आस्मिन्पिशङ्गमिन्दवो दधाता वेनमादिशे ।
यो अस्मभ्यमरावा ॥५॥

आ । अस्मिन् । पिशङ्गम् । इन्दवः । दधात । वेनम् । आऽदिशे । यः । अस्मभ्यम् । अरावा ॥५॥

पदार्थः—(अस्मिन्) अस्मिन् विराट्पुरुषे (पिशङ्गम्) नानावर्णम् (दधाता) धारयन्ति (इन्दवः) अखिलब्रह्माण्डानि (वनम, आदिशे) तमेव परमात्मानमाश्रयन्ते (यः) यः परमात्मा (अस्मभ्यम्) अस्मभ्यम् (अरावा) सर्वकामप्रदोऽस्ति ।

पदार्थ—(अस्मिन्) इस विराट् में (पिशङ्गम्) अनेक वर्णों को (दधाता) धारण करते हुए (इन्दवः) सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड (वेनम्, आदिशे) उस परमात्मा का आश्रय लेते हैं (यः) जो परमात्मा (अस्मभ्यम्, अरावा) हमारे लिये सब कामनाओं का देने वाला है ।

भावार्थ—उक्त कोटानुकोटि ब्रह्माण्ड उसी निराकार परमात्मा के आधार पर स्थित हैं ॥ ५ ॥

ऋभुर्न रथ्यं नवन्दधाता केतमादिशे ।
शुक्राः पवध्वमर्णसा ॥६॥

ऋभुः । न । रथ्यम् । नवम् । दधात । केतम् । आऽदिशे । शुक्राः । पवध्वम् । अर्णसा ॥६॥

पदार्थः—(शुक्राः) हे पवित्रकारकपरमात्मन् ! भवान्

(रथ्यम्, नवम्) नवमश्वम् (दधाता) वशमानयन् (ऋभुर्न) सारथिरिव सर्वान् वशमानयन् (केतम्, आदिशे) ज्ञानमुपदिशति (अर्णसा, पवध्वम्) भवान् मां धनाद्यैश्वर्येण तर्पयतु ॥

पदार्थ—(शुक्राः) हे पवित्रकारक परमात्मन् ! आप (रथ्यम्, नवम्) नये घोड़े को (दधाता) वश में रखते हुये (ऋभुर्न) सारथी की तरह (केतम्, आदिशे) आप सबको वश में करके ज्ञानादि ऐश्वर्य देते हैं (अर्णसा) आप हमको धनाद्यैश्वर्य देकर (पवध्वं) पवित्र करिये ।

भावार्थ—जीव करने में स्वतन्त्र और भोगने में परतन्त्र है । ईश्वर कर्मों के भुगाने में उसे ऐसे नियमों में निगड़ित रखता है जिसका वह अतिक्रमण कदापि नहीं कर सकता । बड़े २ सम्राटों को भी कर्मों का फल अवश्यमेव भोगना पड़ता है । इसी अभिप्राय से यह कहा है कि जिस प्रकार घोड़े को सारथी अपने अधीन रखता है इसी प्रकार परमात्मा जीवों को अपने अधीन रखता है ॥६॥

एत उ त्ये अवीवशन्काष्ठां वाजिनो अक्रत ।
सतः प्रासाविषुर्मतिम् ॥७॥११॥

एते । ऊं इति । त्ये । अवीवशन् । काष्ठाम् । वाजिनः । अक्रत । सतः । प्र असाविषुः । मतिम् ॥७॥११॥

पदार्थः—(वाजिनः) सर्वविधैश्वर्यवान् (त्ये, एते, उ,) स एव पूर्वोक्तः परमात्मा (अवीवशन्) सर्वान् वशीकरोति तथा च (सतः, मतिम्) सत्कर्मणां बुद्धिम् (असाविषुः) शुभमार्गाभिमुखं प्रेरयति च (पराम्, काष्ठाम्, अक्रत) एवंभूतः परमकाष्ठां प्रापयति ।

पदार्थ—(वाजिनः) सब प्रकार के ऐश्वर्य वाला , त्ये, एत, उ) वही पूर्वोक्त परमात्मा (अवीवशन्) सबको वश में रखता हुआ (सतः, मतिम्) सत्कर्मियों की बुद्धि को (असाविषुः) शुभ मार्ग की ओर लगाता हुआ (पराम्, काष्ठाम्, अक्रत) परम काष्ठा को प्राप्त कराता है ।

भावार्थ—जो लोग परमात्मा की ओर झुकते हैं अर्थात् यमनियमादिसाधनसम्पन्न होकर संयमी बनते हैं वे ब्रह्मविद्या की परा काष्ठा को प्राप्त होते हैं इसी अभिप्राय से उपनिषदों में यह कहा है कि 'सा काष्ठा सा परागतिः' ॥७॥

एकविंशतितमं सूक्तमेकादशो वर्गश्च समाप्तः ।

यह इक्कीसवां सूक्त और ग्यारहवां वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ सप्तर्चस्यद्वाविंशस्य सूक्तस्य ।

१-७ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २ गायत्री । ३ विराड् गायत्री ४-७ निचृद्गायत्री ॥ षड्जःस्वरः ॥

अथ परमात्मनो जगतः कर्तृत्वं वर्ण्यते—

अब परमात्मा की सृष्टिरचना का वर्णन करते हैं—

एते सोमा॑स आ॒शवो॒ रथा॑ इव॒ प्र वा॒जिनः॑ ।
सर्गाः॑ सृ॒ष्टा अ॑हेषत ॥१॥

ए॒ते । सोमा॑सः । आ॒शवः॑ । रथाः॑ऽइव । प्र । वा॒जिनः॑ ।
सर्गाः॑ । सृ॒ष्टाः । अ॒हे॒ष॒त ॥१॥

पदार्थः—(एते, सोमासः) अयं परमात्मा (रथाः, इव) विद्युदिव (आशवः) शीघ्रगाम्यस्ति (प्रवाजिनः) अत्यन्त-बलाश्रयश्च (सर्गाः, सृष्टाः, अहेषत) स एव सृष्टिं शब्दायमाना-मुदपादयत् ।

पदार्थ—(एते, सोमासः) यह परमात्मा (रथाः, इव) विद्युत् के समान (आशवः) शीघ्रगामी है और (प्र, वाजिनः) अत्यन्त बल वाला है (सर्गाः, सृष्टाः, अहेषत) उसने सृष्टिओं को शब्दायमान रचा है ।

भावार्थ—परमात्मा में अनन्त शक्तियें पायी जाती हैं उसकी शक्तियें विद्युत् के समान क्रियाप्रधान हैं उसने कोटानुकोटि ब्रह्माण्डों को रचा है, जो शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन पांच तन्मात्रों के कार्य हैं । और इनकी ऐसी अचिन्त्य रचना है जिसका अनुशीलन मनुष्य मन से भी भली भांति नहीं कर सकता ॥१॥

ऐते वाता इवोरवः पर्जन्यस्येव वृष्टयः ।
अग्नेरिव भ्रमा वृथा ॥२॥

एते । वाताःऽइव । उरवः । पर्जन्यस्यऽइव । वृष्टयः । अग्नेःऽइव । भ्रमाः । वृथा ॥ २ ॥

पदार्थः—(एते) इमानि सर्वाणि ब्रह्माण्डानि (उरवः, वाताः, इव) बहवो वायव इव (पर्जन्यस्य, वृष्टयः, इव) मेघस्य वृष्टिः इव च (अग्नेः, भ्रमाः, इव) अग्नेः ज्वाला इव च (वृथा) अनायासं भ्रमन्ति ।

पदार्थ—(एते) सब उत्पन्न हुए ब्रह्माण्ड (उरवः, वाताः, इव) बहुतसी वायु की तरह (पर्जन्यस्य, वृष्टयः, इव) और मेघ की वृष्टि के

समान (अग्नेः, भ्रमाः, इव) अग्नि के प्रज्वलन की तरह (वृथा) अनायास गमन कर रहे हैं ।

भावार्थ—जिस प्रकार अग्नि की ज्वलनशक्ति स्वाभाविक है इसी प्रकार वे ब्राह्मण्ड भी स्वाभाविक गतिशील बनाये गये हैं। स्वाभाविक से तात्पर्य यहां आकस्मिक नहीं है किन्तु नियमपूर्वक भ्रमण का है। जैसे कि सूर्य चन्द्र आदि ईश्वरदत्त नियम से सदैव परिभ्रमण करते हैं इसी प्रकार ये सब ब्रह्माण्ड ईश्वरदत्त नियम से परिभ्रमण करते हैं। इसी अभिप्राय से कहा है कि 'भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः, क० २ । ६ । उस के भय से अग्नि तपता है और उसी के भय से सूर्य तपता है, जिस प्रकार इस में ईश्वराधीनता अग्न्यादि तत्वों की वर्णन की गयी है इसी प्रकार सब कार्यजात ईश्वराधीन हैं ॥२॥

एते पूता विपश्चितः सोमासो दध्याशिरः ।
विपा व्यानशुर्धियः ॥३॥

एते । पूताः । विपःऽचितः । सोमासः । दधिऽआशिरः । विपा । वि । आनशुः । धियः ॥ ३ ॥

पदार्थः—(पूताः) पवित्राणि (एते, सोमासः) इमानि ब्रह्माण्डानि (दध्याशिरः) सर्वस्य धातृणि (विपा) ज्ञानद्वारा (विपश्चितः) विदुषां (धियः) बुद्धीनां (व्यानशुः) विषयीभूतानि भवन्ति ।

पदार्थ—(पूताः) पवित्र (एते, सोमासः) ये सब उत्पन्न हुए ब्रह्माण्ड (दध्याशिरः) सब के धारक आश्रयभूत (विपा) ज्ञानद्वारा (विपश्चितः) विद्वानों की (धियः) बुद्धि का (व्यानशुः) विषय होते हैं ।

भावार्थ—परमात्मा की रचना में जो कोटानुकोटि ब्रह्माण्ड हैं वे सब ज्ञानी विज्ञानियों के ही समझ में आ सकते हैं अन्यों के नहीं ॥३॥

एते मृष्टा अमर्त्याः ससृवांसो न शश्रमुः ।
इयक्षन्तः पथो रजः ॥४॥

एते । मृष्टाः । अमर्त्याः । ससृऽवांसः । न । शश्रमुः ।
इयक्षन्तः । पथः । रजः ॥ ४ ॥

पदार्थः—(मृष्टाः) भास्वराः (अमर्त्याः) नक्षत्रगणाः (पथः, रजः) रजोगुणेन मार्गम् (इयक्षन्तः) प्राप्तुमिच्छन्तः (ससृवांसः) अत्यन्तसरणशीलाः (न, शश्रमुः) विश्रामं न लभन्ते ।

पदार्थ—(मृष्टाः) भास्वररूप (अमर्त्याः) नक्षत्रगण (पथः, रजः) रजोगुण से मार्ग को (इयक्षन्तः) प्राप्त होने वाले (ससृवांसः) चलते हुये (न, शश्रमुः) विश्राम को नहीं पाते ।

भावार्थ—यों तो संसार में दिव्यादिव्य अनेक प्रकार के नक्षत्र हैं पर जो दिव्य नक्षत्र हैं उनकी ज्योति प्रतिपल सहस्रों मील चलती हुई भी अभीतक इस भूगोल के भाग स्पर्श नहीं करने पायी । तात्पर्य यह है कि इस दिव्यरचनारूप ब्रह्माण्डों की इयत्ता को पाना परमात्मा का काम ही है, खद्योतकल्प क्षुद्र जीव केवल इनकी रचना को कुछ २ अनुभव करता है सब नहीं । हां योगी जन जो परमात्मा के योग में रत हैं वे लोग साधारणासाधारण लोगों से परमात्मा की रचना को अधिक अनुभव करते हैं । इसी अभिप्राय से वेद में अन्यत्र भी यह कहा है कि 'को अद्धा वेद क इह प्रवोचत कुतो विजाता कुत इयं विसृष्टिः' १०।११।१३० कौन जान सकता है और कौन कह सकता है कि यह विविध प्रकार की

सृष्टि परमात्मा ने कहां से और किस शक्ति से किस समय उत्पन्न की । इस से आगे यह निरूपण किया है कि इसका पूर्णरूप से ज्ञाता वह परमात्मा ही है कोई अन्य नहीं । इसी अभिप्राय से 'परिच्छिन्नं न सर्वोपादानम्' सां० १ । ७६ ॥ इत्यादि सूत्रों में सांख्य शास्त्र में प्रकृति को विभु माना है, पर वहां यह व्यवस्था समझनी चाहिये कि प्रकृति सापेक्ष विभु है अर्थात् अन्य कार्यों की अपेक्षा विभु है । वास्तव में इयत्तारहित विभु एकमात्र परमात्मा ही है कोई अन्य वस्तु नहीं ॥४॥

एते पृष्ठानि रोदसोर्विप्रयन्तो व्यानशुः ।
उतेदमुत्तमं रजः ॥५॥

एते । पृष्ठानि । रोदसोः । विऽप्रयन्तः । वि । आनशुः ।
उत । इदम् । उत्ऽतमम् । रजः ॥५॥

पदार्थः—(एते) एतानि नक्षत्राणि (रोदसोः, पृष्ठानि) द्यावापृथिव्योर्मध्यगतानि (विप्रयन्तः) गच्छन्ति सन्ति (इदम्, उत्तमम्, रजः) एतमुत्तमं रजोगुणम् (उत, व्यानशुः) व्याप्नुवन्ति ।

पदार्थ—(एते) ये सब नक्षत्रादि (रोदसोः, पृष्ठानि) पृथिवी और द्युलोक के मध्य में (विप्रयन्तः) चलते हुए (इदं, उत्तमम्, रजः) इस उत्तम रजो गुण को (उत, व्यानशुः) व्याप्त होते हैं ।

भावार्थ—उक्त ब्रह्माण्डों की विविध रचना में परमात्मा ने इस प्रकार का आकर्षण और विकर्षण उत्पन्न किया है जिस में एक दूसरे के आश्रित होकर वे प्रतिक्षण गतिशील बन रहे हैं । वा यों कहो कि सत्व, रज, और तम प्रकृति के ये तीनों गुण अर्थात् प्रकृति की ये तीनों अवस्थायें जिस प्रकार एक दूसरे का आश्रयण करती हैं इस प्रकार एक दूसरे को आश्रयण करता हुआ प्रत्येक ब्रह्माण्ड इस

नभोमण्डल में वायुवेग से उत्तेजित तृण के समान प्रतिक्षण चल रहा है कोई स्थिर नहीं ॥५॥

तन्तुं तन्वानमुत्तममनु प्रवत आशत ।
उतेदमुत्तमाय्यम् ॥६॥

तन्तुम् । तन्वानम् । उत्ऽतमम् । अनु । प्रऽवतः । आशत ।
उत । इदम् । उत्तमाय्यम् ॥६॥

पदार्थः—(प्रवतः) गतिशीलब्रह्माण्डानि (इदम्) उत्तमं, तन्तुं, तन्वानम्) उत्तमं परमाणुप्रबन्धं वर्धयन्ति सन्ति (उत्तमाय्यम्) उत्तमकार्यैः (उत, अन्वाशत) व्याप्नुवन्ति ।

पदार्थ—(प्रवतः) गतिशील ब्रह्माण्ड (उत्तमं, तन्तुम्, तन्वानम्) उत्तम परमाणुप्रबन्ध को बढ़ाते हुये (इदम्) इतने (उत्तमाय्यम्) उत्तम कार्यों से (उत, अन्वाशत) व्याप्त हो रहे हैं ।

भावार्थ—प्रत्येक ब्रह्माण्ड मानों तन्तुरूप से अर्थात् रचनारूप यज्ञ से परमात्मा की संसृति को बढ़ा रहा है ॥ ६ ॥

त्वं सोम पणिभ्य आ वसु गव्यानि धारयः ।
ततं तन्तुमचिक्रदः ॥७॥१२॥

त्वं । सोम । पणिऽभ्यः । आ । वसु । गव्यानि । धारयः ।
ततं । तन्तुं । अचिक्रदः ॥७॥

पदार्थः—(सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (त्वम्) भवान् (पणिभ्यः) दुष्टेभ्यः (वसु, गव्यानि) अखिलपार्थिव-

रत्नानि (आ, धारयः) सम्यक् आदत्ते तथा (ततम्, तन्तुम्) वर्धितं कर्मरूपयज्ञं (अचिक्रदः) प्रख्यापयति ॥

पदार्थ—(सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (त्वम्) आप (पणिभ्यः) दुष्टों से (वसु, गव्यानि) सम्पूर्ण पृथिवीसम्बन्धी रत्नों का (आ, धारयः) अच्छी प्रकार ग्रहण करते हो और (ततं, तन्तुम्) बढ़े हुये कर्मात्मकयज्ञ का (अचिक्रदः) प्रचार करते हो ।

भावार्थ— इस सूक्त की समाप्ति करते हुए अर्थात् इस अगाध रचयिता की रचना का वर्णन करते हुए परमात्मा रुद्ररूप का वर्णन करके इस सूक्त का उपसंहार करते हैं 'रोदयति राक्षसानिति रुद्रः' जो अन्यायकारी राक्षसों को रुला दे उसका नाम यहाँ रुद्र है वह रुद्ररूप परमात्मा अन्यायकारी दुष्ट दस्युओं से धन जन और राज्य श्री का अपहरण कर लेता है और न्यायकारी दान्त शान्त देवताओं को लेकर प्रदान कर देता है, इसी का नाम देवासुर संग्राम है और इसी का नाम दैवी और आसुरी सम्पत्ति है। यह व्यवहार परमात्मा की विविध रचना में घटीयंत्र के समान सदैव होता रहता है जिस तरह घटीयंत्र अर्थात् रहट के पात्र जो कभी भरे हुए होते हैं वेही ऊंचे चढ़ कर गर्व करते हुए सर्वथा रीते हो जाते हैं और जो रीते हो जाते हैं वेही विनय और नम्रता करते हुए भर जाते हैं अर्थात् परिपूर्ण हो जाते हैं इस लिये सदैव परमात्मा की विनयभाव से पूर्ण होने की अभिलाषा प्रत्येक अभ्युदयाभिलाषी को करनी चाहिये ॥ ७ ॥

द्वाविंशं सूक्तं द्वादशो वर्गश्च समाप्तः ।

यह—बाईसवां सूक्त और बारहवां वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ सप्तर्चस्य त्रयोविंशतितमस्य सूक्तस्य—

१-७ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः-१—४, ६ निचृद्गायत्री । ५ गायत्री । ७ विराड्गायत्री ॥ षड्जःस्वरः ॥

अथोक्तरचना प्रकारान्तरेण वर्ण्यते—

अब उक्त रचना को प्रकारान्तर से वर्णन करते हैं—

सोमा असृग्रमाशवो मधोर्मदस्य धारया ।
अभि विश्वानि काव्या ॥१॥

सोमाः । असृग्रं । आशवः । मधोः । मदस्य । धारया ।
अभि । विश्वानि । काव्या ॥१॥

पदार्थः—(सोमाः) ब्रह्माण्डानि विविधानि (मधोः, मदस्य) प्रकृतेः रञ्जकभावैः (धारया) सूक्ष्मावस्थया (आशत) शीघ्रगमनशीलानि (असृग्रम्) सृष्टानि, (अभि, विश्वानि,) काव्या) ततश्च सर्वविधवेदादिशास्त्राणि निरमायिषत ।

पदार्थ—(सोमाः) "सूयन्ते = उत्पद्यान्त इति सोमाः ब्रह्माण्डानि" अनन्त प्रकार के कार्यरूप ब्रह्माण्ड (मधोः, मदस्य,) प्रकृति के हर्षजनक भावों की (धारया) सूक्ष्म अवस्था से (आशवः) शीघ्र गति वाले (असृग्रम्) बनाए गये हैं और (अभि, विश्वानि, काव्या) तदनन्तर सब प्रकार के वेदादि शास्त्रों की रचना हुई ।

भावार्थ—परमात्मा ने प्रकृति की सूक्ष्मावस्था से कोटि २ ब्रह्माण्डों को उत्पन्न किया और तदनन्तर उसने विधिनिषेधात्मक सब

विद्याभण्डार वेदों को रचा । जैसा कि "तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतऋचः सामानि जज्ञिरे" इत्यादि वेदमंत्र और "जन्माद्यस्य यतः" इत्यादि सूत्रों से प्रति पादन कर आये हैं ॥१॥

अनु प्रत्नास आयवः पदं नवीयो अक्रमुः ।
रुचे जनन्त सूर्यम् ॥२॥

अनु । प्रत्नासः । आयवः । पदं । नवीयः । अक्रमुः । रुचे । जनन्त । सूर्यम् ॥२॥

पदार्थः—(आयवः) तेषु च द्रुततरगन्तारः प्रकृतिपरमाणवः (प्रत्नासः) ये हि स्वरूपेणानादयः ते (अनु, नवीयः, पदम्, अक्रमुः) पश्चात् नूतनतमं पदं गृह्णन्ति (रुचे) दीप्तये तैरेव परमाणुभिः (सूर्यम्, जनन्त) सूर्यंजनयामास ।

पदार्थ—उन में से (आयवः) शीघ्रगामी प्रकृतिपरमाणु (प्रत्नासः) जो स्वरूप से अनादि हैं वे (अनु, नवीयः, पदम्, अक्रमुः) नवीन पद को धारण करते हैं (रुचे) दीप्ति के लिये परमात्मा ने उन्हीं परमाणुओं में से (सूर्यम्, जनन्त) सूर्य को पैदा किया ।

भावार्थ—प्रकृति की विविध प्रकार की शक्तियों से परमात्मा सम्पूर्ण कार्यों को उत्पन्न करता है । इन सब कार्यों का उपादान कारण प्रकृति अनादि अनन्त है । इसी भाव से मन्त्रों में 'प्रत्नासः' पद से वर्णन किया है ॥२॥

आ पवमान नो भरार्यो अदाशुषो गयम् ।
कृधि प्रजावतीरिषः ॥३॥

आ । पवमान । नः । भर । अर्यः । अदाशुषः । गयं । कृधि । प्रजाऽवतीः । इषः ॥ ३ ॥

पदार्थः—(पवमान) हे सर्वेषां पावयितर्भगवन् । (नः) अस्मभ्यं (अर्यः) ये भावाः (अदाशुषः) असुरेभ्यो न ददिरे ते (गयम्) भावाः (आ, भर) दीयन्ताम् (प्रजावतीः, इषः) धनपुत्राद्यैश्वर्यं च (कृधि) ददातु ।

पदार्थ—(पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (नः) हम को (अर्यः) जो भाव असुरों को (अदाशुषः) नहीं दिये वह (गयम्) भाव (आ, भर) देयँ और (प्रजावतीः, इषः) धनपुत्रादि ऐश्वर्यों को (कृधि) देयँ ।

भावार्थ—इस मंत्र में (अर्यः) परमात्मा का नाम है "ऋच्छति गच्छति सर्वत्र प्राप्नोति इत्यर्य्यः परमात्मा" जो सर्वत्र व्यापक हो उस का नाम अर्य है उस अर्य परमात्मा से यह प्रार्थना की गयी है कि हे परमात्मन्, आप हमको दैवी सम्पत्ति के गुण दें अर्थात् हम को ऐसे पवित्र भाव दें जिस से हम में आसुर भाव कदापि न आवे जो पुरुष सदैव देवताओं के गुणों से सम्पन्न होने की प्रार्थना करते हैं परमात्मा उन्हें सदैव दिव्य गुणों का दान देता है ॥३॥

अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम् ।
अभि कोशं मधुश्चुतम् ॥४॥

अभि । सोमासः । आयवः । पवन्ते । मद्यं । मदं । अभि । कोशं । मधुऽश्चुतम् ॥४॥

पदार्थः—(सोमासः) इमानि कार्यरूपब्रह्माण्डानि (आयवः) गन्तृणि सन्ति (मद्यं, मदम्) अनेकविधानि आह्लादकानि मादकानि न वस्तूनि (अभि) सर्वत्रोत्पादयन्ति (मधुश्चुतम्) विविधरसजनकम् (कोशम्) आकरम् (अभि) अभित उत्पादयन्ति च ।

पदार्थ—(सोमासः) ये कार्य्य ब्रह्माण्ड जो (आयवः) गतिशील हैं (मद्यं, मदम्) अनन्त प्रकार के आह्लादकारक और मदकारक वस्तुओं को (अभि) सब ओर से उत्पन्न करते हैं और (मधुश्चुतम्) नानाप्रकार के रसों को देनेवाले (कोशम्) खजाने को (अभि) सब ओर से उत्पन्न करते हैं ।

भावार्थ—सब विभूतियों की खानिरूप ब्रह्माण्डों का वर्णन किया है । तात्पर्य यह है कि इस संसार में नानाप्रकार की वस्तुएँ जिन ब्रह्माण्डों में उत्पन्न होती हैं उनको सोम नाम से कथन किया गया है ॥४॥

सोमो अर्षति धर्णसिर्दधान इन्द्रियं रसम् ।
सुवीरो अभिशस्तिपाः ॥५॥

सोमः । अर्षति । धर्णसिः । दधानः । इन्द्रियं । रसं ।
सुऽवीरः । अभिशस्तिऽपाः ॥५॥

पदार्थः—(सोमः) अखिलपदार्थोत्पत्तिस्थानमिदं ब्रह्माण्डम् (अर्षति) शश्वद्गच्छति (धर्णसिः) सर्वेषां धारकः (इन्द्रियं, रसम्) इन्द्रियसम्बन्धीनि शब्दस्पर्शादीनि (दधानः) धारयन् आस्ते (सुवीरः) सर्वशक्तिमान् परमात्मा (अभिशस्तिपाः) अभितो रक्षति तत् ॥

पदार्थ—(सोमः) सब पदार्थों का उत्पत्तिस्थान यह ब्रह्माण्ड (अर्षति) गति कर रहा है (धर्णसिः) सब के धारण करनेवाला है और (इन्द्रियं, रसम्) इन्द्रियों के शब्दस्पर्शादि रसों को (दधानः) धारण करता हुआ विराजमान है और उसका (सुवीरः) सर्वशक्तिसम्पन्न परमात्मा (अभि, शस्तिपाः) सब ओर से रक्षक है।

भावार्थ—जो ब्रह्माण्ड कोटि २ नक्षत्रों को धारण किये हुए हैं और जिनमें नानाप्रकार के रस उत्पन्न होते हैं उनका जन्मदाता एक मात्र परमात्मा ही है अन्य कोई नहीं। इस मंत्र में ब्रह्माण्डादिपति परमात्मा का वर्णन किया गया है और उसी की सत्ता से धारण किये हुए ब्रह्माण्डों का वर्णन है ॥५॥

इन्द्राय सोम पवसे देवेभ्यः सधमाद्यः ।
इन्दो वाजं सिषाससि ॥६॥

इन्द्राय । सोम । पवसे । देवेभ्यः । सधऽमाद्यः । इन्दो इति । वाजम् । सिसाससि ॥६॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन्! (इन्द्राय) कर्मयोगिणे (पवसे) पवित्रतां ददासि त्वम् (देवेभ्यः) विद्वद्भ्यश्च (सधमाद्यः) यज्ञे सेव्यरूपेणास्ते (इन्दो) हे परमैश्वर्यशालिन्! त्वमेव (वाजम्, सिषाससि) सर्वेभ्योऽन्नं ददासि।

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन्, (इन्द्राय) कर्मयोगी के लिये तुम (पवसे) पवित्रता देते हो और (देवेभ्यः) विद्वान लोगों के लिये तुम (सधमाद्यः) यज्ञ में सेवनीय हो और (इन्दो) परमैश्वर्ययुक्त परमात्मन्, आप (वाजं, सिषाससि) सबको अन्न दान देते हो।

भावार्थ—परमात्मा ही कर्मयोगी को कर्मों में लगने का बल देता है और परमात्मा ही सत्कर्मी पुरुषों को यज्ञ करने का सामर्थ्य प्रदान करता है। बहुत क्या परमात्मा ही अन्य धनादि सम्पूर्ण ऐश्वर्यों का प्रदान करता है ॥६॥

अस्य प्रीत्वा मदानामिन्द्रो वृत्राण्यप्रति ।
जघान जघनंश्च नु ॥७॥१३॥

अस्य । पीत्वा । मदानाम् । इन्द्रः । वृत्राणि । अप्रति ।
जघान । जघनत् । च । नु ॥७॥

पदार्थः—(अस्य) अस्य परमात्मन आनन्दं (पीत्वा) अनुभूय (मदानाम्) योहि परमात्मा सर्वविधमदान् तिरस्कृत्य विराजते (इन्द्रः) कर्मयोगी (वृत्राणि) अज्ञानानाम् (अप्रति) प्रतिपक्षीभूत्वा (जघान) तानि नाशयायास (जघनञ्च) नाशयति (नु) निश्चयं तदानन्दमेव पिब ।

पदार्थ—(अस्य) इस परमात्मा के आनन्द को (पीत्वा) पी कर जो (मदानाम्) सब प्रकार के मदों को तिरस्कार करके विराजमान है (इन्द्रः) कर्मयोगी पुरुष (वृत्राणि) अज्ञानों को (अप्रति) प्रतिपक्षी बन कर (जघनञ्च) नाश करता है (नु) निश्चय करके तुम उसी परमात्मा के आनन्द का पान करो ।

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! सब आनन्दों से बढ़ कर ब्रह्मानन्द है। इस आनन्द के आगे सब प्रकार के मादक द्रव्य भी निरानन्द प्रतीत होते हैं वास्तव में मदकारक वस्तु मनुष्य की बुद्धि का नाश करके आनन्ददायक प्रतीत होती है और ब्रह्मानन्द का भान किसी प्रकार के मद को उत्पन्न नहीं करता किन्तु

आह्लाद को उत्पन्न करता है। इसी लिये सब प्रकार के मद उसके सामने तुच्छ हो जाते हैं जिस प्रकार राजमद धनमद यौवनमद रूपमद इत्यादि सब मद विद्यानन्द के आगे तुच्छ प्रतीत होते हैं इसी प्रकार विद्यानन्द योगानन्द इत्यादि आनन्द ब्रह्मानन्द के आगे सब फीके हो जाते हैं। इसी अभिप्राय से मंत्र में कहा है कि "मदानाम्" सब मदों में से सच्चा मद एकमात्र परमात्मा का आनन्द है इसी अभिप्राय से कहा है कि "रसोह्येवहि सः रसं ह्येव लब्ध्वा आनन्दी भवति" परमात्मा आनन्द-स्वरूप है उस आनन्द स्वरुप को लाभ करके पुरुष आनन्दित होता है ॥७॥

इति त्रयोविंशं सूक्तं त्रयोदशो वर्गश्च समाप्तः ॥

यह तेईसवां सूक्त और तेरहवां वर्ग समाप्त हुआ।

अथ सप्तर्चस्य चतुर्विंशतितमस्य सूक्तस्य–

१–७ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो-देवता ॥ छन्दः-१,२ गायत्री । ३,५,७ निचृद्गायत्री । ४,६ विराड् गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

प्र सोमा॑सो अधन्विषुः॒ पव॑मानास॒ इन्द॑वः ।
श्री॒णा॒ना अ॒प्सु मृ॑ञ्जत ॥१॥

प्र । सोमा॑सः । अ॒ध॒न्वि॒षुः॒ । पव॑मानासः । इन्द॑वः ।
श्री॒णा॒नाः । अ॒प्ऽसु । मृ॒ञ्ज॒त ॥१॥

पदार्थः—(सोमासः) सौम्यस्वभावस्य कर्तारः परमात्मन आह्लादादिगुणाः (पवमानासः) ये च पवित्रकर्तारः (इन्दवः) दीप्तिमन्तश्च ये च कर्मयोगिषु (प्राधन्विषुः) प्रकर्षतयोत्पद्यन्ते

ते (श्रीणानाः) सेविताः सन्तः (अप्सु) वाङ्मनःशरीराणां त्रिविधानामपि यत्नानां (मृञ्जत) शुद्धिमुत्पादयन्ति ।

पदार्थ—(सोमासः) सौम्य स्वभाव को उत्पन्न करने वाले परमात्मा के आह्लादादि गुण (पवमानासः) जो मनुष्य को पवित्र कर देने वाले हैं (इन्दवः) जो दीप्ति वाले हैं जो कर्मयोगियों में (प्र) प्रकर्षता से आनन्द (अधन्विषुः) उत्पन्न करने वाले हैं (श्रीणानाः) सेवन किये हुए (अप्सु) शरीर मन और वाणी तीनों प्रकार के यत्नों में (मृञ्जत) शुद्धि को उत्पन्न करते हैं ।

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते है कि हे मनुष्यो ! तुम परमात्मा के गुणों का चिन्तन करके अपने मन, वाणी तथा शरीर की शुद्धि करो। जिस प्रकार जल शरीर की शुद्धि करता है और परमात्मोपासन मन की शुद्धि करता है और स्वाध्याय अर्थात् वेदाध्ययन वाणी की शुद्धि करता है इसी प्रकार परमात्मा के ब्रह्मचर्य्यादि गुण शरीर, मन और वाणी की शुद्धि करते हैं। 'ब्रह्म' नाम यहां वेद का है। वेद के निमित्त जो व्रत किया जाता है उस का नाम 'ब्रह्मचर्य्य' है। इस व्रत में इन्द्रियों का संयम भी करना अत्यावश्यक होता है। इस लिये ब्रह्मचर्य्य के अर्थ जितेन्द्रियता भी हैं। मुख्य अर्थ इसके वेदाध्ययन व्रत के ही हैं। वेदाध्ययन व्रत इन्द्रिय संयमद्वारा शरीर की शुद्धि करता है ज्ञानद्वारा मन की शुद्धि करता है और अध्ययनद्वारा वाणी की शुद्धि करता है इसी प्रकार परमात्मा के सत्य, ज्ञान और अनन्तादि गुण आह्लाद उत्पन्न करके मन वाणी तथा शरीर की शुद्धि के कारण होते हैं। इसी अभिप्राय से उपनिषदों ने "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म तै० २ । १ । इत्यादि वाक्यों में परमात्मा के सत्यादि गुणों का वर्णन किया है ॥ १ ॥

अभि गावो अधन्विषुरापो न प्रवता यतीः ।
पुनाना इन्द्रमाशत ॥२॥

अभि । गावः । अधन्विषुः । आपः । न । प्रऽवता । यतीः ।
पुनानाः । इन्द्रम् । आशत ॥२॥

पदार्थः—(गावः) इन्द्रियाणि कर्मयोगिषु (आपः, न) जलमिव (प्रवता) वेगवन्ति (अभि, अधन्विषुः) भवन्ति (यतीः) वशीभूतानि भवन्ति (पुनानाः) तानि च पवित्रीकुर्वाणानि (इन्द्रम्, आशत) परमात्मानं विषयीकुर्वन्ति ।

पदार्थ—(गावः) इन्द्रियें (अभि, अधन्विषुः) कर्मयोगियों में (आपः, न) जल के समान (प्रवता) वेग वाली होती हैं और (यतीः) वशीभूत होती हैं (पुनानाः) वे वशीकृत इन्द्रियें मनुष्य को पवित्र करती हुई (इन्द्रम्, आशत) परमात्मा को विषय करती हैं ।

भावार्थ—कर्मयोगी पुरुषों की इन्द्रियें परमात्मा का साक्षात्कार करती हैं । यहां साक्षात्कार से तात्पर्य यह है कि वे परमात्मा को विषय करती हैं जैसा कि "दृश्यते त्वग्रया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः" कठ० ३।१२। इस वाक्य में निराकार परमात्मा बुद्धि का विषय माना गया है । इसी प्रकार कर्मयोगी पुरुष की इन्द्रियें परमात्मा के साक्षात्कार के सामर्थ्य को लाभ करती हैं ॥ २ ॥

प्र पवमान धन्वसि सोमेन्द्राय पातवे ।
नृभिर्यतो वि नीयसे ॥३॥

प्र । पवमान । धन्वसि । सोम । इन्द्राय । पातवे ।
नृऽभिः । यतः । वि । नीयसे ॥३॥

पदार्थः—(प्र, पवमान) हे परमात्मन् ! (धन्वसि) भवान् सर्वत्र गमनशीलः (सोम) हे भगवन् ! (इन्द्राय,

पातवे) कर्मयोगिनः तृप्तये केवलो भवानेवोपास्यः (यतः) यस्मात् (नृभिः) ऋत्वगादिभिः (विनीयसे) विनयेन लभ्यते भवान् ।

पदार्थ—(पवमान) हे परमात्मन् ! (धन्वसि) तुम सर्वत्र गतिशील हो और (सोम, इन्द्राय) कर्मयोगी की (पातवे) तृप्ति के लिये तुम ही एकमात्र उपास्यदेव हो (यतः) जिस लिये (नृभिः) ऋत्विगादि लोगों के (विनीयस) विनीतभाव से आप उन्हें प्राप्त होते हैं।

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते हैं कि जो पुरुष कर्मयोगी व ज्ञान योगी हैं उनकी तृप्ति का कारण एकमात्र परमात्मा ही है। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार परमात्मा में ज्ञान,बल,क्रिया इत्यादि धर्म स्वाभाविक पाये जाते हैं इसी प्रकार कर्मयोगी और ज्ञानयोगी पुरुष भी साधन-सम्पन्न हो कर उन धर्मों को धारण करते हैं ॥३॥

त्वं सोम नृमादनः पवस्व चर्षणीसहे ।
सस्निर्यो अनुमाद्यः ॥४॥

त्वं । सोम । नृऽमादनः । पवस्व । चर्षणिऽसहे । सस्निः । यः । अनुऽमाद्यः ॥४॥

पदार्थः—(सोम) हे सर्वोत्पादक ! (त्वम्) भवान् (नृमादनः) मनुष्येभ्यः आनन्दस्य दाता (चर्षणीसहे) स्वप्रतिकूलेभ्योऽपि क्षमते (सस्निः) शुद्धस्वरूपः (अनुमाद्यः) सर्वथास्तुत्यः (यः) एवंभूतोयो विराजते स भवानेव (पवस्व) अस्मान्पावयतु ।

पदार्थ—(सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (त्वं) तुम (नृमादनः) मनुष्यों को आनन्द देने वाले हो (चर्षणीसहे) जो

आप से विमुख मनुष्य हैं उन पर भी कृपा करने वाले हो (मन्त्रिः) शुद्ध स्वरूप हो (अनुमाद्यः) सर्वथा स्तुति करने योग्य हो (यः) जो इस प्रकार के गुणों का आधार सर्वोपरिदेव आप हैं (पवस्व) आप हम पर कृपा करें ।

भावार्थ—परमात्मा किसी से राग, द्वेष नहीं करते सब को स्वकर्मानुकूल फल देते हैं । अर्थात् एकमात्र परमात्मा ही पक्षपात से शून्य होकर न्याय करते हैं । इसी लिये परमात्मा को यहां "चर्षणीसह" अर्थात् सब पर दया करनेवाला कहा गया है ॥४॥

इन्दो यदद्रिभिः सुतः पवित्रं परिधावसि ।
अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥५॥

इन्दः । यत् । अद्रिभिः । सुतः । पवित्रं । परिधावसि ।
अरं । इन्द्रस्य । धाम्ने ॥५॥

पदार्थः—(इन्दो) हे परमात्मन् ! त्वं (यत) यदा (पवित्रं) पवित्रान्तःकरणं (परिधावसि) अधितिष्ठसि तदा (अद्रिभिः, सुतः) अन्तःकरणवृत्तिभिः साक्षात्कृतः (इन्द्रस्य, धाम्ने) कर्मयोगिणामन्तःकरणरूपे धाम्नि (अरम्) अलङ्करोषि ।

पदार्थ—(इन्दो) हे परमात्मन् ! (यत्) जब तुम (पवित्रम्) पवित्र अन्तःकरणों में (परिधावसि) निवास करते हो तब (अद्रिभिः, सुतः) अन्तःकरण की वृत्तिद्वारा साक्षात्कार को प्राप्त हुए आप (इन्द्रस्य, धाम्ने) कर्मयोगी पुरुष के अन्तःकरणरूपी धाम को (अरम्) अलङ्कृत करते हैं ।

भावार्थ—परमात्मा अपनी व्यापकता से कर्मयोगी पुरुषों के अन्तःकरणों को अलङ्कृत करता है ।

यद्यपि परमात्मा प्रत्येक पुरुष के अन्तःकरण को विभूषित करता है तथापि कर्मयोग वा ज्ञानयोग द्वारा जिन पुरुषों ने अपने अन्तःकरणों को निर्मल बनाया है उनके अन्तःकरण में परमात्मा का प्रकाश विशेषरूप से प्रतीत होता है। इसी लिये योगियों के अन्तःकरणों का विशेष रूप से प्रकाशित होना कथन किया गया है ॥५॥

पर्वस्व वृत्रहन्तमोक्थेभिरनुमाद्यः ।
शुचिः पावको अद्भुतः ॥६॥

पर्वस्व । वृत्रहन्ऽतम । उक्थेभिः । अनुऽमाद्यः । शुचिः । पावकः । अद्भुतः ॥६॥

पदार्थः—(वृत्रहन्तम) हे अज्ञाननाशक परमात्मन् ! त्वम् (उक्थेभिः) यज्ञैः (अनुमाद्यः) मनुष्येभ्य आनन्ददाता, (शुचिः) शुद्धस्वरूपः (पावकः) सर्वेषां पविता (अद्भुतः) आश्चर्यरूपश्चासि त्वं कृपां कृत्वा (अस्मान्) पवित्री कुरु ।

पदार्थ—(वृत्रहन्तम) हे अज्ञान के नाश करने वाले परमात्मन! आप (उक्थेभिः) यज्ञों द्वारा (अनुमाद्यः) मनुष्यों को आनन्द देते हैं (शुचिः) शुद्धस्वरूप हैं (पावकः) सब को पवित्र करने वाले हैं तथा (अद्भुतः) आश्चर्यरूप हैं आप कृपा कर (पवस्व) हम को पवित्र करें।

भावार्थ—परमात्मा ही इस संसार में आश्चर्यमय है अर्थात् अन्य सब वस्तुओं का पारावार मिल जाता है एकमात्र परमात्मा ही ऐसा पदार्थ है जिस का पारावार नहीं। यद्यपि जिज्ञासु पुरुष उस पूर्ण को पूर्णरूप से नहीं जान सकता तथापि उस के ज्ञानमात्र से अर्थात् "अस्ति इत्येवोपलब्धव्यः" उसकी सत्ता के साक्षात्कार से पुरुष आनन्द का अनुभव करता है केवल एकमात्र परमात्मा ही आनन्दमय है अन्य सब उसी के आनन्द को लाभ करके आनन्द पाते हैं अन्यथा नहीं ॥६॥

शुचिः पावक उच्यते सोमः सुतस्य मध्वः ।
देवावीरघशंसहा ॥७॥१४॥

शुचिः । पावकः । उच्यते । सोमः । सुतस्य । मध्वः ।
देवऽअवीः । अघशंसऽहा ॥७॥

पदार्थः—स परमात्मा (शुचिः) शुद्धस्वरूपः (पावकः, उच्यते) सर्वेषां पावकश्च कथितः (सोमः) सर्वजगदुत्पादकः (सुतस्य) एतत्कार्य्यमात्रस्य ब्रह्माण्डस्य (मध्वः) आधारः (देवावीः) देवानां रक्षकः (अघशंसहा) पापप्रशंसकानां पुंसां हन्ता चास्ति ।

पदार्थ—वह परमात्मा (शुचिः) शुद्धस्वरूप है (पावकः, उच्यते) सब को पवित्र करने वाला कहा जाता है (सोमः) "सूते चाराचरं यः स सोमः" जो सब का उत्पादक है उसका नाम यहां सोम है (सुतस्य) इस कार्यमात्र ब्रह्माण्ड का (मध्वः) अधिकरण है (देवावीः) देवताओं का रक्षक है (अघशंसहा) पापों की स्तुति करने वाले पापमय जीवन व्यतीत करने वाले पुरुषों का हनन करने वाला है ।

भावार्थ—जो लोग पापमय जीवन व्यतीत करते हैं परमात्मा उनकी वृद्धि कदापि नहीं करता । यद्यपि पापी पुरुष भी कहीं कहीं फलते फूलते हुए देखे जाते हैं तथापि उनका परिणाम अच्छा कदापि नहीं होता अन्त में 'यतोधर्मस्ततोजयः' का सिद्धान्त ही ठीक रहता है कि जिस ओर धर्म होता है उसी पक्ष की जय होती है इस तात्पर्य से मंत्र में यह कथन किया है कि परमात्मा पापी पुरुष और उनका अनुमोदन करने वाले दोनों का नाश करता है ॥७॥

इति चतुर्विंशं सूक्तं, चतुर्दशो वर्गः, प्रथमोऽनुवाकश्च समाप्तः ।

यह चौबीसवां सूक्त और चौदहवां वर्ग तथा पहिला अनुवाक समाप्त हुआ ।

अथ षडृचस्य पञ्चविंशतितमस्य सूक्तस्य—

१-६ दृळ्हच्युत आगस्त्य ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता
छन्दः—१,३,५,६ गायत्री । २,४ निचृद्गायत्री ॥
षड्जः स्वरः ॥

अथ परमात्मा मुक्तिधामत्वेन वर्ण्यते:—

मुक्ति का धाम एकमात्र परमात्मा है अब इस बात का वर्णन करते हैं:—

पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे ।
मरुद्भ्यो वायवे मदः ॥१॥

पवस्व । दक्षऽसाधनः । देवभ्यः । पीतये । हरे । मरुत्ऽभ्यः ।
वायवे । मदः ॥१॥

पदार्थः—(हरे) हे परमात्मन्! सर्वदुःखहर्त्तर्जगदीश्वर, भवान् (वायवे) कर्मयोगिणे पुरुषाय (मदः) आनन्दस्वरूपोऽस्ति (मरुद्भ्यः) ज्ञानयोगिभ्यश्च आनन्दस्वरूपोऽस्ति भवान् (देवेभ्यः) उक्तविदुषां (पीतये) तृप्त्यै (दक्षसाधनः) पर्य्याप्तसाधनोऽस्ति त्वम् (पवस्व) अस्मान् पुनीहि ।

पदार्थ—(हरे) हे परमात्मन्! सब दुःखों के हरने वाले जगदीश्वर! आप (वायवे) कर्मयोगी पुरुष के लिये (मदः) आनन्दस्वरूप हैं (मरुद्भ्यः) और ज्ञानयोगियों के लिये भी आनन्दस्वरूप हैं आप (देवेभ्यः) उक्त विद्वानों की (पीतये) तृप्ति के लिये (दक्षसाधनः) पर्याप्त साधनों वाले हैं ।

भावार्थ—परमात्मा के आनन्द का अनुभव केवल ज्ञानयोगी और कर्मयोगी पुरुष ही कर सकते हैं अन्य नहीं। जो पुरुष अयोगी है अर्थात् जिस पुरुष का किसी तत्त्व के साथ योग नहीं वह कर्मयोगी व ज्ञान-योगी नहीं बन सकता ॥१॥

पवमान धिया हितोऽभि योनिं कनिक्रदत्।
धर्मणा वायुमा विश ॥२॥

पवमान । धिया । हितः । अभि । योनिं । कनिक्रदत् ।
धर्मणा । वायुं । आ । विश ॥२॥

पदार्थः—(पवमान) हे सर्वेषां पावक भगवन् ! त्वम् (धिया, हितः) बुद्ध्या धृतः (अभि, योनिं) हृदयरूपे स्थाने (कनिक्रदत्) साधूपदिशन् (आविश) प्रविश अथ च (धर्मणा) अपहतपाप्मादिभिर्धर्मैः (वायुम्) कर्मयोगि-विदुषो हृदय आगत्य प्रविश ।

पदार्थ—(पवमान) हे सब को पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (धिया, हितः) बुद्धि से धारण किये हुये आप (अभि, योनिम्) हृदयरूपी स्थान में (कनिक्रदत्) सदुपदेश करते हुये (अविश) प्रवेश कीजिये और (धर्मणा) अपने अपहतपाप्मादि धर्मों द्वारा (वायुम्) कर्मयोगी विद्वान् के हृदय में आकर प्रवेश करें ॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करता है कि जो लोग शुद्ध बुद्धि द्वारा परमात्मा की उपासना करते हैं उनके हृदय को परमात्मा सदैव शुद्ध करता है। तात्पर्य यह है कि अपहतपाप्मादि परमात्मा के गुणों को वही पुरुष धारण कर सकता है जो पुरुष योगसाधनादि द्वारा संस्कृत की हुई बुद्धि के साथ परमात्मा का ध्यान करता है। इसी अभिप्राय से कहा है कि " दृश्यते

त्वग्रया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः" कठ० ३।१२॥ तथा "यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्। तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति" मु० ३,१,३। जब जिज्ञासु पुरुष उस स्वतः प्रकाश ब्रह्मको अपने योगजसामर्थ्य से देखता है तो पुण्य पाप से छूटता है अर्थात् जिस प्रकार वह परमपुरुष निष्पाप है उसी प्रकार वह भी निष्पाप हो कर उसके सत्यादि गुणों को धारण करता है। इसी का नाम वैदिक मत में मुक्ति है अर्थात् पापरूपी मल से छूट कर ब्रह्म के अमृत भावादि धर्मों को धारण करने का नाम मुक्ति है इसीलिये "ब्रह्मविदाप्नोति परम्" और "अमृतत्वमानशुः" इत्यादि उपनिषद्वाक्यों में उसको अमृत शब्द से कथन किया है केवल उपनिषदों में ही नहीं किन्तु वेद के बहुत से मन्त्रों में अमृत शब्द से मुक्त पुरुषों का कथन किया है जैसे कि "कस्यनूनं कतमस्यामृतानांमनामहे" ऋग्०—१।२।२४।१॥ और "अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे ऋग्०—१।२४।१॥ इत्यादि मन्त्रों से स्पष्ट है कि अमृत यहां मुक्त पुरुषों का नाम है। क्यों कि अमृतानाम् यह निर्धारण षष्ठी है और निर्धारण बहुतों में से ही किया जाता है इससे स्पष्ट है कि बहुत यहां मुक्त जीव ही लिये जा सकते हैं अन्य नहीं॥

जो लोग इन मंत्रों के अर्थ पुनर्जन्म के करके अमृतों के अर्थ देवताओं के करते हैं उनके मत में भी देव मुक्त पुरुष ही हो सकते हैं।

यदि कहा जाय कि देव विद्वानों का नाम है तो यहां यह स्मरण रखने योग्य है कि यहां विद्वानों का कोई प्रसङ्ग नहीं, प्रसङ्ग यहां मुक्त पुरुषों का ही है। युक्ति इसमें यह है कि बहुत से जीवों को अमृतभाव प्राप्त हो। तभी 'अमृतानाम्' यह बहुवचन कहा जा सक्ता है। यदि उत्पत्तिनाश न होने के अभिप्राय से यहां अमृत शब्द का प्रयोग होता तो "न मृत्युरासीदमृतंन" इस मन्त्र में मृत्यु के मुकाबिले में अमृत शब्द का प्रयोग न होता। मृत्यु के प्रतिपक्षी अमृत शब्द का प्रयोग इस बात को सिद्ध

करता है कि जिसपुरुष ने अमृत पद का लाभ किया है उसी का नाम यहां अमृत है अन्य का नहीं इससे स्पष्ट रीति से मुक्तपुरुषों का ग्रहण पाया जाता है।

जो लोग उक्त मन्त्रों के यह अर्थ करते हैं कि उक्त दोनों मन्त्र बद्ध जीवों की प्रार्थना का वर्णन करते हैं वे वेद के आशय से सर्वथा अनभिज्ञ हैं। क्योंकि बद्ध जीव की प्रार्थना पुनः माता पिता के बन्धन में पड़ने की कदापि नहीं हो सकती। क्योंकि इन मन्त्रों के अन्त में "पितरं च दृशेयं मातरं च" अर्थात् मैं पुनः माता पिता को देखूं यह कदापि नहीं हो सकता। क्योंकि माता पिता का देखना वही चाहता है जिसने देर से इस संसारचक्र के माता पिता को त्यागा हुआ है इस से स्पष्ट सिद्ध है कि यहां मुक्त जीव की प्रार्थना है बद्ध जीव की नहीं इसके विषय में "सयोवै तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति नास्याब्रह्मवित्कुले भवति"

इस प्रमाण से यह पाया जाता है कि ब्रह्मवेत्ता मुक्त पुरुष का भी कुल होता है उसके कुल में कोई अब्रह्मवित् नहीं होता, अथवा इसके अर्थ ये भी किये जा सकते हैं कि इस मुक्त पुरुष का जन्म "अब्रह्मवित्कुले=अब्रह्मविदां कुले न भवति" अर्थात् अब्रह्मवेत्ताओं के कुल में नहीं होता किन्तु ब्रह्मवेत्ताओं के ही कुल में होता है, इस से स्पष्टसिद्ध है कि मुक्त पुरुष का जन्म लोकोपकार के लिये फिर भी होता है इसी का नाम मुक्ति से पुनरावृत्ति है।

इतना ही नहीं "यं यं लोकं मनसा संविभाति विशुद्धसत्वः कामयते यांश्च कामान्। तं तं लोकं जयते तांश्च कामान्" मुक्त पुरुष जिस जिस लोक विशेष की कामना करता है उसी उसी लोक विशेष में जाकर उत्पन्न होता है इसी अभिप्राय से "ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृतात् परिमुच्यन्ति सर्वे" इस वाक्य में मुक्ति से पुनरावृत्ति का कथन किया है। जो यह कहा जाता है कि "त्र्यम्बकं

यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् उर्वारुकमिवबन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् " इस मन्त्र में अमृत रहने की प्रार्थना की गयी है इससे मुक्ति नित्य सिद्ध होती है ।

इसका उत्तर यह है कि यदि स्वभावसिद्ध मुक्ति से पुनरावृत्ति नहीं होती तो मुक्त रहने की प्रार्थना ही क्यों की जाती जिस प्रकार दुःखनिवृत्ति की प्रार्थना है तो दुःखप्राप्त था तब दुःखनिवृत्ति की प्रार्थना है इसी प्रकार मुक्ति से पुनरावृत्ति प्राप्त थी तभी उससे न छूटने की प्रार्थना की गयी ।

अन्य बात यह है कि प्रार्थना जिस वस्तु की की जाती है वह सम्पूर्ण ही पुरुष को ज्यों की त्यों प्राप्त हो यह नहीं कहा जा सकता क्योंकि जिन मन्त्रों में यह प्रार्थना है कि हे ईश्वर ! आप हमको सब ऐश्वर्य दें तो क्या जीव को कभी सब ऐश्वर्य प्राप्त हो सकता है ? यदि यह कहा जाय कि यहां उपचार है अर्थात् सब ऐश्वर्य से तात्पर्य बहुत ऐश्वर्य का है तो क्या "मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्" इस वाक्य में अधिक काल तक मुक्त से अविमुक्त होने के अर्थ नहीं लिये जा सकते ?

अस्तु । मुख्य प्रसङ्ग यह है कि अमृत पद वेद में बहुधा मुक्ति के लिये आता है और कहीं २ ब्रह्म स्वरूप के लिये भी आता है उक्त मन्त्र में अमृत पद ब्रह्म के स्वरूप को कथन करता है इसलिये कोई दोष नहीं क्योंकि अमृत पद के निर्णय के लिये विशेष नियम यह है कि जहां अमृत पद में एकवचन होता है वहां प्रायः अमृत शब्द ईश्वर के स्वरूप का बोधक होता है और जहां द्विवचन वा बहुवचन होता है वहां मुक्त पुरुषों का ग्रहण होता है । इस नियम का व्यभिचार केवल "नमृत्युरासीदमृतं न तर्हि" इसी वाक्य में पाया जाता है इसका कारण यह है कि यहां अमृत पद मृत्यु का प्रतिद्वन्द्वी है इसलिये यहां एकवचन भी मुक्ति को कहता है अन्यत्र कहीं नहीं, अन्यत्र सर्वत्रैव अमृत शब्द एकवचनान्त है, वेद में सर्वत्र ईश्वर के स्वरूप को कथन करता है, इसलिये "मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्" यहां ईश्वर के स्वरूप से मत दूर हो यह अर्थ है ॥२॥

स देवैः शोभते वृषा कविर्योनावधि प्रियः ।
वृत्रहा देववीतमः ॥३॥

सः । देवैः । शोभते । वृषा । कविः । योनौ । अधि । प्रियः ।
वृत्रऽहा । देवऽवीतमः ॥३॥

पदार्थः—सर्वजगज्जनकः स परमात्मा (देवैः) दिव्यशक्तिभिः (सं, शोभते) द्योततेतराम् (वृषा) सर्वकामदः, (कविः) सर्वज्ञः, (योनौ, अधि) प्रकृतिरूपायां योनौ अधिष्ठानरूपेण विराजमानः, (प्रियः) सर्वप्रियः, (वृत्रहा) अज्ञानध्वंसकः (देववीतमः) विदुषां हृदये प्रकाशरूपेण विराजमानश्चास्ति ।

पदार्थ—सर्व जगत् का उत्पादक वह परमात्मा (देवैः) दिव्यशक्तियों के द्वारा (सं, शोभते) शोभा को प्राप्त हो रहा है (वृषा) सब कामनाओं का देने वाला है (कविः) सर्वज्ञ (योनौ, अधि) प्रकृतिरूप योनि में अधिष्ठित अर्थात् अधिष्ठानरूप से जो विराजमान है (प्रियः) वह सर्वप्रिय और (वृत्रहा) अज्ञान का नाश करने वाला (देववीतमः) विद्वानों के हृदय में प्रकाशरूप से विराजमान है ।

भावार्थ—यद्यपि परमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण है तथापि उसको साक्षात् करने वाले विद्वानों के हृदय में विशेषरूप से विराजमान है इसी अभिप्राय से गीता में कहा है कि "नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः" माया के सम्बन्ध के कारण परमात्मा सबको अपने २ हृदय में प्रतीत नहीं होता वरन् सबके हृदय में आकाशवत् परिपूर्णरूप से विराजमान है ॥३॥

मुक्तपुरुषाः तस्य ब्रह्मणः स्वरूपं निवसन्तीत्युच्यते:-

अब इस बात का कथन करते हैं कि मुक्त पुरुष उस ब्रह्म के स्वरूप में निवास करते हैं:—

विश्वा रूपाण्याविशन्पुनानो याति हर्यतः ।
यत्रामृतास आसते ॥४॥

विश्वा । रूपाणि । आऽविशन् । पुनानः । याति । हर्यतः ।
यत्र । अमृतासः । आसते ॥४॥

पदार्थः—(पुनानः) सर्वान् पवित्रयन् परमात्मा (विश्वा, रूपाणि) सर्वाणि रूपाणि (आविशन्) प्रविशन् (हर्यतः) स्वसौन्दर्येण (याति) सर्वं प्राप्तो भवति (यत्र) यस्मिन् ब्रह्मणि (अमृतासः) मुक्तिपदं भुञ्जाना मुक्ताः पुरुषाः (आसते) निवसन्ति तद् ब्रह्म सर्वं पुनाति ।

पदार्थ—(पुनानः) सबको पवित्र करता हुआ (विश्वा, रूपाणि) सब रूपों में (आविशन्) प्रवेश करता हुआ (हर्यतः) अपनी कमनीयता से (याति) सर्वत्र प्राप्त है (यत्र) जिस ब्रह्मरूप में (अमृतासः) मुक्ति पद को भोगते हुये (आसते) मुक्त पुरुष निवास करते हैं वह ब्रह्म सबको पवित्र करने वाला है ।

भावार्थ—परमात्मा प्रत्येक वस्तु के भीतर व्यापक है अर्थात् वह प्रत्येक रूप में प्रविष्ट है, इसी तात्पर्य से उपनिषद् में कथन किया है "रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव" प्रत्येकरूप में परमात्मा तद्रूप हो रहा है अर्थात् उसी की सत्ता से उस रूप की मनोहरता है इस प्रकार का जो सर्वाधिकरण परमात्मा है उसी में मुक्त पुरुष जाकर निवास करते हैं ॥४॥

अरुषो जनयन्गिरः सोमः पवत आयुषक् ।
इन्द्रं गच्छन्कविक्रतुः ॥५॥

अरुषः । जनयन् । गिरः । सोमः । पवते । आयुषक् ।
इन्द्रं । गच्छन् । कविऽक्रतुः ॥५॥

पदार्थः—(अरुषः) प्रकाशमानः परमात्मा (गिरः) वेदरूपा गिरः (जनयन्) उत्पादयन् (सोमः) संसारस्य स्रष्टा (इन्द्रं) जीवात्मानं (आयुषक्) यः कर्मयोगे संसक्तस्तम् (गच्छन्) प्राप्नुवन् (पवते) पवित्रयति सच परमात्मा (कविक्रतुः) सर्वज्ञः ।

पदार्थ—(अरुषः) प्रकाशमान परमात्मा (गिरः) वेदरूप वाणियों को (जनयन्) उत्पन्न करने वाला (सोमः) संसार के उत्पन्न करने वाला (इन्द्रं) जीवात्मा को (आयुषक्) जो कि कर्मयोग में लगा हुआ है (गच्छन्) प्राप्त हो कर (पवते) पवित्र करता है (कविक्रतुः) वह परमात्मा सर्वज्ञ है ।

भावार्थ—शुभाशुभ कर्मों के द्वारा परमात्मा प्रत्येक जीव को प्राप्त है । अर्थात् उनको शुभाशुभ कर्मों के फल देता है । और वही परमात्मा वेदरूप वाणियों का प्रकाश करके पुरुषों को शुभाशुभ मार्ग दर्शा कर शुभ कर्मों की ओर प्रेरणा करता है ॥५॥

आ पवस्व मदिन्तम पवित्रं धारया कवे ।
अर्कस्य योनिमासदम् ॥६॥१५॥

आ । पवस्व । मदिन्ऽतम । पवित्रं । धारया । कवे ।
अर्कस्य । योनिं । आऽसदं ॥६॥

पदार्थः—(अर्कस्य) ज्ञानरूपप्रकाशस्य (योनिं) स्थानम् (आसदम्) प्राप्तुम् (मदिन्तम) हे आनन्दस्वरूप भगवन्, (धारया) आनन्दवृष्ट्या (पवित्र) मां पुनीहि। (कवे) हे सर्वद्रष्टः, त्वम् (आपवस्व) सर्वतोमां पवित्रय ।

पदार्थ—(अर्कस्य) ज्ञानरूप प्रकाश के (योनिं) स्थान की (आसदम्) प्राप्ति के लिये (मादिन्तम) हे आनन्दस्वरूप भगवन, आप (धारया) आनन्द की वृष्टि द्वारा (पवित्रं) हमको पवित्र करें (कवे) हे सर्वद्रष्टः, (आपवस्व) सब ओर से आप हम को पवित्र करें।

भावार्थ—जो लोग शुद्ध हृदय से परमात्मा की उपासना करते हैं उन के हृदय में ज्ञान का प्रकाश अवश्यमेव होता है वे लोग सूर्य्य के समान प्रकाशमान होते हैं ॥६॥

इति पञ्चविंशतितमं सूक्तं पञ्चदशो वर्गश्च समाप्तः ।

यह २५ वां सूक्त और १५ वां वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ षडृचस्य षड्विंशतितमस्य सूक्तस्य—

१–६ इध्मवाहो दार्ढच्युत ऋषिः॥ पवमानः सोमो देवता। छन्दः-१,३–५ निचृद्गायत्री । २,६ गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अथेश्वरः केन प्रकारेण बुद्धिविषयो भवतीत्युच्यते—

ईश्वर किस प्रकार बुद्धिविषय होता है अब इस बात का उपदेश करते हैं:—

तमंमृक्षन्त वाजिनमुपस्थे अदितेरधि ।
विप्रासो अण्व्या धिया ॥१॥

तं । अमृक्षन्त । वाजिनं । उपऽस्थे । अदितेः । अधि ।
विप्रासः । अण्व्या । धिया ॥१॥

पदार्थ—(विप्रासः) धारणाध्यानादिसाधनैः शुद्धबुद्धयो-जनाः (अण्व्या) सूक्ष्मया (धिया) बुद्ध्या (अदितेः, अधि) सत्यादिज्योतिषामधिकरणरूपं (तं, वाजिनम्) तं बलस्वरूपं परमात्मानं (उपस्थे) स्वीयान्तःकरणे (अमृक्षन्त) शुद्धज्ञान-विषयीकुर्वन्ति ।

पदार्थ—(विप्रासः) धारणाध्यानादि साधनों से शुद्ध की हुई बुद्धि वाले लोग (अण्व्या) सूक्ष्म (धिया) बुद्धिद्वारा (अदितेरधि) सत्यादिक ज्योतियों के अधिकरण स्वरूप (तं, वाजिनं) उस बलस्वरूप परमात्मा को (उपस्थे) अपने अन्तःकरण में (अमृक्षन्त) शुद्ध ज्ञान का विषय करते हैं ।

भावार्थ—जिन लोगो ने निर्विकल्प, सविकल्प समाधियों द्वारा अपने चित्तवृत्ति को स्थिर करके बुद्धि को परमात्मविषयिणी बनाया है, वे लोग सूक्ष्म से सूक्ष्म परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं। अर्थात् उसको आत्मसुख के समान अनुभव का विषय बना लेते हैं । तात्पर्य्य यह है कि जिस प्रकार अपने आनन्दादि गुण प्रतीत होते हैं इसी प्रकार योगी पुरुषों को परमात्मा के आनन्दादि गुणों की प्रतीती होती है ॥१॥

अथोक्तस्वरूपस्य साक्षात्काराय प्रकारान्तरं कथ्यते:—

अब उक्त स्वरूप के साक्षात्कार का अन्य प्रकार कथन करते हैं:—

तं गावो अभ्यनूषत सहस्रधारमक्षितम् ।
इन्दुं धर्तारमा दिवः ॥२॥

तं । गावः । अभि । अनूषत । सहस्रऽधारं । अक्षितं ।
इन्दुं । धर्तारं । आ । दिवः ॥२॥

पदार्थः—(गावः) इन्द्रियाणि (तम्) तं परमात्मानम् (अभ्यनूषत) स्वविषयं कुर्वन्ति यः परमात्मा (सहस्रधारम्) विविधवस्तूनां धर्ता, (अक्षितम्) अच्युतः, (इन्दुम्) परमैश्वर्यसम्पन्नः (दिवः, आधर्तारम्) द्युलोकादीनां धारकश्चास्ति ॥

पदार्थ—(गावः) "गच्छन्ति विषयानिति गाव इन्द्रियाणि" इन्द्रियें (तम्) उस परमात्मा को (अभ्यनूषत) अपना विषय बनाती हैं, जो परमात्मा (सहस्रधारम्) अनेक वस्तुओं का धारण करने वाला, (अक्षितम्) अच्युत, (इन्दुम्) परमैश्वर्यसम्पन्न (दिवः, आधर्त्तारम्) तथा द्युलोक पर्यन्त लोकों का धारण करने वाला है ।

भावार्थ—जो परमात्मा द्युभ्वादि लोकों का आधार है और जिस में अनन्त प्रकार की वस्तुएं निवास करती हैं वह शुद्ध इन्द्रियों द्वारा साक्षात्कार किया जाता है ॥२॥

तं वेधां मेधयाह्यन्पवमानमधि द्यवि ।
धर्णसिं भूरिधायसम् ॥३॥

तं । वेधां । मेधया । अह्यन् । पवमानं । अधि । द्यवि ।
धर्णसिं । भूरिऽधायसम् ॥३॥

पदार्थः—(तं, वेधाम्) तं स्रष्टारं परमात्मानं (मेधया, अह्यन्) विद्वांसः स्वबुद्धिविषयीकुर्वन्ति (पवमानं) यः सर्वपविता, (अधि, द्यवि) द्युलोकमधिष्ठानरूपेण अधिष्ठाता, (धर्णसिं) सर्वाधारः (भूरिधायसम्) अनेकवस्तूनामुत्पादकश्चास्ति ।

पदार्थ—(तम्, वेधां) उस सृष्टिकर्त्ता परमात्मा को (मेधया, अह्यन्) विद्वान् लोग अपनी बुद्धि का विषय बनाते हैं जो (पवमानम्) सब को पवित्र करने वाला है और (अधि, द्यवि) जो द्युलोक में अधिष्ठातारूप से स्थित है (धर्णसिम्) सबको धारण करने वाला तथा (भूरिधायसम्) अनेक वस्तुओं का रचयिता है ।

भावार्थ—उक्त परमात्मा जो सब लोक लोकान्तरों का आधार है उसको योगादि साधनों द्वारा संस्कृत बुद्धि से योगी जन विषय करते हैं । इस मन्त्र में जो परमात्मा को वेधा अर्थात् "विधति लोकान् विदधातीति वा वेधाः" विधाता रूप से वर्णन किया है इसका तात्पर्य यह है कि परमात्मा सब वस्तुओं का निर्माण कर्त्ता है इसी अभिप्राय से " सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् " ऋ. सू. १९ में यह कथन किया है कि सूर्य चन्द्रमा आदि ज्योतिर्मय पदार्थों का निर्माण एकमात्र परमात्मा ने ही किया है । सूर्य चन्द्रमा यहाँ उपलक्षण हैं वस्तुतः सब ब्रह्माण्डों का निर्माता एक परमात्मा ही है कोई अन्य नहीं ॥३॥

तमह्यन्भुरिजोर्धिया संवसानं विवस्वतः ।
पतिं वाचो अदाभ्यम् ॥४॥

तं । अह्यन् । भुरिजोः । धिया । संऽवसानं । विवस्वतः । पतिं । वाचः । अदाभ्यं ॥४॥

पदार्थः—(वाचः, पतिं) ऋग्वेदादिवाचां पतिं, (अदाभ्यं) निष्कपटं सेवनीयं, (संवसानं) व्यापकरूपेण सम्पूर्णब्रह्माण्डे वर्तमानं (तं) तं परमात्मानं (विवस्वतः) तस्य प्रकाशरूपस्य (भुरिजोः) शक्तीश्च विद्वांसः (धिया) स्वबुद्ध्या (अह्नन्) पश्यन्ति।

पदार्थ—(वाचः, पतिम्) जो ऋग्वेदादि वाणियों का पति परमात्मा है और (अदाभ्यम्) जो निष्कपट सेवन करने योग्य है (संवसानम्) सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों में व्यापक है (तम्) उस परमात्मा को तथा (विवस्वतः) उस प्रकाशस्वरूप की (भुरिजोः) शक्तियों को विद्वान् लोग (धिया) अपनी बुद्धि से (अह्नन्) साक्षात्कार करते हैं।

भावार्थ—जिस प्रकाशस्वरूप परमात्मा से ऋगादि चारों वेद उत्पन्न होते हैं, अर्थात् ऋगादि वेद जिसकी वाणीरूप है वह परमात्मा योगीजनों के ध्यानगोचर होकर उनको आनन्द का प्रदान करता है ॥४॥

तं सानावधि जामयो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः।
हर्यतं भूरिचक्षसम् ॥५॥

तं। सानौ। अधि। जामयः। हरिं। हिन्वन्ति। अद्रिऽभिः।
हर्यतं। भूरिऽचक्षसम् ॥५॥

पदार्थः—(जामयः) इन्द्रियवृत्तयः (तं) तस्य परमात्मनः (सानौ, अधि) उन्नतोन्नतप्रदेशे (अद्रिभिः) स्वशक्तिभिः (हिन्वन्ति) प्रेरयन्ति यः (हरिं) भक्तदुःखविहन्ता, (हर्यतम्) प्रलयादिपरिणामेषु हेतुभूतः (भूरिचक्षसम्) सर्वज्ञश्चास्ति।

पदार्थ—(जामयः) इन्द्रियवृत्तियें (तं) उस परमात्मा को (सानौ, अधि) उच्च से उच्च प्रदेश में (अद्रिभिः) अपनी शक्तियों से (हिन्वन्ति) प्रेरणा करती हैं जो कि (हरिम्) भक्तों के दुःख को हरने वाला और (हर्यतम्) प्रलयादि परिणामों में हेतुभूत तथा (भूरिचक्षसम्) सर्वज्ञ है ॥

भावार्थ—उक्त परमात्मा ही जगत् के जन्मादिकों का हेतु है अर्थात् उसी से जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय होता है। वह परमात्मा हिमालय के उच्च से उच्च प्रदेशों में और सागर के गम्भीर से गम्भीर स्थानों में विराजमान है। उस सर्वज्ञ का साक्षात्कार चित्तवृत्तिनिरोधरूपी योगद्वारा ही हो सकता है अन्यथा नहीं ॥५॥

तं त्वा हिन्वन्ति वेधसः पवमान गिरावृधम् ।
इन्दविन्द्राय मत्सरम् ॥६॥१६॥

तं । त्वा । हिन्वन्ति । वेधसः । पवमान । गिराऽवृधं ।
इन्दो इति । इन्द्राय । मत्सरम् ॥६॥१६॥

पदार्थः—(पवमान) हे सर्वस्य पवितः परमात्मन्, (तम्, गिरावृधम्) पूर्वोक्तगुणसम्पन्नं वेदवाग्भिः प्रकाशमानं (त्वा) भवन्तं (वेधसः) विद्वांसः (हिन्वन्ति) साक्षात्कुर्वन्ति । (इन्दो) हे परमैश्वर्य्यसम्पन्न भगवन्, यो भवान् (इन्द्राय) अज्ञानिजीवेभ्यः (मत्सरम्) अत्यन्तगूढोऽस्ति ॥

पदार्थ—(पवमान) हे सब को पवित्र करने वाले परमात्मन्! (तम्, गिरावृधम्) उस पूर्वोक्तगुणसम्पन्न और वेदवाणियों से प्रकाशमान (त्वा) आप को (वेधसः) विद्वान् लोग (हिन्वन्ति) साक्षात्कार

करते हैं । (इन्दो) हे परमैश्वर्य्यसम्पन्न भगवन् ! आप (इन्द्राय, मत्सरम्) अज्ञानी जीव के लिये अत्यन्त गूढ़ हो ।

भावार्थ—परमात्मा के साक्षात्कार करने के लिये मनुष्य को संयमी होना आवश्यक है । जो पुरुष संयमी नहीं होता उसको परमात्मा का साक्षात्कार कदापि नहीं होता । संयम मन, वाणी तथा शरीर तीनों का कहलाता है । मन के संयम का नाम शम और वाणी के संयम का नाम वाक्संयम, और इन्द्रियों के संयम का नाम दम है । इस प्रकार जो पुरुष अपनी इन्द्रियों को संयम में रखता है और अपने मन को संयम में रखता है तथा व्यर्थ बोलता नहीं किन्तु वाणी को संयम में रखता है, वह पुरुष संयमी तथा दमी कहलाता है । इसका वर्णन शतपथ ब्राह्मण में विस्तार पूर्वक है । वहां यह लिखा है कि देव और असुर में यही भेद है कि देव दमी अर्थात् इन्द्रियों को दमन करने वाले मनुष्य-वर्ग का नाम है और इन्द्रियारामी विषयपरायण लोगों का नाम असुर है । उक्त मन्त्र में परमात्मा ने यह उपदेश किया है कि हे मनुष्यो ! तुम इन्द्रियारामी और अज्ञानी मत बनो किन्तु तुम विद्वान् बन कर संयमी बनो यही मनुष्य जन्म का फल है ॥६॥

इति षड्विंशतितमं सूक्तं षोडशो वर्गश्च समाप्तः ।

यह छब्बीसवां सूक्त और सोलहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ षडृचस्य सप्तविंशतितमस्य सूक्तस्य ।

१–६ नृमेध ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः-१,६ निचृद्गायत्री । २-५ गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अथोक्तपरमात्मनो विविधशक्तयो वर्ण्यन्ते—

अब उक्त परमात्मा की नाना शक्तियों को वर्णन करते हैं—

एष कविरभिष्टुतः पवित्रे अधि तोशते ।
पुनानो घ्नन्नप स्रिधः ॥१॥

एषः । कविः । अभिऽस्तुतः । पवित्रे । अधि । तोशते ।
पुनानः । घ्नन् । अप । स्रिधः ॥१॥

पदार्थः—(एषः) अयं परमात्मा (कविः) सर्वज्ञः, (अभिष्टुतः) सर्वैः स्तुत्यः, (पवित्रे, अधि) अन्तःकरणमध्ये (तोशते) प्राप्तो भवति, (स्रिधः) दुराचारान् शत्रून् (अपघ्नन्) नाशयन् (पुनानः) सत्कर्मिणः पवित्रयति ।

पदार्थ—(एषः) यह परमात्मा (कविः) सर्वज्ञ है (अभिष्टुतः) सब को स्तुति के योग्य है (पवित्रे, अधि) अन्तःकरण के मध्य में (तोशते) प्राप्त होता है (स्रिधः) दुराचारी शत्रुओं को (अप, घ्नन्) नाश करता हुआ (पुनानः) सत्कर्मियों को पवित्र करता है ।

भावार्थ—परमात्मा दुष्टों का दमन करके सदाचारियों को उन्नतिशील बनाता है । उसके पाने के लिये अपने अन्तःकरण को पवित्र बनाना चाहिये । जो लोग अपने अन्तःकरण को पवित्र नहीं बनाते वे उस को कदापि उपलब्ध नहीं कर सकते ॥१॥

एष इन्द्राय वायवे स्वर्जित्परि षिच्यते ।
पवित्रे दक्षसाधनः ॥२॥

एषः । इन्द्राय । वायवे । स्वःऽजित् । परि । सिच्यते ।
पवित्रे । दक्षऽसाधनः ॥२॥

पदार्थः—(एषः) स उक्तः परमात्मा (वायवे, इन्द्राय) कर्मयोगिने सुलभः, (स्वर्जित, परिषिच्यते) विजितसुखास्वादैः पुरुषैः सत्क्रियते (पवित्रे) पवित्रान्तःकरणे (दक्षसाधनः) सुनीतिं ददाति च ।

पदार्थ—(एषः) वह उक्त परमात्मा (वायवे, इन्द्राय) कर्मयोगी के लिये सुलभ होता है (स्वर्जित्, परिषिच्यते) जिन लोगों ने सुख को जीत लिया है उन लोगों से सत्कृत होता है और (पवित्रे) पवित्र अन्तःकरण में (दक्षसाधनः) सुनीति का देने वाला है ।

भावार्थ—जो लोग परमात्मा पर दृढ़ विश्वास रखते हैं उनको परमात्मा सुनीति का दान देता है और वह परमात्मा जिन लोगों ने विषयजन्य सुख को जीत लिया है उन्हीं की चित्तवृत्तियों का विषय होता है ।

वा यों कहो कि कर्मयोगी लोग अपने उग्र कर्मों द्वारा उसको उपलब्ध करके उसके भावों को प्राप्त होते हैं । जो लोग आलसी बन कर अपने जन्म को व्यर्थ व्यतीत करते हैं उनका उद्धार कदापि नहीं होता ॥२॥

एष नृभिर्वि नीयते दिवो मूर्धा वृषा सुतः ।
सोमो वनेषु विश्ववित् ॥३॥

एषः । नृऽभिः । वि । नीयते । दिवः । मूर्धा । वृषा । सुतः ।
सोमः । वनेषु । विश्वऽवित् ॥३॥

पदार्थः—(एषः) अयं परमात्मा (वनेषु, सोमः) प्रार्थनासु सौम्यः, (दिवः, मूर्धा) लोकस्य मस्तकरूपः, (वृषा) सर्वकामदः, (सुतः) स्वयंसिद्धः (विश्ववित्) सर्वज्ञश्च एवंभूतः परमात्मा (नृभिः, विनीयते) मनुष्यैरुपास्यो भवति ।

पदार्थ—(एषः) यह परमात्मा (वनेषु, सोमः) प्रार्थनाओं में सौम्यस्वभाव वाला है (दिवः, मूर्धा) और द्युलोक का मूर्धारूप है (वृषा) सब कामनाओं को देने वाला है (सुतः) स्वयंसिद्ध है (विश्ववित्) सर्वज्ञ है एवं भूत परमात्मा (नृभिः, विनीयते) मनुष्यों का उपास्य देव है ।

भावार्थ—ईश्वर की आज्ञा को पालन करने वाले नम्र पुरुषों के लिये परमात्मा सौम्य स्वभाव है और जो उद्दण्ड अनाज्ञाकारी हैं उन के लिये परमात्मा उग्ररूप है । उक्त परमात्मा से सदैव अपने कल्याण की प्रार्थना करनी चाहिये ॥३॥

एष गव्युरचिक्रदत्पवमानो हिरण्ययुः ।
इन्दुः सत्राजिदस्तृतः ॥४॥

एषः । गव्युः । अचिक्रदत् । पवमानः । हिरण्यऽयुः । इन्दुः । सत्राऽजित् । अस्तृतः ॥४॥

पदार्थः—(अस्तृतः, एषः) अयमुक्तोऽविनाशी परमात्मा (सत्राजित्) सर्वविधशत्रूणां विजयं कृत्वा सदाचारिभ्यो धनं ददाति किंच (पवमानः) पुनानः (अचिक्रदत्) निर्भयतामुपदिशति स एव परमात्मा (गव्युः) भूम्यादि धनं वितरति (इन्दुः) प्रकाशरूपश्चास्ति ।

पदार्थ—(अस्तृतः, एषः) यह उक्त अविनाशी परमात्मा (सत्राजित्) सब प्रकार के शत्रुओं को जीत कर सदाचारियों को (हिरण्ययुः) धन देता है और (पवमानः) पवित्र करता हुआ (अचिक्रदत्) निर्भयता का उपदेश करता है और वही परमात्मा (गव्युः) भूम्यादि धनों का दाता है (इन्दुः) प्रकाशस्वरूप है ॥४॥

भावार्थ—परमात्मा जिन लोगों पर प्रसन्न होता है उनको भूम्यादि धनों का स्वामी बनाता है और उनको हिरण्यादि ऐश्वर्यों का स्वामी बना कर उनसे शत्रुओं को परास्त कराता है ॥४॥

एष सूर्येण हासते पवमानो अधि द्यवि ।
पवित्रे मत्सरो मदः ॥५॥

एषः । सूर्येण । हासते । पवमानः । अधि । द्यवि । पवित्रे । मत्सरः । मदः ॥५॥

पदार्थः—(एषः) अयं परमात्मा (सूर्येण, हासते) सूर्यमपि स्वतेजसा परिभवति, (पवमानः) सर्वं पवित्रयति, (अधि, द्यवि) द्युलोकादिसमस्तलोकेषु विराजते (पवित्रे-मत्सरः, मदः) विशुद्धान्तःकरणान्मनुष्यान् स्वानन्देनानन्दयति च ।

पदार्थ—(एषः) यह परमात्मा (सूर्येण, हासते) सूर्य को भी अपने तेज से तिरस्कृत करता है (पवमानः) सबको पवित्र करने वाला है (अधि, द्यवि) और द्युलोकादि सम्पूर्ण लोकों में विराजमान है (पवित्रे, मत्सरः, मदः) पवित्र अन्तःकरण वाले पुरुषों को, अपने आनन्द से आनन्दित करता है ।

भावार्थ—परमात्मा की सत्ता से ही सूर्य चन्द्रमाआदि प्रकाशित होते हैं और वही परमात्मा सब लोकान्तरों का अधिष्ठाता है; उसी में चित्तवृत्ति लगाने से पुरुष आनन्दित होता है अन्यथा नहीं ॥५॥

एष शुष्म्यसिष्यदद्न्तरिक्षे वृषा हरिः ।
पुनान इन्दुरिन्द्रमा ॥६॥१७॥

एषः । शुष्मी । असिस्यदत् । अन्तरिक्षे । वृषा । हरिः ।
पुनानः । इन्दुः । इन्द्रं । आ ॥६॥

पदार्थः—(एषः) अयं (शुष्मी) बलवान् परमात्मा (अन्तरिक्षे, असिष्यदत) सर्वमन्तरिक्षं व्याप्नोति (वृषा) सर्वकामप्रदः, (हरिः) दुखस्य हर्ता, (पुनानः) सर्वस्य पवित्ता; (इन्दुः) सर्वत्र प्रकाशमानः (इन्द्रम, आ) कर्मयोगिपुरुषान् प्राप्नोति ।

पदार्थ—(एषः) यह (शुष्मी) बलवान परमात्मा (अन्तरिक्षे, असिष्यदत्) अन्तरिक्ष में सर्वत्र व्याप्त हो रहा है (वृषा) सब कामनाओं का देने वाला और (हरिः) दुख का हरने वाला; (पुनानः) सब को पवित्र करने वाला; (इन्दुः) सर्वत्र प्रकाशमान; (इन्द्रम्, आ) कर्मयोगी पुरुष को प्राप्त होता है ॥६॥

भावार्थ—सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म जो सर्व व्यापक और सब कामनाओं का देने वाला है वह अपने निवास का स्थान एकमात्र कर्मयोगी पुरुषों को समझता है । यद्यपि ब्रह्म सर्वव्यापक है तथापि विशेषाभिव्यक्ति उसकी कर्मयोगियों के हृदय में ही होती है अन्यत्र नहीं । तात्पर्य यह है कि कर्मयोगी पुरुष अपने कर्मों द्वारा उसकी आज्ञाओं को पालन करके दिखला देता है अन्य लोग आलस्य में पड़े पड़े ही समय को बिता देते हैं इस लिये इस मन्त्र में कर्मयोगी पुरुष को ज्ञान का मुख्यपात्र निरूपण किया गया है ॥६॥

इति सप्तविंशतितमं सूक्तं सप्तदशोवर्गश्च समाप्तः ।

यह २७ वां सूक्त और १७ वां वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ षड्टचस्याष्टाविंशस्य सूक्तस्यः—

१–६ प्रियमेध ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—
१,४,५ गायत्री। २,३,६ विराड् गायत्री ॥
षड्जः स्वरः ॥

अथेश्वरः अज्ञानस्यनिवर्त्तकत्वरूपेण वर्ण्यते—

अथ ईश्वर का अज्ञाननिवर्त्तकत्वरूप से वर्णन करते हैं—

एषः वाजी हितो नृभिर्विश्ववविन्मनसस्पतिः।
अव्यो वारं वि धावति ॥१॥

एषः। वाजी। हितः। नृऽभिः। विश्वऽवित्। मनसः। पतिः। अव्यः। वारं। वि। धावति ॥१॥

पदार्थः—(एषः) अयं परमात्मा (वाजी) प्रबलः, (नृभिः, हितः) जिज्ञासुभिः स्वहृदये स्थापितः, (विश्ववित्) सर्वज्ञः, (मनसः, पतिः) मनोऽधिपतिः (अव्यः) अविनाशी च (विधावति) स्वभक्तहृदयमीधवमीत।

पदार्थ—(एषः) यह परमात्मा (वाजी) बल वाला है और (नृभिः, हितः) जिज्ञासुओं करके अन्तः करण में धारण किया गया है (विश्ववित्) सर्वज्ञ है (मनसः, पतिः) मन का स्वामी है (अव्यः) अविनाशी है और (वारं, विधावति) अपने भक्त के हृदय में निवास करता है।

भावार्थ—इस मन्त्र में परमात्मा को मनसस्पति इस लिये कहा गया कि मन उसके सात्विक रूप सामार्थ्य से उत्पन्न हुआ है इस लिये

मन से ज्ञान उत्पन्न होता है । वा यों कहो कि मन का निरोध केवल उसी की कृपा से हो सकता है इस लिये मनसस्पति कहा है। तात्पर्य यह है कि आत्मिक बल बढ़ाने वाले पुरुषों को चाहिये कि सब ओर से अपने मन का निरोध करके अपने मन को उसी परमात्मा में लगायें ॥१॥

एष प॒वित्रे॑ अक्षर॒त्सोमो॑ दे॒वेभ्यः॑ सु॒तः ।
विश्वा॒ धामा॑न्यावि॒शन् ॥२॥

ए॒षः । प॒वित्रे॑ । अ॒क्ष॒र॒त् । सोमः॑ । दे॒वेभ्यः॑ । सु॒तः ।
विश्वा॑ । धामा॑नि । आ॒ऽवि॒शन् ॥२॥

पदार्थ—(एषः) अयं परमात्मा (सोमः) सौम्यस्वभावः (देवेभ्यः, सुतः) दैवसम्पत्तिमद्भ्यः प्रकाशमानः (विश्वा, धामानि, आविशन्) सर्वं स्थानं व्याप्नोति एवंभूतः परमात्मा (पवित्रे, अक्षरत्) जिज्ञासूनां पवित्रान्तःकरणे विराजते ।

पदार्थः—(एषः) यह परमात्मा (सोमः) सौम्य स्वभाव वाला (देवेभ्यः, सुतः) दैवी सम्पत्ति वालों के लिये प्रकाशमान है (विश्वा, धामानि, आविशन्) सम्पूर्ण स्थानों में व्याप्त है एवंभूत परमात्मा (पवित्रे, अक्षरत्) जिज्ञासुओं के पवित्र अन्तःकरण में विराजमान होता है ।

भावार्थ—"यस्मिन्सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद् विजानतः" यजुः विज्ञानी पुरुष के लिये सब भूत उसका निवास स्थान हैं । और इसी प्रकार-"य आत्मनि तिष्ठन् आत्मनोऽन्तरो यमात्मा न वेद यस्यात्मा शरीरम्" बृ० अन्तर्यामि ब्रा० इत्यादि वाक्यों में यह प्रतिपादन किया है कि जीवात्मा उसका शरीरस्थानी है अर्थात् जिस प्रकार

जीवात्मा अपने शरीर का प्रेरक है उसी प्रकार वह जीवात्मा का प्ररके है इस लिये मन्त्र में धामान्याविशन् का कथन किया है अर्थात् शरीर-रूपी धाम में वह विराजमान है ॥२॥

एष देवः शुभायतेऽधि योनावमर्त्यः ।
वृत्रहा देववीतमः ॥३॥

एषः । देवः । शुभायते । अधि । योनौ । अमर्त्यः ।
वृत्रऽहा । देवऽवीतमः ॥३॥

पदार्थः—(एषः, देवः) अयं परमात्मा (अधि, योनौ) प्रकृतौ (अमर्त्यः) अविनाशी सन् (शुभायते) प्रकाशते (वृत्रहा) अज्ञाननाशकः (देववीतमः) सत्कर्मिभ्यो भृशं स्पृहयति च ।

पदार्थ—(एषः, देवः) यह परमात्मा (अधि, योनौ) प्रकृति में (अमर्त्यः) अविनाशी हो कर (शुभायते) प्रकाशित हो रहा है (वृत्रहा) और वह अज्ञान का नाशक है तथा (देववीतमः) सत्कर्मियों को अत्यन्त चाहने वाला है ।

भावार्थ—तात्पर्य यह है कि योनि नाम यहां कारण का है वह कारण प्रकृतिरूपी कारण है अर्थात् प्रकृति परिणामी नित्य है और ब्रह्म कूटस्थ नित्य है परिणामी नित्य उसको कहते हैं कि जो वस्तु अपने स्वरूप को बदले और नाशको न प्राप्त हो और कूटस्थनित्य उसको कहते हैं कि जो स्वरूप से नित्य हो अर्थात् जिसके स्वरूप में किसी प्रकार का विकार न आये । उक्त प्रकार से यहां परमात्मा को कूटस्थ-रूप से वर्णन किया है ॥३॥

एष वृषा कनिक्रदद्दशभिर्जामिभिर्यतः ।
अभि द्रोणानि धावति ॥४॥

एषः । वृषा । कनिक्रदत् । दशऽभिः । जामिऽभिः । यतः ।
अभि । द्रोणानि । धावति ॥४॥

पदार्थः—(एषः, वृषा) सर्वकामप्रदोऽयं परमात्मा (कनिक्रदत्) शब्दायमानः (दशभिः, जामिभिः, यतः) दशधास्थूलसूक्ष्मभूतैस्थिरः (अभि, द्रोणानि, धावति) कार्य्यमात्रं प्राप्तो भवति ।

पदार्थ—(एषः, वृषा) यह सर्वकामप्रद परमात्मा (कनिक्रदत्) शब्दायमान और (दशभिः, जामिभिः, यतः) दश स्थूल भूत और सूक्ष्म भूतों द्वारा स्थिर है (अभि, द्रोणानि, धावति) कार्यमात्र में प्राप्त है ।

भावार्थ—तात्पर्य यह है कि परमात्मा दश सूक्ष्म भूत और दश स्थूल भूतों को व्याप्त करके स्थिर है इसी लिये 'सभूमिं सर्वतः स्पृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्" यह कथन किया है कि वह कार्यमात्र को अपने में व्याप्त करके दश प्रकार के भूतों को भी अतिक्रमण करके विराजमान है ॥४॥

एष सूर्यमरोचयत्पवमानो विचर्षणिः ।
विश्वा धामानि विश्ववित् ॥५॥

एषः । सूर्यम् । अरोचयत् । पवमानः । विऽचर्षणिः । विश्वा ।
धामानि । विश्वऽवित् ॥५॥

पदार्थः—(एषः) अयं परमात्मा (सूर्यम्, अरोचयत्) सूर्यमपि प्रकाशयति, (पवमानः) सर्वं पवित्रयति, (विचर्षणिः)

सर्वद्रष्टास्ति, (विश्वा, धामानि) सर्वस्थानेषु विराजते (विश्ववित्) सर्वज्ञश्चास्ति ।

पदार्थ—(एषः) यह परमात्मा (सूर्यम्, अरोचयत्) सूर्य को भी प्रकाशित करता है (विचर्षणिः) सर्वद्रष्टा है (विश्वा, धामानि) सब स्थानों में विराजमान है (विश्ववित्) सर्वज्ञ है ।

भावार्थ—इस मन्त्र में परमात्मा को सूर्य का भी प्रकाशक कथन किया है । तात्पर्य यह है कि यह जड़ सूर्य उसकी सत्ता से प्रकाशित होता है जो लोग गायत्री आदि मन्त्रों में इस जड़ सूर्य को उपास्य बतलाया करते हैं उनको 'सूर्यमरोचयत्' इस वाक्य से यह शिक्षा लेनी चाहिये कि यदि वेद का तात्पर्य जड़ सूर्य को उपास्य देव कथन करने का होता तो इस जड़ सूर्य को उस से प्रकाश पाकर प्रकाशित होना न कथन किया जाता और न "सूर्याचन्द्रमसौधाता" इत्यादि वाक्यों से इस जड़ सूर्यादि का निर्माता कथन किया जाता ॥५॥

एष शुष्म्यदाभ्यः सोमः पुनानो अर्षति ।
देवावीरघशंसहा ॥६॥१८॥

एषः । शुष्मी । अदाभ्यः । सोमः । पुनानः । अर्षति ।
देवऽअवीः । अघशंसऽहा ॥६॥

पदार्थः—(एषः) अयं (शुष्मी) प्रबलः परमात्मा (अदाभ्यः) दम्भरहितः, (सोमः) सौम्यस्वभावः, (पुनानः) पविता, (अर्षति) सर्वं व्याप्नोति (देवावीः) देवरक्षकः (अघशंसहा) दुरात्मनां विनाशयिता चास्ति ॥

पदार्थ—(एषः) यह (शुष्मी) बल वाला परमात्मा (अदाभ्यः)

दम्भ से अप्राप्य है (सोमः) सौम्यस्वभाव वाला (पुनानः) पवित्रता कारक (सर्वत्र) व्याप्त हो रहा है (देवावीः) देवताओं का रक्षक तथा (अघशंसहा) अघशंसियों का नाश करने वाला है।

भावार्थ—जो लोग स्वयं पापी अथवा पापियों की प्रशंसा करते हैं उन को परमात्मा कदापि प्राप्त नहीं होता । परमात्मप्राप्ति के लिये सदैव सरलप्रकृति होनी चाहिये । तात्पर्य यह है कि परमात्म-प्राप्ति विना दैवी सम्पत्ति नहीं होती । दैवी सम्पत्ति के गुण ये हैं तेज, तेजस्वी होना, धृति-दृढ़ता, क्षमा, शौच, अद्रोह, अहिंसा, सत्य अक्रोध इत्यादि अनेक प्रकार के दैवी सम्पत्ति के गुण हैं । और जो लोग आसुरी सम्पत्ति वाले हैं उन में निम्नलिखित अवगुण होते हैं दम्भ, दर्प = गर्व, अभिमान, क्रोध, पारूष्य इत्यादि । इस मन्त्र में परमात्मा अदाभ्यः पद से इस बात का उपदेश करता है कि दम्भ दर्पादि छोड़ कर तुम लोग सन्मार्ग का ग्रहण करो ॥६॥

इति अष्टाविंशतितमं सूक्तमष्टादशो वर्गश्च समाप्तः ।

यह अट्ठाइसवां सूक्त और अठारहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ षडर्चस्यैकोनत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्यः—

१—६ नृमेध ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः-१ विराड् गायत्री । १-४,६ निचृद्गायत्री । ५ गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अथ परमात्मनाऽभ्युदयप्राप्तेः साधनानि वर्ण्यन्तेः—

अब परमात्मा अभ्युदयाप्ति के साधनों का वर्णन करते हैं:—

प्रास्य धारा अक्षरन्वृष्णः सुतस्यौजसा ।
देवाँ अनु प्रभूषतः ॥१॥

प्र । अस्य । धाराः । अक्षरन् । वृष्णः । सुतस्य ।
ओजसा । देवान् । अनु । प्रऽभूषतः ॥१॥

पदार्थः—(प्रभूषतः) प्रभुत्वमिच्छतः पुरुषस्येदं कर्तव्यं यत्सः (देवान्, अनु) विदुषामनुयायी स्यात् किं च (सुतस्य, ओजसा) नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्य परमात्मनस्तेजसा आत्मानं तेजस्विनं विदध्यात् (वृष्णः, अस्य, धाराः) सर्वकामप्रदस्य परमात्मनः कृपाधारा (अक्षरन्) आत्मानमभिषिञ्चत् ॥

पदार्थ—(प्रभूषतः) प्रभुत्व अर्थात् अभ्युदय को चाहने वाले पुरुष का कर्तव्य यह है कि वह (देवान्, अनु) विद्वानों का अनुयायी बने और (सुतस्य, ओजसा) नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त परमात्मा के तेज से अपने आप को तेजस्वी बनावे (वृष्णः, अस्य, धाराः) जो सर्वकामप्रद परमात्मा है उसकी धारा से (अक्षरन्) अपने को अभिषिक्त करे।

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करता है कि हे पुरुषो ! तुम विद्वानों की संगति के बिना कदापि अभ्युदय को नहीं प्राप्त हो सकते। जिस देश के लोग नाना प्रकार की विद्याओं के वेत्ता विद्वानों के अनुयायी बनते हैं उस देश का ऐश्वर्य देश देशान्तरों में फैल जाता है। इस लिये हे अभ्युदयाभिलाषी जनो, तुम भी विद्वानों के अनुयायी बनो ॥१॥

सप्तिं मृजन्ति वेधसो गृणन्तः कारवो गिरा ।
ज्योतिर्जज्ञानमुक्थ्यम् ॥२॥

सप्तिं । मृजन्ति । वेधसः । गृणन्तः । कारवः । गिरा ।
ज्योतिः । जज्ञानं । उक्थ्यं ॥२॥

पदार्थः—(वेधसः) कर्मयोगिनो ये (गृणन्तः) परमात्मपरायणाः (कारवः) कर्मकाण्डिनः (गिरा, जज्ञानं) वेदरूपगिरउत्पन्नां (सप्तिं) शक्तिं (मृजन्ति) वर्द्धयन्ति (ज्योतिः) सा ज्योतिर्मयी शक्तिः (उक्थ्यं) प्रशंसनीया ॥

पदार्थ—(वेधसः) कर्मयोगी लोग जो (गृणन्तः) परमात्मपरायण हैं (कारवः) वे कर्मकाण्डी लोग (गिरा, जज्ञानम्) वेदरूपी वाणी द्वारा उत्पन्न हुई (सप्तिम्) शक्ति को (मृजन्ति) बढ़ाते हैं (ज्योतिः) वह ज्योतिर्मयशक्ति (उक्थ्यम्) प्रशंसनीय है ॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करता है कि हे विद्वानो ! तुम अपनी शक्तियों को वेदरूपी वाणी द्वारा बढ़ाओ, जो लोग अपनी शक्तियों को ईश्वराज्ञा से बढ़ाते हैं उन का ऐश्वर्य विश्वव्यापी हो जाता है ॥ २ ॥

सुषहा सोम तानि ते पुनानाय प्रभूवसो ।
वर्धा समुद्रमुक्थ्यम् ॥३॥

सुऽसहा । सोम । तानि । ते । पुनानाय । प्रभुवसो इति प्रभुऽवसो । वर्ध । समुद्रं । उक्थ्यं ॥३॥

पदार्थः—(सोम) हे सौम्य (प्रभूवसो) अखिलधनरत्नादिप्रभो परमात्मन्, (उक्थ्यं, समुद्रं, वर्ध) भवान् आकाशे वर्द्धमानं प्रशंसनीयं यशः मदर्थं वर्धय (तानि, सुषहा, ते पुनानाय) अथ च सर्वस्य पावकं प्रवृद्धं भवदर्थं यशः मया ससुखं भोग्यं स्यात् ।

पदार्थ—(सोम) हे सौम्यस्वभाव वाले परमात्मन् ! (प्रभूवसो) हे अखिल धन रत्नादिकों के स्वामिन् ! (उक्थ्यम्, समुद्रम्, वर्ध) आप आकाश में फैलनेवाले प्रशंसनीय यश को मेरे लिये बढ़ाइये (तानि, सुषहा, ते, पुनानाय) और यह सबको पवित्र करने वाले आप का बढ़ा हुआ यश हमारे लिये सुख से भोग करने योग्य हो ।

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करता है कि जो लोग अपनी कीर्ति को नभोमण्डलव्यापिनी बनाना चाहें उनका कर्तव्य है कि वे परमात्मपरायण होकर कर्मयोगी बनें कर्मयोगी पुरुष के विना किसी पुरुष का ऐश्वर्य बढ़ नहीं सकता ॥३॥

विश्वा वसूनि सञ्जयन्पवस्व सोम धारया ।
इनु द्वेषांसि सध्र्यक् ॥४॥

विश्वा । वसूनि । संऽजयन् । पवस्व । सोम । धारया ।
इनु । द्वेषांसि । सध्र्यक् ॥४॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन्, (विश्वा, वसूनि, संजयन्) भवान् मदर्थं समस्तं धनाद्यैश्वर्यं वर्द्धयन् (धारया, पवस्व) आनन्दवृष्ट्या मां पुनीहि (इनु, द्वेषांसि, सध्र्यक्) सर्वप्रकारं द्वेषमपि निराकुरु ।

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! (विश्वा, वसूनि, संजयन्) आप मेरे लिये सम्पूर्ण धनादि ऐश्वर्य को बढ़ा कर (धारया, पवस्व) आनन्द की वृष्टि से हम को पवित्र करिये (इनु, द्वेषांसि, सध्र्यक्) और सब प्रकार के द्वेषों को भी साथ ही दूर करिये ।

भावार्थ—इस मन्त्र में इस बात का उपदेश किया है कि जो पुरुष अपना अभ्युदय चाहे वह रागद्वेषरूपी समुद्र की लहरों में कदापि

न पड़े । क्योंकि जो लोग रागद्वेष के प्रवाह में पड़ कर बह जाते हैं वे आत्मिक सामाजिक तथा शारीरिक तीनों प्रकार की उन्नतियों को नहीं कर सकते इस लिये पुरुष को चाहिये कि वह रागद्वेष के भावों से सर्वथा दूर रहे ॥४॥

रक्षा सु नो अररुषः स्वनात्समस्य कस्य चित् ।
निदो यत्र मुमुच्महे ॥५॥

रक्ष । सु । नः । अररुषः । स्वनात् । समस्य । कस्य । चित् । निदः । यत्र । मुमुच्महे ॥५॥

पदार्थः—हे परमात्मन्, (नः) अस्मान् (समस्य, कस्यचित्, अररुषः) सर्वेषामदातॄणां (स्वनात्, रक्ष) निन्दारूपशब्देभ्यो रक्ष (निदः) निन्दकेभ्यश्च रक्ष (यत्र, मुमुच्महे) यया रक्षया वयं निन्दादिभ्यो मुक्ताः स्याम ।

पदार्थ—हे परमात्मन्, (नः) हमारी (समस्य, कस्यचित्, अररुषः) सम्पूर्ण अदाता लोगों के (स्वनात्, रक्ष) निन्दारूप शब्द से रक्षा करिये (निदः) और निन्दक लोगों से भी बचाइये (यत्र, मुमुच्महे) जिस रक्षा से हम निन्दादिकों से मुक्त रहें ।

भावार्थ—अभ्युदयशाली मनुष्य का कर्तव्य यह होना चाहिये कि वह कदर्य कदापि न बने जो पुरुष कदर्य होता है वह सर्वदैव संसार में निन्दनीय रहता है इस लिये हे पुरुषो ! तुम कदर्यता, कायरता और प्रमत्तता इत्यादि भावों को छोड़ कर उदारता वीरता, और अप्रमत्तता इत्यादि भावों को धारण करो ॥५॥

एन्दो पार्थिवं रयिं दिव्यं पवस्व धारया ।
द्युमन्तं शुष्ममा भर ॥६॥१९॥

आ । इन्दो इति । पार्थिवम् । रयिम् । दिव्यम् । पवस्व । धारया । द्युऽमन्तम् । शुष्मम् । आ । भर ॥६॥

पदार्थः—(इन्दो) हे ऐश्वर्यशालिन् परमात्मन्, भवान् (दिव्यं, पार्थिवं, रयिं) अस्मान् दिव्यपार्थिवैश्वर्याणां (धारया, आपस्व) धारया पुनातु (द्युमन्तम्, शुष्मं) दिव्यं बलं च (आभर) देहि !

पदार्थ—(इन्दो) हे ऐश्वर्यशालिपरमात्मन् ! (दिव्यम्, पार्थिवम्, रयिम्) आप हमको द्युलोकसम्बन्धी तथा पृथिवीसम्बन्धी ऐश्वर्य की (धारया, आपवस्व) धारा से पवित्र करिये और (द्युमन्तम्, शुष्मम्) दिव्य बल को (आभर) दीजिये ॥

भावार्थ—जो पुरुष उक्त प्रकार के अवगुणों से रहित होते हैं उनको परमात्मा द्युलोक पृथिवी लोक के ऐश्वर्यों से भरपूर करता है ॥६॥

इत्येकोनत्रिंशत्तमं सूक्तमेकोनविंशो वर्गश्च समाप्तः ॥

यह २९वां सूक्त और १९वां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ षड्‌ऋचस्य त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य—

१—६ बिन्दुर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः-१,२, ६ गायत्री । ३-५ निचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अथ परमात्मा बलप्राप्तेरुपायमुपदिशति :—

अब परमात्मा बलप्राप्ति का उपदेश करते हैं:—

प्र धारा अस्य शुष्मिणो वृथा पवित्रे अक्षरन् ।
पुनानो वाचमिष्यति ॥१॥

प्र । धाराः । अस्य । शुष्मिणः । वृथा । पवित्रे । अक्षरन् ।
पुनानः । वाचं । इष्यति ॥१॥

पदार्थः—(प्रपुनानः) आत्मानं पवित्रयन् यः पुरुषः (वाचम्, इष्यति) वाग्रूपां सरस्वतीमिच्छति (अस्य, शुष्मिणः) अस्मै बलिने (पवित्रे) पात्रे (वृथा) मुधैव सोमरस्य (धाराः) धाराः पतन्ति ।

पदार्थ—(प्रपुनानः) अपने आप को पवित्र करता हुआ जो पुरुष (वाचम्, इष्यति) वाग्रूप सरस्वती की इच्छा करता है (अस्य, शुष्मिणः) उस बलिष्ठ के लिये (पवित्रे) पात्र में (वृथा) व्यर्थ ही इस सोमरस की (धाराः) धारायें (अक्षरन्) गिरती हैं ॥१॥

भावार्थ—जितने प्रकार के संसार में बल पाये जाते हैं उन सब में से वाणी का बल सब से बड़ा है इस अभिप्राय से परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे पुरुषो ! यदि तुम सर्वोपरि बल को उपलब्ध करना चाहते हो तो वाणीरूप बल की इच्छा करो जो पुरुष वाणीरूप बल को उपलब्ध करते हैं उनके लिये सोमादि रसों से बल लेने की आवश्यकता नहीं ॥१॥

इन्दुर्हियानः सोतृभिर्मृज्यमानः कनिक्रदत् ।
इयर्ति वग्नुमिन्द्रियम् ॥२॥

इन्दुः । हियानः । सोतृऽभिः । मृज्यमानः । कनिक्रदत् ।
इयर्ति । वग्नुं । इंद्रियं ॥२॥

पदार्थः—(इन्दुः) दीप्तिमान् शब्दः (सोतृभिः, मृज्यमानः, हियानः) यो वेदज्ञपुरुषैः शुद्धिविधानपूर्वकं प्रेरितः सः

(वग्नुम्, इन्द्रियं) श्रोत्रमिन्द्रियं यदा (कनिक्रदत्) गर्जन् (इयर्ति) अभ्युपैति तदानेकधा बलमुत्पादयति ।

पदार्थ—(इन्दुः) दीप्ति वाला शब्द (सोतृभिः, मृज्यमानः, हियानः) जो वेदवेत्ता पुरुषों से शुद्ध करके प्रेरित किया गया है वह (वग्नुम्, इन्द्रियम्) श्रोत्रेन्द्रिय को जब (कनिक्रदत्) गर्जता हुआ (इयर्त्ति) प्राप्त होता है तो अनेक प्रकार के बल उत्पन्न करता है ।

भावार्थ—सदुपदेशकों द्वारा जिन शब्दों का प्रयोग किया जाता है वे शब्द बलप्रद होते हैं इस लिये हे श्रोता लोगो ! तुम को चाहिये कि तुम सदैव सदुपदेशकों से उपदेश सुन कर अपने आप को तेजस्वी और ब्रह्मवर्चस्वी बनाओ ॥२॥

आ नः शुष्मं नृषाह्यं वीरवन्तं पुरुस्पृहम् ।
पवस्व सोम धारया ॥३॥

आ । नः । शुष्मं । नृऽसह्यं । वीरऽवन्तं । पुरुऽस्पृहं । पवस्व । सोम । धारया ॥३॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन्, (नः) अस्मान् भवान् (शुष्मं) यद्बलं (नृषाह्यं) शत्रुनाशकं, (वीरवन्तं) वीर्यवत्, (पुरुस्पृहं) सर्वोत्तममस्ति तस्य (धारया) सुवृष्ट्या (आ, पवस्व) पवित्रीकरोतुतराम् ॥

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! (नः) हमको आप (शुष्मम्) जो बल (नृषाह्यम्) शत्रु को नाश करने वाला (वीरवन्तम्) वीरता वाला (पुरुस्पृहम्) सर्वोपरि है उसकी (धारया) सुवृष्टि से (आ, पवस्व) भली प्रकार पवित्र करें ।

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते हैं कि जो पुरुष सर्वोपरि बल की कामना करते हुये अपने आप को उस बल के योग्य बनाते हैं उनको संसार में न्याय नियम फैलाने के लिये सर्वोपरि बल अवश्यमेव मिलता है ॥३॥

प्र सोमो अति धारया पवमानो असिष्यदत् ।
अभि द्रोणान्यासदम् ॥४॥

प्र । सोमः । अति । धारया । पवमानः । असिस्यदत् ।
अभि । द्रोणानि । आऽसदं ॥४॥

पदार्थः—(सोमः) परमात्मा (धारया) स्वानुग्रहदृशां धाराभिः (पवमानः) पवित्रयन् ज्ञानप्रभावेण (अभि, द्रोणानि, आसदम्) तान्यन्तःकरणानि प्राप्तुमिच्छति यानि सत्कर्मभिः (प्रासिष्यदत) शुद्धीकृतानि भवन्ति ॥

पदार्थ—(सोमः) परमात्मा (धारया) अपनी कृपा की दृष्टिरूप धाराओं से (पवमानः) पवित्र करता हुआ ज्ञान के प्रभाव से (अभि, द्रोणानि, आसदम्) उन अन्तःकरणों को प्राप्त होता है जो अन्तःकरण सत्कर्मों द्वारा शुद्ध किये हुये होते हैं ।

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! यदि तुम अपने आप को सत्कर्मी बनाओगे तो ज्ञान का प्रवाह तुम्हारे अभ्युदयरूपी अंकुरों को अवश्यमेव अभ्युदयशाली बनायेगा ॥४॥

अप्सु त्वा मधुमत्तमं हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।
इन्दविन्द्राय पीतये ॥५॥

अप्ऽसु । त्वा । मधुमत्ऽतमं । हरिं । हिन्वन्ति । अद्रिऽभिः ।
इन्दो इति । इन्द्राय । पीतये ॥५॥

पदार्थः—(इन्दो) हे ऐश्वर्य्यकाम जीव, (अप्सु) सर्वरसेषु (मधुमत्तमम्) स्वादुर्यदेकविधोरसोऽस्ति एवम्भूतम (त्वा) त्वां (हरिं) अज्ञानच्छेदकं (अद्रिभिः) वाग्रूपैर्वज्रैः (हिन्वन्ति) वेदज्ञाः पुरुषाः प्रेरयन्ति यतस्त्वं (इन्द्राय) कर्मयोगिभ्यः (पीतये) ऐश्वर्यप्रदानाय समर्थः स्याः ॥

पदार्थ—(इन्दो) हे ऐश्वर्याभिलाषी जीव, (अप्सु,) सब रसों में (मधुमत्तमम्) मीठा जो एक प्रकार का रस है ऐसे (त्वा) तुमको (हरिम्) जो तुम अज्ञान के हरने वाले हो (अद्रिभिः) वाणीरूप वज्र से हिन्वन्ति वेदवेत्ता पुरुष तुम्हें प्रेरित करते हैं ताकि तुम (इन्द्राय) कर्मयोगी को (पीतये) ऐश्वर्यप्रदान करने के लिये समर्थ बनो ।

भावार्थ—जो पुरुष धार्मिक बन के सदुपदेश करते हैं वे मानो सब रसों में से अपने आप को माधुर्य्यसम्पन्न सिद्ध करते हैं और वे ही लोग उपदेष्टा बन कर संसार में लोगों को कर्मयोग का उपदेश करते हैं ॥५॥

सुनोता मधुमत्तमं सोममिन्द्राय वज्रिणे ।
चारुं शर्धाय मत्सरम् ॥६॥२०॥

सुनोत । मधुमत्ऽतमं । सोमं । इन्द्राय । वज्रिणे । चारुं ।
शर्धाय । मत्सरम् ॥६॥

पदार्थः—(वज्रिणे, इन्द्राय) वज्रोपेताय कर्मयोगिने (सोमं, सुनोत) सोमरसं समुत्पादय यो रसः (चारुं)

सुन्दरः, (शर्धाय, मत्सरम्) बलाय हर्षप्रदः, (मधुमत्तमम्) स्वादुरस्ति ॥

पदार्थ—(इन्द्राय, वज्रिणे) वज्र वाले कर्मयोगी के लिये (सोमं, सुनोत) सोम रस उत्पन्न करो जो रस (चारुम्) सुन्दर है (शर्धाय, मत्सरम्) बल के लिये जो हर्ष उत्पन्न करने वाला है (मधुमत्तमम्) जो अत्यन्त मीठा है ।

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करता है कि हे विद्वान् पुरुषो, तुम उत्तमोत्तम ओषधियों से सौम्य स्वभाव बनाने वाले रसों को उत्पन्न करो जिन रसों को पान करके कर्मयोगी पुरुष अपने कर्तव्यों में दृढ़ रहें और जिन रसों से हर्ष को प्राप्त हो कर संसार में सर्वोपरि बल को उत्पन्न करें ॥६॥

इति त्रिंशत्तमं सूक्तं विंशो वर्गश्च समाप्तः ॥

यह तीसवां सूक्त और बीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ षडृचस्यैकत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य—

१–६ गोतम ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः-१ ककुम्मती गायत्री । २ यवमध्या गायत्री । ३,५ गायत्री । ४,६ निचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अथ शूरवीरगुणा वर्ण्यन्ते—

अब शूरवीरों के गुणों का वर्णन किया जाता है:—

प्र सोमा॑सः स्वा॒ध्य१॒॑: पव॑मानासो अक्रमुः ।
र॒यिं कृ॑ण्वन्ति॒ चेत॑नम् ॥१॥

प्र । सोमा॑सः । सुऽआ॒ध्यः॑ । पव॑मानासः । अ॒क्र॒मुः । र॒यिं ।
कृ॒ण्व॒न्ति॒ । चेत॑नम् ॥१॥

पदार्थः—(सोमासः) शूरवीराः (स्वाध्यः) उच्चोद्देश्याः (पवमानासः) वीर्य्येण भुवनं पवित्रयन्तः (प्राक्रमुः) अन्यायकारिणः शत्रून आक्राम्यन्ति किंच उक्ताक्रमणेन (रयिं) स्वमैश्वर्य्यं (चेतनम्) लोकोत्तरं (कृण्वन्ति) विदधते ।

पदार्थ—(सोमासः) शूरवीर लोग (स्वाध्यः) उच्चोद्देश्य वाले (पवमानासः) वीरता धर्म से संसार को पवित्र करते हुए (प्राक्रमुः) अन्यायकारी शत्रुओं पर आक्रमण करते हैं और उक्तप्रकार के आक्रमण से (रयिं) अपने ऐश्वर्य्य को (चेतनम्) जीता जागता (कृण्वन्ति) बनाते हैं ।

भावार्थ—जो लोग उच्च उद्देश्य से अर्थात् देश की रक्षा के लिये शत्रुओं पर आक्रमण करते हैं वे लोग अपने ऐश्वर्य्य को पुनरुज्जीवित करके अपने यश को विमल करके दशो दिशाओं में फैलाते हैं ॥१॥

उक्तविधैर्वीरैः परमात्मा एवं प्रार्थ्यते:—

उक्त वीर परमात्मा से इस प्रकार प्रार्थना करते हैं—

दि॒वस्पृ॑थि॒व्या अधि॒ भवे॑न्दो द्युम्न॒वर्ध॑नः ।
भवा॒ वाजा॑नां॒ पतिः॑ ॥२॥

दि॒वः । पृ॒थि॒व्याः । अधि॑ । भव॑ । इ॒न्दो॒ इति॑ । द्यु॒म्न॒ऽवर्ध॑नः ।
भव॑ । वाजा॑नाम् । पतिः॑ ॥२॥

पदार्थः—(इन्दो) हे परमैश्वर्य्ययुक्त परमात्मन्, भवान् (वाजानाम्) सर्वविधैश्वर्याणां (पतिः) स्वामी अस्ति (दिवस्पृथिव्याः, अधि) द्यावापृथिव्योर्मध्ये (द्युम्नवर्धनः) ऐश्वर्य्यस्य वर्धायता (भव) भवेत् ॥

पदार्थ—(इन्दो) हे परमैश्वर्य्ययुक्त परमात्मन्, आप (वाजानाम्) सब प्रकार के ऐश्वर्यों के (पतिः) स्वामी हैं (दिवस्पृथिव्याः, अधि) द्युलोक और पृथिवी लोक के बीच में (द्युम्नवर्धनः) ऐश्वर्य के बढ़ाने वाले (भव) हों ।

भावार्थ—परमात्मा इस प्रकार उपदेश करता है कि हे शूरवीरो, तुम लोग अपने परिश्रम के अनन्तर उस पराशक्ति से इस प्रकार की प्रार्थना करो कि हमारा ऐश्वर्य सर्वत्र फैले और हम द्युलोक और पृथिवी लोक के बीच में शान्ति को फैलायें ।

तात्पर्य यह है कि मनुष्य कैसा ही ऐश्वर्य शाली हो अथवा तेजस्वी और ब्रह्मवर्चसी हो पर फिर भी उसे पराशक्ति की सहायता लेनी पड़ती है जिसने इस संसार को अपने नियमों में बांध रखा है॥ २ ॥

तुभ्यं वाता अभिप्रियस्तुभ्यमर्षन्ति सिन्धवः ।
सोम वर्धन्ति ते महः ॥३॥

तुभ्यं । वाताः । अभिऽप्रियः । तुभ्यं । अर्षन्ति । सिन्धवः ।
सोम । वर्धन्ति । ते । महः ॥३॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन्, (तुभ्यं) तव (वाताः) वीर्येण सर्वव्यापनसमर्थाः शूरवीराः (अभिप्रियः) प्रेमास्पदानि

भवन्ति किंच (तुभ्यं) तव नियमेन (सिन्धवः) सिन्ध्वादिनद्यः (अर्षन्ति) वहन्ति (ते) तव (महः) यशः (वर्धन्ति) वर्धयन्ति ॥

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन्, (तुभ्यम्) तुमको (वाताः) शूरवीर "वान्ति वीरधर्मेण सर्वत्र गच्छन्ति इति वाताः शूरवीराः = जो वीर धर्म से सर्वत्र फैल जायँ उनका नाम यहां (वाताः) है" (अभिप्रियः) वे प्यारे हैं और (तुभ्यम्) तुम्हारे नियम से (सिन्धवः) सिन्धु आदि नदियां (अर्षन्ति) बहती हैं (ते) तुम्हारे (महः) यशको (वर्धन्ति) बढ़ाती है।

भावार्थ—परमात्मा के नियम से शूरवीर उत्पन्न हो कर उसके यश को बढ़ाते हैं और परमात्मा के नियम से ही सिन्धु आदि महानद स्यन्दमान होकर सम्पूर्ण धरातल को सिञ्चित करते हैं ॥३॥

आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् ।
भवा वाजस्य सङ्गथे ॥४॥

आ । प्यायस्व । सं । एतु । ते । विश्वतः । सोम । वृष्ण्यं ।
भव । वाजस्य । संऽगथे ॥४॥

पदार्थः—(सोम) हे समस्तस्य जगतः कर्तः परमात्मन्, (ते वृष्ण्यं) सर्वाभिलाषदं भवत ऐश्वर्यं (विश्वतः) सर्वतः (समेतु) अस्मान् प्राप्नोतु अथ च भवान् (आ, प्यायस्व) अस्मान् सर्वप्रकारेण वर्धय तथा (वाजस्य, संगथे) ऐश्वर्यनिमित्तके संग्रामे (भव) नः सहायको भव ।

पदार्थ—(सोम) हे सम्पूर्ण संसार के उत्पादक परमात्मन्, (ते, वृष्ण्यं) सब कामनाओं की वर्षा करनेवाला तुम्हारा ऐश्वर्य (विश्वतः) सब ओर से (समेतु) हमको प्राप्त हो और आप (आप्यायस्व) सब प्रकार से हमारी वृद्धि करें तथा (वाजस्य, संगथे) ऐश्वर्यनिमित्तक संग्रामोंमे आप (भव) हमारे सङ्गी बने।

भावार्थ—जो लोग एकमात्र परमात्मा को अपना आधार बनाते हैं वे सब प्रकार से ऐश्वर्यशाली होते हैं और संग्रामजनित विपत्तियों में परमात्मा उनकी सहायता करता है ॥४॥

तुभ्यं गावो घृतं पयो बभ्रो दुदुह्रे अक्षितम् ।
वर्षिष्ठे अधि सानवि ॥५॥

तुभ्यं । गावः । घृतं । पयः । बभ्रो इति । दुदुह्रे । अक्षितं । वर्षिष्ठे । अधि । सानवि ॥५॥

पदार्थः—(बभ्रो) हे विश्वम्भर परमात्मन्! भवान् (वर्षिष्ठे, अधि, सानवि) विभूतिशालिनि सर्वत्र वस्तुनि शक्तिरूपेण विराजते किंच (तुभ्यं, गावः) भवदर्थमेव पृथिव्यादयो लोकाः (घृतं, पयः) घृतदुग्धादिकमनेकधा रसं (अक्षितं) निरन्तरं स्यन्दमानं (दुदुह्रे) उत्पादयन्ति।

पदार्थ—(बभ्रो) "बिभर्तीति बभ्रुः तत्संबुद्धौ बभ्रो" हे सब के धारण करने वाले परमात्मन् (वर्षिष्ठे अधि, सानवि) विभूति वाली प्रत्येक वस्तु में आप शक्तिरूप से विराजमान हैं और (तुभ्यम्, गावः) तुम्हारे लिये ही पृथिव्यादि लोक लोकान्तर (घृतम्, पयः) घृत दुग्धादि अनन्त प्रकार के रसों को जो (अक्षितम्) निरन्तर स्यन्दमान हो रहे हैं उनको (दुदुह्रे) दुहते हैं।

भावार्थ——परमात्मरचित इस ब्रह्माण्ड में नाना प्रकार के सुख-दुःखादि रस दिनरात प्रवाह रूप से स्यन्दमान हो रहे हैं बहुत क्या जो जो विभूति वाली वस्तु है उस में परमात्मा का ऐश्वर्य सर्वत्र देदीप्यमान हो रहा है इसी अभिप्राय से कहा है कि "यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा । तत्तदेवावगच्छत्वं मम तेजोंऽशसम्भवम् ॥ १ ॥ जो जो विभूति वाली वस्तु अथवा ऐश्वर्य और शोभावाली है वह सब परमात्मा के प्रकृतिरूप अंश से उत्पन्न हुई है ॥५॥

स्वायुधस्यं ते सतो भुवनस्य पते वयं ।
इंदों सखित्वमुंश्मसि ॥ ६ ॥ २१ ॥

सुऽआयुधस्यं । ते । सतः । भुवनस्य । पते । वयं । इन्दो । इति । सखिऽत्वं । उश्मसि ॥६॥

पदार्थः——(भुवनस्य, पते) हे सर्वजगदीश्वर परमात्मन्, (ते) तुम्हारी (स्वायुधस्य, सतः) उत्तमतमया शक्त्या (इन्दो) परमैश्वर्य रूप, (वयं) वयं भवता (सखित्वं) सौहार्दम् (उश्मसि) कामयामहे ।

पदार्थ——(भुवनस्य, पते) हे सम्पूर्ण भुवनों के पति परमात्मन् ! (ते) तुम्हारी (स्वायुधस्य, सतः) जीवित, जागृत शक्ति से (इन्दो) हे परमैश्वर्य्य स्वरूप, हम लोग तुम्हारे (सखित्वम्) मैत्रीभाव को (उश्मसि) चाहते हैं ।

भावार्थ——सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों के नियन्ता और निखिल ज्ञानों के अवगन्ता परमात्मा से जो लोग मैत्री डालते हैं वे लोग इस संसार में परमानन्द का लाभ करते हैं ।

इस अभेद सम्बन्ध का नाम उपनिषदों में 'अहंग्रह' उपासना है और इस उपासना का पद प्रतीकोपासना से बहुत ऊँचा है। इसी अभिप्राय से कहा है कि "अहंवा त्वमसि भगवो देवते त्वं वाहमस्मि" हे भगवन्! मैं तू और तू=मेरा रूप है इस में कोई भेद नहीं इस उपासना का नाम आध्यात्मिकोपासना है। इसको वेद अन्यत्र भी प्रतिपादन करता है जैसा कि "यस्मिन्सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूत् विजानतः तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः" और आधिदैविकोपासना वह कहलाती है जिसमें सूर्य्यचन्द्रमादि में व्यापक समझ कर परमात्मा की उपासना की जाती है कि "यः आदित्ये तिष्ठन् आदित्यादन्तरो यमादित्यो न वेद यस्यादित्यः शरीरम्" जो आदित्य इस सूर्य्य में रहता है जिसको सूर्य्य नहीं जानता और सूर्य्य जिसका शरीरस्थानी है वह तुम्हारा अन्तर्यामी अमृतरूप ब्रह्म है।

इसी को प्रतीकोपासन नाम से कहा जाता है अर्थात् प्रतीक उपासनं प्रतीकोपासनम्" जो प्रतीक=सूर्य्य चन्द्रादिकों में व्यापक समझ कर ब्रह्म की उपासना की जाती है उसका नाम प्रतीकोपासन है अथवा "प्रतीकेनोपासनं प्रतीकोपासनम्" जो प्रतीक के द्वारा उपासन किया जाता है उसको भी प्रतीकोपासन कहते हैं। जैसा कि वेदमन्त्रों द्वारा ईश्वर का उपासन किया जाता है।

और जो लोग "प्रतीकस्योपासनं प्रतीकोपासनम्" इस प्रकार षष्ठीसमास करके प्रतीक अर्थात् मूर्तिकी उपासना सिद्ध करते हैं वे वेदोपनिषदों के रहस्य को नहीं जानते क्योंकि वेदों का तात्पर्य्य आध्यात्मिक आधि दैविक अर्थात् आत्मा में और सूर्य्यादि दिव्य वस्तुओं में व्यापक समझ कर ब्रह्मोपासन करने का है। मृण्मयी अथवा धातुमयी किसी मूर्ति का निर्माण करके उसकी पूजा करने का नहीं।

तात्पर्य्य यह है कि वेदों के आध्यात्मिक आधिदैविक और आधिभौतिक तीनों प्रकार से अर्थ करने से भी आधुनिक मूर्ति पूजा सिद्ध नहीं होती।

आधुनिक मूर्तियें जो वैदिकधर्मी अर्थात् वेदों को सर्वोपरि प्रमाण मानने वाले आर्य लोग बनाते हैं । अथवा यों कहो कि अपने आपको हिन्दू नाम से सम्बोधन करने वाले बना लेते हैं वे केवल बौद्धधर्मानुयायी लोगों का अनुकरण करके बनाते हैं ।

पुष्ट प्रमाण इसका ये यह है कि वेदाभिमानी लोगों की कोई मूर्ति भी बुद्ध मूर्तियों से प्राचीन नहीं पायी जाती किन्तु सब अर्वाचीन हैं अर्थात् नवीन हैं ॥६॥

इति एकत्रिंशत्तमं सूक्तमेकविंशो वर्गश्च समाप्तः ॥

यह ३१ वां सूक्त और २१ वां वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ षडृचस्य द्वात्रिंशत्तमस्यसूक्तस्य—

१—६ श्यावाश्व ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः-१, २ निचृद्गायत्री । ३—६ गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अथ परमात्मन उपलब्धिरुच्यतेः-

अब परमात्मा की उपलब्धि का कथन करते हैं:—

प्र सोमा॑सो मद॒च्युतः॒ श्रव॑से नो म॒घोनः॑
सु॒ता वि॒दथे॑ अक्रमुः ॥ १ ॥

प्र । सोमा॑सः । म॒द॒ऽच्युतः॑ । श्रव॑से । न॒ः । म॒घोनः॑ । सु॒ताः । वि॒दथे॑ । अ॒क्र॒मु॒ः ॥१॥

पदार्थः—(मदच्युतः) आनन्दप्रवाहः (सुताः) स्वयम्भुः (सोमासः) परमात्मा (विदथे) यज्ञे (मघोनः, नः) जिज्ञासोर्मम (श्रवसे) ऐश्वर्याय (प्राक्रमुः) आगत्य प्राप्तो भवति ।

पदार्थ—(मदच्युतः) आनन्द का स्रोत (सुताः) स्वयम्भू (सोमासः) परमात्मा (विदथे) यज्ञ में (मघोनः, नः) मुझ जिज्ञासु के (श्रवसे) ऐश्वर्य के लिये (प्राक्रमुः) आकर प्राप्त होता है।

भावार्थ—जो पुरुष शुद्ध भाव से यज्ञ करते हैं उन को परमात्मा अपने आनन्द स्रोत से सदैव अभिषिक्त करता है, यज्ञ के अर्थ यहां शुद्धान्तःकरण से ईश्वरोपासन १ ब्रह्मविद्यादि उत्तमोत्तम पदार्थों का दान २ और कला कौशलादि द्वारा विद्युदादि पदार्थों को उपयोग में लाना ३ ये तीन हैं। जो पुरुष उक्त पदार्थों की संगति करने वाले यज्ञों को करता है वह अवश्यमेव ऐश्वर्यसम्पन्न होता है ॥१॥

आदीं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।
इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥२॥

आत् । ईं । त्रितस्य । योषणः । हरिं । हिन्वन्ति । अद्रिऽभिः ।
इन्दुं । इन्द्राय । पीतये ॥२॥

पदार्थः—(त्रितस्य) जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु अवस्थास्वप्रतिहततेजसो भक्तस्य (योषणः) शक्तयः (इन्द्राय, पीतये) जीवात्मनः तृप्तये (आत्, ईम्) पूर्वोक्तम् (इन्दुम्) परमेश्वरम् (हरिं) सर्वदुःखापहारकं परमात्मानम् (अद्रिभिः) इन्द्रियवृत्तिभिः। (हिन्वन्ति) प्रेरयन्ति।

पदार्थ—(त्रितस्य) जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं में अप्रतिहत प्रभाव वाले भक्त पुरुष की (योषणः) शक्तियें (इन्द्राय, पीतये) जीवात्मा की तृप्ति के लिये (आत्, ईम्) इस पूर्वोक्त (इन्दुम्) परमैश्वर्य वाले (हरिम्) सब दुःखों के हरने वाले परमात्मा को (अद्रिभिः) इन्द्रिय वृत्तियों द्वारा (हिन्वन्ति) प्रेरित करती हैं।

भावार्थ—जो लोग परमात्मा की भक्ति में रत हैं उनकी इन्द्रिय वृत्तियें परमात्मविज्ञान की उपलब्धि के लिये सदैव तत्पर रहती हैं ।

आर्दीं हंसो यथा गणं विश्वस्यावीवशन्मतिम् ।
अत्यो न गोभिरज्यते ॥ ३ ॥

आत् । ईं । हंसः । यथा । गणं । विश्वस्य । अवीवशत् । मतिं ।
अत्यः । न । गोभिः । अज्यते ॥३॥

पदार्थः—(विश्वस्य, मतिम्, अवीवशत) यः सर्वस्य बुद्धिं वशमानयति तम् (अत्यः, न) विद्युतमिव दुर्ग्रहं (आदीम्) इमं परमात्मनम् (हंसः, यथा, गणं) हंसः स्वसजातीयगणं यथा गच्छति तथा (गोभिः, अज्यते) जीवः इन्द्रियैः संगच्छते ।

पदार्थ—(विश्वस्य, मतिम्, अवीवशत्) सब की मति को वश में रखने वाला (अत्यो, न) विद्युत् की नाईं दुर्ग्राह्य (आदीम्) ऐसे परमात्मा को (हंसः, यथा, गणम्) जिस प्रकार हंस अपने सजातीय गण में जाकर मिलता है उसी प्रकार (गोभिः, अज्यते) जीव इन्द्रियों द्वारा साक्षात्कार करता है ॥

भावार्थ—जीवात्मा जब तक अपनी सजातीय वस्तु के साथ सम्बन्ध नहीं लगाता तब तक उसे आनन्द कदापि प्राप्त नहीं हो सकता इस भाव का इस मन्त्र में उपदेश किया है कि जिस प्रकार हंस अपने सजातीय गण में मिल कर आनन्दित होता है इस प्रकार जीवात्मा भी उस चिद्घन ब्रह्म में मिल जाता है । जीवात्मा को हंस की उपमा इस वास्ते दी है कि "हन्त्यविद्यामितिहंसः" यह जीव अविद्या का हनन करता है यहाँ विज्ञानी जीव का वर्णन है । और ब्रह्म प्राप्ति से जीव अविद्या का हनन करता है जैसे कि 'सता सोम्य तदा सम्पन्नो भवति छा०' ॥३॥

उभे सोमावचाकशन्मृगो न तक्तो अर्षसि ।

सीदन्नृतस्य योनिमा ॥ ४ ॥

उभे । इति । सोम । अवऽचाकशत् । मृगः । न । तक्तः । अर्षसि । सीदन् । ऋतस्य । योनिं । आ ॥४॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन्, भवान् (उभे, अवचाकशत्) द्युलोकपृथिवीलोकौ पश्यति (मृगः, न, तक्तः) सिंह इव प्रकृतिरूपे वने विराजते (ऋतस्य, योनिम, आसीदन्) कार्यमात्रकारणीभूतायां प्रकृतौ स्थितः (अर्षसि) सर्वं व्याप्नोति ।

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् (उभे, अवचाकशत्) आप द्युलोक और पृथिवी लोक के साक्षी हैं (मृगः, न, तक्तः) और सिंह के समान प्रकृतिरूप वन में विराजमान हो रहे हैं (ऋतस्य, योनिम्, आसीदन्) अखिलकार्य का कारण जो प्रकृति उस में स्थित हो कर (अर्षसि) सर्वत्र व्याप्त हो रहे हैं ।

भावार्थ—परमात्मा इस प्रकृति के कार्य चराचर ब्रह्माण्ड में ओत प्रोत हो रहा है अर्थात् प्रकृति एक प्रकार से गहन वन है और परमात्मा सिंह के समान इस वन का स्वामी है । इस मन्त्र में परमात्मा की व्यापकता और शौर्य क्रौर्यादि गुणों के भाव से परमात्मा की रौद्ररूपता वर्णन की है ।

अभि गावो अनूषत योषा जारमिव प्रियम् ।

अगन्नाजिं यथा हितम् ॥ ५ ॥

अभि । गावः । अनूषत । योषा । जारंऽइव । प्रियं । अगन् । आजिं । यथा । हितं ॥५॥

पदार्थः—हे परमात्मन्, (योषा, जारमिव, प्रियम्) चन्द्रमिव सर्वप्रियम् (आर्जि) प्राप्यं (हितं) सर्वस्येष्टदं भवन्तं (यथा, अगन्) यथा प्राप्ताःस्युः तथा (गावः) इन्द्रियवृत्तयः (अभ्यनूषत) त्वां विषयीकुर्वन्ति ।

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (योषाजारमिव, प्रियम्) "योषयति आत्मनि प्रीतिमुत्पादयतीतियोषा रात्रिः तस्या जारोजारयिताचन्द्रस्तम्" । चन्द्रमा के समान सर्वप्रिय (आजिम्) प्राप्त करने योग्य (हितम्) सब का हित करने वाले आप (यथा, अगन्) जिस प्रकार प्राप्त हो जायँ उसी प्रकार (गावः) इन्द्रिय वृत्तियें (अभ्यनूषत) आप को विषय करती हैं ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में कर्मयोगी और ज्ञान योगियों की ओर से परमात्मा की प्रार्थना कथन की गयी है और परमात्मनिष्ठप्रियता की तुलना चन्द्रमा के साथ की-अर्थात् जिस प्रकार चन्द्रमा आह्लादक होने से सर्व प्रिय है इसी प्रकार परमात्मा भी आह्लादक होने से सर्व प्रिय हैं कई एक टीकाकार "योषाजारम्" के अर्थ स्त्री के जार के करते हैं अर्थात् जैसे स्त्री को अपना यार प्यारा होता है उसी प्रकार मुझ उपासक को तुम प्यारे हो । पहले तो यह दृष्टान्त विषम है क्योंकि स्त्री को सर्वदा यार प्यारा नहीं लगता किन्तु जब तक मोहमयी युवावस्था रहती है तभी तक प्यारा लगता है । और दूसरे जार शब्द के अर्थ सर्वत्र वेद मन्त्रों में तमोनिवर्तकआह्लादक गुण के हैं जैसा कि 'स्वसारंजारो ऽभ्येति पश्चात्" इस मन्त्र में जार के अर्थ आह्लादक गुण के ही सब भाष्यकारों ने किये हैं, इससे स्पष्ट सिद्ध है कि योषाजार यहाँ चन्द्रमा का नाम है किसी लम्पट कामी पुरुष का नहीं ॥५॥

अस्मे धेहि द्युमद्यशो मघवद्भ्यश्च मह्यं च ।
सनिं मेधामुत श्रवः ॥ ६ ॥ २२ ॥

अस्मे इति॑ । धेहि । द्युऽमत् । यशः॑ । मघव॑त्ऽभ्यः । च । मह्य॑ । च । सनि॑ । मेधा॑ । उत । श्रवः॑ ॥६॥

पदार्थः—हे परमात्मन्, त्वम् (अस्मे) अस्मभ्यं (द्युमत्, यशः, धेहि) दीप्तिमत् यशो देहि (मघवद्भ्यः) कर्मयोगिभ्यः (मह्यं, च) मह्यं च (सनिं) धनं (मेधां) बुद्धिं (उत, श्रवः च) सुन्दरकीर्तिं च देहि ।

पदार्थ—हे परमात्मन् ! आप (अस्मे) मेरे लिये (द्युमत् यशः, धेहि) दीप्ति वाले यश को दीजिये (मघवद्भ्यः, च) कर्मयोगियों के लिये और (मह्यं, च) मेरे लिये (सनिम्) धन को (मेधाम्) बुद्धि को तथा (उत श्रवः) सुन्दर कीर्ति को दीजिये ॥

भावार्थ—कर्मयोग और ज्ञानयोग के द्वारा परमात्मा निम्नलिखित गुणों का प्रदान करता है । धन, बुद्धि, सुकीर्ति इत्यादि ।

इति द्वात्रिंशत्तमं सूक्तं, द्वाविंशो वर्गश्च समाप्तः ।

यह ३२वां सूक्त और २२वां वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ षडृचस्य त्रयस्त्रिंशत्तमस्यसूक्तस्य—

१—६ त्रित ऋषिः । पवमानः सोमो देवता । छन्दः—१ ककुम्मती गायत्री । २, ४, ५ गायत्री । ३, ६ निचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अधुना ईश्वरप्राप्तये ज्ञानकर्मोपासनापराणि त्रीणि वचांसि निरूप्यन्ते ।

अब ईश्वरप्राप्ति के लिये ज्ञान, कर्म, उपासना विषयक तीन वाणियें कही जाती हैं ॥

प्र सोमा॑सो विप॒श्चितो॒ऽपां न य॑न्त्यू॒र्मयः॑ ।
वना॑नि महि॒षा इ॑व ॥१॥

प्र । सोमा॑सः । वि॒पः॒ऽचितः॑ । अ॒पाम् । न । य॒न्ति॒ । ऊ॒र्मयः॑ ।
वना॑नि । म॒हि॒षाःऽइ॑व ॥१॥

पदार्थः—(अपाम् ऊर्मयः न) यथा वीचयः प्रकृत्या चन्द्रं प्रति समुच्छलन्ति (वनानि, महिषाः, इव) यथा च महात्मानः प्रकृत्या सत्कर्माश्रयन्ते तथा (सोमासः, विपश्चितः, प्रयन्ति) सौम्याः विद्वांसो ज्ञानकर्मोपासनाबोधिका वेदवाचः समाश्रयन्ति ।

पदार्थः—(अपाम्, ऊर्मयः, न) जैसे समुद्र की लहरें स्वभाव ही से चन्द्रमा की ओर उछलती हैं और (वनानि, महिषा, इव) जैसे महात्मा लोग स्वभाव ही से भजन की ओर जाते हैं इसी प्रकार (सोमासः, विपश्चितः यन्ति) सौम्य स्वभाव वाले विद्वान् ज्ञान, कर्म, उपासना बोधक वेद वाणी की ओर लगते हैं ॥

भावार्थ—वेद रूपी वाणी में इस प्रकार आकर्षण शक्ति है जैसी कि पूर्णिमा के चन्द्रमा में आकर्षण शक्ति होती है । अर्थात् पूर्णिमा को चन्द्रमा के आह्लादक धर्म की ओर, सब लोग प्रवाहित होते हैं इसी प्रकार ओजस्विनी वेदवाक् अपनी ओर विमल दृष्टि वाले लोगों को खींचती है ।

अ॒भि द्रोणा॑नि ब॒भ्रवः॑ शु॒क्रा ऋ॒तस्य॒ धार॑या ।
वाजं॒ गोम॑न्तमक्षरन् ॥ २ ॥

अभि । द्रोणानि । बभ्रवः । शुक्राः । ऋतस्य । धारया । वाजं । गोऽमंतं । अक्षरन् ॥२॥

पदार्थः—(बभ्रवः) ज्ञानकर्मोपासनज्ञाः (शुक्राः) पवित्रान्तःकरणाः विद्वांसः (ऋतस्य, धारया) सत्यस्य स्रोतसा (अभि, द्रोणानि) सत्पात्राणि उपदिश्य (वाजम्, गोमन्तम्) तेषामनेकधैश्वर्याणि (अक्षरन्) वर्द्धयन्ति ।

पदार्थ—(बभ्रवः) ज्ञान, कर्म, उपासना को धारण करने वाले (शुक्राः) पवित्र अन्तःकरण वाले विद्वान् (ऋतस्य, धारया) सच्चाई की धारा से (अभि, द्रोणानि) सत्पात्रों के प्रति उपदेश देकर (वाजम्, गोमन्तम्) उनके अनेक प्रकार के ऐश्वर्य को (अक्षरन्) बढ़ाते हैं ॥

भावार्थ—जो लोग वेद विद्या का सदुपदेश देते हैं, उनके सदुपदेश से सब प्रकार के अन्नादिक ऐश्वर्य बढ़ते हैं ॥२॥

सुता इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।
सोमा अर्षन्ति विष्णवे ॥ ३ ॥

सुताः । इंद्राय । वायवे । वरुणाय । मरुत्ऽभ्यः । सोमाः । अर्षंति । विष्णवे ॥३॥

पदार्थः—(मरुद्भ्यः, सुताः, सोमाः) विद्वद्भिः ज्ञान कर्मोपासनासिद्धिगमिता विद्वांसः (विष्णवे, अर्षन्ति) सर्वव्यापकस्य पदमधिगच्छन्ति यः परमात्मा (इन्द्राय) परमेश्वरः तथा (वायवे) सर्वव्यापकः (वरुणाय) सर्वेषां सेव्यश्चास्ति ।

पदार्थ—(मरुद्भ्यः, सुताः, सोमाः) विद्वानों से कर्मोपासना से सिद्धि को प्राप्त हुये विद्वान् (विष्णवे, अर्षन्ति) सर्वव्यापक परमात्मा के पदको प्राप्त होते हैं। जो परमात्मा (इन्द्राय) "इन्दति परमैश्वर्यं प्राप्नोतीतीन्द्रः" परमैश्वर्य सम्पन्न है तथा (वायवे) "वाति गच्छति सर्वत्र व्याप्नोतीति वायुः" सर्वव्यापक है। वरुणाय) "व्रियते सं भज्यते जनैरिति वरुणः" सब को भजनीय है उसको प्राप्त होते हैं।

भावार्थ--जिन लोगों ने माता पिता और आचार्य से सिद्धि को प्राप्त किया है वे ज्ञान कर्म उपासना द्वारा ईश्वर को उपलब्ध करते हैं ॥३॥

तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमंति धेनवः ।
हरिरेति कनिक्रदत् ॥ ४ ॥

तिस्रः । वाचः । उत् । ईरते । गावः । मिमंति । धेनवः ।
हरिः । एति । कनिक्रदत् ॥४॥

पदार्थः—(धेनवः, गावः) इन्द्रियवृत्तयः (तिस्रः, वाचः उदीरते, मिमन्ति) तिस्रः, वाचः समुच्चारयन्त्यः परमात्मानं प्रापयन्ति (हरिः) स च परमात्मा (कनिक्रदत्, एति) गर्जन् तेषां ज्ञानविषयो भवति।

पदार्थ—(धेनवः, गावः) इन्द्रियवृत्तियें (तिस्रः, वाचः उदीरते, मिमन्ति) तीनों वाणियों को उच्चारण करती हुयीं परमात्मा का साक्षात्कारकराती हैं (हरिः) और वह परमात्मा (कनिक्रदत्, एति) गर्जता हुआ उनके ज्ञान का विषय होता है।

भावार्थ—जो लोग वैदिक सूक्तों द्वारा वर्णित परमात्मा के

स्वरूप को अपने ध्यान में लाना चाहते हैं वे भलीभांति परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं। तात्पर्य यह है कि परमात्मा शब्दगम्य है तर्कों से उसका साक्षात्कार नहीं होता क्योंकि तर्क की कोई आस्था नहीं प्रथम की तर्क को द्वितीय जिसकी अधिक बुद्धि है काट देता है द्वितीय की तर्क को तृतीय तृतीय की तर्क को चतुर्थ। और वेद पूर्ण पुरुष का ज्ञान है इस लिये उस में यह दोष नहीं ॥४॥

अभि ब्रह्मीरनूषत यह्वीर्ऋतस्य मातरः ।
मर्मृज्यन्ते दिवः शिशुम् ॥ ५ ॥

अभि । ब्रह्मीः । अनूषत । यह्वीः । ऋतस्य । मातरः ।
मर्मृज्यंते । दिवः । शिशुं ॥५॥

पदार्थः—(ऋतस्य, मातरः) सत्योत्पादिकाः (यह्वीः, ब्रह्मीः) अतिविस्तृताः परमात्मसम्बद्धा वेदवाचः (अभि, अनूषत) स्ववक्तारं विभूषयन्ति मर्मृज्यन्ते, (दिवःशिशुम्) ब्रह्मचारिणं च पवित्रयन्ति ।

पदार्थ—(ऋतस्य, मातरः) सत्य को उत्पन्न करनेवाली (यह्वीः ब्रह्मीः) अतिविस्तृत परमात्मसम्बन्धी वेदवाणियें (अभि, अनूषत) अपने वक्ता को विभूषित कर देती हैं (मर्मृज्यन्ते, दिवः शिशुम्) और ब्रह्मचारी को पवित्र कर देती हैं।

भावार्थ—वेद वाणियें परमात्मा के साथ वाच्यवाचकभावसम्बन्ध से रहती हैं इसी लिये इन को ब्रह्मी कहा गया है जैसा कि गीता में "एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति" जिस प्रकार पुरुष ब्राह्मी स्थिति को पाकर मोह को नहीं प्राप्त होता इसी प्रकार वेद वाणियें पुरुष के अज्ञान को सर्वथा छिन्न भिन्न कर देती हैं ॥५॥

रायः संमुद्रांश्चतुरोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः ।
आ पंवस्व सहस्रिणः ॥ ६ ॥ २३ ॥

रायः । समुद्रान् । चतुरः । अस्मभ्यं । सोम । विश्वतः । आ । पवस्व । सहस्रिणः ॥६॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन्, (सहस्रिणः, रायः) विविधैश्वर्यान् (चतुरः समुद्रान् शब्दरूपजलानां वेदवारिधीन् (अस्मभ्यम्) नः (विश्वतः) सुतरां (आ, पवस्व) देहि ।

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! (सहस्रिणः, रायः) अनेक प्रकार के ऐश्वर्य वाले (चतुरः, समुद्रान्) शब्द रूपी जल के चारो वेद रूपी समुद्रों को (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (विश्वतः) भली प्रकार (आ, पवस्व) दीजिये ॥

भावार्थ—परमात्मा के पास नाना प्रकार के रत्नों के भरे हुये अनन्त समुद्र हैं परन्तु शब्दार्णवरूप समुद्रों से सब प्रकार के ऐश्वर्य उत्पन्न होते हैं इस से परमात्मा से शब्दार्णवरूप समुद्र की प्रार्थना करनी चाहिये ॥६॥

इति त्रयस्त्रिंशत्तमं सूक्तं त्रयोविंशो वर्गश्च समाप्तः ।

३३ वां सूक्त और २३ वां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ परमात्मनोऽद्भुतसत्ता वर्ण्यते ।

अब परमात्मा की अद्भुतसत्ता वर्णन की जाती है ।

अथ षडृचस्य चतुस्त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य—

१—६ त्रित ऋषिः । पवमानः सोमो देवता । छन्दः–१, २, ४ निचृद्गायत्री ३, ५, ६ गायत्री । षड्जः स्वरः ॥

प्र सु॒वा॒नो धार॑या॒ तने॑न्दु॑र्हि॒न्वा॒नो अ॑र्षति ।
रु॒जद्दृ॒ळ्हा व्योज॑सा ॥ १ ॥

प्र । सु॒वा॒नः । धार॑या । तना॑ । इन्दुः॑ । हि॒न्वा॒नः । अ॒र्षति॑ ।
रु॒जत् । दृ॒ळ्हा । वि । ओज॑सा ॥ १ ॥

पदार्थः—(इन्दुः) परमैश्वर्यवान् स परमात्मा (दृळ्हा, विरुजत्) अज्ञानानि नाशयन्, (धारया, प्रसुवानः) स्वाधिकरणसत्तया सर्वमुत्पादयन्, (हिन्वानः) सर्वं प्रेरयन् (तना, अर्षति) एतद्विस्तृतं ब्रह्माण्डं व्याप्नोति ॥ १ ॥

पदार्थ—(इन्दुः) वह परमैश्वर्य वाला परमात्मा (ओजसा) अपने पराक्रम से (दृळ्हा, विरुजत्) अज्ञानों को नाश करता हुआ (धारया, प्रसुवानः) अपनी अधिकरणरूपसत्ता से सब को उत्पन्न करता हुआ (हिन्वानः) सब की प्रेरणा करता हुआ (तना, अर्षति) इस विस्तृत ब्रह्माण्ड में व्याप्त हो रहा है ॥ १ ॥

भावार्थ—परमात्मा की ऐसी अद्भुत सत्ता है कि वह निरवयव होकर भी संपूर्ण सावयव पदार्थों का अधिष्ठान है, उसी के आधार पर

यह चराचर जगत् स्थिर है, और वह सर्व प्रेरक होकर कर्म रूपी चक्र द्वारा सब की प्रेरणा करता है ॥ १ ॥

सुत इंद्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।
सोमो अर्षति विष्णवे ॥२॥

सुतः । इंद्राय । वायवे । वरुणाय । मरुत्ऽभ्यः । सोमः । अर्षति । विष्णवे ॥ २ ॥

पदार्थः—(सुतः, सोमः (स्वयम्भूः परमात्मा) इन्द्राय) ज्ञानयोगिने; (वायवे) कर्मयोगिने; (वरुणाय) उपदेशकाय; (मरुद्भ्यः) विद्वद्गणेभ्यः (विष्णवे) अनेकशास्त्रप्रविष्टविदुषे च (अर्षति) आगत्य तत्रभवतामन्तःकरणेषु आविर्भवति ।

पदार्थ—(सुतः, सोमः) स्वयम्भू परमात्मा (इन्द्राय) ज्ञान योगी के लिये (वायवे) कर्मयोगी के लिये (वरुणाय) उपदेशक के लिये (मरुद्भ्यः) विद्वद्गणों के लिये (विष्णवे) अनेक शास्त्रों में प्रविष्ट विद्वान् के लिये (अर्षति) आकर उनके अन्तः करण में प्राप्त होता है ।

भावार्थ—यद्यपि परमात्मा व्यापक होने के कारण सर्वत्र विद्यमान है तथापि उसकी अभिव्यक्ति कर्मयोग, ज्ञानयोग तथा अन्य साधनों द्वारा जिन लोगों ने अपने अन्तःकरण को निर्मल किया है उनके हृदय में विशेष रूप से होती है ॥ २ ॥

वृषाणं वृषभिर्यतं सुन्वन्ति सोममद्रिभिः ।
दुहन्ति शक्मना पयः ॥ ३ ॥

वृषाणं । वृषऽभिः । यतं । सुन्वंति । सोमं । अद्रिऽभिः । दुहन्ति । शक्मना । पयः ॥ ३ ॥

पदार्थः—विद्वांसः (वृषाणं) सर्वकामदं (सोमं) परमात्मानं (यतं) बुद्धिविषयं विधाय (वृषभिः, अद्रिभिः) अखिलकामनासाधिकाभिः इन्द्रियवृत्तिभिः (शक्मना) ज्ञानयोगेन कर्मयोगेन च (सुन्वन्ति) प्रेरयन्तः (पयः) ब्रह्मानन्दं (दुहन्ति) अनुभवन्ति ।

पदार्थ—विद्वान् लोग (वृषाणम्) सब कामनाओं के देनेवाले (सोमम्) परमात्मा को (यतम्) ज्ञान का विषय बना कर (वृषभिः, अद्रिभिः) अखिलकामनाओं की साधक इन्द्रिय वृत्तियों द्वारा (शक्मना) ज्ञानयोग और कर्म योगद्वारा (सुन्वन्ति) प्रेरणा करते हुये (पयः) ब्रह्मानन्द को (दुहन्ति) दुहते हैं ।

भावार्थ—जो लोग कर्मयोगी तथा ज्ञानयोगी बन कर अभ्यास करते हैं वही लोग ब्रह्मामृतरूप दुग्ध को परमात्मरूपकामधेनु से दोहन करते हैं अन्य नहीं ॥ ३ ॥

भुवत्त्रितस्य मर्ज्यो भुवदिन्द्राय मत्सरः ।
सं रूपैरज्यते हरिः ॥ ४ ॥

भुवत् । त्रितस्य । मर्ज्यः । भुवत् । इन्द्राय । मत्सरः । सं । रूपैः । अज्यते । हरिः ॥ ४ ॥

पदार्थः—परमात्मा (त्रितस्य) श्रवणमनननिदिध्यासनैः त्रिभिः साधनैः (मर्ज्यः, भुवत्) उपासनीयः (इन्द्राय, मत्सरः, भुवत्) विज्ञानिभ्यः आह्लादजनकश्चास्ति तथा (हरिः, रूपैः, समज्यते) पापशमनः परमात्मा ब्रह्माण्डरूपैः स्वकार्यैः अभिव्यक्तो भवति ।

पदार्थ—परमात्मा (त्रितस्य) श्रवण, मनन, निदिध्यासन इन तीनों साधनों से (मर्ज्यः, भुवत्) उपासनीय है, और (इन्द्राय, मत्सरः, भुवत्) विज्ञानियों के लिये आह्लादकारक है तथा (हरिः, रूपैः सपज्यते) पाप नाशक परमात्मा अपने ब्राह्माण्डरूप कार्यों से अभिव्यक्त होता है ॥

भावार्थ—परमात्मा की रचना से उसकी सत्ता का स्पष्ट प्रमाण मिलता है अर्थात् जो नियम इस ब्रह्माण्ड में पाये जाते हैं उनका नियन्ता वही अवश्य मानना पड़ता है उस नियन्ता का साक्षात्कार यम नियमादिसाधनों द्वारा होता है अन्यथा नहीं ॥ ४ ॥

अभीमृतस्यं विष्टपं दुहते पृश्निमातरः ।
चारुं प्रियतमं हविः ॥ ५ ॥

अभि । ईं । ऋतस्यं । विष्टपं । दुहते । पृश्निऽमातरः ।
चारुं । प्रियऽतमं । हविः ॥ ५ ॥

पदार्थः—(पृश्निमातरः) कर्मयोगिनो विद्वांसः (ऋतस्य विष्टपम्, ईम्) सत्यास्पदं परमात्मानम् (चारु) सुन्दरम् (प्रियतमम्) अतिप्रियम् (हविः) शुभकर्म (अभिदुहते) अभ्यर्थयन्ते ।

पदार्थ—(पृश्निमातरः) कर्मयोगी विद्वान् (ऋतस्य, विष्टपं, ईम्) सत्य के स्थान परमात्मा से (चारु) सुन्दर (प्रियतमम्) अतिप्रिय (हविः) शुभकर्म की (अभिदुहते) भली प्रकार प्रार्थना करते हैं ।

भावार्थ—कर्म्मयोगी पुरुष अपने कर्म्मों से उसका साक्षात्कार अर्थात् उपासनाकर्म्मद्वारा उसकी सत्ता को लाभ करते हैं ।

समे॑नमह्रु॒ता इ॒मा गिरो॑ अर्षन्ति स॒स्रुतः॑ ।
धे॒नूर्वा॒श्रो अ॑वीवशत् ॥ ६ ॥ २४ ॥

सं । ए॒नं॒ । अह्रु॑ताः । इ॒माः । गिरः॑ । अर्ष॑न्ति । स॒ऽस्रुतः॑ ।
धे॒नूः । वा॒श्रः । अ॒वी॒व॒श॒त् ॥ ६ ॥

पदार्थः—(सस्रुतः) व्योम्नि विस्तृताः (अह्रुताः) निष्कपटं कृताः (इमाः, गिरः) एताः कर्मयोगिनां स्तुतयः (एनं, समर्षन्ति) इमं परमात्मानं प्राप्नुवन्ति (वाश्रः) स च परमात्मा तेभ्यः कर्मयोगिभ्यः (धेनूः) अभीष्टमनोरथं दातुं सदोद्यतस्तिष्ठति ।

पदार्थ—(सस्रुतः) आकाश में फैलती हुई (अह्रुताः) निष्कपटभाव से की हुई (इमाः, गिरः) कर्मयोगियों द्वारा की हुई स्तुतियें (एनम्, समर्षन्ति) इस परमात्मा को प्राप्त होती हैं (वाश्रः) और वह वेदोत्पादक परमात्मा (धेनूः, अवीवशत्) उन कर्मयोगियों के लिये अभीष्ट कामनाओं के देने को उद्यत रहता है ॥ ६ ॥

भावार्थ—शुभ सङ्कल्पों के मन में उत्पन्न हो जाने से परमात्मा उनका फल अवश्यमेव देता है ।

तात्पर्य्य यह है कि उपासना, प्रार्थना भी एक प्रकार के कर्म्म हैं उनका फल उनको अवश्य मिलता है । इसलिये प्रार्थना केवल मांगना ही नहीं, किन्तु एक प्रकार का कर्म्म है वह निष्फल कदापि नहीं जा सकता ॥ ६ ॥

इति चतुस्त्रिंशत्तमं सूक्तं चतुर्विंशो वर्गश्च समाप्तः ।

यह ३४वां सूक्त और २४वां वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ षडृचस्य पञ्चत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य—

१—६ प्रभूवसुर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—
१, २, ४–६ गायत्री । ३ विराड्गायत्री ॥
षड्जः स्वरः ॥

अथ परमात्मा धर्मादिदातृत्वेन वर्ण्यते—

अब परमात्मा का धर्मादिदातृत्वेन वर्णन करते हैं:—

आ नः पवस्व धारया पवमान रयिं पृथुम् ।
यया ज्योतिर्विदासि नः ॥१॥

आ । नः । पवस्व । धारया । पवमान । रयिं । पृथुं ।
यया । ज्योतिः । विदासि । नः ॥१॥

पदार्थः—(पवमान) हे सर्वस्य पवितः परमात्मन्, (नः, धारया, आपवस्व) अस्मान् आनन्दस्य धारया सुष्ठु पुनातु (रयिं, पृथुं) महदैश्वर्यं च देहि (यया, नः, ज्योतिः, विदासि) ययानन्दधारया भवान् ज्ञानप्रदोऽस्ति ।

पदार्थ—(पवमान) हे सबको पवित्र करनेवाले परमात्मन् ! (नः, धारया, आपवस्व) हमको आप आनन्द की धारा से भली प्रकार पवित्र करिये (रयिम्, पृथुम्) और बड़े भारी ऐश्वर्य को दीजिये (यया, नः, ज्योतिः, विदासि) उसी आनन्द की धारा से आप ज्ञानप्रद हैं ।

भावार्थ—जो पुरुष अपने आप को परमात्मज्ञान का पात्र बनाते हैं परमात्मा उन्हें आनन्द की वृष्टि से सिञ्चित करते हैं ॥१॥

इन्दो समुद्रमीङ्खय पवस्व विश्वमेजय ।
रायो धर्ता न ओजसा ॥२॥

इन्दो इति । समुद्रम्ऽईङ्खय । पवस्व । विश्वम्ऽएजय । रायः । धर्ता । नः । ओजसा ॥२॥

पदार्थः—(इन्दो) हे परमैश्वर्यशालिन् (समुद्रमीङ्खय) हे अन्तरिक्षादौ व्याप्त, (विश्वमेजय, ओजसा) हे स्वप्रतापेन लोकमाश्चर्ययन् ! परमात्मन्, त्वं (रायः, धर्ता) सम्पूर्णधनाद्यैश्वर्याणां धारकोऽसि (नः, पवस्व) भवान् अस्मभ्यं धनाद्यैश्वर्यं दत्त्वा पवित्रयतु ।

पदार्थ—(इन्दो) हे परमैश्वर्यशाली परमात्मन् ! (समुद्रमीङ्खय) हे अन्तरिक्षादि लोकों में व्याप्त ! (विश्वमेजय, ओजसा) हे अपने प्रताप से संसार को चकित करनेवाले ! (रायः, धर्ता) आप सम्पूर्ण धनादि ऐश्वर्यों को धारण करनेवाले हैं (नः, पवस्व) आप हमको धनादि ऐश्वर्य का दान करके पवित्र करिये ।

भावार्थ—परमात्मा की कृपा से ही धनादि सब ऐश्वर्य पुरुष को प्राप्त होते हैं इस लिये पुरुष को सदैव परमात्मपरायण होने का यत्न करना चाहिये ॥ २ ॥

त्वया वीरेण वीरवोऽभि ष्याम पृतन्यतः ।
क्षरा णो अभि वार्यम् ॥३॥

त्वया । वीरेण । वीरऽवः । अभि । स्याम । पृतन्यतः । क्षर । नः । अभि । वार्यं ॥३॥

पदार्थः—(वीरवः) हे वीराणामधिपते परमात्मन्, (वीरेण, त्वया) सर्वोत्तमपराक्रमवता भवता वयं (पृतन्यतः, अभिष्याम) संग्राममिच्छतः शत्रून् पराजयेम (नः वार्यम्, अभिक्षर) त्वमस्मभ्यं प्रार्थनीयं पदार्थं देहि ।

पदार्थ—(वीरवः) हे वीरों के अधिपति परमात्मन् ! (वीरेण, त्वया) सर्वोपरि पराक्रमवाले आप के द्वारा हम (पृतन्यतः, अभिष्याम) संग्राम की इच्छा करनेवाले शत्रुओं को पराजित करें (नः, वार्यम्, अभिक्षर) आप हमको अभिलषितपदार्थों को दीजिये ॥३॥

भावार्थ—जो लोग अन्यायकारी शत्रुओं के विजय करने का सङ्कल्प रखते हैं, परमात्मा उन्हें अन्यायकारियों के दमन का बल प्रदान करता है ताकि अन्यायकारियों को मर्दन करके वे संसार में न्याय का प्रचार करें ॥३॥

प्र वाजमिन्दुरिष्यति सिषासन्वाजसा ऋषिः ।
व्रता विदान आयुधा ॥४॥

प्र । वाजं । इन्दुः । इष्यति । सिसासन् । वाजऽसाः । ऋषिः । व्रता । विदानः । आयुधा ॥४॥

पदार्थः—(इन्दुः) सर्वैश्वर्यः (सिषासन्) स्वभक्तेभ्य स्पृहयन् (वाजसाः) अखिलैश्वर्ययुक्तः (ऋषिः) सर्वब्रह्माण्डस्य द्रष्टा (व्रता, आयुधा, विदानः) सर्वैः कर्मभिः आयुधैश्च सम्पन्नः परमात्मा (वाजं, प्रेष्यति) स्वभक्तेभ्यः सर्वप्रकारमैश्वर्यं ददाति ।

पदार्थ—(इन्दुः) सर्वैश्वर्यवाला (सिषासन्) अपने भक्तों को

चाहनेवाला (वाजसाः) अखिल ऐश्वर्यों से युक्त (ऋषिः) सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों का साक्षी (व्रता, आयूंषि, विद्वान्ः) सम्पूर्ण कर्मों तथा आयुओं से सम्पन्न परमात्मा (वाजम्, प्रेष्यति) अपने भक्तों को सब प्रकार के ऐश्वर्य को देता है।

भावार्थ—परमात्मा सन्मार्गगामी पुरुषों को सम्पूर्ण ऐश्वर्यों का प्रदान करता है जो लोग परमात्मा की आज्ञा मान कर उसका अनुष्ठान करते हैं वही परमात्मा के भक्त व सदाचारी कहलाते हैं अन्य नहीं ॥४॥

तं गीर्भिर्वाचमीङ्खयं पुनानं वासयामसि ।
सोमं जनस्य गोपतिम् ॥५॥

तं । गीःऽभिः । वाचंऽईङ्खयं । पुनानं । वासयामसि ।
सोमं । जनस्य । गोऽपतिं ॥५॥

पदार्थः—(वाचमीङ्खयम्) वेदवाक्षु निवसन्तम् (पुनानम्) सर्वं पवित्रयन्तम् (जनस्य, गोपतिम्) मानुषेन्द्रियवृत्तीः प्रेरयन्तम् (तं, सोमम्) तं परमात्मानम् (गीर्भिः) स्तुतिभिः (वासयामसि) स्वान्तःकरणे निवासयामः ।

पदार्थ—(वाचमीङ्खयम्) वेदवाणी में निवास करने वाले (पुनानम्) सब को पवित्र करने वाले (जनस्य, गोपतिम्) मनुष्यों की इन्द्रिय वृत्तियों की प्रेरणा करने वाले (तं, सोमम्) उस परमात्मा को (गीर्भिः) स्तुतियों द्वारा (वासयामसि) अपने अन्तःकरण में बसाते हैं।

भावार्थ—परमात्मा के स्वअन्तःकरण में धारण करने का उपाय यह है कि पुरुष उस के सद्गुणों का चिन्तन करके उसके स्वरूप में मग्न हो जाय इसी का नाम परमात्मप्राप्ति वा परमात्मयोग है ॥५॥

विश्वो यस्य व्रते जनो दाधार धर्मणस्पतेः।
पुनानस्य प्रभूवसोः ॥६॥२५॥

विश्वः। यस्य। व्रते। जनः। दाधार। धर्मणः। पतेः।
पुनानस्य। प्रभुऽवसोः। ॥६॥२५॥

पदार्थः—(यस्य) यस्य (धर्मणस्पतेः) धर्मरक्षकस्य (पुनानस्य) लोकस्य पवित्रयितुः (प्रभूवसोः) अनन्तैश्वर्यस्य परमात्मनः (व्रते) भक्तौ (विश्वः) सर्वैश्वर्याभिलाषिणः (मनः, दाधार) स्वस्वमनांसि धारयन्ति तं परमात्मानं स्वहृदि धारयामः।

पदार्थ—(यस्य) जिस (धर्मणस्पतेः) धर्म को पालन करने वाले (पुनानस्य) संसार को पवित्र करने वाले (प्रभूवसोः) अनन्त ऐश्वर्य वाले परमात्मा की (व्रत) भक्ति में (विश्वः) सम्पूर्ण ऐश्वर्याभिलाषियों का गण (मनः, दाधार) अपने २ मन को धारण करता है उस परमात्मा को अपने हृदय में बसाते हैं।

भावार्थ—परमात्मा के नियम में ही सब सूर्य्यादि पदार्थ अपने अपने धर्मों को धारण करते हैं अर्थात् उसके नियमों का कोई भी उल्लङ्घन नहीं कर सकता। उस परमात्मा के महत्व को स्वहृदय में धारण करना प्रत्येक पुरुष का कर्त्तव्य है ॥६॥

इति पंचत्रिंशत्तमं सूक्तं पञ्चविंशो वर्गश्च समाप्तः।

यह ३५ वां सूक्त और २५ वां वर्ग समाप्त हुआ।

अथ षड्ऋचस्य षट्त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य—

१—६ प्रभूवसुर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—
१ पाद निचृद्गायत्री । २, ६ गायत्री । ३—५
निचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अथ परमात्मनः शक्तिद्वयाश्रयत्वं वर्ण्यते—

अब परमात्मा को रै और प्राण रूप शक्ति का आधार रूप से वर्णन करते हैं:—

असर्जि रथ्यो यथा पवित्रे चम्वोः सुतः ।
कार्ष्मन्वाजी न्यक्रमीत् ॥१॥

असर्जि । रथ्यः । यथा । पवित्रे । चम्वोः । सुतः । कार्ष्मन् । वाजी । नि । अक्रमीत् ॥१॥

पदार्थः—(रथ्यः) सर्वगतिशीलपदार्थेभ्यो गतिदः परमात्मा (चम्वोः, सुतः) रैप्राणरूपयोर्द्वयोः शक्त्योः प्रसिद्धः किंच सः (यथा, असर्जि) पूर्ववत् सर्वं लोकं समजीजनत् अथ च (वाजी) प्रबलः सः (पवित्रे, कार्ष्मन्, न्यक्रमीत्) अर्चनया स्वाकर्षणसमर्थानां भक्तानां पवित्रे हृदये आगत्य विराजते ।

पदार्थ—(रथ्य) सब गति शील पदार्थों को गति देने वाला वह परमात्मा (चम्वोः, सुतः) रै और प्राणरूप दोनों शक्तियों में प्रसिद्ध है । और उसने (यथा, असर्जि) पूर्ववत् सब संसार को पैदा किया और (वाजी) अतुबल वाला वह परमात्मा (पवित्रे, कार्ष्मन्, न्यक्रमीत्) भजन द्वारा उसको आकर्षण करने वाले भक्तों के पवित्र हृदय मे आकर विराजमान होता है ।

भावार्थ—यद्यपि परमात्मा अपनी व्यापकता से प्रत्येक पुरुष के हृदय में विद्यमान है तथापि जो पुरुष अपने अन्तःकरण को निर्मल रखते हैं उनके हृदय में उसकी स्फुट प्रतीति होती है इसी अभिप्राय से कथन किया है कि वह भक्तों के हृदय में विराजमान है ॥१॥

स वह्निः सोम जागृविः पवस्व देववीरति ।
अभि कोशं मधुश्चुतम् ॥२॥

सः । वह्निः । सोम । जागृविः । पवस्व । देवऽवीः । अति ।
अभि । कोशं । मधुऽश्चुतं ॥२॥

पदार्थः—(सोम) हे भगवन्, (सः) पूर्वोक्तगुणवान् त्वम् (वह्निः) सर्वप्रेरकः (जागृविः) नित्यः शुद्धो बुद्धो मुक्तस्वरूपश्चासि, किंच (देववीः, अति) सद्गुणसम्पन्नान् विदुषोऽतिकामयसे (मधुश्चुतम्, कोशम्, अभिपवस्व) त्वमानन्दप्रवाहं स्यन्दय ।

पदार्थ—(सोम) हे भगवन् ! (सः) वह पूर्वोक्त गुणसम्पन्न आप (वह्निः) सब के प्रेरक हैं और (जागृविः) नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वरूप हैं (देववीः, अति) सद्गुणसम्पन्न विद्वानों को अति चाहने वाले हैं (मधुश्चुतम्, कोशम्, अभिपवस्व) आप आनन्द के स्रोत को बहाइये ।

भावार्थ—सम्पूर्ण वस्तुओं में से परमात्मा ही एकमात्र आनन्दमय है । उसी के आनन्द को उपलब्ध करके जीव आनन्दित होते हैं । इसलिये उसी आनन्दरूप सागर से सुख की प्रार्थना करनी चाहिये ।

स नो ज्योतींषि पूर्व्य पवमान वि रोचय ।
क्रत्वे दक्षाय नो हिनु ॥३॥

सः । नः । ज्योतींषि । पूर्व्य । पवमान । वि । रोचय ।
क्रत्वे । दक्षाय । नः । हिनु ॥३॥

पदार्थः—(पूर्व्य, पवमान) हे सर्वस्य पवित्रयितः अनादे परमात्मन्, त्वम् (नः, ज्योतींषि अस्माकं बुद्धीः (विरोचय) प्रकाशिताः कुरु (नः) अस्मान् (क्रत्वे, दक्षाय, हिनु (बलदाते यज्ञायोद्यताँश्च विधेहि ।

पदार्थ—(पूर्व्य, पवमान) हे सब को पवित्र करने वाले अनादि परमात्मन् ! (नः, ज्योतींषि) आप हमारे ज्ञान को (विरोचय) प्रकाशित कीजिये (नः) और हमको (क्रत्वे, दक्षाय, हिनु) बलप्रद यज्ञ के लिये उद्यत कीजिये ।

भावार्थ—जो लोग परमात्मज्योति का ध्यान करते हैं, वे पवित्र होकर सदैव शुभ कामों में प्रवृत्त रहते हैं ।

शुम्भमान ऋतायुभिर्मृज्यमानो गभस्त्योः ।
पवते वारे अव्यये ॥४॥

शुम्भमानः । ऋतयुऽभिः । मृज्यमानः । गभस्त्योः । पवते ।
वारे । अव्यये ॥४॥

पदार्थः—हे परमात्मन्, भवान् (ऋतायुभिः) सत्यप्रियैर्विद्वद्भिः (गभस्त्योः) स्वशक्तिभिः स्थितः (मृज्यमानः) उपास्यो भवति किंच (शुम्भमानः) अत्यर्थं शोभमानः (अव्यये, वारे, पवते) स्वभक्तेभ्यः अविनाशिमुक्तिपदं ददाति ।

पदार्थ—हे परमात्मन् ! आप (ऋतायुभिः) सत्य को चाहने वाले विद्वानों से (गभस्त्योः) अपनी शक्तियों द्वारा स्थित होते हुए आप (मृज्यमानः) उपास्य हो (शुंभमानः) सर्वोपरि शोभा को प्राप्त होते हुये (अव्यये, वारे, पवते) अपने उपासकों के लिये अव्यय मुक्ति पद का प्रदान करते हैं ।

भावार्थ—जो पुरुष शुभ काम करते हुए श्रवण, मनन निदिध्यासनादि साधनों में युक्त रहते हैं वे मुक्ति पद के अधिकारी होते हैं ।

स विश्वा दाशुषे वसु सोमो दिव्यानि पार्थिवा ।
पवतामान्तरिक्ष्या ॥५॥

सः । विश्वा । दाशुषे । वसु । सोमः । दिव्यानि । पार्थिवा ।
पवताम् । आ । अन्तरिक्ष्या ॥५॥

पदार्थः—(सः, सोमः,) ससौम्यो भवान् (दाशुषे) स्वभक्ताय (दिव्यानि) दिव्यानि (अन्तरिक्ष्या) अन्तरिक्षोद्भवानि तथा (पार्थिवानि) भौमानि (विश्वा, वसु) सर्वाणि रत्नाद्यैश्वर्याणि (आपवताम्) ददातु ।

पदार्थ—(सः, सोमः) वह सौम्यस्वभाव वाले आप (दाशुषे) अपने उपासक के लिये (दिव्यानि) दिव्य (अन्तक्ष्या) अन्तरिक्ष में होने वाले तथा (पार्थिवानि) पृथिवीलोक में होने वाले (विश्वा, वसु) सम्पूर्ण रत्नादि ऐश्वर्यों को (आपवताम्) दीजिये ॥

भावार्थ—जो लोग अपने स्वभाव को सौम्य बनाते हैं अर्थात् ईश्वर के गुण, कर्म, स्वाभाव, को लक्ष्य रख कर अपने गुण कर्म स्वभाव को भी उसी प्रकार का पवित्र बानाते हैं वे सब ऐश्वर्यों को प्राप्त होते हैं ।

आ दिवस्पृष्ठमश्वयुर्गव्ययुः सोम रोहसि ।
वीरयुः शवसस्पते ॥६॥२६॥

आ । दिवः । पृष्ठं । अश्वऽयुः । गव्यऽयुः । सोम । रोहसि ।
वीरऽयुः । शवसः । पते ॥६॥

पदार्थः—(सोम, शवसस्पते) हे अन्नाद्यैश्वर्याधिपते परमात्मन्, भवान् स्वोपासकाय (वीरयुः) वीरस्पृहः (अश्वयुः, गव्ययुः) अश्वेभ्यो गोभ्यश्च स्पृहयति (दिवः, पृष्ठम् आरोहसि) किञ्च द्युलोकस्यापि पृष्ठे विराजते ।

पदार्थ—(सोम, शवसस्पते) हे अन्नादि ऐश्वर्यों के स्वामिन् परमात्मन् ! आप अपने उपासक के लिये (वीरयुः) वीरों की इच्छा करने वाले तथा (अश्वयुः, गव्ययुः) अश्व, गो आदिकों की इच्छा करने वाले हैं (दिवः, पृष्ठम्, आरोहसि) और द्युलोक के भी पृष्ठ पर आप विराजमान हैं ।

भावार्थ—ईश्वर सदाचारी और न्यायकारी लोगों के लिये धीरत्व वीरत्वादि धर्मों को धारण करता है । और गो, अश्वादि सब प्रकार के धनों से उन्हें सम्पन्न करता है ।

इति षट्त्रिंशत्तमं सूक्तं षड्विंशो वर्गश्च समाप्तः ।

यह ३६ वां सूक्त और २६ वां वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ षडृचस्य सप्तत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य—

१—६ रहूगण ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१—३ गायत्री । ४—६ निचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अथ परमात्मना राक्षसेभ्यो रक्षणमुपदिश्यते:—

अब परमात्मा दुराचारियों से रक्षा का कथन करते हैं:—

स सुतः पीतये वृषा सोमः पवित्रे अर्षति ।
विघ्नन्रक्षांसि देवयुः ॥१॥

सः । सुतः । पीतये । वृषा । सोमः । पवित्रे । अर्षति ।
विऽघ्नन् । रक्षांसि । देवऽयुः ॥१॥

पदार्थः—(सुतः) स्वयम्भूः (वृषा) सर्वकामप्रदः (सः, सोमः) सः परमात्मा (रक्षांसि, विघ्नन्) राक्षसान् विनाशयन् (देवयुः) देवान् इच्छन् च (पीतये) विदुषां तृप्तये (पवित्रे, अर्षति) तेषामन्तःकरणेषु विराजते ।

पदार्थ—(सुतः) स्वयम्भू (वृषा) सर्व कामप्रद (सः, सोमः) वह परमात्मा (रक्षांसि, विघ्नन्) राक्षसों को हनन करता हुआ और (देवयुः) देवताओं को चाहता हुआ (पीतये) विद्वानों की तृप्ति के लिये (पवित्रे, अर्षति) उनके अन्तः करण में विराजमान होता है ॥

भावार्थ—परमात्मा दैवी सम्पत्ति वाले पुरुषों के हृदय में आकर विराजमान होता है । और उनके सब विघ्नों को दूर करके उनको कृतकार्य बनाता है । यद्यपि परमात्मा सर्वत्र विद्यमान है तथापि वह

देवभाव को धारण करने वाले मनुष्यों को ज्ञान द्वारा प्रतीत होता है अन्यों को नहीं । इस अभिप्राय से यहां देवताओं के हृदय में उसका निवास कथन कियागया है, अन्यों को नहीं ॥१॥

स पवित्रे विचक्षणो हरिरर्षति धर्णसिः ।
अभि योनिं कनिक्रदत् ॥२॥

सः । पवित्रे । विऽचक्षणः । हरिः । अर्षति । धर्णसिः ।
अभि । योनिं । कनिक्रदत् ॥२॥

पदार्थः—(अभियोनिम्) प्रकृतिं सर्वामवष्टभ्य (कनिक्रदत्) शब्दायमानः (सः) सः परमात्मा (पवित्रे, अर्षति) शुचिषु हृदयेषु निवसति किंच (विचक्षणः) सर्वद्रष्टा; (हरिः) पापापनुदः (धर्णसिः) सर्वेषां धाता चास्ति ।

पदार्थ—(अभियोनिम्) प्रकृति में सर्वत्र व्याप्त होकर (कनिक्रदत्) शब्दायमान (सः) वह परमात्मा (पवित्रे, अर्षति) पवित्रहृदयों में निवास करता है और (विचक्षणः) सर्व द्रष्टा है (हरिः) पापों का हरने वाला तथा (धर्णसिः) सबको धारण करने वाला है ॥

भावार्थ—परमात्मा ही इन सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों का अधिष्ठाता तथा विधाता है ।

स वाजी रोचना दिवः पवमानो वि धावति ।
रक्षोहा वारमव्ययम् ॥३॥

सः । वाजी । रोचना । दिवः । पवमानः । वि । धावति ।
रक्षःऽहा । वारं । अव्ययं ॥३॥

पदार्थ—(सः) सः परमात्मा (वाजी) प्रबलः, (दिवः, रोचना) अन्तरिक्षस्य प्रकाशकः, (रक्षोहा) असत्कर्मिणां विहन्ता, (वारम्) सर्वेषां सेव्यः (अव्ययम्) अविनाशी चास्ति (पवमानः) एवम्भूतः परमात्मा सर्वं पवित्रयन् (विधावति) सर्वत्र व्यापकत्वेन वर्तते ।

पदार्थ—(सः) वह परमात्मा (वाजी) अत्यन्तबल वाला (दिवः, रोचना) तथा अन्तरिक्ष का प्रकाशक है (रक्षोहा) असत्कर्मियों का हनन करने वाला (वारं) सब का भजनीय और (अव्ययम् अविनाशी है (पवमानः) एवम्भूत परमात्मा, सबको पवित्र करता हुआ (विधावति) सर्वत्र व्याप्त हो रहा है ॥

भावार्थ—सूर्य चन्द्रमादि सब लोक लोकान्तर उसी के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं । स्वयंप्रकाश एक मात्र वही परमात्मा है । अन्य कोई वस्तु स्वतःप्रकाश नहीं ।

स त्रितस्याधि सानवि पवमानो अरोचयत् ।
जामिभिः सूर्यं सह ॥४॥

सः । त्रितस्य । अधि । सानवि । पवमानः । अरोचयत् ।
जामिऽभिः । सूर्यं । सह ॥४॥

पदार्थः—(सः) सः परमात्मा (त्रितस्य, अधिसानवि) सर्वोपरि निपुणः, (पवमानः) लोकस्य पविता, (जामिभिः, सह) तेजोभिः सहितं (सूर्यम्, अरोचयत) सूर्यम् अदिदीपत ।

पदार्थ—(सः) वह परमात्मा (त्रितस्य, अधिसानवि) नीतिमार्गों में सर्वोपरि नेता है (पवमानः) लोकों को शुद्ध करने वाले उसी

परमात्मा ने (ज्योतिभिः, सह) तेजों के सहित (सूर्यम्, अरोचयत्) सूर्य को देदीप्यमान किया ।

भावार्थ—सब प्रकार की विद्यायें उसी परमात्मा से मिलती हैं । और वही परमात्मा राजनीति से राजधर्मों का निर्माता तथा विधाता है ।

स वृत्रहा वृषा सुतो वरिवोविददाभ्यः ।
सोमो वाजमिवासरत् ॥५॥

सः । वृत्रऽहा । वृषा । सुतः । वरिवःऽवित् । अदाभ्यः ।
सोमः । वाजंऽइव । असरत् ॥५॥

पदार्थः—(वृत्रहा) अज्ञानच्छेदकः (वृषा) सर्वकामदः (सुतः) स्वयंसिद्धः, (वरिवोवित्) विभूतिप्रदः, (अदाभ्यः) अदम्भनीयः (सः, सोमः) सः परमात्मा (वाजम्, इव, असरत) शक्तिरिव व्याप्नोति ।

पदार्थ—(वृत्रहा) अज्ञानों का नाशक (वृषा) कामनाओं की वर्षा करने वाला (सुतः) स्वयं सिद्ध (वरिवोवित्) ऐश्वर्यों का देने वाला (अदाभ्यः) अदम्भनीय (सः, सोमः) वह परमात्मा (वाजम्, इव असरत्) शक्ति की नाईं व्याप्त हो रहा है ।

भावार्थ—जिस प्रकार सूर्य (वृत्र) मेघों को छिन्न भिन्न करके धरातल को जल से सुसिंचित कर देता है, इसी प्रकार परमात्मा सब प्रकार के आवरणों को छिन्न भिन्न करके अपने ज्ञान का प्रकाश कर देता है ॥५॥

स देवः कविनेषितोऽभि द्रोणानि धावति ।
इन्दुरिन्द्राय मंहना ॥६॥२७॥

सः । देवः । कविना । इषितः । अभि । द्रोणानि । धावति ।
इन्दुः । इन्द्राय । मंहना ॥६॥

पदार्थः—(सः) सः परमात्मा (देवः) दिव्य गुणसम्पन्नः, (कविना, इषितः) विद्वद्भिः प्रार्थितः, (इन्दुः) परमेश्वरः (मंहना) महान् चास्ति सः (इन्द्राय, अभि, द्रोणानि) विदुषामन्तःकरणेषु (धावति) विराजते ।

पदार्थ—(सः) वह परमात्मा (देवः) दिव्यगुणसम्पन्न है (कविना, इषितः) विद्वानों द्वारा प्रार्थित होता है (इन्दुः) परम ऐश्वर्य सम्पन्न है (मंहना) महान् है (इन्द्राय, अभि, द्रोणानि) विद्वानों के अन्तःकरणोंमें (धावति) विराजमान होता है ।

भावार्थ—यद्यपि परमात्मा सर्वत्र विद्यमान है तथापि विद्याप्रदीपसे जो लोग अपने अन्तःकरणोंको देदीप्यमान करते हैं उनके हृदयमें उसकी अभिव्यक्ति होती है । इस अभिप्रायसे यहां परमात्मा का विद्वानों के हृदय में निवास करना कथन किया गया है ॥६॥

इति सप्तत्रिंशत्तमं सूक्तं सप्तविंशो वर्गश्च समाप्तः ।

यह ३७ वां सूक्त और २७वां वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ षड्चस्य अष्टात्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य—

१—८ रहूगण ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥
छन्दः—१, २, ४, ६, निचृद्गायत्री । ३ गायत्री ।
५ ककुम्मती गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अथ प्रकारान्तरेण ईश्वरस्य गुणा उपदिश्यन्ते ।

अब प्रकारान्तरसे ईश्वरके गुण वर्णन करते हैं—

एष उ स्य वृषा रथोऽव्यो वारेभिरर्षति ।
गच्छन्वाजं सहस्रिणम् ॥१॥

एषः । ऊँइति । स्यः । वृषा । रथः । अव्यः । वारेभिः । अर्षति । गच्छन् । वाजं । सहस्रिणं ॥१॥

पदार्थः—(एषः, स्यः) अयं परमात्मा (रथः) गतिशीलः, (वृषा) सर्वाभिलाषसाधकः, (अव्यः) सर्वस्य रक्षकः, (सहस्रिणं, वाजम् अनन्ताः शक्तीः (गच्छन्) सम्पादयन् (वारेभिः, अर्षति) माननीयैर्विबुधैः प्रकाशितो भवति ।

पदार्थ—(एषः, स्यः) यह परमात्मा (रथः) गतिशील और (वृषा) सब कामनाओंका देनेवाला (अव्यः) तथा सबका रक्षक है (सहस्रिणम्, वाजम्) अनन्तशक्तिसम्पन्न (गच्छन्) होता हुआ (वारेभिः, अर्षति) वरणीय विद्वानों द्वारा प्रकाशित होता है ।

भावार्थ—परमात्माका ज्ञान विद्वानों द्वारा इस संसारमें प्रचार पाता है, इस अभिप्राय से परमात्मा ने उक्तमंत्र में विद्वानोंकी मुख्यता निरूपण की है ॥१॥

एतं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।
इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥२॥

एतं । त्रितस्य । योषणः । हरिं । हिन्वन्ति । अद्रिऽभिः । इंदुं । इन्द्राय । पीतये ॥२॥

पदार्थः—(त्रितस्य, योषणः, हरिम्) त्रिगुणायाः प्रकृतेः प्रभुम् (एतम्, इन्दुम्) परमैश्वर्यसम्पन्नमिमं परमात्मानम् (इन्द्राय, पीतये) जीवस्य तृप्तये (अद्रिभिः) इन्द्रियवृत्तिभिः (हिन्वन्ति) विद्वांसः ध्यानविषयीकुर्वन्ति ।

पदार्थ—(त्रितस्य, योषणः, हरिम्) "हरति प्रापयति स्ववशमानयतीति हरिः स्वामी" तीनोंगुणवाली मायाके अधिपति (एतम्, इन्दुम्) परमैश्वर्यसम्पन्न परमात्माको (इन्द्राय पीतये) जीवकी तृप्तिकेलिये (अद्रिभिः) इन्द्रियवृत्तिद्वारा (हिन्वन्ति) विद्वान् लोग ध्यानविषय करते हैं ।

भावार्थ—सत्व, रज, और तम, इन तीनों गुणोंवाली माया जो प्रकृति है उसका एकमात्र अधिपति परमात्मा ही है कोई अन्य नहीं । जो जो पदार्थ इन्द्रियगोचर होते हैं वे सब मायिक हैं अर्थात् मायारूपी उपादानकारणसे बनेहुए हैं । परमात्मा माया रहित होनेसे अदृश्य है। उसका साक्षात्कार केवल बुद्धिवृत्ति से होता है । वाह्य-चक्षुरादि इन्द्रियोंसे नहीं । इसी अभिप्रायसे यहां परमात्माको बुद्धिवृत्तिका विषय कहा गया है ॥२॥

एतं त्यं हरितो दश मर्मृज्यन्ते अपस्युवः ।
याभिर्मदाय शुम्भते ॥३॥

एतं । त्यं । हरितः । दश । मर्मृज्यन्ते । अपस्युवः ।
याभिः । मदाय । शुंभते ॥३॥

पदार्थः—(हरितः, दश, अपस्युवः) परमात्मस्तुत्या-पापापहारकाणि दशेन्द्रियाणि (एतं, त्यम्) इमं परमात्मानं

(मर्मृज्यन्ते) ज्ञानविषयीकुर्वन्ति (याभिः) यदिन्द्रियैः परमात्मा (मदाय, शुम्भते) आनन्दं दातुं प्रकटति ।

पदार्थ—(हरितः, दश, अपस्युवः) परमात्मस्तुतिद्वारा पापों को हरणकरनेवाली दश इन्द्रियें (एतम्, त्यम्,) इस परमात्माको (मर्मृज्यन्ते) ज्ञानका विषय बनाती हैं (याभिः) जिन इन्द्रियोंसे (मदाय, शुंभते) आनन्द देनेकेलिये परमात्मा प्रकाशित होता है ।

भावार्थ—जो लोग योगादिसाधनों द्वारा अपने मनका संयम करते हैं, अथवा यों कहिये कि, जिन्होंने पापवासनाओंको अपने मन की पवित्रतासे नाश कर दिया है, परमात्मा उन्हींके ज्ञानका विषय होता है । मलिनात्माओंका कदापि नहीं ॥३॥

एष स्य मानुषीष्वा श्येनो न विक्षु सीदति ।
गच्छञ्जारो न योषितम् ॥४॥

एषः । स्यः । मानुषीषु । आ । श्येनः । न । विक्षु । सीदति । गच्छन् । जारः । न । योषितं ॥४॥

पदार्थः—(एषः, स्यः) अयं परमात्मा (श्येनः, न) शीघ्रगामिविद्युदादिशक्तिरिव (जारः, योषितं, गच्छन्, न) रात्रिं प्राप्नुवन् प्रकाशमानः चन्द्रइव च (मानुषीषु, विक्षु सीदति) मानुषीः प्रजाः प्राप्नोति ।

पदार्थ—(एषः, स्यः) यह परमात्मा (श्येनः, न) शीघ्रगामी-विद्युदादिशक्तियोंके समान (जारः, योषितं, गच्छन्, न) जैसे चन्द्रमा रात्रिको प्रकाशित करताहुआ प्राप्तहोता है, उसीप्रकार (मानुषीषु, विक्षु, सीदति) मानुषीप्रजाओंमें प्राप्तहोता है ।

भावार्थ—जिस प्रकार चन्द्रमा अपने शीतस्पर्श और आह्लादको देता हुआ प्रजाको प्रसन्न करता है, उसी प्रकार परमात्मा अपने शान्त्यादि और आनन्दादिगुणोंसे सब प्रजाओंको प्रसन्न करता है

कई एक टीकाकार इसके ये अर्थ करते हैं, कि जिस प्रकार (जार) यार अपनी प्रिय स्त्रीको शीघ्रतासे आकर प्राप्त होता है, इस प्रकार वह हमको आकर प्राप्त हो । "जार" के अर्थ स्त्रीलम्पट पुरुषके उन्होंने भ्रान्तिसे समझे हैं । क्योंकि (जारयति जारः) इस व्युत्पत्तिसे रात्रिका स्वाभाविक धर्म जो अन्धकार है, उसको नाश करने वाला चन्द्रमा ही हो सकता है । इस अभिप्रायसे "जार" शब्द यहां चन्द्रमाको कहता है । किसी पुरुषविशेषको नहीं । स्त्रीलम्पटपुरुषविशेषके अर्थ-करके यहां अल्पश्रुतटीकाकारों ने वेदको कलङ्कित किया है ॥४॥

एष स्य मद्यो रसोऽव चष्टे दिवः शिशुः ।
य इन्दुर्वारमाविशत् ॥५॥

एषः । स्यः । मद्यः । रसः । अव । चष्टे । दिवः । शिशुः ।
यः । इंदुः । वारं । आ । अविशत् ॥५॥

पदार्थः—(मद्यः) आह्लादजनकः, (रसः) आनन्द-रूपः, (दिवः, शिशुः) द्युलोकस्य शास्ता (एषः, स्यः) अयं परमात्मा (अवचष्टे) सर्वं पश्यति (यः, इन्दुः) परमैश्वर्य-युक्तो यः परमात्मा (वारम्, आविशत) स्तोतुर्विदुषोऽन्तः करणे प्रविशति ।

पदार्थ—(मद्यः) आह्लादजनक (रसः) आनन्दरूप (दिवः, शिशुः) द्युलोकका शासक (एषः, स्यः) यह परमात्मा (अवचष्टे)

सबको देखता है (यः, इन्दुः) जो परमैश्वर्यवाला परमात्मा (वारम्, आविशत्) स्तोता विद्वान्के अन्तःकरणमें प्रविष्ट होता है ।

भावार्थ—इस संसार में सर्वद्रष्टा एकमात्र परमात्माही है । उससे भिन्न सब जीव अल्पज्ञ हैं । योगी पुरुष भी अन्योंकी अपेक्षा सर्वज्ञ कहे जाते हैं, वास्तव में सर्वज्ञ नहीं ॥५॥

एष स्य पीतये सुतो हरिरर्षति धर्णसिः ।
क्रन्दन्योनिमभि प्रियम् ॥६॥२८॥

एषः । स्यः । पीतये । सुतः । हरिः । अर्षति । धर्णसिः ।
क्रन्दन् । योनिं । अभि । प्रियं ॥६॥२८॥

पदार्थः—(एषः, स्यः) अयं परमात्मा (सुतः) स्वयम्भुः, (धर्णसिः) धाता (क्रन्दन्) शब्दरूपं वेदमाविर्भावयन् च (पीतये) लोकस्य तृप्तये (योनिं, प्रियम्) प्रियां प्रकृतिम् (अभ्यर्षति) व्याप्नोति ।

पदार्थ—(एषः, स्यः) यह परमात्मा (सुतः) स्वयम्भू (धर्णसिः) धारण करनेवाला (क्रन्दन्) शब्दमयवेदको आविर्भाव करता हुआ (पीतये) संसारकी तृप्तिकेलिये (योनिम्, प्रियम्) प्रियप्रकृति में (अभ्यर्षति) व्याप्त होरहा है ।

भावार्थ—इस प्रकृतिरूपी ब्रह्माण्डके रोमरोममें व्याप्त, और वेदादि विद्याओंका आविर्भावकर्ता एकमात्र परमात्मा ही है ॥६॥

इति अष्टत्रिंशत्तमंसूक्तमष्टाविंशोवर्गश्च समाप्तः ॥

यह ३८ वां सूक्त और २८ वां वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ षड्ऋचस्यैकोनचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य—

१—६ बृहन्मतिर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः-१, ४, ६, निचृद् गायत्री ॥ २, ३, ५, गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अथ यज्ञविषये परमात्मनो ज्ञानरूपेणाह्वानं कथ्यते ।

अब यज्ञमें ज्ञानरूपसे परमात्माका आवाहन कथन करते हैं ।

आशुरर्ष बृहन्मते परि प्रियेण धाम्ना ।
यत्र देवा इति ब्रवन् ॥१॥

आशुः । अर्ष । बृहत्ऽमते । परि । प्रियेण । धाम्ना । यत्र । देवाः । इति । ब्रवन् ॥१॥

पदार्थः—(बृहन्मते) हे सर्वज्ञ परमात्मन्, (आशुः) भवान् शीघ्रगतिरस्ति (यत्र, देवाः, इति, ब्रवन्) यत्र दिव्यगुणसम्पन्ना ऋत्विगादयो भवन्तमावाहयन्ति तत्र यज्ञस्थले भवान् (प्रियेण, धाम्ना पर्यर्ष) स्वसर्वहितसम्पादकेन तेजोरूपेण विराजताम् ॥

पदार्थ—(बृहन्मते) हे सर्वज्ञ परमात्मन् । (आशुः) आप शीघ्रगतिशील हैं (यत्र देवाः, इति, ब्रवन्) जहां दिव्यगुणसम्पन्न ऋत्विगादि आपका आवाहन करते हैं, उस यज्ञस्थलमें आप (प्रियेण, धाम्ना, पर्यर्ष) अपने सर्वहितकारक तेजस्वरूपसे विराजमान होयँ ।

भावार्थ—यज्ञादिशुभकर्मोंमें परमात्माके भाव वर्णन कियेजाते हैं, इस लिये परमात्माकी अभिव्यक्ति यज्ञादिस्थलोंमें मानी गई है। वास्तव में परमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण है ॥१॥

परिष्कृण्वन्ननिष्कृतं जनाय यातयन्निषः ।
वृष्टिं दिवः परि स्रव ॥२॥

परिऽकृण्वन् । अनिःऽकृतं । जनाय । यातयन् । इषः ।
वृष्टिं । दिवः । परि । स्रव ॥२॥

पदार्थः—(आनिष्कृतम्, परिष्कृण्वन्) हे परमात्मन् ! भवान् स्वज्ञानोपासकेषु ज्ञानं जनयन् (जनाय, इषः, यातयन्) भक्तान् ऐश्वर्यप्राप्तिंकारयँश्च (दिवः, वृष्टिम्, परिस्रव) द्युलोकाद् वृष्टिं स्रावय ।

पदार्थ—(अनिष्कृतम्, परिष्कृण्वन्) हे परमात्मन् ! आप अपने अज्ञानी उपासकोंको ज्ञान देते हुए (जनाय, इषः, यातयन्) और अपने भक्तोंको ऐश्वर्य प्राप्त कराते हुए (दिवः, वृष्टिम्, परिस्रव) द्युलोकसे वृष्टिको उत्पन्न कीजिये ।

भावार्थ—परमात्माके, संसारमें अद्भुत कर्म ये हैं कि उसने द्युलोकको वर्षणशील बनाया है, और सूर्यादिलोकों को तेजोमय तथा पृथिवीलोक को दृढ़, इत्यादिविचित्रभावोंका कर्त्ता एकमात्र परमात्मा ही है ॥२॥

सुत एति पवित्र आ त्विषिं दधान ओजसा ।
विचक्षाणो विरोचयन् ॥३॥

सुतः । एति । पवित्रे । आ । त्विषिं । दधानः । ओजसा ।
विऽचक्षाणः । विऽरोचयन् ॥३॥

पदार्थः—(विरोचयन्) सर्वं वस्तु प्रकाशयन्, (विचक्षाणः) अखिलब्रह्माण्डस्य द्रष्टा (सुतः) स स्वयम्भूः परमात्मा (ओजसा, त्विषिं, दधानः) स्वप्रतापेन ज्ञानं धारयन् (पवित्रे, एति) विदुषांपवित्रेऽन्तःकरणे विराजितो भवति ।

पदार्थ—(विरोचयन्) सब प्रकाशितवस्तुओंको प्रकाशमान करता हुआ (विचक्षाणः) और अखिलब्रह्माण्डका द्रष्टा (सुतः) वह स्वयम्भू परमात्मा (ओजसा, त्विषिं, दधानः) अपने प्रतापसे ज्ञानको धारण कराता हुआ (पवित्रे, एति) विद्वानोंके पवित्र अन्तः-करणमेंप्राप्तहोता है ॥

भावार्थ—यद्यपि परमात्मा सर्वव्यापक है, तथापि उसका स्थान विद्वानों के हृदयको इसलिये वर्णन किया गया है, कि विद्वान् लोग अपने हृदयको उसके ज्ञानका पात्र बनाते हैं ॥३॥

अयं स यो दिवस्परि रघुयामा पवित्र आ ।
सिन्धोरूर्मा व्यक्षरत् ॥४॥

अयं । सः । यः । दिवः । परि । रघुऽयामा । पवित्रे । आ ।
सिंधोः । ऊर्मा । वि । अक्षरत् ॥४॥

पदार्थः—(अयम्, सः) अयं स परमात्मास्ति (यः) (दिवस्परि) द्युलोकादप्यूर्द्ध्वभागे वर्तमानः, (रघुयामा) शीघ्रगामी, (पवित्रे, आ) ज्ञानयोगिनामन्तःकरणे निवासी (सिन्धोः, ऊर्मा, व्यक्षरत्) स्यन्दनशीलनद्यादिषु स्यन्दनशक्तिं जनयति ।

पदार्थ—(अयम्, सः) यह वह परमात्मा है (यः) जोकि

(दिवस्परि) अन्तरिक्षके भी ऊर्ध्वभागमें वर्तमान है (रघुयामा) और शीघ्रगतिवाला है (पवित्रे, आ) और ज्ञानयोगियों के पवित्र अन्तःकरणमें निवास करता है तथा (सिन्धोः ऊर्मा, व्यक्षरत्) जो स्यन्दन शक्ति उत्पन्न करता है।

भावार्थ—उसी परमात्माकी अद्भुतशक्तिसे सूर्यचन्द्रमादिकों का परिभ्रमण और नदियोंका प्रवहन इत्यादि सम्पूर्णगतियें उसी की अद्भुतसत्तासे उत्पन्न होती हैं ॥४॥

आविवासन्परावतो अथो अर्वावतः सुतः ।
इन्द्राय सिच्यते मधु ॥५॥

आऽविवासन् । पराऽवतः । अथोइति । अर्वाऽवतः । सुतः । इन्द्राय । सिच्यते । मधु ॥५॥

पदार्थः—(सुतः) स स्वयम्भूः परमात्मा (परावतः) दूरस्थान् (अथो, अर्वावतः) अथ च समीपस्थान् पदार्थान् (आविवासन्) सुष्ठु प्रकाशयन् (इन्द्राय, सिच्यते, मधु) जीवात्मने आनन्दं वर्षति ।

पदार्थ— (सुतः) वह स्वयम्भू परमात्मा (परावतः) दूरस्थ (अथो, अर्वावतः) और समीपस्थवस्तुओंको (आविवासन्) भलीप्रकार प्रकाशित करता हुआ (इन्द्राय, सिच्यते, मधु) जीवात्माकेलिये आनन्दकी वृष्टि करता है।

भावार्थ—जीवात्माकेलिये आनन्दका स्रोत, एकमात्र वही परमात्मा है ॥५॥

समीचीना अनूषत हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।
योनावृतस्य सीदत ॥६॥२९॥

सम्ऽईचीनाः । अनूषत । हरिं । हिन्वन्ति । अद्रिऽभिः ।
योनौ । ऋतस्य । सीदत ॥६॥२९॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (हरिम्) पापानां विनाशयितारं भवन्तम् (समीचीनाः) सत्कर्मिण ऋत्विगादयः (अनूषत) स्तुवन्ति, (अद्रिभिः, हिन्वन्ति) इन्द्रियवृत्तिभिः ज्ञानविषयीकुर्वन्ति । (ऋतस्य, योनौ सीदत) हे भगवन् सत्यस्य योनौयज्ञे तिष्ठ ।

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (हरिम्) पापोंको नाशकरने वाले आपकी (समीचीनाः) सत्कर्मी ऋत्विगादि लोग (अनूषत) स्तुति करते हैं । तथा (अद्रिभिः, हिन्वन्ति) इन्द्रियवृत्तियों द्वारा ज्ञानका विषय बनाते हैं (ऋतस्य, योनौ, सीदत) हे परमात्मन् ! आप सत्यकी योनि, यज्ञमें स्थित होयँ ।

भावार्थ—याज्ञिकपुरुष अपने अन्तःकरणको यज्ञवेदिस्थानी बनाकर परमात्मज्ञानको अवनेय बनाकर इस ज्ञानमययज्ञ से प्रजा को सुगन्धित करते हैं, तात्पर्य यह है कि अध्यात्मयज्ञ ही एकमात्र परमात्मप्राप्तिका मुख्यसाधन है, अन्य जलस्थलादि कोई वस्तु भी परमात्मप्राप्तिका मुख्यसाधन नहीं ॥६॥

इति एकोनचत्वारिंशत्तमं सूक्तमेकोनत्रिंशत्तमो वर्गश्च समाप्तः ।

यह ३९ वां सूक्त और २९ वां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ षड्ऋचस्य चत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य–

१–६ बृहन्मतिर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता छन्दः–१, २ गायत्री । ३–६ निचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अथ ईश्वरस्य सकाशात्शीलंप्राथ्र्यते ।

पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृधो विचर्षणिः ।
शुम्भन्ति विप्रं धीतिभिः ॥१॥

पुनानः । अक्रमीत् । अभि । विश्वाः । मृधः । विऽचर्षणिः ।
शुम्भन्ति । विप्रं । धीतिऽभिः ॥१॥

पदार्थः—(विचर्षणिः) यः सर्वद्रष्टा परमात्मा (पुनानः) सत्कर्मिणः पवित्रयन् (विश्वा, मृधः, अभ्यक्रमीत्) अखिलान् दुराचारान् नाशयति (विप्रम् धीतिभिः) तं परमात्मानम् विद्वांसः वेदवाग्भिः (शुम्भन्ति स्तुत्वा) विभूषयन्ति ।

पदार्थ—(विचर्षणिः) सर्वद्रष्टा परमात्मा (पुनानः) सत्कर्मियोंको पवित्र करता हुआ (विश्वा, मृधः, अभ्यक्रमीत्) अखिलदुराचारियोंका नाश करता है (विप्रं, धीतिभिः) उस परमात्माको विद्वान् लोग वेदवाणियोंसे (शुम्भन्ति) स्तुति करके विभूषित करते हैं ।

भावार्थ—परमात्मा सत्कर्मी पुरुषोंको शुभस्वभाव प्रदान करता है । तात्पर्य यह है कि सत्कर्मियों को उनके शुभकर्म्मानुसार शुभफल देताहै और दुष्कर्मियोंको दुष्कर्मानुसार अशुभफल देता है ॥१॥

आ योनिमरुणो रुहद्गमदिन्द्रं वृषा सुतः ।
ध्रुवे सदसि सीदति ॥२॥

आ । योनिं । अरुणः । रुहत् । गमत् । इन्द्रं । वृषा ।
सुतः । ध्रुवे । सदसि । सीदति ॥२॥

पदार्थः—(अरुणः) सर्वव्यापकः, (सुतः) स्वयम्भूः स परमात्मा (आयोनिम् रुहत्) अखिलां प्रकृतिं व्याप्नोति किञ्च (वृषा) सर्वाभिलाषदः सः (सदसि) यज्ञस्थले (इन्द्रम्, गमत) ज्ञानयोगिनं प्राप्नुवन् (ध्रुवे, सीदति) तदीये दृढविश्वासेऽन्तःकरणे विराजते ।

पदार्थः—(अरुणः) सर्वव्यापी (सुतः) स्वयंसिद्ध वह परमात्मा (आयोनिम् रुहत्) सम्पूर्णप्रकृतिमें व्याप्त होरहा है और (वृषा) सर्वकामनाओंका देनेवाला वह परमात्मा (सदसि) यज्ञस्थलमें (इन्द्रम्, गमत्) ज्ञानयोगीको प्राप्तहोकर (ध्रुवे, सीदति) उसके दृढविश्वासी अन्तःकरणमें विराजमान होता है ।

भावार्थ—कर्मयोगिपुरुषोंको परमात्मा सदैव उत्साह देकर सत्कर्मोंमें प्रवृत्त करता है ॥२॥

नू नो रयिं महामिन्दोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः ।
आ पवस्व सहस्रिणम् ॥३॥

नु । नः । रयिं । महां । इंदोइति । अस्मभ्यं । सोम ।
विश्वतः । आ । पवस्व सहस्रिणं ॥३॥

पदार्थः—(इन्दो) हे परमैश्वर्यसम्पन्न परमात्मन् ! (सोम) हे सौम्य ! (नः) अस्मभ्यम् (नु) ध्रुवम् (विश्वतः) सर्वतः (सहस्रिणम्) विविधम् (महां) महत् (रयिम्) ऐश्वर्यम् (आपवस्व) देहि ।

पदार्थ—(इन्दो) हे परमैश्वर्यसम्पन्न परमात्मन् ! (सोम) हे सौम्यस्वभाववाले (नः) हमारे लिये (नु) निश्चय करके (विश्वतः) सब ओरसे (सहस्रिणम्) अनेकप्रकारके (महां) बड़े (रयिम्) ऐश्वर्यको (आपवस्व) दीजिये ।

भावार्थ—सत्कर्मी पुरुष भी जब तक परमात्मासे अपने ऐश्वर्यकी वृद्धिकी प्रार्थना नहीं करते तबतक उनका अभ्युदय नहीं होता यद्यपि अभ्युदय पूर्वकृत शुभकर्मोंका फल है तथापि जबतक मनुष्यका अभ्युदय-शालीशील नहीं बनता तबतक वह अभ्युदयको कदाचित् भी नहीं चाहता, इसलिये अभ्युदयशालीशील बनानेकेलिये अभ्युदयकी प्रार्थना अवश्य करनी चाहिये ॥३॥

विश्वा सोम पवमान द्युम्नानींन्द्वा भर ।
विदाः सहस्रिणीरिषः ॥४॥

विश्वा । सोम । पवमान । द्युम्नानि । इंदोइति । आ । भर । विदाः । सहस्रिणीः । इषः ॥४॥

पदार्थः—(सोम, पवमान) हे जगतां पवित्रयितः परमात्मन् ! (इन्दो) हे परमैश्वर्यसम्पन्न ! भवान् (विश्वा, द्युम्नानि, आभर) निखिलदिव्यरत्नं मह्यं देहि किंच (सहस्रिणीः, इषः) अनेकधा अन्नाद्यैश्वर्यान् देहि ।

पदार्थ—(सोम, पवमान) हे जगत्को पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (इन्दो) हे परमैश्वर्यसम्पन्न ! (विश्वा, द्युम्नानि, आभर) आप मेरेलिये सम्पूर्ण दिव्यरत्नोंको दीजिये तथा (सहस्रिणीः, इषः, विदाः) और अनेकप्रकारके अन्नादि ऐश्वर्योंको दीजिये ।

भावार्थ—सबप्रकारके ऐश्वर्योंका दाता एकमात्र परमात्मा ही है इसलिये उससे ऐश्वर्योंकी प्रार्थना करनी चाहिये ॥४॥

स नः पुनान आ भर रयिं स्तोत्रे सुवीर्यम् ।
जरितुर्वर्धया गिरः ॥५॥

सः । नः । पुनानः । आ । भर । रयिं । स्तोत्रे । सुऽवीर्यं ।
जरितुः । वर्धय । गिरः ॥५॥

पदार्थः—(स) हे परमात्मन्, स पूर्वोक्तो भवान् (नः, स्तोत्रे) भवतः स्तुतिकर्त्रे मह्यम् (पुनानः) पवित्रयन् (सुवीर्यम्, रयिम्) सुपराक्रमेण सहैश्वर्यम् (आभर) ददातु (जरितुः, गिरः, वर्धय) उपासकस्य मम वाक्शक्तिं च वर्धय ।

पदार्थ—(सः) हे परमात्मन् ! वह पूर्वोक्त आप (नः स्तोत्रे) आपकी स्तुति करनेवाले मुझको (पुनानः) पवित्र करते हुये (सुवीर्यम्, रयिम्) सुन्दरपराक्रमके साथ ऐश्वर्यको (आभर) दीजिये (जरितुः, गिरः, वर्धय) और मुझ उपासककी वाक्शक्तिको बढ़ाइये ॥

भावार्थ—जो लोग परमात्मपरायण होकर अपनी वाक्शक्तिको बढ़ाते हैं परमात्मा उन्हे वाग्मी अर्थात् सुन्दर वक्ता बनाता है ॥५॥

पुनान इन्दवा भर सोम द्विबर्हसं रयिम् ।
वृषन्निन्दो न उक्थ्यम् ॥६॥३०॥

पुनानः । इंदोइति । आ । भर । सोम । द्विऽबर्हसं । रयिं ।
वृषन् । इंदोइति । नः । उक्थ्यं ॥६॥३०॥

पदार्थः—(इन्दो, सोम) हे परमैश्वर्यशालिन् परमात्मन् ! (पुनानः) मत्स्वभावं पवित्रयन् (द्विबर्हसम्, रयिम्, आभर) द्युलोकपृथिवीद्वयस्यैश्वर्यं देहि (इन्दो) हे प्रकाशरूप, (वृषन्) सर्वेष्टदस्त्वम् (नः, उकथ्यम्) मम स्तुतिमयीं वाचं च स्वीकरोतु ।

पदार्थ—(इन्दो, सोम) हे परमैश्वर्यशालि परमात्मन् ! (पुनानः) आप मेरे स्वभावको पवित्र करते हुये (द्विबर्हसम्, रयिम्, आभर) द्युलोक तथा पृथिवीलोक सम्बन्धी दोनों ऐश्वर्योंको दीजिये (इन्दो) हे प्रकाशरूप ! (वृषन्) सब कामनाओंकी वर्षा करनेवाले आप (नः, उक्थ्यम्) मेरी स्तुतिरूप वाणीका स्वीकार करिये ॥

भावार्थ—जो लोग परमात्माके गुणकर्मानुसार अपने स्वभावको बनाते हैं परमात्मा उन्हें ऐहिक और पारलौकिक दोनों प्रकारके सुख प्रदान करता है ॥६॥

इति चत्वारिंशत्तमं सूक्तं त्रिंशो वर्गश्च समाप्तः ॥

४० वां सूक्त और ३० वां वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ षडृचस्यैकचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य—

१–६ मेध्यातिथिर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः— १, ३, ४, ५ गायत्री । २ ककुम्मती गायत्री । ६ निचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अथ परमात्मनो रचनामहत्त्वं वर्ण्यते—

अब परमात्माकी रचनाका महत्त्व वर्णन करते हैं :—

प्र ये गावो न भूर्णयस्त्वेषा अयासो अक्रमुः ।
घ्नन्तः कृष्णामप त्वचम् ॥१॥

प्र । ये । गावः । न । भूर्णयः । त्वेषाः । अयासः । अक्रमुः ।
घ्नन्तः । कृष्णां । अप । त्वचं ॥१॥

पदार्थः—(ये, गावः, न) पृथिव्यादिलोकसदृशा ये लोकाः (भूर्णयः) शीघ्रगामिनः, (त्वेषाः) दीप्तिमन्तः, (अयासः) वेगवन्तः, (कृष्णाम्, त्वचम्) नीरन्ध्रान्धकारम् (अपघ्नन्तः, प्राक्रमुः) नाशयन्तः प्रक्राम्यन्ति ।

पदार्थ—(ये, गावः, न) पृथिव्यादिलोकोंके समान जो लोक (भूर्णयः) शीघ्रगतिशील हैं (त्वेषाः) जो दीप्तिमान और (अयासः) वेगवाले (कृष्णाम्, त्वचम्) महागूढ़ अन्धकारको (अप· घ्नतः, प्राक्रमुः) नष्ट करते हुये प्रक्रमण करते हैं ।

भावार्थ—परमात्मा सब लोकलोकान्तरोंको उत्पन्न करता है उसीकी सत्तासे सब पृथिव्यादिलोक गति कररहे हैं ॥१॥

सुवितस्य मनामहेऽति सेतुं दुराव्यम् ।
साह्वांसो दस्युमव्रतम् ॥२॥

सुवितस्य । मनामहे । अति । सेतुं । दुःऽआव्यं । सह्वांसः ।
दस्युं । अव्रतं ॥२॥

पदार्थः—(सुवितस्य, दुराव्यम्, सेतुम्) एवंविधपूर्वोक्त- लोकानां जनयितारं दुःसहसंसारस्य सेतुरूपं परमात्मानम् (मना-

महे) स्तुमः यः परमात्मा (अव्रतम्, दस्युम्, साह्वांसः) वेद-धर्मविमुखान् दुराचारान् शमयितास्ति ।

पदार्थ—(सुवितस्य, दुराव्यम्, सेतुम्) ऐसे पूर्वोक्त लोकोंको उत्पन्न करनेवाले दुखमे प्राप्तकरनेयोग्य संसारके सेतुरूप ईश्वरकी (मनामहे) स्तुति करते हैं जो परमात्मा (अव्रतम्, दस्युम् साह्वांसः) वेदधर्मको नहीं पालन करनेवाले दुराचारियोंका शमन करनेवाला है ।

भावार्थ—परमात्मा इस चराचर जगत्‌का सेतु है, अर्थात् मर्य्यादा है, उसीकी मर्य्यादामें सूर्य्यचन्द्रादि सबलोक परिभ्रमण करते हैं । मनुष्यों को चाहिये कि उस मर्य्यादापुरुषोत्तमको सदैव अपना लक्ष्य बनावें ॥२॥

शृण्वे वृष्टेरिव स्वनः पवमानस्य शुष्मिणः ।
चरन्ति विद्युतो दिवि ॥३॥

शृण्वे । वृष्टेःऽइव । स्वनः । पवमानस्य । शुष्मिणः । चरन्ति । विऽद्युतः । दिवि ॥३॥

पदार्थः—(वृष्टेः, इव, स्वनः, शृण्वे) यस्यानुशासनं मेघवृष्टिरिव निःशङ्कम् श्रूयते तस्य (पवमानस्य, शुष्मिणः) संसारस्य पवितुः सर्वोत्कृष्टबलस्य च परमात्मनः (विद्युतः, दिवि, चरन्ति) विद्युदादिशक्तयः खे भ्राम्यन्त्यो दृश्यन्ते ।

पदार्थ—(वृष्टेः, इव, स्वनः, शृण्वे) जिसका अनुशासन मेघकी वृष्टिके समान निस्सन्देह सुना जाता है उसी (पवमानस्य, शुष्मिणः) संसारको पवित्र करनेवाले तथा सर्वोपरि बलवाले परमात्माकी (विद्युतः, दिवि, चरन्ति) विद्युदादिशक्तियें आकाशमें भ्रमणकरती हुई दिखायी देती हैं ।

भावार्थ—परमात्माकी विद्युदादि अनेकशक्तियें हैं, इसलिये उसे अनन्तशक्तिमद्ब्रह्म कहा जाता है ॥३॥

आ पवस्व महीमिषं गोमदिन्दो हिरण्यवत्।
अश्वावद्वाजवत्सुतः ॥४॥

आ। पवस्व। महीं। इषं। गोऽमत्। इंदोइति। हिरण्यऽवत्।
अश्वऽवत्। वाजऽवत्। सुतः ॥४॥

पदार्थः—(इन्दो) हे परमात्मन्, (सुतः) स्वयम्भुर्भवान् (गोमत, हिरण्यवत्, अश्वावत्, वाजवत्) गोस्वर्णाश्वबलपराक्रमादियुक्तम् (महीम्, इषम्, आपवस्व) महदैश्वर्यम् मह्यं वितर।

पदार्थ—(इन्दो) हे परमात्मन्! आप (सुतः) स्वयंसिद्ध हैं (गोमत्, हिरण्यवत्, अश्वावत्, वाजवत्) गौ हिरण्य अश्व बल पराक्रमादि से युक्त (महीम्, इषम्, आपवस्व) बड़ेभारी ऐश्वर्यको मेरेलिये उत्पन्न करिये।

भावार्थ—परमात्मा अपनी स्वसत्तासे विराजमान है। अर्थात् परमात्मा सबका अधिष्ठान होकर सबवस्तुओंको प्रकाशित कररहा है और वह स्वयंप्रकाश है ॥४॥

स पवस्व विचर्षण आ मही रोदसी पृण।
उषाः सूर्यो न रश्मिभिः ॥५॥

सः। पवस्व। विऽचर्षणे। आ। महीइति। रोदसीइति।
पृण। उषाः। सूर्यः। न। रश्मिऽभिः ॥५॥

पदार्थः—(विचर्षण) हे सर्वद्रष्टः परमात्मन् ! (उषाः, सूर्यः, न, रश्मिभिः) स्वतेजोभिः उषःकालस्य प्रकाशयिता सूर्य-इव (मही, रोदसी) महत्यौ द्यावापृथिव्यौ (आपृण) स्वप्रभुत्वेन प्रकाश्य पूरय (पवस्व) स्वान्सत्कर्मिण उपासकांश्च पुनीहि ।

पदार्थ—(विचर्षण) हे सर्वद्रष्टा परमात्मन् ! (उषाः, सूर्यः, न, रश्मिभिः) जिसप्रकार सूर्य अपनी किरणोंसे उषःकालको प्रकाशित कर देते हैं उसीप्रकार (मही, रोदसी) इस महान् पृथिवीलोक और द्युलोकको (आपृण) अपने ऐश्वर्यसे पूरित करिये । और (पवस्व) उस ऐश्वर्यसे अपने सत्कर्मी उपासकोंको पवित्र करिये ।

भावार्थ—परमात्मा ही एकमात्र पवित्रताका केन्द्र है, पवित्रता चाहनेवालोंको चाहिये कि पवित्रहोनेकेलिये उसी परमात्माकी उपासना करके अपने आपको पवित्र बनायें ॥५॥

परि णः शर्मयन्त्या धारया सोम विश्वतः ।
सरा रसेव विष्टपम् ॥६॥३१॥

परि । नः । शर्मऽयन्त्या । धारया । सोम । विश्वतः । सर । रसाऽइव । विष्टपं ॥६॥३१॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन्, (रसेव, विष्टपम्) लोकं व्यापकतयाधिष्ठितं ब्रह्मेव (शर्मयन्त्या, धारया) शर्म प्रयच्छन्त्यानन्दधारया (नः, विश्वतः, परिसर) मम हृदयं सर्वतो व्याप्नुहि ।

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! (रसेव, विष्टपम्) जिस प्रकार रससे अर्थात् ब्रह्मसे लोक व्याप्त होरहा है उसीप्रकार (शर्म-

यन्त्या, धारया) सुख देनेवाली आनन्दकी धारा सहित (नः, विश्वतः, परिसर) मेरे हृदय में आप भली प्रकार निवास कीजिये ।

भावार्थ—आनन्दका स्रोत एकमात्र परमात्मा ही है । इसलिये आनन्दाभिलाषीजनोंको चाहिये कि उसी आनन्दाम्बुधिका रस पान करके अपने आपको आनन्दित करें ॥६॥

इति एकचत्वारिंशत्तमं सूक्तमेकत्रिंशो वर्गश्च समाप्तः ॥

यह ४१ वां सूक्त और ३१ वां वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ षडृचस्य द्वाचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य—

१–६ मेध्यातिथिर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—
१, २ निचृद्गायत्री । ३, ४, ६ गायत्री । ५ ककु-
म्मती गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अथ परमात्मनः सूर्यादीनां कर्तृत्वं वर्ण्यते ।

अब परमात्माको सूर्यादिकोंके कर्तारूपसे वर्णन करते हैं ।

जनयन्रोचना दिवो जनयन्नप्सु सूर्यम् ।
वसानो गा अपो हरिः ॥१॥

जनयन् । रोचना । दिवः । जनयन् । अप्ऽसु । सूर्यं ।
वसानः । गाः । अपः । हरिः ॥१॥

पदार्थः—(हरिः) किल्विषविनाशकः सपरमात्मा (दिवः, रोचना, जनयन्) आकाशे प्रकाशितानि ग्रहनक्षत्रादीनि

जनयन् (अप्सु, सूर्यं, जनयन्) अन्तरिक्षे सूर्यं समुत्पादयंश्च (गाः, अपः) भूमिं द्यावं च (वसानः) आच्छादयन् सर्वत्र व्याप्तो भवति ।

पदार्थ—(हरिः) पापोंका हरनेवाला वह परमात्मा (दिवः, रोचना, जनयन्) आकाशमें प्रकाशित होनेवाले ग्रहनक्षत्रादिकोंको उत्पन्न करता हुआ और (अप्सु, सूर्यम्, जनयन्) अन्तरिक्षमें सूर्यको उत्पन्न करता हुआ (गाः, अपः) भूमि तथा द्युलोकको (वसानः) अच्छादित करता हुआ सर्वत्र व्याप्त हो रहा है ।

भावार्थ—उसी परमात्माने सूर्यादि सबलोकोंको उत्पन्न किया । और उसीकी सत्ता से स्थिर होकर सब लोकलोकान्तर अपनी अपनी स्थितिको लाभ कर रहेहैं ॥१॥

एष प्रत्नेन मन्मना देवो देवेभ्यस्परि ।
धारया पवते सुतः ॥२॥

एषः । प्रत्नेन । मन्मना । देवः । देवेभ्यः । परि । धारया । पवते । सुतः ॥२॥

पदार्थः—(प्रत्नेन, मन्मना) प्राक्तनया वेदमयस्तुत्या (देवः) प्रकाशमानः (एषः, सुतः) अयं स्वयंसिद्धः परमात्मा (देवेभ्यः) दिव्यगुणसम्पन्नान् विदुषः (धारया) आनन्द स्रोतसा (परि, पवते) सुष्ठु आह्लादयति ।

पदार्थ—(प्रत्नेन, मन्मना) प्राचीन वेदरूपस्तोत्रसे (देवः) प्रकाशमान (एषः, सुतः) यह स्वयंसिद्ध परमात्मा (देवेभ्यः) दिव्य-

गुणसम्पन्न विद्वानोंको (धारया) आनन्दकी धारासे (परि, पवते) भलीप्रकार आह्लादित करता है।

भावार्थ—परमात्मा अपने वैदिकज्ञानसे सबलोगोंको ज्ञानी विज्ञानी बनाकर आनन्दित करता है ॥२॥

वावृधानाय तूर्वये पर्वन्ते वाजसातये ।
सोमाः सहस्रपाजसः ॥३॥

वावृधानाय । तूर्वये । पर्वते । वाजऽसातये । सोमाः । सहस्रऽपाजसः ॥३॥

पदार्थः—(सहस्रपाजसः सोमाः) अनन्तशक्तिः परमात्मा (वावृधानाय) स्वाभ्युदयाभिलाषिभ्यः (तूर्वये) दक्षेभ्यः कर्मयोगिभ्यः (वाजसातये) ऐश्वर्यं प्राप्तुम् (पवन्ते) हृदये ज्ञानमुत्पाद्य तान् पवित्रयति।

पदार्थ—(सहस्रपाजसः, सोमाः) अनन्तशक्तिसम्पन्न परमात्मा (वावृधानाय) अपनी अभ्युन्नतिकी इच्छा करनेवाले (तूर्वये) दक्षतायुक्त कर्मयोगियोंकी (वाजसातये) ऐश्वर्यप्राप्तिकेलिये (पवन्ते) उनके हृदयोंमें ज्ञान उत्पन्न करके उनको पवित्र करता है।

भावार्थ—इस संसारमें सर्वशक्तिमान् एकमात्र परमात्मा से सबप्रकारके अभ्युदयकी प्रार्थना करनी चाहिये। जो लोग उक्त परमात्मासे अभ्युदयकी प्रार्थना करके उद्योगी बनते हैं वे अवश्यमेव अभ्युदयको प्राप्त होते हैं ॥३॥

दुहानः प्रत्नमित्पयः पवित्रे परि षिच्यते ।
क्रन्दन्देवाँ अजीजनत् ॥ ४ ॥

दुहानः । प्रत्नं । इत् । पयः । पवित्रे । परि । सिच्यते । क्रंदन् । देवान् । अजीजनत् ॥४॥

पदार्थः—(प्रत्नम्, इत) प्राक्तनीषु वेदवाक्षु (पयः, दुहानः) ब्रह्मानन्दं जनयन् सपरमात्मा (पवित्रे, परिषिच्यते) उपासकानां पवित्रहृदयेषु ध्यानगोचरो भवति (क्रन्दन्) शब्दायमानः सः (देवान्, अजीजनत्) अत्यर्थं दीप्यमानान् चन्द्रादीन् समुत्पादयामास ।

पदार्थ—(प्रत्नम्, इत्) प्राचीन वेदवाणियोंमें (पयः, दुहानः) ब्रह्मानन्दको उत्पन्न करता हुआ वह परमात्मा (पवित्रे, परिषिच्यते) उपासकोंके पवित्रहृदयमें ध्यानका विषय होता है (क्रन्दन्) और उसी शब्दायमान परमात्माने (देवान्, अजीजनत्) देदीप्यमान चन्द्रादिकोंको उत्पन्न किया ।

भावार्थ— परमात्माने वेदवाणीरूपी कामधेनुको ब्रह्मानन्दसे परिपूर्ण कर दिया है । जो लोग इस अमृतरसको पान करना चाहते हों, वे उक्तामृतप्रदायिनी ब्रह्मविद्यारूपी वेदवाग्धेनुको वत्सवत् उसके प्रेमपात्र बनकर इस दुग्धामृतको पान करें ॥४॥

अभि विश्वानि वार्याभि देवाँ ऋतावृधः ।
सोमः पुनानो अर्षति ॥ ५ ॥

अभि । विश्वानि । वार्या । अभि । देवान् । ऋतऽवृधः । सोमः । पुनानः । अर्षति ॥५॥

पदार्थः—(सोमः) सर्वोत्पादकः परमात्मा (ऋतावृधः, देवान्) सत्यस्य वर्धयितॄन् सत्कर्मिणः (अभि, पुनानः) सर्वथा

पवित्रयन् (वार्या, विश्वानि) सम्पूर्णान् स्पृहणीयपदार्थान् (अभ्यर्षति) तान् प्रापयति ।

पदार्थ—(सोमः) सर्वोत्पादकः परमात्मा (ऋतावृधः, देवान्) सत्यको बढ़ानेवाले सत्कर्मियोंको (अभिपुनानः) सर्वथा पवित्र करके (वार्या, विश्वानि) सम्पूर्ण वाञ्छनीयपदार्थोंको (अभ्यर्षति) उनके लिये प्राप्त करता है ।

भावार्थ—यद्यपि परमात्मा दयामय और सर्वहितकारी है, तथापि उद्योगीपुरुषोंको पवित्र करता हुआ, अभ्युदयरूप फल देता है । अनुद्योगियों को नहीं ॥५॥

गोमन्नः सोम वीरवदश्वावद्वाजवत्सुतः ।
पवस्व बृहतीरिषः ॥ ६ ॥ ३२ ॥

गोऽमत् । नः । सोम । वीरऽवत् । अश्वऽवत् । वाजऽवत् । सुतः । पवस्व । बृहतीः । इषः ॥६॥३२॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन्, भवान् (गोमत्) गवाद्यैश्वर्येणयुक्तः, (वीरवत्) वीरैः सहितः, (अश्वावत्, वाजवत्) अश्वादिभिः अन्नादिभिश्च युक्तोऽस्ति त्वम् (बृहतीः, इषः) स्वोपासकेभ्यो महत् धनम् (पवस्व) देहि ।

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! आप (गोमत्) गवादि ऐश्वर्योंसे युक्त तथा (वीरवत्) वीरयुक्त (अश्वावत्, वाजवत्) अश्वादियुक्त और अन्नादि ऐश्वर्ययुक्त हैं (बृहतीः, इषः, पवस्व) आप अपने उपासकोंको महान् ऐश्वर्य दीजिये ।

भावार्थ--परमात्मा ही वीरधर्मका दाता है । उसकी कृपासे वीरपुरुष उत्पन्न होकर दुष्टोंका दलन, और श्रेष्ठोंका परिपालन करते हैं ॥६॥३०॥

इति द्वाचत्वारिंशत्तमं सूक्तं, द्वात्रिंशो वर्गश्च समाप्तः ।

यह ४२वां सूक्त और ३२वां वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ षडृचस्य त्रिचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य-

१-६ मेध्यातिथिर्ऋषिः । पवमानः सोमो देवता । छन्दः-
१, २, ४, ५ गायत्री । ३, ६ निचृद्गायत्री ॥
षड्जः स्वरः ॥

अथ परमात्मनो दातृत्वं वर्ण्यते--

अब परमात्माका दातृत्व वर्णन करते हैं —

यो अत्य॑ इव मृज्यते॒ गोभि॒र्मदा॑य हर्य॒तः ।
तं गी॒र्भिर्वा॑सयामसि ॥ १ ॥

यः । अत्यः॑ऽइव । मृज्यते॑ । गोभिः॑ । मदा॑य । हर्य॒तः ।
तं । गीः॒ऽभिः । वा॒स॒या॒म॒सि ॥ १ ॥

पदार्थः—(हर्यतः यः) अतिक्रमनीयो यः परमात्मा (अत्यः, इव) विद्युदिव दुर्ग्राह्यः (गोभिः, मदाय, मृज्यते) यश्च ब्रह्मानन्दप्राप्तय इन्द्रियैः साक्षात्क्रियते (तम्) तं परमात्मानम् (गीर्भिः) स्तुतिभिः (वासयामसि) हृदयाधिष्ठितं कुर्मः ।

पदार्थ—(हर्यतः, यः) सर्वोपरि कमनीय जो परमात्मा (अत्यः, इव) विद्युत्के समान दुर्ग्राह्य है (गोभिः मदाय, मृज्यते) और जो परमात्मा ब्रह्मानन्दप्राप्तिके लिये इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष किया जाता है (तम्) उस परमात्माको (गीर्भिः) अपनी स्तुतियों द्वारा (वासयामसि) हृदयाधिष्ठित करते हैं।

भावार्थ—जो लोग परमात्माकी प्रार्थना, उपासना, और स्तुति करते हैं वे अवश्यमेव परमात्माके स्वरूपको अनुभव करते हैं ॥१॥

तं नो॒ विश्वा॑ अव॒स्युवो॒ गिरः॑ शुम्भन्ति पू॒र्वथा॑ ।
इन्दु॒मिन्द्रा॑य पी॒तये॑ ॥ २ ॥

तं । नः॒ । विश्वाः॑ । अ॒व॒स्युवः॑ । गिरः॑ । शुं॒भं॒ति । पू॒र्वऽथा॑ ।
इंदुं॑ । इंद्रा॑य । पी॒तये॑ ॥२॥

पदार्थः—(तम्, इन्दुम्) तं प्रकाशमानं परमात्मानम् (अवस्युवः, नः, विश्वाः, गिरः) रक्षेच्छवोऽस्माकं सर्वा गिरः (इन्द्राय, पीतये) जीवात्मनः तृप्तये (पूर्वथा) प्राग्वत् (शुम्भन्ति) स्तुतिभिर्विराजयान्ति ।

पदार्थ—(तम्, इन्दुम्) उस प्रकाशमान परमात्माको (अवस्युवः, नः, विश्वाः, गिरः) रक्षा को चाहनेवाली मेरी सम्पूर्ण वाणियें (इन्द्राय, पीतये) जीवात्मा की तृप्तिकेलिये (पूर्वथा) पहलेकी तरह (शुम्भन्ति) स्तुतियोंसे विराजमान करती हैं।

भावार्थ— वही परमात्मा मनुष्यकी पूर्णतृप्तिकेलिये, पर्याप्त होता है। अन्य शब्दस्पर्शादिविषय इसको कदाचित् भी तृप्त नहीं कर सकते ॥ २ ॥

पुनानो याति हर्यतः सोमो गीर्भिः परिष्कृतः ।
विप्रस्य मेध्यातिथेः ॥ ३ ॥

पुनानः । याति । हर्यतः । सोमः । गीःऽभिः । परिऽकृतः ।
विप्रस्य । मेध्यऽअतिथेः ॥३॥

पदार्थः—(गीर्भिः, परिष्कृतः) वेदवाग्भिः स्तुतः, (हर्यतः, सोमः) दर्शनीयः परमात्मा (पुनानः) पवित्रयन् (मेध्यातिथेः, विप्रस्य) ज्ञानयोगिनो विदुषो हृदये (याति) निवसति ।

पदार्थ—(गीर्भिः, परिष्कृतः) वेदवाणियोंसे स्तुति किया गया (हर्यतः, सोमः) दर्शनीय परमात्मा (पुनानः) पवित्र करता हुआ (मेध्यातिथेः, विप्रस्य) ज्ञानयोगी विद्वान्के हृदयमें (याति) निवास करता है ।

भावार्थ—जो लोग ज्ञानयोगी बनकर ज्ञानप्रदीपसे अपने हृदयमन्दिरको प्रदीप्त करते हैं उनके हृदयरूपी मन्दिर में परमात्मा का पूर्णतया अवभास होता है ॥३॥

पवमान विदा रयिमस्मभ्यं सोम सुश्रियम् ।
इन्दो सहस्रवर्चसम् ॥ ४ ॥

पवमान । विदाः । रयिं । अस्मभ्यं । सोम । सुऽश्रियं ।
इंदोइति । सहस्रऽवर्चसं ॥४॥

पदार्थः—(पवमान) हे सर्वस्य पवितः ! (इन्दो) प्रकाशमान, (सोम) सौम्य, परमात्मन्, त्वम् (अस्मभ्यम्)

(सहस्रवर्चसम्) विविधदीप्तिमन्तम्, (सुश्रियम) सुशोभम् (रयिम्) विभवम (विदाः) प्रापय ।

पदार्थ—(पवमान) हे सर्वपावकपरमात्मन् ! (इन्दो) हे प्रकाशमान ! (सोम) हे सौम्यस्वभाववाले ! (अस्मभ्यम्) आप मेरे लिये (सहस्रवर्चसम्) अनेकप्रकारकी दीप्तिवाले (सुश्रियम्) सुन्दरशोभासे युक्त (रयिम्) ऐश्वर्य को (विदाः) प्राप्त कराइये ।

भावार्थ—वही परमात्मा अनन्त प्रकारके अभ्युदयोंका दाता है । अर्थात् ब्रह्मवर्चसादि सब तेज उसीकी सत्तासे उपलब्ध होते हैं ॥४॥

इन्दुरत्यो न वाजसृत्कनिक्रंति पवित्र आ ।
यदक्षारति देवयुः ॥५॥

इंदुः । अत्यः । न । वाजऽसृत् । कनिक्रंति । पवित्रे । आ । यत् । अक्षाः । अति । देवऽयुः ॥५॥

पदार्थः—(इन्दुः) स प्रकाशमानः परमात्मा (अत्यः, न, वाजसृत) विद्युदिव स्वशक्तिभिर्व्याप्नुवन् (कनिक्रंति) शब्दायते (यत्) यः परमात्मा (देवयुः) दिव्यगुणयुक्तान् विदुषः अत्यर्थं स्पृहयन् (पवित्रे, आ) तदीयपवित्रहृदयेषु सुष्ठु (अति, अक्षाः) ब्रह्मानन्दं वर्षति ।

पदार्थ—(इन्दुः) वह प्रकाशमान परमात्मा (अत्यः न वाजसृत्) विद्युत्के सदृश अपनी शक्तियोंसे व्याप्त होता हुआ (कनिक्रंति) शब्दायमान हो रहा है (यत्) जो परमात्मा (देवयुः) दिव्यगुण-सम्पन्न विद्वानोंको चाहता हुआ (पवित्रे, आ) उनके पवित्र हृदयोंमें भलीप्रकार (अति, अक्षाः) ब्रह्मानन्दका अत्यन्त क्षरण करता है ।

भावार्थ—दैवी सम्पत्तिवाले पुरुषोंके हृदयमें परमात्माकी ज्योति सदैव देदीप्यमान रहती है । मलिनान्तःकरण, आसुरी सम्पत्तिवालोंके हृदय उस दैवी दिव्यज्योतिसे सर्वथैव वञ्चित रहते हैं ॥५॥

पवस्व वाजसातये विप्रस्य गृणतो वृधे ।
सोम रास्व सुवीर्यम् ॥ ६ । ३३ । ८ । ६ ॥

पवस्व । वाजऽसातये । विप्रस्य । गृणतः । वृधे । सोम । रास्व । सुऽवीर्यं ॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन्, (वाजसातये) अन्नाद्यैश्वर्यलाभाय (वृधे) अभ्युदयाय च (गृणतः, विप्रस्य, पवस्व) भवन्तं स्तुवतः कर्मयोगिनो विदुषः पवित्रयित्वा योग्यान् विधाय (सुवीर्यं, रास्व) तेभ्यः शत्रुभ्योऽलं पराक्रमं देहि ।

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! (वाजसातये) अन्नादि ऐश्वर्य प्राप्तिके लिये और (वृधे) अभ्युन्नतिके लिये (गृणतः, विप्रस्य, पवस्व) आपको स्तुति करनेवाले जो कर्मयोगी विद्वान् हैं उनको पवित्र करके योग्य बनाइये और (सुवीर्यं, रास्व) उनके शत्रुओंको दमन करनेके लिये पर्याप्त पराक्रमको दीजिये ॥

भावार्थ—कर्मयोगी पुरुष जो अपने उद्योगसे सदैव अभ्युदयाभिलाषी रहते हैं, उनको परमात्मा अनन्तप्रकारके ऐश्वर्यप्रदान करता है ।

इति श्रीमदार्यमुनिनोपनिबद्धे ऋक्संहिताभाष्ये
षष्ठाष्टकेऽष्टमोध्यायः
समाप्तः ।
समाप्तं चेदं षष्ठाष्टकम् ।

अथ चतुश्चत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य-

१-६ अयास्य ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः-१ निचृद्गायत्री । २-६ गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अथ परमात्मनः, मेधाविबुद्धिविषयत्वं वर्ण्यते ।

अब परमात्मा मेधावी लोगोंकी बुद्धिका विषय है, यह वर्णन करतेहैं ।

प्र णं इन्दो महे तनं ऊर्मिं न बिभ्रदर्षसि ।
अभि देवाँ अयास्यः ॥१॥

प्र । नः । इंदो इति । महे । तने । ऊर्मिं । न । बिभ्रत् । अर्षसि । अभि । देवान् । अयास्यः ॥१॥

पदार्थः—(इन्दो) हे परमात्मन्, (ऊर्मिम्, बिभ्रत्) भवान् आनन्दतरङ्गान् धारयन् (महे, तने) महत ऐश्वर्याय (नः, न, प्रार्षसि) अस्मान् द्रुतं प्राप्नोति (अभिदेवान्) कर्मयोगिनः (अयास्यः) विना प्रयत्नं संगच्छति ।

पदार्थ—(इन्दो) हे परमात्मन् ! (ऊर्मिम्, बिभ्रत्) आप आनन्दकी तरङ्गोंको धारण करते हुए (महे, तने) बड़े ऐश्वर्यके लिये (नः, न, प्रार्षसि) हमको शीघ्रही प्राप्त होते हैं और (अभिदेवान्) कर्मयोगियोंको (अयास्यः) विना प्रयत्न प्राप्त होते हैं ।

भावार्थ—जो पुरुष अनुष्ठानशील नहीं अर्थात् उद्योगी बनकर कर्म्मयोगमें तत्पर नहीं है वह पुरुष कदाचित् भी परमात्माको नहीं पासकता इस लिये उद्योगी बनकर कर्म्ममें तत्पर होना प्रत्येक मनुष्यका कर्त्तव्य होना चाहिये ॥

मती जुष्टो धिया हितः सोमो हिन्वे परावति ।
विप्रस्य धारया कविः ॥२॥

मती । जुष्टः । धिया । हितः । सोमः । हिन्वे । पराऽवति ।
विप्रस्य । धारया । कविः ॥२॥

पदार्थः—(कविः, सोमः) वेदरूपकाव्यानां प्रणयिता स परमात्मा (परावति) स्वल्पप्रयत्नेन ध्यानाविषयीभूतः (मती, जुष्टः) स्तुतिभिः प्रसीदन् (विप्रस्य, धिया, हितः) ज्ञानयोगिबुद्ध्या साक्षात्कृतः (धारया, हिन्वे) स्वब्रह्मानन्दस्रोतसा प्रीणयति ।

पदार्थ—(कविः, सोमः) वेदरूप काव्योंका निर्माता वह परमात्मा (परावति) अल्पप्रयत्नसे ध्यानविषयी न होनेके कारण दूरस्थ (मती, जुष्टः) स्तुतियों द्वारा प्रसन्न होता हुआ (विप्रस्य, धिया, हितः) ज्ञान योगियोंकी बुद्धिसे साक्षात्कार किया गया (धारया, हिन्वे) अपने ब्रह्मानन्दकी धारासे तृप्त करता है ।

भावार्थ—वेद यद्यपि परमात्माका ज्ञान है तथापि उस ज्ञानका आविर्भाव परमात्मा करता है । इसी अभिप्रायसे उसे वेदोंका निर्म्माता वा कर्त्ता कथन किया है वास्तवमें वेद नित्य है ॥

अयं देवेषु जागृविः सुत एति पवित्र आ ।
सोमो याति विचर्षणिः ॥३॥

अयं । देवेषु । जागृविः । सुतः । एति । पवित्रे । आ ।
सोमः । याति । विऽचर्षणिः ॥३॥

पदार्थः—(जागृविः, सुतः, अयम्, सोमः) स्वयम्भूर्जा-

गरूकोऽयं परमात्मा (विचर्षणिः) सर्वं पश्यन् (आ, याति) सर्वत्र व्याप्तो भवति (देवेषु) विदुषाम् (पवित्रे) पवित्र-हृदये (एति) आविर्भवति ।

पदार्थ—(जागृविः, सुतः, अयम्, सोमः) स्वयंसिद्ध जागरूक यह परमात्मा (विचर्षणिः) सबको देखता हुआ (आ, याति,) सर्वत्र व्याप्त है । और (देवेषु) विद्वानोंके (पवित्रे) हृदय में (एति) आविर्भूत होता है ।

भावार्थ—अन्य लोगोंकी जागृति नैमित्तिकी होती है अर्थात् स्वतः-सिद्ध नहीं होती । एकमात्र परमात्माकी जागृति ही स्वतःसिद्ध है अर्थात् परमात्मा ही ज्ञानस्वरूप है, अन्य सब जीव पराधीनज्ञानवाले हैं ।

स नः पवस्व वाजयुश्चक्राणश्चारुमध्वरम् ।
बर्हिष्माँ आ विवासति ॥४॥

सः । नः । पवस्व । वाजऽयुः । चक्राणः । चारुं । अध्वरं ।
बर्हिष्मान् । आ । विवासति ॥४॥

पदार्थः—यः परमात्मा (बर्हिष्मान्, आ, विवासति) व्यापकतारूपेण सर्वान् लोकान् आच्छादयति (सः) स (अध्व-रम्, चारुम्, चक्राणः) अस्माकं यज्ञं शोभमानं कुर्वाणः (नः पवस्व) अस्मान् पुनातु ।

पदार्थ—जो परमात्मा (बर्हिष्मान्, आ, विवासति) व्यापकता-रूपसे सबलोकोंको आच्छादन कर रहा है (सः) वह परमात्मा (अध्वरं, चारुं, चक्राणः) हमारे यज्ञको शोभायमान करता हुआ (नः, पवस्व) हमको पवित्र करे ।

भावार्थ—परमात्मा अपनी व्यापकसत्तासे सब लोकलोकान्तरों को एकदेशी बनाकर व्यापकरूपसे स्थिर है उक्त यज्ञमें उसकी प्रकाशक-भावसे प्रकाशित होनेकी प्रार्थना की गई है ।

स नो भगाय वायवे विप्रवीरः सदावृधः ।
सोमो देवेष्वा यमत् ॥५॥

स । नः । भगाय । वायवे । विप्रऽवीरः । सदाऽवृधः । सोमः । देवेषु । आ । यमत् ॥५॥

पदार्थः—(सदावृधः) यः सर्वदैव सर्वोत्कृष्टः (विप्रवीरः) यश्च मेधाविपुरुषान् शक्तिमतः कर्तुं प्रेरयति (सः, सोमः) स परमात्मा (नः, भगाय, वायवे) अस्माकं वृद्धिं गच्छत ऐश्वर्याय (देवेषु, आयमत्) ज्ञानक्रियाकुशलेषु विद्वत्सु शक्तिं वर्धयतु ।

पदार्थ—(सदावृधः) जो सदैव सर्वोपरि रहता है और (विप्रवीरः) 'वीरयति यद्वा विशेषण-इर्ते ईरयति वा इतिवीरः" जो मेधावी पुरुषोंको वीर अर्थात् शक्ति प्रदान करके प्रेरणा करता है (सः, सोमः) वह परमात्मा (नः भगाय, वायवे) हमारे व्याप्तिशील ऐश्वर्यके लिये (देवेषु, आयमत्) ज्ञानक्रियाकुशल विद्वानोंकी शक्तियोंको बढ़ाये ।

भावार्थ—कर्मयोगी तथा ज्ञानयोगी पुरुषोंकी शक्तियोंके बढ़ाने के लिये परमात्मा सदैव उद्यत रहता है ।

स नो अद्य वसुत्तये क्रतुविद्गातुवित्तमः ।
वाजं जेषि श्रवो बृहत् ॥६॥१॥

सः । नः । अद्य । वसुत्तये । क्रतुऽवित् । गातुवित्ऽतमः ।
वाजं । जेषि । श्रवः । बृहत् ॥६॥१॥

पदार्थः—(क्रतुवित) सर्वकर्मज्ञः, (गातुवित्तमः) कवीनामुत्तमः कविः (सः) स भवान् (वसुत्तये) रत्नाद्यैश्वर्य-प्राप्तये (नः) अस्माकम् (बृहत, वाजम, श्रवः) महत् बलं कीर्तिश्च (अद्य) सपदि (जेषि) वर्द्धयतु ।

पदार्थ—(क्रतुवित्) सबके कर्मोंको जाननेवाले और (गातु-वित्तमः) कवियोंमें उत्तम कवि (सः) वह आप (वसुत्तये) रत्नादि ऐश्वर्योंकी प्राप्तिके लिये (नः) हमारे (बृहत्, वाजम्, श्रवः) बड़े बल तथा कीर्त्तिको (अद्य) तत्काल ही (जेषि) बढ़ाइये ।

भावार्थ—कवि शब्दके अर्थ यहां सर्वज्ञके हैं । ज्ञानी विज्ञानी सबमें से एकमात्र परमात्मा ही सर्वोपरि कवि सर्वत्र है अन्य कोई नहीं ।

इति चतुश्चत्वारिंशत्तमं सूक्तं प्रथमोवर्गश्च समाप्तः ।

यह ४४वां सूक्त और १ला वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ षडृचस्य पञ्चचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य—

१-६ अयास्य ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः-१, ३-५ गायत्री । २ विराड्गायत्री । ६ निचृद्गात्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अथ परमात्मा न्यायकारी इति वर्ण्यते ।

अब परमात्मा न्याय करता है यह वर्णन करते हैं ।

स पवस्व मदाय कं नृचक्षा देववीतये ।
इन्दाविन्द्राय पीतये ॥१॥

सः । पवस्व । मदाय । कं । नृऽचक्षाः । देवऽवीतये । इंदो इति । इंद्राय । पीतये ॥१॥

पदार्थः—(इन्दो) प्रकाशमान, परमात्मन्! (सः) स भवान् (नृचक्षाः) सर्वमनुष्यसाक्षी (मदाय) आनन्दाय (देववीतये) यज्ञाय (इन्द्राय, पीतये) जीवात्मनस्तृप्तये च (कम्, पवस्व) सुखं वितरतु ।

पदार्थ—(सः) पूर्वोक्तगुणसम्पन्न (इन्दो) प्रकाशमान ! आप (नृचक्षाः) सब मनुष्योंके द्रष्टा हैं (मदाय) आह्लादके लिये और (देववीतये) यज्ञके लिये तथा (इन्द्राय, पीतये) जीवात्माकी तृप्तिके लिये (कम्, पवस्व) आप सुखप्रदान करिये ।

भावार्थ—जीवात्माके हृदय मन्दिरको एकमात्र परमात्मा ही प्रकाशित करता है अन्य कोई भी जीवको सत्यज्ञानके प्रकाशका दाता नहीं ।

स नो अर्षाभि दूत्यं१ त्वमिन्द्राय तोशसे ।
देवान्त्सखिभ्य आ वरम् ॥२॥

सः । नः । अर्ष । अभि । दूत्यं । त्वं । इंद्राय । तोशसे । देवान् । सखिऽभ्यः । आ । वरं ॥२॥

पदार्थः—हे परमात्मन्, (सः) स त्वम् (नः, दूत्यम्, अभ्यर्ष) अस्मभ्यम् कर्मयोगं प्रदेहि (त्वम्, इन्द्राय, तोशसे)

यतस्त्वं परमैश्वर्यसंप्राप्तये स्तूयसे अथ च (देवान्, सखिभ्यः) सत्कर्मिभ्यो विद्वद्भ्यः (आवरम्) सुष्ठु तन्मनोऽभीष्टं देहि ।

पदार्थ—हे परमात्मन्! (सः) वह आप (नः इत्यम्, अभ्यर्ष) हमारे लिये कर्मयोग प्रदान करिये (त्वम्, इन्द्राय, तोशसे) क्योंकि आप परमैश्वर्यसम्पन्न होनेके लिये स्तुति किये जाते हैं (देवान्, सखिभ्यः) और सत्कर्मी विद्वानों के लिये (आवरम्) भली प्रकार उनके अभीष्ट-को दीजिये ।

भावार्थ—परमात्मा सदाचारियोंको सुख और दुष्कर्मियोंको दुःख देता है । परमात्माके राज्यमें किसीके साथभी अन्याय नहीं होता। इस बातको ध्यानमें रखकर मनुष्यको सदैव सदाचारी बनने का यत्न करना चाहिये ॥२॥

उत त्वामरुणं वयं गोभिरञ्ज्मो मदाय कम् ।
वि नो राये दुरो वृधि ॥३॥

उत । त्वां । अरुणं । वयं । गोभिः । अंज्मः । मदाय । कं । वि । नः । राये । दुरः । वृधि ॥३॥

पदार्थः—हे परमात्मन्, (अरुणम्, उत, त्वाम्) गतिशीलं भवन्तम् (मदाय) आह्लादलाभाय (गोभिः, अञ्ज्मः) इन्द्रियैः प्रत्यक्षीकुर्मः (नः, रायं) भवान् अस्माकं विभवाय (दुरः, विवृधि) कल्मषं विनाशयतु (कम्) सुखं च ददातु ।

पदार्थ—हे परमात्मन्! (अरुणम्, उत, त्वाम्) गतिशील आपको (मदाय) आह्लादप्राप्तिके लिये (गोभिः, अञ्ज्मः) इन्द्रियों द्वारा ज्ञानका विषय करते हैं (नः, राये) आप हमारे ऐश्वर्यके लिये (दुरः, विवृधि) पापोंको नष्ट करिये तथा (कम्) सुखप्रदान करिये ।

भावार्थ—जो लोग अपनी इन्द्रियोंका संयम करते हैं वे ही उस परमात्माके शुद्धस्वरूपको अनुभव कर सकते हैं अन्य नहीं ॥ ३ ॥

अत्यूं पवित्रमक्रमीद्वाजी धुरं न यामनि ।
इन्दुर्देवेषु पत्यते ॥४॥

अति । ऊं इति । पवित्रं । अक्रमीत् । वाजी । धुरं । न । यामनि । इंदुः । देवेषु । पत्यते ।

पदार्थः—(वाजी, इन्दुः) उत्तमबलः स परमात्मा (धुरम्, अत्यक्रमीत्) सम्पूर्णब्रह्माण्डस्य भारं सोढुं समर्थयते (न, यामनि) ध्यानेन द्रुतम् (देवेषु, पवित्रम्, पत्यते) विज्ञानिनां हृदयानि अधितिष्ठति ।

पदार्थ—(वाजी, इन्दुः) उत्तमबलवाला वह परमात्मा (धुरम्, अत्यक्रमीत्) सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके भारके सहनेमें समर्थ है और (यामनि, न) ध्यान करनेसे शीघ्र ही (देवेषु, पवित्रम्, पत्यते) विज्ञानियों के हृदयमें अधिष्ठित होता है ।

भावार्थ—यद्यपि प्रकृति, जीव यह दोनों पदार्थ भी अपनी सत्ता से विद्यमान हैं तथापि अधिकरण अर्थात् सब का आधार बन कर एकमात्र परमात्मा ही स्थिर है । इसलिये उसको (धुर) रूप अर्थात् सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों के आधाररूपसे कथन किया गया है ॥४॥

समी सखायो अस्वरन्वने क्रीळन्तमत्यविम् ।
इन्दुं नावा अनूषत ॥५॥

सं । ईमिति । सखायः । अस्वरन् । वने । क्रीळंतं । अति॑ऽअविं । इंदुं । नावाः । अनूषत ॥५॥

पदार्थः—(अत्यविम्) सर्वस्यातिरक्षकम् (वने, क्रीडन्तम्) अखिलब्रह्माण्डरूपे वने क्रीडन्तम् (इम्, इन्दुम्) अमुं परमात्मानम् (सखायः) तदीयप्रियस्तोतारः (अस्वरन्) शब्दायमाना अभवन् भूत्वा च (नावाः, समनूषत) तद्रचितवेदवाग्भिः उपतस्थिरे ।

पदार्थ—(अत्यविम्) अतिशय सबकी रक्षा करनेवाले (वने, क्रीडन्तम्) अखिलब्रह्माण्डरूप वनमें क्रीडा करते हुए (इम्, इन्दुम्) इस परमात्मा की (सखायः) उसके प्रिय स्तोता लोग (अस्वरन्) शब्दायमान होते हुए (नावाः, समनूषत) उसकी रचित वेदवाणियोंसे स्तुति करते हैं ।

भावार्थ—परमात्माके ज्ञानका साधन मनुष्यके पास एकमात्र उसका स्तोत्र वेद ही है अन्य कोई ग्रन्थ उसके पूर्णज्ञानका साधन नहीं ।

तया॑ पवस्व॒ धार॑या॒ यया॑ पी॒तो वि॒चक्ष॑से ।
इन्दो॑ स्तो॒त्रे सु॒वीर्य॑म् ॥६॥२॥

तया॑ । पव॒स्व॒ । धार॑या । यया॑ । पी॒तः । वि॒ऽचक्ष॑से । इन्दो॒ इति॑ । स्तो॒त्रे । सु॒ऽवीर्यँ॑ ॥६॥२॥

पदार्थः—(इन्दो) हे परमात्मन् (यया, पीतः) यया ज्ञानधारया सेवितो भवान् (विचक्षसे, स्तोत्रे) स्वस्मै विदुषे स्तुतिकर्त्रे (सुवीर्यम) सुन्दरकर्मशालिशक्तिं ददाति (तया, धारया, पवस्व) तयैवानन्दोत्पादिकया ज्ञानधारया अस्मान् पवित्रय ।

पदार्थ—(इन्दो) हे परमात्मन् ! (यया, पीतः) जिस ज्ञान की धारासे सेवन किये गये आप (विचक्षसे, स्तोत्रे) अपने विद्वान्

स्तोताके लिये (सुवीर्यम्) सुन्दर ज्ञानकर्मशालिनी शक्तिको देते हैं (तया, धारया, पवस्व) उसी आनन्दोत्पादक ज्ञानकी धारासे आप मुझे पवित्र करिये ।

भावार्थ—परमात्मा अपनी ज्ञानरूप धारासे सबके अन्तःकरणोंको सिञ्चित करता है । तात्पर्य्य यह है कि उसका ज्ञानरूप प्रकाश प्रत्येक पुरुषके हृदयमें पड़ता है । परन्तु सुपात्र पुरुष ही पात्र बनकर उसका ग्रहण कर सकते हैं अन्य नहीं ॥६॥

इति पञ्चचत्वारिंशत्तमं सूक्तं द्वितीयो वर्गश्च समाप्तः ।

यह ४५ वां सूक्त और २ सरा वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ षड्रृचस्य षट्चत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य–

१–६ अयास्य ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता । छन्दः-१ ककुम्मती गायत्री । २, ४, ६ निचृद्गायत्री । ३, ५ गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अथ पदार्थविद्याविदां विदुषां गुणा उपदिश्यन्ते–

अब पदार्थविद्याके जाननेवाले विद्वानोंके गुणोंका उपदेश करते हैं ।

असृग्रन्देववीतयेऽत्यासः कृत्व्या इव ।
क्षरन्तः पर्वतावृधः ॥१॥

असृग्रन् । देवऽवीतये । अत्यासः । कृत्व्याःऽइव । क्षरंतः । पर्वतऽवृधः ।

पदार्थः—तेन परमात्मना (पर्वतावृधः) ज्ञानेन कर्मणा च वृद्धाः, (क्षरन्तः) उपदेशं ददानाः (कृत्व्याः, इव) कर्मयोगिनः इव (अत्यासः) सर्वस्मिन् कर्मणि व्यापका विद्वांसः (देववीतये) देवानां तर्पकाय यज्ञाय (असृग्रन्) सृज्यन्ते ।

पदार्थ—उस परमात्मा द्वारा (पर्वतावृधः) ज्ञान और कर्मसे बढ़े हुए (क्षरन्तः) उपदेशको देनेवाले (कृत्व्याः, इव) कर्मयोगियोंके समान (अत्यासः) सर्वकर्मोंमें व्यापक विद्वान् (देववीतये) देवोंके तृप्ति कारक यज्ञके लिये (असृग्रन्) पैदा किये जाते हैं ।

भावार्थ—परमात्मा ज्ञानरूपयज्ञके लिये ज्ञानीविज्ञानी पुरुषोंको उत्पन्न करता है। इसलिये सब मनुष्योंको चाहिये कि वे कर्मयोगी तथा ज्ञानयोगी विद्वानोंको बुलाकर अपने यज्ञादि कर्मोंका आरम्भ किया करें।

परिष्कृतास इन्दवो योषेव पित्र्यावती ।
वायुं सोमा असृक्षत ॥२॥

परिऽकृतासः । इंदवः । योषाऽइव । पित्र्यऽवती । वायुं । सोमाः । असृक्षत ॥२॥

पदार्थः—(पित्र्यावती, योषेव) पितृमती कन्यकेव (परिष्कृतासः) ब्रह्मविद्ययालङ्कृताः, (इन्दवः) परमैश्वर्यसम्पन्नाः (सोमाः) ते विद्वांसः (वायुम्) सूक्ष्मभावमापन्नान् पदार्थान् (असृक्षत) साधयन्ति ।

पदार्थ—(पित्र्यावती, योषेव) पितावाली कन्याके समान (परिष्कृतासः) ब्रह्मविद्यासे अलङ्कृत होनेसे (इन्दवः) परम ऐश्वर्य-

सम्पन्न होकर (सोमाः) वे विद्वान् लोग (वायुम्) सूक्ष्मभावको प्राप्त हुए पदार्थोंको (असृक्षत) सिद्ध करते हैं ।

भावार्थ—कर्म्मयोगी पुरुष उक्त पदार्थोंमेंसे अतिसूक्ष्मभाव निकालकर प्रजाओंमें प्रचार करते हैं । इसलिये प्रत्येक पुरुषको चाहिये कि वह कर्म्मयोगी विद्वानोंका सत्कार करें । ताकि विज्ञानकी वृद्धि होकर प्रजाओंमें सुखका सञ्चार हो ॥२॥

एते सोमा॑स॒ इन्द॑वः॒ प्रय॑स्वन्तश्च॒मू सु॒ताः ।
इन्द्रं॑ वर्धन्ति॒ कर्म॑भिः ॥३॥

ए॒ते । सोमा॑सः । इंद॑वः । प्रय॑स्वंतः । च॒मू इति॑ । सु॒ताः ।
इंद्रं॑ । व॒र्ध॒ति॒ । कर्म॑ऽभिः ॥३॥

पदार्थः—(सुताः, एते, इन्दवः, सोमासः) इमे उत्पादिताः परमैश्वर्यशालिनो विद्वांसः (चमू, प्रयस्वन्तः) सेनासु प्रयत्नमानाः (कर्मभिः) विविधाभिः क्रियाभिः (इन्द्रम्) स्वं स्वामिनम् (वर्धयन्ति) जयेन समृद्धं कुर्वन्ति ।.

पदार्थ—(सुताः, एते, इन्दवः, सोमासः) ये उत्पन्न किये गये परमैश्वर्यशाली विद्वान् लोग (चमू, प्रयस्वन्तः) सेनाओंमें प्रयत्न करते हुए (कर्मभिः) अनेक प्रकारकी क्रियाओंसे (इन्द्रम्) अपने स्वामीको (वर्धन्ति) जययुक्त करके समृद्ध बनाते हैं ।

भावार्थ—कर्म्मयोगियोंके प्रभावसे ही सैनिक बलकी वृद्धि होती है । और कर्म्मयोगियोंके प्रभावसे ही सम्राट् सम्पूर्ण देशदेशान्तरोंका शासन करता है इसलिये परमात्माने इन मन्त्रोंमें कर्म्मयोगियोंके सत्कारका वर्णन किया है ॥३॥

आ धावता सुहस्त्यः शुक्रा गृभ्णीत मन्थिना ।
गोभिः श्रीणीत मत्सरम् ॥ ४ ॥

आ । धावत । सुऽहस्त्यः । शुक्रा । गृभ्णीत । मंथिना ।
गोभिः । श्रीणीत । मत्सरं ॥४॥

पदार्थः—(सुहस्त्यः) हे कर्मकुशलहस्ता विद्वांसः! यूयम् (आ, धावत) ज्ञाने सन्नद्धा भवत (मन्थिना) यन्त्रैः (शुक्रा, गृभ्णाति) बलवतः पदार्थान् साधयत (गोभिः) रश्मिमद्भिर्विद्युदादिपदार्थैः (मत्सरम्) आह्लादकारकान् पदार्थान् (श्रीणीत) सुदृढान् कृत्वा प्रकाशयत ।

पदार्थ—(सुहस्त्यः) हे क्रियाकुशलहस्तोंवाले विद्वानों ! आप (आ, धावत) ज्ञानकी ओर लगकर (मन्थिना) यन्त्र द्वारा (शुक्रा, गृभ्णीत) बलवाले पदार्थोंको सिद्ध कीजिये (गोभिः) और रश्मियुक्त विद्युदादिपदार्थों द्वारा (मत्सरम्) आह्लादकारक पदार्थोंको (श्रीणीत) सुदृढ करके प्रकाशित कीजिये ।

भावार्थ—मनुष्योंको चाहिये कि वे कर्मयोगियोंसे प्रार्थना करके अपने देशके क्रिया कौशलकी वृद्धि करें ॥४॥

स पवस्व धनञ्जय प्रयन्ता राधसो महः ।
अस्मभ्यं सोम गातुवित् ॥ ५ ॥

सः । पवस्व । धनंऽजय । प्रऽयंता । राधसः । महः । अस्मभ्यंः ।
सोम । गातुऽवित् ॥५॥

पदार्थः—(धनञ्जय) हे स्वोपासकधनानां वर्धयितः ! (गातुवित्) हे उपदेशकेषूत्तम ! (सः) एवम्भूतानां विदुषामुत्पादको भवान् (महः, राधसः) महत ऐश्वर्यस्य (प्रयन्ता) प्रदाताऽस्ति । (सोम) हे परमात्मन् ! (अस्मभ्यम्) अस्मभ्यम् (पवस्व) सर्वमभीष्टं देहि ।

पदार्थ—(धनञ्जय) हे अपने उपासकोंके धनको बढ़ानेवाले ! (गातुवित्) हे उपदेशकोंमें श्रेष्ठ ! (सः) ऐसे ऐसे विद्वानोंके उत्पादक आप (महः, राधसः) बड़े भारी ऐश्वर्यके (प्रयन्ता) प्रदाता हैं (सोम) हे परमात्मन ! (अस्मभ्यम्) आप हमारे लिये (पवस्व) सब अभीष्टका प्रदान कीजिये ।

भावार्थ—परमात्माकी कृपासे सदुपदेशक उत्पन्न होकर देशमें सदुपदेश देकर देशका कल्याण करते हैं ॥५॥

एतं मृजन्ति मर्ज्यं पवमानं दश क्षिपः ।
इन्द्राय मत्सरं मदम् ॥ ६ ॥ ३ ॥

एतं । मृजंति । मर्ज्यं । पवमानं । दश । क्षिपः । इंद्राय मत्सरं । मदं ॥६॥

पदार्थः—(पवमानम्) सर्वपवित्रकर्तारं (मर्ज्यम् एतम्) संसेवनीयमिमं परमात्मानम् (दश, क्षिपः, मृजन्ति) दश इमानि इन्द्रियाणि ज्ञानविषयं कुर्वन्ति । यः परमात्मा (इन्द्राय, मत्सरम्) जीवात्मने आनन्ददायको मदोऽस्ति ।

पदार्थ—(पवमानम्) सबको पवित्र करने वाले (मर्ज्यम्,

एतम्) संभजनीय उस परमात्माको (दश, क्षिपः, मृजन्ति) दश इन्द्रियें ज्ञानगोचर करती हैं । जो परमात्मा (इन्द्राय, मत्सरम्, मदम्) जीवात्मा के लिये आह्लादकारक मद है ।

भावार्थ—परमात्मा ही जीवात्माके लिये एकमात्र आनन्दका स्रोत है । उसीके आनन्दका लाभ करके जीव आनन्दित होता है ॥६॥३॥

इति षट्चत्वारिंशत्तमं सूक्तं तृतीयो वर्गश्च समाप्तः ।

यह ४६वां सूक्त और तीसरा वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ पञ्चर्चस्य सप्तचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य—

१—५ कविर्भार्गव ऋषिः पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः १, ३, ४ गायत्री । २ निचृद्गायत्री । ५ विराड् गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अथ परमात्मा उद्योग मुपदिशति ।

अब परमात्मा उद्योगका उपदेश करते हैं ।

अया सोमः सुकृत्यया महश्चिदभ्यवर्धत ।
मन्दान उद्वृषायते ॥ १ ॥

अया । सोमः । सुऽकृत्यया । महः । चित् । अभि । अवर्धत । मन्दानः । उत् । वृषऽयते ॥१॥

पदार्थः—(सोमः) परमात्मा (अया, सुकृत्यया) विदुषां शुभकर्मणा (मन्दानः) प्रहर्षयन् (महश्चित, अभ्यवर्धत)

तेभ्यः पण्डितेभ्यः अभ्युदयं प्रापयति । अथच (उदवृषायत) तेभ्योबलं प्रददाति ॥

पदार्थ—(सोमः) परमात्मा (अया, सुकृत्यया) विद्वानोंके शुभकर्म्मोंसे (मन्दानः) हर्षको प्राप्त होता हुआ (महाश्चित्, अभ्यवर्धत) उनको अत्यन्त अभ्युदयको प्राप्त कराता है । और (उदु वृषायते) उन विद्वानोंके लिये बलप्रदान करताहै ।

भावार्थ—हे अभ्युदयाभिलाषीजनों ! यदि आप अभ्युदयको चाहते हैं तो एकमात्र परमात्माकी शरणको प्राप्त होकर उद्योगी बनों ॥१॥

कृतानीदस्य कर्त्वा चेतन्ते दस्युतर्हणा ॥
ऋणा च धृष्णुश्चयते ॥ २ ॥

कृतानि । इत् । अस्य । कर्त्वा । चेतन्ते । दस्युऽतर्हणा ।
ऋणा । च । धृष्णुः । चयते ॥२॥

पदार्थः—विद्वज्जनाः (अस्य, इत) अस्य परमात्मनः (दस्युतर्हणा, कृतानि, कर्त्वा) दुष्टहननरूपाणि कर्माणि (चेतन्ते) संस्मरन्ति । (धृष्णुः) अथच स्वयंशास्ता स जगदाधारः (ऋणा, च, चयते) देवर्षिपितॄणां ऋणोद्धारमुपादिशति ॥

पदार्थ—विद्वान् लोग (अस्य इत्) इस परमात्मा के (दस्युतर्हणा, कृतानि, कर्त्वा) दुष्टनाशन रूप किये हुये कर्म्मोंका (चेतन्ते) स्मरण करतेहैं (धृष्णुः) और स्वयंशासक वह परमात्मा (ऋणा, च, चयते) देवऋणादि तीनों ऋणोंके उद्धारका उपदेश करता है ॥

भावार्थ—देवऋण पितृऋण ऋषिऋण इन तीन ऋणोंको उतार-

ने योग्य वही पुरुष हो सकता है जो परमात्माज्ञापालन करता हुआ उद्योगी बनता है ॥२॥

आत्सोम इन्द्रियो रसो वज्रः सहस्रसा भुवत् ।
उक्थं यदस्य जायते ॥ ३ ॥

आत् । सोमः । इंद्रियः । रसः । वज्रः । सहस्रऽसाः । भुवत् । उक्थं । यत् । अस्य ॥३॥

पदार्थः--(यत, अस्य, उक्थम्, जायते) यदास्य परमात्मनः वेदरूपिणी स्तुति राविर्भवति (आत्) तदा (सोमः) स परमात्मा (इन्द्रियः, रसः) जीवात्मनस्तृप्तिकारकं मोदमय-रसं, तथा (वज्रः) दुष्टेभ्योरक्षणाय शस्त्ररूपः, तथा (सहस्रसाः) अनन्तशक्तिप्रदाता (भुवत्) भवति ।

पदार्थ--(यत्, अस्य, उक्थम्, जायते) जब इस परमात्माकी वेदरूपी स्तुतिका आविर्भाव होताहै (आत्) तब (सोमः) वह परमात्मा (इन्द्रियः, रसः,) जीवात्माका तृप्तिकारक आनन्दमयरस तथा (वज्रः) दुष्टोंसे रक्षा करनेके लिये शस्त्ररूप, और (सहस्रसाः) अनन्तशक्तियोंका प्रदाता (भुवत्) होताहै ।

भावार्थ--जीवात्माके लिये परमात्माने अनन्तशक्तियें प्रदान की है । परन्तु उन सबका आविर्भाव तभी होता है जब जीवात्मा वेदोंद्वारा उन शक्तियोंका ज्ञाता बनता है ॥३॥

स्वयं कविर्विधर्तरि विप्राय रत्नमिच्छति ।
यदी मर्मृज्यते धियः ॥ ४ ॥

स्वयं । कविः । विऽधर्तरि । विप्राय । रत्नं । इच्छति । यदि । मर्मृज्यते । धियः ॥४॥

पदार्थः—(यदि, धियः, मर्मृज्यते) यद्यसौ परमेश्वरो बुद्ध्या ध्यानविषयः क्रियते, तर्हि (स्वयं, कविः) आत्मनैव वेदादिकाव्यानां विरचयिता स परमेश्वरः (विधर्तरि) रत्नादि विरुद्धधारणकर्तृभिः असत्कर्मिभिः (विप्राय, रत्नं, इच्छति) सत्कर्मिणं विद्वांसं रत्नाद्यैश्वर्यं दातु मिच्छति ॥

पदार्थ—(यदि, धियः, मर्मृज्यते) यदि यह परमात्मा बुद्धि-द्वारा ध्यानविषय किया जाताहै तो (स्वयं, कविः) स्वयं वेदादि काव्योंका रचयिता वह परमात्मा (विधर्तरि) रत्नादिकोंको विरुद्ध धारण करनेवाले असत्कर्मियोंसे (विप्राय, रत्नम्, इच्छति) सत्कर्मी विद्वान्को रत्नादि ऐश्वर्य दिलानेकी इच्छा करता है ॥४॥

भावार्थ—परमात्मा किसीको बिना कारण ऊंच नीच नहीं बनाता, किन्तु कर्म्मानुकूल फल देताहै । इस लिये उद्योगी और सदाचारियोंको ही ऐश्वर्य मिलताहै अन्योंको नहीं ।

सिषासतूं रयीणां वाजेष्वर्वतामिव ।
भरेषु जिग्युषामसि ॥ ५ ॥ ४ ॥

सिसासतुः । रयीणाम् । वाजेषु । अर्वताम्ऽइव । भरेषु । जिग्युषां । असि ॥५॥

पदार्थः—(वाजेषु, अर्वताम, इव) हे सर्वरक्षकपरमात्मन् ! भवान् सर्वशक्तिषु व्यापक इव (भरेषु, जिग्युषाम)

रणे जयमिच्छुभ्यः कर्मयोगिभ्यः (रयीणाम्, सिषासतुरसि) संपूर्णोपयोगिपदार्थप्रदाता चाऽस्ति ।

पदार्थ—(वाजेष्ववर्तामिव) हे परमात्मन् ! आप सर्वश-क्तियोंमें व्यापकके समान (भरेषु जिग्युषाम्) संग्राममें जयको चाहने-वाले कर्मयोगियोंको (रयीणां सिषासतुरसि) सम्पूर्ण उपयोगी पदार्थोंके देनेवाले हैं ।

भावार्थ—जो संग्रामोंमें कर्मयोगी बनकर विजयकी इच्छा करते हैं परमात्मा उन्हींको विजयी बनाता है ॥९॥

इति सप्तचत्वारिंशत्तमं सूक्तं चतुर्थो वर्गश्च समाप्तः ।

यह ४७ वां सूक्त और ४था वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ पञ्चर्चस्य अष्टाचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य—

१—५ कविर्भार्गव ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः १, ५ गायत्री । २—४ निचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अथ जगत्कर्तुः गुणकर्मस्वभावा उच्यन्ते ।

अब परमात्माके गुण, कर्म, और स्वभाव कहे जाते हैं—

तं त्वा॑ नृम्णानि॒ बिभ्र॑तं स॒धस्थे॑षु म॒हो दि॒वः ।
चारुं॑ सुकृ॒त्यये॑महे ॥ १ ॥

तं । त्वा॒ । नृ॒म्णानि॑ । बिभ्र॑तं । स॒धऽस्थे॑षु । म॒हः । दि॒वः ।
चारुं॑ । सु॒ऽकृ॒त्यया॑ । ई॒म॒हे॒ ।

पदार्थः—(नृम्णानि बिभ्रतम्) बहुरत्नधारणकर्तारं (दिवो महः) द्युलोकप्रकाशकं (सुकृत्यया चारुम्) मनोहरकृत्यैः शोभायमानं (तं त्वा) पूर्वोक्तं भवन्तं (सधस्थेषु) यज्ञस्थलेषु (ईमहे) स्तुमः ॥

पदार्थ—(नृम्णानि बिभ्रतम्) अनेक रत्नोंको धारण करनेवाले (दिवो महः) द्युलोकके प्रकाशक (सुकृत्यया चारुम्) सुन्दर कर्मोंसे शोभायमान (तं त्वा) पूर्वोक्त आपकी (सधस्थेषु) यज्ञस्थलोंमें (ईमहे) स्तुति करते हैं ।

भावार्थ—सम्पूर्ण ऐश्वर्योंका धारण करनेवाला एकमात्र परमात्मा ही है ॥१॥

संवृक्तधृष्णुमुक्थ्यं महामहिव्रतं मदम् ।
शतं पुरो रुरुक्षणिम् ॥ २ ॥

संवृक्तऽधृष्णुं । उक्थ्यं । महाऽमहिव्रतं । मदं । शतं । पुरः । रुरुक्षणिं ॥

पदार्थः—(संवृक्तधृष्णुम्) धर्मपथमपहायाधर्मपथमाश्रितानां दुराचारिणां नाशकं (उक्थ्यम्) स्तुत्यं (महामहिव्रतम्) महाश्रेष्ठव्रतकर्तारं (मदम्) आनन्दकारकं (शतं पुरो रुरुक्षणिम्) दुष्टपुरनाशकं भवन्तं स्तुमः ॥

पदार्थ—(संवृक्तधृष्णुम्) धर्मपथको छोड़ अधर्मपथको ग्रहण करनेवाले दुराचारियोंको नाश करनेवाले (उक्थ्यम्) स्तुति करने योग्य (महामहिव्रतम्) बड़े श्रेष्ठ व्रतोंको धारण करनेवाले (मदम्) आनन्द

जनक (शतं पुरो रुरुक्षणिम्) दुष्कर्मियोंके अनेक पुरोंको नाश करनेवाले आपकी स्तुति करते हैं।

भावार्थ—परमात्मा सत्यके विरोधीअनन्तदलोंका भी नाश करनेवाला है। इसलिये सत्यव्रती होनेके लिये उसी प्रकाशस्वरूप परमात्माके उपासनाकी आवश्यकता है; क्योंकि, सम्पूर्ण अज्ञानोंको दूर करके एकमात्र अपने सच्चे ज्ञानका प्रकाश करे ॥२॥

अतस्त्वा र॒यिम॒भि राजा॑नं सुक्रतो दि॒वः ।
सु॒प॒र्णो अ॑व्य॒थिर्भ॑रत् ॥ ३ ॥

अतः॑ । त्वा॒ । र॒यिं । अ॒भि । राजा॑नं । सुक्रतो॒ इति॑ सुऽक्रतो । दि॒वः । सु॒ऽप॒र्णः । अ॒व्य॒थिः । भ॒र॒त् ॥३॥

पदार्थः—(सुक्रतो) हे शुभकर्मशोभायमान परमात्मन्! (रयिं अभि राजानम्) भवान् यदखिलधनाद्यैश्वर्यस्वाम्यस्ति, तथा (दिवः सुपर्णः) द्युलोकेऽपि चैतन्यतया प्रतिष्ठितोऽस्ति, अथच (अव्यथिर्भरत्) विनाप्रयासतस्संसारस्य संरक्षकोऽस्ति (अतस्त्वा) अतो वयं भवतः स्तुतिं कुर्मः ॥

पदार्थ—(सुक्रतो) हे शोभनकर्मोंसे विराजमान! (रयिमभि राजानम्) आप जो कि सम्पूर्ण धनाद्यैश्वर्यके स्वामी हैं और (दिवः सुपर्णः) द्युलोकमें भी चेतनरूपसे विराजमान हैं और (अव्यथिर्भरत्) अनायास संसारको पालन करने वाले हैं. (अतः त्वा) इससे आपकी स्तुति करते हैं।

भावार्थ—सम्पूर्ण लोकलोकान्तरोंका अधिपति एकमात्र परमात्मा ही है। इस लिए उसी परमात्माकी उपासना करनी चाहिए जिससे बढ़कर जीवका कोई अन्य स्वामी नहीं हो सकता।

विश्वस्मा इत्स्वर्दृशे साधारणं रजस्तुरम् ।
गोपामृतस्य विर्भरत् ॥ ४ ॥

विश्वस्मै । इत् । स्वः । दृशे । साधारणं । रजःऽतुरं । गोपां । ऋतस्य । विः । भरत् ।

पदार्थः—(विश्वस्मै इत् स्वर्दृशे) हे जगदीश्वर ! भवान् दिव्यगुणसम्पन्नाय सर्वस्मै विदुषे (साधारणम्) समानोऽस्ति । अथ च (रजस्तुरम्) प्रधानतया रजोगुणप्रेरकस्त्वम् । (ऋतस्य गोपाम्) तथा यज्ञरक्षकोऽसि । अथ च (विः) सर्वत्र व्यापकतया (भरत्) जगतः पालनं करोषि ॥

पदार्थ—(विश्वस्मै, इत् स्वर्दृशे) हे परमात्मन् ! आप सब ही दिव्यगुणसम्पन्नविद्वानोंके लिये (साधारणम्) समान हैं. और (रजस्तुरम्) प्रधानतया रजोगुणके प्रेरक हैं (ऋतस्य गोपाम्) तथा यज्ञके रक्षक हैं और (विः) सर्वव्यापक होकर (भरत्) संसारका पालन करते हैं ।

भावार्थ—जिसप्रकार प्रकृतिके तीनों गुणोंमेंसे रजोगुणकी प्रधानता है अर्थात् रजोगुण, सत्वगुण, और तमोगुणको धारण कियेहुए रहता है इसीप्रकारसे परमात्माके सत् , चित् , और आनन्द इन तीनों गुणोंमें से चित् की प्रधानता है । अर्थात् चित् ही सत् और आनन्दका भी प्रकाशक है । इसीप्रकार परमात्माके तेजोमय गुणको प्रधान समझ कर उसके उपलब्ध करनेकी चेष्टा करनी चाहिए ।

अधा हिन्वान इन्द्रियं ज्यायो महित्वमानशे ।
अभिष्टिकृद्विचर्षणिः ॥ ५ ॥ ५ ॥

अर्ध । हिन्वानः । इंद्रियं । ज्यायः । महिऽत्वं । आनशे ।
अभिष्टिऽकृत् विऽचर्षणिः ।

पदार्थः—(अधा) भवान् (इन्द्रियं हिन्वानः) इन्द्रियप्रेरकोऽस्ति (ज्यायः) सर्वोपरि स्थिततया (महित्वमानशे) स्वतेजसा सर्वत्र व्याप्तो भवसि त्वम् । (अभिष्टिकृत्) तथा स्वभक्तेभ्योऽभीष्टदाताऽसि । (विचर्षणिः) अथ च सर्वेषां कर्मणां प्रेक्षकोऽसि ॥

पदार्थ—(अधा) आप (इन्द्रियं, हिन्वानः) इन्द्रियके प्रेरक हैं (ज्यायः) सर्वोपरि विराजमान होनेसे (महित्वमानशे) अपनी महिमासे सर्वत्र व्याप्त होरहे हैं (अभिष्टिकृत्) तथा अपने भक्तोंके लिये कामनाओंके प्रदाता हैं (विचर्षणिः) सबके कर्मोंके द्रष्टा हैं ।

भावार्थ—जीवोंके अन्तर्यामी रूपसे एकमात्र परमात्मा ही है कोई अन्य देव नहीं ।

इति अष्टचत्वारिंशत्तमं सूक्तं पञ्चमो वर्गश्च समाप्तः ।

यह ४८ वां सूक्त और ५ वां वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ पञ्चर्चस्य ऊनपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य—

१—५ कविर्भार्गव ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः १, ४, ५ निचृद्गायत्री । २, ३ गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अथ परमात्मनः शक्तिर्वर्ण्यते—

अब परमात्माकी शक्तिका वर्णन करते हैं—

पवस्व वृष्टिमा सु नोऽपामूर्मिं दिवस्परि ।
अयक्ष्मा बृहतीरिषः ॥ १ ॥

पवस्व । वृष्टिं । आ । सु । नः । अपां । ऊर्मिं । दिवः । परि । अयक्ष्माः । बृहतीः । इषः ।

पदार्थः—हे जगदीश ! (नः) भवानस्मभ्यं (दिवस्परि) द्युलोकात् (अपामूर्मिम्) जलतरङ्गिणीं (सुवृष्टिम्) सुन्दरवृष्टिम् (आपवस्व) सम्यगुत्पादयतु तथा (अयक्ष्माः बृहतीः इषः) रोगरहितान्महान्नाद्यैश्वर्याश्चोत्पादयतु ॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (नः) आप हमारे लिये (दिवस्परि) द्युलोकसे (अपामूर्मिम्) जलकी तरङ्गोंवाली (सुवृष्टिम्) सुन्दरवृष्टिको (आ पवस्व) सम्यक् उत्पन्न करिये । तथा । (अयक्ष्माः बृहतीः, इषः) रोगरहित महान् अन्नादि ऐश्वर्यको उत्पन्न करिये ।

भावार्थ—परमात्माने ही द्युलोकको वर्षणशील और पृथिवीलोकको नानाविध अन्नादि औषधियोंकी उत्पत्तिका स्थान बनाया ॥१॥

तया पवस्व धारया यया गाव इहागमन् ।
जन्यास उप नो गृहम् ॥ २ ॥

तया । पवस्व । धारया । यया । गावः । इह । आऽगमन् । जन्यासः । उप । नः । गृहं ।

पदार्थः—(तया धारया पवस्व) हे जगदीश्वर ! त्वं

तया आनन्दधारया पवित्रय (यया) यया धारया (गावः) दशेन्द्रियाणि (जन्यासः) सर्वजनहितत्वमुत्पाद्य (इह नः गृहम्) स्वसदनरूपशरीराभ्यन्तरे एव (उपागमन्) आयान्तु ।

पदार्थ—(तया धारया पवस्व) हे परमात्मन् ! आप मुझे उस आनन्दकी धारासे पवित्र करिये (यया) जिस धारासे (गावः) सम्पूर्ण इन्द्रियें (जन्यासः) सब जनोंका हितकारक होकर (इह नः गृहम्) अपने गृहरूप शरीरके अभ्यन्तर ही में (उपागमन्) आयें ।

भावार्थ—हे परमात्मन् ! आप हमारी इन्द्रियोंको अन्तर्मुखी बनाकर हमको संयमी बनाइये ॥२॥

घृतं पवस्व धारया यज्ञेषु देववीतमः ।
अस्मभ्यं वृष्टिमा पव ॥ ३

घृतं । पवस्व । धारया । यज्ञेषु । देवऽवीतमः । अस्मभ्यम् । वृष्टिं । आ । पव ॥३॥

पदार्थः—हे करुणानिधान जगद्रक्षकपरमात्मन् ! त्वं (यज्ञेषु) सत्रेषु (देववीतमः) देवानामतितृप्तिकारकोऽसि । (धारया घृतं पवस्व) त्वं स्वज्ञानधारया मद्हृदये स्नेहमुत्पादय । तथा (अस्मभ्यं, वृष्टिमापवस्व) अस्माकं सर्वमभीष्टं वर्षय ।

पदार्थ—हे परमात्मन् ! आप (यज्ञेषु) यज्ञोंमें (देववीतमः) देवताओंके अत्यन्त तृप्ति कारक हैं (धारया घृतं पवस्व) आप अपनी ज्ञानकी धारासे हमारे हृदयमें स्नेहको उत्पन्न करिये) और (अस्मभ्यम्) वृष्टिमापवस्व) हमारे लिये सब कामनाओंकी वर्षा करिये ।

भावार्थ—जो लोग ज्ञानयज्ञ, या कर्ममें तत्पर होकर परमात्माका यजन करते हैं परमात्मा उनको सर्वैश्वर्यसम्पन्न बनाता है ।

स नं ऊर्जे व्य१ व्ययं पवित्रं धाव धारया ।
देवासः शृणवन्हि कम् ॥ ४ ॥

सः । नः । ऊर्जे । वि । अव्ययं । पवित्रं । धाव । धारया ।
देवासः । शृणवन् । हि । कं ॥४॥

पदार्थः—हे परमात्मन् (सः) स त्वम् (ऊर्जे) ज्ञाने तथा क्रियायां च बलप्राप्तये (नोऽव्ययं पवित्रम्) ममान्तःकरणं निश्चलं कृत्वा (धारया धाव) ज्ञानस्य धारया शुद्धं कुरु । अथ च हे जगदीश्वर ! (कम्) भवदुच्चारितां वेदवाणीं (देवासः हि) दिव्यगुणयुक्ता विद्वांस एव (शृणवन्) शृण्वन्तु ।

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (सः) वह आप (ऊर्जे) ज्ञान और क्रियामें बलप्राप्तिके लिये (नः, अव्ययं पवित्रम्) हमारे अन्तःकरणको निश्चल करके (धारया धाव) ज्ञानकी धारासे शुद्ध करें और हे भगवन् । (कम्) आपकी उच्चारित वेदवाणीको (देवासः, हि) दिव्यगुणवाले विद्वान् ही (शृणवन्) सुनें ।

भावार्थ—जो लोग दिव्यशक्तिवाले होते हैं वही परमात्माकी वेदरूपी वाणीका श्रवण मनन आदि करसकते हैं अन्य नहीं ।

पवमानो असिष्यदद्रक्षांस्यपजङ्घनत् ।
प्रत्नवद्रोचयन्रुचः ॥ ५ ॥ ६ ॥

पवमानः । असिस्यदत् । रक्षांसि । अपऽजंघनत् । प्रत्नऽवत् । रोचयन् । रुचः ।

पदार्थः—(पवमानः) सर्वपवित्रकर्ता परमात्मा (रक्षांसि, अपजंघनत्) असत्कर्मिणां नाशं कुर्वन्, तथा (प्रत्नवत् रुचः रोचयन्) पूर्ववदेव संपूर्णब्रह्माण्डे स्वतेजो विस्तारयन् (असिस्यदत्) सर्वत्र व्याप्नोति ।

पदार्थ—(पवमानः) सबको पवित्र करनेवाला परमात्मा (रक्षांसि, अपजंघनत्) असत्कर्मियोंको नष्ट करता हुआ और (प्रत्नवत् रुचः रोचयन्) पहलेहीके समान संपूर्ण ब्रह्माण्डमें अपने प्रकाशको फैलाता हुआ (असिस्यदत्) सर्वत्र व्याप्त होरहा है ।

भावार्थ—परमात्मा चराचरके हृदयमें स्थिर है इस लिए उसकी स्थितिको अत्यन्त सन्निहित मानकर सदैव परमात्मपरायण होना चाहिए ।

इति ऊनपञ्चाशत्तमं सूक्तं षष्ठो वर्गश्च समाप्तः ॥

यह ४९ वां सूक्त और ६ वां वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ पञ्चर्चस्य पञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य—

१—५ उचथ्य ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः १, २, ४, ५ गायत्री । ३ निचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अथ परमात्मनः शक्तेर्नैरन्तर्यं वर्ण्यते—

अब परमात्माकी शक्तियोंकी निरन्तरताका वर्णन करतेहैं ।

उत्ते शुष्मास ईरते सिन्धोरूर्मेरिव स्वनः ।
वाणस्य चोदया पविम् ॥ १ ॥

उत् । ते । शुष्मासः । ईरते । सिंधोः । ऊर्मेःऽइव । स्वनः ।
वाणस्य । चोदय । पविं ।

पदार्थः—हे दीनपरिपालक ! (सिन्धोः ऊर्मेः स्वनः इव) यथा समुद्रस्य वीचीनामनवरताः शब्दा भवन्ति तथैव (ते शुष्मासः ईरते) भवच्छक्तिवेगा निरन्तरं व्याप्ता भवन्ति । भवान् (वाणस्य पविं चोदय) वाण्याः शक्तिं प्रेरयतु । "वाण-इति वाङ्नामसु पठितं निघण्टौ" ॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (सिन्धोः, ऊर्मेः, स्वनः, इव) जिस प्रकार समुद्रकी तरङ्गों के शब्द अनवरत होते रहते हैं उसीप्रकार (ते शुष्मास ईरते) आपकी शक्तियोंके वेग निरन्तर व्याप्त होते रहते हैं । आप (वाणस्य पविं चोदय) वाणीकी शक्तीको प्रेरित करें ।

भावार्थ—परमात्माकी शक्तियें अनन्त हैं और नित्य हैं । यद्यपि प्रकृति जीवात्माकी शक्तियें अनादि अनन्त होने से नित्य हैं तथापि, वे अल्पाश्रित होनेसे अल्प और परिणामी नित्य हैं । कूटस्थ नित्य नहीं ।

तात्पर्य यह है कि जीव और प्रकृतिके भाव उत्पत्तिविनाशशाली-हैं और ईश्वरके भाव सदा एकरस हैं ।

प्रसवे त उदीरते तिस्रो वाचो मखस्युवः ।
यदव्य एषि सानवि ॥ २ ॥

प्रऽसवे । ते । उत् । ईरते । तिस्रः । वाचः । मखस्युवः ।
यत् । अव्ये । एषि । सानवि ।

पदार्थः—(यत्) यदा भवान् (मखस्युवः अव्ये सानवि, एषि) यज्ञकारिणां गोपनीयोऽत्ययज्ञस्थलेषु प्राप्तो भवति तदा ते ऋत्विजः (ते प्रसवे) भवदाविर्भावेन (तिस्रः वाचः, उदीरते) ज्ञानकर्मोपासनाविषयिणीनां तिसृणां वाचामुच्चारणं कुर्वन्ति॥

पदार्थ—(यत्) जब आप (मखस्युवः, अव्ये सानवि, एषि) यज्ञकर्ताओंका रक्षणीय उच्च यज्ञस्थलोंमें प्राप्त होते हैं, तो वह ऋत्विग्लोग (ते प्रसवे) आपके प्रादुर्भूत होनेसे (तिस्रः वाचः, उदीरते) ज्ञान, कर्म, और उपासनाविषयक तीनों वाणियोंका उच्चारण करते हैं।

भावार्थ—परमात्माका आविर्भाव और तिरोभाव वास्तवमें नहीं होता; क्योंकि वह कूटस्थ नित्य अर्थात् एकरस सदा अविनाशी है। उसका आविर्भाव तिरोभाव उसके कीर्तनप्रयुक्त कहा जासकता है। अर्थात् जहां उसका कीर्तन होता है उसका नाम, आविर्भाव है, और जहां उसका अकीर्तन है वहां तिरोभाव है। उक्त आविर्भाव तिरोभाव मनुष्यके ज्ञानके अभिप्रायसे है। अर्थात् ज्ञानियोंके हृदयमें उसका आविर्भाव है और अज्ञानियोंके हृदयमें तिरोभाव है।

अव्यो वारे परि प्रियं हरिं हिन्वंत्यद्रिभिः।
पवमानं मधुश्चुतम्॥ ३॥

अव्यः। वारे। परि। प्रियं। हरिं। हिन्वंति। अद्रिऽभिः। पवमानं। मधुऽश्चुतं।

पदार्थः—हे जगदीश्वर! भवान् (मधुश्चुतम्) परमानन्दस्य कारकोऽस्ति। तथा (पवमानम्) सर्वपवित्रकर्ताऽस्ति। अथ च (हरिम्) सर्वदुःखहर्ताऽस्ति। अतः (परि प्रियम्) परमप्रियं भवन्तं (अव्यः)

भवतो रक्षोत्सुका उपासका (वारे) भवद्भक्तियुक्ताः स्वहृदयेषु (अद्रिभिः) इन्द्रियवृत्या (हिन्वन्ति) प्रेरयन्ति ॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! आप (मधुश्चुतम्) परम आनन्दके क्षरण करनेवाले हैं और (पवमानम्) सबके पवित्रकारक हैं और (हरिम्) सबके दुःखोंके हरने वाले हैं इससे (परि,प्रियम्) परमप्रिय आपकी (अव्यः) आपसे रक्षाको चाहने वाले आपके उपासक (वारे) आपकी भक्तिसे युक्त अपने हृदयोंमें (अद्रिभिः) इन्द्रियवृत्तियों द्वारा (हिन्वन्ति) प्रेरणा करते हैं।

भावार्थ—कर्मयोगी या ज्ञानयोगी विद्वान् दोनों अपने शुद्धान्तःकरणसे परमात्माका साक्षात्कार करते हैं।

आ पवस्व मदिन्तम पवित्रं धारया कवे ।
अर्कस्य योनिमासदम् ॥ ४ ॥

आ। पवस्व। मदिन्ऽतम। पवित्रं। धारया। कवे। अर्कस्य। योनिं। आऽसदं।

पदार्थः—(अर्कस्य योनिमासदम्) तेजस्विनां योनिं प्राप्तुम् तेजस्वी भवनाये तियात्वत् (मदन्तिम) हे आनन्दवर्धक (कवे) हे वेदरूपकाव्यरचयितः ! (धारया) स्वज्ञानधारया (पवित्रं आपवस्व) ममान्तःकरणं पवित्रय ॥

पदार्थ—(अर्कस्य योनिमासदम्) तेजकी योनिको प्राप्त होनेके लिये अर्थात् तेजस्वी बननेके लिये (मदिन्तम) हे आनन्दके बढ़ाने वाले ! (कवे) हे वेदरूप काव्यके रचने वाले ! (धारया) अपनी ज्ञानकी धारा से (पवित्रं, आ पवस्व) मेरे अन्तःकरणको पवित्र करिये।

भावार्थ—परमात्माही अपने ज्ञानप्रदीपसे उपासकोंके हृदयरूपी-मान्दिरको प्रकाशित करता है।

स पवस्व मदिन्तम गोभिरञ्जानो अक्तुभिः ।
इन्दविन्द्राय पीतये ॥ ५ ॥ ७ ॥

सः । पवस्व । मदिन्ऽतम । गोभिः । अञ्जानः । अक्तुऽभिः ।
इंदोइति । इंद्राय । पीतये ।

पदार्थः—(इन्दो) हे जगदीश्वर ! (मदिन्तम) उत्कृष्टानन्दजनकः (अक्तुभि गोभिरञ्जानः) साधनभूतेन्द्रियैर्ध्यानविषयीभूतः (सः) सकलभुवनप्रसिद्धस्त्वम् (इन्द्राय पीतये) जीवात्मनः परमतृप्तये (पवस्व) ब्रह्मानन्दक्षरणं कुरु ॥

पदार्थ—(इन्दो) हे परमात्मन् ! (मदिन्तम) सर्वोपरि आनन्दके जनयिता । (अक्तुभि गोभिरञ्जानः) साधनभूत इन्द्रियों द्वारा ध्यानविषय किये गये (सः) सकलभुवनप्रसिद्ध वह आप (इन्द्राय पीतये) जीवात्माकी परमतृप्तिके लिये (पवस्व) ब्रह्मानन्दका क्षरण कीजिये ।

भावार्थ—जीवकी सच्ची तृप्ति परमानन्दसे ही होती है, अन्यथा नहीं।

इति पञ्चाशत्तमं सूक्तं सप्तमो वर्गश्च समाप्तः ।

यह ५०वां सूक्त और ७वां वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ पञ्चर्चस्यैकपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य—

१ ५ उचथ्यः ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः
१, २ गायत्री । ३ ५ निचृद्गायत्री ॥
षड्जः स्वरः ॥

अथ सौम्यस्वभावोत्पादनं वर्ण्यते ।

अब सौम्यस्वभावके उत्पादनका वर्णन करते हैं ।

अध्वर्यो अद्रिभिः सुतं सोमं पवित्र आ सृज ।
पुनीहीन्द्राय पातवे ॥ १ ॥

अध्वर्यो इति । अद्रिऽभिः । सुतं । सोमं । पवित्रे । आ । सृज । पुनीहि । इंद्राय । पातवे ।

पदार्थः—(अध्वर्यो) हे अध्वर्युगणाः ! (सोमम्) परमात्मानम् (अद्रिभिः सुतं) स्वेन्द्रियद्वारेण ज्ञानविषयं (सृज) कुर्वन्तु (इन्द्राय पातवे) जीवात्मतर्पणाय (पवित्रे पुनीहि) स्वकीयमन्तःकरणं पवित्रं कुर्वन्तु ॥

पदार्थ—(अध्वर्यो) हे अध्वर्युलोगो ! (सोमम्) परमात्माको (अद्रिभिः सुतम्) अपनी इन्द्रियोंद्वारा ज्ञानका विषय (सृज) करिये (इन्द्राय पातवे) और जीवत्माकी तृप्तिके लिये (पवित्रे पुनीहि) अपने अन्तःकरणको पवित्र करिये ।

भावार्थ—परमात्माकी प्राप्तिके लिए अन्तःकरणका पवित्र होना अत्यावश्यक है, इसलिए प्रत्येक जिज्ञासुको चाहिये कि पहले अपने अन्तः-करणको पवित्र करे ।

दिवः पीयूषमुत्तमं सोममिन्द्राय वज्रिणे ।
सुनोता मधुमत्तमम् ॥ २ ॥

दिवः । पीयूषं । उत्ऽतमं । सोमं । इंद्राय । वज्रिणे । सुनोत । मधुमत्ऽतमं ।

पदार्थः—हे अध्वर्यवः । यो हि (मधुमत्तमम्) सर्वरसपूत-मोऽस्ति (दिवः, पीयूषम) अथ च द्युलोकस्य यदमृतमस्ति, एवं भूतम् (उत्तमं, सोमम) उत्तमं परमात्मानम् (इन्द्राय पातवे) स्वस्य जीवात्मनस्तृप्तये (सुनोत) ध्यानविषयं कुरुत ॥

पदार्थ—हे अध्वर्युलोगो! जोकि (मधुमत्तमम्) सबरसोंमें उत्तम है (दिवः पीयूषम्) और द्युलोकका अमृतहै ऐसे (उत्तमं सोमम्) उत्तम परमात्माको (इन्द्राय पातवे) अपने जीवात्माकी तृप्तिके लिये (सुनोत) ध्यानका विषय बनाओ।

भावार्थ—जो अपनी तृप्तिके लिए एकमात्र परमात्माको ध्यानका विषय बनाते हैं, वे ही उस ब्रह्मामृतका पान करते हैं अन्य नहीं।

तव त्य इन्दो अन्धसो देवा मधोर्व्यश्नते ।
पवमानस्य मरुतः ॥३॥

तव । त्ये । इंदो इति । अंधसः । देवाः । मधोः । वि । अश्नते ।
पवमानस्य । मरुतः ।

पदार्थः—(इन्दो) हे जगद्रक्षक परमात्मन्! (पवमानस्य) सर्वपवित्रकारकस्य (तव) भवतः (मधोः) मधुरस्य (अन्धसः) रसस्य (देवाः त्ये मरुतः) दिव्यगुणसम्पन्ना विद्वांसः (व्यश्नते) पानं कुर्वन्ति ॥

पदार्थ—(इन्दो) हे परमात्मन्! (पवमानस्य) सबको पवित्र करने वाले) तव) आपके (मधोः) मधुर (अन्धसः) रसका (देवाः त्ये मरुतः) दिव्यगुणसम्पन्न विद्वान् (व्यश्नते) पान करते हैं।

भावार्थ—ब्रह्मामृतरसास्वादके लिए दिव्यशक्तियोंको उपलब्ध करना अत्यावश्यक है; इसलिए उक्त मन्त्रमें परमात्माने दिव्यशक्तियोंका उपदेश किया है ।

त्वं हि सोम वर्धयन्त्सुतो मदाय भूर्णये ।
वृषन्त्स्तोतारमूतये ॥४॥

त्वं । हि । सोम । वर्धयन् । सुतः । मदाय । भूर्णये ।
वृषन् । स्तोतारं । ऊतये ।

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (त्वं हि) त्वं यदा (सुतः) विद्वद्भिः साक्षात्कृतो भवसि तदा (मदाय) आनन्दाय (भूर्णये) दाक्ष्याय (ऊतये) रक्षायै च (स्तोतारम्) उपासकम् (वर्धयन्) समृद्धयन् (वृषन्) सर्वान् कामान् पूरयासि ।

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! (त्वं हि) आप जब (सुतः) विद्वानों द्वारा साक्षात्कार किये जाते हैं तो (मदाय) आनन्दके लिये और (भूर्णये) दक्षताके लिये तथा (ऊतये) रक्षाके लिये (स्तोतारम्) उपासकको (वर्धयन्) समृद्ध बनाते हुये (वृषन्) सब कामनाओंको पूर्ण करते हैं ।

भावार्थ—सर्वोपरि नीति और व्यवहारकुशलताकी नीति एकमात्र परमात्मा द्वारा उपदिष्ट वेदोंसे ही मिल सकती है अन्यत्र नहीं ।

अभ्यर्ष विचक्षण पवित्रं धारया सुतः ।
अभि वाजमुत श्रवः ॥५॥८॥

अभि । अर्ष । विऽचक्षण । पवित्रं । धारया । सुतः । अभि ।
वाजं । उत । श्रवः ।

पदार्थः—(विचक्षण) हे सम्पूर्णवित्परमात्मन्! (सुतः) सम्यग्ध्यातो भवान् (धारया, पवित्रं अभ्यर्ष) आनन्द धारया पूतीभूतेऽन्तःकरणे निवसतु । अथ च (वाजम्) अन्नाद्यैश्वर्यम् एवं (उत, श्रवः) सुयशांसि च (अभि) प्रददातु ।

पदार्थ—(विचक्षण) हे सर्वज्ञ परमात्मन्! (सुतः) ध्यानविषय किये गये आप (धारया पवित्रमभ्यर्ष) आनन्दकी धारासे पवित्र हुये अन्तःकरणमें निवास करिये और, (वाजम्) अन्नादिऐश्वर्य तथा (उत श्रवः) सुन्दरकीर्तिका (अभि) प्रदान करिये ॥

भावार्थ—इस मंत्रमें परमात्मासे ऐश्वर्यप्राप्तिकी प्रार्थना की गई है।

इति एकपञ्चाशत्तमं सूक्तमष्टमो वर्गश्च समाप्तः ।

यह ५१ वां सूक्त और ८ वां वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ पञ्चर्चस्य द्वापञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य—

१—५ उचथ्यः ऋषिः । पवमानः सोमो देवता । छन्दः—
१ भुरिग्गायत्री । २ गायत्री । ३, ५ निचृद्गायत्री ।
४ विराड्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अथ सदुपदेशं वर्णयति ।

अब सदुपदेशका वर्णन करते हैं ।

परि द्युक्षः सनद्रयिर्भरद्वाजं नो अन्धसा ।
सुवानो अर्ष पवित्र आ ॥१॥

परि । द्युक्षः । सनत्ऽरयिः । भरत् । वाजं । नः । अंधसा ।
सुवानः । अर्ष । पवित्रे । आ ।

पदार्थः—हे जगदीश । भवान् (परि द्युक्षः) सर्वोपरि विराजते । स त्वं (नः) अस्मभ्यं (सनद्रयिः) धनानि ददत् (अन्धसा) सहान्नाद्यैश्वर्यैः (वाजम्) बलं (भरत्) परिपूरय । तथा (सुवानः) स्तवनानन्तरं भवान् (पवित्रे आ अर्ष) शुद्धान्तःकरणे निवासं करोतु ।

पदार्थ—हे परमात्मन् ! आप (परि द्युक्षः) सर्वोपरि प्रकाशमान है । आप (नः) हमारे लिये (सनद्रयिः) धनादिकोंको देते हुये (अन्धसा) अन्नादि ऐश्वर्यके सहित (वाजं भरत्) बलको परिपूर्ण करिये और (सुवानः) स्तुति किये जाने पर, आप (पवित्रे आ अर्ष) पवित्र अन्तःकरणमें निवास करिये ।

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते हैं कि, हे जिज्ञासु जनो ! तुम लोग जब अपने अन्तःकरणको पवित्र बनाकर सम्पूर्ण ऐश्वर्योंको उपलब्ध करनेकी जिज्ञासा अपने हृदयमें उत्पन्न करोगे तब तुम ऐश्वर्यको उपलब्ध करोगे ।

तव प्रत्नेभिरध्वभिरव्यो वारे परि प्रियः ।
सहस्रधारो यात्तना ॥२॥

तव । प्रत्नेभिः । अध्वऽभिः । अव्यः । वारे । परि । प्रियः ।
सहस्रऽधारः । यात् । तना ।

पदार्थः—(जगदाधार परमात्मन् ! (तव, प्रियः, अव्यः) भवत्प्रियो रक्षणीय उपासकः (प्रत्नेभिरध्वभिः) भवत प्राचीनवे-

दाविहितमार्गेण (सहस्रधारः) त्वदनेकामोदधाराभिश्च युतत्वात् (तना) समृद्धीभूय (वारे परियात्) भवतः, प्रार्थनीयं पदं प्राप्नोतु ॥

पदार्थ—(तव प्रियः, अव्यः) हे भगवन्! आपका प्रिय रक्षणीय उपासक (प्रत्नेभिरध्वभिः) आपके प्राचीन वेदविहितमार्गोंद्वारा (सहस्रधारः) आपकी अनेकप्रकारकी धाराओंसे युक्त होनेसे (तना) समृद्ध होकर (वारे परियात्) आपके प्रार्थनीय पदको प्राप्त हो।

भावार्थ—इस मंत्रमें परमात्मा वेदमार्गके आश्रयणका उपदेश करते हैं।

चरुर्न यस्तमीङ्खयेन्दो न दानमीङ्खय ।
वधैर्वधस्नवीङ्खय ॥ ३ ॥

चरुः । न । यः । तं । ईङ्खय । इंदो इति । न । दानं । ईङ्खय । वधैः । वधस्नो इति वधऽस्नो । ईङ्खय ।

पदार्थः—(इन्दो) हे परमेश्वर! (यः चरुः) यस्त्वं चराचरग्रहणकर्तासि (तम्, न, ईङ्खय) स त्वम् आशु स्वरूपतां नय। अथच (दानम्, न, ईङ्खय,) मह्यं दातव्यमपि वस्तु झटिति प्रापय। (वधैः, वधस्नो, ईङ्खय) हे प्रबलशक्त्याराति नाशकर्त्तः! परमात्मन्! माम् शुभकर्माणि नियोजय॥

पदार्थ—(इंदो) हे परमात्मन्! (यः, चरुः) जो आप चराचरको ग्रहण करने वाले हैं (तम्, न, ईङ्खय) वह आप अपने रूपको शीघ्र प्राप्त कराइये। और (दानम्, न, ईङ्खय) मुझको दातव्य वस्तुको शीघ्र प्राप्त कराइये। (वधैः, वधस्नो, ईङ्खय) हे अपनी प्रबलशक्तियोंसे शत्रुओंके नाश करने वाले आप मुझको सत्कर्मकी ओर प्रेरित कीजिये।

भावार्थ—इस मन्त्रमें परमात्माने सत्कर्म्मी बनानेका उपदेश दिया है।

नि शुष्ममिन्द्वेषां पुरुहूत जनानाम् ।
यो अस्माँ आदिदेशति ॥ ४ ॥

नि । शुष्मं । इंदोइति । एषां । पुरुऽहूत । जनानां । यः । अस्मान् । आऽदिदेशति ।

पदार्थः—(इन्दो) हे सर्वनियन्तः परमेश्वर ! (पुरुहूत) हे बुधगणस्तुत ! (एषां, जनानां, बलं, नि) विदुषा मेतेषा मोजो वर्धय । (यः, अस्मान्, आदिदेशति) यो भवान् अस्माकमनुशास्तास्ति ॥

पदार्थ—(इन्दो) हे परमात्मन् ! (पुरुहूत) हे अखिल विद्वानोंसे स्तुति किये गये ! (एषां, जनानाम्, बलम्, नि) इन विद्वानोंके बलोंको बढ़ाइये (यः, अस्मान, आदिदेशति) जो कि आप हम लोगोंका अनुशासन करते हैं।

भावार्थ—इस मन्त्रमें परमात्माने इस बातका उपदेश दिया है कि जो पुरुष विद्या, तथा बलको उपलब्ध करके सत्कर्म्मी तथा विनीत बनते हैं उन्हींसे संसार शिक्षाका लाभ करता है।

शतं नं इन्द ऊतिभिः सहस्रं वा शुचीनाम् ।
पवस्व मंहयद्रयिः ॥ ५ ॥ ९ ॥

शतं । नः । इन्दोइति । ऊतिऽभिः । सहस्रं । वा । शुचीनां । पवस्व । मंहयत्ऽरयिः ।

पदार्थः—(इन्दो) हे विश्वकर्तः । (मंहयद्रयिः) त्वम् महदैश्वर्यादीन् वर्धयन् (ऊतिभिः) रक्षार्थं अत्र, "चतुर्थ्यर्थे तृतीया भवति" (शुचीनां शतम्, न, सहस्रं, वा) पूताः शतसहस्रशक्तीः (पवस्व) उत्पादय ।

पदार्थ—(इन्दो) हे परमात्मन् ! (मंहयद्रयिः) आप हमारे धनादि ऐश्वर्यको बढ़ाते हुये (ऊतिभिः) रक्षाके लिये (शुचीनां शतम्, न, सहस्रं, वा) पवित्र सैकड़ों तथा सहस्रों शक्तियोंको (पवस्व) उत्पन्न करिये ।

भावार्थ—परमात्माने मनुष्यके ऐश्वर्यके लिए सैकड़ों और सहस्रों शक्तियोंको उत्पन्न किया है—मनुष्यको चाहिए कि कर्मयोगी बन कर उन शक्तियोंका लाभ करे ।

इति द्विपञ्चाशत्तमं सूक्तं नवमो वर्गश्च समाप्तः ।

यह ५२ वां सूक्त और ९ वां वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ चतुर्ऋचस्य त्रिपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य—

१ ४ अवत्सार ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः १, ३ निचृद्गायत्री । २, ४ गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

उत्ते शुष्मासो अस्थू रक्षो भिन्दन्तो अद्रिवः ।
नुदस्व याः परिस्पृधः ॥ १ ॥

उत् । ते । शुष्मासः । अस्थुः । रक्षः । भिंदंतः । अद्रिऽवः ।
नुदस्व । याः । परिऽस्पृधः ।

पदार्थः—(अद्रिवः) हे शस्त्रधारिन् ! (ते शुष्मासः) भवतः शत्रुशोषिकाः शक्तयः (रक्षः भिन्दन्तः) रक्षांसि निघ्नन् (उदस्थुः) सदोद्यता भवन्ति । (नुदस्व याः परिस्पृधः) ये भवद्द्वेषिण स्तेषां शक्तीः स्तम्भय ॥

पदार्थ—(अद्रिवः) हे शस्त्रोंको धारण करने वाले ! (ते शुष्मासः) आपकी शत्रुशोषक शक्तियें (रक्षः भिन्दन्तः) राक्षसोंका नाश करती हुयीं (उदस्थुः) सदा उद्यत रहती हैं (नुदस्व याः परिस्पृधः) जो आपके द्वेषी है उनकी शक्तियोंको वेगरहित करिये ।

भावार्थ—परमात्मामें रागद्वेषादि भावोंका गन्ध भी नहीं है । जो लोग परमात्मोपदिष्ट मार्गको छोड़कर यथेष्टाचारमें रत हैं उनके यथा योग्य फल देनेके कारण परमात्मा उनका द्वेष्टा कथन किया गया हैं ।

अया निंजघ्निरोजंसा रथसङ्गे धर्ने हिते ।
स्तवा अबिभ्युषा हृदा ॥ २ ॥

अया । निऽजघ्निः । ओजंसा । रथऽसंगे । धर्ने । हिते । स्तवै । अबिभ्युषा । हृदा ।

पदार्थः—हे परमात्मन् । भवान् (अया ओजसा निजिघ्नः) अनेन स्वशत्रुदलनशीलमहाबलेन स्वशत्रुशक्तिशमकोस्ति । एतेन (रथसङ्गे धने हिते) शरीररूपरथस्य हितकारकधनाद्यैश्वर्यनिमित्तं (अबिभ्युषा हृदा स्तवै) निवृत्तभयान्तःकरणेन भवन्तं स्तुमः ॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! आप (अया ओजसा निजघ्निः) अपने इस शत्रुनाशनशील पराक्रमसे शत्रुकी शक्तियोंको शमन करने

वाले हैं । इस से (रथसङ्गे धने हिते) शरीररूप रथके हितकारक धनादि ऐश्वर्यके निमित्त (अविभ्युषा हृदा स्तवै) अन्तःकरणोंसे आपकी स्तुति करते हैं ।

भावार्थ—जो पुरुष शुभकार्य करते हुए परमात्माके उपासना-समय निर्भयतासे उसकी समक्षता लाभ करते हैं वे सदैव तेजस्वी और ब्रह्मवर्चस्वी आदि दिव्यभावोंको उपलब्ध करते हैं ॥२॥

अस्य व्रतानि नाधृषे पवमानस्य दूढ्या ।
रुज यस्त्वा पृतन्यति ॥ ३ ॥

अस्य । व्रतानि । न । आऽधृषे । पवमानस्य । दुःऽध्या ।
रुज । यः । त्वा । पृतन्यति ॥३॥

पदार्थः—(पवमानस्य, अस्य) जगत्पवित्रयितुरनुशासनं (दूढ्या) कश्चिदपि दुश्चरित्रः (नाधृषे) वाधितुं न शक्नोति । यतः (यः त्वा पृतन्यति) यो, भवत ईर्ष्यति तं (रुज) अशक्ततां नयसि ।

पदार्थ—(पवमानस्य अस्य) जगत्पावक आपके नियमानुशासनको (दूढ्या) कोई भी दुराचारी (नाधृषे) वाधित नहीं कर सकता, क्योंकि (यः त्वा पृतन्यति) जो आपसे ईर्ष्या करता है उसको (रुज) आप शक्तिहीन कर देते हैं ।

भावार्थ—परमात्मा दुराचारियोंका अधःपतन करते हैं और सदाचारियोंको सदैव उन्नतिशील बनाते हैं ॥३॥

तं हिन्वंति मदच्युतं हरिं नदीषु वाजिनम् ।
इन्दुमिन्द्राय मत्सरम् ॥ ४ ॥ १० ॥

तं । हिन्वंति । मदऽच्युतं । हरिं । नदीषु । वाजिनं । इंदुं । इंद्राय । मत्सरं ॥४॥

पदार्थः—(मदच्युतम्) आनन्दक्षरणकर्ता (हरिं) सर्वदुःखोपहर्ता (नदीषु वाजिनम्) समस्तशब्दायमानविद्युदादिशक्तिषु बलाविर्भावकर्ता (इंदुं) सम्पूर्णब्रह्माण्डे देदीप्यमानः (इन्द्राय मत्सरम्) विद्वद्भ्यो गर्वजनकधनरूपं त्वां (हिन्वन्ति) विद्वांसो बुद्ध्या प्रेरयन्ति ।

पदार्थ—(मदच्युतम्) आनन्दको क्षरण करनेवाले (हरिम्) सब दुःखोंके हरनेवाले (नदीषु वाजिनम्) सब शब्दायमान विद्युदादि शक्तियोंमें बलको निवेश करनेवाले (इन्दुम्) अखिल ब्रह्माण्डमें प्रकाशमान (इन्द्राय मत्सरम्) विद्वानोंके लिये गर्वजनक धनरूप आपको विद्वान् लोग (हिन्वन्ति) बुद्धिद्वारा प्रेरित करते हैं ।

भावार्थ—आनन्दका स्रोत परमात्मा ही सबका प्रकाशक है उसीके प्रकाशसे सम्पूर्ण विश्व प्रकाशित होता है ॥४॥

इति त्रिपञ्चाशत्तमं सूक्तं दशमोवर्गश्च समाप्तः ।

यह ५३ वां सूक्त और १० वां वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ चतुर्ऋचस्य चतुःपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य--

१ ४ अवत्सार ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः १ २, ४ गायत्री । ३ निचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अथ सर्वथा परमात्मसेवनहेतु र्वर्ण्यते ।

अब केवल परमात्माके सेवनमें हेतु कहते हैं ।

अस्य प्रत्नामनु द्युतं शुक्रं दुदुह्रे अह्रयः ।
पयः सहस्रसामृषिम् ॥ १ ॥

अस्य । प्रत्नां । अनु । द्युतं । शुक्रं । दुदुह्रे । अह्रयः । पयः । सहस्रऽसां । ऋषिं ।

पदार्थः—(अह्रयः) विज्ञानिनः पुरुषाः (अस्य) अमुष्य परमात्मनः (प्रत्नाम् ऋषिम् अनु) विरचितप्रत्नवेदेन (द्युतम् शुक्रम् सहस्रसाम्) दीप्तिमत् पूतामितशक्त्युत्पादकं (पयः दुदुह्रे) ब्रह्मानन्दरूपं रसं दुहन्ति ।

पदार्थ—(अह्रयः) विज्ञानी लोग (अस्य) इस परमात्माके (प्रत्नाम् ऋषिम् अनु) रचित प्राचीन वेदसे (द्युतम्) दीप्तिमान् (शुक्रम्) पवित्र (सहस्रसाम्) अपरिमितशक्तियोंको उत्पन्न करनेवाले (पयः दुदुह्रे) ब्रह्मानन्दरूप रसको दुहते हैं ।

भावार्थ—उक्त कामधेनुरूप परमात्मासे विद्वान् सदाचारी लोग दुग्धामृतके दोग्धा बनकर संसारमें ब्रह्मामृतका संचार करते हैं ।

अयं सूर्य इवोपदृगयं सरांसि धावति ।
सप्त प्रवत आ दिवम् ॥ २ ॥

अयं । सूर्यःऽइव । उपऽदृक् । अयं । सरांसि । धावति । सप्त । प्रऽवतः । आ । दिवं ।

पदार्थः—(अयम्) असौ परमात्मा (सूर्यःइव, उपदृग्) सूर्यइव सर्वकर्मद्रष्टास्ति । यथा सूर्यः सर्वकर्मावलोकनसमर्थस्तथासावपीत्यर्थः । अथच (अयं सरांसि धावति) अयं परमेश्वरः अधिकाधिकज्ञानेन सर्वत्र व्याप्तोस्ति । (सप्त प्रवतः आदिवम्) यः परमात्मा, सप्तकिरणवन्तं सूर्यमात्मनिकृत्वा तथा द्युलोकमप्येकदेशिनं विधाय स्थिरो वर्तते ।

पदार्थ—(अयम्) यह परमात्मा (सूर्यः इव उपदृग्) सूर्यके समान सबके कर्मोंका द्रष्टा है और (अयं सरांसि धावति) यह परमात्मा ज्ञानद्वारा सर्वत्र व्याप्त है (सप्त प्रवतः आदिवम्) जो यह परमात्मा सातकिरण वाले सूर्यको अपने भीतर लेकर और द्युलोकको भी एकदेशी बना कर स्थिर हो रहा है ।

भावार्थ—जिस प्रकार अन्य ग्रह उपग्रहोंकी अपेक्षासे सूर्य स्वयं प्रकाश है इसी प्रकार सूर्य आदिकोंकी अपेक्षासे परमात्मा स्वयं प्रकाश है । उस स्वयंप्रकाश स्वयज्योतिकी उपासना करके सबको पवित्र बननेका यत्न करना चाहिए ।

अयं विश्वानि तिष्ठति पुनानो भुवनोपरि ।
सोमो देवो न सूर्यः ॥ ३ ॥

अयं । विश्वानि । तिष्ठति । पुनानः । भुवना । उपरि ।
सोमः । देवः । न । सूर्यः ।

पदार्थः—(सूर्यः न) रविरिव जगत्प्रेरकः (अयम्) असौ परमात्मा (सोमः देवः) सौम्यस्वभावशीलोस्ति तथा जगत्प्रकाशकोप्यास्ति । अथच (विश्वानि पुनानः) सर्वं जगत्

पवित्रयन् (भुवनोपरि तिष्ठति) अखिलब्रह्माण्डोर्ध्वभागे अपि विराजमानो वर्तते ॥

पदार्थ—(सूर्यः, न) सूर्यके समान जगत्प्रेरक (अयम्) यह परमात्मा (सोमः, देवः) सौम्यस्वभाव वाला और जगत्प्रकाशक है। और (विश्वानि, पुनानः) सब लोकोंको पवित्र करता हुआ (भुवनोपरि, तिष्ठति) सम्पूर्ण ब्रह्माडोंके ऊर्ध्वभागमें भी वर्तमान है।

भावार्थ—उसी सर्वपावन परमात्माकी उपासना करनी चाहिये।

परि णो देववीतये वाजाँ अर्षसि गोमतः ।
पुनान इन्दविन्द्रयुः ॥ ४ ॥ ११ ॥

परि । नः । देवऽवीतये । वाजान् । अर्षसि । गोऽमतः ।
पुनानः । इंदोऽइति । इंद्रऽयुः ।

पदार्थः—(इन्दो) हे सर्वलोकस्वामिन् ! (नः) अस्मान् (परि पुनानः) सर्वतः पवित्रयन्, भवान् (देववीतये) देवतानां तर्पणाय (गोमतः वाजान्) गवाद्यैश्वर्यान् (अर्षसि) ददाति (देवयुः) यतो भवान् दिव्यगुणयुक्तसमीचीनकर्मकुर्वतामभिलाषुकोऽस्ति ॥

पदार्थ—(इन्दो) हे परमात्मन् (नः) हमको (परिपुनानः) सब ओरसे पवित्र करते हुए आप (देववीतये) देवोंकी तृप्तिके लिये (गोमतः वाजान्) गवादि ऐश्वर्यको (अर्षसि) देते हैं (देवयुः) क्योंकि आप देवों अर्थात् दिव्यगुणसम्पन्न सत्कर्म्मियोंको चाहने वाले हैं।

भावार्थ—परमात्माकी कृपासे ही मनुष्यको दिव्यशक्तियें मिलती हैं। परमात्मा ही अपनी अपार दयासे मनुष्योंको देवभाव-

को प्रदान करता है । हे देवतके अभिलाषीजनों! (आपको) चाहिए कि आप सदैव उस दिव्यगुण परमात्माकी उपासना करते रहें ।

इति चतुःपञ्चाशत्तमं सूक्तमेकादशो वर्गश्च समाप्तः ॥

यह ५४ वां सूक्त और ११ वां वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ चतुरृचस्य पञ्चपंचाशत्तमस्य सूक्तस्य—

१ ४ अवत्सार ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः १, २ गायत्री । ३, ४ निचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अथ परमात्मनः अनन्तत्वविविधवस्तूत्पादकत्वादिगुणा वर्ण्यन्ते ।

अब परमात्माके अनन्तत्व, अनेकवस्तुजनकत्व आदि गुणोंका वर्णन करते हैं ।

यवयवं नो अन्धसा पुष्टम्पुष्टं परि स्रव ।
सोम विश्वा च सौभगा ॥ १ ॥

यवंऽयवं । नः । अंधसा । पुष्टंऽपुष्टं । परि । स्रव । सोम । विश्वा । च । सौभगा ।

पदार्थः—(सोम) हे जगदीश ! भवान् (नः) अस्मभ्यम् (अंधसा) सहान्नादिभिः (पुष्टम् पुष्टम्) अतिबलप्रदान् (यवम् यवं) सञ्चितानेकपदार्थान् तथा (विश्वा च सौभगा) सम्पूर्णसौभाग्यानि (परिस्रव) समुत्पादयतु ॥

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! आप (नः) हमारे लिये (अन्धसा) अन्नादिकोंके सहित (पुरुम् पुरुम्) अतिबलप्रद (यवम् यवम्) सञ्चित अनेक पदार्थोंको तथा (विश्वा च सौभगा) सम्पूर्ण सौभाग्यको (परिस्रव) उत्पन्न करिये ।

भावार्थ—सम्पूर्ण ऐश्वर्य और सम्पूर्ण सौभाग्यको देने वाला एकमात्र परमात्मा ही है कोई अन्य नहीं ।

इन्दो यथा तव स्तवो यथा ते जातमन्धसः ।
नि बर्हिषि प्रिये सदः ॥ २ ॥

इंदोइति । यथा । तव । स्तवः । यथा । ते । जातं । अंधसः । नि । बर्हिषि । प्रिये । सदः ।

पदार्थः—(इन्दो) हे परमेश्वर ! (यथा तव स्तवः) येन प्रकारेण भवद्यशः सर्वस्मिन् संसारे व्याप्नोति अथच (यथा ते अन्धसः जातम्) येन प्रकारेणान्नादिपदार्थानां राशि भवतैव निर्मितः तेनैव प्रकारेण (निषदः प्रिये बर्हिषि) यद्धि भवतः प्रियं यज्ञपदं तस्मिन् आगत्य विराजताम् ॥

पदार्थ—(इन्दो) हे परमात्मन् ! (यथा तव स्तवः) जिस प्रकार आपका यश संसार भरमें व्याप्त है और (यथा ते अन्धसः, जातम्) जिस प्रकार अन्नादि पदार्थोंका समूह आपहीने रचा है उसी प्रकार (निषदः प्रिये बर्हिषि) जो आपका प्रिय यज्ञस्थल है उसमें आकर आप विराजमान होयँ ।

भावार्थ—परमात्मा भिन्न (दिव्य?)लोकोंको अपने विचित्र भावोंसे विभूषित करता है ।

उत नो गोविदश्ववित्पवस्व सोमान्धसा ।
मक्षूतमेभिरहभिः ॥ ३ ॥

उत । नः । गोऽवित् । अश्वऽवित् । पवस्व । सोम । अंधसा ।
मक्षुऽतमेभिः । अहऽभिः ।

पदार्थः—(उत नः) योह्यस्मभ्यम् (गोवित् अश्ववित्) गवाद्यैश्वर्यप्रापको भवानेव । अतः-(सोम) हे जगदाधार ! (मक्षुतमेभिः अहभिः) अचिरेणैव कालेन (अन्धसा पवस्व) समस्तान्नादिसमृद्ध्या पवित्रय ॥

पदार्थ—(उत नः) जो कि हमारे लिये (गोवित् अश्ववित्) गवाश्वादि ऐश्वर्यके प्रापक आपही हैं इस लिये (सोम) हे परमात्मन् ! (मक्षुतमेभिः अहभिः) अति अल्पकाल ही में (अन्धसा पवस्व) सम्पूर्ण अन्नादि समृद्धिसे पवित्र करिये ।

भावार्थ—सम्पूर्ण ऐश्वर्योंका अधिपति एकमात्र परमात्मा ही है । इसलिए उसीकी उपासना और प्रार्थना करनी चाहिये ।

यो जिनाति न जीयते हन्ति शत्रुमभीत्य ।
स पवस्व सहस्रजित् ॥ ४ ॥ १२ ॥

यः । जिनाति । न । जीयते । हंति । शत्रुं । अभिऽइत्य ।
सः । पवस्व । सहस्रऽजित् ।

पदार्थः—(यः जिनाति) योहि भवान् सकलब्रह्माण्डान्तर्गतपदार्थानायुर्हीनान् करोति अथच (न जीयते) स्वय

मायुरहितः कदापि न भवति । तथा (शत्रुम् अभीत्य हन्ति) योहि स्वव्यापनशीलशक्त्या वैरिबल मपहरति, परं स्वयमहरणीयशक्तिमानस्ति (सहस्रजित्) सः सर्वोपरि शक्तिसम्पन्न स्त्वं (पवस्व) मां सुरक्षय ॥

पदार्थ—(यः जिनाति) जो आप सकल ब्रह्माण्डगत पदार्थों को आयुरहित कर देते हैं और (न जीतये) स्वयं कदापि निरायुष नहीं होते तथा (शत्रुम् अभीत्य हन्ति) जो आप अपनी व्याप्ति द्वारा शत्रुओं की शक्तियों को हर लेते हैं और स्वयं अहार्य शक्ति वाले हैं, (सहस्रजित्) वह सर्वोपरिशक्तिसम्पन्न आप (पवस्व) हमको सुरक्षित करिये ।

भावार्थ—काल सब पदार्थों के आयु को क्षय करके आप स्वयं अविनाशी बना रहता है। परन्तु कालका अविनाशित्व भी सापेक्ष है अर्थात् अनित्यपदार्थों की अपेक्षा काल को नित्य कहा जाता है परन्तु परमात्मा की अपेक्षा से काल भी अनित्य है । इसलिए परमात्मा सर्वोपरि कूटस्थ नित्य है, उसी की उपासना मनुष्य को शुद्ध हृदय से करनी चाहिए ।

इति पञ्चपञ्चाशत्तमं सूक्तं द्वादशो वर्गश्च समाप्तः ।

यह ५५ वां सूक्त और १२ वां वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ चतुर्ऋचस्य षट्पञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य ।

१ ४ अवत्सार ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः १, ३, गायत्री । ४ यवमध्या गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

सम्प्रति सदाचारिभिरेव परमात्मा लभ्य इति वर्ण्यते ।

अब परमात्मा सदाचारियोंको ही ज्ञानगोचर हो सकता है—यह कहते हैं ।

परि सोमं ऋतं बृहदाशुः पवित्रे अर्षति ।
विघ्नन्रक्षांसि देवयुः ॥ १ ॥

परि । सोमः । ऋतं । बृहत् । आशुः । पवित्रे । अर्षति ।
विऽघ्नन् । रक्षांसि । देवऽयुः ।

पदार्थः—(सोम) हे जगदीश्वर ! भवान् (ऋतम् बृहत् आशुः) सत्यस्वरूपवानस्ति । तथा सर्वस्मादपि महान् अथ च शीघ्रगतिशीलोस्ति (देवयुः) सत्कर्मिणोऽभिगच्छन् तथा (रक्षांसि विघ्नन्) दुष्टान् घातयन् (पवित्रे अर्षति) पवित्रान्तःकरणे निवसति ।

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! आप (ऋतम् बृहत् आशुः) सत्यस्वरूप और सबसे महान् तथा शीघ्रगतिवाले हैं (देवयुः) सत्कर्मियोंको चाहते हुये और (रक्षांसि विघ्नन्) दुष्कर्मियोंको नाश करते हुये (पवित्रे अर्षति) पवित्र अन्तःकरणोंमें निवास करते हैं ।

भावार्थ—परमात्मा कर्मोंका यथायोग्य फलप्रदाता है; इस लिए उसके उपासकको चाहिए कि वह सत्कर्म करता हुआ उसका उपासक बने, ताकि उसे परमात्माके दंडका फल न भोगना पड़े । तात्पर्य यह है कि प्रार्थना उपासनासे केवल हृदयकी शुद्धि होती है पापोंकी क्षमा नहीं होती ।

यत्सोमो वाजमर्षति शतं धारा अपस्युवः ।
इन्द्रस्य सख्यमाविशन् ॥ २ ॥

यत्। सोमः। वाजं। अर्षति। शतं। धाराः। अपस्युवः।
इंद्रस्य। सख्यं। आऽविशन्।

पदार्थः—(यत, सोमः, वाजम्, अर्षति) योहि जगदीश्वरः बलं प्रददाति, अतः (अपस्युवः) कर्मयोगिजनाः (इन्द्रस्य, सख्यम्, आविशन्) परमैश्वर्यवत स्तस्य परमात्मनो मैत्रीभावं प्राप्नुवन्तः (शतम् धाराः) तैनैव प्रदत्तानि बलानि, आमोदधाराश्चोपभुञ्जन्ते।

पदार्थ—(यत्, सोमः, वाजम्, अर्षति) जो परमात्मा बलका प्रदान करता है इससे (अपस्युवः) कर्मयोगी लोग (इन्द्रस्य, सख्यम्, आविशन्) परमैश्वर्य वाले उस परमात्माके मैत्रीभावको प्राप्त होते हुये (शतम् धाराः) उसके दिये हुये बल और आनन्दकी अनेक धाराओंका उपभोग करते हैं।

भावार्थ—वास्तवमें परमात्माका कोई मित्र या अमित्र नहीं। जो लोग परमात्माके उसकी आज्ञापालन करनेसे उसके अनुकूल चलते हैं उनसे वह स्नेह करता हैं इसलिए वे मित्र कहलाते हैं और प्रतिकूलवर्ती लोग स्नेहके पात्र नहीं होते, इसलिए अमित्र कहलाते हैं इसी लिए यहां मित्र शब्द आया है। कुछ मानुषी मैत्रीके भावसे नहीं।

अभि त्वा योषणो दश जारं न कन्यानूषत।
मृज्यसे सोम सातये॥ २॥

अभि। त्वा। योषणः। दश। जारं। न। कन्या। अनूषत।
मृज्यसे। सोम। सातये।

पदार्थः—(कन्या, जारम्, न) यथा दीप्तं मग्नेः प्रभवति तथैव (दश, योषणः) दशेन्द्रियवृत्तयः (त्वा अभ्यनूषत) भवन्नुतिद्वारेण प्राप्ता भवंति । (सोम) हे नारायण । (सातये) भवानिष्टप्राप्तये (मृज्यसे) ध्यानगोचरः क्रियते ।

पदार्थ—(कन्या, जारम्, न) जिस प्रकार दीप्ति अग्निको प्राप्त होती है उसी प्रकार (दश, योषणः) दश इन्द्रियवृत्तियें (त्वा, अभ्यनूषत) आपको स्तुति द्वारा प्राप्त होती है (सोम) हे परमात्मन् ! (सातये) आप इष्टप्राप्तिके लिये (मृज्यसे) ध्यानगोचर किये जाते हैं ।

भावार्थ—संस्कारी पुरुषोंकी इन्द्रियवृत्तियें उसको विषय करती हैं असंस्कारियोंकी नहीं ।

त्वमिन्द्राय विष्णवे स्वादुरिन्दो परि स्रव ।
नॄन्त्स्तोतॄन्पाह्यंहसः ॥ ४ ॥ १३ ॥

त्वं । इंद्राय । विष्णवे । स्वादुः । इंदो इति । परि । स्रव । नॄन् । स्तोतॄन् । पाहि । अंहसः ।

पदार्थः—(इन्दो) हे परमात्मन् ! (त्वम्) भवान् (इन्द्राय विष्णवे) व्याप्तिशीलज्ञानयोगिने (स्वादुः) परमास्वादनीयः रसोऽस्ति । तदर्थं (परिस्रव) त्वं समस्ताभीष्टप्रदानं कुरु । (नॄन् स्तोतॄन् पाहि अंहसः) स्वोपासकान् पापतस्त्रायस्व ॥

पदार्थ—(इन्दो) हे परमात्मन् ! (त्वम्) आप (इन्द्राय विष्णवे) व्याप्तिशील ज्ञानयोगीके लिये (स्वादुः) परम आस्वादनीय रस हैं । उनके लिये (परिस्रव) आप सकल अभीष्टका प्रदान करिये (नॄन् स्तोतॄन् पाहि अंहसः) अपने उपासकोंको पापसे बचाइये ।

भावार्थ—ज्ञानयोगी अपने ज्ञानके प्रभावसे ईश्वरका साक्षात्कार करता है और अनिष्ट कर्मोंसे बचता है ।

इति षट्पञ्चाशत्तमं सूक्तं त्रयोदशो वर्गश्च समाप्तः ।

यह ५६ वां सूक्त और १३ वां वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ चतुर्ऋचस्य सप्तपंचाशत्तमस्य सूक्तस्य—

१—४ अवत्सारः ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः,
१, ३ गायत्री । २ निचृद्गायत्री । ४ ककुम्मती
गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अथ परमात्मा स्वभक्तान् विविधानन्दैर्योजयति असतश्च-
दरिद्रयतीति वर्ण्यते ।

परमात्मा अपने भक्तोंको विविध आनन्दोंसे और दुराचारियों को दारिद्र्यसे युक्त करता है, यह कहते हैं ।

प्र ते धारा असश्चतो दिवो न यन्ति वृष्टयः ।
अच्छा वाजं सहस्रिणम् ॥ १ ॥

प्र । ते । धाराः । असश्चतः । दिवः । न । यंति । वृष्टयः ।
अच्छ । वाजं । सहस्रिणं ।

पदार्थः—(दिवः, वृष्टयः न) द्युलोकतो वृष्टिरिव (ते, धाराः) ब्रह्मानन्दाय भवतो धाराः (असश्चतः) अनेकप्रकाराः (यन्ति) विद्वज्जनानामन्तःकरणे प्रादुर्भवंति । भवान् स्वोपास-

कस्य (सहस्रिणं, वाजम्) वहुप्रकारैश्वर्यान् (अच्छ) अभिमुखं करोतु ।

पदार्थ--(दिवः वृष्टयः न) द्युलोकसे वृष्टिके समान (ते, धाराः) आपके ब्रह्मानन्दकी धारायें (असश्चतः) अनेक प्रकारकी (यन्ति) विद्वानोंके हृदयोंमें प्रादुर्भूत होती है, आप अपने उपासकोंको (सहस्रिणम् वाजम्) अनेक प्रकारके ऐश्वर्यके (अच्छ) अभिमुख करिये ।

भावार्थ--जिन लोगोंने सत्कर्मों द्वारा अपने आपको ज्ञानका पात्र बनाया है उनके अन्तःकरणमें परमात्माकी सुधामयी वृष्टि सदैव होती रहती है ।

अभि प्रियाणि काव्या विश्वा चक्षाणो अर्षति ।
हरिस्तुञ्जान आयुधा ॥ २ ॥

अभि । प्रियाणि । काव्या । विश्वा । चक्षाणः । अर्षति ।
हरिः । तुञ्जानः । आयुधा ।

पदार्थः—(हरिः) स परमात्मा (आयुधा, तुञ्जानः) स्वशस्त्रैः शत्रून् व्यथयन् (विश्वा काव्या चक्षाणः) सम्पूर्णकर्माणि पश्यन् (प्रियाणि अभि अर्षति) प्रियान् स्वोपासकानभिगच्छति ॥

पदार्थ—(हरिः) वह परमात्मा (आयुधा तुञ्जानः) अपने शस्त्रोंसे शत्रुओंको व्यथित करता हुआ (विश्वा काव्या चक्षाणः) सम्पूर्ण कर्मोंको देखता हुआ (प्रियाणि अभि अर्षति) अपने प्रिय उपासकोंकी ओर जाता है ।

भावार्थ—उसका दण्डरूप वज्र दुष्टोंके लिए सदैव उद्यत रहता हैं और सत्कर्मी सदैव उससे निर्भय रहते हैं ।

स मर्मृजान आयुभिरिभो राजेव सुव्रतः ।
श्येनो न वंसु षीदति ॥ ३ ॥

सः । मर्मृजानः । आयुऽभिः । इभः । राजाऽइव । सुऽव्रतः ।
श्येनः । न । वंसु । सीदति ।

पदार्थः—(सुव्रतः, इभः, राजा, इव) शोभनानुशासनकर्तृनिर्भीकनृपतिरिव (सः) असौ परमात्मा (आयुभिः मर्मृजानः) ऋत्विग्भिः स्तुतः- (श्येनः वंसु, न) यथा विद्युदादयः सूक्ष्मेषु पदार्थेषु तिष्ठन्ति, तथैव (सीदति) स ईश्वरस्तेषा मन्तःकरणे अधितिष्ठति ॥

पदार्थ—(सुव्रतः, इभः, राजा, इव) सुन्दर अनुशासन वाले निर्भीक राजाके समान (स) वह परमात्मा (आयुभिः, मर्मृजानः) ऋत्विजों द्वारा स्तुति किया गया (श्येनः, वंसु, न) जिस प्रकार विद्युदादिशक्तियें सूक्ष्म पदार्थोंमें रहती है उस प्रकार (सीदति) वह उनके हृदयमें अधिष्ठित होता है ।

भावार्थ—जैसे ब्रह्माण्डगत प्रत्येक पदार्थमें विद्युत् व्याप्त है इसी प्रकार परमात्मशक्ति भी सर्वत्र व्याप्त है ।

स नो विश्वा दिवो वसूतो पृथिव्या अधि ।
पुनान इन्दवा भर ॥ ४ ॥ १४ ॥

सः । नः । विश्वा । दिवः । वसु । उतोइति । पृथिव्याः । अधि ।
पुनानः । इंदो इति । आ । भर ।

पदार्थः—(इन्दो) हे परमात्मन् ! (सः) स त्वम् (नः)

अस्मदर्थं (दिवः, विश्वा, वसु) द्युलोकसम्बन्धिसकलसम्पदः (उतो) तथा (पृथिव्याः, अधि) भूमिसम्बंधिसमस्तसम्पत्तीः (आभर) आहर। अथच (पुनानः) मां पवित्रं कुरु ॥

पदार्थ—(इन्दो) हे परमात्मन्! (सः) वह आप (नः) हमारे लिये (दिवः, विश्वा, वसु) द्युलोकसम्बन्धी सकल सम्पत्तियें (उतो) तथा (पृथिव्याः, अधि) पृथिवीसम्बन्धी सम्पूर्ण सम्पत्तियें (आभर) आहरण कीजिये और (पुनानः) मुझको पवित्र करिये।

भावार्थ—सम्पूर्ण संपत्तियोंका स्वामी एकमात्र परमात्माही है। इसलिए ऐश्वर्य प्राप्तिके लिए उसीकी शरणागत होना आवश्यक है।

इति सप्तपञ्चाशत्तमं सूक्तं चतुर्दशो वर्गश्च समाप्तः।

यह ५७वां सूक्त और १४वां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ चतुर्ऋचस्य अष्टपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य—

१ ४ अवत्सार ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः १, ३ निचृद्गायत्री। २ विराड्गायत्री। ४ गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अथ परमात्मनो विभुत्वं वर्ण्यते।

अब परमात्माका सर्वव्यापक होना वर्णन करते हैं।

तरत्स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः।
तरत्स मन्दी धावति ॥ १ ॥

तरत् । सः । मंदी । धावति । धारा । सुतस्य । अंधसः ।
तरत् । सः । मंदी । धावति ।

पदार्थः—(मन्दी सः) उत्कृष्टानन्दयुक्तः स परमात्मा (तरत्) पापिन स्तारयन् (सुतस्य अन्धसः धारा) उत्पन्नेन ब्रह्मानन्दरसेन सह (धावति) स्तोतृणां हृदि विराजमानो भवति । (तरत् सः मन्दी धावति) अथच स परमात्मा निश्चयेन सम स्तपापकारिण स्तारयन् परमानन्दरूपेण व्याप्तो भवति ॥

पदार्थ—(मन्दी सः) परम आनन्दमय वह परमात्मा (तरत्) पापियोंको तारता हुआ (सुतस्य अन्धसः धारा) उत्पन्न किये हुए ब्रह्मानन्दके रस सहित (धावति) स्तोताओंके हृदयमें विराजमान होता है । (तरत् सः मन्दी धावति) और वह परमात्मा निश्चय सब-पापियोंको तारता हुआ परमानन्दरूपसे संसारमें व्याप्त हो रहा है ।

भावार्थ—पापियोंको तारनेका अभिप्राय यह है कि जो लोग पापका प्रायश्चित्त करके उसकी शरणको प्राप्त होते हैं वे फिर कदापि पापपङ्कसे पीड़ित नहीं होते । अथवा यों कहो कि पापमयसंचित कर्मोंकी स्थिति उनके हृदयसे दूर हो जाती है । अन्य पापोंकी क्षमा ईश्वर कदापि नहीं करता ।

उस्रा वेद वसूनां मर्तस्य देव्यवसः ।
तरत्स मन्दी धावति ॥ २ ॥

उस्रा । वेद । वसूनां । मर्तस्य । देवी । अवसः । तरत् ।
सः । मंदी । धावति ।

पदार्थः—(वसूनाम् उस्रा) अनेकविधरत्नाद्यैश्वर्यदात्री (देवी) तस्य परमात्मनो दिव्यशक्तिः (मर्तस्य अवसः वेद) जीवरक्षायां जागरूका भवति। (तरत् सः मन्दीधावति) तथाच स परमात्मा सर्वांस्तारयन् आनन्दरूपेण सर्वत्र व्याप्तोऽस्ति॥

पदार्थ—(वसूनाम् उस्रा) सर्वविध रत्नादि ऐश्वर्योंकी प्रदात्री (देवी) उस परमात्माकी दिव्यशक्ति (मर्तस्य अवसः वेद) जीवोंकी रक्षा करनेमें जागरूक रहती है (तरत् सःमन्दी धावति) और वह परमात्मा सबको तारता हुआ आनन्दरूपसे सर्वत्र व्याप्त है)

भावार्थ—परमात्माके आनन्दसे ही आनन्दित होकर सब प्राणी सुखको उपलब्ध करते हैं। अर्थात् आनन्दमय एकमात्र परमात्माही है कोई अन्य नहीं।

ध्वस्रयोः पुरुषन्त्योरा सहस्राणि दद्महे।
तरत्स मन्दी धावति॥ २॥

ध्वस्रयोः। पुरुऽसंत्योः। आ। सहस्राणि। दद्महे। तरत्। सः। मंदी। धावति।

पदार्थः—हे परमात्मन् (ध्वस्रयोः पुरुषन्त्योः) भवतो व्याप्तिशाला या ज्ञानशक्ति स्तथा कर्मशक्तिश्च (सहस्राणि) अनेकप्रकारिकास्ति, ताः (आदद्महे) प्राप्नवाम (तरत् सः मन्दी धावति) भवान् सर्वान् तारयन् हर्षरूपेण सर्वस्मिन् व्याप्तो विराजते॥

पदार्थ—हे परमात्मन्! (ध्वस्रयोः पुरुषन्त्योः) आपकी व्याप्तिशील जो ज्ञानशक्ति और कर्मशक्ति (सहस्राणि) अनेक प्रकारकी हैं

उनको (आदद्महे) हम प्राप्त करें (तरत् सः मन्दी धावति) आप सबको तारते हुये हर्षरूपसे सर्वत्र विराजित हैं ।

भावार्थ—परमात्माकी ज्ञानशक्ति और कर्मशक्तिको लाभ करके कर्मयोगी और ज्ञानयोगी अपने कर्तव्यमें तत्पर रहते हैं ।

आ ययो॑स्त्रिं॒शतं॒ तना॑ सह॒स्रा॑णि च॒ दद्म॑हे ।
तर॒त्स म॒न्दी धा॑वति ॥ ४ ॥ १५ ॥

आ । ययोः॑ । त्रिं॒शतं॑ । तना॑ । स॒हस्रा॑णि । च॒ । दद्म॑हे ।
तर॑त् । सः । म॒न्दी । धा॒व॒ति॒ ।

पदार्थः—(ययोः) याभिः शक्तिभिः (त्रिंशतं तना) वयं शतत्रयवत्सरपर्यन्तं दीर्घायुषः तथा (सहस्राणि च आदद्महे) सहस्रशक्त्युत्पादनं कर्तुं शक्नुमः । एतादृक्छक्तिसम्पन्नः (मन्दी) आनन्दकारकः (सः) स परमात्मा (तरत्) सर्वपापिनस्तारयन् (धावति) अखिलसंसारं व्याप्तो भवति ।

पदार्थ—(ययोः) जिन शक्तियोंसे (त्रिंशतम् तना) हम तीनसौवर्ष तक दीर्घायु और (सहस्राणि च आदद्महे) सहस्रों शक्तियोंको उत्पन्न कर सकते हैं । ऐसी शक्तियों वाला (मन्दी) आह्लादजनक (सः) वह परमात्मा (तरत्) सब पापियोंको तारता हुआ (धावति) सम्पूर्ण संसारमें व्याप्त हो रहा है ।

भावार्थ—यद्यपि साधारणतया मनुष्यके आयुकी अवधि सौवर्ष तक है, तथापि कर्मयोगी अपने उग्रकर्मों द्वारा अपनी आयुको बढ़ा सकते हैं । इसी लिए " भूयश्च शरदः शतात् " इस वाक्यमें सौ से अधिककी प्रार्थना की गई है । और जो इस मंत्रमें पापोंके नाश-

का कथन है वह पापवासनाके क्षयके अभिप्रायसे है। प्रारब्धकर्मोंके नाश-
के अभिप्रायसे नहीं ।

इति अष्टपञ्चाशत्तमं सूक्तं पञ्चदशो वर्गश्च समाप्तः ।

यह ५८वाँ सूक्त और १५ वाँ वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ चतुर्ऋचस्यैकोनषष्ठितमस्य सूक्तस्य—

१ ४ अवत्सार ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः
१ गायत्री २ आर्चीस्वराड्गायत्री । ३, ४
निचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अथ स्वाभ्युन्नतिं वाञ्छद्भिः अवन्ध्यशासनः परमात्मैव
प्रार्थनीय इत्युच्यते ।

अभ्युन्नतिको चाहने वाला केवल परमात्माकी ही प्रार्थना-
करे, यह कहते हैं ।

पवस्व गोजिदश्वजिद्विश्वजित्सोम रण्यजित् ।
प्रजावद्रत्नमा भर ॥ १ ॥

पवस्व । गोऽजित् । अश्वऽजित् । विश्वऽजित् । सोम ।
रण्यऽजित् । प्रजाऽवत् । रत्नं । आ । भर ॥ १ ॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (गोजित, अश्वजित्) भवान्
गवाश्वाद्यैश्वर्यैर्युक्त स्तथा (रण्यजित्) रणे दुष्टेभ्यः पराजयप्रदा-
ता अथ च (विश्वजित्) संसारे सर्वोपर्यस्ति भवान्, अतो

मां (पवस्व) पवित्रयतु । तथा (प्रजावद्रत्नमाभर) सन्तानादियुक्तरत्नैः परिपूर्णं करोतु ।

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (गोजित्, अश्वजित्) आप गवाश्वादि ऐश्वर्योंसे विराजमान तथा (रण्यजित्) संग्राममें दुराचारियोंको पराजय प्राप्त कराने वाले और (विश्वजित्) संसारमें सर्वोपरि हैं । आप हमको (पवस्व) पवित्र करिये । और (प्रजावद्रत्नम् आभर) सन्तानादियुक्त रत्नोंसे परिपूर्ण करिये ।

भावार्थ—परमात्माकी दयासे ही पुरुषको विविध प्रकारके रत्नोंका लाभ होता है ।

पर्वस्वाद्भ्यो अदा॑भ्यः पव॒स्वौष॑धीभ्यः ।
पर्व॑स्व धि॒षणा॑भ्यः ॥ २ ॥

पर्व॑स्व । अ॒त्ऽभ्यः । अदा॑भ्यः । पर्व॑स्व । ओष॑धीभ्यः ।
पर्व॑स्व । धि॒षणा॑भ्यः ॥२॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! त्वम् (अदाभ्यः) अदम्भनीयोसि (अद्भ्यः) जलैः (ओषधिभ्यः) औषधैः (धिषणाभ्यः) तथा बुद्धिभिः (पवस्व) मां सुरक्षय ।

पदार्थ—हे परमात्मन् ! आप (अदाभ्यः) अदम्भनीय हैं (अद्भ्यः) जलोंसे (औषधिभ्यः) औषधियोंसे (धिषणाभ्यः) तथा बुद्धिओंसे (पवस्व) हमको सुरक्षित कीजिये ।

भावार्थ—तात्पर्य यह है कि परमात्मा सब शक्तियोंके ऊपर विराजमान है । उसका शासन करने वाली कोई अन्य शक्ति नहीं ।

त्वं सोम पवमानो विश्वानि दुरिता तर ।
कविः सीद नि बर्हिषि ॥ ३ ॥

त्वं । सोम । पवमानः । विश्वानि । दुःऽइता । तर । कविः । सीद । नि । बर्हिषि ॥३॥

पदार्थः—(सोम) हे भगवन् (त्वम्) भवान् (विश्वानि दुरिता तर) समस्तपापान् दूरीकरोतु (कविः) सम्पूर्णकर्माभिज्ञो भवान् (बर्हिषि) यज्ञस्थलेषु (निषीद) विराजताम् ।

पदार्थ—(सोम) हे भगवन् ! (त्वम्) आप (विश्वानि दुरिता तर) सम्पूर्ण पापोंको दूर करिये (कविः) सर्वकर्माभिज्ञ आप (बर्हिषि) यज्ञस्थलोंमें (निषीद) विराजमान होयँ ।

भावार्थ—मलिनवासनाओंके क्षयके लिए परमात्मासे सदैव प्रार्थना करनी चाहिए ।

पवमान स्वर्विदो जायमानोऽभवो महान् ।
इन्दो विश्वाँ अभीदसि ॥ ४ ॥ १६ ॥

पवमान । स्वः । विदः । जायमानः । अभवः । महान् । इंदोइति । विश्वान् । अभि । इत् । असि ॥४॥

पदार्थः—(पवमान) हे सर्वपावक ! (इन्दो) हे जगदीश्वर ! भवान् (अभवः) अनादिरस्ति । अथच (महान्) पूजनीयोऽस्ति तथा (विश्वान् अभि इदसि) सर्वानधःकुर्वन् सर्वोपरिविराजमानोऽस्ति । (जायमानः) भवान् विज्ञानिनामन्तःकरणे प्रादुर्भवन् (स्वः विदः) समस्तप्रकाराभीष्टस्य प्रदानं करोतु ॥

पदार्थ—(पवमान) हे सर्वपावक ! (इन्दो) परमात्मन् ! आप (अभवः) अनादि हैं और (महान्) पूजनीय हैं तथा (विश्वान्, अभि, इदसि) सबको नीचे किये हुये आप सर्वोपरि विराजमान हैं । (जायमानः) आप विज्ञानियोंके हृदयमें प्रादुर्भूत होते हुये (स्वः, विदः) सर्वविध अभीष्टोंको प्रदान करिये ।

भावार्थ—उसी परमात्माकी उपासनासे सब इष्ट फलोंकी प्राप्ति होती है ।

इति एकोनषष्टितमं सूक्तं षोडशो वर्गश्च समाप्तः ।

यह ५९वां सूक्त और १६वां वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ चतुर्ऋचस्य षष्टितमस्य सूक्तस्य—

१—४ अवत्सार ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः १, २, ४ गायत्री । ३ निचृदुष्णिक् ॥ स्वरः १, २, ४ षड्जः । ऋषभः ॥

अत्र तद्गुणकीर्तनेन परमात्मा स्तूयते—

अब उसके गुणोंके कीर्तनसे परमात्माकी स्तुति करते हैं ।

प्र गा॑यत्रेण॑ गायत॒ पव॑मानं॒ विच॑र्षणिम् ।
इन्दुं॑ स॒हस्र॑चक्षसम् ॥ १ ॥

प्र । गा॒य॒त्रेण॑ । गा॒य॒त॒ । पव॑मानं । विऽच॑र्षणिं । इन्दुं॑ । स॒हस्र॑ऽचक्षसं ॥ १ ॥

पदार्थः—हे होतारो जनाः ! यूयम् (इन्दुम्) परमैश्वर्यसम्पन्नं (पवमानम्) सर्वपवितारं (सहस्रचक्षसम्) बहुविध-

वेदादिशब्दवन्तं (विचर्षणिम्) सर्वद्रष्टारं परमात्मानं (गायत्रेण) गायत्रादिछन्दसा (प्रगायत) गानं कुरुत ॥

पदार्थ—हे होता लोगो! तुम (इन्दुम्) परमैश्वर्यसम्पन्न (पवमानम्) सबको पवित्र करने वाले (सहस्रचक्षसम्) अनेकविध वेदादिवाणी वाले (विचर्षणिम्) सर्वद्रष्टा परमात्माको (गायत्रेण) गायत्रादिछन्दोंसे (प्रगायत) गान करो।

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करता है कि हे मनुष्यो! तुम वेदाध्ययनसे अपने आप को पवित्र करो।

तं त्वां सहस्रंचक्षसमथो सहस्रंभर्णसम्।
अति वारंमपाविषुः ॥ २ ॥

तं । त्वा । सहस्रंऽचक्षसं । अथोइतिं । सहस्रंऽभर्णसं । अतिं । वारं । अपाविषुः ॥ २ ॥

पदार्थः—हे परमात्मन् (तम, त्वा) लोकप्रसिद्धं त्वां स्तोतारो जनाः (अति) अत्यन्तं (अपाविषुः) स्तुतिद्वारा प्रकाशितं कुर्वन्ति। यो भवान् (सहस्रचक्षसम्) अनेकवेदवाग्रचयितास्ति तथा (सहस्रभर्णसम्) सर्वेषां जीवानां पोषकः, अथच (वारम्) भजनीयोस्ति ॥

पदार्थ—हे परमात्मन्! (तम्, त्वा) लोकप्रसिद्ध उन आपको स्तोता लोग (अति) अत्यन्त (अपाविषुः) स्तुतिद्वारा प्रकाशित करते हैं। जो आप (सहस्रचक्षसम्) अनेक वेदवाक्के रचयिता हैं तथा (सहस्रभर्णसम्) सम्पूर्ण जीवोंके पोषक हैं और (वारम्) भजनीय हैं।

भावार्थ—इस मन्त्रमें परमात्माकी सर्वज्ञताका वर्णन किया गया है और एकमात्र उसीको उपास्यदेव वर्णन किया है।

अति वारान्पवमानो असिष्यदत्कलशाँ अभि धावति।
इन्द्रस्य हार्द्याविशन् ॥ ३ ॥

अति। वारान्। पवमानः। असिस्यदत्। कलशान्।
अभि। धावति। इन्द्रस्य। हार्दि। आऽविशन् ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! भवान् (इन्द्रस्य, हार्दि, आविशन्) विज्ञानिनां हृदये निवसन् (वारान् अतिपवमानः) स्वोपासकानतिपवित्रयन् (कलशान्, अभि, धावति) तेषा मन्तःकरणेषु स्वयं प्रादुर्भवन् (असिष्यदत्) सर्वत्र स्वस्यन्दनशीलशक्तिभिः पूरितोऽस्ति ॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! आप (इन्द्रस्य, हार्दि, आविशन्) विज्ञानीके हृदयमें निवास करते हुये (वारान् अतिपवमानः) अपने उपासकोंको अत्यन्त पवित्र करते हुये (कलशान्, अभि, धावति) उनके अन्तःकरणोंमें आप प्रादुर्भूत होते हुये (असिष्यदत्) सर्वत्र अपनी स्यन्दनशील शक्तियोंसे पूरित हैं।

भावार्थ—परमात्मा ज्ञानप्रद होकर शुद्धान्तःकरणोंमें सदैव विराजमान रहता है। इस लिये परमात्मज्ञानके लिये बुद्धिका निर्मल करना अत्यावश्यक है।

इन्द्रस्य सोम राधसे शं पवस्व विचर्षणे।
प्रजावद्रेत आ भर ॥ ४ ॥ १७ ॥

इन्द्रस्य । सोम । राधसे । शं । पवस्व । विऽचर्षणे । प्रजाऽवंत् । रेतः । आ । भर ॥ ४ ॥

पदार्थः—(सोम) हे जगदीश्वर ! (इन्द्रस्य, राधसे) कर्मयोगिनामैश्वर्याय भवान् (शं, पवस्व) आमोदस्य क्षरणं करोतु । अथच (प्रजावत्, रेतम्, आभर) प्रजादिभिर्युतमैश्वर्यं परिपूर्णं करोतु ॥

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! (इन्द्रस्य, राधसे) कर्मयोगीके ऐश्वर्यके लिये आप (शं, पवस्व) आनन्दका क्षरण कीजिये । और (प्रजावत्, रेतम्, आभर) प्रजादिकोंसे सम्पन्न ऐश्वर्यको परिपूर्ण करिये ॥

भावार्थ—इस मन्त्रमें परमात्मासे अभ्युदयकी प्रार्थना की गई है कि हे परमात्मन् ! आप हमको कर्मयोगी बनाकर अभ्युदयशील बनाएँ ॥

इति षष्टितमं सूक्तं सप्तदशो वर्गश्च समाप्तः ।

यह ६०वां सूक्त और १७वां वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ त्रिंशदृचस्यैकषष्ठितमस्य सूक्तस्य-

१-३० अमहीयुर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ४, ५, ८, १०, १२, १५, १८, २२-२४, २९, ३० निचृद्गायत्री । २, ३, ६, ७, ९, १३, १४, १६, १७ २०, २१, २६ २८ गायत्री । ११, १९ विराड्गायत्री । २५ ककुम्मती गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अथेश्वरेण क्षात्रधर्म उपदिश्यते ।

अब ईश्वर क्षात्र धर्मका उपदेश करते हैं ।

अया वीती परि स्रव यस्त इन्दो मदेष्वा ।
अवाहन्नवतीर्नव ॥ १ ॥

अया । वीती । परि । स्रव । यः । ते । इन्दो इति । मदेषु ।
आ । अवऽअहन् । नवतीः । नव ॥ १ ॥

पदार्थः—(इन्दो) हे सेनाधीश ! (यः) यो वैरी (ते) तव (मदेषु) सर्वसुखकारकप्रजारक्षणेषु (आ) विघ्नं करोतु तं (अया, वीती, परिस्रव) स्वकीयाभिः क्रियाभि रभिभूतं कुरु । अथ च (अवाहन्, नवतीः, नव) नवनवातिविधदुर्गाणां विध्वंसनं कुरु ॥

पदार्थ—(इन्दो) हे सेनापते ! (यः) जो शत्रु (ते) तुम्हारे (मदेषु) सर्वसुखकारक प्रजापालनमें (आ) विघ्न करे, उसको (अया, वीती, परिस्रव) अपनी क्रियाओंसे अभिभूत करो। और (अवाहन्, नवतीः, नव) निन्यानवे प्रकारके भी दुर्गोंका ध्वंसन करो ॥

भावार्थ—इस मन्त्रमें क्षात्रधर्मका वर्णन है। और परमात्मासे इस विषयका बल मांगा गया है कि हम सब प्रकारसे शत्रुओंका नाश करके संसारमें न्यायका प्रचार करें।

पुरः सद्य इत्थाधिये दिवोदासाय शम्बरम् ।
अध त्यं तुर्वशं यदुम् ॥ २ ॥

पुरः । सद्यः । इत्थाऽधिये । दिवःऽदासाय । शंबरं । अध ।
त्यं । तुर्वशं । यदुं ॥२॥

पदार्थः—हे कर्मयोगिन् ! यः (इत्थाधिये, दिवोदासाय) सत्यधीमतस्तथा द्युलोकसम्बन्धिकर्माणि कुशलस्य भवतः (शम्बरम्) शत्रुरस्ति (त्यम् तुर्वशम् यदुम्) तं घातकमनुष्यं (अध) अथ च तस्य (पुरः) पुरं ध्वंसय ॥

पदार्थ——हे कर्मयोगिन् ! जो (इत्थाधिये, दिवोदासाय) सत्यबुद्धिवाले और द्युलोक सम्बन्धी कर्मोंमें कुशल आपके (शम्बरम्) शत्रु है (त्यम्, तुर्वशम्, यदुम्) इस हिंसक मनुष्यको (अध) और उसके (पुरः) पुरको ध्वंसन करो)

भावार्थ——कर्मयोगीलोग शत्रुओंके पुरोंको सर्व प्रकारसे भेदन कर सकते हैं अन्य नहीं ।

परि णो अश्वमश्वविद्गोमदिन्दो हिरण्यवत् ।
क्षरा सहस्रिणीरिषः ॥ ३ ॥

परि । नः । अश्वं । अश्वऽवित् । गोऽमत् । इन्दो इति । हिरण्यऽवत् । क्षर । सहस्रिणीः । इषः ॥३॥

पदार्थः——(इन्दो) हे कर्मयोगिन् ! (अश्ववित) अश्वादिभिर्युतो भवान् (नः) अस्मभ्यम् (परि) सर्वतः स्वकर्मद्वारेण (अश्वमत, गोमत, हिरण्यवत्) घोटकगोहिरण्यादियुतान् (सहस्रिणीः इषः) बहुविधैश्वर्यान् (क्षर) उत्पादयतु ॥

पदार्थ——(इन्दो) हे कर्मयोगिन् ! (अश्ववित्) अश्वादिकोंसे युक्त आप (नः) हमारे लिये (परि) सब ओरसे अपने कर्मयोगद्वारा (अश्वमत्, गोमत्, हिरण्यवत्) अश्व, गो, हिरण्यादि युक्त (सहस्रिणीः, इषः) अनेक प्रकारके ऐश्वर्योंको (क्षर) उत्पन्न करिये ।

भावार्थ—इस मन्त्रमें कर्म्मयोगियोंके द्वारा अनन्त प्रकारके ऐश्वर्य्योंकी उपलब्धिका वर्णन किया गया है ।

पवमानस्य ते वयं पवित्रमभ्युन्दतः ।
सखित्वमा वृणीमहे ॥ ४ ॥१७॥

पवमानस्य । ते । वयं । पवित्रं । अभिऽउंदतः । सखिऽत्वं । आ । वृणीमहे ॥४॥

पदार्थः—(पवमानस्य) स्वाश्रितजनान्पवित्रयन् (पवित्रम्) पूतमनुष्यस्य (अभ्युन्दतः) उत्साहकर्तुः (ते) तव (सखित्वम्) मैत्रीकरणाय (वयं) वयम् (आवृणीमहे) प्रार्थयामः ॥

पदार्थ—(पवमानस्य) अपने आश्रितजनोंको पवित्र करते-हुये (पवित्रम्, अभ्युन्दतः) और पवित्र किये हुये मनुष्यको उत्साहित करने वाले (ते) तुम्हारे (सखित्वम्) मैत्रीभावके लिये (वयम्) हम लोग (आवृणीमहे) प्रार्थना करते हैं ।

भावार्थ—इस मन्त्रमें परमात्माके सद्गुणोंको धारण करके परमात्माके साथ मैत्रीभावका वर्णन किया गया है ।

ये ते पवित्रमूर्मयोऽभिक्षरन्ति धारया ।
तेभिर्नः सोम मृळय ॥५॥१८॥

ये । ते । पवित्रं । ऊर्मयः । अभिऽक्षरंति । धारया । तेभिः । नः । सोम । मृळय ॥५॥

पदार्थः—(सोम) हे सौम्यप्रकृते कर्मयोगिन् ! (ये, ते, ऊर्मयः) याः शरणागतरक्षिका भवतः शक्तयः (पवित्रम्) शुद्धान्तःकरणवंतं मनुष्यं (धारया) प्रवाहरूपेण (अभिक्षरन्ति) अभिगता भवन्ति । (तेभिः) ताभिः शक्तिभिः (नः) अस्मान् (मृलय) सुरक्षिता न्विधाय सुखय ॥

पदार्थ—(सोम) हे सौम्यस्वभाव कर्मयोगिन् ! (ये, ते, ऊर्मयः) जो आपकी शरणरक्षक शक्तियें (पवित्रम्,) शुद्ध हृदय वाले मनुष्यकी ओर (धारया) प्रवाहरूपसे (अभिक्षरन्ति) अभिगत होती हैं (तेभिः) उन शक्तियोंसे (नः) हमको (मृलय) सुरक्षित करके सुखी करिये ।

भावार्थ—कर्म्मयोगीके उद्योगादि भावोंको धारण करके स्वयं उद्योगी बननेका उपदेश इस मन्त्रमें किया गया है ।

स नः पुनान आ भर रयिं वीरवतीमिषम् ।
ईशानः सोम विश्वतः ॥ ६ ॥

सः । नः । पुनानः । आ । भर । रयिं । वीरऽवतीं । इषं । ईशानः । सोम विश्वतः ॥६॥

पदार्थः—(सोम) हे बुधवर ! (सः) स त्वं परमात्मा (विश्वतः, ईशानः) सर्वतः स्वाधिकारं स्थापयन् (नः, पुनानः) अस्मान् पवित्रयन् (वीरवतीम्) महावीरयुताभिः (इषम्, रयिं) अन्नधनादिसंपत्तिभिः (आ, भर) आत्मजनस्थानानि परिपूरय ॥

पदार्थ—(सोम) हे विद्वन् ! (सः) वह आप (विश्वतः, ईशानः) चारो ओरसे अपना अधिकार जमाते हुए (नः पुनानः)

हम लोगोंको पवित्र करते हुये (वीरवतीम्) बड़े बड़े वीरोंसे युक्त (इषम्, रयिम्) अन्नधनादि सम्पत्तिसे (आ, भर) अपने जनस्थानोंको परिपूर्ण करिये ।

भावार्थ—विद्वान् लोग अपने विद्याबलसे अपने देशको ऐश्वर्योंसे परिपूर्ण करते हैं। इसलिये विद्वानोंका सत्कार करना परम कर्तव्य है।

एतमु त्यं दश क्षिपो मृजन्ति सिन्धुमातरम् ।
समादित्येभिरख्यत ॥ ७ ॥

एतं । ऊं इति । त्यं । दश । क्षिपः । मृजन्ति । सिन्धुऽमातरं । सं । आदित्येभिः । अख्यत ॥७॥

पदार्थः—(एतम, त्यम, उ) तं भवन्तं (दश, क्षिपः, मृजन्ति) दशेन्द्रियाणि नियततया ज्ञानक्रियायां दक्षतां सम्पादयन्ति । यतो भवान् (सिन्धुमातरम) सामुद्रिकपदार्थज्ञाता, तथा (आदित्येभिः समख्यत) विद्युदादिशक्त्या सूक्ष्मातिसूक्ष्मपदार्थज्ञाता भवति। "आदित्यः कस्मादादत्ते रसानादत्ते भासं ज्योतिषा मादीप्तो भासेति" नि. अ०. २ । खं. १३ ।

पदार्थ—(एतम्, त्यम्, उ) उन आपको (दश, क्षिपः, मृजन्ति) दसों इन्द्रियें नियत होनेसे ज्ञानक्रियादक्ष बनाती हैं । जिससे आप (सिन्धुमातरम्) समुद्रविषयक पदार्थोंके ज्ञाता तथा (आदित्येभिः, समख्यत) विद्युदादिशक्तियों द्वारा सूक्ष्मसे सूक्ष्म पदार्थोंके ज्ञाता हो जाते हैं "आदित्यः कस्मादादत्ते रसानादत्ते भासं ज्योतिषा मादीप्तो भासेति" नि अ. २ । खं. १३ ।

भावार्थ—ईश्वरका साक्षात्कार बुद्धिकी वृत्तियोंके द्वारा होता है॥

समिन्द्रेणोत वायुना सुत एति पवित्र आ ।
सं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥ ८ ॥

सं । इंद्रेण । उत । वायुना । सुतः । एति । पवित्रे । आ ।
सं । सूर्यस्य । रश्मिऽभिः ॥८॥

पदार्थः—(सुतः) सुसंस्कृतः कर्मयोगी (सूर्यस्य, रश्मिभिः, सम्) तैजसपदार्थाश्रयेण (इन्द्रेण, उत, वायुना) विद्युत्, अन्यैः संमिल्य (पवित्रे, आ समेति) महापवित्रकार्यसिद्धिं करोति ॥

पदार्थ—(सुतः) सुसस्कृत कर्मयोगी (सूर्यस्य, रश्मिभिः, सम्) तैजस पदार्थोंके आश्रयसे (इन्द्रेण, उत, वायुना) विद्युत्, और-से मिल कर (पवित्रे, आ समेति) बड़े बड़े पवित्र कार्योंको सिद्ध करता है।

भावार्थ—कर्म्मयोगी सूक्ष्मसे सूक्ष्म पदार्थोंकी सिद्धि कर लेता है। अर्थात् उससे कोई काम भी अशक्य नहीं। कर्म्मयोगीके सामर्थ्यमें समग्र काम है। इस बातका वर्णन इस मन्त्रमें किया गया है।

स नो भगाय वायवे पूष्णे पवस्व मधुमान् ।
चारुर्मित्रे वरुणे च ॥ ९ ॥

सः । नः । भगाय । वायवे । पूष्णे । पवस्व । मधुऽमान् ।
चारुः । मित्रे । वरुणे । च ॥९॥

पदार्थः—(मधुमान्) मधुरानन्दोत्पादकः (चारुः) सर्वत्रगतिशीलः (सः) स भवान् (नः) मह्यं (मित्रे) उचितकर्मकर्त्रे, तथा (वरुणे) यः सत्कारार्हस्तस्मै (भगाय)

ऐश्वर्याय (वायवे) सुन्दरगतये च (पूष्णे) तथा पुष्टिप्राप्तये (पवस्व) उद्योगसहितो भवतु ॥

पदार्थ—(मधुमान्) मधुर आनन्दके उत्पादक (चारुः) सर्वत्र गति वाले (सः) वह आप (नः) मुझको (मित्रे) और उचित कर्म करने वालेको तथा (वरुणे) जो सत्कार करने योग्य है उसको (भगाय) ऐश्वर्य (वायवे) सुन्दरगति (पूष्णे) तथा पुष्टि प्राप्त होनेके लिये (पवस्व) सोद्योग होवें ।

भावार्थ—इस मन्त्रमें परमात्मासे उद्योगकी प्रार्थना की गई है परमात्माकी परमकृपासे ही पुरुष उद्योगी बन कर परम ऐश्वर्यको प्राप्त होता है ।

उच्चा ते जातमन्धसो दिवि षद्भूम्या ददे ।
उग्रं शर्म महि श्रवः ॥१०॥१९॥

उच्चा । ते । जातं । अंधसः । दिवि । सत् । भूमिः । आ । ददे । उग्रं । शर्म । महि । श्रवः ॥१०॥

पदार्थः—(ते, अंधसः) हे कर्मयोगिन् ! भवदुत्पादित-पदार्थानाम् (उच्चा, जातम्) उच्चसमूहं (भूमिः, आददे) समस्ताः पृथिवीस्था जना गृह्णन्ति (उग्रम् शर्म) यो ह्यत्यन्त-सुखस्वरूपोऽस्ति तथा (महि, श्रवः) भवतो महायशः (दिवि-षत्) द्युलोकेपि व्याप्तम् ॥

पदार्थ—(ते, अंधसः) हे कर्मयोगिन् ! तुम्हारे पैदा किये हुये पदार्थोंके (उच्चा, जातम्) उच्च समूहको (भूमिः आददे) सम्पूर्ण

पृथिवी भरके लोग ग्रहण करते हैं (उग्रम्, शर्म) जो कि अत्यन्त सुखस्वरूप है तथा (महि श्रवः) आपका महत् यश (दिविषत्) द्युलोकमें भी व्याप्त है ।

भावार्थ—कर्म्मयोगी पुरुषके उत्पन्न किये हुए कलाकौशलसे सम्पूर्ण लोग लाभ उठाते हैं ।

एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम् ।

सिषासन्तो वनामहे ॥ ११ ॥

एना । विश्वानि । अर्यः । आ । द्युम्नानि । मानुषाणां ।
सिसासंतः । वनामहे ॥११॥

पदार्थः—(अर्यः) प्रजास्वामी (एना) स्वक्रियाभिः (मानुषाणाम्) मनुष्याणाम् (विश्वा, द्युम्नानि) सम्पूर्णसम्पत्तीः (आ) आहरति "संचयंकरोतीतियावत्" । (सिषासन्तः) एतादृशस्य प्रभो र्भक्तौ तत्परा भवन्तो वयम् (वनामहे) तस्य-प्रार्थनां कुर्मः ॥

पदार्थ—(अर्यः) प्रजाओंका स्वामी (एना) अपनी क्रियाओंसे (मानुषाणाम्) मनुष्योंकी (विश्वा, द्युम्नानि) सम्पूर्ण सम्पत्तियोंका (आ) आहरण अर्थात् संचय करता है (सिषासन्तः) ऐसे स्वामीकी भक्तिमें तत्पर रहते हुए हम (वनामहे) उसकी प्रार्थना करते हैं ।

भावार्थ—इस मन्त्रमें स्वामिभक्तिका वर्णन किया गया है। तात्पर्य्य यह है कि स्वामिभक्तिसे पुरुष उच्च पदवीको प्राप्त होता है ।

स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।

वरिवोवित्परि स्रव ॥ १२ ॥

सः । नः । इन्द्राय । यज्यवे । वरुणाय । मरुत्ऽभ्यः ।
वरिवःऽवित् । परि । स्रव ॥१२॥

पदार्थः—(सः) स कर्मयोगी (वरिवोवित्) समस्त-धनप्रापको भवान् (नः) अस्माकम् (यज्यवे) प्रशंसनीयानां (इन्द्राय, वरुणाय, मरुद्भ्यः) तैजसजलीयवायवीय-पदार्थानां संसिद्धये (परिस्रव) उद्यतो भवतु ॥

पदार्थ—(सः) वह कर्मयोगी (वरिवोवित्) सम्पूर्ण धनों-का प्रापयिता आप (नः) हमारे (यज्यवे) प्रशंसनीय (इन्द्राय, वरुणाय, मरुद्भ्यः) तैजस, जलीय तथा वायवीय पदार्थोंकी सिद्धिके लिये (परिस्रव) उद्यत होयँ ।

भावार्थ—अग्नि तथा जलादि सब पदार्थ कर्मयोगी पुरुषोंके द्वारा सब प्रकारके सुखोंको उत्पन्न करते हैं ।

उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम् ।
इन्दुं देवा अयासिषुः ॥ १३ ॥

उपोइति । सु । जातं । अप्ऽतुरं । गोभिः । भंगं । परिऽकृतं । इंदुं । देवाः । अयासिषुः ॥ १३ ॥

पदार्थः—(सुजातं) सुसंस्कारयुक्तः (अप्तुरम्) अनेकविधकर्मणां प्रेरकः, (गोभिः परिष्कृतम्) शुद्धेन्द्रियवान् (भंगम्) शत्रुभंजकः, यः (इन्दुम्) परमप्रकाशवान् कर्मयोग्यस्ति, तस्य (देवाः) स्वाभ्युदयेच्छुका जनाः (अयासिषुः) अनुसरणं कुर्वन्ति ॥

पदार्थ--(सुजातं) सुन्दर संस्कार युक्त (अप्तुरम्) अनेक कर्मों-का प्रेरक (गोभिः परिष्कृतम्) शुद्ध इन्द्रियों वाला (भंगम्) शत्रुओंका भञ्जक जो (इन्दुम्) परम प्रकाश वाला कर्मयोगी है उसका (देवाः) अपनी अभ्युन्नति चाहने वाले लोग (आयासिषुः अनुसरण करते हैं ।

भावार्थ--अभ्युदयाभिलाषी जनोंको चाहिये कि वे उक्तगुण-वाले कर्मयोगीका आश्रयण करें ।

तमिद्वर्धन्तु नो गिरो वत्सं संशिश्वरीरिव ।
य इन्द्रस्य हृदंसनिः ॥ १४ ॥

तं । इत् । वर्धंतु । नः । गिरः । वत्सं । संशिश्वरीःऽइव ।
यः । इंद्रस्य । हृदंऽसनिः ॥ १४ ॥

पदार्थः--(यः) योहि राष्ट्रजनः (इन्द्रस्य, हृदसंनिः) स्वकीयप्रभोर्भक्तोऽस्ति (तम्) तं (इत्) निश्चयेन (नः, गिरः) उपदेशप्रयुक्ता मदीया वाण्यः (वर्धन्तु) वर्धयन्तु । (वत्सम्, संशिश्वरीः, इव) यथा दुग्धपरिपूर्णा गौः स्ववत्सं वर्धयति, तथैव ।

भावार्थ--(यः) जो राष्ट्र (इन्द्रस्य, हृदंसनिः) अपने स्वामी-का भक्त है (तम्) उसको (इत्) निश्चय (नः, गिरः) उपदेश प्रयुक्त मेरी वाणियें (वर्धन्तु) बढायें (वत्सम्, संशिश्वरीः. इव) जिस प्रकार दुग्धसे परिपूर्ण गौ अपने बच्चेको बढ़ाती है उसी प्रकार ।

भावार्थ--इस मन्त्रमें स्वामिभक्तिका उपदेश किया गया है ।

अर्षा णः सोम शं गवे धुक्षस्व पिप्युषीमिषम् ।
वर्धा समुद्रमुक्थ्यम् ॥ १५ ॥ २० ॥

अर्ष । नः । सोम । शं । गवे । धुक्षस्व । पिप्युर्षी । इषं । वर्ध । समुद्रं । उक्थ्यं ॥१५॥२०॥

पदार्थः—(सोम) हे कर्मयोगिन् ! त्वम् (नः) अस्माकं (गवे) वाण्यै (शं, अर्ष) सुखं वर्धय । (पिप्युषीम्, इषम्, धुक्षस्व) अथ च तृप्तये अन्नादिपदार्थानुत्पादय (समुद्रम्, उकथ्यम्, वर्ध) समुद्रइवाचलैश्वर्यान्वर्धय ॥

पदार्थ—(सोम) हे कर्मयोगिन् ! आप (नः) हमारी (गवे) वाणीके लिये (शम्, अर्ष) सुखको बढ़ाइये (पिप्युषीम्, धुक्षस्व) और तृप्ति करनेमें पर्याप्त अन्नादि पदार्थोंको उत्पन्न करिये (समुद्रम्, उक्थ्यम्, वर्ध) समुद्रके समान अचल ऐश्वर्यको बढ़ाइये ।

भावार्थ—हे मनुष्यों ! यदि, आप ऐश्वर्यको बढ़ाना चाहते हैं तो कर्मयोगियोंसे प्रार्थना करके उद्योगी बनिये ।

पवमानो अजीजनद्दिवश्चित्रं न तन्यतुम् ।
ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत् ॥ १६ ॥

पवमानः । अजीजनत् । दिवः । चित्रं । न । तन्यतुं । ज्योतिः । वैश्वानरं । बृहत् ॥ १६ ॥

पदार्थः—(पवमानः) सर्वपवित्रकर्ता कर्मयोगी (दिवः, तन्यतुम, न) द्युलोकस्य शस्त्ररूपविद्युदिव (बृहत, वैश्वानरम, ज्योतिः) विद्युदादितैजसमहापदार्थान् (अजीजनत्) उत्पादयति ॥

पदार्थ—(पवमानः) सबको पवित्र करनेवाला कर्मयोगी (दिवः, तन्यतुम्, न) द्युलोककी शस्त्ररूप विद्युत्के समान (बृहत्, वैश्वानरम्, ज्योतिः) बड़े विद्युदादि तैजस पदार्थको (अजीजनत्) पैदा करता है ।

भावार्थ—कर्मयोगी द्वारा ही विद्युदादि पदार्थ उपयोगमें आ सक्ते हैं । इसलिये हे मनुष्यों ! तुमको चाहिये कि तुम कर्मयोगियोंको उत्पन्न करके अपने देशको अभ्युदयशाली बनाओ ।

पर्वमानस्य ते रसो मदो राजन्नदुच्छुनः ।
वि वारमव्यमर्षति ॥ १७ ॥

पर्वमानस्य । ते । रसः । मदः । राजन् । अदुच्छुनः ।
वि । वार॑म् । अव्य॑म् । अर्षति ॥ ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे कर्मकुशल ! (पवमानस्य, ते) सर्वसुखदातुर्भवतः (रसः) उत्पादितं सुखम् अथच (मदः) आनन्दः (राजन्) हे स्वामिन्! (अदुच्छुनः) योहि विघ्नविधातृभिः रहितोस्ति, सः (वारम्, अव्यम्) यो भवतः दृढभक्तोस्ति, तं (वि) विशेषरूपेण (अर्षति, गच्छति ॥

पदार्थ—हे कर्मदक्ष ! (पवमानस्य, ते) सबको सुख देने वाले आपको (रसः) पैदा किया हुआ सुख और (मदः) आह्लाद (राजन्) हे स्वामिन् ! (अदुच्छुनः) जो विघ्नकारियोंसे रहित है वह (वारम्, अव्यम्) जो आपका दृढ़ भक्त है उसकी ओर (वि) विशेष रूपसे (अर्षति) जाता है ।

भावार्थ—इस मंत्रमें ईश्वरकी भक्तिका उपदेश किया गया है ईश्वरके गुण, कर्म, स्वभावको समझ कर जो पुरुष ईश्वर परायण होता है उसको सब प्रकारके ऐश्वर्य प्राप्त होते है ।

पर्वमान रसस्तव दक्षो वि राजति द्युमान् ।
ज्योतिर्विश्वं स्वर्दृशे ॥ १८ ॥

पवमान । रसः । तव । दक्षः । वि । राजति । द्युऽमान् । ज्योतिः । विश्वं । स्वः । दृशे ॥ १८ ॥

पदार्थः—(पवमान) हे जनरक्षक ! (तव) भवतः (रसः) रक्षाजनितसुखम् (द्युमान्) सुन्दरं (दक्षः) अप्रयासलभ्यम् (विराजति) विराजितमस्ति । अथच (स्वः) सर्वान् (दृशे) पदार्थान्द्रष्टुं, त्वम् (विश्वम्, ज्योतिः) समस्तजगद्व्यापिनीः सूक्ष्मशक्तीः उत्पादयसि ।

पदार्थ—(पवमान) हे प्रजारक्षक ! (तव) तुम्हारा (रसः) रक्षाजनित सुख (द्युमान्) सुन्दर (दक्षः) अनायासलभ्य (विराजित है । और (स्वः) सब (दृशे) पदार्थोंके देखनेके लिये आप (विश्वम्, ज्योतिः) सर्वव्यापिनी सूक्ष्मशक्तियोंको पैदा करते हैं ।

भावार्थ—परमात्माकी कृपासे मनुष्यमें दिव्यशक्तियें उत्पन्न होतीं हैं । जिससे मनुष्य देवभावको धारण करता है ।

यस्ते मदो वरेण्यस्तेना पवस्वान्धसा ।
देवावीरघशंसहा ॥ १९ ॥

यः । ते । मदः । वरेण्यः । तेन । पवस्व । अन्धसा । देवऽअवीः । अघशंसऽहा ॥१९॥

पदार्थः—हे स्वामिन् ! त्वम् (देवावीः, अघशंसहा) सदाचारिणां रक्षकोसि, तथा दुष्टानां घातकोसि (यः) यत् (ते) तव (वरेण्यः, रसः) भजनीयं सुखमस्ति (तेन, अन्धसा) तेन तृप्तिकारकेण सुखेनास्मान् (पवस्व) पवित्रय ॥

पदार्थ—हे स्वामिन् ! आप (देवावीः अघशंसहा) सदाचारियोंके रक्षक तथा दुष्टोंको मारने वाले हैं (यः) जो (ते) तुम्हारा (वरेण्यः, रसः) भजनीय सुख है (तेन, अन्धसा) उस तृप्तिकारक-सुखसे हम लोगोंको (पवस्व) पवित्र करिये ।

भावार्थ—इस मंत्रमें परमात्मासे आनन्दोपलब्धिकी प्रार्थना की गई है ।

जघ्निर्वृत्रममित्रियं सस्निर्वाजं दिवेदिवे ।

गोषा उं अश्वसा असि ॥ २० ॥ २१ ॥

जघ्निः । वृत्रं । अमित्रियं । सस्निः । वाजं । दिवेऽदिवे ।
गोऽसाः । ऊं इति । अश्वऽसाः । असि ॥२०॥

पदार्थः—(अमित्रियम्, वृत्रम्, जघ्निः) भवान् यो भवदाज्ञाप्रतिकूलस्तं पापिनं हन्ति तथा (वाजम्, दिवे दिवे, सस्निः) प्रतिदिनं संग्रामाय सैनिकविभागे तत्परोस्ति (गोषाः, उ, अश्वसाः, असि) गवाश्वादिहितकृज्जीवानां वर्धकोस्ति ॥

पदार्थ—(अमित्रियम्, वृत्रम्, जघ्निः) आप जो आपकी आज्ञाके प्रतिकूल है उस पापीके हन्ता है । तथा (वाजम्, दिवेदिवे, सस्निः) प्रतिदिन संग्रामके लिये सैनिक विभागमें तत्पर रहते हैं (गोषाः, उ, अश्वसाः, असि) गो, अश्व आदि हितकारक जीवोंके बढ़ाने वाले हैं

भावार्थ—परमात्माका वज्र दुष्टोंके दमनके लिये सदैव उद्यत रहता है । इस मंत्रमें परमात्माकी दंडशक्तिका वर्णन किया गया है ।

संमिश्लो अरुषो भव सूपस्थाभिर्न धेनुभिः ।

सीदंञ्छ्येनो न योनिमा ॥ २१ ॥

संऽमिश्लः । अरुषः । भव । सुऽउपस्थाभिः । न । धेनुऽभिः सीदन् । श्येनः । न । योनिं । आ ॥२१॥

पदार्थः—भवान् (श्येनः, न, योनिम्, आसीदन्) विद्युदिव स्वस्थाने तिष्ठन् (न) तत्काल एव रणे (सूपस्थाभिः, धेनुभिः संमिश्लः,) दृढस्थितिमद्भिरिन्द्रियैर्मिश्रितः "सावधानीभूयेत्यर्थः" (अरुषः, भव) देदीप्यमानो भवतु ॥

पदार्थ—आप (श्येनः, न, योनिम्, आसीदन्) विद्युत्के समान अपने स्थानमें स्थित होते हुये (न) तत्काल ही युद्धमें (सूपस्थाभिः, धेनुभिः, संमिश्लः) दृढ़ स्थिति वाली इन्द्रियोंसे मिश्रित अर्थात् सावधान होकर (अरुषः, भव) देदीप्यमान होयँ ।

भावार्थ—परमात्माकी शक्तियें विद्युत्के समान सदैव उग्ररूपसे विद्यमान रहतीं है । जो पुरुष उनके विरुद्ध करता है उसको आत्मिक सामाजिक और शारीरिक रूपसे अवश्यंमेव दण्ड मिलता है ।

स पवस्व य आविथेन्द्रं वृत्राय हन्तवे ।
वव्रिवांसं महीरपः ॥ २२ ॥

सः । पवस्व । यः । आविथ । इंद्रं । वृत्राय । हंतवे । वव्रिऽवांसं । महीः । अपः ॥२२॥

पदार्थः—(यः) येन भवता (वृत्राय, हन्तवे) दुष्टाचारिप्रतिपक्षिहननाय (महीः, अपः, वाव्रिवांसम्) सर्वास्ववस्थासु अप्रतिहताः (इन्द्रम्, आविथ) शक्तयः सुरक्षिताः (सः) एवं भूतो भवान् (पवस्व) मम रक्षां करोतु ॥

पदार्थ—(यः) जो आप (वृत्राय, हन्तवे) दुष्टाचारी प्रतिपक्षी-के हनन करनेके लिये (महीः, अपः, वाव्रिवांसम्) सब अवस्थाओंमें अप्रतिहत (इन्द्रम्, आविथ) शक्तियोंको सुरक्षित रखते हैं (सः) एवं भूत आप (पवस्व) मेरी रक्षा करें।

भावार्थ—इस मन्त्रमें सर्वशक्तिसम्पन्न परमात्मासे रक्षाकी प्रार्थना की गई है।

सुवीरासो वयं धना जयेम सोम मीढ्वः।
पुनानो वर्ध नो गिरः ॥ २३ ॥

सुऽवीरासः। वयं। धना। जयेम। सोम। मीढ्वः। पुनानः। वर्ध। नः। गिरः ॥२३॥

पदार्थः—(मीढ्वः) हे सुखवर्षक ! (नः) अस्माकम् (गिरः) वाक्छक्तिं (पुनानः) वर्धयन् (वर्ध) अस्मानपि आनन्दय, यतः (सोम) हे प्रभो (वयम्) वयम् (सुवीरासः) सुवीरैः संगता भवन्तः (धनं जयेम) अनेकविधसंपत्तीनां लाभं कुर्मः ॥

पदार्थ—(मीढ्वः) हे सुखकी वर्षा करने वाले ! (नः) हमारी (गिरः) वाक्शक्तिको (पुनानः) बढ़ाते हुये (वर्ध) हमको भी अभिनन्दित करिये। जिससे (सोम) हे स्वामिन् (वयम्) हम (सुवीरासः) सुन्दर वीरोंसे संगत होकर (धनम्, जयेम) अनेक प्रकारकी सम्पत्तिका लाभ करें।

भावार्थ—इस मंत्रमें परमात्मासे प्रगल्भवक्ता बननेकी प्रार्थना की गई है।

त्वोतासस्तवावसा स्याम वन्वन्त आमुरः ।
सोम व्रतेषु जागृहि ॥ २४ ॥

त्वाऽऊतासः । तव । अवसा । स्याम । वन्वंतः । आऽमुरः ।
सोम । व्रतेषु । जागृहि ॥२४॥

पदार्थः--(त्वोतासः, तव अवसा) हे प्रभो ! तवरक्षया रक्षिताः सन्तो वयम् (वन्वन्तः) भवत्सेवायां तत्परा भवन्तः (आमुरः, स्याम) तव विरोधिनां विनाशका भवेम । (सोम) हे सौम्यस्वभाव ! त्वम् (व्रतेषु, जागृहि) स्वकीयेषु नियमेषु जागृतो भव ।

पदार्थ--(त्वोतासः, तव, अवसा) हे प्रभो ! तुम्हारी रक्षासे सुरक्षित होकर हम (वन्वन्तः) आपकी सेवामें तत्पर होते हुये (आमुरः, स्याम) आपके विरोधियोंके विनाशक हो जांय (सोम) हे सौम्यचित्त-वाले । आप (व्रतेषु, जागृहि) अपने नियमोंमें सदैव जागृत हैं ।

भावार्थ—जो परमात्मा अपने नियमोंमें सदैव जागृत है अर्थात् जिसके नियम सदैव अटल हैं उन नियमोंके अनुयायी होकर हम ईश्वर-नियम विरोधियोंको दलन करें ।

अपघ्नन्पवते मृधोऽप सोमो अराव्णः ।
गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥२५॥२२॥

अपऽघ्नन् । पवते । मृधः । अप । सोमः । अराव्णः ।
गच्छन् । इंद्रस्य । निःऽकृतम् ॥२५॥

पदार्थः—(सोमः) रक्षाकर्ता प्रभुः (मृधः, अपघ्नन्,) घातकान्निघ्नन्, अथच (अराव्णः) येचेमं देयं धनं न ददते, तान् (इन्द्रस्य) स्वकर्माधिकारिणः (निष्कृतम्) अधिकारे (अपगच्छन्) दुर्गातिरूपेण स्थापयन् (पवते) संसारं निर्विघ्नं करोति ॥

पदार्थ—(सोमः) रक्षा करने वाला स्वामी (मृधः, अपघ्नन्) हिंसकोंको मारता हुआ (अराव्णः) जो लोग इसको देय धन नहीं देते उनको (इन्द्रस्य) अपने कर्माधिकारीके (निष्कृतम्) अधिकारमें (अपगच्छम्) दुर्गति रूपसे स्थापन करता हुआ (पवते) संसारको निर्विघ्न करता है ।

भावार्थ—जो अपने रक्षक स्वामी अर्थात् राजाको देयधन (कर) नहीं देते वे राजनियमसे दण्डनीय होते हैं ।

महो नो राय आ भर पवमान जही मृधः ।
रास्वेन्दो वीरवद्यशः ॥ २६ ॥

महः । नः । रायः । आ । भर । पवमान । जहि । मृधः । रास्व । इंदो इति । वीरऽवत् । यशः ।

पदार्थः—(इन्दो) हे ऐश्वर्यसम्पन्न ! भवान् (नः) अस्मान् (महः, रायः, आभर) पवित्रधनैः परिपूरयतु (पवमान) हे जगत्त्रातः ! (मृधः, जहि) हिंसकान्नाशयतु (वीरवत्, यशः, रास्व) वीरसहितं यशः प्रकटयतु ॥

पदार्थ—(इन्दो) हे ऐश्वर्यसम्पन्न ! भवान् (नः) हमको (महः, रायः आभर,) पवित्र धनसे परिपूर्ण करिये (पवमान) हे सर्व-

रक्षक ! (मृधः, जहि) हिंसकोंको नष्ट करिये (वीरवत्, यशः, शस्त्र वीरोंके सहित यशको प्रकट करिये ।

भावार्थ—इस मंत्रमें राजधर्मका उपदेश है। जो पुरुष राजधर्मको पालन करते हैं, वे वीरपुरुषोंको उत्पन्न करके प्रजाको सर्वथा सुरक्षित करते हैं ।

न त्वा॑ श॒तं च॒न ह्रु॒तो राधो॒ दित्स॑न्त॒मा मि॑नन् ।
यत्पु॑ना॒नो म॑ख॒स्यसे॑ ॥ २७ ॥

न । त्वा॒ । श॒तं । च॒न । ह्रु॒तः । राधः॑ । दित्स॑न्तं । आ । मि॒नन् । यत् । पु॒ना॒नः । म॒ख॒स्यसे॑ ॥२७॥

पदार्थः—(यत्, पुनानः मखस्यसे) यो भवान् स्वप्रजाः सुखीकर्तुं धनं जिघृक्षति अतः (राधः) धनम् (आदित्सन्तम्) गृह्णन् (त्वा) त्वां (शतं, चन, ह्रुताः) शतशोदुष्टजनाः (न, मिनन्) बाधितुं न शक्नुवन्ति ॥

पदार्थ—(यत्, पुनानः, मखस्यसे) आप जो कि अपनी प्रजाओंको सुखी करनेके लिये धन ग्रहण करनेकी इच्छा करते हैं इससे (राधः) धनको (आदित्सन्तम्) ग्रहण करते हुये (त्वा) तुमको (शतम्, चन, ह्रुताः) सैकड़ों कुटिल दुष्ट (न, मिनन्) बाधित नहीं कर सकते ।

भावार्थ—जो राजा प्रजाकी रक्षाके निमित्त 'कर' लेता है उसे कोई दूषित नहीं कर सक्ता है । और उसकी रक्षासे सुरक्षित होकर प्रजा सर्वथैव निर्विघ्न रहती है, उसमें दुष्ट दस्यु आदि कोई विघ्न उत्पन्न नहीं कर सकते ।

पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने ।
विश्वा अप द्विषो जहि ॥ २८ ॥

पवस्व । इन्दो इति । वृषा । सुतः । कृधि । नः । यशसः । जने ।
विश्वाः । अप । द्विषः । जहि ॥२८॥

पदार्थः—(इन्दो) हे प्रभो ! भवान् (वृषा) सर्वकामनापूरकोऽस्ति (सुतः, पवस्व) त्वम् सेवितानां सेवकानां रक्षां कुरु (नः, यशसः, कृधि, जने) तथा मनुष्येषु मां यशस्विनं कुरु (विश्वा, अपद्विषः जहि) समस्तनिषिद्धकर्मतत्परान् शत्रून् घातय ।

पदार्थ—(इन्दो) हे स्वामिन् ! आप (वृषा) सब कामनाओंके प्रापण करनेमें समर्थ हैं (सुतः, पवस्व) आप सेवन किये गये अपने सेवकोंकी रक्षा कीजिये (नः, यशसः, कृधि, जने) और मनुष्योंमें मुझको यशस्वी बनाइये (विश्वा अपद्विषः, जहि) सम्पूर्ण बुरे कामोंमें तत्परशत्रुओंको मारिये ।

भावार्थ—इस मंत्रमें परमात्मासे यशस्वी बननेकी प्रार्थना की गई है।

अस्य ते सख्ये वयं तवेन्दो द्युम्न उत्तमे ।
सासह्याम पृतन्यतः ॥ २९ ॥

अस्य । ते । सख्ये । वयं । तव । इन्दो इति । द्युम्ने ।
उत्ऽतमे । ससह्याम । पृतन्यतः ॥२९॥

पदार्थः—(अस्य, ते, सख्ये) तव मित्रतां प्राप्य (इन्दो) हे सुयशःप्रकाशित ! (तव, उत्तमे, द्युम्ने) तवोत्तमयशो निमित्तं

वयं (पृतन्यत, ससह्याम) रणे युद्धनिमित्तमागतान् शत्रून् अभिभवेमः ॥

पदार्थ—(अस्य, ते, सख्ये) तुम्हारे मित्र भावको प्राप्त होकर (इन्दो) हे सुन्दर यशसे प्रकाशित ! (तव, उत्तमे, द्युम्ने) तुम्हारे उत्तम यशके निमित्त हम (पृतन्यतः, ससह्याम) संग्राममें युद्धके निमित्त आये हुये प्रतिपक्षियोंको अभिभूत करें ।

भावार्थ—इस मंत्रमें परमात्माने राजधर्ममें साहाय्यका उपदेश किया है ।

या ते भीमान्यायुधा तिग्मानि सन्ति धूर्वणे ।
रक्षा समस्य नो निदः ॥ ३० ॥ २३ ॥

या । ते । भीमानि । आयुधा । तिग्मानि । संति । धूर्वण
रक्ष । समस्य । नः । निदः ॥३०॥

पदार्थः—हे सेनापते (धूर्वणे) शत्रुघातनाय (या) यानि (ते) तव (भीमानि, तीग्मानि, आयुधा सन्ति) भयंकराणि तीक्ष्णशस्त्राणि तैः (नः) अस्मान् (समस्य निदः) सर्वविधैरपयशोभिः (रक्ष) त्रायस्व ॥

पदार्थ—और हे सेनापते ! (धूर्वणे) शत्रुओंके नाशके लिये (या) जो (ते) आपके (भीमानि, तिग्मानि, आयुधा, सन्ति) भयंकर तीक्ष्ण शस्त्र हैं तिनसे (नः) हमको (समस्य, निदः) सर्वप्रकारके अपयशोंसे (रक्ष) बचाइये ।

भावार्थ—तीक्ष्ण शस्त्रों वाले सेनापति प्रजाओंको सब प्रकारकी विपत्तियोंसे बचाते हैं ।

इति इत्येकषष्टितमं सूक्तं त्रयोविंशो वर्गश्च समाप्तः ।

यह ६१ वां सूक्त और २३ वां वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ त्रिंशदृचस्य द्विषष्टितमस्य सूक्तस्य—

१–३० जमदग्निर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—
१, ६, ७, ९, १०, २३, २५, २८, २९ निचृद्गायत्री । २,
५, ११–१९, २१–२४, २७, ३०—गायत्री । ३ ककु-
म्मती गायत्री । ४ पिपीलिकामध्या गायत्री । ८,
२०, २६ विराड्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अथ सेनाधीशः प्रशस्यते ।

अब सेनापतिकी प्रशंसा की जाती है ।

एते असृग्रमिन्दवस्तिरः पवित्रमाशवः ।
विश्वान्यभि सौभगा ॥ १ ॥

एते । असृग्रं । इंदवः । तिरः । पवित्रं । आशवः । विश्वानि ।
अभि । सौभगा ॥१॥

पदार्थः—(एत) अयम् (आशवः) क्रियादक्षः (इन्दवः) सेनापतिः (पवित्रे, अभि) स्वकीयप्रजार्थं (विश्वानि) सर्वविधान् (तिरः) द्विगुणान् (सौभगा) भोग्यपदार्थान् (असृग्रम्) उत्पादयति ॥

पदार्थ—(एते) यह (आशवः) क्रियादक्ष (इन्दवः) सेनाधीश (पवित्रम् अभि) अपनी पवित्र प्रजाके लिये (विश्वानि) सब प्रकारके (तिरः) छिगुण (सौभगा) भोग्य पदार्थोंको (असृग्रम्) पैदा करता है ।

भावार्थ—इस मंत्रमें सेनापतिके गुणोंका वर्णन किया है ।

विघ्नन्तो॑ दुरि॒ता पु॒रु सु॒गा तो॒काय॑ वा॒जिन॑ः ।
तना॑ कृ॒ण्वन्तो॒ अर्व॑ते ॥ २ ॥

वि॒ऽघ्नंत॑ः । दुः॒ऽइ॒ता । पु॒रु । सु॒ऽगा । तो॒काय॑ । वा॒जिन॑ः ।
तना॑ । कृ॒ण्वंत॑ः । अर्व॑त ॥२॥

पदार्थः—(वाजिनः) परिपूर्णबलवान् अयं सेनापतिः (पुरु, दुरिता, विघ्नन्तः) गुर्वापत्तीरपघ्नन् (तोकाय) अस्मत्संतानानां (अर्वते) व्यापकीभवनाय (सुगा) सर्वविधसुखानि तथा (तना) धनानि (कृण्वंतः) संचयं कुर्वन् भोग्यपदार्थानुत्पादयति ॥

पदार्थ—(वाजिनः) पर्याप्त बल वाला सेनापति (पुरु, दुरिता, विघ्नन्तः) बड़ी बड़ी आपत्तियोंको हनन करते हुये (तोकाय) हमारी सन्तानोंको (अर्वते) व्यापक होनेके लिये (सुगा) सब प्रकारके सुखों तथा (तना) धनोंका (कृण्वन्तः) संचय करते हुये भोग्यपदार्थोंको उत्पन्न करते हैं ।

भावार्थ—जो सेनापति प्रजाकी सन्तानोंको व्यापक होने के लिये सब रास्तोंको निष्कंटक बनाता है । उक्तगुणों वाला सेनापति राजका अंग होकर राज्यकी रक्षा करता है ।

कृण्वन्तो वरिवो गवेऽभ्यर्षन्ति सुष्टुतिम् ।
इळामस्मभ्यं संयतम् ॥ ३ ॥

कृण्वंतः । वरिवः । गवे । अभि । अर्षति । सुऽस्तुतिं ।
इळां । अस्मभ्यं । संऽयतं ॥३॥

पदार्थः—(गवे, वरिवः, कृण्वन्तः)—मम गवाद्यर्थं बहुविधपदार्थानुत्पादयन् अथ च (अस्मभ्यम्) अस्मभ्यम् (संयतम्) सुदृढम् (इलाम्) अन्नं संचयन् (सुष्टुतिम्) अस्मत्सुन्दरप्रार्थनां (अभ्यर्षति) दत्तचिताः सन्तः शृण्वन्ति ॥

पदार्थः—(गवे, वरिवः, कृण्वन्तः) हमारे गवादिकोंके लिये अनेक पदार्थोंको उत्पन्न करते हुये और (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (संयतम्) सुदृढ (इलाम्) अन्नको संचित करते हुये (सुष्टुतिम्) हमारी सुन्दर प्रार्थनाको (अभ्यर्षन्ति) दत्तचित्त होकर सुनते हैं ।

भावार्थ—जो सेनापति प्रजाके लिये ऐश्वर्य उत्पन्न करता है और प्रजाकी प्रार्थनाओं पर ध्यान देता है, वह धर्मका पालन करता हुआ भलीभांति प्रजाओंकी रक्षा करता है ।

असाव्यंशुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः ।
श्येनो न योनिमासदत् ॥ ४ ॥

असावि । मदाय । अप्ऽसु । दक्षः । गिरिऽस्थाः । श्येनः ।
न । योनिं । आ । असदत् ।

पदार्थः—(अप्सु, दक्षः) क्रियाकुशलः (गिरिष्ठा, श्येनः,

न) मेघस्थितविद्युदिव शीघ्रकारी (अंशुः) तेजस्वी सेनाधीशः (असावि) ईश्वरत उत्पन्नः (योनिम्, आसदत्) स्वपदवीं गृह्णाति ॥

पदार्थ—(अप्सु, दक्षः) क्रियाओंमें कुशल (गिरिष्ठाः, श्येनः, न) मेघमें स्थित विद्युत्के समान शीघ्रकारी (अंशुः) तेजस्वी सेनापति (असावि) ईश्वरसे पैदा किया गया (योनिम्, आसदत्) अपनी पदवीको ग्रहण करता है ।

भावार्थ—उक्त गुणसम्पन्न सेनापति ईश्वरकी आज्ञासे उत्पन्न होता है । तात्पर्य यह है कि ईश्वर उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! तुम उक्त गुणों वाले पुरुषको सेनापति मानो । और ऐसे सेनापतियोंसे राजधर्मका दृढ़ प्रबन्ध करके प्रजामें रक्षाका प्रचार करो ।

शुभ्रमन्धो देववातमप्सु धूतो नृभिः सुतः ।
स्वदन्ति गावः पयोभिः ॥ ५ ॥ २४ ॥

शुभ्रं । अंधः । देवऽवातं । अप्ऽसु । धूतः । नृऽभिः सुतः ।
स्वदन्ति । गावः । पयःऽभि ॥५॥

पदार्थः—(देववातम्) दिव्यगुणसम्पन्नस्य रक्षयोत्पन्नम् तथा (नृभिः, सुतः) प्रजाभिरुत्पादितम् (अप्सु, धूतः) जलैः शुद्धम् च (शुभ्रम् अन्धः) वीर्यबुद्धिवर्धनेन उज्वलम् अन्नं (गावः पयोभिः) गोदुग्धसंस्कृतम् (स्वदंति) प्रजा उपभुञ्जन्ते ।

पदार्थ—(देववातम्) उस दिव्यगुणसम्पन्न सेनाधिपकी रक्षासे सुरक्षित तथा (नृभिः, सुतः) प्रजाओं द्वारा पैदा किये गये जो अन्न

(अप्सु, भूतः) और जो जलसे शुद्ध किया गया है (शुभ्रम्, अन्धः) वीर्य और बुद्धिके वर्धक उस उज्ज्वल अन्नको (गावः, पयोभिः) भलीभांति जो कि गऊके दुग्धसे संस्कृत है ऐसे अन्नको (स्वदन्ति) प्रजागण उपभोग करते हैं ।

भावार्थ—जिस देशमें प्रजाकी रक्षा करने वाले सेनाधीश होते हैं, उस देशकी प्रजा, नाना प्रकारके अन्नोंको दुग्धसे मिश्रित करके उपभोग करती है ।

तात्पर्य यह है कि राजधर्मसे सुरक्षित ही ऐश्वर्यको भोग सक्ते हैं, अन्य नहीं । इसलिये परमात्माने इस मंत्रमें राजधर्मका उपदेश किया है ।

आदीमश्वं न हेतारोऽशूशुभन्नमृताय ।
मध्वो रसं सधमादे ॥ ६ ॥

आत् । ईम् । अश्वम् । न । हेतारः । अशूशुभन् । अमृताय । मध्वः । रसम् । सधऽमादे ।

पदार्थः—(सधमादे) यज्ञस्थलेषु (आत) आनन्दिते-सति (हेतारः) प्रार्थयितृप्रजाः (अश्वं न) आशु राष्ट्रव्यापकं (मध्वो रसः) मधुरस इवास्वादनीयम्-आनन्दम् (अमृताय) भूयोपि सुगोप्तुं (अशूशुभन्) नुतिपूर्वकं सुभूषयन्ति ।

पदार्थ—(सधमादे) यज्ञस्थलोंमें (आत्) आनन्दित होनेके अनन्तर (हेतारः) प्रार्थयिता प्रजालोग (अश्वम्, न) शीघ्रही राष्टभरमें व्यापक (मध्वः, रसम्) मधुरसके समान आस्वादनीय आनन्दको (अमृताय) फिरभी सुरक्षित होनेके लिये (अशूशुभन्) स्तुतिद्वारा सुभूषित करते हैं ।

भावार्थ—जो लोग कर्मकाण्डी बनकर यज्ञ करते हैं, वेलोग अपने शुभ कर्मोंसे प्रजाको विभूषित करते हैं।

यास्ते धारा मधुश्चुतोऽसृग्रमिन्द ऊतये।
ताभिः पवित्रमासदः॥ ७॥

याः। ते। धाराः। मधुऽश्चुतः। असृग्रं। इंदो इति। ऊतये। ताभिः। पवित्रं। आ। असदः।

पदार्थः--(इन्दो) हे कर्मप्रधानसेनापते! (याः) याः (मधुश्चुतः) मोदवृष्टिकारिण्यो भवदीयाः (धाराः) बह्व्यः शाखाः (ऊतये) जनरक्षणाय (असृग्रम्) इतस्ततो व्याप्ताः सन्ति (ताभिः) ताभिः (पवित्रम्) सत्कर्म कुर्वाणम् (आसदः) अनुगृहाण।

पदार्थ—(इन्दो) हे कर्मप्रधान सेनापते! (याः) जो (मधुश्चुतः) आनन्दकी वर्षा करनेवाली आपकी (धाराः) अनेक शाखाएँ (ऊतये) प्रजाओंके रक्षणार्थ (असृग्रम्) इधर उधर फैली हुई हैं (ताभिः) उनसे (पवित्रम्) सत्कर्मीको (आसदः) अनुगृहीत करिये।

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करता है कि सेनाधीश अपनी सुरक्षारूप वृष्टिसे प्रजाओंको आनन्दसे सुसिञ्चित करे।

सो अर्षेन्द्राय पीतये तिरो रोमाण्यव्यया।
सीदन्योना वनेष्वा॥ ८॥

सः। अर्ष। इंद्राय। पीतये। तिरः। रोमाणि। अव्यया। सीदन्। योना। वनेषु। आ।

पदार्थ—हे प्रभो (सः) पूर्वोक्तस्त्वम् (योना आसीदन्) स्वपदे तिष्ठन् (वनेषु) स्वराष्ट्रे (इन्द्राय,पीतये) विज्ञानिनां तृप्तये (अर्ष) व्यापको भव (तिरः, रोमाणि, अव्यया) अथचान्तर्हितजीवात्मनां समस्तरोमाणि रक्षय ॥

पदार्थ—हे स्वामिन् ! (सः) पूर्वोक्त आप (योना, आसीदन्) अपने पदपर स्थित होते हुये (वनेषु) अपने राष्ट्रमें (इन्द्राय पीतये) विज्ञानीकी तृप्तिके लिये (अर्ष) व्याप्तिशील होयँ (तिरः, रोमाणि, अव्यया) और अन्तर्हित जीवोंको भी रोमरोम प्रति अव्यय अर्थात् दृढ रक्षित करिये ।

भावार्थ—इस मंत्रमें यह प्रतिपादन किया गया है कि राजधर्मकी रक्षा द्वारा देश में ज्ञान और विज्ञानकी वृद्धि होती है ।

त्वमिन्दो परि स्रव स्वादिष्ठो अङ्गिरोभ्यः ।
वरिवोविद्घृतं पयः ॥ ९ ॥

त्वं । इंदो इति । परि । स्रव । स्वादिष्ठः । अंगिरःऽभ्यः ।
वरिवःऽवित् । घृतं । पयः ।

पदार्थः—(इन्दो) हे तेजस्विन् ! (त्वम) भवान् (स्वादिष्ठः) परमप्रियोऽस्ति अथच । (वरिवोवित्) सर्वप्रजानां धनप्रापकोऽस्ति । (अङ्गिरोभ्यः) भवान् विद्वद्भ्यः (घृतम्, पयः) घृतदुग्धादिपदार्थान् (परिस्रव) उत्पादयतु ॥

पदार्थ—(इन्दो) हे तेजस्विन् ! (त्वम्) आप (स्वादिष्ठः) परमप्रिय हैं । और (वरिवोविद्) सब प्रजाओंके धनोंके प्रापयिता हैं

(अङ्गिरोभ्यः) आप विद्वानोंके लिये (घृतम्, पयः) घृत दुग्धादि पदार्थ (परिस्रव) उत्पन्न करिये ।

भावार्थ—प्रजाओंको चाहिये कि वे सदैव अपने राजपुरुषोंसे ऐश्वर्यकी प्रार्थना करके संसारमें ऐश्वर्य बढ़ानेका यत्न करें ।

अयं विचर्षणिर्हितः पवमानः स चेतति ।
हिन्वान आप्यं बृहत् ॥ १० ॥ २५ ॥

अयं । विऽचर्षणिः । हितः । पवमानः । सः । चेतति ।
हिन्वानः । आप्यं । बृहत् ।

पदार्थः—(सः, अयम्) असौ सेनापतिः (विचर्षणिः) प्रजाहितदृष्टिः (हितः) तथा सर्वहितकारकः (पवमानः) दुष्टान् दण्डेन शोधयन् (बृहत् आप्यम् हिन्वानः) अनेकविधभोज्यपदार्थमुत्पादयन् (चेतति) सर्वथा जागरणावस्थया विराजते ।

पदार्थ—(सः, अयम्) यह सेनापति (विचर्षणिः) प्रजाओंको विशेष रूपसे देखने वाला (हितः) और सबका हितकारक (पवमानः) दुष्टोंको दण्ड द्वारा शुद्ध करता हुआ (बृहत् आप्यम् हिन्वानः) बहुतसे भोग्य पदार्थको उत्पन्न कराता हुआ (चेतति) सर्वथा जागृतावस्थासे विराजमान है ।

भावार्थ—जो सेनापति अपने कर्ममें तत्पर रहता है अर्थात् राजधर्मका यथाविधि पालन करता है वह, प्रजामें सब प्रकारसे सुख उत्पन्न करता है ।

एष वृषा वृषव्रतः पवमानो अशस्तिहा ।
करद्वसूनि दाशुषे ॥ ११ ॥

एषः । वृषा । वृषऽव्रतः । पवमानः । अशस्तिऽहा । करत् । वसूनि । दाशुषे ।

पदार्थः—(वृषा) कामना वर्षकः (वृषव्रतः) अभीष्ट-पूर्तिरूपव्रतधारी (पवमानः) सर्वपावकः (अशस्तिहा) दुष्ट-घातकः (एषः) अयं सेनापतिः (दाशुषे) भागदात्रे (वसूनि करत्) अनेकविध धनप्राप्त्यै प्रयत्नं करोति ।

पदार्थ—(वृषा) कामनाओंकी वर्षा करने वाला (वृषव्रतः) कामनापूर्त्तिरूप ही व्रत धारण करने वाला (पवमानः) सर्वपावक (अशस्तिहा) दुराचारियोंका नाशक (एषः) यह सेनापति (दाशुषे) भाग देने वालेके लिये (वसूनि, करत्) प्रत्येक प्रकारके धनोंकी प्राप्तिका प्रयत्न करता है ।

भावार्थ—उक्तगुणसम्पन्न सेनापति सब प्रकारके ऐश्वर्य उत्पन्न करके प्रजामें सुख बढ़ाता है ।

आ पवस्व सहस्रिणं रयिं गोमन्तमश्विनम् ।
पुरुश्चन्द्रं पुरुस्पृहम् ॥ १२ ॥

आ । पवस्व । सहस्रिणं । रयिं । गोऽमंतं । अश्विनं । पुरुऽचंद्रं । पुरुऽस्पृहं ।

पदार्थः—हे सेनाधिपते ! (सहस्रिणम्) भवान् अनेक-विधैः (गोमन्तम्, अश्विनम्) गवाश्वादिभिः सह (चन्द्रम्)

आनन्दजनकं (पुरुस्पृहम्) सर्वजनप्रार्थनीयं (पुरु, रयिम्) अधिकं धनम् (आ पवस्व) सर्वथा संचिनोतु ॥

पदार्थ—हे सेनाधीश ! (सहस्रिणम्) आप प्रत्येक प्रकारके (गोमन्तम् अश्विनम्) गो अश्वादिके सहित (चन्द्रम्) हर्षोत्पादक (पुरुस्पृहम्) अनेक लोगोंसे प्रार्थनीय (पुरु, रयिम्) बहुतसे धनको (आ पवस्व) सर्वथा सञ्चित करिये ।

भावार्थ—इस मन्त्रमें परमात्माने सेनाधीशके गुणोंका वर्णन किया है कि सेनाधीश सहस्र प्रकारके ऐश्वर्योंको प्रजाजनोंके लिये उत्पन्न करे ।

एष स्य परि षिच्यते मर्मृज्यमान आयुभिः ।
उरुगायः कविक्रतुः ॥ १३ ॥

एषः । स्यः । परि । सिच्यते । मर्मृज्यमानः । आयुऽभिः ।
उरुऽगायः । कविऽक्रतुः ।

पदार्थः—(एषः स्यः) सोऽसौ (कविक्रतुः) योहि विद्वत्सु श्रेष्ठः तथा (उरुगायः) सर्वजनैः प्रशंसितः एवं भूतः सेनापतिः (आयुभिः) समस्तप्रजाभिः (मर्मृज्यमानः) शुद्धाचरणेन सिद्धः (परिषिच्यते) नेतृत्वपदे अभिषिच्यते ।

पदार्थ—(एषः स्यः) वह यह (कविक्रतुः) जो कि विद्वानोंमें श्रेष्ठ और (उरु गायः) सब लोगोंसे प्रशंसित है, ऐसा सेनापति (आयुभिः) सब प्रजाओं द्वारा (मर्मृज्यमानः) शुद्धाचरण रूपसे सिद्ध किया गया (परिषिच्यते) नेतृत्वपद पर अभिषिक्त किया जाता है ।

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करता है कि जो उक्तगुणसम्पन्न पुरुष है वही सेनापतिके पद पर नियुक्त करना चाहिये ।

सहस्रोतिः शतामघो विमानो रजसः कविः ।
इन्द्राय पवते मदः ॥ १४ ॥

सहस्रऽऊतिः । शतऽमघः । विऽमानः । रजसः । कविः ।
इन्द्राय । पवते । मदः ।

पदार्थः—(इन्द्राय) स सेनापतिः महदैश्वर्यप्राप्तये (सहस्रोतिः) सहस्रशःशक्तीर्दधाति । तथा (शतामघः) अनेकप्रकारेण धनं संचिनुते । तथा (विमानः, रजसः) प्रजारक्षणाय रजोगुणप्रधानो भवति । अथ च (कविः) सर्वशास्त्रमर्मवित् तथा (इन्द्राय मदः) विज्ञानिनां सत्कारकर्ता तृप्तिकर्ता च (पवते) विशेषं गोपायति ॥

पदार्थ—(इन्द्राय) वह सेनापति इन्द्र अर्थात् सर्वोपरि ऐश्वर्यसम्पन्न होनेके लिये (सहस्रोतिः) सहस्रों प्रकारकी रक्षण शक्तिको धारण करता है और (शतामघः) सैकड़ों प्रकारके धनोंका सञ्चय करता है (विमानः रजसः) और प्रजारक्षणार्थ रजोगुणप्रधान होता है (कविः) सब शास्त्रोंका प्राज्ञ तथा) इन्द्राय मदः) विज्ञानियोंका सत्कर्ता और तृप्तिकर्ता तथा (पवते) उनको विशेष रूपसे रक्षा करता है ।

भावार्थ—जो विद्वानोका रक्षक तथा सत्कार करने वाला और विद्याके प्रचारमें प्रेमी होता है वही सेनापति प्रशंसित कहा जाता है ।

गिरा जात इह स्तुत इन्दुरिन्द्राय धीयते ।
विर्योना वसताविव ॥ १५ ॥ २६ ॥

गिरा । जातः । इह । स्तुतः । इंदुः । इन्द्राय । धीयते ।
विः । योना । वसतौऽइव ।

पदार्थः—(विः वसतौ इव) "विरिति शकुनिनाम वेतेर्गतिकर्मणः, अथापि इषुनामेह भवत्येतस्मादेव" नि. अ. २।६। यथा शत्रुत आत्मरक्षणाय बाणो ज्यायां स्थाप्यते तथैव (इह, जातः, इन्दुः) अस्मिन्लोके सर्वैश्वर्यतां प्राप्तः सेनापतिः (गिरा, स्तुतः) सर्वजनवाचा स्तुतः (इन्द्राय) रक्षानिर्भीकतायै (योना, धीयते) उच्चपदोपरि प्रतिष्ठितः क्रियते ॥

पदार्थः—(विः, वसतौ, इव) "विरिति शकुनिनाम वेतेर्गतिकर्मणः अथापि इषुनामेह भवत्येतस्मादेव" नि. अ. २।६। जिस प्रकार शत्रुसे रक्षाके लिये बाण ज्यामें स्थापित किया जाता है उसी प्रकार (इह, जातः इन्दुः) इस लोकमें सब ऐश्वर्यको प्राप्त सेनापति (गिरा, स्तुतः) सबकी वाणियों द्वारा स्तुत (इन्द्राय) रक्षा करनेसे निर्भीक होनेके लिये (योना, धीयते) उच्च पद पर स्थापित किया जाता है।

भावार्थ—जिस प्रकार शस्त्र अपने नियत स्थानोंमें स्थित होकर राजधर्मकी रक्षा करते हैं, इसी प्रकार सेनापति अपने पद पर स्थिर होकर राजधर्मकी रक्षा करता है।

पवमानः सुतो नृभिः सोमो वाजमिवासरत्।
चमूषु शक्मनासदम् ॥ १६ ॥

पवमानः। सुतः। नृऽभिः। सोमः। वाजंऽइव। असरत्।
चमूषु। शक्मना। आऽसदं।

पदार्थः—(नृभिः सुतः) विद्वद्भिः प्रजाभिरभिषिक्तः (सोमः) सौम्यगुणपूर्णः सेनापतिः (पवमानः) समस्तजनान् पवित्रयन् (चमूषु) सेनासु (शक्मना) स्वपराक्रमेण (आसदम्)

स्वशत्रोरभिमुखं गन्तुं (वाजम्, इव) विद्युदादिशक्तिरिव (असरत्) गच्छति ।

पदार्थ—(नृभिः स्तुतः) विदुषी प्रजाओंके द्वारा अभिषिक्त (सोमः) सौम्य सेनाधीश (पवमानः) सबको पवित्र करता हुआ (चमूषु) सेनाओंमें (शक्मना) अपने पराक्रमसे (आसदम्) अपने शत्रुकी ओर अभिगमन करनेके लिये (वाजम्, इव) विद्युदादि अद्भुत-शक्तिके समान (असरत्) गमन करता है ।

भावार्थ—सोम यहां सेनाधीशका नाम है क्योंकि सेनाधीशको-भी धीरताके लिये सौम्यस्वभावकी आवश्यकता है । इस लिये उसे सोम-रूपसे वर्णन किया है ।

तं त्रिपृष्ठे त्रिवन्धुरे रथे युञ्जन्ति यातवे ।
ऋषीणां सप्त धीतिभिः ॥ १७ ॥

तं । त्रिऽपृष्ठे । त्रिऽवंधुरे । रथे । युजंति । यातवे । ऋषीणां सप्त । धीतिऽभिः ॥१७॥

पदार्थः—(ऋषीणाम्, सप्त, धीतिभिः) योहि ऋषिभिः "विज्ञानिशिल्पिभिरितियावत्" रचितः सप्तविधकर्मपरिपूर्णः तथा (त्रिपृष्ठे) उपवेशनस्थानत्रययुक्तः (त्रिवन्धुरे) त्रिषु उच्चैः नीचैः वर्तते (रथे) एवंभूते रथे (तम्) तं सेनापतिम् (यातवे युञ्जन्ति) यात्रार्थं प्रयुञ्जन्ति ।

पदार्थ—(ऋषीणाम्, सप्त, धीतिभिः) जो कि ऋषियों अर्थात् विज्ञानी शिल्पियोंके द्वारा रचित है तथा सात प्रकारके आकर्षणादि गुणोंसे

संयुक्त है तथा (त्रिपृष्ठे) तीन उपवेशनस्थानोंसे युक्त तथा (त्रिवन्धुरे) तीन जगह ऊँचा नीचा है (रथे) ऐसे रथमें (तम्) उस सेनापतिको (यातवे, युञ्जन्ति) यात्रा करनेके लिये प्रयुक्त करते हैं ।

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करता है कि हे पुरुषो ! तुम अपने सेनापतिओंके लिये ऐसे यान बनाओ, जो अनन्त प्रकारके आकर्षण-विकर्षणादि गुणोंसे युक्त हों । और जल स्थल तथा नभो मंडलमें सर्वत्रैव अव्याहतगति होकर गमन कर सकें ।

तं सोतारो धनस्पृतमाशुं वाजाय यातवे ।
हरिं हिनोत वाजिनम् ॥ १८ ॥

तं । सोतारः । धनऽस्पृतं । आशुं । वाजाय । यातवे ।
हरिं । हिनोत । वाजिनं ॥१८॥

पदार्थः—(सोतारः) हे अभिषेक्तारोऽमात्यादयः ! (धनस्पृतम्) योहि धनसञ्चयकर्तास्ति तथा (आशुं) बहुव्यापनशीलोऽस्ति अथ च (हरिम्) शत्रुघातकोऽस्ति (वाजिनम्) तथा बलवानस्ति, तं (वाजाय) शक्तिवर्धनाय (यातवे) यात्रां कर्तुं (हिनोत) यूयं प्रेरयत ।

पदार्थ—(सोतारः) हे अमात्यादि अभिषेक्ता लोगो ! (धनस्पृतम्) जो कि धनोंका सञ्चय करने वाला है तथा (आशुं) बहुव्यापी है (हरिम्) और शत्रुओंका विघातक (वाजिनम्) सुन्दर बल वाला है उसको (वाजाय) शक्ति बढ़ानेको (यातवे) यात्रा करनेके लिये (हिनोत) प्रेरणा करो ।

भावार्थ—हे प्रजाजनों ! तुम लोग जो उक्तगुण सम्पन्न पुरुष है उसको अपने अभ्युदयके लिये सेनाधीशादि पदों पर नियुक्त करो ।

आविशन्कलशं सुतो विश्वा अर्षन्नभि श्रियः ।
शूरो न गोषु तिष्ठति ॥ १९ ॥

आऽविशन् । कलशं । सुतः । विश्वाः । अर्षन् । अभि । श्रियः । शूरः । न । गोषु । तिष्ठति ॥१९॥

पदार्थः—(सुतः) अभिषिक्तः सेनाधीशः (कलशं, आविशन्) शब्दायमानशस्त्रेषु प्रविशन् शस्त्रविद्यां शिक्षन् इत्यर्थः (विश्वाः श्रियः अभ्यर्षन्) समस्तां लक्ष्मीं प्रापयन् (गोषु) इन्द्रियेषु (शूरः, न) वीर इव जितेन्द्रिय इवेति यावत् (तिष्ठति) स्थितो भवति ॥

पदार्थ—(सुतः) अभिषिक्त सेनापति (कलशम्, आविशन्) शब्दायमान शस्त्रोंमें प्रवेश करता हुआ अर्थात् शस्त्रविद्याको सीखता हुआ (विश्वाः श्रियः अभ्यर्षन्) सम्पूर्ण लक्ष्मीको प्राप्त करता हुआ (गोषु) इन्द्रियोंमें (शूरः, न) शूरके समान अर्थात् जितेन्द्रियकी तरह (तिष्ठति) स्थित होता है ।

भावार्थ—जो पुरुष जितेन्द्रिय और दृढ़व्रती होते हैं वेही राजधर्मके लिये उपयुक्त होते हैं, अन्य नहीं ।

आ त इन्द्रो मदाय कं पयो दुहन्त्यायवः ।
देवा देवेभ्यो मधु ॥ २० ॥ २७ ॥

आ । ते । इंदो इति । मदाय । कं । पयः । दुहंति । आयवः । देवाः । देवेभ्यः । मधु ॥२०॥

पदार्थः—(इन्दो) हे परमैश्वर्यशालिन् ! (ते) भवतः (मदाय) आनन्दाय (आयवः, देवाः) दिव्यशक्तिमन्तो-भवदनुयायिनोजनाः (देवेभ्यः) ज्ञानक्रियाशालिभिः विद्वद्भिः (मधु) सुभोग्यं (पयः) दुग्धरूपं (कं) सुखम् (आ) समन्तात् (दुहन्ति) दुहते ।

पदार्थ—(इन्दो) हे परमैश्वर्यशालिन् ! (ते) आपके (मदाय) आनन्दके लिये (आयवः, देवाः) दिव्य शक्ति वाले आपके अनुयायी-लोग (देवेभ्यः) ज्ञानक्रियाशाली विद्वानोंसे (मधु) सुन्दर भोग-योग्य (पयः) दूध रूपी (कम्) सुखको (आ) भलीभांति (दुहंति) दुहते हैं ।

भावार्थ—हे परमात्मन् ! आपके अनुयायी लोग कामधेनु रूप पृथिव्यादिलोकलोकान्तरोंसे अनन्तप्रकारके अमृतोंको दुहते हैं ।

आ नः सोमं पवित्र आ सृजता मधुमत्तमम् ।
देवेभ्यो देवश्रुत्तमम् ॥ २१ ॥

आ । नः । सोमं । पवित्रे । आ । सृजत । मधुमत्ऽतमं ।
देवेभ्यः देवश्रुत्ऽतमं ॥२१॥

पदार्थः—हे पण्डिताः ! यूयं (नः) अस्माकं (सोमम्) सौम्यस्वभाववन्तं स्वामिनं (आ, सृजत) इत्थं साधयत, यथा (मधुमत्तमम्) मधुरप्रकृतिपूत्तमो भवतु । अथ च देवेभ्यः देवश्रुत्तमम्) विद्वज्जनप्रार्थनां शृणोतु ।

पदार्थ—हे विद्वानो ! तुम (नः) हम लोगोंके (सोमम्)

सौम्य स्वभाव वाले स्वामीको (आ,सृजत) इस प्रकार सिद्ध करो जिससे (मधुत्तमम्) मधुर स्वभाव वालोंमें उत्तम हो। और (देवेभ्यः, देवश्रुत्तमम्) सब देवों अर्थात् विद्वानोंकी प्रार्थना सुनने वाला हो।

भावार्थ--हे प्रजाजनों! तुम ऐसे सेनापतिको वरण करो जो मधुर स्वभाव वाला हो और सबकी प्रार्थनाओं पर ध्यान देने वाला हो।

एते सोमा असृक्षत गृणानाः श्रवसे महे।
मदिन्तमस्य धारया॥ २२॥

एते। सोमाः। असृक्षत। गृणानाः। श्रवसे। महे।
मदिन्ऽतमस्य। धारया॥२२॥

पदार्थः--(एते, सोमाः) इमे सेनाधीशाः (महे, श्रवसे, गृणानाः) महायशसे संस्तुताः (मदिन्तमस्य, धारया) आनन्ददायकशौर्य्यादिशक्तिधारासहिताः (असृक्षत) उत्पाद्यन्ते॥

पदार्थ--(एते, सोमाः) ये सेनापति (महे, श्रवसे गृणानाः) महायशके लिये स्तुति किये गये (मदिन्तमस्य, धारया) आह्लादक शौर्य-वीर्यादि शक्तियोंकी धाराके सहित (असृक्षत) पैदा किये जाते हैं।

भावार्थ--उक्त गुणों वाले सेनापति संसारमें यश और बल-बढ़ानेके लिये उत्पन्न किये जाते हैं।

अभि गव्यानि वीतये नृम्णा पुनानो अर्षसि।
सनद्वाजः परि स्रव॥ २३॥

अभि। गव्यानि। वीतये। नृम्णा। पुनानः। अर्षसि।
सनत्ऽवाजः। परि। स्रव।

पदार्थः—हे विभो ! (वीतये) उपभोगाय (गव्यानि, नृम्णा) गोधनानि (अभिपुनानः) निर्विघ्नानि कुर्वन् (अर्षसि) भवान् गमनं करोति (सनद्वाजः) सर्वासां शक्तीनां विभागं-कुर्वन्, (परिस्रव) भवान् सर्वत्र व्यापको भवतु ॥

पदार्थ—हे स्वामिन् ! (वीतये) उपभोगके लिये (गव्यानि, नृम्णा) गोसम्बन्धी धनोंको (अभि पुनानः) निर्विघ्न करते हुए (अर्षसि) आप गमन करते हैं (सनद्वाजः) सब शक्तियोंको सर्वत्र विभक्त करते-हुए आप (परिस्रव) सर्वत्र व्यापक होयँ ।

भावार्थ—जो सेनापति पृथिव्यादि रत्नोंको निर्विघ्न करनेके लिये अपनी जीवनयात्रा करते हैं वे, सेनाधीशादि पदोंके लिये उपयुक्त होते हैं ।

उत नो गोमतीरिषो विश्वा अर्ष परिष्टुभः ।
गृणानो जमदग्निना ॥ २४ ॥

उत । नः । गोऽमतीः । इषः । विश्वाः । अर्ष । परिऽस्तुभः ।
गृणानः । जमत्ऽअग्निना ।

पदार्थः—(उत) तथा (जमदग्निना गृणानः) समधि-ज्वलितप्रतापतया सर्वैः स्तूयमानो भवान् (नः) अस्मभ्यं (परिष्टुभः) निश्चलाः (विश्वाः) बहुविधाः (गोमतीः इषः) गवादिपदार्थयुक्ताः शक्तीः (अर्ष) प्रापयतु ।

पदार्थ—(उत) और (जमदग्निना, गृणानः) प्रज्वलित प्रताप-होनेसे सब लोगोंसे स्तूयमान आप (नः) हमारे लिये (परिष्टुभः) जो-कि किसीप्रकार नहीं चलनेवाली ऐसी (विश्वाः) सब प्रकारकी (गोमतीः इषः) गवादिपदार्थ युक्त शक्तिको (अर्षः) प्राप्त कराइये ।

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करताहै कि हे प्रजाजनो ! तुम-लोग उक्तगुणसम्पन्न राजपुरुषोंके सदैव अनुयायी बने रहो, ताकि वे-तुम्हारे लिये पृथिव्यादिलोकलोकान्तरोंके ऐश्वर्योंसे तुम्हें विभूषित करें ।

पवस्व वाचो अग्रियः सोम चित्राभिरूतिभिः ।
अभि विश्वानि काव्या ॥ २५ ॥ २८ ॥

पवस्व । वाचः । अग्रियः । सोम । चित्राभिः । ऊतिऽभिः ।
अभि । विश्वानि । काव्या ॥२५॥

पदार्थः—(सोम) हे सौम्यस्वभावशालिन् ! (अग्रियः) यतोस्मास्वग्रणीर्भवान्, अतः (चित्राभिः ऊतिभिः) बहुविध-बिचित्ररक्षाभिः (वाचः) स्वाज्ञाविषयिणीं वाचं, तथा (विश्वानि-काव्या) समस्तवेदादिकाव्यानि (अभिरक्ष) सुरक्षयतु ।

पदार्थ—(सोम) हे सौम्य ! (अग्रियः) आप जोकि हम-लोगोंमें अग्रणी हैं इससे (चित्राभिः, ऊतिभिः) अनेकप्रकारकी विचित्र रक्षाओंसे (वाचः) अपनी आज्ञाविषयक वाणीको तथा (विश्वानि, काव्या) सम्पूर्ण वेदादि काव्योंको (अभिरक्ष) सुरक्षित कीजिये ॥

भावार्थ—इस मंत्रमें परमेश्वरसे रक्षार्थ प्रार्थना की गई है ।

त्वं समुद्रिया अपोऽग्रियो वाच ईरयन् ।
पवस्व विश्वमेजय ॥ २६ ॥

त्वं । समुद्रियाः । अपः । अग्रियः । वाचः । ईरयन् । पवस्व ।
विश्वंऽएजय ॥२६॥

पदार्थः—(विश्वमेजय) भयङ्करतयाखिलजगद्वशकर्त्तः ! हेपरमात्मन् ! भवान् (अग्रियः) मुख्योस्ति (वाचः ईरयन्) स्वानुशासनेन (समुद्रियाः अपः) सागरसम्बंधिजलानि (पवस्व) बाधारहितानि करोतु ॥

पदार्थ—(विश्वमेजय) हे सब संसारको भयसे अपने वशमें रखने-वाले! आप (अग्रियः) प्रधान हैं (वाचः ईरयन्) अपने अनुशासन द्वारा (समुद्रियाः, अपः) समुद्र सम्बन्धी जलोंको (पवस्व) निर्बाध करिये ।

भावार्थ—इस मन्त्रमें परमात्माकी कृपासे ही सब पदार्थ निर्विघ्न रह सकते हैं, अन्यथा नहीं । इसीका वर्णन किया गया है ।

तुभ्येमा भुवना कवे महिम्ने सोम तस्थिरे ।
तुभ्यमर्षन्ति सिन्धवः ॥ २७ ॥

तुभ्य । इमा । भुवना । कवे । महिम्ने । सोम । तस्थिरे ।
तुभ्यं । अर्षति । सिंधवः ।

पदार्थः—(कवे) हे विद्वन् ! (इमा भुवना) अयं लोकः (तुभ्य महिम्ने) भवतोमाहात्म्याय (तस्थिरे) ईश्वरद्वारेण-स्थितो वर्तते । तथा (सोम) हे सौम्य ! (सिन्धवः) समस्ता-नद्यः (तुभ्यम्) भवत उपभोगाय (अर्षन्ति) ईश्वरद्वारा वहन्ति ।

पदार्थ—(कवे) हे विद्वन् ! (इमा भुवना) यह लोक (तुभ्य-महिम्ने) तुम्हारी ही महिमाके लिये (तस्थिरे) ईश्वरद्वारा स्थित है और (सोम) हे सौम्य ! (सिन्धवः) सब नदियाँ (तुभ्यम् अर्षन्ति) तुम्हारे उपभोगके लिये ही ईश्वर द्वारा स्यन्दमान हो रहीं हैं ।

भावार्थ—इस मन्त्रमें परमात्माके महत्वका वर्णन कियागया है-कि अनेक प्रकारके भुवनोंकी रचना और समुद्रोंकी रचना उसके-

महत्वको वर्णन करती है। अर्थात् सम्पूर्ण प्रकृतिके कार्य उसके एकदेशमें है। परमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण हो रहा है। अर्थात् परमात्मा अनन्त है और प्रकृति तथा प्रकृतिके कार्य शान्त हैं।

प्र ते दिवो न वृष्टयो धारा यंत्यसश्चतः।
अभि शुक्रामुपस्तिरम् ॥ २८ ॥

प्र। ते। दिवः। न। वृष्टयः। धाराः। यंति। असश्चतः। अभि। शुक्रां। उपऽस्तिरं।

पदार्थः—हे चमूपते! (दिवः वृष्टयः न) यथा नभस्तोऽनेकजलधारापातस्तथा (ते) भवतः (धाराः) रक्षाकर्त्र्यः सेनाः (असश्चतः) पृथक् पृथक् (प्रयन्ति) इतस्ततोविचरन्ति तथा (शुक्राम् अभि) स्वपवनीयप्रजाः (उपस्तिरम्) वाढमनुगृह्णन्ति॥

पदार्थ—हे सेनापते! (दिवः वृष्टयः न) जिस प्रकार आकाशसे जलकी अनेक धाराओंका पात होता है उसी प्रकार (ते) आपकी (धाराः) रक्षक सेनायें (असश्चतः) पृथक् पृथक् (प्रयन्ति) इधर उधर विचरती हैं और (शुक्राम्, अभि) अपनी रक्षणीय पवित्र प्रजाको (उपस्तिरम्) भलीभाँति अनुगृहीत करतीं हैं।

भावार्थ—जिसप्रकार सेनापतिकी सेनायें इतस्ततः विचरती हुई उसके महत्वको बतलाती है उसी प्रकार अनन्त ब्रह्माण्ड परमात्माके महत्वको सेनाओंकी नाईं सुशोभित करते हैं।

इन्द्रायेन्दुं पुनीतनोग्रं दक्षाय साधनं।
ईशानं वीतिराधसं ॥ २९ ॥

इन्द्राय । इंदुं । पुनीतन । उग्रं । दक्षाय । साधनं । ईशानं । वीतिऽराधसं ।

पदार्थः—हे प्रजावर्ग ! योहि (उग्रम्) अत्यन्ततेजस्वी-अस्ति अथच (दक्षाय साधनम्) येन भवन्तः समस्तकृत्येषु-कौशलत्वं प्राप्तुं शक्नुवन्ति अथच यः(ईशानम्) स्वयमेवैश्वर्यप्रापणे प्रभुरस्ति, तथा (वीतिराधसम्) यश्च सर्वविधैश्वर्यदातास्ति एवं भूतं (इन्दुं) ऐश्वर्यशालिनं स्वकीयं सेनाधिपतिं (इन्द्राय) सर्वैश्वर्य-सम्पन्नतायै (पुनीतन) संघीभूय यथाशक्त्युपसेवनं कुर्वन्तु ।

पदार्थ—हे प्रजालोगो ! जोकि (उग्रम्) महातेजस्वी है और (दक्षाय, साधनम्) जिसके द्वारा तुम लोग दक्ष अर्थात् सब कार्योंमें कुशल हो सकते हो, और जो (ईशानम्) स्वयं परमैश्वर्यको प्राप्त करनेमें समर्थ है और (वीतिराधसम्) जो सब प्रकारके ऐश्वर्योंका दाता है ऐसे (इन्दुम्) अपने ऐश्वर्यशाली सेनाधीशको (इन्द्राय) ऐश्वर्य सम्पन्न होनेके लिये (पुनीतन) सब संमिलित होकर यथाशक्ति उपसेवन करो ।

भावार्थ—इस मन्त्रमें सेनापतिकी आज्ञाका पालन करना कथन किया गया है, कि जो लोग ऐश्वर्यशाली होना चाहें वे अपने सेनाधीशकी आज्ञाका पालन करें ।

पवमान ऋतः कविः सोमः पवित्रमासदत् ।
दधत्स्तोत्रे सुवीर्यं ॥ ३० ॥ २९ ॥

पवमान । ऋतः । कविः । सोमः । पवित्रं । आ । असदत् ।
दधत् । स्तोत्रे । सुऽवीर्यं ॥३०॥

पदार्थः—(पवमान) हे जगद्रक्षक ! भवान् (ऋतः) सत्यशीलः (कविः) पण्डितः (सोमः) उदारचित्तोऽस्ति। अथच (स्तोत्र सुवीर्यम दधत्) स्वीयस्तोतृन् अनुयायिवर्गांश्च पराक्रमशीलान् कुर्वन् (पवित्रे आसदत्) सत्कर्मी करोति सुरक्षति च ॥

इति द्विषष्ठितमं सूक्तमूनत्रिंशो वर्गश्च समाप्तः।

पदार्थ—(पवमान) हे सबके रक्षक ! आप (ऋतः) सत्यताको धारण करने वाले (कविः) विद्वान् (सोमः) उदार हैं। और (स्तोत्रे सुवीर्यम्. दधत्) अपने स्तोताओं तथा अनुयायियोंके लिये सुन्दर पराक्रमको धारण करते हुए (पवित्रम्, आसदत्) सत्कर्मी तथा सुरक्षित करते हैं।

भावार्थ—इस मन्त्रमें राजधर्मकी रक्षार्थ परिश्रमी बननेके लिये ईश्वरसे प्रार्थना की गई है।

यह ६२ वां सूक्त और २९ वां वर्ग समाप्त हुआ।

अथ त्रिषष्टितमस्य सूक्तस्य—

१–३० निध्रुविः काश्यप ऋषिः॥ पवमानः सोमो देवता॥ छन्द—१, २, ४, १२, १७, २०, २२, २३, २५, २७, २८, ३० निचृद्गायत्री। ३, ७–११, १६, १८, १९, २१, २४, २६ गायत्री। ५, १३, १५ विराड्गायत्री। ६, १४, २९ ककुम्मती गायत्री॥ षड्जः स्वरः॥

अथ प्रकारान्तरेण राजधर्म उपदिश्यते—

आ पवस्व सहस्रिणं रयिं सोम सुवीर्यम्।
अस्मे श्रवांसि धारय॥ १॥

आ । पवस्व । सहस्रिणं । रयिं । सोम । सुऽवीर्यं ।
अस्मे इति । श्रवांसि । धारय ॥१॥

पदार्थः—(सोम) सूते चराचरं जगदिति सोमः हे परमात्मन् ! भवान् (सहस्रिणं स्ववीर्यम्) मह्यम् बहुविधबलप्रदानं करोतु । तथा (रयिं) सर्वविधैश्वर्यं प्रददातु च (अस्मे) अस्मासु (श्रवांसि) अखिलप्रकारकविज्ञानानि (धारय) धारयतु (आपवस्व) सर्वतः पवित्रयतु च ॥

अब दूसरी तरहसे राजधर्मका उपदेश करते हैं ।

पदार्थ—(सोम) हे जगदीश्वर ! आप (सहस्रिणं स्ववीर्यं) अनन्त प्रकारका बल हमको प्रदान करें (रयिं) और अनन्त प्रकारका ऐश्वर्य (अस्मे) हममें (श्रवांसि) सब प्रकारके विज्ञान (धारय) प्रदान करें । (आपवस्व) सब तरहसे पवित्र करें ।

भावार्थ—राजधर्मकी पूर्तिके लिये इस मन्त्रमें अनेक प्रकारके बलोंकी परमात्मासे याचना की गई है ।

इषमूर्जं च पिन्वस इंद्राय मत्सरिन्तमः ।
चमूष्वा नि षीदसि ॥ २ ॥

इषं । ऊर्जं । च । पिन्वसे । इंद्राय । मत्सरिन्ऽतमः । चमूषु ।
आ । नि । सीदसि ॥२॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! (चमूषु) सर्वासु सेनासु (आनिषीदसि) नियामकरूपेणस्थितोऽसि । भवान् (इन्द्राय)

परमैश्वर्यशालिने शूराय (मत्सरितमः) अतिमदकारकं वीरभावमुत्पादयतु । (इषं च) ऐश्वर्यं (ऊर्जं) बलं च (पिन्वसे) धारयतु ॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (चमूषु) आप सब सेनाओंमें (आनिषीदसि) नियामक रूपसे स्थित हैं । आप (इन्द्राय) शूरवीरकेलिये (मत्सरितमः) अत्यन्त मद करने वाला वीरताका भाव उत्पन्नकरें । (इषं च) ऐश्वर्य (ऊर्जं) बल (पिन्वसे) धारण कराइये ।

भावार्थ—राजधर्मके लिये अनन्तप्रकारके ऐश्वर्यकी आवश्यकताहोती है । इस लिये परमात्मासे इस मन्त्रमें अनन्त सामर्थ्यकी प्रार्थनाकीगई है ।

सुत इन्द्राय विष्णवे सोमः कलशे अक्षरत् ।
मधुमाँ अस्तु वायवे ॥ ३ ॥

सुतः । इंद्राय । विष्णवे । सोमः । कलशे । अक्षरत् । मधुऽमान् । अस्तु । वायवे ॥३॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! (सुतः सोमः) साधनैः सिद्धः सौम्यस्वभावः (इन्द्राय) ज्ञानयोगिने (विष्णवे) बहुव्यापकाय (वायवे) कर्मयोगिने (मधुमान् अस्तु) सशीलमाधुर्यादिभावप्रदातास्तु । अथ च (कलशे) तेषामन्तःकरणेषु (अक्षरत्) निरन्तरं प्रवाहितो भवतु ॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (सुतः सोमः) साधनोंसे सिद्ध कियाहुआ सौम्यस्वभाव (इन्द्राय) ज्ञानयोगीके लिये (विष्णवे) जो बहु-

व्यापक है (वायवे) कर्मयोगीके लिये (मधुमाँ अस्तु) सुशीलतायुक्त-माधुर्यादि भावोंको देने वाला हो । और (कलशे) उनके अन्तःकरणोंमें (अक्षरत्) सदैव प्रवाहित होता रहे ।

भावार्थ—इस मन्त्रमें परमात्माने सर्वोपरि शीलकी शिक्षा दी है-कि हे पुरुषो ! तुम अपने अन्तःकरणको शुद्ध बनाओ ताकि तुम्हारा अन्तः-करण धृत्यादि धर्मके लक्षणोंको धारण करके राजधर्मके धारणके योग्य बनें ।

एते असृग्रमाशवोऽति ह्वरांसि बभ्रवः ।
सोमा ऋतस्य धारया ॥ ४ ॥

एते । असृग्रं । आशवः । अति । ह्वरांसि । बभ्रवः । सोमाः । ऋतस्य । धारया ॥४॥

पदार्थः—(एते) इमे (सोमाः) सौम्यस्वभावाः (बभ्रवः) ये दृढाः सन्ति ते (ऋतस्य) सत्यतायाः (धारया) धाराभिः (अतिह्वरांसि) राक्षसानतिक्रमन्तः (आशवः) येऽत्यन्त-तेजस्विनः सन्ति, हे परमेश्वर ! तान् त्वं (असृग्रम्) उत्पादय ।

पदार्थ—(एते) ये (सोमाः) सौम्यस्वभाव (बभ्रवः) जो-दृढ़ता युक्त हैं वे (ऋतस्य) सचाईकी (धारया) धारासे (अतिह्व-रांसि) राक्षसोंको अतिक्रमण करते हुए (आशवः) जो अत्यन्त तेजस्वी-हैं हे परमात्मन् ! आप (असृग्रम्) उनको उत्पन्न करें ।

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करता है कि राजधर्मानुयायीपुरुषो ! तुम लोग उग्र स्वभावको बनाओ ताकि दुष्ट दस्यु और राक्षस तुम्हारे रौद्र स्वभावसे भयभीत होकर कोई अनाचार न फैला सकें ।

इन्द्रं वर्धंतो अप्तुरः कृण्वंतो विश्वमार्यं ।
अपघ्नंतो अराव्णः ॥५॥

इन्द्रं । वर्धंतः । अप्ऽतुरः । कृण्वंतः विश्वं । आर्यं । अपऽघ्नंतः । अराव्णः ॥५॥

पदार्थः—(इन्द्रं वर्धन्तः) शूरमहत्वं वर्धयन् तथा तत (अप्तुरः) गत्वरं (कृण्वन्तः) कुर्वन् (अराव्णः) समस्तान् शत्रून् (अपघ्नन्तः) नाशयन् (विश्वं) सर्वविधं (आर्यम्) आर्यत्वं-ददातु ।

पदार्थ—(इन्द्रं) शूरवीरके महत्वको (वर्धन्तः) बढ़ाते हुए और उसको (अप्तुरः) गतिशील (कृण्वन्तः) करते हुए और (अराव्णः) सब शत्रुओंको (अपघ्नन्तः) नाश करते हुए (विश्वं) सब प्रकारके (आर्यं) आर्यत्वको दें ।

भावार्थ—परमात्मामे प्रार्थना है कि परमात्मा श्रेष्ठस्वभावका प्रदान करे, ताके आर्यताको धारण करके पुरुष राजधर्मका शासन करे ।

सुता अनु स्वमा रजोऽभ्यर्षंति बभ्रवः ।
इंद्रं गच्छंत इंदवः ॥६॥

सुताः । अनु । स्वं । आ । रजः । अभि । अर्षंति । बभ्रवः । इंद्रं । गच्छंतः । इंदवः ॥६॥

पदार्थः—(सुताः) संस्कृतास्तथा (स्वं रजः) स्वकीयं स्थानं (आगच्छन्तः) प्राप्तवन्तः (इन्द्रं) परमात्मानं प्राप्य

(इन्दवः) ये प्रकाशस्वरूपसंकल्पाः (बभ्रवः) स्थिराः सन्ति ते (अन्वभ्यर्षन्ति) परमात्मानं प्राप्नुवन्ति ।

पदार्थ—(सुताः) संस्कार किये हुए और (स्वं) अपने (रजः) स्थानको (आगच्छन्तः) प्राप्त होते हुए (इन्द्रं) परमात्माको प्राप्त होकर (इन्दवः) प्रकाशस्वरूपसंकल्प (बभ्रवः) जो स्थिर हैं वे (अन्वभ्यर्षन्ति) परमात्माको प्राप्त होते हैं ।

भावार्थ—जो लोग अपनी चित्तवृत्तियोंको निर्मल करते हैं वे एक प्रकारसे व्यवसायात्मक बुद्धिको बनाते हैं : अथवा यों कहो कि तदा "द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्" यो. १ । ३ । इस योगसूत्रमें वर्णित किये हुए आत्मस्वरूपमें स्थिति पाकर शुद्ध होते हैं । चित्तवृत्ति, संकल्प ये पर्याय शब्द हैं । परमात्माने इस मन्त्रमें इस बातका उपदेश किया है कि हे मनुष्यो ! आप शुद्ध संकल्प होकर मेरी ओर आयें ।

अया पवस्व धारया यया सूर्यमरोचयः ।
हिन्वानो मानुषीरपः ॥७॥

अया । पवस्व । धारया । यया । सूर्यं । अरोचयः । हिन्वानः । मानुषीः । अपः ।

पदार्थः—हे जगदीश ! भवान् (अया धारया) अनेन प्रकाशेन प्रकाशयन् (यया) येन (सूर्यमरोचयः) सूर्यप्रकाशयति मां प्रकाशयतु । अथ च (मानुषीः) मनुष्याणां (अपः) कर्माणि (हिन्वानः) यथायोग्यं प्रेरयन् (पवस्व) मां पवित्रयतु ।

पदार्थ—हे परमात्मन् ! आप (अया) इस (धारया) प्रकाश-

से प्रकाशित करते हुए (यया) जिससे (सूर्यमरोचयः) सूर्यको आप प्रकाशित करते हैं, उससे मुझे भी प्रकाशित कीजिये । और (मानुषीः) मनुष्योंके (अपः) कर्मोंकी (हिन्वानः) यथायोग्य प्रेरणा करते हुए (पवस्व) आप हमको पवित्र करें ।

भावार्थ—इस मन्त्रमें परमात्मासे यथायोग्य न्यायकी प्रार्थना है । यद्यपि परमात्मा स्वभावसिद्ध न्यायकारी है, तथापि परमात्माने इस मंत्रमें "हिन्वानः मानुषीरपः" इस वाक्यसे यथायोग्य कर्मोंका फलप्रदाता कथनकरके यह सिद्ध किया कि तुम परमात्माके न्याय तथा नियमके अनुकूल काम करो ।

अयु॑क्त॒ सूर॒ एत॑शं॒ पव॑मानो म॒नावधि॑ ।
अ॒न्तरि॑क्षेण॒ यात॑वे ॥८॥

अयु॑क्त । सूरः॑ । एत॑शं । पव॑मानः । म॒नौ । अधि॑ । अं॒तरि॑क्षेण । यात॑वे ॥८॥

पदार्थः—(पवमानः) सर्वपावकः परमात्मा (मनावधि) यः खलु नराधिपोस्ति स ईश्वरः (अन्तरिक्षेण) अविज्ञेयमार्गेण (यातवे) गन्तुं (सूरः) सरतीति सूरः योऽन्तरिक्षेण मार्गेण-गतिं करोति (एतशं) एतादृशशक्तिविशेषं सूर्यम् (अयुक्त) योजयति ।

पदार्थ—(पवमानः) सबको पवित्र करने वाला परमात्मा (मनावधि) जो मनुष्यमात्रका स्वामी है, वह (अन्तरिक्षेण) अन्तरिक्ष-मार्ग द्वारा (यातवे) जानेके लिये (सूरः) जो अन्तरिक्ष मार्गसे गमन-करता है (एतशं) ऐसे शक्ति सम्पन्न सूर्यको (अयुक्त) जोड़ता है ।

भावार्थ—परमात्माने अपने सामर्थ्यसे अनन्त शक्तिउत्पन्न किये हैं ।

उत त्या हरितो दश सूरो अयुक्त यातवे ।
इन्दुरिन्द्र इति ब्रुवन् ॥९॥

उत । त्याः । हरितः । दश । सूरः । अयुक्त । यातवे ।
इन्दुः । इन्द्रः । इति । ब्रुवन् ॥९॥

पदार्थः—(उत)अपिच(इन्दुः) उनत्ति प्रेमातिशयेन प्रसन्नं करोतीतिइन्दुः सर्वाह्लादकः (इन्द्रः) सम्पूर्णैश्वर्ययुक्तः परमात्मा (इति) उक्तनामभिः (ब्रुवन्) कथनं कुर्वन् यः पुरुषः (यातवे) स्वीय-शारीरिकयात्रायै (त्याः) ताः (हरितः) पाप नाशिनीः (दश) दश-विधाः (सूरः) वृत्तीः (अयुक्त) योजयति स परमानन्दतां याति ।

पदार्थ—(उत और (इन्दुः)जो पुरुष अपने प्रेमसे सब पुरुषोंके हृदयोंको स्निग्ध करे उसका नाम यहाँ इन्दु है (इन्द्रः) जो सर्वऐश्वर्य युक्त परमात्मा है (इति) उसको ऐसे नामोंसे (ब्रुवन्) कथनकरता हुआ जो पुरुष (यातवे) अपनी शारीरिक यात्राके लिये (त्याः) उन (हरितः) पापको नष्टकर नेवाली (दशसूरः) दश प्रकारकी वृत्तियोंको (अयुक्त) जोड़ता है वह परमानन्दको प्राप्त होता है ।

भावार्थ—जो पुरुष अपनी इन्द्रियवृत्तियोंको सब ओरसे हटा कर एक परमात्मामें लगाते हैं वे परमानन्दको प्राप्त होते हैं । इस मन्त्रमें परमात्माने इन्द्रियवृत्तियोंको रोक कर ईश्वरमें लगानेका उपदेश किया है । इसका नाम ईश्वरयोग है "पराञ्चिखानि व्यतृणत् स्वयम्भू तस्मात् पराङ्पश्यति नान्तरात्मन्" परमात्माने इन्द्रियोंको वहिर्मुखी बनाया है इसलिये वे बाहरकी ओर जाती हैं। इनके रोकनेका उपाय उक्त मन्त्रमें बतलाया है ।

परीतो वायवे सुतं गिर इन्द्राय मत्सरम् ।
अव्यो वारेषु सिञ्चत ॥१०॥३१॥

परि । इतः । वायवे । सुतं । गिरः । इन्द्राय । मत्सरं ।
अव्यः । वारेषु । सिंचत ॥१०॥

पदार्थः—(गिरः) हे स्तोतारो जनाः ! भवन्तः (इन्द्राय) कर्मयोगिने तथा (वायवे) ज्ञानयोगिने (इतः) कर्मभूमौ (मत्सरं सुतं) आह्लादजनकं शीलं वर्षयन्तु । तथा (वारेषु) समस्तवरणीयपदार्थेषु (अव्यः परिषिंचत) परितोरक्षावृष्टिं कुर्वन्तु ।

पदार्थ—(गिरः) हे स्तोता लोगो ! आप (इन्द्राय) कर्मयोगीके लिये और (वायवे) ज्ञानयोगीके लिये (इतः) इस कर्मभूमिमें (मत्सरं) आह्लादजनक (सुतं) शीलकी वृष्टि करें । और (वारेषु) सब वरणीयपदार्थोंमें (अव्यः) रक्षाकी (परिषिंचत) सब ओरसे वृष्टि करें ।

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करता है कि वेदवेत्ता लोग ज्ञानयोग तथा कर्मयोगका उपदेश करते हैं वे मानों अमृतकी वृष्टिसे अकर्मण्यतारूप मृत्युसे मृत लोगोंका पुनरुज्जीवन करते हैं ।

पवमान विदा रयिमस्मभ्यं सोम दुष्टरम् ।
यो दूणाशो वनुष्यता ॥११॥

पवमान । विदाः । रयिं । अस्मभ्यं । सोम । दुस्तरं । यः ।
दुःऽनशः । वनुष्यता ॥११॥

पदार्थः—(पवमान) पावितः हे परमात्मन् ! (सोम)

हे सौम्यस्वभाव ! भवान् (अस्मभ्यं) अस्मभ्यम् तं (रयिं) धनं (विदाः) ददातु (यः) यत् (वनुष्यता) शत्रुभिः (दूणाशः) अजेयम् तथा (दुष्टरम्) दुष्प्राप्यमस्ति ।

पदार्थ—(पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (सोम) हे सौम्यस्वभाव ! (अस्मभ्यं) हमारे लिये उस (रयिं) धनको (विदाः) दें (यः) जो (वनुष्यता) शत्रुओंसे (दूणाशः) अजेय है (दुष्टरम्) और अप्राप्य है ।

भावार्थ—इस मन्त्रमें परमात्माने उस अलभ्य लाभका उपदेश किया है जो ज्ञान विज्ञान रूपी धन है । ज्ञान विज्ञान रूप धनको कोई-पुरुष बलात्कारसे छीन वा चुरा नहीं सक्ता । इसी लिये कहा है कि हे-वेदानुयायियो ! आप उक्त धनका संचय करें ।

अभ्यर्ष सहस्रिणं रयिं गोमन्तमश्विनम् ।
अभि वाजमुत श्रवः ॥१२॥

अभि । अर्ष । सहस्रिणं । रयिं । गोऽमंतं । अश्विनं ।
अभि । वाजम् । उत । श्रवः ॥१२॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! भवान् (सहस्रिणं रयिं) बहुविधानि धनानि यानि (गोमंतं) भूमिहिरण्यादियुतानि तथा (अश्विनम्) नानाविधवाहनपरिपूर्णानि अथ च (वाजम्) बलयुक्तानि (उत) अथच (श्रवः) यशोरूपाणि तानि (अभ्यर्ष) अस्मभ्यं ददातु ।

पदार्थ—हे परमात्मन् ! आप (सहस्रिणम् रयिम्) अनन्तप्रकारके धनोंको जो (गोमत्) अनेक प्रकारकी भूमि हिरण्यादि युक्त है तथा-(अश्विनम्) जो विविध यानों से परिपूर्ण है और जो (वाजम्) बलरूप-(उत) और (श्रवः) यशोरूप है उसको (अभ्यर्ष) आप हमको दें ।

भावार्थ—इस मन्त्रमें परमात्माने अनन्त प्रकारके धनोंकी उपलब्धिका उपदेश किया है।

सोमो॑ दे॒वो न सूर्योऽद्रि॑भिः पवते सु॒तः।
दधा॑नः क॒लशे॒ रसम् ॥१३॥

सोम॑ः। दे॒वः। न। सूर्य॑ः। अद्रि॑ऽभिः। प॒व॒ते। सु॒तः।
दधा॑नः। क॒लशे॑। रस॑म्।

पदार्थः—(सोमः) सूते चराचरं जगदिति सोमः समस्तविश्वविधाता (देवः) दिव्यगुणसम्पन्नः ईश्वरः (सूर्यः न) सूर्य इव (अद्रिभिः) स्वकीयशक्तिभिः (पवते) पवित्रयति। तथा यः (सुतः) स्वयंसिद्धः परमात्मा (कलशे) अखिलपदार्थेषु (रसं) आनन्दं (दधानः) धारयति।

पदार्थ—(सोमः) सब संसारको उत्पन्न करनेवाला (देवः) दिव्यस्वरूप (सूर्यः न) सूर्यके समान (अद्रिभिः) अपनी शक्तियोंसे (पवते) पवित्र करता है। और (सुतः) स्वतःसिद्ध परमात्मा जो (कलशे) प्रत्येक पदार्थमें (रसं) रसको (दधानः) धारण कराता है।

भावार्थ—परमात्मदेवही प्रत्येक पदार्थमें रसको उत्पन्न करता है। और वही अपनी शक्तियोंसे सबको पवित्र करता है।

ए॒ते धामा॒न्यार्या॑ शु॒क्रा ऋ॒तस्य॒ धार॑या।
वाजं॒ गोम॑न्तमक्षरन् ॥१४॥

ए॒ते। धामा॑नि। आर्या॑। शु॒क्राः। ऋ॒तस्य॑। धार॑या।
वाज॑म्। गोऽम॑न्तं। अ॒क्ष॒र॒न् ॥ १४ ॥

पदार्थः—(एते शुक्राः) प्रागुक्तशीलस्वभावः परमेश्वरः यः (ऋतस्य धारया) सत्यधाराभिः (वाजम्) बलं तथा (गोमंतं) ऐश्वर्यं (अक्षरन्) वर्षयते स ईश्वरः (आर्या) आर्यपुरुषाणां (धामानि) स्थानरूपोऽवगन्तव्यः ।

पदार्थ—(एते शुक्राः) पूर्वोक्त शीलस्वभाव जो (ऋतस्य धारया) सचाईकी धाराओंसे (वाजम्) बलको और (गोमंतं) ऐश्वर्यको (अक्षरन्) बरसाते हैं वे (आर्या) आर्यपुरुषोंके (धामानि) स्थान समझने चाहिये।

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करता है कि श्रेष्ठपुरुषोंकी स्थितिका हेतु एकमात्र शुभस्वभाव वा शीलही समझना चाहिये। अर्थात् शुभशीलसे ही उनकी दृढ़ता और उनका आर्यत्व बना रहता है। इस लिये शीलको सम्पादन करना आर्योंका परम कर्तव्य है।

सुता इन्द्राय वज्रिणे सोमासो दध्याशिरः ।
पवित्रमत्यक्षरन् ॥१५॥३२॥

सुताः । इंद्राय । वज्रिणे । सोमासः । दधिऽआशिरः ।
पवित्रं । अति । अक्षरन् ॥ १५ ॥

पदार्थः—(सुताः सोमासः) स्वयंसिद्धः परमात्मा (अतिपवित्रं-दध्याशिरः) यः सर्वोपरि पवित्रताधिकरणः स परमेश्वरः (इन्द्राय वज्रिणे) कर्मयोगिपुरुषेभ्यः (अक्षरन्) परमानन्दस्य वृष्टिं करोति।

पदार्थ—(सुताः सोमासः) स्वयंसिद्ध परमात्मा (अतिपवित्रं-दध्याशिरः) जो सर्वोपरि पवित्रताका अधिकरण है वह (इन्द्राय वज्रिणे) कर्मयोगी पुरुषके लिये (अक्षरन्) परमानन्दकी वृष्टि करता है।

भावार्थ—परमात्मा कर्मयोगी पुरुषके लिये आनन्दकी वृष्टि

करता है । इसका तात्पर्य यह है कि उद्योगी पुरुषोंके लिये परमात्मा सदैव आनन्दका प्रदान करता है । यद्यपि परमात्माका आनन्द सबके सन्निहित है तथापि उसके आनन्दको उद्योगी कर्मयोगी ही लाभ कर सक्ते हैं । इस अपूर्वताका इस मन्त्रमें उपदेश किया गया है ।

प्र सोम मधुमत्तमो राये अर्ष पवित्र आ ।
मदो यो देववीतमः ॥१६॥

प्र । सोम । मधुमत्ऽतमः । राये । अर्ष । पवित्रे । आ ।
मदः । यः । देवऽवीतमः ॥ १६ ॥

पदार्थः—(सोम) हे जगन्नियन्तः ! भावत्कः (यः) यः (मदः) रसः (मधुमत्तमः) अतिस्वादुरस्ति, तथा (देववीतमः) दिव्यस्वरूपस्तं रसं (राये) अस्मदैश्वर्याय (पवित्रे) शुद्धान्तःकरणेषु (प्रार्ष) प्रापय ।

पदार्थ—(सोम) हे परमेश्वर ! आपका (यः) जो (मदः) रस (मधुमत्तमः) अत्यन्त स्वादु तथा (देववीतमः) दिव्यस्वरूप है उसको (राये) हमारे ऐश्वर्यके लिये (पवित्रे) पवित्रान्तःकरणोंमें (प्रार्ष) प्राप्त कराइये ।

भावार्थ—जो पुरुष परमात्माके आनन्दका अनुसन्धान करते हैं अर्थात् परमात्माको ध्येय बनाकर उसके आह्लादसे आह्लादित होते हैं वे सब प्रकारसे अभ्युदयके पात्र होते हैं ।

तमीं मृजन्त्यायवो हरिं नदीषु वाजिनम् ।
इन्दुमिन्द्राय मत्सरम् ॥१७॥

तं । ईमिति । मृजंति । आयवः । हरिं । नदीषु । वाजिनं । इंदुं । इंद्राय । मत्सरं ॥ १७ ॥

पदार्थः—(तं हरिं) पूर्वोक्तगुणसम्पन्नं (इंदुं) स्वप्रेमणार्द्रकारकम् अथच (इन्द्राय मत्सरं) कर्मयोगिनामाह्लादकारकं (ईं, वाजिनं) समृद्धिषु बलस्वरूपं तथा (नदीषु) समस्ताभ्युदयेषु (आयवः) मनुष्याः (मृजन्ति) अविद्यारूपजवनिकामुत्पाट्य बुद्धिविषयं कुर्वन्ति ।

पदार्थ—(तं, हरिं) उक्त गुणसम्पन्न परमात्माको (इंदुं) जो सबको अपने प्रेमसे आर्द्रित करने वाला है और (इन्द्राय मत्सरम्) कर्मयोगीके लिये आह्लादको उत्पन्न करने वाला है (ईं वाजिनम्) बलस्वरूपको समृद्धियोंमें (नदीषु) सम्पूर्ण अभ्युदयोंमें (आयवः) मनुष्यलोग (मृजंति) अविद्याके परदेको हटा कर बुद्धिविषय बनाते हैं ।

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते हैं कि जो लोग आवरणको दूर करके परमात्माका साक्षात्कार करते हैं, वे सब प्रकारके अभ्युदयोंको प्राप्त होते हैं ।

आ पवस्व हिरण्यवदश्वावत्सोम वीरवत् ।
वाजं गोमन्तमा भर ॥१८॥

आ । पवस्व । हिरण्यऽवत् । अश्वऽवत् । सोम । वीरऽवत् । वाजं । गोऽमंतं । आ । भर ॥ १८ ॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! भवान् (आपवस्व) अस्मान् परितः पवित्रयतु । भवान् (हिरण्यवत) समस्तैश्वर्यवानस्ति

अथ च (अश्वावत्) सर्वशक्तिसम्पन्नोस्ति (वीरवत्) विविधवीरस्वाम्यस्ति त्वम् मां (गोमंतं वाजं) ज्ञानस्यैश्वर्येण (आभर) परिपूरय।

पदार्थ—हे परमात्मन्! आप (आपवस्व) हमको सब ओरसे पवित्र करें। आप (हिरण्यवत्) सबप्रकारके ऐश्वर्य वाले हैं (अश्वावत्) सर्वशक्तिसम्पन्न है (वीरवत्) विविध प्रकारके वीरोंके स्वामी है। आप हमको (गोमंतं वाजं) ज्ञानके ऐश्वर्यसे (आभर) भरपूर करिये।

भावार्थ—जो लोग परमात्मपरायण होते हैं उनको परमात्मा ज्ञान विज्ञानादि अनन्त प्रकारके ऐश्वर्यसे परिपूर्ण करता है।

परि वाजे न वाजयुमव्यो वारेषु सिञ्चत।
इन्द्राय मधुमत्तमम् ॥१९॥

परि। वाजे। न। वाजऽयुं। अव्यः। वारेषु। सिंचत।
इंद्राय। मधुमत्ऽतमं ॥१९॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर! (इंद्राय) कर्मयोगिने (मधुमत्तमं) सर्वोत्कृष्टमाधुर्यं (परि सिंचत) सिंचय। (अव्यः) सर्वरक्षको भवान् (वारेषु) वरणीयपदार्थेषु (वाजयुं न) वीर इव (वाजे) संग्रामे रक्षां करोतु।

पदार्थ—हे परमात्मन्! (इंद्राय) कर्मयोगीके लिये (मधुमत्तमम्) सर्वोपरि माधुर्यको (परिषिञ्चत) सिंचन करें (अव्यः) सबको रक्षा करने वाले आप (वारेषु) वरणीय पदार्थोंमें (वाजयुं न) वीरोंके समान (वाजे) युद्धमें रक्षा करें।

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते हैं कि जो लोग कर्मयोगी और उद्योगी बनकर अपने लक्ष्यकी पूर्तिमें कटिबद्ध रहते हैं परमात्मा वीरोंके समान उनकी रक्षा करता है।

कविं मृजन्ति मर्ज्यं धीभिर्विप्रा अवस्यवः ।
वृषा कनिक्रदर्षति ॥२०॥२३॥

कविं । मृजंति । मर्ज्यं । धीभिः । विप्राः । अवस्यवः । वृषा । कनिक्रत् । अर्षति ।

पदार्थः—(अवस्यवः) रक्षाकर्तारः (विप्राः) मेधाविनः (धीभिः) बुद्ध्या (मर्ज्यं) शुद्धस्वरूपं तथा (कविं) सर्वज्ञं परमात्मानं (मृजन्ति) ध्यानविषयं कुर्वंति । स परमात्मा (वृषा) अभिलाषपूरकः एवंभूतः परमेश्वरः (कनिक्रत) वेदवाणीं प्रददत (क्षरति) आमोदस्य वृष्टिं करोति ।

पदार्थ—(अवस्यवः) रक्षा करने वाले (विप्राः) मेधावीलोग (धीभिः) बुद्धिद्वारा (मर्ज्यं) शुद्धस्वरूप तथा (कविं) सर्वज्ञ परमात्माको (मृजन्ति) ध्यानका विषय बनाते हैं वह परमात्मा (वृषा) जोकि कामनाओंको वृष्टी करने वाला है एवंभूत ईश्वर (कनिक्रत्) वेदवाणीको प्रदान करता हुआ (क्षरति) आनन्दकी वृष्टि करता है,

भावार्थ—इस मंत्रमें परमात्माने इस बातका उपदेश किया है-कि जो लोग संस्कृतबुद्धि द्वारा उसका ध्यान करते हैं उनको परमात्माका साक्षात्कार होता है । इसी लिये उपनिषदूमें कहा है कि " दृश्यते त्वग्रया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः " कि सूक्ष्मदर्शी लोग सूक्ष्मबुद्धि द्वारा उसके साक्षात्कारको प्राप्त होते हैं ।

वृषणं धीभिरप्तुरं सोममृतस्य धारया ।
मती विप्राः समस्वरन् ॥२१॥

वृषणं । धीभिः । अप्ऽतुरं । सोमं । ऋतस्य । धारया । मती । विप्राः । सं । अस्वरन् ॥२१॥

पदार्थः—(विप्राः) बुद्धिमन्तः पुरुषाः (वृषणं) कामनावर्षकं (सोमं) परमात्मानं (धीभिः शुद्धबुध्या (मती) स्तुत्या तथा (ऋतस्य धारया) सत्यधारणतया (समस्वरन्) बुद्धिविषयं कुर्वंति

पदार्थ—(विप्राः) मेधावीजन (वृषणं) कामनाओंकी वृष्टि कराने वाले (सोमं) परमात्माको (धीभिः) शुद्धबुद्धि द्वारा (मती) स्तुतिसे तथा (ऋतस्य धारया) सत्यकी धारणासे (समस्वरन्) बुद्धिविषय करते हैं ।

भावार्थ—इस मन्त्रसे परमात्माके साक्षात्कार करनेका उपदेश किया है ।

पवस्व देवायुषगिन्द्रं गच्छतु ते मदः ।
वायुमा रोह धर्मणा ॥२२॥

पवस्व । देव । आयुषक् । इंद्रं । गच्छतु । ते । मदः । वायुं । आ । रोह । धर्मणा ।

पदार्थः—(देव) हे परमैश्वर्यसम्पन्नपरमात्मन् ! भवान् मां (पवस्व) पवित्रयतु (ते) भवतः (मदः) आनन्दः (आयुषक्) उपासकं (इंद्रं) कर्मयोगिनं (गच्छतु) प्राप्नोतु । तथा भवान् (वायुं) ज्ञानयोगिनं पुरुषं (धर्मणा) उपास्यभावेन (आरोह) प्राप्नोतु ।

पदार्थः—(देव) हे दिव्यगुणसम्पन्न परमात्मन्! आप मुझको (पवस्व) पवित्र करें। (ते) आपका (मदः) परम आनन्द (आयुषक्) उपासक (इन्द्रं) कर्मयोगी पुरुषको (गच्छतु) प्राप्त हो। तथा आप (वायुं) ज्ञानयोगी पुरुषको (धर्मणा) उपास्यभावसे (आरोह) प्राप्त हों।

भावार्थ—जो पुरुष ज्ञानयोगी वा कर्मयोगी बनकर परमात्माके उपासक बनते हैं परमात्मा उन्हें तद्धर्मतापत्तियोग द्वारा पवित्र करता है। अर्थात् अपने शिष्यादिभावोंको प्रदान करके उनको शुद्ध करता है॥

पवमान नि तोशसे रयिं सोम श्रवाय्यम्।
प्रियः समुद्रमा विश ॥२३॥

पवमान। नि। तोशसे। रयिं। सोम। श्रवाय्यं। प्रियः। समुद्रं। आ। विश।

पदार्थः—(पवमान) सर्वपावकपरमात्मन्! (सोम) सौम्यस्वभाव! यो भवान् (श्रवाय्यं, रयिम्) दुष्टानां धनं (नितोशसे) नितरां नाशयति सः (प्रियः) आनन्दप्रदस्त्वम् (समुद्रं) आर्द्रीभूते मदन्तःकरणे (आविश) विराजमानो भवतु।

पदार्थ—(पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले! (सोम) हे परमात्मन्! जो आप (श्रवाय्यं, रयिम्) दुष्टोंके धनको (नि तोशसे) भलीभांति नष्ट करते हैं वह (प्रियः) आनन्ददाता आप (समुद्रं) आर्द्रीभूत हमारे अन्तःकरणमें (आविश) विराजमान होयँ।

भावार्थ—इस मंत्रमें परमात्माके रौद्रभावका वर्णन किया है। जैसा कि "भयं वज्रमुद्यत" इस उपनिषद् वाक्यमें परमात्माके वज्रको भयरूपसे वर्णन किया गया है। इसी प्रकार यहां परमात्माका स्वरूप दुष्टोंके प्रति भयप्रद वर्णन किया है।

अपघ्नन्पवसे मृधः क्रतुवित्सोम मत्सरः ।
नुदस्वादेवयुं जनम् ॥२४॥

अपऽघ्नन् । पवसे । मृधः । क्रतुऽवित् । सोम । मत्सरः । नुदस्व अदेवऽयुं । जनं ॥२४॥

पदार्थः—(सोम) हे जगदीश्वर ! भवान् (मत्सरः) परमानन्ददाता तथा (क्रतुवित्) सर्वशक्तिसम्पन्नोस्ति । यो भवान् (मृधः) दुष्टान् (अपघ्नन्) नाशयन् शिष्टान् (पवसे) गोपायति स त्वं (अदेवयुं) दुराचारिणं (जनं) रक्षःसमूहं (नुदस्व) नाशयतु ।

पदार्थ—(सोम) हे परमेश्वर ! आप (मत्सरः) परम आनन्द-देने वाले तथा (क्रतुवित्) सर्वशक्तिसम्पन्न हैं । जो आप (मृधः) दुष्टोंको (अपघ्नन्) हनन करते हुए (पवसे) रक्षा करते हैं वह आप (अदेवयुं) दुष्टाचारी (जनं) राक्षससमूहको (नुदस्व) हनन करिये ।

भावार्थ—इस मंत्रमें भी परमात्माके रौद्ररूपका वर्णन किया-गया है ।

पवमाना असृक्षत सोमाः शुक्रास इन्दवः ।
अभि विश्वानि काव्या ॥२५॥३४॥

पवमानाः । असृक्षत । सोमाः । शुक्रासः । इंदवः । अभि । विश्वानि । काव्या ।

पदार्थः—(शुक्रासः) यः बलवान् तथा (इन्दवः) दीप्तिमानस्ति एतादृशः (पवमानाः) रक्षकः (सोमाः) परमात्मा (विश्वानि) सम्पूर्णं (काव्या) वेदं (अभ्यसृक्षत) प्रकाशयति ।

पदार्थ—(शुक्रासः) जो बलवान् तथा (इंदवः) दीप्तिमान् है ऐसा (पवमानाः) रक्षा करने वाला (सोमाः) परमात्मा (विश्वानि) सम्पूर्ण (काव्या) वेदको (अभ्यसृक्षत) प्रकाशित करता है।

भावार्थ—इस मंत्रमें इस बातका कथन है कि परमात्मा सब ज्ञानोंका स्रोत तथा वेदका प्रकाशक है। जैसा कि "तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतऋचः सामानि जज्ञिरे" इत्यादि मंत्रोंमें अन्यत्र भी वर्णन किया है कि परमात्मासे ऋगादि वेद उत्पन्न हुए।

पवमानास आशवः शुभ्रा असृग्रमिन्दवः ।
घ्नन्तो विश्वा अप द्विषः ॥२६॥

पवमानासः । आशवः । शुभ्राः । असृग्रं । इंदवः । घ्नंतः । विश्वाः । अप । द्विषः ।

पदार्थः—(अपाद्विषः) मत्सरान् (घ्नंतः) नाशयन् (पवमानासः) देशपवितारः शूरवीरादयः (आशवः) अतिशीघ्रकारिणः (शुभ्राः) सुन्दराङ्गाः (इन्दवः) ऐश्वर्यशालिनः (विश्वाः असृग्रं) सर्वविधैश्वर्याणि उत्पादयंति ।

पदार्थ—(अपाद्विषः) अनुचित द्वेषियोंको (घ्नंतः) नाश करते हुए (पवमानासः) देशको पवित्र करने वाले शूरवीर (आशवः) अतिशीघ्रता करने वाले (शुभ्राः) सुन्दर (इन्दवः) ऐश्वर्यशाली (विश्वाः असृग्रं) सब प्रकारके ऐश्वर्योंको उत्पन्न करते हैं।

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करता है कि जो शूरवीर अन्यायकारी दुष्टोंको दमन करते हैं वे देशके लिये अनन्त प्रकारके ऐश्वर्यको उत्पन्न करते हैं।

पवमाना दिवस्पर्यन्तरिक्षादसृक्षत ।
पृथिव्या अधि सानवि ॥२७॥

पर्वमानाः । दिवः । परि । अंतरिक्षात् । असृक्षत । पृथिव्याः । अधि । सानवि ॥ २७ ॥

पदार्थः—शूरादयः (दिवस्परि) द्युलोकादुपरि (अंतरिक्षात्) अंतरिक्षतः तथा (पृथिव्याः अधि) पृथ्वीलोकस्य मध्ये (सानवि) शौर्येण सर्वोपरि विराजते ते वीराः (पवमानाः) स्वयं पवित्रीभूय (असृक्षत) शुभगुणमुत्पादयन्ति ।

पदार्थ—जो शूरवीर (दिवस्परि) द्युलोकसे ऊपर (अंतरिक्षात्) अंतरिक्ष और (पृथिव्याः अधि) पृथिवी लोकके बीचमें (सानवि) शूर वीरताधर्मसे सर्वोपरि होकर विराजमान हैं वे (पवमानाः) स्वयं पवित्र होकर (असृक्षत) शुभगुणोंको उत्पन्न करते हैं ।

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे पुरुषो ! तुम अपने शूर वीरतादि धर्मोंसे इस संसारके उच्च शिखर पर विराजमान होकर सबकी रक्षा करो ।

पुनानः सोम धारयेन्दो विश्वा अप स्रिधः ।
जहि रक्षांसि सुक्रतो ॥२८॥

पुनानः । सोम । धारया । इंदो इति । विश्वाः । अप । स्रिधः । जहि । रक्षांसि । सुक्रतो इति सुऽक्रतो ॥२८॥

पदार्थः—(सोम) हे सौम्यस्वभाव विद्वन् ! भवान् (धारया) अमोदवृष्ट्या (पुनानः) पवित्रयन् (विश्वा अपस्रिधः) समस्तान् धर्मविरोधिनः (रक्षांसि) राक्षसान् (जहि) नाशयतु (इंदो) हे प्रकाशस्वरूप ! (सुक्रतो) हे यज्ञस्वरूप ! भवान् अनाचारिनाशं करोतु ।

पदार्थ—हे सौम्य स्वभाव वाले विद्वन् ! आप (धारया) आनन्दकी वृष्टिसे (पुनानः) हमको पवित्र करते हुए (विश्वा अपस्रिधः) सम्पूर्ण धर्म विरोधियोंका (जहि) नाश करो (रक्षांसि) जो राक्षस शुभ कर्मोंका नाशक है । हे सुक्रतो ! अनाचारियोंका नाश करो ॥

भावार्थ—धीरवीरतादि गुणसम्पन्न शूरवीर दुराचारी राक्षसोंका नाश करके देशमें सदाचार प्रचार करता है ॥

अपघ्नन्त्सोम रक्षसोऽभ्यर्ष कनिक्रदत् ।
द्युमन्तं शुष्ममुत्तमम् ॥२९॥

अपऽघ्नन् । सोम । रक्षसः । अभि । अर्ष । कनिक्रदत् ।
द्युऽमंतं । शुष्मं । उत्ऽतमं ॥२९॥

पदार्थः—(सोम) हे सौम्यस्वभाव ! भवान् (रक्षसः) राक्षसानां (अपघ्नन्) नाशं कुर्वन् (कनिक्रदत)तथा शूरताया-उपदेशं कुर्वन् (उत्तमं) सर्वोत्कृष्टं (द्युमन्तं) दीप्तिमन्तं (शुष्मं) बलं (अभ्यर्ष) अस्मभ्यं ददातु ॥

पदार्थ—(सोम) हे सौम्यगुणसम्पन्न विद्वन् ! आप (रक्षसः) राक्षसोंका (अपघ्नन्) नाश करते हुए (कनिक्रदत्) और शूरवीरताका उपदेश करते हुए (उत्तमं) उत्तम (द्युमंतं) दीप्ति वाला (शुष्मं) बल (अभ्यर्ष) हमको दें ॥

भावार्थ—जिस देशमें सौम्यस्वभाव युक्त शूर वीर उत्पन्न होते हैं, उस देशमें सर्वोपरि बल और ऐश्वर्य उत्पन्न होता है । तात्पर्य-यह है कि ऐश्वर्य उत्पन्न करनेके लिये धीरवीरतादि गुणोंका धारण करना अत्यावश्यक है ॥

अस्मे वसूनि धारय सोम दिव्यानि पार्थिवा ।
इन्दो विश्वानि वार्या ॥३०॥३५॥

अस्मे इति । वसूनि । धारय । सोम । दिव्यानि । पार्थिवा ।
इन्दो इति । विश्वानि । वार्या ॥३०॥३५॥

पदार्थः—(इन्दो) हे समस्तगुणसम्पन्न ! (सोम) परमात्मन् ! भवान् (दिव्यानि) दिविभवानि (पार्थिवा) पृथिवीस्थानि (विश्वानि वसूनि) समस्तरत्नानि (वार्या) यानि वरणीयानि तानि (अस्मे) अस्मभ्यं (धारय) वितरतु ॥

पदार्थ—(इंदो) हे ज्ञान विज्ञानादि गुणसम्पन्न विद्वन् ! (सोम) हे परमात्मन् ! आप (पार्थिवा) पृथिवी सम्बन्धी (दिव्यानि) तथा द्युलोक सम्बन्धी (विश्वानि वसूनि) सब रत्न (वार्या) जो वरण करने योग्य हैं, उनको (अस्मे) हमारे लिये (धारय) धारण कराइये ॥

भावार्थ—परमात्माने इस मन्त्रमें इस बातका उपदेश किया है कि जो लोग सौम्य स्वभाव युक्त शूरवीरोंके अनुयायी होकर देशका परिपालन करते हैं, वे नाना प्रकारके रत्नोंको धारण करके ऐश्वर्यशाली होते हैं ॥

इति त्रिषष्ठितमं सूक्तं पंचत्रिंशो वर्गश्च समाप्तः ॥

यह ६३वां सूक्त और ३५वां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ त्रिंशदृचस्य चतुःषष्टितमस्य सूक्तस्य—

१—३० काश्यप ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता
छन्दः—१, ३, ४, ७, १२, १३, १५, १७, १९, २२, २४, २६, गायत्री २, ५, ६, ८–११ १४, १६, २०, २३, २५, २९ निचृद्गायत्री । १८, २१, २७, २८ विराड्गायत्री । ३० यवमध्या गायत्री
॥ षड्जः स्वरः ॥

अथ परमात्मनोगुणा वर्ण्यन्ते ॥

अब परमात्माके गुणोंका वर्णन करते हैं ॥

वृषा सोम द्युमाँ असि वृषा देव वृषव्रतः ।
वृषा धर्माणि दधिषे ॥१॥

वृषा । सोम । द्युऽमान् । असि । वृषा । देव । वृषऽव्रतः ।
वृषा । धर्माणि । दधिषे ॥१॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन्! त्वम् (द्युमानसि) दीप्तिमानसि । तथा (वृषा) समस्ताभीष्टवर्षकोसि । तथोपासकानां-हृदयानि (वृषा) स्नेहेन सिञ्चसि । (देव) हे दिव्यगुणसम्पन्न! भवान् (वृषव्रतः) आनन्दवर्षणशीलं ददाति । (वृषा धर्माणि दधिषे) तथा वर्षणशीलधर्मधारकोस्ति ॥

पदार्थ—(सोम) हे सौम्यस्वभाव परमात्मन्! (द्युमान्) आप दीप्तिमान् असि) हैं (वृषा) तथा सब कामनाओंकी वर्षा करने वाले हैं ।

(देव) हे देव ! आप (वृषव्रतः) अर्थात् आनन्दकी वृष्टिरूप शील-को धारण किये हुए हैं । तथा उपासकोंके हृदयोंको (वृषा) स्नेहसे-सिञ्चन करते हैं, (वृषा धर्माणि दधिषे) और वर्षण शील धर्मोंको धारण किये हुए हैं ॥

भावार्थ—हे परमात्मन् ! आप नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव हैं। और आपकी मर्यादामे ही सब लोक लोकान्तर स्थिर हैं। आप अपनी धर्ममर्यादामें हमको भी स्थिर कीजिये ॥

वृष्णस्ते वृष्ण्यं शवो वृषा वनं वृषा मदः ।
सत्यं वृषन्वृषेदसि ॥२॥

वृष्णः । ते । वृष्ण्यं । शवः । वृषा । वनं । वृषा । मदः । सत्यं । वृषन् । वृषा । इत् । असि ॥२॥

पदार्थः--(वृषन्) हे अभीष्टदायक परमात्मन् ! (वृष्णः) वर्षणशीलस्य (ते) तव (मदः) आनन्दः (वृषा) वर्षकः (शवः) बलं च (वृष्ण्यं) वर्षणशीलं वर्तते । अथच तव (वृषा) वर्षणशीलं (सत्यं) सत्यस्वरूपं (वनं) भजनीय-मस्ति । तथा एकः (वृषेत्) वर्षको भवानेव (असि) उपा-सनीयोस्ति ॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (वृष्णः) वर्षणशील (ते) आपका (मदः) आनन्द (वृषा) वर्षक है । तथा (ते) तुम्हारा (शवः) बल (वृष्ण्यं) वर्षणशील है। और तुम्हारा (वृषा) वर्षणशील (सत्यं) सत्यस्वरूप (वनं) भजन करने योग्य है । और एकमात्र (वृषेत्) वर्षक आपही (असि) उपासना करने योग्य हैं ॥

भावार्थ—इस मन्त्रमें एकमात्र परमात्माको उपास्य रूपसे वर्णन किया गया हैं। तात्पर्य यह है कि ईश्वरसे भिन्न सत्यादि गुणोंका धाम अन्य कोई पदार्थ नहीं है ॥

अश्वो न चंक्रदो वृषा सं गा इन्दो समर्वतः ।
वि नो राये दुरो वृधि ॥३॥

अश्वः । न । चक्रदः । वृषा । सं । गाः । इंदो इति । सं । अर्वतः । वि । नः । राये । दुरः । वृधि ॥३॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! (वृषा) वर्षको भवान् [अश्वो न] विद्युदिव [सं चक्रदः] शब्दप्रदोस्ति । (इंदो) हे परमैश्वर्यसम्पन्न ! भवान् (गाः) ज्ञानेन्द्रियाणां तथा (समर्वतः) कर्मेन्द्रियाणां (दुरः) द्वाराणि (राये) ऐश्वर्याय (नः) अस्मदर्थं (विवृधि) उत्पाटयतु ॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! आप (अश्वो न) विद्युत्के समान (सं चक्रदः) शब्दोंके देने वाले हैं । और (इंदो) हे परमेश्वर ! आप (गाः) ज्ञानेन्द्रियोंके (समर्वतः) और कर्मेन्द्रियोंके (दुरः) द्वारोंको (राये) ऐश्वर्यार्थ (नः) हमारे लिये (विवृधि) खोल दें ॥

भावार्थ—परमात्मा जिन पर कृपा करता है,उन पुरुषोंकी ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रियकी शक्तियोंको बढ़ाता है । तात्पर्य यह है कि उद्योगी-पुरुष वा, यों कहो कि सत्कर्मी पुरुषोंकी शक्तियोंको परमात्मा बढ़ाता है । आलसी और दुराचारियोंकी नहीं ॥

असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया ।
शुक्रासो वीरयाशवः ॥४॥

असृक्षत । प्र । वाजिनः । गव्या । सोमासः । अश्वऽया ।
शुक्रासः । वीरऽया । आशवः ॥४॥

पदार्थः—(सोमासः) सौम्यस्वभाववान् (वाजिनः) बलरूपः (अश्वया) गतिशीलस्तथा (गव्या) प्रकाशरूपः (शुक्रासः) ज्ञानस्वरूपः (वीरया) वीरोत्पादकः पुरुषः (आशवः) गतिशीलं परमात्मानमुपासकाः (प्रासृक्षत) उपासते ॥

पदार्थ—(सोमासः) सौम्य स्वभाव वाला (वाजिनः) बलरूप (अश्वया) गतिशील तथा (गव्या) प्रकाशस्वरूप (शुक्रासः) ज्ञानस्वरूप (वीरया) वीरोंको उत्पन्न करने वाला (आशवः) गतिशील परमात्माको, उपासक लोग (प्रासृक्षत) अपना उपास्य बनाते हैं ॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते हैं, कि हे मनुष्यो ! तुम लोग उक्त गुणसम्पन्न परमात्माको अपना उपास्य बनाओ ॥

शुम्भमाना ऋतायुभिर्मृज्यमाना गभस्त्योः ।
पवन्ते वारे अव्यये ॥५॥३६॥

शुम्भमानाः । ऋतयुऽभिः । मृज्यमानाः । गभस्त्योः ।
पवन्ते । वारे । अव्यये ॥५॥३६॥

पदार्थः—(शुंभमानाः) भूषणभूषकः (मृज्यमानाः) सर्वपवित्रकारी (गभस्त्योः) प्रकाशस्वरूपः (वारे) वरणीयपदार्थेषु (अव्यये) अव्ययरूपेण विराजमानः परमात्मा (ऋतायुभिः) सत्यप्रियैः उपासितः (पवन्ते) तान्पवित्रयति ॥

पदार्थ—(शुंभमानाः) सब भूषणोंका भूषक (मृज्यमानाः) सबको शुद्ध करने वाला (गभस्त्योः) प्रकाशस्वरूप (वारे) वरणीय पदार्थोंमें (अव्यये) अव्यय रूपसे जो विराजमान है, ऐसा परमात्मा (ऋतायुभिः) सचाईको चाहने वाले लोगोंसे उपासना किया हुआ परमात्मा (पवन्ते) उनको पवित्र करता है ॥

भावार्थ—जो लोग सत्यके अभिलाषी हैं, उनको परमात्मा सदैव पवित्र करता है। क्योंकि परमात्मा भक्तों पर और सत्याभिलाषियों-पर अपनी कृपा करके उनका उद्धार करता है ॥

ते विश्वा दाशुषे वसु सोमा दिव्यानि पार्थिवा ।
पर्वन्तामान्तरिक्ष्या ॥६॥

ते । विश्वा । दाशुषे । वसु । सोमाः । दिव्यानि । पार्थिवा ।
पर्वंतां । आ । अंतरिक्ष्या ॥६॥

पदार्थः—(ते सोमाः) प्रागुक्तगुणसम्पन्नः परमात्मा दिव्यानि) द्युलोकभवानि (पार्थिवा) पृथिवीस्थानि (अन्तरीक्ष्या) अंतरिक्षभवानि (विश्वा) सम्पूर्णानि (वसु) धनानि (दाशुषे) वेदानुयायिभ्यः (आपर्वतां) ददातु ॥

पदार्थ—(ते सोमाः) पूर्वोक्त गुणसम्पन्न परमात्मा (दिव्यानि) द्युलोकके (पार्थिवा) पृथिवी लोकके अंतरिक्ष्या) अंतरिक्ष लोकके (विश्वा) सब (वसु) धन (दाशुषे) जिज्ञासु वेदानुयायियोंको (आपवर्ता) दें ॥

भावार्थ—जो लोग परमात्माकी आज्ञाका पालन करते हैं, परमात्मा उनको सब प्रकारके ऐश्वर्य प्रदान करता है ॥

पर्वमानस्य विश्ववित्प्र ते सर्गा असृक्षत ।
सूर्यस्येव न रश्मयः ॥७॥

पर्वमानस्य । विश्वऽवित् । प्र । ते । सर्गाः । असृक्षत ।
सूर्यस्यऽइव । न । रश्मयः ॥७॥

पदार्थः—(विश्ववित) हे संसारज्ञ परमात्मन् ! (पवमानस्य) सर्वपवित्रयितः (ते) तव (सर्गाः) सृष्टयः याः (प्र सृक्षत) रचिताः सन्ति, ताः (सूर्यस्येव रश्मयः) रवेः किरणा इव (न) सम्प्रति शोभन्ते ॥

पदार्थ—(विश्ववित्) हे सम्पूर्ण संसारके जानने वाले परमात्मन् ! (पवमानस्य) सबको पवित्र करने वाले (ते) तुम्हारी (सर्गाः) सृष्टियें (प्रासृक्षत) जो रची गई हैं, वे (सूर्यस्येव) सूर्यकी (रश्मयः) किरणोंके समान (न) इस कालमें शोभाको प्राप्त होरहीं हैं ॥

भावार्थ—परमात्माके कोटि कोटि ब्रह्मांड सूर्यकी रश्मियोंके समान देदीप्यमान हो रहे हैं। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार सूर्य अपनी ज्योतिसे अनन्त ब्रह्माण्डोंको प्रकाशित करता है, उस प्रकार अन्य भी तेजोमय ब्रह्माण्ड लोक लोकान्तरोंको प्रकाश करने वाले परमात्माकी रचनामें अनन्त हैं। इसी अभिप्रायसे वेदमें अन्यत्र भी कहा है कि "कोऽद्धावेत्ति कमिह प्रवोचत्" इत्यादि मन्त्रोंमें यह वर्णन किया है कि परमात्माकी रचनाके अन्तको कौन जान सकता है। और कौन इसको पूर्ण रूपसे कथन कर सकता है ॥

केतुं कृण्वन्दिवस्परि विश्वा रूपाभ्यर्षसि ।
समुद्रः सोम पिन्वसे ॥८॥

केतुं । कृण्वन् । दिवः । परि । विश्वा । रूपा । अभि । अर्षसि । समुद्रः । सोम । पिन्वसे ॥८॥

पदार्थः—(दिवस्परि) द्युलोकादुपरि (सोम) सौम्यस्वभाव परमात्मन्! (केतुं कृण्वन्) सूर्यचन्द्रौ केतुरूपौ भवता रचितौ । अथ च (विश्वा रूपा) समस्तरूपाणि (अभ्यर्षसि) पवित्राणि कृतानि (समुद्रः) समुद्रवन्ति रसा यस्मादिति समुद्रः यस्मादानन्दोपलब्धिः स भवान् (पिन्वसे) सर्वविधैश्वर्याणि मह्यं वितरति॥

पदार्थ—(सोम) हे सौम्य स्वभाव परमात्मन् ! (दिवस्परि) द्युलोकके ऊपर (केतुंकृण्वन) सूर्य तथा चन्द्रमाको आपने केतुरूप बनाया है। और (विश्वारूपा) सम्पूर्ण रूपोंको (अभ्यर्षासि) पवित्र बनाया है। (समुद्रः) जिससे सब आनन्द मिलते हैं उसका नाम यहाँ समुद्र है (पिन्वसे) वह आप सब प्रकारके ऐश्वर्योंको हमारे लिये देते हैं ॥

भावार्थ—परमात्माने अपनी रचनामें सूर्य तथा चन्द्रमाको प्रकाशके केतु बनाकर संसारकी शोभाको बढ़ाया है। और आनन्दका सागर होनेसे परमात्माका नाम समुद्र है ॥

हिन्वानो वाचमिष्यसि पवमान विधर्मणि ।
अक्रान्देवो न सूर्यः ॥९॥

हिन्वानः । वाचं । इष्यसि । पवमान । विऽधर्मणि । अक्रान् । देवः । न । सूर्यः ॥९॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (सूर्यः न) सूर्य इव (देवः) भवान् प्रकाशस्वरूपोऽस्ति । अथच (विधर्मणि) सर्वाधिकरणानि

(अक्रान्) अतिक्राम्यसि (पवमान) समस्तानान् पवित्रयन् (वाचमिष्यसि) त्वं वेदवाणीमिच्छसि । अथ च (हिन्वानः) सर्वप्रेरकोसि ॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (सूर्यः) सूर्यके (न) समान (देवः) आप प्रकाशस्वरूप हैं । और (विधर्मणि) सब अधिकरणोंका (अक्रान्) आप अतिक्रमण करते हैं । (पवमान) सबको पवित्र करते हुए (वाचमिष्यसि) आप वेदरूपी वाणीकी इच्छा करते हैं । (हिन्वानः) आप सर्वप्रेरक हैं ॥

भावार्थ—इस मन्त्रमें सूर्यका दृष्टान्त देकर परमात्माका स्वतःप्रकाश वर्णन किया है ॥

यद्यपि वास्तवमें सूर्य स्वतःप्रकाश नहीं है, तथापि लोककी प्रसिद्धिसे सूर्यको स्वतःप्रकाश मान कर यहां सूर्यका दृष्टान्त दिया गया है । वास्तवमें परमात्मा निरपेक्ष स्वतःप्रकाश है ॥

इन्दुः पविष्ट चेतनः प्रियः कवीनां मती ।
सृजदश्वं रथीरिव ॥१०॥३७॥

इंदुः । पविष्ट । चेतनः । प्रियः । कवीनां । मती । सृजत् । अश्वं । रथीःऽइव ॥१०॥३७॥

पदार्थः—(इन्दुः) परमात्मा स्वयं प्रकाशशीलोस्ति । (पविष्ट) सर्वपवित्रकर्ता चास्ति । (चेतनः) अथच चिद्रूपोस्ति (कवीनां-प्रियः) विद्वज्जनानां प्रियः (मती) बुद्धिस्वरूपोस्ति (अश्वं) सर्वोत्कृष्टविद्युदादिशक्तीः (सृजत्) अरचयत् । अथच स परमात्मा (रथीरिव) महारथ इव तेजस्वी तिष्ठति ॥

पदार्थ—(इन्दुः) परमात्मा स्वतःप्रकाश है । (पविष्ट) सब-को पवित्र करने वाला है । (चेतनः) चिद्रूप है (कवीनां प्रियः) विद्वानों-का प्रिय है । (मती) बुद्धिरूप है । (अश्वं) सर्वोपरि विद्युदादि शक्तियों-को (सृजत्) रचा है । और वह परमात्मा (रथीरिव) महारथीके समान-तेजस्वी होकर विराजमान है ॥

भावार्थ—इस मन्त्रमें परमात्माको चेतन स्वरूप वर्णन करनेके-लिये चेतन शब्द स्पष्ट आया है । जो लोग यह कहा करते हैं, कि, वेदमें परमात्माको ज्ञानस्वरूप कहने वाले शब्द नहीं आते, उनको इस मन्त्रसे शिक्षा लेनी चाहिये ॥

ऊर्मिर्यस्ते पवित्र आ देवावीः पर्यक्षरत् ।
सीदन्नृतस्य योनिमा ॥११॥

ऊर्मिः । यः । ते । पवित्रे । आ । देवऽअवीः । परिऽअक्षरत् ।
सीदन् । ऋतस्य । योनिं । आ ॥११॥

पदार्थः—हे विश्वकर्तः परमात्मन् ! (ते) तवानन्दस्य (ऊर्मिः) तरङ्गाः (यः) ये (देवावीः) दिव्यास्ते (पवित्रे) पूतान्तःकरणेषु (पर्यक्षरत्) परितः प्रवहन्ति । भवान् (ऋतस्य) सत्यतायाः (योनिमासीदन्) स्थाने निवसति ॥

पदार्थ—हे दिव्यस्वरूप परमात्मन् ! (ते) तुम्हारे आनन्दकी (ऊर्मिः) लहरें (यः) जो (देवावीः) दिव्य हैं, वे (पवित्रे) पवित्र अन्तः-करणोंमें (पर्यक्षरत्) सब ओरसे बहतीं हैं । आप (ऋतस्य) सचाईके (योनिमासीदन्) धाममें निवास करते हैं ॥

भावार्थ—परमात्मा शुद्ध अन्तःकरण वाले पुरुषोंके हृदयोंको अपनी सुधामयी दृष्टिसे सिंचित कर देता है ॥

स नो॑ अर्ष प॒वित्र॒ आ मदो॒ यो दे॑व॒वीत॑मः ।
इन्द॒विन्द्रा॑य पी॒तये॑ ॥१२॥

सः । नः॒ । अ॒र्ष॒ । प॒वित्रे॑ । आ । मदः॑ । यः । दे॒व॒ऽवीत॑मः । इंदो॒ इति॑ । इंद्रा॑य । पी॒तये॑ ॥१२॥

पदार्थः—(इन्दो) हे विविधगुणसम्पन्न परमात्मन् ! (इन्द्राय पीतये) कर्मयोगिनस्तृप्तये भवान् (आ) समन्तात् (मदः) आमोदस्य वृष्टिं करोतु । (यः) योह्यानन्दः (देववीतमः) देवानां-तर्पकोऽस्ति । अथच यस्य (पवित्रे) पवित्रान्तःकरणेषु सञ्चारो भवति (सः) तमानन्दं (नः) अस्मान् (अर्ष) देहि ॥

पदार्थ—(इन्दो) हे परमैश्वर्ययुक्त परमात्मन् ! (इन्द्राय पीतये) कर्मयोगीके तृप्तिके लिये आप (आ) सब ओरसे (मदः) आनन्दकी वृष्टि करें । (यः) जो आनन्द (देववीतमः) देवताओंकी तृप्ति-करने वाला है । और (पवित्रे) पवित्र अन्तःकरणोंमें जिसका संचार होता-है(सः) उस आनन्दका (नः) हम लोगोंको (अर्ष) दीजिये ॥

भावार्थ—परमात्माका वह आनन्द जो देवताओंके लिये तृप्ति-कारक है,अर्थात् जिसके अधिकारी दिव्य गुण वाले सदाचारी पुरुष हैं, वह आनन्द केवल कर्मयोगी और ज्ञानयोगियोंको ही उपलब्ध हो सकता-है अन्योंको नहीं । इस लिये सबको चाहिये कि कर्मयोगी और ज्ञान-योगी बनकर उस आनन्दकी प्राप्तिका यत्न करें ॥

इ॒षे प॑वस्व॒ धार॑या मृ॒ज्यमा॑नो मनी॒षिभिः॑ ।
इन्दो॑ रु॒चाभि गा इ॑हि ॥१३॥

इषे । पवस्व । धारया । मृज्यमानः । मनीषिऽभिः । इंदो इति । रुचा । अभि । गाः । इहि ॥१३॥

पदार्थः—(इंदो) हे परमैश्वर्यसम्पन्न परमात्मन् ! भवान् (इषे) ऐश्वर्यार्थं (पवस्व) सुयोग्यं करोतु । अथ च (मनीषिभिः) बुद्धिमद्भिः (अभि मृज्यमानः) उपास्यमानोभवान् (धारया) स्वानन्दवृष्ट्या (गाः) अस्मादिन्द्रियाणि पवित्रयतु । (रुचा) स्वप्रकाशस्वरूपेण (इहि) आगत्य ममान्तःकरणं पवित्रयतु ॥

पदार्थ—(इंदो) हे ऐश्वर्ययुक्त परमात्मन्! आप (इषे) ऐश्वर्यके लिये (पवस्व) हमको योग्य बनाएँ। और (मनीषिभिः) बुद्धिमानोंसे (अभि मृज्यमानः) उपास्यमान आप (धारया) अपने आनन्दकी वृष्टिसे (गाः) हमारी इन्द्रियोंको पवित्र करें। (रुचा) अपने प्रकाशस्वरूपसे (इहि) आकर हमारे अन्तःकरणको पवित्र कीजिये ॥

भावार्थ—जो लोग शुद्ध अन्तःकरणसे परमात्माकी उपासना करते हैं, परमात्मा उनकी शक्तियोंको बढ़ाता है। और उनकी इन्द्रियोंको विमल करके ऐश्वर्यप्राप्तिके योग्य बनाता है ॥

पुनानो वरिवस्कृध्यूर्जं जनाय गिर्वणः ।
हरे सृजान आशिरम् ॥१४॥

पुनानः । वरिवः । कृधि । ऊर्जं । जनाय । गिर्वणः । हरे । सृजानः । आऽशिरं ॥१४॥

पदार्थः—(हरे) दुष्टशक्तिहारिन् हे परमात्मन् ! भवान् मां (वरिवः) ऐश्वर्यवन्तं करोतु । (गिर्वणः) भवान् वेद-

वाण्योपासनीयोस्ति । अथ च (पुनानः) पवितास्ति । भवान् लोकस्य (आशिरं) मङ्गलं (सृजानः) कुर्वन् (जनाय) स्वभक्ताय (ऊर्जं) बलं (कृधि) करोतु ॥

पदार्थ—(हरे) हे दुष्टोंकी शक्तियोंको हरने वाले परमात्मन् ! आप हमको (वरिवः) ऐश्वर्यसम्पन्न करें । (गिर्वणः) आप वैदिक वाणियों द्वारा उपासना करने योग्य हैं । और (पुनानः) पवित्र करने वाले हैं । आप संसारके लिये (आशिरं) मंगल (सृजानः) करते हुए (जनाय) अपने भक्तके लिये (ऊर्जं) बल (कृधि) करें ॥

भावार्थ—परमात्मा दुष्टोंकी शक्तियोंको हर लेता है, और श्रेष्ठोंको अभ्युदय दे करके बढ़ाता है ॥

पुनानो देववीतय इन्द्रस्य याहि निष्कृतम् ।
द्युतानो वाजिभिर्यतः ॥१५॥३८॥

पुनानः । देवऽवीतये । इंद्रस्य । याहि । निःऽकृतं । द्युतानः । वाजिऽभिः । यतः ॥१५॥३८॥

पदार्थः—(हे परमात्मन् ! भवान् (इन्द्रस्य) कर्मयोगिनः (देववीतये) ब्रह्मप्राप्तये (याहि) प्राप्तोभवतु (यतः) यस्मात् कारणात् त्वम् (निष्कृतं द्युतानः) स्वाभाविकदीप्तिमानसि । तथा (वाजिभिः) उपासकैरुपास्यमानोसि । अथ च (पुनानः) सर्वान् पवित्रयसि । अतस्त्वमेव कर्मयोगिनोलक्ष्यतां प्राप्नुहि ॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! आप (इंद्रस्य) कर्मयोगीको (देववीतये) ब्रह्मप्राप्तिके लिये (याहि) प्राप्त हों । (यतः) क्योंकि आप

(निरकृतं द्युतानः) स्वाभाविक दीप्तिमान् हैं । तथा (वाजिभिः) उपासक लोगोंसे उपासना किये जाते हैं । और (पुनानः) सबको पवित्र करते हैं । इस लिये कर्मयोगीका लक्ष्य आपही बनें ॥

भावार्थ—कर्मयोगी यहां उपलक्षण मात्र है । तात्पर्य यह है कि कर्मयोगी तथा ज्ञानयोगी अथवा अन्य कोई उपासक हो, इन सबको एकमात्र ईश्वरकी ही उपासना करनी चाहिये । किसी अन्यकी नहीं ॥

प्र हि॒न्वा॒नास॒ इन्द॒वोऽच्छा॑ समु॒द्रमा॒शवः॑ ।
धि॒या जू॒ता अ॑सृक्षत ॥१६॥

प्र । हि॒न्वा॒नासः॑ । इंद॑वः । अच्छ॑ । स॒मु॒द्रं । आ॒शवः॑ । धि॒या । जू॒ताः॑ । अ॒सृ॒क्ष॒त ॥१६॥

पदार्थः—(धिया) संस्कृतबुद्ध्या (जूताः) उपासितः (आशवः) गतिशीलः (अच्छ) निर्मलः परमात्मा (समुद्रं) द्रवीभूते मनसि (प्रासृक्षत) ध्यानविषयो भवति । पूर्वोक्तः परमेश्वरः (इंदवः) सर्वविधैश्वर्यवानस्ति । तथा (हिन्वानासः) सर्वप्रेरकोऽस्ति ॥

पदार्थ—(धिया) संस्कृतबुद्धिसे (जूताः) उपासना किया हुआ (आशवः) गतिशील (अच्छ) निर्मल परमात्मा (समुद्रं) द्रवीभूत-मनमें (प्रासृक्षत) ध्यानका लक्ष्य बनाता है । उक्त परमात्मा (इंदवः) सब प्रकार ऐश्वर्य वाला है । तथा(हिन्वानासः) सबकी प्रेरणा करने वाला है ॥

भावार्थ—सर्वप्रकाशक और सबका प्रेरक परमात्मा, संयमी पुरुषोंके ध्यानका विषय होता है । अन्योंके नहीं ॥

म॒र्मृ॒जा॒नास॑ आ॒यवो॒ वृथा॑ समु॒द्रमिन्द॑वः ।
अग्म॑न्नृ॒तस्य॒ योनि॒मा ॥१७॥

मर्मृजानासः । आयवः । वृथा । समुद्रं । इंदवः । अग्मन् । ऋतस्य । योनिं । आ ॥१७॥

पदार्थः—पूर्वोक्तः परमात्मा (ऋतस्य योनिं) सत्यतायाः स्थानं (आ) समन्तात् (अग्मन्) प्राप्नोति । स परमेश्वरः (मर्मृजानासः) सर्वपवित्रकर्तास्ति । अथ च (आयवः) गमनशीलोऽस्ति । (इंदवः) प्रकाशस्वरूपस्तथा (वृथा समुद्रम्) अंतरिक्षेप्यनायासेन गच्छति ॥

पदार्थ—उक्त परमात्मा (ऋतस्य योनिं) सत्यताके स्थानको (आ) भलीभांति (अग्मन्) प्राप्त होता है । वह परमात्मा (मर्मृजानासः) सबको पवित्र करने वाला है । (आयवः) गतिशील है (इंदवः) प्रकाशस्वरूप है । तथा (वृथा समुद्रम्) अन्तरिक्षमें भी अनायास गमन करने वाला है ॥

भावार्थ—उक्त सर्वशक्तिसम्पन्न परमात्मा विना परिश्रमके ही अन्तरिक्षादिलोकोंमें गमन कर सकता है, अन्य नहीं ॥

परि णो याह्यस्मयुर्विश्वा वसून्योजसा ।
पाहि नः शर्म वीरवत् ॥१८॥

परि । नः । याहि । अस्मऽयुः । विश्वा । वसूनि । ओजसा । पाहि । नः । शर्म । वीरऽवत् ॥१८॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (अस्मयुः) भक्तैः प्राप्तव्यो भवान् (नः) अस्माकं (विश्वा) सम्पूर्णानि (वसूनि) धनानि (ओजसा) सबलानि (परियाहि) सर्वतः प्रापयतु । अथ च

(नः) अस्माकं (वीरवत) वीरान् पुत्रान् (शर्म) शीलं च (पाहि) रक्षयतु ॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (अस्मयुः) भक्तोंको प्राप्त होने वाले आप (नः) हम लोगोंके (विश्वा) सम्पूर्ण (वसूनि) धनोंको (ओजसा) बलके सहित (परियाहि) सब ओरसे प्राप्त कराइये । और (नः) हम लोगोंके (वीरवत्) वीर पुत्रोंकी और (शर्म) शीलकी (पाहि) रक्षा कीजिये ॥

भावार्थ—जो लोग सदाचारी हैं और सदाचारसे अपने शीलको बनाते हैं, परमात्मा उनकी सदैव रक्षा करता है॥

मिमाति वह्निरेतशः पदं युजान ऋक्वभिः ।
प्र यत्समुद्र आहितः ॥१९॥

मिमाति । वह्निः । एतशः । पदं । युजानः । ऋक्वऽभिः । प्र । यत् । समुद्रे । आऽहितः ॥१९॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (ऋक्वभिः) ऋत्विग्भिः (यत्) यदा (वह्निः) हवनीयाग्निः (एतशः) योहि दिव्यशक्तिसम्पन्नोऽस्ति (मिमाति) प्रज्वलितः क्रियते तदा (युजानः) यज्ञप्रयुक्तः परमात्मा योहि (समुद्रे) भक्त्या नम्रीभूतेऽन्तःकरणे (प्राहितः) स्थिरोभवति स परमात्मा (पदं) स्वपदं दधाति ॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (ऋक्वभिः) ऋत्विक् लोगोंसे (यत्) जब (वह्निः) हवनकी अग्नि (एतशः) जो दिव्यशक्तिसम्पन्न है (मिमाति) प्रज्वलित की जाती है, तब (युजानः) यज्ञमें युक्त होने वाला पर-

मात्मा जो (समुद्रे) भक्तिभावसे नम्रीभूत अन्तःकरणोंमें (ध्राहितः) स्थिर रहता है, वह (पदं) अपने पदको धारण करता है॥

भावार्थ——याज्ञिक लोग जब यज्ञ करते हैं, तब उनके नम्रीभूत-अन्तःकरणोंमें परमात्मा निवास करता है। यज्ञ शब्दके अर्थ यहां उपासनात्मक यज्ञके हैं। यों तो जपयज्ञ,योगयज्ञ,कर्मयज्ञ इत्यादि अनेक प्रकारके यज्ञोंमें यज्ञ शब्द आता है, जिनके करने वाले ऋत्विक् कहलाते हैं, परन्तु यहां ऋत्विक् शब्दका अर्थ उपासक है। जो ऋतु ऋतुमें अर्थात् प्रकृतिके प्रत्येक भावमें उपासना करते हैं, उनको यहां ऋत्विक् कहा गया है॥

आ यद्योनिं हिरण्ययमाशुर्ऋतस्य सीदति।
जहात्यप्रचेतसः॥२०॥३९॥

आ। यत्। योनिं। हिरण्ययं। आशुः। ऋतस्य। सीदति। जहाति। अप्रऽचेतसः॥२०॥

पदार्थः—(यत) यदा (आशुः) अत्यन्तगतिशीलोजगदीश्वरः (ऋतस्य हिरण्ययं योनिं) हिरण्मयीं यज्ञवेदीं (आसीदति) प्राप्नोति, तदा (अप्रचेतसः) असमाहितजनानामन्तःकरणानि (जहाति) त्यजति॥

पदार्थ——(यत्) जब (आशुः) अतिवेग गतिशील परमात्मा (ऋतस्य हिरण्ययं योनिं) हिरण्मयी यज्ञवेदीको (आसीदति) प्राप्त होता है, तब (अप्रचेतसः) असमाहित लोगोंके अंतःकरणोंको (जहाति) छोड़ देता है॥

भावार्थ——तात्पर्य यह है कि, ज्ञानसे प्रकाशित अंतःकरणोंको परमात्मा अपनी शक्तिसे विभूषित करता है, अज्ञानावृत अन्तःकरणोंको नहीं। इसी लिये यहां "अप्रेचतसः जहाति" यह लिखा है। वास्तवमें परमात्मा न किसी स्थानको छोड़ते है, न पकड़ते हैं॥

अभि वेना अनूषतेयक्षन्ति प्रचेतसः ।
मज्जन्त्यविचेतसः ॥२१॥

अभि । वेनाः । अनूषत । इयक्षंति । प्रऽचेतसः । मज्जंति । अविऽचेतसः ॥२१॥

पदार्थः—(प्रचेतसो वेनाः) अत्युत्कृष्टज्ञानवन्तोविज्ञानिनो-जनाः (अभ्यनूषत) जगदीश्वरस्योपासनां कुर्वन्ति । अथ च (इयक्षंति) उपासनात्मकयज्ञेन परमात्मयजनं कुर्वन्ति । तथा (अविचेतसः) अज्ञानिनः (मज्जन्ति) निमग्ना भवन्ति ॥

पदार्थ—(प्रचेतसो वेनाः) प्रकृष्ट ज्ञान वाले विज्ञानी लोग (अभ्यनूषत) परमात्माकी उपासना करते हैं । और (इयक्षंति) उपासना-त्मकयज्ञसे परमात्माका यजन करते हैं । (अविचेतसः) अज्ञानी लोग (मज्जन्ति) डूबते हैं ॥

भावार्थ—जो लोग शुद्ध मन वाले हैं, वे परमात्माके तत्वज्ञानसे मुक्तिके भागी होते हैं । और अज्ञानी लोग बार बार जन्म लेते हैं, और मरते हैं, परन्तु फिर भी परमात्माके तत्वको नहीं पाते । इसी लिये उनका यहां [illegible]म दिखलाया है ॥

इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः ।
ऋतस्य योनिमासदम् ॥२२॥

इन्द्राय । इन्दो इति । मरुत्वते । पवस्व । मधुमत्ऽतमः । ऋतस्य । योनिं । आऽसदम् ॥२२॥

पदार्थः—(इन्दो) हे परमैश्वर्यसम्पन्नपरमेश्वर ! (मरुत्वते

इन्द्राय) ज्ञानयोगिने कर्मयोगिने च भवान् (पवस्व) स्वानन्दवृष्टिं करोतु । यतो भवान् (मधुमत्तमः) आनन्दमयोस्ति । अतएवोक्तविद्वज्जनेभ्य आनन्दप्रदानं करोतु । अथच (ऋतस्य योनिमासदम्) यज्ञवेद्यामागत्य यज्ञं विभूषयतु ॥

पदार्थ—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (मरुत्वते इन्द्राय) ज्ञानयोगी और कर्मयोगीके लिये (पवस्व) आप अपने आनन्दकी वृष्टि करें। क्योंकि आप (मधुमत्तमः) आनन्दमय हैं। इस लिये उक्त विद्वानोंको आप आनन्दका प्रदान करें। और (ऋतस्य योनिमासदम्) यज्ञवेदीको आकर विभूषित करें ॥

भावार्थ—परमात्मा कर्मयोगी और ज्ञानयोगीके हृदयमण्डपको विभूषित करता है, और उनके सत्यव्रतात्मक यज्ञको सदैव सुशोभित करता है ॥

तं त्वा विप्रा वचोविदः परिष्कृण्वन्ति वेधसः ।
सं त्वा मृजन्त्यायवः ॥२३॥

तं । त्वा । विप्राः । वचःऽविदः । परि । कृण्वंति । वेधसः ।
सं । त्वा । मृजंति । आयवः ॥२३॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! (तं त्वा) उक्तगुणसम्पन्नं त्वां (वचोविदः) वेदज्ञाः (विप्राः) मेधाविनः (परिष्कृण्वन्ति) वर्णयन्ति । अथ च (वेधस आयवः) कर्मकाण्डिनोजनाः (त्वा) त्वां (संमृजंति) ध्यानविषयं कुर्वन्ति ॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (तं त्वा) उक्त गुणसम्पन्न आपको-

(वचोविदोविप्राः) वेदवाणीके जानने वाले मेधावी लोग (परिष्कृण्वंति) वर्णन करते हैं और (वेधस आयवः) कर्मकांडी लोग (त्वा) आपको (संमृजन्ति) ध्यानविषय करते हैं ॥

भावार्थ—जो लोग कर्मयोगी हैं, तथा योगसाधनरूपी कर्मों द्वारा परमात्माको अपने ध्यानका विषय बनाते हैं, वे परमात्माके साक्षात्कारको प्राप्त होते हैं, अन्य नहीं ।

रसं॑ ते मि॒त्रो अ॑र्य॒मा पिब॑न्ति॒ वरु॑णः कवे ।
पव॑मानस्य म॒रुतः॑ ॥२४॥

रस॑म् । ते॒ । मि॒त्रः । अ॒र्य॒मा । पिब॑न्ति । वरु॑णः । क॒वे॒ ।
पव॑मानस्य । म॒रुतः॑ ॥२४॥

पदार्थः—(पवमानस्य) सकलपावकस्य भवतः (रसं) रसं (मित्रः) समद्रष्टारः (वरुणः) विज्ञानादिभिर्गुणैः सृष्टेराच्छादका विद्वांसः (मरुतः) कर्मयोगिनः (ते कवे) सर्वज्ञस्य तव रसं (अर्यमा) न्यायकारिणः (पिबंति) पानं कुर्वन्ति ॥

पदार्थ—(पवमानस्य) सबको पवित्र करने वाले जो आप हैं, ऐसे आपके (रसं) रसको (मित्रः) समदर्शी विद्वान् (वरुणः) विज्ञानादि गुणोंसे सृष्टिको आच्छादन करने वाले (मरुतः) कर्मयोगिगण (ते कवे) तुम जो सर्वज्ञ हो, ऐसे आपके रसको (अर्यमा) न्यायकारी लोग (पिबंति) पान करते हैं ॥

भावार्थ—जो पुरुष कर्मयोगी तथा ज्ञानयोगी है, वही उस परमात्माके आनन्दको पान कर सक्ता है, अन्य नहीं । तात्पर्य यह है, कि परमात्माके समान परमात्माका आनन्द भी सर्वत्र परिपूर्ण है। परन्तु विना-

उक्त उपदेशसे, वा यों कहो, कि सर्वोपरि साधनके विना उसके आनन्दका कोई भी उपभोग नहीं कर सक्ता। इसी लिये यहां उक्त प्रकारके योगियोंका कथन किया है, कि उक्त योगी ही उसके आनन्दको भोगते हैं ॥

त्वं सो॑म विप॒श्चितं॑ पुना॒नो वाच॑मिष्यसि ।
इन्दो॑ स॒हस्र॑भर्णसम् ॥२५॥४०॥

त्वं । सो॒म॒ । वि॒प॒:ऽचितं॑ । पु॒ना॒नः । वाचं॑ । इ॒ष्य॒सि॒ । इन्दो॒ इति॑ । स॒हस्र॑ऽभर्णसं ॥२५॥

पदार्थः—(पुनानः) सर्वपावक ! (सोम) हे सर्वोपास्यदेव ! (त्वं) भवान् (विपश्चितं) ज्ञानविज्ञानदायिनीं (वाचं) वाणीं (इन्दो) हे सर्वप्रकाशक ! (सहस्रभर्णसं) वहुविधभूषणवत्-शोभा यस्यास्तादृशीं वाणीं (इष्यसि) त्वं वाञ्छसि ॥

पदार्थ—(पुनानः) सबको पवित्र करने वाले ! (सोम) सबके उपास्यदेव परमात्मन् ! (इंदो) हे सर्वप्रकाशक ! (त्वं) तुम (विपश्चितं) ज्ञान विज्ञानको देने वाली (वाचं) जो वाणी है (सहस्रभर्णसं) और अनन्तप्रकारके भूषणोंके समान जिसकी शोभा है, ऐसी वाणीको (इष्यसि) चाहते हो ॥

भावार्थ—वेदवाणीके समान कोई अन्य भूषण ज्ञानका ज्ञापक नहीं है। वह सहस्रों प्रकारके भूषणोंकी शोभाको धारण किये हुई है। जो पुरुष इस विद्याभूषणको धारण करता है, वह सर्वोपरि दर्शनीय बनता है ॥

उ॒तो स॒हस्र॑भर्णसं॒ वाचं॑ सोम मख॒स्युव॑म् ।
पुना॒न इ॑न्द॒वा भ॑र ॥२६॥

उतो इति। सहस्रऽभर्णसं। वाचं। सोम। मखऽस्युवं। पुनानः। इंदो इति। आ। भर ॥२६॥

पदार्थः—(उतो) अपि च (सहस्रभर्णसम्) बहुविध-भूषणवतीं (मखस्युवं) विविधविधैश्वर्य्यदायिनीं (वाचं) वाणीं (पुनानः) सर्वपावक! (सोम) हे परमात्मन्! (इन्दो) हे सर्वप्रकाशक! (आभर) पूर्वोक्तवाण्याः प्रदानं करोतु॥

पदार्थ—(उतो) और (सहस्रभर्णसं) अनेक प्रकारके भूषणों की शोभा वाली (मखस्युवं) जो विविध प्रकारके धनोंको देनेवाली है, ऐसी (वाचं) वाणीका (पुनानः) सबको पवित्र करने वाले! (सोम) परमात्मन्! (इंदो) हे सर्वप्रकाशक! (आभर) हमको सब प्रकारसे प्रदान करिये॥

भावार्थ—परमात्मासे प्रार्थना है,कि उक्त प्रकारका विद्याभूषण हमको प्रदान करें॥

पुनान इन्दवेषां पुरुहूत जनानाम्।
प्रियः समुद्रमा विश ॥२७॥

पुनानः। इंदो इति। एषां। पुरुऽहूत। जनानां। प्रियः। समुद्रं। आ। विश॥ २७॥

पदार्थः—[पुनानः] सर्वपावकपरमात्मन्! [पुरुहूत] जगत्पूज्य! [इंदो] सर्वप्रकाशक! [प्रियः] सर्वप्रियपरमात्मन्! [एषां जनानां] उपासकानां पुरुषाणां [समुद्रे] द्रवीभूत-मन्तःकरणं [आविश] स्वाभिव्यक्त्या शुद्धं कुरु॥

पदार्थ—(पुनानः) हे सबको पवित्र करनेवाले ! (पुरुहूत) सर्वपूज्य ! (इंदो) सर्वप्रकाशक ! (प्रियः) सबके प्रिय परमात्मन् ! (एषां जनानां) इन उपासक पुरुषोंके (समुद्रं) द्रवीभूत अन्तःकरणको (आविश) अपनी अभिव्यक्तिसे शुद्ध करिये ॥

भावार्थ—जो लोग विद्या और विनयसे सम्पन्न हैं, उनके अन्तःकरणको परमात्मा अवश्यमेव पवित्र करता है ॥

दविद्युतत्या रुचा परिष्टोभन्त्या कृपा ।
सोमाः शुक्रा गवाशिरः ॥२८॥

दविद्युतत्या । रुचा । परिऽस्तोभंत्या । कृपा । सोमाः । शुक्राः । गोऽआशिरः ॥२८॥

पदार्थः—(सोमाः) सर्वोत्पादकः (शुक्राः) बलस्वरूपः (गवाशिरः) इन्द्रियागोचरः परमात्मा (दविद्युतत्या) स्वोज्ज्वलज्योतिषा (रुचा) ज्ञानदीप्त्या (परिस्तोभंत्या) सर्वोत्कृष्टशोभमानया (कृपा) एतादृश्या कृपयास्माकं कल्याणं करोतु ॥

पदार्थ—(सोमाः) सर्वोत्पादक (शुक्राः) बलस्वरूप (गवाशिरः) इन्द्रियागोचर परमात्मा (दविद्युतत्या) अपनी उज्वल ज्योतिसे (रुचा) जो ज्ञानदीप्ति वाली है (परिस्तोभंत्या) और जो सर्वोपरि शोभा वाली है (कृपा) ऐसी कृपादृष्टिसे हमारा कल्याण करें ॥

भावार्थ—परमात्मा जिन लोगों पर अपनी कृपादृष्टि करता है, उनका कल्याण अवश्यमेव होता है ॥

हिन्वानो हेतृभिर्यत आ वाजं वाज्यक्रमीत् ।
सीदन्तो वनुषो यथा ॥२९॥

हिन्वानः । हेतृऽभिः । यतः । आ । वाजं । वाजी । अक्रमीत् । सीदंतः । वनुषः । यथा ॥२९॥

पदार्थः—(हेतृभिः) उपासकैः (हिन्वानः) उपासितः परमात्मा (यतः) स्वेन प्रयत्नेन (वाजी) उत्कृष्टबलवान् (वाजं) बलं (अक्रमीत्) जयति (वनुषः) मनुष्यः (सीदंतः) युद्धे प्रवेशं कृत्वा (यथा) येन प्रकारेणान्यानि बलान्यभिभवति तथैव जगदीश्वरः सर्वबलजेतास्ति ॥

पदार्थ—(हेतृभिः) उपासक लोगोंसे (हिन्वानः) उपासना किया हुआ परमात्मा (यतः) अपने प्रयत्नसे (वाजी) सर्वोपरि बलवाला (वाजं) बलको (अक्रमीत्) जीतता है (वनुषः) मनुष्य (सीदंतः) युद्धमें प्रविष्ट होकर (यथा) जैसे अन्य बलोंको जीतता है, इस प्रकार परमात्मा सब बलोंको जीतता है ॥

भावार्थ—परमात्माने इस मन्त्रमें बलका उपदेश किया है, कि जिस प्रकार योद्धा सेनापति अपने बलके गर्वसे अन्य सेनाधीशोंको जीत कर स्वाधीन कर लेता है, इसी प्रकार सर्वोपरि बलस्वरूप परमात्मा सम्पूर्ण लोक लोकान्तरोंको अपने वशीभूत किये हुए हैं ॥

ऋधक्सोम स्वस्तये संजग्मानो दिवः कविः ।
पवस्व सूर्यो दृशे ॥३०॥४१॥

ऋधक् । सोम । स्वस्तये । संऽजग्मानः । दिवः । कविः । पवस्व । सूर्यः । दृशे ॥३०॥

पदार्थः—(ऋधक् सोम) हे अद्वितीय जगदीश्वर ! भवान् (संजग्मानः) सर्वत्र परिपूर्णोस्ति । तथा (दिवः) प्रकाशस्वरूपोस्ति । अथ च (कविः) सर्वज्ञो भवान् (स्वस्तये) कल्याणाय (पवस्व) मां पवित्रयतु । (सूर्यः) सरतीति सूर्यः हे परमात्मन् ! (दृशे) ज्ञानवर्धनाय ममान्तःकरणे विराजितो-भवतु ॥

पदार्थ—(ऋधक् सोम) हे अद्वितीय परमात्मन् ! आप (संजग्मानः) सर्वत्र परिपूर्ण हैं । तथा (दिवः) प्रकाशस्वरूप हैं (कवि) सर्वज्ञ है । आप (स्वस्तये) हमारे कल्याणके लिये (पवस्व) हमको पवित्र करें । (सूर्यः) हे परमात्मन् ! (दृशे) ज्ञानकी वृद्धिकेलिये आप हमारे हृदयमें आकर विराजमान हों ॥

भावार्थ—इस मन्त्रमें परमात्माने ज्ञानका उपदेश किया है कि, हे उपासक जनो ! आप अपने ज्ञानकी वृद्धिके लिये सर्वोपरि शक्तिसे अपने मङ्गलकी उपासना सदैव करते रहें ॥

इति चतुःषष्ठितमंसूक्तमेकचत्वारिंशत्तमो वर्गश्च समाप्तः ।

यह ६४ वाँ सूक्त और ४१ वाँ वर्ग समाप्त हुआ ।

इति श्रीमदार्यमुनिनोपनिबद्धे ऋक्संहिताभाष्ये नवममण्डले
सप्तमाष्टके प्रथमोध्याय. समाप्तः ।

ऋग्वेद के ९ वें मण्डल में ७ वें अष्टक का १ ला
अध्याय समाप्त हुआ ।

अथ द्वितीयोऽध्यायः ।

ओं विश्वानि देव सवितुर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्न आसुव ॥

अथ त्रिंशदृचस्य पंचषष्ठितमस्य सूक्तस्य—

१–३० भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः–१,९,१०,१२,१३,१६,१८,२१,२२,२४, २६ गायत्री । २,११,१४,१५,२९,३० विराड्-गायत्री । ३,६–८,१९,२०,२७,२८ निचृद् गायत्री । ४,५पादनिचृद्गायत्री । १७,२३ककुम्मती गायत्री षड्जः स्वरः ॥

अथ परमात्मनो ध्यानविषयत्वं निरूप्यते ।

अब परमात्माका ध्यानविषयत्व निरूपण करते हैं ।

हिन्वन्ति सूरमुस्रयः स्वसारो जामयस्पतिम् ।
महामिन्दुं महीयुवः ॥१॥

हिन्वन्ति । सूरं । उस्रयः । स्वसारः । जामयः । पतिं ।
महां । इंदुं । महीयुवः ॥१॥

पदार्थः—(पतिं) सर्वरक्षकं तथा (महामिन्दुं) अतिप्रकाशकं (सूरं) सुवति प्रेरयति कर्मणि लोकमिति सूरः परमात्मा तं जगदीश्वरं (स्वसारः) स्वयं सरन्तीति स्वसारो

बुद्धिवृत्तयः तथा (जामयः) जायन्त्यविद्यां नाशयन्तीति जामयो ज्ञानरूपा बुद्धिवृत्तयः (उस्रयः) परमात्मविषयिण्यः (महीयुवः) ब्रह्मविषयिण्योवृत्तयः (हिन्वन्ति) परमात्मनः साक्षात्कारं कुर्वन्ति ॥

पदार्थ—(पतिं) जो सबका रक्षक है, तथा (महामिंदुं) सर्वोपरि जो सर्वप्रकाशक है (सूरं) ऐसे परमात्माको (स्वसारः) बुद्धिवृत्तियें (जामयः) ज्ञान रूप बुद्धिवृत्तियें (उस्रयः) परमात्माको विषय करने वाली (महीयुवः) ब्रह्मविषयिणी उक्त प्रकारकी वृत्तियें (हिन्वन्ति) उसका साक्षात्कार करतीं हैं ॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करता है, कि हे जीवो ! तुम जगज्जन्मादिहेतुभूत महाशक्तिको विषय करने वाली संस्कृत बुद्धियोंको उत्पन्न करो, ताकि इन्द्रियागोचर उस सूक्ष्मशक्तिका तुम ध्यान द्वारा साक्षात्कार कर सको ॥

पवमान रुचारुचा देवो देवेभ्यस्परि ।
विश्वा वसून्या विश ॥२॥

पवमान । रुचाऽरुचा । देवः । देवेभ्यः । परि । विश्वा । वसूनि । आ । विश ॥२॥

पदार्थः—(देवेभ्यस्परि देवः) सर्वोत्तमदेवः तथा यः परमेश्वरः (रुचा रुचा पवमानः) ज्ञानदीप्त्या सर्वान् पवित्रयति । एवंभूतो जगदीश्वरः (विश्वा वसूनि) सर्वैश्वर्यैःसह (आविश) ममान्तःकरणमागत्य निवसतु ॥

पदार्थ—(देवेभ्यस्परि देवः) जो सब देवोंसे उत्तम देव है, तथा जो परमात्मा (रुचा रुचा पवमानः) अपनी ज्ञानदीप्तिसे सब-

को पवित्र करता है, ऐसा परमेश्वर (विश्वा वसूनि) सब ऐश्वर्योंके साथ (आविश) मेरे अन्तःकरणमें आकर निवास करें ॥

भावार्थ—परमात्माको सर्वोपरिदेव इस लिये कथन किया गया है, कि उस दिव्यशक्तिके आगे सब शक्तियें तुच्छ हैं । इसी लिये अन्यत्र भी वेदमें कहा गया है कि "एषो देवः प्रदिशोनुसर्वाः" । यह सर्वोपरि देव सर्वत्र परिपूर्ण है, यहां उसी स्वजातीय विजातीय स्वगत-भेदशून्य देवसे यह प्रार्थना की गई है, कि हे प्रभो ! आप आकर हमारे हृदयोंको शुद्ध करें ॥

आ पवमान सुष्टुतिं वृष्टिं देवेभ्यो दुवः ।
इषे पवस्व संयतम् ॥३॥

आ । पवमान । सुऽस्तुतिं । वृष्टिं । देवेभ्यः । दुवः ।
इषे । पवस्व । संऽयतं ॥३॥

पदार्थः—(पवमान) हे सर्वपावक परमेश्वर ! भवान् (देवेभ्यः) विद्वद्भ्यः (सुष्टुतिं वृष्टिं) सुन्दरस्तुतिरूपां वेदस्य-वृष्टिं (दुवः) प्रसन्नतायै (आपवस्व) वेदवृष्टिं ददातु । अथ च (संयतं) संयमिनं मां (इषे) ऐश्वर्यं (आपवस्व) ददातु ॥

पदार्थ—(पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले ! आप (देवेभ्यः) विद्वानोंके लिये (सुष्टुतिं वृष्टिं) सुन्दर स्तुति रूप वेदकी वृष्टिको (दुवः) प्रसन्नताके लिये (आपवस्व) दीजिये । और मुझ (संयतं) संयमीको (इषे) ऐश्वर्य (आपवस्व) दीजिये ॥

भावार्थ—परमात्मा संयमी जनोंको ऐश्वर्य प्रदान करता है, और और जो लोग दिव्यगुणसम्पन्न हैं, उनको ही सुधामयी वृष्टिसे परमात्मा सिंचित करता है ॥

तात्पर्य यह है कि परमात्माकी कृपाओंके पानेके लिये प्रथम मनुष्य॰को स्वयं पात्र बनना चाहिये । अर्थात् मनुष्य अधिकारी बनके उसके ऐश्वर्योंका पात्र बने ॥

वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे ।
पवमान स्वाध्यः ॥४॥

वृषा । हि । असि । भानुना । द्युऽमंतं । त्वा । हवामहे ।
पवमान । सुऽआध्यः ॥४॥

पदार्थः—(पवमान) हे सर्वपावकपरमात्मन् ! त्वम् (भानुना) सदर्थप्रकाशकतया (वृषाहि) वेदवाण्यावर्षकःखलु (असि) असि (स्वाध्यः) सुबुद्धिमंतोवयं (द्युमन्तं) दीप्तिमन्तं (त्वा) भवन्तं (हवामहे स्तुमः ॥

पदार्थ—(पवमान) सबको पवित्र करने वाले हे जगदीश ! आप (भानुना) अच्छे अर्थको प्रकाश करनेसे (वृषाहि) अवश्य वेद रूप वाणी॰की वर्षा करने वाले (असि) हैं । (स्वाध्यः) अच्छी बुद्धि वाले हम लोग (द्युमन्तं) स्वयंप्रकाश (त्वा) आपकी (हवामहे) स्तुति करते हैं ॥

भावार्थ—जो पुरुष परमात्मपरायण होते हैं, उन्हींके परिश्रम सफल होते हैं। इस अभिप्रायसे यह वर्णन किया है, कि परमात्मा उद्योगी॰पुरुषोंके उद्योगोंको सफल करें॥

आ पवस्व सुवीर्यं मन्दमानः स्वायुध ।
इहो ष्विन्दवा गहि ॥५॥१॥

आ । पवस्व । सुऽवीर्यं । मंदमानः । सुऽआयुध । इहो इति ।
सु । इंदो इति । आ । गहि ॥५॥

पदार्थः—(इन्दो) हे जगदीश्वर ! भवान् (सुवीर्यं) अस्मत्पराक्रमं (आपवस्व) सर्वथा पवित्रयतु। यतस्त्वम् (मंदमानः) अनन्दमूर्तिरसि। अथ च (स्वायुधः) भवान् स्वयम्भूरस्ति। (इहउ) अत्रैव (सु) सुतरां (आगहि) आगत्य मामनुगृहाण॥

पदार्थ—(इंदो) हे सर्वप्रकाशक परमात्मन् ! आप (सुवीर्यं) हमारे पराक्रमको (आपवस्व) सब प्रकारसे पवित्र करें। (मंदमानः) आप आनन्द स्वरूप हैं। और (स्वायुधः) आप स्वयम्भू हैं (इहउ) यहां ही (सु) भलीभांति (आगहि) हमको आकर अनुग्रहण करिये॥

भावार्थ—इस मंत्रमें परमात्माके आह्वान करनेका तात्पर्य स्वकर्माभिमुख करनेका है, अर्थात् आप हमारे कर्मोंके अनुकूल फलप्रदान करें। परमात्मा सर्वव्यापक है, इसलिये एक स्थानसे उठकर किसी-दूसरे स्थानमें जाना उसका नहीं हो सक्ता। इस प्रकार बुलानेका तात्पर्य सर्वत्र हृदयदेशमें अवगत करनेका समझना चाहिये। कुछ अन्य नहीं॥

यदद्भिः परिषिच्यसे मृज्यमानो गभस्त्योः।
द्रुणा सधस्थमश्नुषे॥६॥

यत्। अत्ऽभिः। परिऽसिच्यसे। मृज्यमानः। गभस्त्योः। द्रुणा। सधऽस्थं। अश्नुषे॥६॥

पदार्थः—(यत्) येन कारणेन भवान् (अद्भिः) सत्कर्मभिः (परिषिच्यसे) पूजितो भवति, अस्मात्कारणात् (गभस्त्योर्मृज्यमानः) स्वशक्त्या शुद्धोस्ति। अथ च (द्रुणा) स्वशक्त्या (सधस्थं) जीवात्मानं (अश्नुषे) व्याप्तं करोति॥

पदार्थ—(यत्) जिस कारणसे आप (अद्भिः) सत्कर्मोंसे (परिषिच्यसे) पूजित होते हैं, अतः (गभस्त्योः) मृज्यमानः) स्वशक्तियोंसे जो शुद्ध है, और (द्रुणा) अपनी शक्तिसे (सधस्थं) जीवात्माको (अश्नुषे) व्याप्त करते हैं ॥

भावार्थ—जो पुरुष सत्कर्म करता है, उसकी आत्माको परमात्मा स्वशक्तियोंसे विभूषित करता है ॥

प्र सोमा॑य व्यश्व॒वत्पव॑मानाय गायत ।
म॒हे स॒हस्र॑चक्षसे ॥७॥

प्र । सोमा॑य । व्य॒श्व॒ऽवत् । पव॑मानाय । गा॒य॒त॒ । म॒हे । स॒हस्र॑ऽचक्षसे ॥७॥

पदार्थः—(व्यश्ववत) कर्मयोगीव (सहस्रचक्षसे) अनन्तशक्तिसम्पन्नं (सोमाय) परमात्मानं (प्रगायत) यूयमुपगायध्वम् । यः परमेश्वरः (महे) सर्वपूज्योस्ति । तथा (पवमानाय) सर्वपवित्रकर्तास्ति ॥

पदार्थ—(व्यश्ववत्) कर्मयोगीके समान (सहस्रचक्षसे) अनन्त शक्तिसम्पन्न (सोमाय) परमात्माको (प्रगायत) आप लोग गान करें । जो परमात्मा (महे) सर्वपूज्य और (पवमानाय) सबको पवित्र करने वाला है ॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करता है, कि हे मनुष्यो ! तुम उस पूर्ण पुरुषकी उपासना करो । जो सर्वशक्तिसम्पन्न और सब संसारका हर्ता धर्ता तथा कर्ता है । इसी अभिप्रायसे वेदमें अन्यत्र भी कहा है कि सूर्य चन्द्रमा आदि सब पदार्थोंका कर्ता एकमात्र परमात्मा है ॥

यस्य वर्णं मधुश्चुतं हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।
इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥८॥

यस्य । वर्णं । मधुऽश्चुतं । हरिं । हिन्वन्ति । अद्रिऽभिः । इंदुं । इंद्राय । पीतये ॥८॥

पदार्थः—(यस्य) यस्य परमात्मनः (वर्णं) स्वरूपं (मधुश्चुतं) आनन्ददायकं वर्तते, तं (हरिं) पापहर्तारं (इंदुं) स्वतःप्रकाशं परमात्मानं (अद्रिभिः) चित्तवृत्त्या (हिन्वन्ति) उपासका ध्यानविषयं कुर्वन्ति । (इन्द्राय) कर्मयोगिनः (पीतये) तृप्तये एतादृश्युपासना कर्तव्या नान्या ॥

पदार्थ—(यस्य) जिस परमात्माका (वर्णं) स्वरूप (मधुश्चुतं) आनन्द देने वाला है, उस (हरिं) पापको हरण करने वाले (इंदुं) स्वतःप्रकाश परमात्माको (अद्रिभिः) चित्तवृत्तियों द्वारा (हिन्वन्ति) उपासक लोग ध्यानका विषय बनाते हैं । (इंद्राय) कर्मयोगीकी (पीतये) तृप्तिके लिये इसी प्रकारकी उपासना उचित समझनी चाहिये, अन्य नहीं ॥

भावार्थ—जो लोग अपनी चित्तवृत्तियोंको निरोध करके परमात्माका साक्षात्कार करते हैं, वेही कर्मयोगी कहला सक्ते हैं अन्य नहीं ॥८॥

तस्य ते वाजिनो वयं विश्वा धनानि जिग्युषः ।
सखित्वमा वृणीमहे ॥९॥

तस्य । ते । वाजिनः । वयं । विश्वा । धनानि । जिग्युषः । सखिऽत्वं । आ । वृणीमहे ॥९॥

पदार्थः—हे परमेश्वर ! यस्त्वम् (विश्वा) समस्तानि (धनानि) धनानि (जिग्युषः) स्वाधीनानि करोषि (तस्यते) एवंभूतस्य भवतः (सखित्वं) मैत्रीभावं (वयं वाजिनः) उपासका वयं (आवृणीमहे) वृणुमः ॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! जो आप (विश्वा) सम्पूर्ण (धनानि) धन (जिग्युषः) स्वाधीन करने वाले हैं (तस्यते) उस आपके (सखित्वं) मैत्रीभावको (वाजिनः) हम उपासक लोग (आवृणीमहे) सब प्रकारसे वरण करें ॥

भावार्थ—इस मंत्रमें परमात्माके साथ मैत्रीभावका उपदेश है। तात्पर्य यह है, कि जो सर्वशक्तिसम्पन्न परमात्मासे मित्रताका भाव रखते हैं, वे लोग परमात्माके प्रियगुणोंको अपनेमें अवश्यमेव धारण करते हैं ॥९॥

वृषा पवस्व धारया मरुत्वते च मत्सरः ।

विश्वा दधान ओजसा ॥१०॥२॥

वृषा । पवस्व । धारया । मरुत्वते । च । मत्सरः । विश्वा । दधानः । ओजसा ॥१०॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! भवान् (वृषा) सर्वाभीष्टदातास्ति (धारया) स्वकीयानन्दवृष्ट्या (पवस्व) अस्मान्पवित्रय। (मरुत्वते) ज्ञानक्रियाकुशलानां विदुषां (मत्सरः) आमोददायकोऽस्ति । (च) अथ च (विश्वाः) सम्पूर्णानि लोकलोकान्तराणि (ओजसा) आत्मिकबलेन (दधानः) दधाति ॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (वृषा) आप सब कामनाओंकी वर्षा करने वाले हैं । (धारया) आनन्दकी वृष्टिसे (पवस्व) हमको पवित्र-

करो। (मरुत्वते) ज्ञान और क्रियाकुशल विद्वानोंके लिये (मत्सरः) आप आनन्दमय हैं (च) और (विश्वाः) सम्पूर्ण लोकलोकान्तरोंको (ओजसा) अपने आत्मिकबलसे (दधानः) आप धारण किये हुए हैं॥

भावार्थ—परमात्मा आनन्दस्वरूप है, उसमें दुःखका लेश भी-नहीं। उसके आनन्दको ज्ञानी तथा विज्ञानी कर्मयोगी और ज्ञान-योगी ही पा सकते हैं, अन्य नहीं ॥१०॥

तं त्वा धर्तारमोण्यो३ः पवमान स्वर्दृशम् ।
हिन्वे वाजेषु वाजिनम् ॥११॥

तं । त्वा । धर्तारं । ओण्योः । पवमान । स्वःऽदृशं । हिन्वे । वाजेषु । वाजिनं ॥११॥

पदार्थः—(ओण्योः) द्युलोकस्य तथा पृथिवीलोकस्य (धर्तारं) धारणकर्तारं (तं त्वां) उक्तगुणसम्पन्नं (पवमान) सर्वपवितारं तथा (स्वःदृशं) समस्तलोकलोकान्तरज्ञं (वाजिनं) समस्तशक्तिसम्पन्नं भवन्तं (वाजेषु) यज्ञेषु (हिन्वे) वयमाह्वयामः ॥

पदार्थ—(ओण्योः) द्युलोक और पृथिवीलोकके (धर्तारं) धारण करने वाले जो आप हैं (तं त्वां) उक्त गुणसम्पन्न आपको (पवमान) जो सबको पवित्र करनेवाले और (स्वःदृशं) जो सब लोकलोकान्तरोंके ज्ञाता हैं, ऐसे (वाजिनं) सर्वशक्तिसम्पन्न आपको (वाजेषु) सब यज्ञोंमें (हिन्वे) हम लोग आह्वान करते हैं ॥

भावार्थ—जो लोग योगयज्ञ, ध्यानयज्ञ, विज्ञानयज्ञ, संग्रामयज्ञ और ज्ञानयज्ञ इत्यादि सब यज्ञोंमें एकमात्र परमात्माका आश्रयण करते-

हैं, वे लोग अवश्यमेव कृतकार्य होते हैं। तात्पर्य यह है, कि परमात्माकी सहायता बिना किसी भी यज्ञकी पूर्ति नहीं होती। इसलिये मनुष्योंको चाहिये, कि वे सदैव परमात्माकी सहायता लेकर अपने उद्देश्यकी पूर्ति करें ॥११॥

अया चित्तो विपानया हरिः पवस्व धारया।
युजं वाजेषु चोदय ॥१२॥

अया। चित्तः। विपा। अनया। हरिः। पवस्व। धारया। युजं। वाजेषु। चोदय ॥१२॥

पदार्थः—हे सर्वबलस्वायत्तकारिन् परमेश्वर! भवान् (धारया) आनन्दवृष्ट्या (पवस्व) अस्मान्पवित्रयतु। या आनन्दवृष्टिः (चित्तः) अद्भुता। तथा (अया) कर्मशीलता-दात्री, अथच (विपा) शुभकृत्येषु प्रेरयित्री वर्तते (अनया) एतादृश्या वृष्ट्या (पवस्व) अस्मान्पवित्रयतु (वाजेषु) यज्ञेषु (युजं) युक्तं मां (चोदय) शुभकर्मणि प्रेरयतु ॥

पदार्थ—(हरिः) हे सम्पूर्ण बलोंको स्वाधीन रखने वाले परमात्मन्! आप (धारया) आनन्दकी वृष्टिसे हमको (पवस्व) पवित्र करें। जो आनन्दकी वृष्टि (चित्तः) अद्भुत है (अया) और कर्मशीलता देने वाली है। और (विपा) शुभकार्योंमें प्रेरणा करनेवाली है, (अनया) इससे (पवस्व) आप हमको पवित्र करें (वाजेषु) यज्ञोंमें (युजं) युक्त मुझको (चोदय) सत्कर्मकी प्रेरणा करें ॥

भावार्थ—जो लोग सत्कर्मी बननेके लिये परमात्मासे प्रार्थना करते हैं, परमात्मा उन्हें अवश्यमेव शुभकर्मोंमें लगाता है ॥१२॥

आ न इन्दो महीमिषं पवस्व विश्वदर्शतः।
अस्मभ्यं सोम गातुवित् ॥१३॥

आ। नः। इंदो इति। महीं। इषं। पवस्व। विश्वऽदर्शतः।
अस्मभ्यं। सोम। गातुऽवित्॥१३॥

पदार्थः—(इंदो) सर्वैश्वर्यसम्पन्नपरमात्मन्! भवान् (विश्वदर्शतः) सकलसंसारदीपकोऽस्ति। अथच (महीमिषं) समस्तैश्वर्यसम्पन्नोऽस्ति। (सोम) सर्वजनकपरमात्मन्! भवान् (अस्मभ्यं) अस्माकं (गातुवित्) सर्वज्ञोऽस्ति (नः) अस्मान् (आपवस्व) सर्वथा पवित्रयतु॥

पदार्थ—(इंदो) हे सर्वप्रकाशक परमात्मन्! आप (विश्वदर्शतः) सम्पूर्ण विश्वके प्रकाशक है। और (महीमिषं) सर्वैश्वर्यसम्पन्न हैं। (सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन्! आप (अस्मभ्यं) हम लोगोंके (गातुवित्) सम्पूर्ण ज्ञातव्य पदार्थोंके ज्ञाता हैं (नः) हमको (आपवस्व) सब प्रकारसे पवित्र करिए॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करता है कि, हे मनुष्यो! तुमको अपनी पवित्रताकी प्रार्थना केवल उसी देवसे करनी चाहिये, जो सब ब्रह्माण्डोंका ज्ञाता, और सर्वोत्पादक है॥१३॥

आ कलशा अनूषतेन्दो धाराभिरोजसा।
एन्द्रस्य पीतये विश॥१४॥

आ। कलशाः। अनूषत। इंदो इति। धाराभिः। ओजसा।
आ। इंद्रस्य। पीतये। विश॥१४॥

पदार्थः—(इंदो) सर्वप्रकाशकर्तः परमात्मन्! त्वं (धाराभिः) अमोदवृष्टिभिः (इन्द्रस्य पीतये) कर्मयोगिनस्तृप्तये-

(कलशाः) कर्मयोगिनामन्तःकरणेषु (आविश) परितःप्रविश। अथ-च (ओजसा) स्वप्रकाशेन कर्मयोगिनं (आनूषत) विभूषय ॥

पदार्थ—(इंदो) हे सर्वप्रकाशक परमात्मन् ! आप (धाराभिः) आनन्दकी वृष्टि द्वारा (इन्द्रस्य पीतये) कर्मयोगीकी तृप्तिकेलिये (कलशाः) उसके अन्तःकरणमें (आविश) सब ओरसे प्रवेश करें। और (ओजसा) अपने प्रकाशसे कर्मयोगीको (आनूषत) विभूषित करें ॥

भावार्थ—जो पुरुष कर्म करनेमें तत्पर रहते हैं, अर्थात् उद्योगी हैं, परमात्मा उनको अपने प्रकाशसे परमोद्योगी बनाता है ॥१४॥

यस्यं ते मद्यं रसं तीव्रं दुहन्त्यद्रिभिः ।
स पंवस्वाभिमातिहा ॥१५॥३॥

यस्यं । ते । मद्यं । रसं । तीव्रं । दुहन्ति । अद्रिऽभिः । सः । पवस्व । अभिमातिऽहा ॥१५॥

पदार्थः—(यस्य) यस्य (ते) तव (मद्यं) आह्लादनीयं (तीव्रं) उत्कटम् (रसं) रसं कर्मयोगिनः (अद्रिभिः) उद्योगकर्तृशक्तिभिः (दुहन्ति) पूर्णतया दुह्यते । (सः) सः (अभिमातिहा) विघ्नविनाशको भवान् (पवस्व) अस्मान्पवित्रयतु ॥

पदार्थ—(यस्य) जिस (ते) आपके (मद्यं) आह्लादकारक (तीव्रं) उत्कट (रसं) रसको कर्मयोगी लोग (अद्रिभिः) उद्योगरूप शक्तियोंसे (दुहन्ति) पूर्ण रूपसे दुहते हैं, (सः) वह (अभिमातिहा) विघ्नोंके हनन करने वाले आप (पवस्व) हमको पवित्र करें ॥

भावार्थ—कर्मयोगियोंके सब विघ्नोंको हनन करने वाला परमात्मा, उनके उद्योगको सफल करता है ॥१५॥

राजा मेधाभिरीयते पवमानो मनावधि ।
अन्तरिक्षेण यातवे ॥१६॥

राजा । मेधाभिः । ईयते । पवमानः । मनौ । अधि । अंतरिक्षेण । यातवे ॥१६॥

पदार्थः—(राजा) राजते प्रकाशतेति राजा सर्वप्रकाशकः परमात्मा (मेधाभिः) बुद्धिभिः (ईयते) प्राप्यते । परमात्मा (पवमानः) सर्वपवितास्ति । तथा (मनावधि) यज्ञेषु पवित्रतासम्पादकोस्ति । (अंतरिक्षेण यातवे) अथ च परलोकयात्रायां सहायकोस्ति ॥

पदार्थ—(राजा) परमात्मा (मेधाभिः) बुद्धिसे (ईयते) प्राप्त होता है (पवमानः) सबको पवित्र करने वाला है (मनावधि) यज्ञोंमें पवित्रता देने वाला है तथा (अन्तारक्षेण यातवे) परलोकयात्रामें सहायक है॥

भावार्थ—आध्यात्मिक, आधिभौतिक, और आधिदैविक इत्यादि सब यज्ञोंमें परमात्मा ही यज्ञदेव है, और याजकोंको पवित्र करनेवाला है । तथा परलोकयात्रामें जीवका एकमात्र सहारा परमात्मा ही है । उक्त गुणसम्पन्न परमात्माकी उपासना एकमात्र संस्कृत बुद्धिद्वारा ही करनी चाहिये ॥१६॥

आ नं इन्दो शतग्विनं गवां पोषं स्वश्व्यम् ।
वहा भगत्तिमूतये ॥१७॥

आ । नः । इंदो इति । शतऽग्विनं । गवां । पोषं । सुऽअश्व्यं ।
वह । भगत्तिं । ऊतये ॥१७॥

पदार्थः—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! (भगत्तिं) अस्मद्भक्तेः (ऊतये) रक्षार्थं (नः आवह) अस्मभ्यं प्राप्तो भवतु । अथ च (गवां) इन्द्रियाणां (शतग्विनं) सहस्रगुणां (पोषं) पुष्टिं तथा (स्वश्व्यं) गतिशीलां पुष्टिं मह्यं भवान् ददातु ॥

पदार्थ—(इंदो) हे प्रकाशस्वरूप ! (भगत्तिं) हमारी भक्तिकी (ऊतये) रक्षाके लिये हे परमात्मन् ! (न आवह) आप हमको प्राप्त हों । और (गवां) इन्द्रियोंकी (शतग्विनं) सहस्रगुणी (पोषं) पुष्टि (स्वश्व्यं) जो गतिशील है, ऐसी पुष्टि आप हमको दें ॥

भावार्थ—जो लोग परमात्माकी अनन्यभक्ति करते हैं, परमात्मा उनकी सब प्रकारसे रक्षा करता है । और उनकी इन्द्रियोंको सहस्र प्रकारकी शक्तियोंसे सम्पन्न करता है । अर्थात् ज्ञान विज्ञानादि शक्तियोंसे उनकी सहस्र प्रकारकी शक्तियें बढ़ जाती हैं । इसीका नाम इन्द्रियोंकी सहस्रशक्ति है ॥१७॥

आ नः सोम सहो जुवो रूपं न वर्चसे भर ।
सुष्वाणो देववीतये ॥१८॥

आ । नः । सोम । सहः । जुवः । रूपं । न । वर्चसे । भर ।
सुस्वानः । देवऽवीतये ॥१८॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (देववीतये) देवमार्गप्राप्तये (नः) अस्मान् (आभर) सर्वविधाभ्युदयैः-

परिपूरय । भवान् सर्वेषां (सुखानः) उत्पत्तिस्थानमस्ति । अथ च (सहः) शत्रुनाशकोस्ति तथा (जुवः) शीघ्रगतिशीलो भवान् (वर्चसे) प्रकाशाय (रूपं न) स्वरूपं वितरतु ॥

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! (देववीतये) देवमार्गकी प्राप्तिके लिये (नः) हमको (आभर) सब प्रकारके अभ्युदयोंसे आप भरपूर करें । आप सबके (सुखानः) उत्पत्तिस्थान हैं । और (सहः) शत्रुबलनाशक (जुवः) शीघ्रगति वाले आप (वर्चसे) प्रकाशके लिये (रूपं न) रूप हमको दें ॥

भावार्थ—परमात्मा जिन पुरुषोंमें दैवी सम्पत्तिके गुण देता है, उनको तेजस्वी बनाता है । और सब प्रकारके ऐश्वर्योंका भण्डार बनाकर उनको सर्वोपरि बनाता है ॥१८॥

अर्षा सोम द्युमत्तमोऽभि द्रोणानि रोरुवत् ।
सीदञ्छ्येनो न योनिमा ॥१९॥

अर्ष । सोम । द्युमत्ऽतमः । अभि । द्रोणानि । रोरुवत् । सीदन् । श्येनः । न । योनिं । आ ॥१९॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! भवान् (श्येनो न) विद्युदिव गतिशीलोस्ति । (द्रोणानि) समस्तलोकेषु (रोरुवत्) गतिशीलः सन् सर्वत्र विराजितो भवतु । तथा (द्युमत्तमः) भवान् स्वयं प्रकाशोस्ति । अथ च (योनिं) मदन्तःकरणेषु (सीदन्) विराजमानः (अभ्यर्ष) मम हृदयं पवित्रयतु ॥

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! आप (श्येनः) विद्युत्के (न) समान गतिशील हैं । (द्रोणानि) सम्पूर्ण लोकलोकान्तरोंमें

(रोरुवत्) गतिशील होकर आप सर्वत्र विराजमान हैं । और (द्युमत्तमः) आप स्वयंप्रकाश हैं । (योनिं) हमारे हृदय स्थानमें (आसीदन्) विराजमान होकर (अभ्यर्ष) हमारे हृदयको शुद्ध करें ॥

भावार्थ—परमात्मा स्वयंप्रकाश है, और उसीके प्रकाशसे सब-पदार्थ प्रकाशित होते हैं ॥१९॥

अप्सा इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।
सोमो अर्षति विष्णवे ॥२०॥४॥

अप्साः । इंद्राय । वायवे । वरुणाय । मरुत्ऽभ्यः । सोमः । अर्षति । विष्णवे ॥२०॥

पदार्थः—(सोमः) सर्वपूज्यः परमात्मा (इंद्राय वायवे) गतिशीलकर्मयोगिविदुषे तथा (मरुद्भ्यः) पदार्थज्ञेभ्यः अथ च (वरुणाय) विद्याबलेन सर्वाच्छादकाय (विष्णवे) ज्ञानयोगिविदुषे (अप्साअर्षति) स्वज्ञानरूपगत्या प्राप्तो भवति ॥

पदार्थ—(सोमः) सर्वपूज्य परमात्मा (इंद्राय वायवे) कर्मयोगी विद्वानोंके लिये (मरुद्भ्यः) पदार्थविद्यावेत्ता विद्वानोंके लिये (वरुणाय) अपने विद्याबलसे सबको अच्छादन करने वाले विद्वान्के लिये और (विष्णवे) ज्ञानयोगी विद्वान्के लिये (अप्सा अर्षति) अपनी ज्ञानरूपी गतिसे प्राप्त होता है ॥

भावार्थ—जो लोग ज्ञानयोग कर्मयोग इत्यादि योगोंसे परमात्माकी आज्ञाका पालन करते हैं, उनको परमात्मा अपनी ज्ञानगतिसे अवश्यमेव प्राप्त होता है ॥२०॥

इषं तोकाय नो दधदस्मभ्यं सोम विश्वतः ।
आ पवस्व सहस्रिणम् ॥२१॥

इषं । तोकाय । नः । दधत् । अस्मभ्यं । सोम । विश्वतः ।
आ । पवस्व । सहस्रिणं ॥२१॥

पदार्थः—(सोम) हे जगदीश ! भवान् (नस्तोकाय) अस्मत्संतानेभ्यः (सहस्रिणं) वहुविधधनानि (विश्वतः) परितः (दधत) धारयतु । अथ च (अस्मभ्यं) मां (इषं) सर्वविधैश्वर्यं ददातु । तथा (आपवस्व) सर्वथा पवित्रयतु ॥

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! आप (नः) हमारे (तोकाय) संतानोंके लिये (सहस्रिणं) अनन्त प्रकारके धन (विश्वतः) सब ओरसे (दधत्) धारण कराएँ । और (अस्मभ्यं) हमको सब प्रकारका ऐश्वर्य दें । तथा (आपवस्व) सब प्रकारसे पवित्र करें ॥

भावार्थ—इस मंत्रमें परमात्मासे अभ्युदयप्राप्तिकी प्रार्थना कीगई है ॥२१॥

अथ सोमसंज्ञकस्येश्वरस्योपासकानां विदुषां गुणा वर्ण्यन्ते ॥

अब सोमनामक परमेश्वरकी उपासना करने वाले विद्वानोंके गुणोंका वर्णन करते हैं ॥

ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे ।
ये वादः शर्यणावति ॥२२॥

ये । सोमासः । पराऽवति । ये । अर्वाऽवति । सुन्विरे । ये ।
वा । अदः । शर्यणाऽवति ॥२२॥

पदार्थः—(ये सोमासः) सौम्यस्वभाववन्त इमे विद्वांसः (परावति) परब्रह्मशक्तौ (ये) ये (अर्वावति) प्रकृतिशक्तौ तथा (ये) ये (वा अदः शर्यणावति) संसारशक्तावस्यां (सुन्विरे) ये कुशलास्तान् परमेश्वरः पवित्रयतु ॥

पदार्थ—(ये सोमासः) जो सौम्यस्वभाव वाले विद्वान् (परावति) परब्रह्म रूप शक्तिमें (ये) और जो (अर्वावति) प्रकृतिरूप शक्तिमें, (ये) जो (वा) और (अदः शर्यणावति) इस संसाररूप-शक्तिमें, (सुन्विरे) निपुण किये गए हैं, इन सब विद्वानोंको परमात्मा पवित्र करें ॥

भावार्थ—इस मंत्रका यह तात्पर्य है, कि परमात्मा सब प्रकार-के विद्वानोंको पवित्र करता है ॥२२॥

य आर्जीकेषु कृत्वसु ये मध्ये पस्त्यानाम् ।
ये वा जनेषु पञ्चसु ॥२३॥

ये । आर्जीकेषु । कृत्वऽसु । ये । मध्ये । पस्त्याना । ये । वा । जनेषु । पञ्चऽसु ॥२३॥

पदार्थः—(ये) ये विद्वांसः (आर्जीकेषु कृत्वसु) सत्कर्मसु तथा (ये) ये खलु (पस्त्यानां मध्ये) गृहकर्मसु-कुशलास्सान्त (येवा) अथ ये खलु (जनेषु पञ्चसु] पञ्च-विधेषु मनुष्येषु शिक्षितुं शक्नुवन्ति, ते सर्वे अस्माकं कल्याण-कारिणो भवन्तु ॥

पदार्थ—(ये) जो विद्वान् (आर्जीकेषु कृत्वसु) सत्कर्मोंमे और (ये) जो विद्वान् (पस्त्यानां मध्ये) गृहकर्मोंमें चतुर हैं, (येवा) और-

जो [जनेषु पञ्चसु) पांच प्रकारके मनुष्योंमें शिक्षा दे सक्ते हैं, वे सब हमारे लिये कल्याणकारी हों ॥

भावार्थ——इस मंत्रमें विद्वानोंके गुणोंका वर्णन किया है । पांच-प्रकारके मनुष्योंकी विद्याका तात्पर्य यहां यह है कि, जो विद्वान् ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य, और शूद्र इन चारों वर्णोंमें उपदेश कर सक्ते हैं, और पांचवें उन मनुष्योंमें जो सर्वथा असंस्कारी हैं, अर्थात् दस्युभावको प्राप्त हैं, इन सबको सुधार सक्ते हैं, वे प्रजाके लिये सदैव कल्याणकारी होते हैं ॥२३॥

ते नो॑ वृ॒ष्टिं दि॒वस्परि॒ पव॑न्तामा सु॒वीर्य॑म् ।
सु॒वा॒ना दे॒वास॒ इन्द॑वः ॥२४॥

ते । नः॒ । वृ॒ष्टिम् । दि॒वः । परि॑ । पव॑न्ताम् । आ । सु॒ऽवीर्य॑म् ।
सु॒वा॒नाः । दे॒वासः॑ । इन्द॑वः ॥२४॥

पदार्थः—[ते] ते विद्वांसः [नः] अस्मभ्यं [वृष्टिं] वृष्टिं [दिवस्परि] द्युलोकतोवर्षयन्तु । [इन्दवः] ऐश्वर्य-सम्पन्नाः [देवासः] दिव्यगुणाः पण्डिताः [सुवीर्यं] पराक्रमं [सुवानाः] उत्पादयन्तः (आपवंतां) सर्वथास्मान्पवित्रयन्तु ॥

पदार्थ——(ते) वे विद्वान् (नः) हमारे लिये (वृष्टिं) वृष्टिको (दिवस्परि) द्युलोकसे बरसायें । (इंदवः) ऐश्वर्य वाले (देवासः) दिव्य-गुण सम्पन्न विद्वान् (सुवीर्यं) पराक्रमको (सुवानाः) पैदा करते हुए (आपवंतां) हमको सब प्रकारसे पवित्र करें ॥

भवार्थ——द्युलोकसे वृष्टि करनेका तात्पर्य यहां हिमालय आदि-दिव्यस्थानोंसे जलकी धाराओंसे सींच देनेका है । जो विद्वान् व्यव-हार विषयके सब विद्याओंके वेत्ता होते हैं, वे अपने विद्याबलसे प्रजा-में सुवृष्टि करके अद्भुत पराक्रमको उत्पन्न कर देते हैं । उक्त विद्वानोंसे-शिक्षा लेकर सुरक्षित होनेका उपदेश यहां परमात्माने किया है ॥२४॥

पवते हर्यतो हरिर्गृणानो जमदग्निना ।
हिन्वानो गोरधि त्वचि ॥२५॥५॥

पवते । हर्यतः । हरिः । गृणानः । जमत्ऽअग्निना । हिन्वानः । गोः । अधि । त्वचि ॥ २५ ॥

पदार्थः—(हरिः) परमेश्वरः (हर्यतः) विदुषामभिलाषुकः (जमदग्निना) अंतश्चक्षुषा (गृणानः) गृहीतः यः (अधित्वचि) शरीरे (गोः) इन्द्रियाणां (हिन्वानः) निर्मातास्ति स जगदीश्वरः (पवते) ज्ञानद्वाराऽस्मान् पवित्रयति ॥

पदार्थ—(हरिः) परमात्मा (हर्यतः) विद्वानोंको चाहने वाला (जमदग्निना) अंतः चक्षुसे (गृणानः) ग्रहण किया हुआ जो (अधित्वचि) शरीरमें (गोः) इन्द्रियोंकी (हिन्वानः) रचना करनेवाला है, वह (पवते) ज्ञानद्वारा हमको पवित्र करता है ॥

भावार्थ—इसमें परमात्मासे इस बातकी प्रार्थना की है, कि आप सर्वोपरि विद्वान् उत्पन्न करके हमारा कल्याण करें ॥२५॥

प्र शुक्रासो वयोजुवो हिन्वानासो न सप्तयः ।
श्रीणाना अप्सु मृञ्जत ॥२६॥

प्र । शुक्रासः । वयःऽजुवः । हिन्वानासः । न । सप्तयः । श्रीणानाः । अप्ऽसु । मृंजत ॥ २६ ॥

पदार्थः—(शुक्रासः) वीर्यवन्तः (वयोजुवः) अन्नादिपदार्थविद्याविदः (श्रीणानाः) विद्यया संस्कृता विद्वांसः ऋत्विग्भिः

(मृंजत) स्वीक्रियन्ते (न) यथा (अप्सु हिन्वानासः, जलशुद्धानि (सप्तयः) इन्द्रियाणां सप्तद्वाराणि (प्र) शुभगुणान्ददते ॥

पदार्थ—(शुक्रासः) वीर्यवाले (वयोजुवः) अन्नादिकोंकी विद्या जानने वाले (श्रीणानाः) विद्याद्वारा संस्कृत हुए उक्त प्रकारके विद्वान् ऋत्विक् लोगों द्वारा (मृंजत) वरण किये जाते हैं । (न) जैसे कि (अप्सु हिन्वानासः) जलोंमें शुद्ध किये हुए (सप्तयः) इन्द्रियोंके सात द्वार (प्र) शुभगुणोंको देते हैं ॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करता है, कि हे जीवो ! जिसप्रकार ज्ञानेन्द्रियोंके सप्तद्वार जलमें शुद्ध किये हुए सुन्दर ज्ञानके साधन बनते हैं, इसी प्रकार यज्ञोंमें वर्णन किये हुए विद्वान् ज्ञानद्वारा तुम्हारे कल्याणकारी होते हैं ॥२६॥

तं त्वा सुतेष्वाभुवो हिन्विरे देवतातये ।
स पवस्वानया रुचा ॥२७॥

तं । त्वा । सुतेषु । आऽभुवः । हिन्विरे । देवऽतातये । सः । पवस्व । अनया । रुचा ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (तं) पूर्वोक्तगुणसम्पन्नं (त्वा) त्वां (सुतेषु) सुयज्ञेषु (आभुवः) ऋत्विजः (देवतातये) विघ्नविनाशनाय (हिन्विरे) तवोपासनां कुर्वते । (सः) स भवान् (अनया रुचा) प्रागुक्तज्ञानशक्त्या (पवस्व) अस्मान्पवित्रयतु ॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (तं) उक्तगुणसम्पन्न (त्वा) आपको (सुतेषु) सुन्दर करने वाले यज्ञोंमें (आभुवः) ऋत्विक् लोग (देवतातये) विघ्नोंके विनाशके लिये (हिन्विरे) आपकी उपासना करते हैं । (सः) वह उक्तगुणसम्पन्न आप (अनया रुचा) पूर्वोक्त ज्ञानकी शक्तिसे (पवस्व) हमको पवित्र करें ॥

भावार्थ—जो परमात्मा अपने ज्ञानप्रदीपसे भक्तोंके हृदयको पवित्र करते हैं, वे हमारे अन्तःकरणको पवित्र करें ॥२७॥

आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे ।
पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥२८॥

आ । ते । दक्षं । मयःऽभुवं । वह्निं । अद्य । वृणीमहे ।
पांतं । आ । पुरुऽस्पृहं ॥ २८ ॥

पदार्थः—(मयोभुवं) सर्वसुखदातारं (पुरुस्पृहं) सर्वजनभजनीयं (पांतं) सर्वरक्षकं (दक्षं) सर्वज्ञं (वह्निं) प्रकाशस्वरूपं पूर्वोक्तगुणसम्पन्नं (ते) भवन्तं (अद्य) अद्यैव (आवृणीमहे) सर्वथा वयं स्वीकुर्मः ॥

पदार्थ—(मयोभुवं) जो सब सुखोंके देने वाले आप हैं, (पुरुस्पृहं) जो सब पुरुषोंसे भजनीय हैं (पांतं) सर्वरक्षक हैं, (दक्षं) सर्वज्ञ हैं, (वह्निं) प्रकाशस्वरूप हैं, उक्तगुण सम्पन्न (ते) आपको (अद्य) आज (आवृणीमहे) हम सब प्रकारसे स्वीकार करते हैं ॥

भावार्थ—जो उपासक उक्त गुणसम्पन्न परमात्माकी उपासना करते हैं, वे सब प्रकारसे शुद्ध होकर परमात्मभावको प्राप्त होते हैं ॥२८॥

आ मन्द्रमा वरेण्यमा विप्रमा मनीषिणम् ।
पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥२९॥

आ । मंद्रं । आ । वरेण्यं । आ । विप्रं । आ । मनीषिणं ।
पांतं । आ । पुरुऽस्पृहं ॥ २९ ॥

पदार्थः--हे जगदीश्वर ! (मंद्रं) स्तुत्यं (वरेण्यं) वरणीयं (विप्रं) मेधाविनं (मनीषिणं) मनःस्वामिनं (पुरुस्पृहं) सर्ववरणीयं (पांतं) सर्वपवितारं भवन्तं जगदीश्वरं (आ) आवृणीमहे स्वीकुर्मोवयम् ॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (मंद्रं) जो आप सर्वोपरि स्तुति करनेयोग्य हैं, (वरेण्यं) वरण करने योग्य हैं, (विप्रं) मेधावी हैं, (मनीषिणं) मनके स्वामी हैं, (पुरुस्पृहं) सब पुरुषोंके कामना करने योग्य हैं, (पांतं) सबके रक्षक हैं, ऐसे आपको (आ) "आवृणीमहे" हम लोग सब प्रकारसे स्वीकार करते हैं ॥

भावार्थ—उक्त गुणसम्पन्न परमात्माका वरण करना, अर्थात् सब प्रकारसे स्वीकार करना इस मंत्रमें बताया गया है । "आ" शब्द यहां प्रत्येकगुणसम्पन्न परमात्माको भलीभांति वर्णन करनेके लिये आया है ॥२९॥

आ र॒यिमा सु॑चे॒तुन॒मा सु॑क्रतो त॒नूष्वा ।
पान्त॒मा पु॑रु॒स्पृह॑म् ॥३०॥६॥

आ । र॒यिं । आ । सु॒ऽचे॒तुन॑म् । आ । सु॒क्र॒तो॒ इति॑ सुऽक्रतो । त॒नूषु॑ । आ । पान्त॑म् । आ । पु॒रु॒ऽस्पृह॑म् ॥ ३० ॥

पदार्थः--(सुक्रतो) हे सर्वयज्ञाधिपते परमेश्वर ! भवान् (रयिं) धनं तथा (सुचेतुनं) शुभज्ञानं (तनूषु) मत्संततिषु (आ) आ ददातु । भवान् (पुरुस्पृहम्) सर्वेषामुपास्यदेवोस्ति । तथा (पातं) सर्वपविताचास्ति । (सुक्रतो) हे शुभकर्मिन् ! त्वमेव मयोपासनीयोसि ॥

पदार्थ——(सुक्रतो) हे सर्वयज्ञाधिपते परमात्मन् ! आप (रयिं) धनको (सुचेतनं) और सुन्दर ज्ञानको (तनूषु) हमारी संतानोमें (आ) सब प्रकारसे दें । आप (पुरुस्पृहं) सबके उपास्य देव हैं । (पांतं) सबको पवित्र करने वाले हैं (सुक्रतो) हे शोभन कर्मों वाले परमात्मन् ! आप ही हमारे उपास्य देव हैं ॥

भावार्थ——इस मंत्रमें नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव सर्वरक्षक पतितपावन परमात्माके गुणोंका वर्णन किया गया है । और उसको एकमात्र उपास्य देव माना है ॥३०॥

इति पञ्चषष्ठितमं सूक्तं षष्ठोवर्गश्च समाप्तः ।

यह ६५ वां सूक्त और ६ वां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ त्रिंशदृचस्य षट्षष्ठितमस्य सूक्तस्य—

१--३० शतं वैखानसा ऋषिः ॥ १--१८, २२--३० पवमानः सोमः । १९-२१ अग्निर्देवता ॥ छन्दः-१ पादनिचृद्गायत्री । २,३,५-८,१०,११,१३,१५-१७,१९,२०,२३, २४,२५,२६,३०,गायत्री ।४,१४,२२,२७ विराड् गायत्री ।९,१२,२१,२८,२९ निचृद्गायत्री १८पादनिचृदनुष्टुप् । स्वरः-१-१७ १९-३० षड्जः । १८ गान्धारः ॥

अथेश्वरगुणा वर्ण्यन्ते ।

अब ईश्वरके गुणोंका वर्णन करते हैं ।

पवस्व विश्वचर्षणेऽभि विश्वानि काव्या ।
सखा सखिभ्य ईड्यः ॥ १ ॥

पव॑स्व । वि॒श्व॒ऽच॒र्ष॒णे॒ । अ॒भि । विश्वा॑नि । का॒व्या॑ । सखा॑ । सखि॑ऽभ्यः । ईड्यः॑ ॥१॥

पदार्थः—(विश्वचर्षणे) हे जगदीश्वर ! (विश्वानि-काव्या) सर्वेषां कवीनां भावान् (अभि) परितः प्रदायास्मान् (पवस्व) पवित्रय । अथ च (सखिभ्यः) मित्रेभ्यः (सखा) मित्रमसि । तथा (ईड्यः) सर्वैः पूजनीयोसि ॥

पदार्थ—(विश्वचर्षणे) हे सर्वज्ञ परमात्मन् ! (विश्वानि, काव्या) सम्पूर्ण कवियोंके भावको (अभि) सब ओरसे प्रदान करके हमको आप (पवस्व) पवित्र करें । और (सखिभ्यः) मित्रोंके लिये आप (सखा) मित्र हैं (ईड्यः) तथा सर्वपूज्य हैं ॥

भावार्थ—जो लोग परमात्मासे मित्रके समान प्रेम करते हैं, अर्थात् जिनको परमात्मा मित्रके समान प्रिय लगता है, उनको परमात्मा कवित्वकी अद्भुत शक्ति देता है ॥१॥

ताभ्यां॒ विश्व॑स्य राजसि॒ ये प॑वमान॒ धाम॑नी ।
प्र॒ती॒ची सो॑म त॒स्थतुः॑ ॥ २ ॥

ताभ्या॑म् । विश्व॑स्य । रा॒ज॒सि॒ । ये इति॑ । प॒व॒मा॒न॒ । धाम॑नी॒ इति॑ । प्र॒ती॒ची इति॑ । सो॒म॒ । त॒स्थतुः॑ ॥२॥

पदार्थः—(सोम) हे परमेश्वर ! भवान् (ताभ्यां) कर्मज्ञानाभ्यां (विश्वस्य) समस्तसंसारस्य (राजसि) प्रकाशं करोति (पवमान) सर्वपवित्रयितः परमात्मन् ! (ये धामनी) ज्ञानकर्मणी (प्रतीची) प्राचीनेस्तः ते (तस्थतुः) उपजग्मतुः ॥

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! आप (ताभ्यां) ज्ञान और कर्म दोनों द्वारा (विश्वस्य) सम्पूर्ण विश्वका (राजसि) प्रकाश करते हैं । (पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (ये धामनी) जो ज्ञान कर्म (प्रतीची) प्राचीन हैं, वे (तस्थतुः) हममें विराजमान हों ॥

भावार्थ—परमात्मा सब लोकलोकान्तरोंमें विराजमान है । ज्ञान क्रिया और बल, यह तीनों प्रकारके उसके प्राचीन धाम है, जिनसे वह सबकी प्रेरणा करता है ॥२॥

परि धामानि यानि ते त्वं सोमासि विश्वतः ।
पवमान ऋतुभिः कवे ॥ ३ ॥

परि । धामानि । यानि । ते । त्वं । सोम । असि । विश्वतः । पवमान । ऋतुऽभिः । कवे ॥३॥

पदार्थः—(कवे) हे सर्वज्ञ जगदीश्वर ! (पवमान) सर्वपवित्रकर्तः ! भवान् (ऋतुभिः) वसन्तादिऋतूनां परिवर्तनेन नव्यान्भावानुत्पादयति । अथ च (यानि ते) यानि तव (धामानि) लोकलोकान्तराणि (परि) परितस्सन्तितानि (विश्वतः) सर्वथा (त्वं सोमासि) त्वमुत्पादकोसि ॥

पदार्थ—(कवे) हे सर्वज्ञ परमात्मन् ! (पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले ! आप (ऋतुभिः) बसन्तादि ऋतुओंके परिवर्तनसे संसारमें नये नये भाव उत्पन्न करते हैं । और (यानि, ते) जो तुम्हारे (धामानि) लोकलोकान्तर (परि) सब ओर हैं, उनको (विश्वतः) सब प्रकारसे (सोमासि) आप उत्पन्न करने वाले हैं ॥

भावार्थ—परमात्मा उत्पत्ति, स्थिति, तथा प्रलय तीनों प्रकार-की क्रियाओंका हेतु है। अर्थात् उसीसे संसारकी उत्पत्ति, और उसी-में स्थिति और उसी से प्रलय होता है ॥३॥

पवस्व जनयन्निषोऽभि विश्वानि वार्या ।
सखा सखिभ्य ऊतये ॥ ४ ॥

पवस्व । जनयन् । इषः । अभि । विश्वानि । वार्या ।
सखा । सखिऽभ्यः । ऊतये ॥४॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर! (विश्वानि) सर्वे पदार्थाः (वार्या) ये वरणीयास्सन्ति (अभि) तान्मह्यमभिदेहि । अथ च (इषः) ऐश्वर्यं (जनयन्) उत्पादयन् (पवस्व) अस्मान् पवित्रयतु । (सखिभ्यः) मित्राणां (ऊतये) रक्षायै (सखा) मित्रमसि ॥

पदार्थ—हे परमात्मन्! (विश्वानि) सब पदार्थ (वार्या) वरणीय (अभि) सब ओरसे आप हमें दें। और (इषः) ऐश्वर्यको (जनयन्) पैदा करते हुए (पवस्व) आप हमको पवित्र करें (सखिभ्यः) मित्रोंकी (ऊतये) रक्षाके लिये (सखा) आप मित्र हैं ॥

भावार्थ—जो लोग परमात्मपरायण होते हैं परमात्मा उन्हें सब-प्रकारके आनन्दोंसे विभूषित करता है ॥४॥

तव शुक्रासो अर्चयो दिवस्पृष्ठे वि तन्वते ।
पवित्रं सोम धामभिः ॥ ५ ॥ ७ ॥

तव॑ । शुक्रास॑: । अर्चय॑: । दि॒वः । पृ॒ष्ठे । वि । त॒न्व॒ते॒ ।
प॒वित्र॑म् । सो॒म॒ । धाम॑ऽभिः ॥५॥

पदार्थः—(सोम) हे परमेश्वर ! (धामभिः) भवान् स्वशक्तिभिः (पवित्रं) पवित्रोऽस्ति (तव) भवतः (शुक्रासः) बलवत्यः (अर्चयः) प्रकाशोर्मयः (दिवस्पृष्ठ) द्युलोकोपरि (वितन्वते) विस्तृताः सन्ति ॥

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! (धामभिः) आप अपनी-शक्तियोंसे (पवित्रं) पवित्र हैं । (तव) तुम्हारी (शुक्रासः) बल वाली (अर्चयः) प्रकाशकी लहरें (दिवस्पृष्ठे) द्युलोकके ऊपर (वितन्वते) विस्तृत हो रहीं हैं ॥

भावार्थ—परमात्माकी ज्योति सर्वत्र दीप्तिमती है, उसके प्रकाश-से एक रेणु भी खाली नहीं । द्युलोकमें उसका प्रकाश इस प्रकार फैला-हुआ है, जैसे मकड़ीके जालेके तन्तुओंके आतान वितानका पारावार-नहीं मिलता, इसी प्रकार उसका पारावार नहीं ॥

अथवा यों कहो कि मयूरपिच्छकी शोभाके समान उसके द्युलोककी अनन्त प्रकारकी शोभा है। जिसको परमात्मज्योतिने देदीप्यमान कियाहै॥५॥

तवे॒मे स॒प्त सिन्ध॑वः प्र॒शिष॑ꣳ सोम सिस्रते ।
तुभ्यं॑ धावन्ति धे॒नव॑: ॥ ६ ॥

तव॑ । इ॒मे । स॒प्त । सिन्ध॑वः । प्र॒ऽशिष॑म् । सो॒म॒ । सि॒स्र॒ते॒ ।
तुभ्य॑म् । धा॒व॒न्ति॒ । धे॒नव॑: ॥६॥

पदार्थः—(सोम) चराचरोत्पादक परमात्मन् ! (तव) भवतः (इमे) इमे (सप्त सिंधवः) सप्तविधाः (धेनवः) वाणीप्रवाहाः (प्रशिषं) प्रशासनं (सिस्रते) अनुसरन्ति । अथ च (तुभ्यं) तुभ्यमेव (धावन्ति) प्रतिदिनं गच्छन्ति ॥

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! (तव) तुम्हारे (इमे) ये (सप्त (सिंधवः) सात प्रकारके (धेनवः) वाणियोंके प्रवाह (प्रशिषं) प्रशासनको (सिस्रते) अनुसरण करते हैं । और (तुभ्यं) तुम्हारे लिये ही (धावन्ति) प्रतिदिन गमन करते हैं ॥

भावार्थ—परमात्माके शासनमें वेदादिवाणियोंके प्रवाह बहते हैं। अथवा यों कहो, कि ज्ञानन्द्रियोंके सप्तछिद्रोंके द्वारा प्राण सिन्धुके-समान प्रतिक्षण क्रियाको प्राप्त हो रहे हैं । अथवा यों कहो, कि सम्पूर्ण भूत, सिन्धु, आदि नदियोंके समान उसीसे निकल कर उसीके स्वरूप-में प्रतिदिन स्रवित होते हैं ॥६॥

प्र सोम याहि धारया सुत इन्द्राय मत्सरः ।
दधानो अक्षिति श्रवः ॥ ७ ॥

प्र । सोम । याहि । धारया । सुतः । इंद्राय । मत्सरः ।
दधानः । अक्षिति । श्रवः ॥७॥

पदार्थः—(सोम) हे जगदीश्वर ! (धारया) स्वानन्दवृष्ट्या (प्रयाहि) आगत्य मां प्राप्नोतु । भवान् (इन्द्राय) ऐश्वर्याय (सुतः) प्रसिद्धोस्ति । अथ च (मत्सरः) आनन्दस्वरूपोस्ति । तथा (अक्षिति) अक्षयं (श्रवः) यशः (दधानः) धार्यमाणोस्ति ॥

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! (धारया) अपने आनन्दकी वृष्टिसे (मर्षाहि) आप हमको आकर प्राप्त हों । आप (इंद्राय) ऐश्वर्यके लिये (सुतः) प्रसिद्ध हैं, और (मत्सरः) आनन्दस्वरूप हैं, तथा (अक्षिति) अक्षय (श्रवः) यशको (दधानः) आप धारण किये हुए हैं ॥

भावार्थ—परमात्माका यश अक्षय है, इस लिये अन्यत्र भी वेदने वर्णन किया है, कि "यस्यनाममहद्यशः" जिसका सबसे बड़ा यश है, वह परमात्मा निराकारभावसे सर्वत्र व्यापक हो रहा है ॥७॥

समु त्वा धीभिरस्वरन्हिन्वतीः सप्त जामयः ।
विप्रमाजा विवस्वतः ॥ ८ ॥

सं । ऊं इति । त्वा धीभिः । अस्वरन् । हिन्वतीः । सप्त । जामयः । विप्रं । आजा । विवस्वतः ॥८॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (विप्रं) सर्वज्ञं (त्वा) भवन्तं (सप्तजामयः) ज्ञानेन्द्रियाणां सप्तछिद्राणि (धीभिः) बुद्ध्या (समु) सम्यक् (अस्वरन्) शब्दायमानानि (विवस्वतः) यज्ञकर्तुः (आजा) यज्ञे (हिन्वतीः) प्रेरयन्ति ॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (विप्रं) सर्वज्ञ (त्वा) आपको (सप्तजामयः) ज्ञानेन्द्रियोंके सात गोलक (धीभिः) बुद्धिद्वारा (समु) भलीभांति (अस्वरन्) शब्द करते हुए (विवस्वतः) यज्ञकर्ताके (आजा) यज्ञमें (हिन्वतीः) प्रेरणा करते हैं ।

भावार्थ—उपासक लोग बुद्धिवृत्तियों द्वारा परमात्माका साक्षात्कार करते हैं।वा यों कहो कि यमनियमादि सात अङ्गोद्वारा समाधिकी-

सिद्धि करते हैं। अर्थात् समाधि साध्य पदार्थ है, और सात उसके साधन हैं।

मृजन्ति त्वा समग्रुवोऽव्ये जीरावधि ष्वणि ।
रेभो यदज्यसे वने ॥ ९ ॥

मृजंति । त्वा । सं । अग्रुवः । अव्ये । जीरौ । अधि । स्वनि । रेभः । यत् । अज्यसे । वने ॥९॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (रेभः) शब्दगम्यं (अव्ये) पालकं (अधिष्वणि) शब्दगमनीयं (जीरौ) शत्रुघातकं (वने) भजनीयं (त्वा) भवन्तं (अग्रुवः) कर्मयोगिनः (यत) यदा (संमृजन्ति) ध्यानविषयं कुर्वन्ति, तदा (अज्यसे) त्वं तेषां साक्षात्कृतो भवसि ।

पदार्थ—हे जगदीश ! (रेभः) शब्दगम्य (त्वा) आपको (अग्रुवः) कर्मयोगी जन (अव्ये) रक्षक तथा (अधिष्वणि) शब्दगम्य और (जीरौ) शत्रुनाशक (वने) भजनीय आपको (यत्) जब (संमृजन्ति) ध्यानविषय करते हैं, तब आप (अज्यसे) उनके साक्षात्कारके विषय होते हैं ॥

भावार्थ—इस मंत्रमें सर्वरक्षक परमात्माके साक्षात्कार का वर्णन किया गया है, कि कर्मयोगी लोग अपने कर्मण्यतायोगसे परमात्मपरायण होकर, परमात्माका साक्षात्कार करते हैं ॥९॥

पवमानस्य ते कवे वाजिन्त्सर्गा असृक्षत ।
अर्वन्तो न श्रवस्यवः ॥ १० ॥ ८ ॥

पर्वमानस्य । ते । कवे । वाजिन् । असृक्षत । अर्वतः । न । श्रवस्यवः ॥१०॥

पदार्थः—(कवे) हे सर्वज्ञ ! (वाजिन्) सर्वशक्तिसम्पन्न जगदीश्वर ! (पवमानस्य) सर्वपवित्रयितः (ते) भवतः (सर्गाः) वहुविधाः सृष्टयः एवं (असृक्षत) उत्पद्यन्ते (न) यथा (अर्वन्तः) विद्युच्छक्तयोनेकधा (श्रवस्यवः) प्रवहन्ति ॥

पदार्थ—(कवे) हे सर्वज्ञ ! (वाजिन्) हे सर्वशक्तिमन् परमात्मन् ! (पवमानस्य) सबको पवित्र करने वाले (ते) आपकी (सर्गाः) अनन्त प्रकारकी सृष्टियें इस प्रकार (असृक्षत) उत्पन्न होतीं हैं (न) जैसेकि (अर्वन्तः) विद्युत् शक्तियें अनेक प्रकारसे (श्रवस्यवः) प्रवाहित होतीं हैं ॥

भावार्थ—इस मंत्रमें परमात्माको निमित्तकारण वर्णन कियाहै, कि परमात्मा इस सृष्टिका निमित्तकारण है। उपादान कारण प्रकृति है, और निमित्तकारण परमात्मा है, इसीसे यहां विद्युत्का दृष्टान्त दिया है॥१०॥

अथ सर्वाधिकरणत्वेन परमात्मा स्तूयते ॥

यहां सर्वाधिकरणत्वसे परमात्माकी स्तुति करते हैं ।

अच्छा कोशं मधु श्चुतमसृग्रं वारे अव्यये ।
अवावशन्त धीतयः ॥ ११ ॥

अच्छं । कोशं । मधुऽश्चुतं । असृग्रं । वारे । अव्यये । अवावशंत । धीतयः ॥११॥

पदार्थः—येन परमात्मना (अच्छ) निर्मलं (कोशं) सर्वनिधानं तथा (मधुश्चुतं) आनन्ददायकं जगादिदं (असृग्रम्) रचितमस्ति तस्मिन् (अव्यये) अविनाशिनि (वारे) वरणीये परमात्मनि(धीतयः) सृष्टयः (अवावशंत) निवसन्ति ॥

पदार्थ—जिस परमात्माने इस संसार को (अच्छ) निर्मल और (कोशं) सर्वनिधान तथा (मधुश्चुतं) आनन्ददायक (असृग्रम्) रचा है उसी (अव्यये) अविनाशी तथा (वारे) वरणीय परमात्मामें (धीतयः) सृष्टियें (अवावशंत) निवास करतीं हैं ॥

भावार्थ—परमात्माही एकमात्र सब लोक लोकान्तरोंका अधिकरण है ॥११॥

अच्छा समुद्रमिन्दवोऽस्तं गावो न धेनवः ।
अग्मन्नृतस्य योनिमा ॥१२॥

अच्छं । समुद्रं । इंदवः । अस्तं । गावः । न । धेनवः । अग्मन् । ऋतस्यं । योनिं । आ ॥१२॥

पदार्थः—(धेनवो न) यथा वेदवाण्यः (अस्तं) स्थानरूपं (समुद्रं) येन शब्दा उत्पद्यन्ते एतादृशं (अच्छ) विमलं परमेश्वरं (आग्मन्) सुतरां प्राप्नुवन्ति । तथा (इंदवः) प्रकाशिन्यः (गावः) सत्कार्मिणामिन्द्रियवृत्तयः (ऋतस्य योनिं) सत्यस्थानं परमेश्वरं सुखेन प्राप्नुवन्ति ॥

पदार्थ—(धेनवो न) जैसे वेदवाणियें (अस्तं) स्थानरूप (समुद्रं) जिससे शब्द उत्पन्न होते हैं, ऐसे (अच्छ) निर्मल परमेश्वर-

को (आगमन्) भलीभांति प्राप्त होतीं हैं, उसी प्रकार (इंदवः) प्रकाश करने वाली (गावः) सत्कर्मियोंकी इन्द्रियवृत्तियें (ऋतस्य योनिं) सत्य-स्थान परमात्माको भलीभांति प्राप्त होतीं हैं।

भावार्थ—इस मंत्रसे यह सिद्ध किया है, कि परमात्मा एक-मात्र शब्दगम्य है। अर्थात् सर्वज्ञ परमात्माकी वेदवाणी ही उसको विषय करती है। अन्य प्रमाणोंका विषय सुगमतासे परमात्मा नहीं ॥१२॥

प्र णं इन्दो महे रण आपो अर्षन्ति सिन्धवः।
यद्गोभिर्वासयिष्यसे ॥१३॥

प्र। नः। इंदो इति। महे। रणे। आपः। अर्षंति। सिन्धवः। यत्। गोभिः। वासयिष्यसे ॥ १३ ॥

पदार्थः—(इंदो) हे प्रकाशरूप परमात्मन्! (नः) अस्माकं (महेरणे) ज्ञानयज्ञाय त्वया (गोभिः) ज्ञानेन्द्रियैर-स्मच्छरीरं (वासयिष्यसे) निर्मितम्। अथच (यत्) यदा (सिन्धवः) स्यन्दनशीलकर्मेन्द्रियाणि (आपः) कर्माणि (प्रार्षन्ति) प्राप्नुवन्ति, तदैव यज्ञपूर्तिर्भवति ॥

पदार्थ—(नः) हमारे (महेरणे) ज्ञानरूप यज्ञके लिये (इंदो) हे प्रकाशरूप परमात्मन्! आपने (गोभिः) ज्ञानेन्द्रियों द्वारा हमारे शरीर-का (वासयिष्यसे) निर्माण किया है। और (यत्) जब (सिंधवः) स्यन्दनशील कर्मेन्द्रियें (आपः) कर्मोंको (प्रार्षन्ति) प्राप्त होतीं हैं, तब हमारे इस बृहत् यज्ञकी पूर्ति होती है ॥

भावार्थ—इस मंत्रमें परमात्माने ज्ञान और कर्मका समुच्चय कथन किया है, कि जब ज्ञान और कर्म दोनों मिलते हैं, तब ही यज्ञकी पूर्ति होती है, अन्यथा नहीं ॥१३॥

अस्य ते सख्ये वयमियक्षन्तस्त्वोतयः ।
इन्दो सखित्वमुश्मसि ॥१४॥

अस्य । ते । सख्ये । वयं इयक्षन्तः । त्वाऽऊतयः । इंदो इति । सऽखित्वं । उश्मसि ॥ १४ ॥

पदार्थः—(इन्दो) प्रकाशरूपपरमेश्वर ! (अस्य, ते सख्ये) प्रागुक्तगुणविशिष्टस्य भवतोमित्रतायां (वयं) वयंजनाः (इयक्षंतः) तव यजनं कुर्मः (त्वोतयः) भवता सुरक्षिता वयम तव (साखित्वं) मित्रत्वं (उश्मसि) वाञ्छामः ॥

पदार्थ—(अस्यते सख्ये) पूर्वोक्तगुणाविशिष्ट आपके मैत्रीभावमें (वयं) हम लोग (इयक्षंतः) आपका यजन करते हैं । (त्वोतयः) आपसे सुरक्षित हुए हमलोग (इन्दो) हे प्रकाशरूप परमात्मन् ! आपकी (सखित्वं) मित्रताको (उश्मसि) चाहते हैं ॥

भावार्थ—परमात्माके साक्षात्कारसे जब मनुष्य अत्यन्त सन्नि- हित हो जाता है, तब ब्रह्मके सत्यादि गुणोंके धारण करनेसे उसमें ब्रह्म- साम्य हो जाता है । उसीका नाम ब्रह्ममैत्री है । इसी भावका कथन इस- मंत्रमें किया है, कि हे परमात्मन् ! हम तुम्हारे मैत्रीभावको प्राप्त हों ।

आ पवस्व गविष्टये महे सोम नृचक्षसे ।
एन्द्रस्य जठरे विश ॥१५॥९॥

आ । पवस्व । गोऽइष्टये । महे । सोम । नृऽचक्षसे । आ । इंद्रस्य । जठरे । विश ॥ १५ ॥

पदार्थः—(सोम) जगदीश्वर ! त्वं (आपवस्व) मां परितः पवित्रय (महे) महत्यै (नृचक्षसे) ज्ञानवृद्ध्यै तथा (गविष्टये) इन्द्रियशुद्ध्यै (इन्द्रस्य) कर्मयोगिनः (जठरे) जठराग्नौ आविश) प्रविश ॥

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! आप (आपवस्व) हमको सब ओरसे पवित्र करें (महे) बड़े (नृचक्षसे) ज्ञानकी वृद्धिके लिये और (गविष्टये) इन्द्रियोंकी शुद्धिके लिये और (इंद्रस्य) कर्मयोगीके (जठरे) जठराग्निमें (आविश) प्रवेश करें ॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करता है, कि मैं कर्मयोगी, तथा ज्ञानयोगियोंके हृदयमें अवश्यमेव निवास करता हूँ। यद्यपि परमात्मा सर्वत्र है, तथापि परमात्माकी अभिव्यक्ति जैसी ज्ञानयोगी तथा कर्मयोगीके हृदयमें होती है, वैसी अन्यत्र नहीं होती। इसी अभिप्रायसे यहाँ कर्मयोगीके हृदयमें विराजमान होना लिखा गया है। इसी अभिप्रायसे "वैश्वानरस्तद्धर्मव्यपदेशात्" इस सूत्रमें परमात्माको "वैश्वानर" अग्निरूपसे कथन किया गया है ॥१५॥

महाँ असि सोम ज्येष्ठ उग्राणामिन्द ओजिष्ठः।
युध्वा सञ्छश्वज्जिगेथ ॥१६॥

महान् । असि । सोम । ज्येष्ठः । उग्राणां । इंदो इति । ओजिष्ठः । युध्वा । सन् । शश्वत् । जिगेथ ॥

पदार्थः—(सोम)जगदुत्पादक परमेश्वर ! त्वं (महानसि) श्रेष्ठोसि। तथा (उग्राणां) तेजस्विनां मध्ये (ज्येष्ठः) प्रशस्योऽसि (इन्दो) सर्वप्रकाशक परमात्मन् ! त्वं (ओजिष्ठः) सर्वोपरि बलवानसि ! अथच (युध्वा सन्) स्वतः प्रतिकूलशक्तिभिर्युध्यन् (शश्वत्) निरन्तरं (जिगेथ) जयसि ॥

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! आप (महानासि) बड़े हैं। और (उग्राणां) तेजस्वियोंमें (ज्येष्ठः) बड़े हैं। (इंदो) हे सर्वप्रकाशक परमात्मन् ! आप (ओजिष्ठः)सर्वोपरि ओजस्वी हैं। और आप (युध्वासन् अपनेसे प्रतिकूलशक्तियोंसे युद्ध करते हुए (शश्वत्) निरन्तर (जिगेथ) जीतते हैं ॥

भावार्थ—परमात्मा सूर्यचन्द्रमादिकोंकी रचना करता हुआ, अर्थात् उत्पत्तिसमयमें विनाशरूपी सब विरोधी शक्तियोंको जीतता है। इस प्रकार परमात्मा सर्वविजयी कथन किया गया है। किसी युद्धविशेषके अभिप्रायसे नहीं ॥१६॥

य उ॒ग्रेभ्य॑श्चि॒दोजी॑या॒ञ्छूरे॑भ्यश्चि॒च्छूर॑तरः।
भू॒रि॒दाभ्य॑श्चि॒न्मंही॑यान् ॥१७॥

यः। उ॒ग्रेभ्यः॑। चि॒त्। ओजी॑यान्। शूरे॑भ्यः। चि॒त्। शूर॑ऽतरः। भू॒रि॒ऽदाभ्यः॑। चि॒त्। मंही॑यान् ॥१७॥

पदार्थः—(यः) यः परमेश्वरः (शूरेभ्यः) वीरेभ्यः (शूरतरः) ततोप्यधिकवीरोस्ति (चित्) अथ च (भूरिदाभ्यः) दानवीरेषु (मंहीयान्) दानवीरतरोस्ति (चित्) अथच (उग्रेभ्यः) महाबलेषु (ओजीयान्) बलिष्ठः एवंभूतं त्वां वयमुपास्महे ।

पदार्थ—(यः) जो परमात्मा (शूरेभ्यः) शूरवीरोंसे (शूरतरः) अत्यन्त शूरवीर है, और (भूरिदाभ्यः) अत्यन्त, दानशीलोंसे (मंहीयान्) अत्यन्त दानशील है (चित्) और (उग्रेभ्यः) जो अत्यन्त बल वाले हैं, उनसे (ओजीयान्) अत्यन्त बल वाला है, ऐसे परमात्माकी हम उपासना करते हैं ॥

भावार्थ—इस मंत्रमें यह वर्णन किया है, कि परमात्मा अजर,

अमर तथा अविनाशी है । जैसा कि "तेजोऽसि तेजो मयि धेहि । वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि । बलमसि बलं मयि धेहि" इत्यादि मन्त्रोंमें परमात्माको बलस्वरूप कथन किया गया है। इसी प्रकार इस मन्त्रमें भी परमात्माको बलस्वरूप कथन किया है ॥१७॥

त्वं सोम सूर एषस्तोकस्य साता तनूनाम् ।
वृणीमहे सख्याय वृणीमहे युज्याय ॥१८॥

त्वं । सोम । सूरः । आ । इषः । तोकस्य । साता । तनूनां । वृणीमहे । सख्याय । वृणीमहे । युज्याय ॥१८॥

पदार्थः—(सोम) जगदीश । (त्वं) भवन्तं (युज्याय-सख्याय) योग्यमित्रतायै (वृणीमहे) वयं वृणुमः । कथंभूतं-त्वां वृणुमोवयम् तथाहि (सूरः) सर्वप्रेरकोऽसि (इषः) सर्वैश्वर्यप्रदोऽसि । अथच (तोकस्य) पुत्रस्य (तनूनां) शरीरत उत्पन्नानां पुत्रपौत्रादीनां (साता) दाताऽसि । प्रागुक्तगुणपूर्णं भवन्तं (आवृणीमहे) वयं संवृणुमः ॥

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! (त्वं) तुमको हम (युज्याय) योग्य (सख्याय) सख्यके लिये हम (वृणीमहे) वरण करें । तुम कैसे हो ? (सूरः) सर्वप्रेरक हो (इषः) सब ऐश्वर्य देने वाले हो । और (तोकस्य) पुत्रके (तनूनां) शरीरसे उत्पन्न पुत्रादिकोंके (साता) देने वाले हो । उक्त गुणसम्पन्न आपको (आवृणीमहे) हम भलीभांति स्वीकार करते हैं ॥

भावार्थ—इस मंत्रमें परमात्माको सर्वोपरि मित्ररूपसे कथन किया गया है । वस्तुतः मित्र शब्दके अर्थ स्नेह करनेके हैं । वास्तवमें परमात्माके बराबर स्नेह करने वाला अन्य कोई नहीं है । इसी भावको "त्वं वा अहमस्मि भगवोदेवते अहं वा त्वमसि" इस उपनिषद्में भलीभांति

वर्णन किया है, कि तू मैं,और मैं तू हूं । अर्थात् मैं आपके निष्पापादि-गुणोंको धारण करके शुद्धात्मा बनूं ॥१८॥

अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः ।
आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥१९॥

अग्ने । आयूंषि । पवसे । आ । सुव । ऊर्जं । इषं । च ।
नः । आरे । बाधस्व । दुच्छुनां ॥१९॥

पदार्थः—(अग्ने) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! त्वम् (आयूंषि) अस्माकं वयांसि (पवसे) पवित्रयसि (च) अथ च (नः) अस्मभ्यं (इषं ऐश्वर्यं तथा (ऊर्जं) बलं (आसुव) देहि । तथा (दुच्छुनां) विघ्नकारिराक्षसान् इतः (आरे बाधस्व) दूरीकुरु ॥

पदार्थ—(अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप परमात्मन् ! आप (आयूंषि) हमारी आयुको पवसे) पवित्र करते हैं (च) और (नः) हमारे लिये (इषं) ऐश्वर्य और (ऊर्जं) बल (आसुव) दें । तथा (दुच्छुनां) विघ्नकारी-राक्षसोंको हमसे (आरे) दूर (बाधस्व) करें ॥

भावार्थ—इस मन्त्रमें परमात्माने विघ्नकारी राक्षसोंसे बचनेका उपदेश किया है, कि हे पुरुषो ! तुम विघ्नकारी अवैदिक पुरुष जो राक्षस-हैं, उनके हटानेमें सदैव तत्पर रहो ॥१९॥

अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः ।
तमीमहे महागयम् ॥२०॥१०॥

अग्निः । ऋषिः । पवमानः । पांचऽजन्यः । पुरःऽहितः ।
तं । ईमहे । महाऽगयं ॥२०॥

पदार्थः—(अग्निः) ज्ञानस्वरूपः (ऋषिः) सर्वव्यापकः ऋषति ज्ञानदृष्ट्या सर्वत्र गच्छतीतियावत् । (पाञ्चजन्यः) पञ्च-ज्ञानेन्द्रियाणां शुभमार्गचालकः (पुरोहितः) वैदिकानामुपास्यः (महागयं) वेदराशिरूपधनंदाता परमात्मास्ति (तं, ईमहे) भवन्तं प्राप्नुमः ॥

पदार्थ—(अग्निः) ज्ञानस्वरूप (ऋषिः) सर्वव्यापक परमात्मा (पवमानः) सबको पवित्र करने वाला है (पांचजन्यः) पांचो ज्ञाने न्द्रियोंको शुभ मार्गमें चलाने वाला (पुरोहितः) वैदिक लोगोंका एक-मात्र उपास्य (महागयं) वेदराशिरूप धनको देने वाला है (तं) उस-को (ईमहे) हम लोग प्राप्त हों ॥

भावार्थ—जो परमात्मा सर्वगत परिपूर्ण और नित्य शुद्ध-बुद्ध मुक्तस्वभाव है, जिसकी उपासनासे ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय दोनों बल, वीर्य सम्पन्न होकर ऐश्वर्यके उपलब्ध करनेका सर्वोपरि हेतु बनते-हैं । हम एकमात्र उक्त गुणसम्पन्न परमात्माको ही अपना उपास्य समझें॥१०॥

अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् ।
दधद्रयिं मयि पोषम् ॥२१॥

अग्ने । पवस्व । सुऽअपाः । अस्मेइति । वर्चः । सुऽवीर्यं ।
दधत् । रयिं । मयि । पोषं ॥२१॥

पदार्थः—(अग्ने) ज्ञानस्वरूप जगत्पालक परमात्मन् ! मां (पवस्व) पवित्रय । भवान् (स्वपाः) सुकर्मास्ति । (अस्मे) अस्मासु (वर्चः) ब्रह्मतेजो ददातु । अथ च (मयि) मयि (रयिं) ऐश्वर्यं (सुवीर्यं) सुन्दरं बलं (पोषं) पुष्टिं च (दधत्) धारयतु ॥

पदार्थ—(अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप परमात्मन् ! (पवस्व) आप हमको पवित्र करें । आप (स्वपाः) शोभन कर्मों वाले हैं (अस्मे) हममें आप (वर्चः) ब्रह्मतेज दें । और (मयि) मुझमें (रयिं) ऐश्वर्य (सुवीर्यं) और सुन्दर बल (पोषं) तथा पुष्टिको (दधत्) धारण कराएँ ॥

भावार्थ—जो पुरुष परमात्मपरायण होते हैं, परमात्मा उनमें सब प्रकारके ऐश्वर्योंको धारण कराता है ॥२१॥

पवमानो अति स्त्रिधोऽभ्यर्षति सुष्टुतिम् ।
सूरो न विश्वदर्शतः ॥२२॥

पवमानः । अति । स्त्रिधः । अभि । अर्षति । सुऽस्तुतिं ।
सूरः । न । विश्वऽदर्शतः ॥२२॥

पदार्थः—(पवमानः) पवित्रा परमात्मा (स्त्रिधः अति) दुष्टानतिक्राम्यति । तथा (सुष्टुतिं) सद्गुणसम्पन्नपुरुषान् (अभ्यर्षति) प्राप्नोति, स परमात्मा (सूरो न) सूर्य इव (विश्वदर्शतः) स्वयंप्रकाशोस्ति ॥

पदार्थ—(पवमानः) पवित्र करने वाला परमात्मा (स्त्रिधः-अति) दुष्टोंको अतिक्रमण करता है । और (सुष्टुतिं) सद्गुणसम्पन्न पुरुषोंको (अभ्यर्षति) प्राप्त होता है, वह परमात्मा (सूरो न) सूर्यकी-तरह (विश्वदर्शतः) स्वतःप्रकाश है ॥

भावार्थ—जो पुरुष संयमी बन कर ईश्वरपरायण होते हैं, परमात्मा उनपर अवश्यमेव कृपा करता है ॥२२॥

स मर्मृजान आयुभिः प्रयस्वान्प्रयसे हितः ।
इन्दुरत्यो विचक्षणः ॥२३॥

सः । मर्मृजानः । आयुऽभिः । प्रयस्वान् । प्रयसे । हितः ।
इंदुः । अत्यः । विचऽक्षणः ॥२३॥

पदार्थः—(इन्दुः) परमैश्वर्ययुक्तः परमात्मा (हितः) हितकारकोस्ति । तथा (अत्यः) सर्वदा गत्वरोस्ति । अथ च (विचक्षणः) सर्वज्ञोस्ति (प्रयस्वान्) तर्पकः स परमेश्वरः (प्रयसे) ब्रह्मानन्दाय (आयुभिः) कर्मयोगिभिः (मर्मृजानः) ध्यायमानः सन् तेषां साक्षात्कृतोभवति ॥

पदार्थ—(इंदुः) परमैश्वर्यसम्पन्न परमात्मा (हितः) सबका हितकारक तथा (अत्यः) सतत गमनशील है, और (विचक्षणः) सर्वज्ञ (प्रयस्वान्) तर्पक (सः) वह जगदीश (प्रयसे) ब्रह्मानन्दके-लिये (आयुभिः) कर्मयोगियोंसे (मर्मृजानः) ध्यान किया गया उनके साक्षात्कारको प्राप्त होता है ॥

भावार्थ—योगी लोग जब परमात्माका ध्यान करते हैं, तब परमात्मा उन्हें आत्मस्वरूपवत् भान होता है । इसी अभिप्रायसे योगसूत्रमें कहा है कि "तदा द्रष्टुः स्वरूपऽवस्थानम्" समाधिवेलामें उपासकके स्वरूपमें परमात्माकी स्थिति होती है ॥२३॥

पवमान ऋतं बृहच्छुक्रं ज्योतिरजीजनत् ।
कृष्णा तमांसि जङ्घनत् ॥२४॥

पवमानः । ऋतं । बृहत् । शुक्रं । ज्योतिः । अजीजनत् ।
कृष्णा । तमांसि । जंघनत् ॥२४॥

पदार्थः—तदा (पवमानः) पवित्रकर्ता जगदीश्वरः-

(बृहत्) महत् (शुक्रं) बलरूपं (ऋतं ज्योतिः) सत्यरूपप्रकाशं (अजीजनत्) उत्पादयति। अथच (कृष्णा) नीलवर्णानि (तमांसि) तिमिराणि (जंघनत्) नाशयति ॥

पदार्थ—तब (पवमानः) सबको पवित्र करने वाला परमात्मा (बृहत्) बड़े (शुक्रं) बलरूप (ऋतं ज्योतिः) सत्यरूप प्रकाशको (अजीजनत्) पैदा करता है। और (कृष्णा) काले (तमांसि) अँधियारेको (जंघनत्) नाश करता है ॥

भावार्थ—परमात्माके साक्षात्कारसे अज्ञानकी निवृत्ति और परमानन्दकी प्राप्ति होती है। अथवा यों कहो कि "सता सौम्यतदा सम्पन्नोभवति" उस समय योगी सद्रूपब्रह्मके साथ सह अवस्थानको प्राप्त होता है। अर्थात् उस समय सद्रूपब्रह्मसे भिन्न और कुछ प्रतीत नहीं होता। इसी अभिप्रायसे योगसूत्रमें लिखा है, कि "ऋतंभरा तत्र प्रज्ञा" उस समय सद्रूप ब्राह्मी प्रज्ञा हो जाती है। ऋत, सत्य यह पर्याय शब्द हैं ॥ २४ ॥

पवमानस्य जङ्घ्नतो हरेश्चन्द्रा असृक्षत।
जीरा अजिरशोचिषः ॥२५॥११॥

पवमानस्य। जघ्नतः। हरेः। चन्द्राः। असृक्षत। जीराः। अजिरऽशोचिषः ॥२५॥

पदार्थः—तस्मिन्नज्ञाने नष्टे सति (पवमानस्य) पवित्रयितुः (जंघ्नतः) अज्ञाननाशकस्य (हरेः) पापहर्तुः (अजिरशोचिषः) सर्वगतेजस्विनः परमदयावत ईश्वरस्य (चन्द्राः) आह्लादकानि (जीराः) ज्योतींषि (असृक्षत) उत्पद्यन्ते ॥

पदार्थ—उस समय (पवमानस्य) पवित्र करने वाले (जंघ्नतः) अज्ञानोंके नाश करने वाले तथा (हरेः) पापोंके हरण करने वाले (अजिरशोचिषः) सर्वत्रगति तेज वाले परमात्माकी (चन्द्राः) आह्लादक (जीराः) ज्योतियें (असृक्षत) उत्पन्न होती हैं ॥

भावार्थ—जब योगीजन उस परमात्माको लक्ष्य बनाकर उसका ध्यान करते हैं, तब अपूर्व ज्योति उत्पन्न होती है। वा यों कहो, कि अजर, अमर, भाव देनें वाला ब्रह्मज्ञान उस समय मनुष्यकी बुद्धिको प्रकाशित करता है। इसीका नाम ब्राह्मी प्रज्ञा है। इसी अभिप्रायसे गीतामें कृष्णजीने कहा है, कि "एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां-प्राप्य विमुह्यति" हे अर्जुन ! यह ब्राह्मी स्थिति है, इसको पाकर फिर पुरुष मोहको प्राप्त नहीं होता ॥२५॥

पवमानो रथीतमः शुभ्रेभिः शुभ्रशस्तमः ।
हरिश्चन्द्रो मरुद्गणः ॥२६॥

पवमानः । रथिऽतमः । शुभ्रेभिः । शुभ्रशःऽतमः । हरिऽचंद्रः । मरुत्ऽगणः ॥२६॥

पदार्थः—(पवमानः) पविता (रथीतमः) गतिशीलः-परमेश्वरः (शुभ्रेभिः) स्वीयप्रकाशेन (शुभ्रशस्तमः) अति-प्रकाशकोऽस्ति । एतादृशो जगदीश्वरः (हरिश्चन्द्रः) सर्वानन्द-दाता (मरुद्गणः) विद्वद्भिरुपासनीयोऽस्ति ॥

पदार्थ—(पवमानः) पवित्र करने वाला तथा (रथीतमः) गतिशील परमात्मा (शुभ्रेभिः) अपनी ज्योतिसे (शुभ्रशस्तमः) सर्वोपरि प्रकाशक है। ऐसा ईश्वर (हरिश्चन्द्रः) सबको आनन्द देने वाले (मरुद्गुणः) विद्वानोंका एकमात्र उपास्य है ॥

भावार्थ—विद्वान् लोग नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव परमात्माकी उपासना करते हैं, किसी अन्यकी नहीं ॥२६॥

पव॑मानो॒ व्य॑श्नवद्र॒श्मिभि॑र्वाज॒सात॑मः ।
दध॑त्स्तो॒त्रे सु॒वीर्य॑म् ॥२७॥

पव॑मानः । वि । अ॒श्न॒व॒त् । र॒श्मिऽभिः॑ । वा॒ज॒ऽसात॑मः ।
दध॑त् । स्तो॒त्रे । सु॒ऽवीर्य॑ं ॥२७॥

पदार्थः—(वाजसातमः) आध्यात्मिकबलदः परमेश्वरस्तथा (रश्मिभिः) स्वशक्तिभिः (व्यश्नवत्) सर्वान्स्वायत्तं कुर्वन् सः (पवमानः) पविता जगदीशः (स्तोत्रे) वेदाध्ययनशीलेभ्यः (सुवीर्यं) ब्रह्मवर्चः (दधत्) प्रददाति ॥

पदार्थ—(वाजसातमः) आध्यात्मिक बल देने वाला परमात्मा जो (रश्मिभिः) अपनी शक्तियोंसे (व्यश्नवत्) सबको स्वाधीन किये-हुए है, वह (पवमानः) सबको पवित्र करने वाला ईश्वर (स्तोत्रे) वेदाध्ययनशीलोंमें (सुवीर्यं) ब्रह्मवर्चसको (दधत्) प्रदान करता है ॥

भावार्थ—स्वयंज्योति परमात्मासे ही विद्वानोंको ब्रह्मवर्चस मिलता है। इस लिये एकमात्र उसी ईश्वरकी उपासना करनी चाहिये ॥२७॥

प्र सु॑वा॒न इन्दु॑र॒क्षाः प॒वित्र॒मत्य॒व्यय॑म् ।
पु॒ना॒न इन्दु॒रिन्द्र॒मा ॥२८॥

प्र । सु॒वा॒नः । इंदुः॑ । अ॒क्षा॒रिति॑ । प॒वित्र॑ं । अति॑ । अ॒व्यय॑ं ।
पु॒ना॒नः । इंदुः॑ । इन्द्र॑ं । आ ॥२८॥

पदार्थः—(सुवानः) सर्वोत्पादकः (इन्दुः) सकलप्रकाशकः परमात्मा (प्राक्षाः) आनन्दस्य वृष्टिं करोति । तथा (पुनानः) पविता परमेश्वरः (इन्द्रं) कर्मयोगिने (पवित्रमव्ययं) पवित्रमव्ययं च भावं ददन् तथा तेषामन्तःकरणेषु (आ) आवसन् (अति) अत्येति अज्ञानं नाशयतीत्यर्थः "अति" इत्युपसर्गश्रुतेर्योग्यक्रियाया "एती" त्यस्याध्याहारः ॥

पदार्थ—(सुवानः) सबको उत्पन्न करने वाला तथा (इन्दुः) सर्वप्रकाशक परमात्मा (प्राक्षाः) आनन्दकी वृष्टि करता है । तथा (पुनानः) पवित्र करने वाला जगदीश (इन्द्रं) कर्मयोगीको (पवित्रमव्ययं) पवित्र अव्यय भावको देता हुआ, तथा उनके अन्तःकरणोंमें (आ) निवास करता हुआ (अति) "अत्येति" अज्ञानका नाश करता है ॥

भावार्थ—यद्यपि मनुष्यमात्रके हृदयमें परमात्मा विराजमान है, उससे एक अणुमात्र भी खाली नहीं, तथापि कर्मयोगी और ज्ञानयोगियोंके हृदयमें योगज सामर्थ्यसे अधिक अभिव्यक्ति समझी जाती है। इस अभिप्रायसे परमात्माका आवेश यहां योगीजनोंके हृदयमें कथन किया गया है ॥२८॥

एष सोमो अधि त्वचि गवां क्रीळत्यद्रिभिः ।
इन्द्रं मदाय जोहुवत् ॥२९॥

एषः । सोमः । अधि । त्वचि । गवां । क्रीळति । अद्रिभिः ।
इन्द्रं । मदाय । जोहुवत् ॥२९॥

पदार्थः—(एष सोमः) अयं परमात्मा (गवां)-

इन्द्रियाणां (अधित्वचि) मनोरूपशक्तौ (अद्रिभिः) इन्द्रियवृत्तिभिः साक्षात्क्रियते । (इन्द्रं) कर्मयोगिनः कर्मक्षेत्रे (जाहुवत) प्राणापानगतिं निघ्नन्ति । अथ च कर्मयोगिनं कर्मक्षेत्रे (क्रीडति) क्रीडयति । अन्तर्भावितण्यर्थोऽत्रवर्तते ॥

पदार्थ—(एष सोमः) यह परमात्मा (गवां) इन्द्रियोंकी (अधित्वचि) मनोरू शक्तिमें (अद्रिभिः) इन्द्रियवृत्तियों द्वारा साक्षात्कार किया जाता है । (इन्द्रं) कर्मयोगीके कर्मक्षेत्रमें (जाहुवत्) प्राणापानकी गतिको हवन करता है । और कर्मयोगीको कर्मक्षेत्रमें (क्रीडति) क्रीडा कराता है ॥

भावार्थ—परमात्माकी कृपासे ही कर्मयोगी जन प्राणापानकी-गतिको रोक कर प्राणायाम करते हैं । और वही परमात्मा इस ब्रह्माण्ड-रूपी अद्भुत कर्मक्षेत्रमें उनसे सर्वोपरि कर्म कराता है । इसमें " अधि-त्वाचि " नाम मनका है, क्योंकि "इन्द्रियाणां शक्तिं तनोतीतित्वक्" " त्वचि अधि इति अधित्वचि " " अधित्वचि " इससे यहां आध्यात्मिक यज्ञका अभिप्राय है । सायणाचार्यने यहां " अधित्वचि " इसके अत्यन्त घृणित अर्थ किये हैं । अर्थात् "गवामधित्वचि" इसका " अनु-डुहचर्मणि" अर्थ किये हैं । सायणाचार्यके मतमें अनुडुहचर्म विछाकर उस-के ऊपर सोम कूटा जाता था । विचार करनेसे यह अर्थ योग्यतासे भी विरुद्ध है, क्योंकि सोम किसी कड़ी चीज़ पर कूटा जा सक्ता है, न कि चमड़े पर । कुछ हो, परन्तु " गवामधित्वचि " इसके " अनुडुहचर्म " अर्थ करना वेदके आशयसे सर्वथा विरुद्ध है ॥२९॥

यस्य॑ ते द्यु॒म्नव॒त्पयः॒ पव॑माना॒भृ॑तं दि॒वः ।
तेन॑ नो मृळ जी॒वसे॑ ॥३०॥१२॥

यस्यं । ते । द्युम्नऽवत् । पयः । पवमान । आऽभृतं । दिवः ।
तेनं । नः । मृळ । जीवसे ॥३०॥

पदार्थः--(पवमान) सर्वपावक परमात्मन् ! (यस्य) यस्य भवतः (द्युम्नवत्) दीप्तिमत् (पयः) ऐश्वर्यं (दिव-आभृतं) द्युलोकतोदुग्धमस्ति (तेन) तेनैश्वर्येण (नः) अस्माकं (जीवसे) जीवनं (मृळ) सुखय ॥

पदार्थ--(पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (यस्य) जिस आपका (द्युम्नवत् पयः) दीप्ति युक्त ऐश्वर्य जो (दिवः) आभृतं) द्युलोकसे दुहा गया है, (तेन) उस ऐश्वर्यसे (नः) हम लोगोंके (जीवसे) जीवनके लिये (मृळ) सुख दें ॥

भावार्थ--परमात्माके ऐश्वर्यरूपी अमृतका जब तक मनुष्य पान नहीं करता, तब तक उसके ऐश्वर्यकी वृद्धि कदापि नहीं होती । इस लिये अपने जीवनकी वृद्धिके लिये इन्द्रियसंयम द्वारा ईश्वराज्ञाका-पालन करता हुआ पुरुष १०० बरस जीनेकी इच्छा करे । इस अभि-प्रायसे वेदमें अन्यत्र भी कहा है कि "जीवेम शरदः शतम् पश्येम शरदः शतम्" इत्यादि । इसी अभिप्रायसे मनुधर्मशास्त्रमें कहा है, कि "सदा-चारेण पुरुषः शतवर्षाणि जीवति" ब्रह्मचर्यादि व्रतोंसे मनुष्य सैकड़ों-बरस तक जीवित रहता है ॥३०॥

इति षट्षष्ठितमं सूक्तं द्वादशोवर्गश्च समाप्तः ।

यह ६६ वां सूक्त और १२ वां वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ द्वात्रिंशदृचस्य सप्तषष्ठितमस्य सूक्तस्य—
ऋषिः-१-३ भरद्वाजः। ४-६ कश्यपः। ७-९ गोतमः। १०-१२ अत्रिः। १३-१५ विश्वामित्रः। १६-१८ जमदग्निः। १९-२१ वसिष्ठः। २२-३२ पवित्रो वसिष्ठो वोभौ वा॥ देवताः-१-९, १३-२२, २८-३० पवमानः सोमः। १०-१२ पवमानः सोमः पूषा वा। २३, २४ अग्निः। २५ अग्निः सविता वा। २६ अग्निरग्निर्वा सविताच। २७ अग्निर्विश्वेदेवा वा। ३१, ३२पवमान्यध्येतृस्तुतिः॥ छन्द–१,२,४,५,११-१३,१५,१९,-२३-२५ निचृद्गायत्री। ३, ८ विराड्गायत्री। १० यवमध्यागायत्री। १६-१८ भुरिगार्ची विराड्गायत्री। ६,७,९,१४, २०-२२,२४,२६,२८,२९ गायत्री। २७ अनुष्टुप्। ३१,३२निचृदनुष्टुप् ३० पुरउष्णिक्॥ स्वरः-१-२६, २८,२९ षड्जः। २७,३१, ३२ गान्धारः। ३० ऋषभः॥

अथ गुणान्तरेण परमात्मा स्तूयते।

अथ गुणान्तरोंसे परमात्माकी स्तुति करते हैं।

त्वं सो॑मासि धार॒युर्म॒न्द्र ओजि॑ष्ठो अध्व॒रे। पव॑स्व मंह॒यद्र॑यिः ॥१॥

त्वं । सोम । असि । धारयुः । मंद्रः । ओजिष्ठः । अध्वरे । पवस्व । मंहयत्ऽरयिः ॥१॥

पदार्थः—(सोम) परमेश्वर ! (त्वं) भवान् (धारयुः) धारणशक्तिमान् तथा (मंद्रः) आनन्दप्रदोस्ति । अथच (ओजिष्ठः) ओजस्व्यस्ति। भवान् (अध्वरे)यज्ञे (मंहयद्रयिः) धनानि ददन् (पवस्व) रक्षयतु ॥

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! (त्वं) तुम (धारयुः) धारण-शक्ति वाले हो । तथा (मंद्रः) तुम आनन्दप्रद हो । और (ओजिष्ठः) ओजस्वी हो । तथा आप (अध्वरे) यज्ञमें (मंहयद्रयिः) धन प्रदान-करते हुए (पवस्व) हमारी रक्षा करें ॥

भावार्थ—इस मंत्रमें परमात्माको सर्वाधार कथन किया है। और सम्पूर्ण धनोंका दातृरूपसे वर्णन किया है ॥१॥

त्वं सुतो नृमादनो दधन्वान्मत्सरिन्तमः ।
इन्द्राय सूरिरन्धसा ॥२॥

त्वं । सुतः । नृऽमादनः । दधन्वान् । मत्सरिन्ऽतमः । इंद्राय । सूरिः । अंधसा ॥२॥

पदार्थः—हे जगदीश ! (त्वं) भवान् (इन्द्राय) कर्म-योगिने (मत्सरिंतमः) आनन्ददायकोस्ति । (सुतः) स्वयम्भूर तथा (नृमादनः) सर्वानन्दजनकः । अथच (दधन्वान्) सर्व-धारकोस्ति। तथा (सूरिः) सर्वोत्पादकोसि त्वम्। अथच (अंधसा) स्वकीयैश्वर्येण सर्वस्मै ऐश्वर्यं ददासि ॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! आप (इन्द्राय) कर्मयोगीके लिये (मत्सरिंतमः) अत्यन्त आह्लादजनक हैं। और (सुतः) स्वयम्भू हैं। तथा (नृमादनः) आप सर्वानन्दजनक हैं। और (दधन्वान्) सबके धारण करने वाले हैं, और (भूरिः) सर्वोत्पादक हैं। तथा (अंधसा) अपने ऐश्वर्यसे सबको ऐश्वर्यशाली बनाते हैं ॥

भावार्थ—परमात्मा उद्योगी पुरुषोंको अपने ऐश्वर्यसे ऐश्वर्यशाली बनाता है ॥२॥

त्वं सुष्वाणो अद्रिभिरभ्यर्ष कनिक्रदत् ।
द्युमन्तं शुष्ममुत्तमम् ॥३॥

त्वं । सुस्वानः । अद्रिऽभिः । अभि । अर्ष । कनिक्रदत् ।
द्युऽमन्तं । शुष्मं । उत्ऽतमं ॥३॥

पदार्थः—(त्वं) भवान् (कनिक्रदत्) वेदवाणिभिः (सुष्वाणः) स्तूयमानोऽस्ति । एवंभूतस्त्वं (द्युमन्तं) दीप्तिमत् (उत्तमं) सर्वोत्कृष्टं (शुष्मं) बलं (अद्रिभिः) स्वकीयादरणीयशक्तिभिः (अभ्यर्ष) प्रापय ॥

पदार्थ—(त्वं) आप (कनिक्रदत्) वेदरूपी वाणियों द्वारा (सुष्वाणः) स्तूयमान हैं। (द्युमन्तं) दीप्ति वाला (उत्तमं) सबसे अच्छे (शुष्मं) बलको (अद्रिभिः) अपने आदरणीय शक्तियोंसे (अभ्यर्ष) प्राप्त कीजिये ॥

भावार्थ—परमात्मा वेदवाणियोंके द्वारा ज्ञानरूपी बलका प्रदान करता है ॥३॥

इन्दुर्हिन्वानो अर्षति तिरो वाराण्यव्यया ।
हरिर्वाजमचिक्रदत् ॥४॥

इंदुः । हिन्वानः । अर्षति । तिरः । वाराणि । अव्यया ।
हरिः । वाजं । अचिक्रदत् ॥४॥

पदार्थः—(इन्दुः) स्वयंप्रकाशः (हिन्वानः) सर्वप्रेरकः परमेश्वरः (तिरः) अज्ञानानि तिरस्कृत्य (वाराणि) वरणीयानि (अव्यया) नित्यज्ञानानि (अर्षति) ददाति । (हरिः) पापहारकः परमात्मा ज्ञानदानाय (वाजं) बलपूर्वकं (अचिक्रदत्) अस्मानाह्वयति ॥

पदार्थ—(इंदुः) स्वयंप्रकाश (हिन्वानः) सर्वप्रेरक परमात्मा (तिरः) अज्ञानको तिरस्कार करके (वाराणि) वरण करने योग्य (अव्यया) नित्यज्ञानोंको (अर्षति) देता है । (हरिः) पूर्वोक्त परमेश्वर ज्ञान देनेके लिये (वाजं) बलपूर्वक (अचिक्रदत्) आह्वान-करता है ॥

भावार्थ—इस मंत्रमें अज्ञानको निवृत्त करके ईश्वरके सद्गुणोंके धारणका उपदेश किया गया है ॥४॥

इन्दो व्यव्यमर्षसि वि श्रवांसि वि सौभगा ।
वि वाजान्त्सोम गोमतः ॥५॥१३॥

इंदो इति । वि । अव्यं । अर्षसि । वि । श्रवांसि । वि ।
सौभगा । वि । वाजान् । सोम । गोऽमतः ॥५॥

पदार्थः—(इन्दो) सर्वैश्वर्यसम्पन्न ! (सोम) हे परमेश्वर ! (अव्यं) अव्ययं (विश्रवांसि) विशेषयशस्तथा (विसौभगा) अधिकसौभाग्यं तथा (गोमतो वि वाजान्) ऐश्वर्यवदधिकबलं च (व्यर्षसि) त्वं ददासि ।

पदार्थ—(इंदो) सर्वैश्वर्यसम्पन्न । (सोम) परमात्मन् ! (अव्यं) अव्यय (विश्रवांसि) विशेष यशको तथा (विसौभगा) विशेष सौभाग्यको और (गोमतो विवाजान्) ऐश्वर्य वाले विशेष बलको (व्यर्षसि) आप देते हैं ॥

भावार्थ—परमात्मा सत्कर्मों द्वारा जिस पुरुषको अपने ऐश्वर्यका पात्र समझता है, उसे अनन्त प्रकारके बल, सौभाग्य तथा यशका प्रदान करता है ॥५॥

आ नं इन्दो शतग्विनं रयिं गोमन्तमश्विनम् ।
भरा सोम सहस्रिणम् ॥६॥

आ । नः । इंदो इति । शतऽग्विनं । रयिं । गोऽमंतं । अश्विनं । भर । सोम । सहस्रिणं ॥६॥

पदार्थः—(इन्दो) सर्वप्रकाशक परमात्मन् ! भवान् (शतग्विनं) शतविधशक्तिमत् तथा (गोमन्तं) ऐश्वर्ययुक्तं (अश्विनं) सर्वत्र व्यापकं (सहस्रिणं) सहस्रविधं (रयिं) धनं (नः) अस्मभ्यं (आभर) देहि ॥

पदार्थ—(इन्दो) हे सर्वप्रकाशक परमात्मन् ! आप (शतग्विनं) सैकड़ों प्रकारकी शक्ति वाले (गोमन्तं) तथा ऐश्वर्य युक्त (अ-

श्विनं) सर्वत्र व्यापक (सहस्रिणं) हजारो प्रकारके (रयिं) धनको (नः) हमको (आभर) दीजिये ॥

भावार्थ—परमात्मा सहस्रों प्रकारके ऐश्वर्यों का प्रदान करनेवाला है ॥६॥

पवमानास इन्दवस्तिरः पवित्रमाशवः ।
इन्द्रं यामेभिराशत ॥७॥

पवमानासः । इंदवः । तिरः । पवित्रं । आशवः । इंद्रं । यामेभिः । आशत ॥७॥

पदार्थः—(पवमानासः) पावकः (इन्दवः) सर्वैश्वर्यसम्पन्नः (आशवः) व्यापकः परमेश्वरः (यामेभिः) स्वकीयानन्तशक्तिभिः (तिरः) अज्ञानानि तिरस्कृत्य (पवित्रं) पूतं (इन्द्रं) कर्मयोगिनं (आशत) प्राप्नोति ।

पदार्थ—(पवमानासः) पवित्र करने वाला तथा (इंदवः) सर्वैश्वर्य सम्पन्न और (आशवः) व्यापक परमात्मा (यामेभिः) अपनी अनन्त शक्तियोंसे (तिरः) अज्ञानोंका तिरस्कार करके (पवित्रं) पवित्र (इन्द्रं) कर्मयोगीको (आशत) प्राप्त होता है ॥

भावार्थ—जो पुरुष ज्ञानयोग वा कर्मयोग द्वारा अपने आत्मको ईश्वरके ज्ञानका पात्र बनाते हैं, उन्हे परमात्मा अपने अनन्त गुणोंसे प्राप्त होता है । अर्थात् वह परमात्माके सच्चिदादि अनेक गुणोंका लाभ करता है ॥७॥

ककुहः सोम्यो रस इन्दुरिन्द्राय पूर्व्यः ।
आयुः पवत आयवे ॥८॥

ककुहः । सोम्यः । रसः । इंदुः । इंद्राय । पूर्व्यः । आयुः । पवते । आयवे ॥८॥

पदार्थः—(ककुहः) महान् (ककुह् इति महन्नामसु पठितम्" नि० ३।१।३।) (सोम्यः) सौम्यस्वभावः (इन्दुः) समस्तैश्वर्ययुक्तः (आयुः) सर्वगः (रसः) रसस्वरूपः (पूर्व्यः) अनादिः परमेश्वरः (आयवे) सर्वत्रगन्तारं (इन्द्राय) कर्मयोगिनं (पवते) पवित्रयति ॥

पदार्थ—(ककुहः) महान् (सोम्यः) सौम्य स्वभाव (इन्दुः) सर्वैश्वर्यसम्पन्न (आयुः) सर्वत्र गन्ता (रसः) रस स्वरूप (पूर्व्यः) अनादि परमात्मा (आयवे) सर्वत्र गति वाले (इन्द्राय) कर्मयोगीको (पवते) पवित्र करता है ॥

भावार्थ—इन्द्र शब्दके अर्थ यहां केवल कर्मयोगी नहीं, किन्तु कर्मयोगी, ज्ञानयोगी दोनोंके हैं। तात्पर्य यह है, कि जो पुरुष कर्म वा ज्ञानद्वारा परमात्माको उपलब्ध करना चाहते हैं, उनके लिये परमात्मा सदैव सुलभ है ॥८॥

हिन्वन्ति सूरमुस्रयः पवमानं मधुश्चुतम् ।
अभि गिरा समस्वरन् ॥९॥

हिन्वंति । सूरं । उस्रयः । पवमानं । मधुऽश्चुतं । अभि । गिरा । सं । अस्वरन् ॥९॥

पदार्थः—(उस्रयः) ज्ञानिनोजनाः (पवमानं) पवितारं (मधुश्चुतं) आमोदवर्षकं (सूरं) परमात्मानं (गिरा)

वेदवाग्भिः (समस्वरन्) स्तुतिं कुर्वन्तः (अभि हिन्वन्ति) परितः-साक्षात्कुर्वन्ति ॥

पदार्थ—(उस्रयः) ज्ञानी लोग (पवमानं) पवित्र करनेवाले (मधुश्चुतं) आनन्दकी वृष्टि करने वाले (सूरं) परमात्माकी (गिरा) वेदवाणियोंसे (समस्वरन्) स्तुति करते हुए (अभिहिन्वन्ति) सब ओरसे साक्षात्कार करते हैं ॥

भावार्थ—विद्वान लोग वेदवाणियों द्वारा पूर्वोक्त परमात्माकी स्तुति करते हैं ॥९॥

अविता नो अजाश्वः पूषा यामनियामनि ।
आ भक्षत्कन्यासु नः ॥१०॥१४॥

अविता । नः । अजऽअश्वः । पूषा । यामनिऽयामनि । आ । भक्षत् । कन्यासु । नः ॥१०॥

पदार्थः—(अजाश्वः) नित्यधनवान् (पूषा) सर्वपालकः परमात्मा (नः) अस्माकं (अविता) पालको भवतु । (यामनियामनि) सर्वस्मिन्काले (कन्यासु) कमनीयपदार्थेषु (नः) अस्मान् (आ भक्षत) गृह्णातु ॥

पदार्थ—(अजाश्वः) नित्यधन वाला (पूषा) सर्वपोषक परमात्मा (नः) हम लोगोंका (अविता) पालन करने वाला हो । (यामनि यामनि) सर्वदा (कन्यासु) कमनीय पदार्थोंमें (नः) हम लोगोंको (आभक्षत्) ग्रहण करे ।

भावार्थ—परमात्मा ईश्वरपरायण लोगोंके लिये सदैव कल्याणकारी होता है ॥१०॥

अयं सोमः कपर्दिने घृतं न पवते मधु ।
आ भक्षत्कन्यासु नः ॥११॥

अयं । सोमः । कपर्दिने । घृतं । न । पवते । मधु । आ । भक्षत् । कन्यासु । नः ॥११॥

पदार्थः—(अयं सोमः) प्रागुक्तः परमेश्वरः (कपर्दिने) कर्मयोगिने (घृतं) स्वप्रेम्णा (मधु न) मधुवत् (पवते) मधुरयति । अथ च (नः) अस्मान् (कन्यासु) कमनीय-पदार्थेषु (आभक्षत्) गृह्णाति ॥

पदार्थ—(अयं सोमः) पूर्वोक्त परमात्मा (कपर्दिने) कर्मयोगी-को (घृतं) अपने प्रेमसे (मधु न) मधुके समान (पवते) मधुर बनाता-है । और (नः) हम लोगोंको (कन्यासु) कमनीय पदार्थोंमें (आभक्षत्) ग्रहण करता है ॥

भावार्थ—परमात्मा कर्मयोगियोंको कमनीय पदार्थोंका प्रदान करता है ॥११॥

अयं त आघृणे सुतो घृतं न पवते शुचि ।
आ भक्षत्कन्यासु नः ॥१२॥

अयं । ते । आघृणे । सुतः । घृतं । न । पवते । शुचि । आ । भक्षत् । कन्यासु । नः ॥१२॥

पदार्थः—(आघृणे) सर्वप्रकाशक परमात्मन् ! (अयं) असौ (सुतः) संस्कृतः (ते) भवतः (शुचि) शुद्धः स्वभावः

(घृतं न) स्नेह इव (पवते) पवित्रयति। अथच (नः) अस्मान् (कन्यासु) कल्याणकारिगुणेषु (आभक्षत्) गृह्णाति॥

पदार्थ—(आघृणे) हे सर्वप्रकाशक परमात्मन्! (अयं) यह (सुतः) संस्कृत (ते) आपका (शुचि) शुद्ध स्वभाव (घृतं न) स्नेहकी तरह (पवते) पवित्र करता है। और (नः) हम लोगोंको (कन्यासु) अपने कल्याणकारक गुणोंमें (आभक्षत्) ग्रहण करता है॥

भावार्थ—जो लोग परमात्मसुखोपलब्धिके लिये सत्कर्म करते हैं, उन्हें परमात्मा मंगलमय बनाता है॥१२॥

वाचो जन्तुः कवीनां पवस्व सोम धारया।
देवेषु रत्नधा असि॥१३॥

वाचः। जंतुः। कवीनां। पवस्व। सोम। धारया। देवेषु। रत्नऽधाः। असि॥१३॥

पदार्थः—(सोम) हे जगदीश! (कवीनां) कविवराणांमध्ये त्वं (वाचोजन्तुः) वेदवाणीजनकोसि। अथ च (देवेषु) विद्वद्भ्यः (रत्नधा असि) विद्यारत्नं धारयसि। एवंभूतस्त्वं (धारया) स्वकीयसुधामय्यावृष्ट्या (पवस्व) पुनीहि॥

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन्! (कवीनां) कवियोंके मध्यमें आप (वाचोजन्तुः) वेदवाणियोंके उत्पादक हैं। और (देवेषु) विद्वानोंको (रत्नधा असि) विद्यारूप रत्न धारण कराते हैं। ऐसे आप (धारया) अपनी सुधामयी वृष्टिसे (पवस्व) पवित्र करिये॥

भावार्थ—परमात्मा ही वस्तुतः आदिकवि है। उसकी कवित्वशक्तिका अनुकरण करके अन्य कवियोंने अपने अपने भावोंको प्रकट किया है॥१३॥

आ कलशेषु धावति श्येनो वर्म वि गाहते ।
अभि द्रोणा कनिक्रदत् ॥१४॥

आ । कलशेषु । धावति । श्येनः । वर्म । वि । गाहते ।
अभि । द्रोणा । कनिक्रदत् ॥१४॥

पदार्थः—जगत्पूज्य परमात्मन् ! (श्येनः) यथा विद्युत् (वर्म) विग्रहवद्वस्तु (विगाहते) अवगाहते । तथा (अभिद्रोणा) प्रतिविग्रहवद्वस्तुनोऽभिमुखं (कनिक्रदत्) सशब्दं प्राप्नोति । इत्थं (कलशेषु) प्रत्येकस्थानेषु (आधावति) भवान् विराजितो भवति ॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (श्येनः) जैसे विद्युत् (वर्म) विग्रहवत् वस्तुका (विगाहते) अवगाहन करती है, और (अभिद्रोणा) प्रत्येक विग्रहवद्वस्तुके अभिमुख (कनिक्रदत्) शब्दायमान होकर प्राप्त होती है, इस प्रकार (कलशेषु) प्रत्येक स्थानमें (आधावति) आप विराजमान होते हैं ॥

भावार्थ—विद्युत् निराकार होकर भी सबसे तेजस्वी, ओजस्वी और शब्दायमान है । इसी प्रकार निराकार परमात्मा तेजस्वी ओजस्वी तथा शब्दयोनि होकर विराजमान है । यहाँ विद्युत्का दृष्टान्त अत्यन्त बल और निराकारके अभिप्रायसे है । किसी और अभिप्रायसे नहीं ॥१४॥

परि प्र सोम ते रसोऽसर्जि कलशे सुतः ।
श्येनो न तक्तो अर्षति ॥१५॥१५॥

परि । प्र । सोम । ते । रसः । असर्जि । कलशे । सुतः ।
श्येनः । न । तक्तः । अर्षति ॥१५॥

पदार्थः—(सोम) हे जगन्नियन्तः ! (श्येनोन) यथा विद्युद् (अर्षति) सर्वत्र गच्छति, तथा (ते) भवतः (सुतः) स्वयंसिद्धः (तक्तः) सर्वगः (रसः) आनन्दः (परि) सर्वतः (कलशे) पूतान्तःकरणेषु (प्रासर्जि) स्थिरोभवति ॥

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! (श्येनोन) जैसे विद्युत् (अर्षति) सर्वत्र गमन करती है, तथा (ते) आपका (सुतः) स्वतःसिद्ध (तक्तः) सर्वत्र गमनशील (रसः) आनन्द (परि) चारो ओर (कलशे) पवित्र-अन्तःकरणोंमें (प्रासर्जि) स्थिर होता है ॥

भावार्थ—जिस प्रकार परमात्मा सर्वत्र व्यापक है, इसी प्रकार उसके आनन्दादि गुण भी सर्वत्र व्यापक हैं ॥१५॥

पवस्व सोम मन्दयन्निन्द्राय मधुमत्तमः ॥१६॥

पवस्व । सोम । मंदयन् । इंद्राय । मधुमत्ऽतमः ॥१६॥

पदार्थः—(सोम) जगज्जनक परमात्मन् ! त्वम् (मधुमत्तमः) अत्यानन्दमयोऽसि । अतः (मंदयन्) आनन्दयन् (इन्द्राय) उद्योगिनं (पवस्व) मंगलमयभावैः पवित्रय ॥

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! आप (मधुमत्तमः) अत्यन्त-आनन्दमय हैं, अतः (मंदयन्) आनन्दित करते हुए (इन्द्राय) उद्योगीके-लिये (पवस्व) मंगलमय भावोंसे पवित्र करिये ॥

भावार्थ—उद्योगी पुरुषको परमात्मा उत्साहित करके पवित्र करता है ॥१६॥

असृग्रन्देववीतये वाजयन्तो रथा इव ॥१७॥

असृग्रन् । देवऽवीतये । वाजऽयंतः । रथाःऽइव ॥१७॥

पदार्थः—(देववीतये) देवमार्गप्राप्तये (वाजयंतः) बलवन्तः (रथा इव) रथवत् उद्योगिनः (असृग्रन्) विरच्यन्ते ॥

पदार्थ—(देववीतये) देवमार्गकी प्राप्तिके लिये (वाजयंतः) बल वाले (रथा इव) रथोंकी तरह उद्योगी लोग (असृग्रन) रचे जाते हैं ॥

भावार्थ—"आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेवतु" कठ. १।२।३ । इस वाक्यमें जैसे शरीरको रथ बनाया है, इसी प्रकार यहां-भी रथका दृष्टान्त है । तात्पर्य यह है, कि जिन पुरुषोंके शरीर दृढ़ होते-हैं, वा यों कहो कि परमात्मा पूर्वकर्मानुसार जिन पुरुषोंके शरीरोंको दृढ़ बनाता है, वे कर्मयोगके लिये अत्यन्त उपयोगी होते हैं ॥१७॥

ते सुतासो मदिन्तमाः शुक्रा वायुमसृक्षत ॥१८॥

ते । सुतासः । मदिन्ऽतमाः । शुक्राः । वायुं । असृक्षत ॥१८॥

पदार्थः—(ते) भवतः (सुतासः) संस्कृताः (मदिन्तमाः) अमोदजनकाः (शुक्राः) स्वभावाः (वायुं) कर्मयोगिनं (असृक्षत) उत्पादयन्ति ॥

पदार्थ—(ते) तुम्हारे (सुतासः) संस्कृत (मदिन्तमाः) आह्लाद-जनक (शुक्राः) स्वभाव (वायुं) कर्मयोगीको (असृक्षत) उत्पन्न करते हैं ॥

भावार्थ—तात्पर्य यह है, कि जिसको परमात्मा उत्तम शील देता है, वही कर्मयोगी बनता है, अन्य नहीं ॥१८॥

ग्राव्णा तुन्नो अभिष्टुतः पवित्रं सोम गच्छसि ।
दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥१९॥

ग्राव्णा । तुन्नः । अभिऽस्तुतः । पवित्रं । सोम । गच्छसि । दधत् । स्तोत्रे । सुऽवीर्यं ॥१९॥

पदार्थः—(ग्राव्णा) जिज्ञासुभिः (तुन्नः) आविर्भूतस्तथा (अभिष्टुतः) सर्वथा स्तुतः (सोम) हे जगदीश ! भवान् (पवित्रं) पूर्वोक्तानां कर्मयोगिनामन्तःकरणानि (गच्छसि) प्राप्नोति । अथ च (स्तोत्रे) उक्तस्तोतृभ्यस्त्वम् (सुवीर्यं) सुबलं (दधत्) उत्पादयसि ॥

पदार्थ—(ग्राव्णा) जिज्ञासुओंसे (तुन्नः) आविर्भावको प्राप्त हुए तथा (अभिष्टुतः) सब प्रकारसे स्तुति किये हुए (सोम) हे परमात्मन् ! आप (पवित्रं) उनके पवित्र अन्तःकरणोंको (गच्छसि) प्राप्त होते हैं । और (स्तोत्रे) उक्त स्तोता लोगोंके लिये आप (सुवीर्यं) सुन्दर बलको (दधत्) उत्पन्न करते हैं ॥

भावार्थ—उपासक लोगोंसे उपासना किया हुआ परमात्मा उनके लिये सुन्दर बलका प्रदान करता है ॥१९॥

एष तुन्नो अभिष्टुतः पवित्रमति गाहते ।
रक्षोहा वारमव्ययम् ॥२०॥१६॥

एषः । तुन्नः । अभिऽस्तुतः । पवित्रं । अति । गाहते । रक्षःऽहा । वारं । अव्ययं ॥२०॥

पदार्थः—(एषः) पूर्वोक्तः परमात्मा (तुन्नः) योऽज्ञाननिवृत्याऽऽविर्भूतस्तथा (अभिष्टुतः) सर्वथा स्तुतः स जगदीश्वरः (पवित्रं) शुद्धान्तःकरणं (अतिगाहते) प्रकाशितं करोति । अथ-

च (रक्षोहा) दुष्टनाशकस्तथा (अव्ययं) अविनाशी परमात्मास्ति तथा (वारं) भजनीयश्च ॥

पदार्थ—(एषः) उक्त परमात्मा (तुम्नः) जो अज्ञाननिवृत्तिद्वारा आविर्भावको प्राप्त हुआ है, और (अभिष्टुतः) सब प्रकारसे स्तुति किया गया है, वह (पवित्रं) पवित्र अन्तःकरणको (अति गाहते) प्रकाशित करता है। और (रक्षोहा) दुष्टोंका विघातक तथा (अव्ययं) अविनाशी और (वारं) भजनीय है ॥

भावार्थ—इस मंत्रमें परमात्माके दण्डदातृत्व और अविनाशित्वादि धर्मोंका कथन किया गया है ॥२०॥

यदन्ति यच्च दूरके भयं विन्दति मामिह ।
पवमान वि तज्जहि ॥२१॥

यत् । अंति । यत् । च । दूरके । भयं । विंदति । मां । इह । पवमान । वि । तत् । जहि ॥२१॥

पदार्थः—(पवमान) सर्वपवित्रयितः परमात्मन्! (मामिह) मामस्मिन्संसारे (यत् भयं) यत्किमपि भयं (विंदति) प्राप्तं वर्तते (च) अथ च (यत्) यद्विघ्नं (अंति) सन्निकटं वर्तते तथा (दूरके) दूरमस्ति (तत्) तान् (विजहि) सर्वथा नाशय॥

पदार्थ—(पवमान) सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! आप (मामिह) मुझको इस संसारमें (यद्) जो (भयं) भय (विंदति) प्राप्त है (च) और (यद्) जो विघ्न (अंति) मेरे समीप तथा (दूरके) दूर हैं (तत्) उनको (विजहि) सर्वथा नाश करें ॥

भावार्थ--इस मंत्रमें परमात्मासे भय और विघ्नोंके नाश करनेकी प्रार्थना की गई है ॥२१॥

पवमानः सो अद्य नः पवित्रेण विचर्षणिः ।
यः पोता स पुनातु नः ॥२२॥

पवमानः । सः । अद्य । नः । पवित्रेण । विचर्षणिः । यः । पोता । सः । पुनातु । नः ॥२२॥

पदार्थः—(सः) स परमात्मा (नः) अस्माकं (पवमानः) पवित्रयिता तथा (विचर्षणिः) सकलद्रष्टास्ति । अथच (पवित्रेण) स्वकीयपवित्रधर्मेण (यः) य ईश्वरः (पोता) सकलपावकोस्ति (सः) असौ जगज्जनकः परमेश्वरः (नः) अस्मान् (अद्य पुनातु) अद्यैव पवित्रयतु ॥

पदार्थ—(सः) वह परमात्मा (नः) हम लोगोंको (पवमानः) पवित्र करने वाला तथा (विचर्षणिः) सर्वद्रष्टा है, और (पवित्रेण) अपने पवित्र धर्मोंसे (यः) जो (पोता) सबको पवित्र करने वाला है (सः) वह (नः) हमको (अद्य) अब (पुनातु) पवित्र करे ॥

भावार्थ—इस मंत्रमें इस अपूर्वताका उपदेश किया गया है, कि उपासनाकालमें उपासक अपनी पवित्रताका अनुसन्धान करे। और उसकी न्यूनता देख कर उसकी याचना परमेश्वरसे अवश्यमेव करे ॥२२॥

यत्ते पवित्रमर्चिष्यग्ने विततमन्तरा ।
ब्रह्म तेन पुनीहि नः ॥२३॥

यत् । ते । पवित्रं । अर्चिषि । अग्ने । विऽततं । अंतः ।
आ । ब्रह्म । तेन । पुनीहि । नः ॥२३॥

पदार्थः—(अग्ने) ज्ञानस्वरूप जगन्नियन्तः ! (यत्) यानि (ते अन्तः) त्वयि (पवित्रं) शुद्धानि (आवितत) विस्तृतानि (अर्चिषि) ज्योतींषि (तेन) तैः (ब्रह्म) हे परमेश्वर ! (नः) अस्मान् (पुनीहि) पवित्रय ॥

पदार्थ—(अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप परमात्मन् ! (यत्) जो (ते अन्तः) तुममें (पवित्रं) पवित्र (आवितत) विस्तृत (अर्चिषि) ज्योतियें हैं,–(तेन) उनसे (ब्रह्म) हे परमात्मन् ! (नः) हम लोगोंको (पुनीहि) पवित्र करिये ॥

भावार्थ—ब्रह्म शब्दके अर्थ यहां परमात्माके हैं । सायणाचार्यने इसके अर्थ शरीरके किये हैं, जो कि वेदाशयसे सर्वथा विरुद्ध है ॥२३॥

पवित्रमर्चिवदग्ने तेन पुनीहि नः ।
ब्रह्मसवैः पुनीहि नः ॥२४॥

यत् । ते । पवित्रं । अर्चिऽवत् । अग्ने । तेन । पुनीहि ।
नः । ब्रह्मऽसवैः । पुनीहि । नः ॥२४॥

पदार्थः—(अग्ने) ज्ञानस्वरूप परमात्मन् ! (ते) तव (यत) यत (पवित्रं) पूतं (अर्चिवत्) सूर्यादिषु तेजोरित (तेन) तेन तेजसा (नः) अस्मान् (पुनीहि) पवित्रय । तथा (ब्रह्मसवैः) स्वीयब्रह्मभावेन (नः) अस्मान् (पुनीहि) पवित्रय ॥

पदार्थ—(अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप परमात्मन् ! (ते) आपका (यत्) जो (पवित्रं) पवित्र (आर्चिवत्) सूर्यादिकोंमें तेज है (तेन) उससे (नः) हम लोगोंको (पुनीहि) पवित्र करिये । तथा (ब्रह्मसवैः) अपने ब्रह्म भावसे (नः) हम लोगोंको (पुनीहि) पवित्र करिये ॥

भावार्थ—परमात्मा सूर्यादि सब दिव्य पदार्थोंका प्रकाशक है, और उसीके प्रकाशसे प्रकाशित होकर सब तेजोमय प्रतीत होतेहैं ॥२४॥

उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च ।
मां पुनीहि विश्वतः ॥२५॥१७॥

उभाभ्यां । देव । सवितरिति । पवित्रेण । सवेन । च ।
मां । पुनीहि । विश्वतः ॥२५॥

पदार्थः—(देव) प्रशंसनीयगुण परमात्मन् ! (सवितः) हे-सर्वजनक ! त्वम् (उभाभ्यां) ज्ञानयोगकर्मयोगाभ्यां (मां) मां (विश्वतः) परितः (पुनीहि) पवित्रय । (च) अथच (पवित्रेण) शुद्धेन (सवेन) ब्रह्मभावेन मां पवित्रय ॥

पदार्थ—(देव) दिव्यगुणसम्पन्न परमात्मन् ! (सवितः) हे सर्वोत्पादक ! आप (उभाभ्यां) ज्ञानयोग तथा कर्मयोग द्वारा (मां) मुझको (विश्वतः) सब ओरसे (पुनीहि) पवित्र करिये (च) और (पवित्रेण) पवित्र (सवेन) ब्रह्मभावसे मुझे पवित्र करिये ॥

भावार्थ—जो लोग अपनेमें ज्ञानयोग और कर्मयोगकी न्यूनता समझते हैं, वे परमात्मासे ज्ञानयोग तथा कर्मयोगकी प्रार्थना करें ॥२५॥

त्रिभिष्ट्वं देव सवितर्वर्षिष्ठैः सोम धामभिः ।
अग्ने दक्षैः पुनीहि नः ॥२६॥

त्रिऽभिः । त्वं । देव । सवितः । वर्षिष्ठैः । सोम । धामऽभिः । अग्ने । दक्षैः । पुनीहि । नः ॥२६॥

पदार्थः—(अग्ने) ज्ञानस्वरूप परमात्मन् ! (सवितः) हे सर्वोत्पादक ! (देव) दिव्यगुणसम्पन्न परमेश्वर ! (त्वम्) त्वम् (त्रिभिः) त्रिभिः (धामभिः) शरीरैः (वर्षिष्ठैः) श्रेष्ठैस्तथा (दक्षैः) दक्षतायुक्तैः (सोम) हे परमात्मन् ! (नः) अस्मान् (पुनीहि) पवित्रय ॥

पदार्थ—(सोम) परमात्मन् ! (अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप ! (सवितः) हे सर्वोत्पादक ! (देव) हे दिव्यगुणसम्पन्न परमात्मन् ! (त्वं) आप (त्रिभिः) तीन (धामभिः) शरीरोंसे (वर्षिष्ठैः) जो श्रेष्ठ हैं, तथा (दक्षैः) दक्षतायुक्त हैं, उनसे (नः) हम लोगोंको (पुनीहि) पवित्र करिये ॥

भावार्थ—इस मंत्रमें सूक्ष्म, स्थूल, और कारण इन तीनों शरीरोंके शुद्धिकी प्रार्थना है। प्रलयकालमें जीवात्मा जब प्रकृतिलीन होकर रहता है, उसका नाम कारणशरीर है। तथा जिसके द्वारा जन्मान्तरको प्राप्त होता है, उसका नाम सूक्ष्मशरीर है। और तीसरा स्थूलशरीर है। इन तीनों शरीरोंकी पवित्रताका उपदेश यहां किया गया है ॥२६॥

पुनन्तु मां देवजनाः पुनन्तु वसवो धिया ।
विश्वे देवाः पुनीत मा जातवेदः पुनीहि मा ॥२७॥

पुनन्तु । मां । देवऽजनाः । पुनन्तु । वसवः । धिया । विश्वे । देवाः । पुनीत । मा । जातऽवेदः । पुनीहि । मा ॥२७॥

पदार्थः—(देवजनाः) विद्वज्जनाः (मां) मामुपदेशेन

(पुनन्तु) पवित्रयन्तु (वसवः) नैष्ठिका ब्रह्मचारिणः (धिया) स्वीयशुभबुद्ध्या (पुनन्तु) पवित्रयन्तु (विश्वे देवाः) हे विद्वांसः ! (मां) मां (पुनीत) यूयं पवित्रयत । तथा (जातवेदः) हे जगदीश्वर ! (मा) मां (पुनीहि) पवित्रय ॥

पदार्थ—(देवजनाः) विद्वान् जन (मां) मुझको उपदेश-द्वारा (पुनंतु) पवित्र करें । (वसवः) नैष्ठिक ब्रह्मचारीगण (धिया) अपनी शुभबुद्धि द्वारा (पुनन्तु) पवित्र करें (विश्वेदेवाः) हे विद्वानों ! (मां) मुझको आप लोग (पुनीत) पवित्र करें । तथा (जातवेदः) हे परमात्मन् ! (मा) मुझको (पुनीहि) पवित्र करिये ॥

भावार्थ —इस मंत्रमें परमात्मानें विद्वानोंके उपदेशों द्वारा पवित्रता-का उपदेश दिया है, कि हे जीवो ! तुम अपने विद्वानोंसे तथा ब्रह्मचारि-गणोंसे सदैव सद्बुद्धिका ग्रहण किया करो ॥१७॥

प्र प्यायस्व प्र स्यन्दस्व सोम विश्वेभिरंशुभिः ।
देवेभ्य उत्तमं हविः ॥१८॥

प्र । प्यायस्व । प्र । स्यंदस्व । सोम । विश्वेभिः । अंशुऽभिः ।
देवेभ्यः । उत्ऽतमं । हविः ॥१८॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! त्वम (प्रप्यायस्व) मां वर्द्धय । तथा (विश्वेभिरंशुभिः) स्वीयसम्पूर्णभावैर्द्रवीभूय (प्रस्यन्दस्व) कृपालुर्भव । तथा (देवेभ्यः) विद्वद्भ्यः (उत्तमं हविः) सर्वो-त्तमदानरूपभावान् प्रदेहि ॥

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! आप (प्रप्यायस्व) हमको वृद्धि-युक्त करें । तथा (विश्वेभिरंशुभिः) अपने सम्पूर्ण भावोंसे द्रवीभूत होकर

(प्रस्यन्दस्व) कृपायुक्त हों । तथा (देवेभ्यः) विद्वानोंके लिये (उत्तमं हविः) उत्तम दान रूपी भावोंका प्रदान करें ॥

भावार्थ—परमात्मा ही एकमात्र तृप्तिका कारण है । वह अपने ज्ञानके प्रदानसे हमको तृप्त करे ॥२८॥

उप॑ प्रि॒यं पनि॑प्नतं॒ युवा॑नमाहुती॒वृध॑म् ।
अग॑न्म॒ बिभ्र॑तो॒ नमः॑ ॥२९॥

उप॑ । प्रि॒यम् । पनि॑प्नतम् । युवा॑नम् । आ॒हु॒ति॒ऽवृध॑म् । अग॑न्म । बिभ्र॑तः । नमः॑ ॥२९॥

पदार्थः—(प्रियं) सर्वानन्ददायकं (पनिप्नतं) वेदादि-शब्दराश्याविर्भावकं (युवानं) सदैकरसं (आहुतीवृधं) प्रकृत्या-महान्तं परमात्मानं (नमः) नम्रतादिभावान् (बिभ्रतः) धार-यन्तो वयं (उपागन्म) प्राप्नुमः ॥

पदार्थ—(प्रियं) सबको प्रसन्न करने वाले (पनिप्नतं) वेदादि-शब्दराशिके आविर्भावक (युवानं) सदा एकरस (आहुतीवृधं) जो अपनी प्रकृतिरूपी आहुतिसे बृहत् हैं, उक्त गुणसम्पन्न परमात्माको (नमः) नम्रतादिभावोंको (विभ्रतः) धारण करते हुए हम लोग (उपागन्म) प्राप्त हों ॥

भावार्थ—इस मन्त्रमें परमात्मा नम्रतादि भावोंका उपदेश करता है, कि हे मनुष्यो ! तुम नम्रतादि भावोंको धारण करते हुए, उक्त प्रकारकी प्रार्थनाओंसे मुझको प्राप्त हो ॥ २९ ॥

अला॑य्यस्य पर॒शुर्न॑नाश॒ तमा प॑वस्व देव सोम ।
आ॒खुं चि॑दे॒व दे॑व सोम ॥३०॥

अलाय्यस्य । परशुः । ननाश । तं । आ । पवस्व । देव ।
सोम । आखुं । चित् । एव । देव । सोम ॥३०॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (देव) हे दिव्यगुण-युक्त ! (अलाय्यस्य) सर्वत्र व्याप्तशत्रोर्यत् (परशुः) अस्त्रं (तं) तत् (आखुंचित्) सर्वघातकमस्त्रं (ननाश) नाशय । (देव) हे परमात्मन् ! (आपवस्व) मां पवित्रय ।

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! (देव) दिव्यगुणसम्पन्न ! (अलाय्यस्य) सर्वत्र व्याप्त शत्रुका जो (परशुः) अस्त्र है (तं) उस (आखुंचित्) सर्वघातक अस्त्रको (ननाश) नाश करिये । (देव) हे-परमात्मन् ! (आपवस्व) आप मुझको पवित्र करें ॥

भावार्थ—परमात्मा जिनमें, दैवी सम्पत्तिके गुण समझता है, उनको वृद्धियुक्त करता है, और जिनमें आसुरी भावके अवगुण देखता है, उनका नाश करता है ॥३०॥

यः पावमानीरध्येत्यृषिभिः सम्भृतं रसम् ।
सर्वं स पूतमश्नाति स्वदितं मातरिश्वना ॥३१॥

यः । पावमानीः । अधिऽएति । ऋषिऽभिः । संऽभृतं । रसं ।
सर्वं । सः । पूतं । अश्नाति । स्वदितं । मातरिश्वना ॥३१॥

पदार्थः—(यः) योजनः (पावमानीः) परमेश्वरस्तुति-रूपा ऋचः (अध्येति) पठति (सः) स पुरुषः (ऋषिभिः) मन्त्रद्रष्टृभिः (संभृतं) स्पष्टीकृतं (रसं) ब्रह्मानन्दं (अ-

श्नाति) भुनक्ति " रसोवैसः, रसंह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति" इति तै.२।७ । अथ च (सर्वं) सम्पूर्णं (मातरिश्वना स्वदितं) वायुना स्वादूकृतं (पूतं) शुद्धं पदार्थमश्नाति ॥

पदार्थ—(यः) जो जन (पावमानीः) परमेश्वरस्तुतिरूप-ऋचाओंको (अध्येति) पढ़ता है (सः) वह (ऋषिभिः) मन्त्रद्रष्टाओं-से (संभृतं) स्पष्ट किया हुआ (रसं) ब्रह्मानन्दको (अश्नाति) भोगता है । और (सर्वं) सम्पूर्ण (मातरिश्वना स्वदितं) वायुसे स्वादू-कृत (पूतं) पवित्र पदार्थोंको (अश्नाति) भोगता है ॥

भावार्थ—जो लोग परमात्माके पवित्र गुणोंका सहारा लेते हैं, वे ब्रह्मानन्द रसका पान करते हैं । और उनके लिये वायुके पवित्र-किये हुए पदार्थ, मधुर रसोंके प्रदाता होते हैं । तात्पर्य यह है, कि वायु फलोंमें एक प्रकारका माधुर्य उत्पन्न करता है । उस माधुर्यके भोक्ता पुण्यात्मा ही हो सकते हैं, अन्य नहीं ॥३१॥

पावमानीर्यो अध्येत्यृषिभिः सम्भृतं रसम् ।
तस्मै सरस्वती दुहे क्षीरं सर्पिर्मधूदकम् ॥३२॥१८॥३॥

पावमानीः । यः । अधिऽएति । ऋषिऽभिः । सम्ऽभृतं । रसं ।
तस्मै । सरस्वती । दुहे । क्षीरं । सर्पिः । मधु । उदकं ॥३२॥

पदार्थः—(यः) यो जनः (पावमानीः) जगदीश्वरस्तवन-रूपा ऋचः (अध्येति) अधीते (तस्मै) तस्मै (ऋषिभिः) मंत्रदर्शिभिः (सम्भृतं) सम्पादितं (रसं) रसं तथा (क्षीरं-सर्पिर्मधूदकं) दुग्धघृतजलानि (सरस्वती) ब्रह्मविद्या (दुहे) दोग्धि ॥

पदार्थ—(यः) जो जन (पावमानीः) परमेश्वरस्तुतिरूप ऋचा-ओंको (अध्येति) पढ़ता है (तस्मै) उसके लिये (ऋषिभिः) मंत्रद्रष्टाओंसे

(सम्भृतं) स्पष्टीकृत (रसं) रसका और (क्षीरं सर्पिर्मधूदकम्) दूध, घी, मधु, और जलका (सरस्वती) ब्रह्मविद्या (दुहे) दोहन करती है ॥

भावार्थ—जो लोग परमात्माके शरणागत होते हैं, उनके लिये मानो (सरस्वती) ब्रह्मविद्या स्वयं दुहने वाली बन कर दूध, घी, मधु और नाना प्रकारके रसोंका दोहन करती है । वा यों कहो, कि माताके-समान (सरस्वती) विद्या नाना प्रकारके रसोंको अपने विज्ञानमय-स्तनोंसे पान कराती है ॥३२॥

इति सप्तषष्ठितमं सूक्तमष्टादशोवर्गश्च समाप्तः ॥

यह ६७ वां सूक्त और १८ वां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथदशर्चस्याष्टषष्ठितमस्य सूक्तस्य—

१–१० वत्सप्रिर्भालन्दन ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः--१,३,६,७ निचृज्जगती । २,४,५,९ जगती । ८ विराड्जगती । १० त्रिष्टुप् ॥ स्वरः--१--९ निषदः । १० धैवतः ॥

अथेश्वरोपासकानां विदुषां गुणा वर्ण्यन्ते ॥

अब ईश्वरके उपासकोंके गुणवर्णन करते हैं ॥

प्र देवमच्छा मधुमन्त इन्दवोऽसिष्यदन्त गाव आ न धेनवः ।
बर्हिषदो वचनावन्त ऊधभिः परिस्रुतमुस्रिया निर्णिजं धिरे ॥१॥

प्र । देवं । अच्छ । मधुऽमंतः । इंदवः । असिस्यदंत ।

गावः । आन । धेनवः । बर्हिऽसदः । वचनाऽवंतः । ऊधऽभिः। परिऽस्रुतं । उस्रियाः । निःऽनिजं । धिरे ॥ १ ॥

पदार्थः—(इंदवः) विद्वांसः (मधुमंतः) मधुरोपदेशवन्तः (देवं) परमात्मानं (अच्छ) प्रति (प्रासिष्यदंत) नम्रतयोपगच्छन्ति । (गावोधेनवो न) यथा प्रकाशिका वाण्यः (वचनावन्तः) सदुपदेशवत्यः (बर्हिषदः) प्रतिष्ठिताः (ऊधभिः) ज्ञानामृतधारिण्यः (उस्रियाः) दीप्तिमत्यः (परिश्रुतं) व्याप्तशीलं (निर्णिजं) शुद्धज्ञानं (आधिरे) दधति तथोक्ता विद्वांसोज्ञानं धारयन्ति ॥

पदार्थ—(इंदवः) परम विद्वान् (मधुमंतः) मीठे उपदेशों वाले (देवं) परमात्माके (अच्छ) प्रति (प्रासिष्यदंत) नम्रीभूत हो कर जाते हैं । (गावोधेनवोन) जैसे प्रकाश करने वाली वाणियें (वचनावन्तः) सदुपदेश वाली (बर्हिषदः) प्रतिष्ठा वाली (ऊधभिः) ज्ञानरूपी अमृतको धारण करने वाली (उस्रियाः) सुदीप्ति वाली (परिस्रुतं) व्याप्तशील (निर्णिजं) शुद्ध ज्ञानको (आधिरे) धारण कराती हैं, इसी प्रकार उक्त विद्वान् ज्ञानको धारण कराते हैं ॥

भवार्थ—परमात्माके मार्गका उपदेश करने वाले विद्वान्, वाग्धेनु के समान सद् ज्ञानका उपदेश करते हैं । जिस प्रकार सद्वाणी सद्ज्ञानको उत्पन्न करती है, इसी प्रकार सम्यग्ज्ञाता विद्वान् सत्का उपदेश करके सच्चे ज्ञानका उपदेश करते हैं ॥ १ ॥

स रोरुवदभि पूर्वा अचिक्रददुपारुहः श्रथयन्त्स्वादते हरिः । तिरः पवित्रं परियन्नुरु ज्रयो नि शर्याणि दधते देव आ वरम् ॥२॥

सः । रोरुवत् । अभि । पूर्वाः । अचिक्रदत् । उपऽआरुहः ।

श्रथयन् । स्वादते । हरिः । तिरः । पवित्रं । परिऽयन् ।
उरु । ज्रयः । नि । शर्याणि । दधते । देवः । आ । वरं ॥२॥

पदार्थः—(हरिः) अपगुणापहारकः (उपारुहः) उन्नतिशीलः (सः) पूर्वोक्तोविद्वान् (रोरुवत्) बलपूर्वकमुपदिशन् तथा (श्रथयन्) सत्यासत्यं विभेदयन् जिज्ञासुं (स्वादते) संस्करोति। अथच (पूर्व्याः) अनादिसिद्धपरमेश्वरस्तुतिं (अभ्यचिक्रदत्) विशालयति। तथा (देवः) दिव्यगुणो विद्वान् (शर्याणि) अज्ञानानि (तिरः) तिरष्कृत्य (पवित्रं) शुद्धज्ञानं (परियन्) प्रकाशयन् (उरु) महान्तं (ज्रयः) कर्मयोगिनं (निदधते) धारयति। अथ च (वरं) वरणीयपदार्थं (आ) आदधते आददातीतियावत् ॥

पदार्थ—(हरिः) दुर्गुण दूर करने वाला (उपारुहः) उन्नतिशील (सः) पूर्वोक्त विद्वान् (रोरुवत्) बलपूर्वक उपदेश करता हुआ, तथा (श्रथयन्) सत्यानृतका विभेद करता हुआ, जिज्ञासुको (स्वादते) संस्कारी बनाता है। और (पूर्व्याः) अनादिसिद्ध परमात्माकी स्तुतिको (अभ्यचिक्रदत्) विशाल करता है। और (देवः) दिव्यगुणयुक्त विद्वान् (शर्याणि) अज्ञानोंका (तिरः) तिरस्कार करके (पवित्रं) पवित्र ज्ञानको (परियन्) प्रकाश करते हुए (उरु) बड़े (ज्रयः) कर्मयोगीको (निदधते) धारण कराता है। तथा (वरं) वरणीय पदार्थको (आ) (आदधते) देता है ॥

भावार्थ—सदुपदेश द्वारा अज्ञानोंको निवृत्त करना पूर्ण विद्वान्का ही काम है। पूर्ण विद्वान्के उपदेशसे मनुष्य ज्ञानी और विज्ञानी बनकर मनुष्यजन्मके फलको उपलब्ध करता है ॥२॥

वि यो ममे युम्यां संयती मदः साकंवृधा पयसा पिन्वदक्षिता ।
मही अपारे रजसी विवेविदद्भिव्रजन्नक्षितं पाज आ ददे ॥३॥
वि । यः । ममे । यम्या । संयती इति संऽयती । मदः ।
साकंऽवृधा । पयसा । पिन्वत् । अक्षिता ।
मही इति । अपारे । इति । रजसी इति विऽवेविदत् ।
अभिऽव्रजन् । अक्षितं । पाजः । आ । ददे ॥

पदार्थः—(यो मदः) योह्यानन्दवर्धकःकर्मयोगी (यम्या) युगलस्य (संयती) मिथःसम्बद्धस्य पृथिवीलोकस्य द्युलोकस्य-च ज्ञानं (विममे) उत्पादयति, अथ च (साकं) सहैव (पयसावृधा) ऐश्वर्येणाभ्युदयंगतानि (अक्षिता) अक्षीणानि द्युलोकज्ञानानि (पिन्वत्) वर्धयति । अथ च पूर्वोक्तोविद्वान् (रजसी) आकर्षणशीले (मही अपारे) पाररहितद्यावा-पृथिव्यौ ज्ञानेन (विवेविदत) व्यक्तयति । तथा (अभिव्रजन्) अप्रतिहतगतिःसन् (अक्षितं पाज आददे) अनश्वरं बलं ददाति ॥

पदार्थ—(यो मदः) जो आनन्दका बर्धक कर्मयोगी (यम्या) युगल (संयती) परस्पर संबद्ध पृथिवीलोक और द्युलोकके ज्ञान-को (विममे) उत्पन्न करता है । और (साकं) साथ ही (पयसा वृधा) ऐश्वर्यसे बढ़ा हुआ (अक्षिता) अक्षीण द्युलोक (रजसी) जो आकर्षण-शील है, उसको ज्ञान द्वारा (विवेविदत) व्यक्त करता है । तथा (अभि-व्रजन्) अव्याहत गति होता हुआ (अक्षितं पाज आददे) क्षयरहित बलको देता है ॥

भावार्थ--कर्मयोगी विद्वान्के उपदेशसे ही मनुष्यको पृथिवी-लोक और द्युलोकका ज्ञान होता है। और उसीके सदुपदेशसे अक्षय-बल मिलता है ॥३॥

स मातरा विचरन्वाजयन्नपः प्र मेधिरः स्वधया पिन्वते पदम्।
अंशुर्यवेन पिपिशे यतो नृभिः सं जामिभिर्नसते रक्षते शिरः ॥४

सः। मातरा। विऽचरन्। वाजयन्। अपः। प्र। मेधिरः। स्वधया। पिन्वते। पदं। अंशुः। यवेन। पिपिशे। यतः। नृऽभिः। सं। जामिऽभिः। नसते। रक्षते। शिरः ॥

पदार्थः--(सः) असौ (मेधिरः) प्राज्ञः कर्मयोगी (मातरा) द्यावापृथिव्योः (विचरन्) परिभ्रमन् तथा (अपः) कर्मयोगस्य (वाजयन्) बलं प्रददन् (पदं) कर्मयोगपदं (स्वधया) अनुष्ठान-रूपक्रियया (पिन्वते) पुष्णाति (अंशुः) ज्ञानप्रकाशेन प्रदीप्तो-विद्वान् (यवेन) स्वकीयभवाप्ययययोगेन (पिपिशे) योगाङ्गं दधाति (यतः) यतः स कर्मयोगी (जामिभिर्नृभिः) परस्पर-संगत्या गन्तृजिज्ञासुद्वारा (संनसते) स्वकीयकर्तव्यपालनं करोति। अथ च (शिरः) शीर्णान् पतितानितियावत् (रक्षते) पवते ॥

पदार्थ--(सः) वह (मेधिरः) प्राज्ञ कर्मयोगी (मातरा) सब जीवोंकी माताके समान द्युलोकमें तथा पृथिवीलोकमें (विचरन्) विचरता हुआ और (अपः) कर्मरूपी योगका (वाजयन्) बल प्रदान करता हुआ (पदं) कर्मयोगके पदको (स्वधया) अनुष्ठानरूप क्रिया-से (पिन्वते) पुष्ट करता है। (अंशुः) ज्ञानरूप प्रकाशसे प्रदीप्त विद्वान् (यवेन) अपने भव और अप्ययरूप योगसे (पिपिशे) योगाङ्गको धारण-

करता है । (यतः) जिससे कर्मयोगी (आमिभिर्नृभिः) परस्पर संगति-बांध कर चलने वाले जिज्ञासु द्वारा (संनसते) अपने कर्तव्यका पालन-करता है । और (शिरः) पतित पुरुषोंकी (रक्षते) रक्षा करता है ॥

भावार्थ—कर्मयोगीका यह कर्तव्य है, कि वह अकर्मण्यतादोष-ग्रस्त मनुष्योंमें उद्योग उत्पन्न करके उनमें जागृति उत्पन्न करे ॥४॥

सं दक्षे॑ण मन॑सा जायते क॒विर्ऋ॒तस्य॒ गर्भो॒ निहि॑तो य॒मा प॒रः ।
यूना॑ ह॒ सन्ता॑ प्रथ॒मं वि ज॑ज्ञतु॒र्गुहा॑ हि॒तं जनि॑म॒ नेम॒मुद्य॑तम् ॥५॥

सं । दक्षे॑ण । मन॑सा । जा॒य॒ते॒ । क॒विः । ऋ॒तस्य॑ । गर्भः॑ । नि-ऽहि॑तः । य॒मा । प॒रः । यूना॑ । ह॒ । संता॑ । प्र॒थ॒मं । वि । ज॒ज्ञ॒तुः । गुहा॑ । हि॒तं । जनि॑म । नेमं॑ । उत्ऽय॑तं ॥

पदार्थः—स कर्मयोगी (दक्षेण मनसा) समाहितमनसा (ऋतस्य कविः संजायते) सत्यस्य कथनकर्ता भवति । (यमा) परमात्मना स कर्मयोगी (परः) उत्तमः (निहितः) सुरक्षितः (गर्भः) गर्भस्थानीयः कृतः । (यूना संता) कर्मयोगिज्ञानयोगिनावुभावपि कर्मयोगज्ञानयोगौ प्रपूरयंतौ (ह) प्रसिद्धौ (गुहाहितं) अन्तःकरणगुहास्थितं परमात्मानं (प्रथमं) पूर्वं (विजज्ञतुः) विजानीतः । यः परमात्मा (जनिम) सर्वोत्पादकस्तथा (नेमं) सर्वनियामकोऽस्ति । अथच (उद्यतं) सर्वोपरि बलरूपोऽस्ति ॥

पदार्थ—वह कर्मयोगी (दक्षेण मनसा) समाहित मनसे (ऋतस्य कविः संजायते) सचाईका कथन करने वाला होता है । (यमा) ईश्वरने उसे (परः) सर्वोपरि (निहितः) सुरक्षित (गर्भः) गर्भस्थानीय बनाया ।

(यूना संता) कर्मयोग तथा ज्ञानयोगको पूर्ण करते हुए ज्ञानयोगी और कर्मयोगी यह (ह) प्रसिद्ध दोनों (गुहाहितं) अन्तःकरणरूपी गुहामें निहित परमात्माको (प्रथमं) सबसे पहिले (विजज्ञतुः) जानते हैं। जो परमात्मा (जनिम) सबकी उत्पत्तिका स्थान तथा (नेमं) सबको नियममें रखने वाला और (उद्यतं) सर्वोपरि बलस्वरूप है ॥

भावार्थ—जो परमात्मा सूक्ष्मरूपसे सबके अन्तःकरणमें विराजमान है, उसको कर्मयोगी और ज्ञानयोगी ही सुलभतासे लाभ कर-सकते है, अन्य नहीं ॥५॥

मन्द्रस्य॑ रू॒पं वि॑विदुर्मनी॒षिणः॑ श्ये॒नो यदन्धो॒ अभ॑रत्परा॒वतः॑ ।
तं म॑र्जयन्त सु॒वृधं॑ न॒दीष्वाँ उ॒शन्त॑मं॒शुं प॑रि॒यन्त॑मृ॒ग्मिय॑म् ॥६॥

मं॒द्रस्य॑ । रू॒पं । वि॒वि॒दुः॒ । म॒नी॒षिणः॑ । श्ये॒नः । यत् । अंधः॑ । अभ॑रत् । प॒रा॒ऽवतः॑ । तं । म॒र्ज॒यं॒त॒ । सु॒ऽवृधं॑ । न॒दीषु॑ । आ । उ॒शंतं॑ । अं॒शुं । प॒रि॒ऽयंतं॑ । ऋ॒ग्मियं॑ ॥६॥

पदार्थः—(मंद्रस्य रूपं) परमात्मनोरूपं (मनीषिणः) मेधाविनः (विविदुः) विजानन्ति। यः परमेश्वरः (परावतः) समस्तलोकलोकान्तराणां (अभरत्) उत्पादकः स्थापकोनाशकश्चास्ति। अथ च (श्येनः) योविद्युदिव (यदंधः) सर्वव्यापकोस्ति (तं) तं (ऋग्मियं) स्तुत्यं (अंशुं) प्रकाशरूपं (सुवृधं) वर्धमानं (उशंतं) कान्तिमन्तं (परियंतं) सर्वत्रव्याप्तं परमात्मानं (नदीषु) वेदवाणीभिः (आमर्जयन्त) वयं साक्षात्कुर्मः ॥

पदार्थ—(मंद्रस्य) आनन्दस्वरूप परमात्माके (रूपं) रूपको (मनीषिणः) मेधावी लोग (विविदुः) जानते हैं । जो परमात्मा (परावतः) सब लोक लोकान्तरोंकी (अभरत्) उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयकरने वाला है । और (श्येनः) जो विद्युत्के समान (यदंधः) सर्वव्यापक है, (तं) उस (ऋग्मियं) स्तवनीय (अंशुं) प्रकाशस्वरूप (सुवृधं) बढ़े हुए (उशंतं) कान्ति वाले (परियंतं) सर्वव्यापक परमात्माका हम लोग (नदीषु) वेदवाणीयोंसे (आमर्जयन्त) साक्षात्कार करते हैं ।

भावार्थ—आनन्दमय परमात्माका साक्षात्कार कर्मयोग और ज्ञानयोग द्वारा संस्कृत बुद्धिसे ही हो सकता है, अन्यथा नहीं । इसी अभिप्रायसे कहा है, कि "दृश्यते त्वग्रया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः" कि उसको सूक्ष्मबुद्धिसे सूक्ष्मदर्शी ही देख सकते हैं अन्य नहीं ॥६॥

अथ प्रसङ्गसंगत्या परमात्मप्राप्तिर्वर्ण्यते ।

अब प्रसंगसंगतिसे परमात्मप्राप्तिका वर्णन करते हैं ।

त्वां मृजन्ति दश योषणः सुतं सोम ऋषिभिर्मतिभिर्धीतिभिर्हितं
अव्यो वारेभिरुत देवहूतिभिर्नृभिर्यतो वाजमा दर्षि सातये ॥७॥

त्वां । मृजंति । दश । योषणः । सुतं । सोम । ऋषिऽभिः ।
मतिऽभिः । धीतिऽभिः । हितं । अव्यः । वारेभिः । उत ।
देवहूतिऽभिः । नृऽभिः । यतः । वाजं । आ । दर्षि । सातये ॥७॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (सुतं) स्वयंसिद्धं (त्वां) भवन्तं (दश योषणः) दश धृत्यादिधर्मसाधनानि (मृजन्ति) साक्षात्कुर्वन्ति । (सोम) हे जगदीश ! त्वम (मतिभिः) ज्ञानयोगिभिस्तथा (धीतिभिः)

कर्मयोगिभिः (ऋषिभिः) तत्वदर्शिभिः (हितं) साक्षात्कृतोसि । तथा त्वम् (अव्यः) सर्वरक्षकोसि। (उत) अथ च (वारेभिर्देवहूतिभिर्नृभिः) वरणीयज्ञानयोगिकर्मयोगिमनुष्यद्वारा (सातये) अज्ञाननिवृत्तये (वाजं) बलं (यतः) यस्मात्कारणात् (आदर्षि) ददास्यतस्सर्वोपासनीयोसि ॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (सुतं) स्वयंसिद्ध (त्वां) तुमको (दश योषणः) धृत्यादि धर्मके दस साधन (मृजन्ति) साक्षात्कार करते हैं । (सोम) हे परमात्मन् ! तुम (मतिभिः) ज्ञानयोगी तथा (धीतिभिः) कर्मयोगी (ऋषिभिः) ऋषियोंसे (हितं) साक्षात्कार किये जाते हो । तथा तुम (अव्यः) सर्वरक्षक हो । (उत) और (वारेभिर्देवहूतिभिर्नृभिः) सर्वोपरि वरणीय योगी मनुष्यों द्वारा (सातये) अज्ञाननिवृत्तिके लिये (वाजं) बलको (यतः) जिस हेतु (आदर्षि) देते हो अतः तुम सर्वोपरि उपासनीय हो ॥

भावार्थ—परमात्मा ज्ञानयोगी तथा कर्मयोगियोंको अनन्त बल देता है । इस लिये मनुष्यको ज्ञानयोगी तथा कर्मयोगी अवश्य बनना चाहिये ॥७॥

परिप्रयन्तं वय्यं सुषंसदं सोमं मनीषा अभ्यनूषत स्तुभः ।
यो धारया मधुमाँ ऊर्मिणा दिव इयर्ति वाचं रयिषाळमर्त्यः ॥८॥

परिऽप्रयंतं । वय्यं । सुऽसंसदं । सोमं । मनीषाः । अभि । अनूषत । स्तुभः । यः । धारया । मधुऽमान् । ऊर्मिणा । दिवः । इयर्ति । वाचं । रयिषाट् । अमर्त्यः ॥८॥

पदार्थः—(मनीषाः स्तुभः) शुभबुद्धयः (परिप्रियन्तं)

सर्वैः प्राप्यं (वर्य्यं) विद्वद्भिः काम्यमानं (सुषंसदं) सुस्थितिमन्तं (सोमं) परमात्मानं (अभ्यनूषत) वर्णयन्ति। (यो धारया) यस्त्वं स्वकीयानन्दामृतधारया (मधुमान्) आनन्दमयोसि। तथा (ऊर्मिणा) आमोदतरङ्गद्वारा (दिवः) द्युलोकतः (वाचं) वेदवाणीं (इयर्ति) ददाति, स परमेश्वरः (रयिषाट्) सकलैश्वर्यदायकस्तथा (अमर्त्यः) मरणधर्मरहितोस्ति॥

पदार्थ—(मनीषाः स्तुभः) शुभबुद्धियें (परिभियन्तं) सबको प्राप्त होने वाले (वर्य्यं) विद्वानोंसे काम्यमान (सुषंसदं) शोभन स्थिति वाले (सोमं) परमात्माको (अभ्यनूषत) वर्णन करतीं हैं। (यो धारया) जो अपने अमृतकी धारासे (मधुमान्) आनन्दमय है, तथा (ऊर्मिणा) आनन्दकी लहर द्वारा (दिवः) द्युलोकसे (वाचं) वेदवाणीको (इयर्ति) देता है, वह परमात्मा (रयिषाट्) समस्तैश्वर्यदाता तथा (अमर्त्यः) मरणधर्मरहित है।

भावार्थ—परमात्मा अपनी दिव्यशक्तिसे पवित्र वेदवाणीका प्रकाश करता है। और स्वयं अमरण धर्मा होकर जगज्जन्मादि का हेतु है॥८॥

अयं दिव इयर्ति विश्वमा रजः सोमः पुनानः कलशेषु सीदति।
अद्भिर्गोभिर्मृज्यते अद्रिभिः सुतः पुनान इन्दुर्वरिवो विदत्प्रियम्॥

अयं। दिवः। इयर्ति। विश्वं। आ। रजः। सोमः। पुनानः। कलशेषु। सीदति। अत्ऽभिः। गोभिः। मृज्यते। अद्रिऽभिः। सुतः। पुनानः। इंदुः। वरिवः। विदत्। प्रियं॥९॥

पदार्थः—(अयं सोमः) असौ जगज्जनकः परमात्मा (दिवः) द्युलोकस्य (विश्वं) सकलं (रजः) ऐश्वर्यं (इयर्ति)

ददाति । अथच (कलशेषु) अखिलान्तःकरणेषु (पुनानः) पवित्रयन् (आसीदति) विराजते। तथा (अद्रिभिः) इन्द्रियवृत्तिभिः (अङ्गिरोभिः) ज्ञानयोगकर्मयोगाभ्यां (मृज्यते) साक्षात्क्रियते। अथच (सुतः) स्वयंसिद्धः (इन्दुः) परमैश्वर्यवान् (पुनानः) पविता परमेश्वरः (प्रियं) प्रियकारकं (वरिवः) वरणीयमैश्वर्यं ज्ञानयोगिभ्यः कर्मयोगिभ्यश्च (विदत्) ददाति ॥

पदार्थ—(अयं सोमः) यह परमात्मा (दिवः) द्युलोकके (विश्वं) सम्पूर्ण (रजः) ऐश्वर्यको (इयर्ति) देताहै। और (कलशेषु) समस्त अन्तःकरणोंमें (पुनानः) पवित्र करता हुआ (आसीदति) विराजमान है। तथा (अद्रिभिः) इन्द्रियवृत्तियोंसे (अङ्गिरोभिः) ज्ञान और कर्मों द्वारा (मृज्यते) साक्षात्कार किया जाता है। और (सुतः) स्वयंसिद्ध (इन्दुः) परमैश्वर्यवान् (पुनानः) पवित्रकर्ता परमात्मा (प्रियं) प्रियकारक (वरिवः) वरणीय ऐश्वर्यको ज्ञानयोगी और कर्मयोगियोंको (विदत्) देता है ॥

भावार्थ—ज्ञानयोगी तथा कर्मयोगी को परमात्मा अनन्तप्रकारके ऐश्वर्य देता है ॥९॥

एवा नः सोम परिषिच्यमानो वयो दधच्चित्रतमं पवस्व ।
अद्वेषे द्यावापृथिवी हुवेम देवा धत्त रयिमस्मे सुवीरम् ॥१०॥

एव । नः । सोम । परिऽसिच्यमानः । वयः । दधत् । चित्रऽतमं । पवस्व । अद्वेषे इति । द्यावापृथिवी इति । हुवेम । देवाः । धत्त । रयिं । अस्मे इति । सुऽवीरं ॥१०॥

पदार्थः—(सोम) चराचरोत्पादक परमात्मन्! (परि-

षिच्यमानः) ज्ञानयोगकर्मयोगाभ्यां साक्षात्कृतोभवान् (नः) अस्मान् (चित्रतमं) अनेकविधं (वयः) बलं (दधदेव) धारयन् (पवस्व) पवित्रयतु । तथा (अद्वेषे द्यावापृथिवी) द्वेषरहितस्य द्युलोकपृथिवीलोकस्य (हुवेम) प्रार्थनां कुर्मः । अथच (देवाः) दिव्यगुणसम्पन्ना विद्वांसः (अस्मे) अस्मासु (सुवीरं रयिं) वीरयुक्तमैश्वर्यं (धत्त) धारयंतु ॥

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! (परिषिच्यमानः) ज्ञानयोग और कर्मयोगसे साक्षात्कृत आप (नः) हम लोगोंको (चित्रतमं) नानाविध (वयः) बलको (दधत् एव) अवश्य धारण कराते हुए (पवस्व) पवित्र करें। तथा (अद्वेषे द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथिवीलोकको द्वेषसे रहित होनेकी (हुवेम) हम लोग प्रार्थना करते हैं। और (देवाः) दिव्यगुणसम्पन्न विद्वान् (अस्मे) हम लोगोंमें (सुवीरं रयिं) सुन्दरवीरों वाले ऐश्वर्यको (धत्त) धारण करायें ॥

भावार्थ—जो लोग कर्मयोगी और ज्ञानयोगियोंकी सङ्गतिमें रहते हैं, उनके लिये परमात्मा नानाविध ऐश्वर्योंको देता है। और द्युलोक और पृथिवीलोक उनके द्वेषियोंसे सर्वथा रहित हो जाता है। अर्थात् वे मित्रताकी दृष्टिसे सबको देखते हैं ॥ १० ॥

इत्यष्टषष्टितमं सूक्तं विंशोवर्गश्च समाप्तः ।

यह ६८ वां सूक्त और २० वां वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ दशर्चस्यैकोनसप्ततितमस्य सूक्तस्य–

१–१० हिरण्यस्तूप ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥
छन्दः—१,५ पादनिचृज्जगती । २—४, ६
जगती । ७, ८ निचृज्जगती । ९
निचृत्त्रिष्टुप् । १० त्रिष्टुप् ॥
स्वरः—१—८ निषादः ।
९, १० गान्धारः ॥

अथेश्वरसाक्षात्कारसाधनानि निरूप्यंते–

अब ईश्वरके साक्षात्कारके साधनोंका निरूपण करते हैं ।

इषुर्न धन्वन्प्रति धीयते मतिर्वत्सो न मातुरुप सर्ज्यूधनि ।
उरुधारेव दुहे अग्र आयत्यस्य व्रतेष्वपि सोम इष्यते ॥१॥

इषुः । न । धन्वन् । प्रति । धीयते । मतिः । वत्सः । न । मातुः । उप । सर्जि । ऊधनि । उरुधाराऽइव । दुहे । अग्रे । आऽयती । अस्य । व्रतेषु । अपि । सोमः । इष्यते ।

पदार्थः—(धन्वन्) धनुषि (न) यथा (इषुः) बाणः (प्रतिधीयते) संधीयते तथा हे जिज्ञासो ! भवतापीश्वरविषये (मतिः) बुद्धिः योज्या । अथ च (न) यथा (वत्सः) गोवत्सः (मातुः) गोः (ऊधनि) पयोधारके (उपसर्जि) सृष्टः तथा त्वमप्युपासनार्थं सृष्टः । अथ च (अस्य) जिज्ञासोः (व्रतेषु) सत्यादिव्रतेषु (सोमः) परमात्मा । (इष्यते।) उपास्यत्वेनेष्टः । वत्सस्य

(अग्रे) पुरतः (आयती) उपस्थिता (उरुधारेव) गौः (दुहे) यथा दुह्यते तथा सन्निहितः परमेश्वरः सर्वान्कामान्ददीतात्यर्थः ॥

पदार्थ—(धन्वन्) धनुषमें (न) जैसे (इषुः) वाण (प्रतिधीयते) रक्खे जाते हैं उसी प्रकार हे जिज्ञासो ! तुमको ईश्वरमें (मतिः) बुद्धिको लगाना चाहिये और (न) जैसे (वत्सः) वछड़ा (मातुः) गायके (ऊधनि) स्तनों के पानके लिये (उपसर्जि) रचा गया है उसी प्रकार तुम भी ईश्वरकी उपासनाके लिये रचे गये हो । और (अस्य) इस जिज्ञासुके (व्रतेषु) सत्यादि व्रतोंमें (सोमः) परमात्मा (इष्यते) उपास्य रूपसे कहा गया है । (वत्सस्य) वछड़ेके (अग्रे) आगे (आयती) उपस्थित (उरुधारेव) गौ (दुहे) जैसे दुही जाती है, उसी प्रकार सन्निहित परमात्मा सब अभीष्टोंका प्रदान करता है ॥

भावार्थ—जिस प्रकार धन्वी लक्ष्यभेदन करने वाला मनुष्य इतस्ततः वृत्तियोंको रोक कर एकमात्र अपने लक्ष्यमें वृत्ति लगाता है, इसी प्रकार परमात्मोपासकको चाहिये, कि वे सब ओरसे वृत्तिको रोक कर एकमात्र परमात्माकी उपासना करें ॥१॥

उपो॑म॒तिः पृ॒च्यते॑ सि॒च्यते॒ मधु॑ म॒न्द्राज॑नी चोदते अ॒न्तरा॒सनि॑ ।
पव॑मानः संत॒निः प्र॑घ्न॒तामि॑व मधु॒मान्द्र॒प्सः परि॒ वार॑मर्षति ॥२॥

उपो॒ इति॑ । म॒तिः । पृ॒च्यते॑ । सि॒च्यते॑ । मधु॑ । म॒न्द्र॒ऽअज॑नी । चोद॑ते । अ॒न्तः । आ॒सनि॑ । पव॑मानः । स॒म्ऽत॒निः । प्र॒घ्न॒ताम्ऽइ॑व । मधु॑ऽमान् । द्र॒प्सः । परि॑ । वार॑म् । अ॒र्ष॒ति॒ ॥२॥

पदार्थः—(पवमानः) सर्वपावकः परमात्मा (प्रघ्नतां) शूराणां (संतनिरिव) शरा इव रुद्ररूपोऽस्ति । अथ च सज्जनेभ्यः (द्रप्सः) गतिशीलः परमेश्वरः (मधुमान्) मधु-

इव मधुरोस्ति, शान्तिप्रद इति यावत् । (वारम्) योहि परमात्मनोभक्तोजनोस्ति तस्मै (पर्यर्षति) सर्वथा प्राप्नोति । अथ च (अन्तरासनि) भक्तजनानामन्तःकरणेषु (मन्द्राजनि) आह्लादकारिणी (मतिः) बुद्धिः (चोदते) उत्पद्यते येन (मधु सिच्यते) आनन्दवृष्टिः क्रियते ॥

पदार्थ—(पवमानः) सबको पवित्र करने वाला परमात्मा (मघ्नताम्) शूरवीरोंके (सन्तानः) शरोंके (इव) समान रुद्र रूप है। और साधु पुरुषोंके लिये (द्रप्सः) गतिशील परमात्मा (मधुमान्) मधुके समान मीठा है । अर्थात् शान्तिप्रद है । (वारम्) जो उसका कृपापात्र भक्त जन है उसको (पर्यर्षति) सब प्रकारसे प्राप्त होता है । और (अन्तरासनि) भक्त पुरुषोंके अन्तःकरणमें (मन्द्राजनि) आह्लाद उत्पन्न करने वाली (मतिः) बुद्धि (चोदते) उत्पन्न होती है । जिससे (मधु सिच्यते) आनन्दकी वृष्टि की जाती है ।

भावार्थ—जो पुरुष शान्ति भावसे परमात्माके नियमानुकूल चलते हैं, परमात्मा उन्हें शान्ति रूपसे उनके कर्मानुकूल फल देता है। और जो परमात्मनियमोंका उल्लंघन करते हैं, उनके लिये परमात्मा दण्ड देता है । इसी अभिप्रायसे यहां शूरवीरोंके बाणोंके समान परमात्माको कथन किया गया है । जैसा कि "महद्भयं वज्रमुद्यतम्" उठे हुए वज्रकी तरह परमात्मा भयप्रद है ॥२॥

अव्ये॑ वधूयुः प॑वते॒ परि॑ त्व॒चि श्र॑थ्नी॒ते न॒प्तीरदि॑ते॒र्ऋतं॒ य॒ते ।
हरि॑रक्रान्यज॒तः सं॑य॒तो मदो॒ नृम्णा॒ शिशा॑नो महि॒षो न शो॑भते ॥३॥

अव्ये॑ । व॒धू॒ऽयुः । प॒व॒ते॒ । परि॑ । त्व॒चि । श्र॒थ्नी॒ते । न॒प्तीः । अदि॑तेः । ऋ॒तम् । य॒ते । हरिः॑ । अ॒क्रा॒न् । य॒ज॒तः । स॒म्ऽय॒तः । मदः॑ । नृ॒म्णा । शिशा॑नः । म॒हि॒षः । न । शो॒भ॒ते॒ ॥३॥

पदार्थः—(वधूयुः) प्रकृतिस्वामी (हरिः) परमात्मा (अक्रान्) दुष्टानतिक्रामति । (यजतः संयतः) संयमिने यज्ञकर्त्रे (मदः) आनन्ददायकोस्ति। (नृम्णा) बलस्वरूपस्तथा (शिशानः) सर्वगतोस्ति। तथा (महिषोन) अत्यन्ततेजस्वीव विराजितोस्ति स परमात्मा (अदितेः) पृथिव्यादितत्वस्य (ऋतं यते) तत्वज्ञस्य (अव्ये) रक्षकोस्ति (त्वचि) तस्यान्तःकरणं (परिपवते) परितो-विराजते। अथ च (नप्तीः) तेषां सन्ततीः (श्रथ्नीते) सफलयति ॥

पदार्थ—(वधूयुः) प्रकृतिका स्वामी (हरिः) परमात्मा (अक्रान्) दुष्टोंको अतिक्रमण करता है। (यजतः) याग करने वाला जो (संयतः) संयमी पुरुष है (मदः) उसको आह्लाद उत्पन्न करने वाला है। (नृम्णा) बलस्वरूप है तथा (शिशानः) सर्वगत है (महिषः) और अत्यन्त तेजस्वीके (न) समान विराजमान है। वह परमात्मा (अदितेः) पृथिव्यादि तत्वों-के (ऋतंयते) तत्वको जानने वाले पुरुषके लिये (अव्यः) जो रक्षा-करने वाला है (त्वचि) उसके अन्तःकरणमें (परिपवते) सब ओरसे विराजमान होता है। तथा (नप्तीः) उनकी सन्ततियोंको (श्रथ्नीते) सफल करता है ॥

भावार्थ—जो पुरुष संयमी बन कर निष्काम यज्ञ करते हैं, उन-पुरुषोंके लिये परमात्मा शुभ सन्तानें और शुभ फलोंको उत्पन्न करता है ॥३॥

उक्षा मिमाति प्रति यन्ति धेनवो देवस्य देवीरुप यन्ति निष्कृतं
अत्यक्रमीदर्जुनं वारमव्ययमत्कं न निक्तं परि सोमो अव्यत॥४॥

उक्षा । मिमाति । प्रति । यंति । धेनवः । देवस्य । देवीः । उप । यंति । निःऽकृतं । अति । अक्रमीत् । अर्जुनं । वारं । अव्ययं । अत्कं । न । निक्तं । परि । सोमः । अव्यत ॥४॥

पदार्थः—(उक्षा) ब्रह्मचर्यादिबलसम्पन्नः पुरुष एव (मिमाति) सर्वज्ञोभवति । तं (निष्कृतं) परिष्कृतं पुरुषं (धेनवः) इन्द्रियाणि (प्रतियन्ति) प्राप्नुवन्ति । (देवस्य-देवी) परमात्मनोदिव्यशक्तयः (उपयन्ति) तमेव प्राप्नुवन्ति । स परमात्मैव (अर्जुनं) वीरयोद्धृन् (अत्यक्रमीत्) अतिक्रामति । (वारं) तं सर्ववरणीयं (अव्ययं) इन्द्रियविकाररहितं (अत्कं न) वर्मेव (निक्तं) यशसोज्वलं (सोमः) परमात्मा (पर्यव्यत) परितोरक्षति ॥

पदार्थ—(उक्षा) ब्रह्मचर्यादि बलसम्पन्न पुरुष ही (मिमाति) सर्वज्ञाता हो सकता है । उस (निष्कृतं) परिस्कृत पुरुषको (धेनवः) इन्द्रियें (प्रतियन्ति) प्राप्त होतीं हैं । (देवस्य देवी) दिव्य परमात्माकी दिव्यशक्तियें (उपयन्ति) उसीको प्राप्त होतीं हैं । वही (अर्जुनं) बड़े बड़े योद्धाओंको (अत्यक्रमीत्) अतिक्रमण करता है ।(वारं) उस सर्ववरणीय (अव्ययं) इन्द्रियविकाररहित (अत्कं न) कवचकी तरह (निक्तं) यशसे उज्वलको (सोमः) परमात्मा (पर्यव्यत) चारो ओरसे रक्षा करता है ॥४॥

भावार्थ—जो पुरुष ब्रह्मचारी बनकर शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक तीनों प्रकारके बल अपनेमें उत्पन्न करता है, वह परमात्माके सामर्थ्यका पात्र होता है ॥४॥

अमृक्तेन रुशता वाससा हरिरमर्त्यो निर्णिजानः परि व्यत ।
दिवस्पृष्ठं बर्हणा निर्णिजे कृतोपस्तरणं चम्वोर्नभस्मयं ॥५।२१॥

अमृक्तेन । रुशता । वाससा । हरिः । अमर्त्यः । निःऽनिजानः । परि । व्यत । दिवः । पृष्ठं । बर्हणा । निःऽनिजे । कृत । उपऽस्तरणं । चम्वोः । नभस्मयं ॥५॥

पदार्थः—(अमर्त्योहरिः) मरणधर्मरहितः परमात्मा तथा (निर्णिजानः) शुद्धः (अमृक्तेन रुशता) स्वकीयस्वाभाविकतेजसा (वाससा) स्वशक्तिरूपाच्छादनेन (दिवस्पृष्ठं) द्युलोकपृष्ठं यत् (चम्वोर्नभस्मयम्) द्यावापृथिव्योः (कृतोपस्करणम्) परिकल्पितान्तरिक्षरूपोपस्करणम् तत् (बर्हणा) स्वीयप्रकृतिपुच्छेन (निर्णिजे) पुष्णाति । अथ च (परिव्यत) ब्रह्माण्डमिमं सर्वतआच्छादयाति ॥

पदार्थः—(अमर्त्योहरिः) अमरणधर्मा परमात्मा तथा (निर्णिजानः) शुद्ध (अमृक्तेन रुशता) अपने स्वाभाविक तेजसे (वाससा) अपनी शक्तिरूपी आच्छादन द्वारा (दिवस्पृष्ठं) द्युलोकके पृष्ठको, जिसमें (चम्वोर्नभस्मयम्) द्युलोक और पृथिवीलोककी (कृतोपस्करणम्) अन्तरिक्ष रूपी बिछौना है, उसको (बर्हणा) अपनी प्रकृतिरूपी पुच्छसे (निर्णिजे) पुष्ट करता है । और (परिव्यत) सब ओरसे इस ब्रह्माण्डको आच्छादित करता है ॥

भावार्थ—अजरामरादिभावयुक्त परमात्मा अपने प्रकृतिरूपी बर्हसे सब संसारको आच्छादित किये हुए हैं ॥८॥

सूर्यस्येव रश्मयो द्रावयित्नवो मत्सरासः प्रसुपः साकमीरते ।
तन्तुं ततं परि सर्गास आशवो नेन्द्रादृते पवते धाम किं चन ॥६॥

सूर्यस्यऽइव । रश्मयः । द्रवयित्नवः । मत्सरासः । प्रऽसुपः ।
साकं । ईरते । तंतुं । ततं । परि । सर्गासः । आशवः ।
न । इंद्रात् । ऋते । पवते । धाम । किं । चन ॥६॥

पदार्थः—(मत्सरासः) सर्वाह्लादकः (प्रसुपः) सर्वाधार-

रूपः परमात्मा (ततं तंतु) विस्तृतप्रकृतितन्तुना (साकं) सह (ईरते) गच्छति । ततः (आशवः) गत्वर्यः (सर्गासः) सृष्टयः (सूर्यस्य-रश्मय इव) रविकिरणा इव (द्रावयित्नवः) स्यन्दनशीला उत्पद्यन्ते। पूर्वोक्तः परमात्मा (इन्द्रादृते) उद्योगिनोविना (किंचन धाम) अन्यदीयान्तःकरणं (न पवते) न पवित्रयति ॥

पदार्थ—(मत्सरासः) सर्वाह्लादक (प्रसुपः) सबका निवासस्थान परमात्मा (ततं तंतु) विस्तृत प्रकृतिरूप तन्तुके (साकं) साथ (ईरते) गति-करता है। उससे (आशवः) गमनशील (सर्गासः) सृष्टियें (सूर्यस्य रश्मय इव) सूर्यकी किरणोंके समान (द्रावयित्नवः) क्षरणशील उत्पन्न होतीं-हैं । उक्त परमात्मा (इन्द्रादृते) उद्योगीके अतिरिक्त (किंचन धाम) अन्य किसीके अन्तःकरणको (न पवते) नहीं पवित्र करता है ॥

भावार्थ—उक्तगुणसम्पन्न परमात्माके द्वारा सूर्यकी रश्मियोंके-समान अनन्त प्रकारकी सृष्टियें उत्पन्न होतीं हैं ॥६॥

सिन्धोरिव प्रवणे निम्न आशवो वृषच्युता मदासो गातुमाशत।
शं नो निवेशे द्विपदे चतुष्पदेऽस्मे वाजाः सोम तिष्ठंतु कृष्टयः॥७॥

सिंधोःऽइव । प्रवणे । निम्ने । आशवः । वृषऽच्युताः । मदासः । गातुं । आशत । शं । नः । निऽवेशे । द्विऽपदे । चतुःऽपदे । अस्मे इति । वाजाः । सोम । तिष्ठंतु । कृष्टयः ॥७॥

पदार्थः—(सोम) हे जगदीश्वर ! त्वं (अस्मे) अस्माकं (निवेशे) स्थितौ (नो द्विपदे चतुष्पदे) अस्मत्पशुमनुष्यादीनां (शं) कल्याणं कुरुष्व । तथा मदीयाः (कृष्टयः) बुद्धयः (तिष्ठतु) शुभविषयिण्योभवन्तु । (मदासः) आनन्दयुतं (आशवः)-

व्यापकं भवद्यशः (गातुं) उपगीय एवं प्रकारेण जिज्ञासवस्तवरूपे (आशत) लीना भवन्तु। यथा (सिन्धोरिव) समुद्रस्य (निम्न प्रवणे) निम्नप्रवाहे (वृषच्युताः) वेगवत्योनद्योमिलन्ति, तद्वत् ॥

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन्! आप (अस्मे) हमारी (निवेशे) स्थितिमें (नः) हमारे (द्विपदे चतुष्पदे) मनुष्य तथा पशुओंके (शं) कल्याणकारी हों। तथा हमारी (कृष्टयः) बुद्धियें (तिष्ठन्तु) शुभ हों। (मदासः) आनन्दमय (आशवः) व्यापक आपके यशको (गातुं) गानकर इस प्रकार जिज्ञासु लोग आपके स्वरूपमें (आशत) लीन हों, जैसे (सिन्धोरिव) समुद्रके (प्रवणे निम्ने) निम्न प्रवाहमें (वृषच्युताः) वेगसे-बहने वालीं नदियें मिलतीं हैं ॥

भावार्थ—परमात्मा करुणासिन्धु है। जिस प्रकार छुद्र नदियाँ समुद्रमें मिलकर महासागर हो जातीं हैं, इसी प्रकार उक्त परमात्माको मिल कर उपासक महत्वको धारण करता है ॥७॥

आ नः॑ पवस्व वसु॑मद्धिर॑ण्यवदश्वा॑वद्गोम॑द्यव॑मत्सु॒वीर्य॑म् ।
यू॒यं हि सो॑म पितरो॒ मम॒ स्थन॑ दि॒वो मू॒र्धानः॑ प्रस्थि॑ता व॒य॒स्कृतः॑ ॥८॥

आ । नः॒ । प॒व॒स्व॒ । वसु॑ऽमत् । हिर॑ण्यऽवत् । अश्व॑ऽवत् । गोऽम॑त् । यव॑ऽमत् । सु॒ऽवीर्य॑म् । यू॒यम् । हि । सो॒म॒ । पि॒त॒रः॒ । मम॑ । स्थन॑ । दि॒वः । मू॒र्धानः॑ । प्रऽस्थि॑ताः । व॒यः॒ऽकृतः॑ ॥

पदार्थः—(सोम) हे जगदीश! (वसुमत) ऐश्वर्यसम्पन्नः (हिरण्यवत) स्वर्णादिधनस्वामी (गोमत्) गवाद्यैश्वर्यवान् (अश्ववत) विद्युदादिशक्तेरीश्वरः (यवमत्) अन्नधनाद्यैश्वर्ययुक्तस्त्वम् (सुवीर्यं) सुपराक्रमं (नः) अस्मभ्यं (आपवस्व) परितोदेहि। (यूयं) भवान्-

(हि) खलु (मम पितरः स्थन) अस्मत्पालनकर्ता भवतु। अथ च (वयस्कृतः) ऐश्वर्यदायकोभवान् (दिवः) द्युलोकस्य (मूर्धानः) मुखरूपः (प्रस्थिताः) विराजमानोस्ति ॥

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन्! (वसुमत्) ऐश्वर्यसम्पन्न (हिरण्यवत्) स्वर्णादिधनके स्वामी (गोमत्) गवाद्यैश्वर्य वाले (अश्ववत्) विद्युदादिशक्तियोंके स्वामी (यवमत्) अन्नधनाद्यैश्वर्ययुक्त आप (सुवीर्यं) सुन्दरपराक्रमको (नः) हम लोगोंको (आपवस्व) सब ओरसे दें। (यूयं) आप (हि) निश्चय करके (मम) मेरे (पितरः स्थन) पालन करने वाले हों। और (वयस्कृतः) ऐश्वर्यके देने वाले आप (दिवः) द्युलोकके (मूर्धानः) मुखरूप (प्रस्थिताः) विराजमान हैं ॥

भावार्थ—इस मंत्रमें परमात्मासे ऐश्वर्यकी प्रार्थना की गई है ॥८॥

एते सोमाः पवमानास इन्द्रं रथा इव प्र ययुः सातिमच्छ ।
सुताः पवित्रमति यन्त्यव्यं हित्वी वव्रिं हरितो वृष्टिमच्छ ॥९॥

एते । सोमाः । पवमानासः । इंद्रं । रथाःऽइव । प्र । ययुः । सातिं । अच्छ । सुताः । पवित्रं । अति । यंति । अव्यं । हित्वी । वव्रिं । हरितः । वृष्टिं । अच्छ ॥

पदार्थः—(पवमानासः) पावकाः (एते) इमे (सुताः) संस्कृताः (सोमाः) सौम्यस्वभावाः (रथाइव) रणे महारथिन इव (पवित्रं) पूतं (सातिमच्छ) संग्रामाभिमुखगं (इन्द्रं) कर्मयोगिनं (प्रययुः) प्राप्नुवन्ति। उक्ताः स्वभावाः (हरितः) पापान्हरन्तः (अव्यं) कातर्यं (अतियन्ति) दूरीकुर्वन्ति। अथ च (वव्रिं) जरां (हित्वी) प्रणश्य (वृष्टिं) अमोदवृष्टिं (अच्छ) ददन्ते ॥

पदार्थ—(पवमानासः) पवित्र करने वाले (एते) ये (सुताः) संस्कृत (सोमाः) सौम्यस्वभाव (रथाइव) संग्राममें महारथीके समान (पवित्रं) पवित्र (सातिमच्छ) संग्रामके अभिमुख जाने वाले (इन्द्रं) कर्मयोगीको (प्रययुः) प्राप्त हों। उक्त स्वभाव (हरितः) पापोंको हरण करते हुए (अव्यं) कायरताको (अतियंति) दूर करते हैं। और (वव्रिं) जराका (हित्वी) नाश करके वृष्टिं) आनन्दकी वृष्टिको (अच्छ) देते हैं॥

भावार्थ—इस मंत्रमें शीलकी प्रार्थना है। जिस शुभ शीलसे मनुष्य ऐश्वर्यसम्पन्न होता है॥ ९॥

इन्द॒विन्द्रा॑य बृह॒ते प॑वस्व सुमृळी॒को अ॑नव॒द्यो रि॒शादाः॑।
भरा॑ च॒न्द्राणि॑ गृण॒ते वसू॑नि दे॒वैर्द्यावापृथिवी॒ प्राव॑तं नः॥१०॥२२॥

इन्दो॒ इति॑। इन्द्रा॑य। बृ॒ह॒ते। प॒व॒स्व॒। सु॒ऽमृ॒ळी॒कः। अ॒न॒व॒द्यः। रि॒शादाः॑। भर॑। च॒न्द्राणि॑। गृ॒ण॒ते। वसू॑नि। दे॒वैः। द्या॒वा॒पृ॒थि॒वी॒ इति॑। प्र। अ॒व॒त॒म्। नः॒॥

पदार्थः—(इन्दो) ऐश्वर्यसम्पन्न परमात्मन्! (सुमृळीकः) कर्मयोगिसुखदः (अनवद्यः) निन्दारहितः (रिशादाः) बाधकनाशकस्त्वम् (इन्द्राय) कर्मयोगिने (पवस्व) पवित्रतां देहि। अथ च (गृणते) स्तोत्रे कर्मयोगिने (चन्द्राणि) आह्लादकानि (वसूनि) धनानि (भर) प्रददस्व। भवान् (देवैः) दिव्यधनयुते (द्यावापृथिवी) द्यावाभूमी (नः) अस्मभ्यं (प्रावतं) प्रापयतु॥

पदार्थ—(इन्दो) ऐश्वर्यसम्पन्न परमात्मन्! (सुमृळीक) कर्मयोगीको सुख देने वाले (अनवद्यः) निन्दारहित (रिशादाः) बाधकोंके नाशक आप (इन्द्राय) कर्मयोगीके लिये (पवस्व) पवित्रताका प्रदान-

करें। और (गृणते) स्तुति करने वाले कर्मयोगीके लिये (चन्द्राणि) आल्हाद देने वाले (वसूनि) धनोंको (भर) प्रदान करें। आप (देवैः) दिव्य धनोंके सहित (द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथिवीलोकको (नः) हम लोगोंके लिये (प्रावतं) प्राप्त करायें ॥

भावार्थ—इस मंत्रमें कर्मयोगीके लिये ऐश्वर्यप्रदानका वर्णन किया गया है ॥ १० ॥

इत्येकोनसप्ततितमं सूक्तं द्वाविंशोवर्गश्च समाप्तः ।

यह ६९ वां सूक्त और २२ वां वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ दशर्चस्य सप्ततितमस्य सूक्तस्य--

१–१० रेणुर्वैश्वामित्र ऋषिः। पवमानः सोमो देवता। छन्दः–
१, ३ त्रिष्टुप्। २, ६, ९, १० निचृज्जगती। ४, ५,
७, जगती। ८ विराड्जगती। स्वरः–१, ३
धैवतः। २, ४–१० । निषादः॥

अथ पञ्चविंशतितत्त्वानि वर्ण्यन्ते ।

अब पचीस प्रकारके तत्वोंका वर्णन करते हैं ।

त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रे सत्यामाशिरं पूर्व्ये व्योमनि ।
चत्वार्यन्या भुवनानि निर्णिजे चारूणि चक्रे यदृतैरवर्धत ॥१॥

त्रिः। अस्मै। सप्त। धेनवः। दुदुह्रे। सत्यां। आऽशिरं। पूर्व्ये। विऽओमनि। चत्वारि। अन्या। भुवनानि। निःऽनिजे। चारूणि। चक्रे। यत्। ऋतैः। अवर्धत ॥१॥

पदार्थः—(पूर्व्ये व्योमनि) महदाकाशे (अन्या) प्रकृतेरन्यानि (चत्वारि भुवनानि) चत्वारि तत्वानि (यत) यानि (चारूणि) सुन्दराणि सन्ति तानि (निर्णिजे) शुद्धये (ऋतैः) प्रकृतेः सत्यद्वारेण (चक्रे) परमात्मना निर्मितानि सन्ति। (अस्मे) एतदर्थं (धेनवः) वेदवाचः (त्रिःसप्त) अहङ्कारात इन्द्रियपर्यन्तमेकविंशतितत्वैः (दुदुह्रे) दुहन्ति। अथ च तैस्तत्वैः (सत्यामाशिरं) सत्यकारणभूतान् क्षीरादिरसान् (अवर्धत) वर्धयन्ति ॥

पदार्थ—(पूर्व्ये व्योमनि) महदाकाशमें (अन्या) प्रकृतिसेभिन्न (चत्वारि भुवनानि) चार तत्व (यत्) जो कि (चारूणि) सुन्दर हैं, वे (निर्णिजे) शुद्धिके लिये (ऋतैः) प्रकृतिके सत्यद्वारा (चक्रे) परमात्माने रचे हैं। (अस्मे) इस कार्यके लिये (धेनवः) वेदवाणियें (त्रिःसप्त) अहङ्कारसे लेकर इन्द्रियों तक २१ तत्वों द्वारा (दुदुह्रे) पूर्ण करतीं हैं। और उससे (सत्यामाशिरं) सत्य हैं कारण जिनके ऐसे क्षीरादि रसोंको (अवर्धत) बढ़ातीं हैं ॥

भावार्थ——परमात्माने प्रकृतिरूपी उपादान-कारणसे इस संसारको उत्पन्न किया। और वह इस प्रकार कि प्रकृतिसे महत्तत्व, और महत्तत्वसे अहङ्कार और अहङ्कारसे पञ्चतन्मात्र अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, तथा गन्ध इनसे पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्मेन्द्रिय एवं पञ्च-भूत अर्थात् पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश और २१ वां अहङ्कार इन २१ प्रकृतियोंसे परमात्माने संसारको उत्पन्न किया। महत्तत्वको यहाँ इस लिये नहीं गिना, कि वह वैदिक-लोगोंके मन्तव्यमें एक प्रकारकी प्रकृति ही है। तात्पर्य यह है, कि प्रकृति इस संसारका परिणामी उपादान-कारण है। अर्थात् प्रकृतिके परिणामसे इस संसारकी रचना हुई है। और परमात्मा कूटस्थ नित्य है। उसका किसी प्रकारसे परिणाम वा परिवर्तन नहीं होता ॥१॥

स भिक्षमाणो अमृतस्य चारुण उभे द्यावा काव्येना वि शश्रथे ।
तेजिष्ठा अपो मंहना परि व्यत यदी देवस्य श्रवसा सदो विदुः ॥२॥

सः । भिक्षमाणः । अमृतस्य । चारुणः । उभे इति । द्यावा ।
काव्येन । वि । शश्रथे । तेजिष्ठाः । अपः । मंहना । परि ।
व्यत । यदि । देवस्य । श्रवसा । सदः । विदुः ॥२॥

पदार्थः--(भिक्षमाणः) प्रकृतितत्त्वस्य लाभं कुर्वन्तं (चारुणोऽमृतस्य) प्रियामृतप्रदातारं (उभे द्यावा) द्युलोकं पृथिवीलोकं च (काव्येन) स्वाचातुर्येण (विशश्रथे) व्यक्तंकरोति (सः) असौ परमात्मा (तेजिष्ठा अपः) तेजस्विजलपरमाणूनां (मंहना) महत्त्वेन (परिव्यत) आच्छादयति । (यदि देवस्य) यदि दिव्यज्ञानस्य (श्रवसा) महत्त्वेन (सदः) सद्रूपब्रह्म (विदुः) विदाङ्कुर्वन्तु चेत्तदोक्तपरब्रह्मणः कर्तृत्वं ज्ञास्यन्ति ॥

पदार्थ—(भिक्षमाणः) प्रकृतिरूपी तत्वको लाभ करता हुआ (चारुणोऽमृतस्य) सुन्दर अमृतके देने वाले (उभे द्यावा) द्युलोक और पृथिवीलोकको (काव्येन) अपनी चतुराईसे (विशश्रथे) व्यक्त करता है । (सः) वह परमात्मा (तेजिष्ठा अपः) तेजस्वी जलमयपरमाणुओंको (मंहना) महत्त्वसे (परिव्यत) आच्छादन करता है । (यदि देवस्य) अगर दिव्य ज्ञानके (श्रवसा) महत्त्वसे (सदः) सद्रूपब्रह्मको (विदुः) जानें, तो उक्तपरमात्माके कर्तृत्वको जान सकते हैं ॥

भावार्थ—जो पुरुष परमात्माके महत्वको जानते हैं, वे ही इस जगत्की अद्भुतसत्ता जान सकते हैं, अन्य नहीं ॥२॥

ते अस्य सन्तु केतवोऽमृत्यवोऽदाभ्यासो जनुषी उभे अनु।
येभिर्नृम्णा च देव्या च पुनत आदिद्राजानं मनना अगृभ्णत ३

ते। अस्य। संतु। केतवः। अमृत्यवः। अदाभ्यासः। जनुषी इति। उभे इति। अनु। येभिः। नृम्णा। च। देव्या। च। पुनते। आत्। इत्। राजानं। मननाः। अगृभ्णत ॥३॥

पदार्थः—(ते) पूर्वोक्ताः (अमृत्यवः) मरणधर्मशून्याः (अदाभ्यासः) अदम्भनीयास्तत्वविदः (अस्य) अमुष्य जगतः (केतवः) मौलिमणिस्थानीयाः (सन्तु) भवन्तु (उभे जनुषी) उभयजन्म (अनु) लक्ष्यीकृत्य (देव्या नृम्णा) दिव्यानि कर्माणि (येभिः) यैः क्रियन्ते ते एव (पुनते) जगत् पवित्रयन्ति। (च) अथ च (आदित्) ते एव (मननाः) मान्याः (राजानं) स्वतःप्रकाशं परमात्मानं (अगृभ्णत) गृह्णन्ति॥

पदार्थ—(ते) वे (अमृत्यवः) मरणधर्मरहित (अदाभ्यासः) अदम्भनीय पूर्वोक्त तत्ववेत्ता लोग (अस्य) इस संसारके (केतवः) मौलिमणिस्थानी (सन्तु) हों। (उभे जनुषी) दोनों जन्मोंको (अनु) लक्ष्यकरके (देव्या नृम्णा) दिव्य कर्म (येभिः) जिनसे किये जाते हैं, वेही लोग (पुनते) संसारको पवित्र करते हैं (च) और (आदित्) वे ही (मननाः) माननीय (राजानं) प्रकाशरूप परमात्माको (अगृभ्णत) ग्रहण करते हैं॥

भावार्थ—जो लोग लोक और परलोकको लक्ष्य रखकर शुभकर्म करते हैं, वेही परमात्माके ज्ञानपात्र हो सकते हैं, अन्य नहीं॥३॥

स मृज्यमानो दशभिः सुकर्मभिः प्र मध्यमासु मातृषु प्रमे सचा।
व्रतानि पानो अमृतस्य चारुण उभे नृचक्षा अनु पश्यते विशौ ४

सः । मृज्यमानः । दशऽभिः । सुकर्मऽभिः । प्र । मध्यमासु ।
मातृषु । प्रऽमे । सचा । व्रतानि । पानः । अमृतस्य ।
चारुणः । उभे इति । नृऽचक्षाः । अनु । पश्यते । विशौ ॥४॥

पदार्थः—(मध्यमासु प्रमातृषु) ज्ञानेन्द्रियेषु (प्रमे) प्रमाणार्थं (सचा) संगतः (सः) असौ परमात्मा (दशभिः कर्मभिः) सूक्ष्मभूतैः पञ्चभिस्तथा पञ्चस्थूलभूतैः (मृज्यमानः) विराड्रूपेणाभिव्यक्तः सर्वत्र विराजते (व्रतानि पानः) व्रतकर्ता जनः (चारुणोऽमृतस्य) शोभनामृतभावप्रदातृणी (उभे विशौ) ये द्वे ज्ञानकर्मणी ते (नृचक्षाः) सर्वज्ञ एव (अनुपश्यते) अवलोकयति नान्यः ॥

पदार्थ—(मध्यमासु प्रमातृषु) ज्ञानेन्द्रियोंमें (प्रमे) प्रमाणके लिये (सचा) संगत (सः) वह परमात्मा (दशभिः कर्मभिः) पांच सूक्ष्मभूत और पांच स्थूलभूतोंसे (मृज्यमानः) विराट् रूपसे अभिव्यक्तिको प्राप्त हुआ सर्वत्र विराजमान है (व्रतानि पानः) व्रतोंको धारण करने वाला मनुष्य (चारुणोऽमृतस्य) सुन्दर अमृत भावके देने वाले (उभे विशौ) दोनों ज्ञान और कर्म जो हैं, उनको (नृचक्षाः) सर्वज्ञ पुरुष ही (अनुपश्यते) देखता है, अन्य नहीं ॥

भावार्थ—जो पुरुष तपश्चर्यादि कर्मोंको करता है, वही पुरुष ज्ञान तथा कर्मके प्रभावसे सर्वत्राभिव्यक्त परमात्माको ज्ञानदृष्टिसे देख सकता है, अन्य नहीं ॥४॥

स मर्मृजान इन्द्रियाय धायस ओभे अन्ता रोदसी हर्षते हितः
वृषा शुष्मेण बाधते वि दुर्मतीरादेदिशानः शर्यहेव शुरुधः ५-२३

सः । मर्मृजानः । इन्द्रियाय । धायसे । आ । उभे इति । अन्तरिति । रोदसी इति । हर्षते । हितः । वृषा । शुष्मेण । बाधते । वि । दुःऽमतीः । आऽदेदिशानः । शर्यहाऽइव । शुरुधः ॥५॥

पदार्थः—(मर्मृजानः) सर्वपूज्यः (दुर्मतीः शुरुधः) दुष्टप्रकृतीनामसुराणां (आदेदिशानः) शिक्षकः (वृषा) आमोद वर्षकः (उभे रोदसी) द्यावापृथिव्योर्द्वयोर्लोकयोः (अन्तर्हितः) मध्ये विराजमानः (सः) स परमात्मा (इन्द्रियाय) इन्द्रियाणां (धायसे) धारणकर्त्रे बलाय (आहर्षते) सर्वत्र विराजमानोऽस्ति । अथ च (शुष्मेण) शत्रुनाशकेन बलेन (विबाधते) दुष्टान्पीडयति। (शर्यहेव) यथा योद्धा प्रतिपक्षस्थितं स्वशत्रुं हन्ति, तथा परमेश्वरो दुराचारिविघ्नकारिराक्षसान् हिनस्ति ॥

पदार्थ—(मर्मृजानः) सर्वपूज्य (दुर्मतीः शुरुधः) दुष्ट प्रकृतिवाले असुरोंको (आदेदिशानः) शिक्षा देने वाला (वृषा) आनन्दका-वर्षक (उभे रोदसी) द्युलोक और पृथ्वीलोक दोनोंके (अन्तर्हितः) मध्यमें विराजमान (सः) वह परमात्मा (इन्द्रियाय) इन्द्रियोंके (धायसे) धारण-करने वाले बलके लिये (आहर्षते) सर्वत्र विराजमान है। और (शुष्मेण) अपने बलसे (विबाधते) दुष्टोंको पीड़ा देता है । (शर्यहेव) जैसे बाणोंसे योद्धा अपने प्रतिपक्षीको मारता है, उसी प्रकार परमात्मा दुराचारी और विघ्नकारी राक्षसोंको मारता है ॥

भावार्थ—परमात्मा अपने सच्चिदानन्दरूपसे सर्वत्रैव परिपूर्ण हो-रहा है। और वह अपनी दमनरूप शक्तिसे दुष्टोंको दमन करके सत्पुरुषों-का उद्धार करता है ॥५॥

स मातरा न ददृशान उस्रियो नानददेति मरुतामिव स्वनः ।
जानन्नृतं प्रथमं यत्स्वर्णरं प्रशस्तये कमवृणीत सुक्रतुः ॥६॥

सः । मातरा । न । ददृशानः । उस्रियः । नानदत् । एति मरुताम्ऽइव । स्वनः । जानन् । ऋतं । प्रथमं । यत् । स्वःऽनरं । प्रऽशस्तये । कं । अवृणीत । सुऽक्रतुः ॥६॥

पदार्थः—(मातरा ददृशानः) मातरं पश्यन् (न) यथा वत्सः (नानदत्) शब्दं कृत्वा (उस्रियः) गोसम्मुखं (एति) गच्छति । तथा (सः) असौ (सुक्रतुः) शोभनकर्मो-पासकः (मरुतां स्वन इव) कर्मयोगिविदुषां शब्दैः (ऋतं) सत्यं (जानन्) अवगतं कुर्वन् (स्वर्णरं) सर्वहितकारकं (प्रथमं) अनादिं (कं) सुखरूपं परमात्मानं (प्रशस्तये) प्रशंसायै (अवृणीत) स्वीकरोति ॥

पदार्थ—(मातरा ददृशानः) माताको देखता हुआ (न) जैसे (वत्स) नानदत्) शब्द करके (उस्रियः) गौके सम्मुख (एति जाता है, इसी प्रकार (सः) वह (सुक्रतुः) शोभनकर्मा उपासक (मरुतां स्वन इव) कर्मयोगी विद्वानोंके शब्दोंसे (ऋतं) सत्यको (जानन्) जानता हुआ (स्वर्णरं) सर्वहितकारक (प्रथमं) अनादि (कं) सुखरूप परमात्माकी (प्रशस्तये) प्रशंसाके लिये (अवृणीत) उस परमात्माको स्वीकार करता है ॥

भावार्थ—जो पुरुष ब्रह्मामृतवर्षिणी धेनुके समान परमात्माको कामधेनु समझकर उसकी उपासना करता है, वह अन्य किसी सुखकी अभिलाषा नहीं करता ॥६॥

रुवति भीमो वृषभस्तविष्यया
शृङ्गे शिशानो हरिणी विचक्षणः ।
आ योनिं सोमः सुकृतं नि षीदति
गव्ययी त्वग्भवति निर्णिगव्ययी ॥७॥

रुवति । भीमः । वृषभः । तविष्यया । शृङ्गे इति । शिशानः । हरिणी इति । विऽचक्षणः । आ । योनिं । सोमः । सुऽकृतं । नि । सीदति । गव्ययी । त्वक् । भवति । निःऽनिक् । अव्ययी ॥७॥

पदार्थः—यस्य कर्मयोगिविदुषः (गव्ययी) सदसन्निर्णेत्री (त्वक्) चिच्छक्तिः (निर्णिगव्ययी) परिशोधनकर्त्री तथा रक्षिका (भवति) अस्ति, तस्य (सुकृतं) सुकृतिनः कर्मयोगिनो-हृदयं (योनिं) स्थानंकृत्वा (तविष्यया) बर्धितुमिच्छया (भीमः) दुष्टभयदः (वृषभः) कामानां वर्षकः (विचक्षणः) सर्वज्ञः (सोमः) परमेश्वरः (आनिषीदति) कर्मयोगिनोहृदये निवसति । अथच (हरिणी) अविद्यानाशिके (शृङ्गे) द्वे दीप्ती (शिशानः) तीक्ष्णीकुर्वन् (रुवति) शब्दस्पर्शाद्याश्रयभूतपञ्च-तत्वान्युत्पादयति ॥

पदार्थ—जिस कर्मयोगीकी (गव्ययी) सत् असत्का निर्णय-

करने वाली (त्वक्) चैतन्यशक्ति (निर्णिगव्ययी) परिशोधन करने वाली और रक्षा करने वाली (भवति) होती है, उस (सुकृतं) सुकृति कर्मयोगी-के हृदयको (योनिं) स्थान बनाकर (तविष्यया) वृद्धिकी इच्छासे (भीमः) दुष्टके भयदाता (वृषभः) कामोंका वर्षक (विचक्षणः) सर्वज्ञ (सोमः) परमात्मा (आनिषीदति) निवास करता है। और (हरिणी) अविद्याकी हरण करने वाली (शृङ्गे) दो दीप्तियोंको (शिशानः) तीक्ष्ण करता हुआ (रुवति) शब्द स्पर्शादिकोंके आश्रयभूत पञ्चतत्वोंको उत्पन्न करता है॥

भावार्थ—परमात्मा जीवरूपी शक्ति और प्रकृतिरूपी शक्ति दोनोंका अधिष्ठाता है। वा यों कहो, कि उक्त दोनों दीप्तियोंको उत्पन्न-करके परमात्मा इस ब्रह्माण्डकी रचना करता है॥७॥

शुचिः पुनानस्तन्वमरेपसमव्ये हरिर्न्यधाविष्ट सानवि।
जुष्टो मित्राय वरुणाय वायवे त्रिधातु मधु क्रियते सुकर्मभिः॥८॥

शुचिः। पुनानः। तन्वं। अरेपसं। अव्ये। हरिः। नि। अधाविष्ट। सानवि। जुष्टः। मित्राय। वरुणाय। वायवे। त्रिऽधातु। मधु। क्रियते। सुकर्मऽभिः॥८॥

पदार्थः—(सुकर्मभिः) सुन्दरकृत्यैः (त्रिधातु) कफवातपि-त्तात्मकं (अरेपसं) पापशून्यं (तन्वं) शरीरं (मित्राय वरुणाय वायवे) अध्यापकत्वोपदेशकत्वकर्मयोगित्वसंपादनाय (मधु-क्रियते) यः संस्करोति स पुरुषः (अव्ये सानवि) सर्वरक्षकस्य परमात्मनः स्वरूपे (न्यधाविष्ट) स्थिरोभवति। यः परमात्मा (हरिः) पापानां नाशकोऽस्ति। अथच (शुचिः) पवित्रोऽस्ति। तथा (पुनानः) पावकः (जुष्टः) प्रीत्या संसेवनीयोऽस्ति॥

पदार्थ—(सुकर्मभिः) सुन्दर कर्मोंसे (त्रिधातु) कफ, वात-पित्तात्मक (अरेपसं) पापरहित (तन्वं) शरीर (मित्राय वरुणाय वायवे) अध्यापक, उपदेशक और कर्मयोगी बननेके लिये (मधु क्रियते) जिसने संस्कृत किया है, वह पुरुष (अव्ये सानवि) सबरक्षक परमात्माके स्वरूपमें (न्यधाविष्ट) स्थिर होता है। जो परमात्मा (हरिः) पापोंका हरण करने वाला है, और (शुचिः) पवित्र है, तथा (पुनानः) पवित्र करने वाला है। और (जुष्टः) प्रीतिसे सेव्य है ॥

भावार्थ—जो लोग अपने इन्द्रियसंयम द्वारा वा यज्ञादि कर्मों-द्वारा इस शरीरका संस्कार करते हैं, वे मानो इस शरीरको मधुमय बनाते हैं। जैसे कि "महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः" इत्यादि वाक्योंमें यह कहा है, कि अनुष्ठानसे पुरुष इस तनुको ब्राह्मी अर्थात् ब्रह्मसे सम्बन्ध रखने वाली बना लेता है। इसी भावका उपदेश इस मंत्रमें किया गया है ॥८॥

पवस्व सोम देववीतये वृषेन्द्रस्य
हार्दि सोमधानमा विश ।
पुरा नो बाधाद्दुरितातिं पारय
क्षेत्रविद्धि दिश आहा विपृच्छते ॥९॥

पवस्व । सोम । देवऽवीतये । वृषा । इन्द्रस्य । हार्दि । सोमऽधानं । आ । विश । पुरा । नः । बाधात् । दुःऽइता । अति । पारय । क्षेत्रऽवित् । हि । दिशः । आह । विऽपृच्छते ॥९॥

पदार्थः—(सोम) हे जगदीश ! भवान् (देववीतये) यज्ञादिकर्मकरणीय (पवस्व) अस्मान् पवित्रयतु। अथच (वृषा)

आनन्दवर्षको भवान् (इन्द्रस्य) कर्मयोगिनः (सोमधानं) भवांस्थतियोग्यं मनः (हार्दि) सर्वप्रियमस्ति तस्मिन् (आविश) आगत्य प्रविशतु । तथा येन प्रकारेण (क्षेत्रवित्) मार्गज्ञोजनः (विपृच्छते) मार्गपृच्छकाय (दिशआह हि) शुभमार्गमुपदिशति तथा भवान् (नः) अस्माकं (बाधात्) बाधनात् (पुरा) पूर्वमेव (दुरिता) दुरितानि (अतिपारय) दूरयतु ॥

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! आप (देववीतये) यज्ञादि कर्मके लिये (पवस्व) हमको पवित्र बनायें । और (वृषा) आनन्दवर्षक आप (इन्द्रस्य) कर्मयोगीको (सोमधानं) जो आपकी स्थितिके योग्य मन (हार्दि) सर्वप्रिय है, उसमें (आविश) आकर प्रवेश करें । और जिस प्रकार (क्षेत्रवित्) मार्गका जानने वाला पुरुष (विपृच्छते) मार्ग पूछने वालेको (दिश आह हि) शुभ मार्गका उपदेश करता है, इसी प्रकार आप (नः) हम लोगों के (बाधात्) पीडनके (पुरा) पहले ही (दुरिता) पापोंको (अति पारय) दूर करिये ॥

भावार्थ—परमात्मा जीवोंको शुभमार्गका उपदेश करके आनेवाले दुःखोंसे पहिले ही बचाता है ॥९॥

हितो न सप्तिरभि वाजमर्षे-
न्द्रस्येन्दो जठरमा पवस्व ।
नावा न सिन्धुमति पर्षि विद्वाञ्छूरो-
न युध्यन्नव नो निदः स्पः ॥१०॥२४॥

हितः । न । सप्तिः । अभि । वाजं । अर्ष । इन्द्रस्य । इन्दो इति । जठरं । आ । पवस्व । नावा । न । सिन्धुं । अति ।

पर्षि । विद्वान् । शूरः । न । युध्यन् । अव । नः । निदः । स्परिति स्पः ॥१०॥

पदार्थः—(इन्दो) परमैश्वर्यं सम्पन्न परमात्मन्! (नावा न) यथा नाविका नराः (सिन्धु) नदीं (अतिपर्षि) पारयन्ति तथा भवान् अस्मान् संसारसागरतः पारं करोतु । (विद्वान् शूरोन) यथा प्राज्ञः शूरः (युध्यन्) युद्धं कुर्वन् (नः) अस्माकं (निदः) निन्दकान् (अवस्पः) हिनस्ति । तथा भवानपि दुष्टान्निहत्य श्रेष्ठान् जनान् परिपालयतु । अथच (सप्तिर्न) यथा सूर्यः (वाजं) ऐश्वर्यमुत्पादयन् (अभ्यर्ष) स्वलक्ष्यं (प्राप्नोति) तथा भवान् (इन्द्राय) कर्मयोगिनः (जठरं) हृदये ज्ञानरूपसत्तया विराजमानः (आपवस्व) पवित्रयस्व ॥

पदार्थ—(इन्दो) परमैश्वर्य सम्पन्न परमात्मन्! (नावान) जैसे नाविकजन (सिन्धुं) नदीको (अतिपर्षि) पार करते हैं, ऐसे आप हमको संसारसागर से पार करें। (विद्वान् शूरोन) और जैसे विद्वान् शूरवीर (युध्यन्) युद्ध करता हुआ (नः) हम लोगोंके (निदः) निन्दकोंको (अवस्पः) मारता है, इसी तरह आप दुष्टोंको दमन कर श्रेष्ठोंको उबारें। और (सप्तिर्न) जैसे सूर्य (वाजं) ऐश्वर्यको उत्पन्न करता हुआ (अभ्यर्ष) अपने लक्ष्यको प्राप्त होता है, इसी प्रकार आप (इन्द्रस्य) कर्मयोगीके (जठरं) हृदयमें ज्ञानरूपी सत्तासे विराजमान होकर (आपवस्व) पवित्र करें।

भावार्थ—परमात्मा सूर्यके समान अज्ञानरूप अन्धकारको दूर करके हमारे हृदयमें ज्ञानदीपिका प्रकाश करता है ॥१०॥

इति सप्ततितमं सूक्तं चतुर्विंशोवर्गश्च समाप्तः ॥

यह ७० वां सूक्त और २४ वां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ दशर्चस्यैकसप्ततितमस्य सूक्तस्य-

१—९ ऋषभो वैश्वामित्र ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः-१, ४, ७ विराड्जगती । २ जगती । ३, ५, ८ निचृज्जगती । ६ पादनिचृज्जगती । ९ विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१—८ निषादः । ९ धैवतः ॥

अथ परमात्मनोद्युभुवादीनामधिकरणत्वं निरूप्यते ॥

अब परमात्माको द्युभुवादि-लोकोंका अधिकरणरूपसे निरूपण करते हैं ॥

आ दक्षिणा सृज्यते शुष्म्या३सदं
वेति द्रुहो रक्षसः पाति जागृविः ।
हरिरोपशं कृणुते नभस्पय-
उपस्तिरे चम्वो३र्ब्रह्म निर्णिजे ॥१॥

आ । दक्षिणा । सृज्यते । शुष्मी । आऽसदं । वेति । द्रुहः । रक्षसः । पाति । जागृविः । हरिः । ओपशं । कृणुते । नभः । पयः । उपऽस्तिरे । चम्वोः । ब्रह्म । निःऽनिजे ॥१॥

पदार्थः—(सोमः) परमात्मा (शुष्मी) बलवान् (आसदं) सर्वत्र व्याप्तोस्ति । उपासकाः (दक्षिणा) उपासनारूपां दक्षिणां (सृज्यते) परमात्मानं समर्पयंति । (जागृविः) जागरणशीलः परमात्मा (द्रुहोरक्षसः) द्रोहकारिराक्षसान्निहत्य सज्जनान् (पाति) रक्षति । अथच (चम्वोः) द्यावाभूमी (निर्णिजे)

पुष्णाति । (हरिः) पापाहारकः (ब्रह्म) परमात्मा (नभः) अन्तरिक्षलोकं (पयः) परमाणुपुञ्जेन (उपस्तिरे) आच्छादयति। तथा (ओपशं) सर्वावकाशदमन्तरिक्षलोकं (कृणुते) स परमात्मैव करोति ॥

पदार्थ—(सोमः) परमात्मा (शुष्मी) बल वाला (आसदं) सर्वत्र व्याप्त है। उपासक लोग (दक्षिणा) उपसनारूप दक्षिणाको (सृज्यते) परमात्माको समर्पित करते हैं। (जागृविः) जागरणशील परमेश्वर (द्रुहोरक्षसः) द्रोह करने वाले राक्षसोंको मारकर सज्जनोंकी (पाति) रक्षा करता है। और (चम्वोः) द्युलोक तथा पृथिवीलोकको (निर्णिजे) पोषण करता है। (हरिः) पापोंका हरण करने वाला (ब्रह्म) परमात्मा (नभः) अन्तरिक्षलोकको (पयः) परमाणुसमूहसे (उपस्तिरे) आच्छादित करता है। तथा (ओपशं) वही परमात्मा अन्तरिक्षलोकको (कृणुते) सबको अवकाश देने वाला करता है ॥

भावार्थ—परमात्माने इस ब्रह्माण्डको द्रवीभूत अथवा यों कहो कि वाष्परूप परमाणुओंसे आच्छादित किया हुआ उसी सर्वोपरि उपास्यदेवकी उपासक लोग अपनी उपासना रूप दक्षिणासे उपासना करें ॥१॥

प्र कृ॒ष्टिहे॑व शू॒ष ए॑ति॒ रोरु॑वदसु॒र्यं१॒॑
वर्णं॒ नि रि॑णीते अ॒स्य तम् ।
जहा॑ति व॒व्रिं पि॒तुरे॑ति
निष्कृ॒तमु॑प॒प्रुतं॑ कृणुते नि॒र्णिजं॒ तना॑ ॥२॥

प्र । कृ॒ष्टि॒हाऽइ॑व । शू॒षः । ए॒ति॒ । रोरु॑वत् । अ॒सु॒र्यं॑ । वर्णं॑ । नि । रि॒णी॒ते॒ । अ॒स्य॒ । तं । जहा॑ति । व॒व्रिं । पि॒तुः । ए॒ति॒ । निः॒ऽकृ॒तं । उ॒प॒ऽप्रुतं॑ । कृ॒णु॒ते॒ । निः॒ऽनिजं॑ । तना॑ ॥२॥

पदार्थः—(शूषः) अस्य जगत उत्पादकः परमेश्वरः (कृष्टिहेव) योद्धेव (एति) महताप्रभावेन सर्वत्र परिपूर्णोऽस्ति । अथच (असुर्यं) राक्षसान् (रोरुवत्) खेदयति । तथा (अस्य) अमुष्य जीवात्मनः (तं) पूर्वोक्तां (वर्णं) आच्छादनकर्त्रीं (वव्रिं) वृद्धावस्थां (जहाति) अतिक्रामति । अथच (पितुरेति) पितुर्भावं प्राप्नुवन् (निष्कृतं) कृतकार्यं तथा (उपप्रुतं) पूर्णं (कृणुते) करोति । तथा (तना) इदं शरीरं (निर्णिजं) सुरूपयुक्तं करोति (निरिणीते) निर्मुक्तं च करोति ॥

पदार्थ—(शूषः) इस संसारकी उत्पत्ति करने वाला परमात्मा (कृष्टिहेव) योद्धाके समान (एति) बड़े प्रभावसे सर्वत्र परिपूर्ण हो रहा है । और (असुर्यं) असुरोंको (रोरुवत्) अत्यन्त रुलाता है । तथा (अस्य) इस जीवात्माके (तं) पूर्वोक्त (वर्णं) आच्छादन करने वाली (वव्रिं) वृद्धावस्थाको (जहाति) अतिक्रमण करता है । और (पितुः एति) पिताके भावको प्राप्त होकर (निष्कृतं) कृतकार्य और (उपप्रुतं) पूर्ण (कृणुते) बना देता है । तथा (तना) इस शरीरको (निर्णिजं) सुन्दररूप युक्त बना देता है । और (निरिणीते) निर्मुक्त करता है ॥

भावार्थ—जो पुरुष परमात्मज्ञानके पात्र हैं परमात्मा उनको पूर्णज्ञान देकर जरामरणादिभावोंसे निर्मुक्त करके अमृत बना देता है ॥२॥

अद्रिभिः सुत पवते
गभस्त्योर्वृषायते नभसा वेपते मती ।
स मोदते नसते साधते गिरा
नेनिक्ते अप्सु यजते परीमणि ॥३॥

अद्रिऽभिः । सुतः । पवते । गभस्त्योः । वृषऽयते । नभसा । वेपते । मती । सः । मोदते । नसते । साधते । गिरा । नेनिक्ते । अप्ऽसु । यजते । परीमणि ॥३॥

पदार्थः—(सुतः) स्वयंसिद्धः परमेश्वरः (अद्रिभिः) चित्तवृत्तिभिः साक्षात्कृतः सन् (पवते) पवित्रयति । अथच (गभस्त्योः) अस्य जीवात्मनोज्ञानरूपदीप्तीः (वृषायते) बलयुताःकरोति । तथा (मती) ज्ञानस्वरुपोजगदीश्वरः (नभसा वेपते) व्याप्तोभवति । (सः) असौ परमेश्वरः (मोदते) आनन्दरूपेण-विराजते तथा (नसते) सर्वैः संगतो विराजमानोस्ति। (गिरा) वेदवाणिभिरुपासितः (साधते) सिद्धिदायकोस्ति (अप्सु) सत्कर्माणि प्रविश्य (नेनिक्ते) मनुष्यं पवित्रयति (परीमणि) रक्षायज्ञेषु (यजते) सर्वत्र परिपूजितोस्ति ॥

पदार्थ—(सुतः) स्वयंसिद्ध स्वयम्भू परमात्मा (अद्रिभिः) चित्तवृत्तियों द्वारा साक्षात् किया हुआ (पवते) पवित्र करता है । और (गभस्त्योः) इस जीवात्माकी ज्ञानरूपी दीप्तियोंको (वृषायते) बलयुक्त करता है । तथा (मती) वह ज्ञानस्वरूप परमात्मा (नभसा वेपते) व्याप्त हो रहा है । (सः) वह (मोदते) आनन्दरूपसे विराजमान है । और (नसते) सबका अङ्गी सङ्गी होकर विराजमान है । (गिरा) वेदरूपी वाणिओं द्वारा उपासना किया हुआ (साधते) सिद्धिका देने वाला है । और (अप्सु) सत्कर्मोंमें प्रवेश करके (नेनिक्ते) मनुष्यको शुद्ध करने वाला है । तथा (परीमाणि) रक्षाप्रधान यज्ञोंमें (यजते) सर्वत्र परिपूजित है ॥

भावार्थ—जो परमात्मज्ञानके पात्र होते हैं, वे प्रथम स्वयं-उद्योगी बनते हैं, फिर परमात्मा उनके उद्योग द्वारा उनको शुद्ध करके परमानन्दका भागी बनाता है ॥३॥

परि॑ द्यु॒क्षं सह॑सः पर्व॒ता॒वृधं॒ मध्वः॑
सिञ्च॑न्ति ह॒र्म्यस्य॑ स॒क्षणि॑म् ।
आ यस्मि॒न्गावः॑ सुहु॒ताद॒ ऊध॑नि
मू॒र्धञ्छ्री॒णन्त्य॑ग्रि॒यं वरी॑मभिः ॥४॥

परि॑ । द्यु॒क्षं । सह॑सः । पर्व॒त॒ऽवृध॑म् । मध्वः॑ । सि॒ञ्चन्ति॑ । ह॒र्म्यस्य॑ । स॒क्षणि॑म् । आ । यस्मि॑न् । गावः॑ । सु॒हु॒त॒ऽअदः॑ । ऊध॑नि । मू॒र्धन् । श्री॒णन्ति॑ । अ॒ग्रि॒यम् । वरी॑मऽभिः ॥४॥

पदार्थः—(सहसः) क्षमी (मध्वः) सर्वानन्ददः परमेश्वरः (द्युक्षं) ज्ञानदीप्तिषु निश्चलस्य जीवस्य (हर्म्यस्य सक्षणिं) ये शत्रवःसन्ति तेषां घातकोऽस्ति । तथा (पर्वतावृधं) योहिमवानिव स्वसहायभूतैर्जनैरभ्युदयंगतः एतादृशं जीवात्मानं (परिषिञ्चति) ज्ञानवृष्ट्या सिञ्चनं करोति । (यस्मिन्) यत्र (गावः) इन्द्रियाणि (सुहुतादः) स्वीयभोग्यविषयाणां शब्दस्पर्शादीनां भोगकर्तृशक्तिमंति सन्ति । अथ च (वरीमभिः) समहत्त्वेन (ऊधनि)-पयोधारपात्रमिव (अग्रियं) तस्याग्रणीपुरुषस्य (मूर्धन्) मूर्धानं (आश्रीणन्ति) अभिषेकेण पवित्रयन्ति ॥

पदार्थ—(सहसः) क्षमाशील वह परमात्मा (मध्वः) सबको-आनन्द देने वाला (द्युक्षं) ज्ञानरूपी दीप्तियोंमें स्थिर जीवको (हर्म्यस्य सक्षणिं) जो शत्रुओंको हनन करने वाला है, तथा (पर्वतावृधं) जो हिमालयकी तरह अपने सहायक लोगोंसे वृद्धिको प्राप्त है, ऐसे जीवात्माको (परिषिंचंति) परमात्मा ज्ञानारूपी दृष्टिसे सिंचन करता है । तथा वह

ऐसे जीवात्माको ज्ञानदृष्टिसे परिपूर्ण करता है। (यस्मिन्) जिसमें (गावः) इन्द्रियें (सुहुतादः) अपने शब्दस्पर्शादि भोग्य विषयोंको भोगनेकी शक्ति रखतीं हैं। और (वरीमभिः) अपने महत्वसे (ऋधनि) पयोधारपात्रके समान (अग्निं) उस अग्रणी पुरुषके (मूर्धन्) मूर्धाको (आश्रीणन्ति) अभिषेक द्वारा शुद्ध करतीं हैं ॥

भावार्थ—परमात्मा उपासकको ज्ञानी तथा विज्ञानी बनाकर उसका उद्धार करता है ॥४॥

समी रथं न भुरिजोरहेषत दश
स्वसारो अदितेरुपस्थ आ ।
जिगादुप ज्रयति गोरपीच्यं पदं
यदस्य मतुथा अजीजनन् ॥५॥२५॥

सं । ईमिति । रथं । न । भुरिजोः । अहेषत । दश । स्वसारः । अदितेः । उपऽस्थे । आ । जिगात् । उप । ज्रयति । गोः । अपीच्यं । पदं । यत् । अस्य । मतुथाः । अजीजनन् ॥५॥

पदार्थः—(दश) दशसंख्याकाः (स्वसारः) स्वाभाविकगतिमंतः प्राणाः (अदितेः उपस्थे) अस्मिन् पार्थिवशरीरे (आजिगात्) इन्द्रियवृत्तीः जयन्ति (न) यथा सारथी (रथं) यानं (भुरिजोः) बाहुभ्यां (अहेषत) प्रेरयति तथा जगदीश्वरः शुभाशुभकर्मभिर्नरशरीररूपं रथं प्रेरयति । अथ च (अस्य) अमुष्य जीवात्मनः (मतुथाः) मनोरथान् (अजीजनन्) सफलयन्ति । तथा (यत्) यत् (अपीच्यं पदं) गूढं पदं वर्तते तत् जीवात्मानमिमं

प्रददाति । अथ च (ईं) पूर्वोक्तं परमेश्वरं (सं) सम्यक् प्राप्य (उपजयति) स्वकीयमनोरथान् साधनोति ॥

पदार्थ—(दश) दश संख्या वाले (स्वसारः) स्वभाविक गतिवाले प्राण (अदितेः, उपस्थे) इस पार्थिव शरीरमें (आजिगात्) इन्द्रियोंकी वृत्तियोंको जीतते हैं। और (न) जैसे सारथी (रथं) रथको (भुरिजोः) हाथोंसे (अहेषत) प्रेरणा करता है, इसी प्रकार परमात्मा शुभाशुभ कर्म द्वारा मनुष्योंके शरीररूपी रथकी प्रेरणा करता है। (अस्य) इस जीवात्माके (मतुथाः) मनोरथोंको जो (अजीजनन्) सफल करते हैं। तथा (यत्) जो (अपीच्यं) गूढ़ (पदं) पद है, वह इस जीवात्माको प्रदान करते हैं। और (ईं) उक्त परमात्माको (सं) भलीभांति प्राप्त होकर (उपजयति) अपने मनोरथों को सिद्ध कर लेता है ॥

भावार्थ—इस मंत्रमें यह बतलाया गया है, कि मनुष्य प्राणायाम द्वारा संयमी बनकर उन्नतिशील बने ॥१॥

श्येनो न योनिं सदनं धिया कृतं
हिरण्ययमासदं देव एषति ।
ए रिणन्ति बर्हिषि प्रियं गिराश्वो
न देवाँ अप्येति यज्ञियः ॥६॥

श्येनः । न । योनिं । सदनं । धिया । कृतं । हिरण्ययं । आऽसदं । देवः । आ । ईषति । आ । ईमिति । रिणन्ति । बर्हिषि । प्रियं । गिरा । अश्वः । न । देवान् । अपि । एति । यज्ञियः ॥६॥

पदार्थः—(देवः) दिव्यगुणयुक्तः परमेश्वरः (धिया कृतं) संस्कृतबुद्ध्या साक्षात्कृतः (हिरण्ययं) प्रकाशरूपं (आसदं) स्थानं (एषति) प्राप्तोभवति। (श्येनो न) यथा श्येनः पक्षी (योनिं सदनं) स्वनीडमभिगच्छति तद्वत् (ईं) एनं (प्रियं) सर्वप्रियं परमात्मानं उपासकाः (बर्हिषि) हृदये (गिरा) वेदवाणीभिः (आरिणन्ति) स्तुवन्ति। (अश्वोन) अश्नुतेचराचरमितिअश्वो, विद्युत् यथा चराचरं व्याप्नोति। तथा (यज्ञियः) परमेश्वरः (देवान्) विदुषः (अप्येति) प्राप्तोभवति॥

पदार्थ—(देवः) दिव्यगुणयुक्त परमात्मा (धिया कृतं) संस्कृत बुद्धिसे साक्षात्कार किया हुआ (हिरण्ययं) प्रकाशरूप (श्येनो न योनिं सदनं) अपने स्थिर स्थान घोंसलेको प्राप्त होता है उसी तरह जैसे बाज (आसदं) स्थानको (एषति) प्राप्त होता है। (ईं) उक्त (प्रियं) सबके प्यारे परमात्माकी उपासक (बर्हिषि) हृदयमें (गिरा) वेदवाणियोंसे (आरिणन्ति) स्तुति करते हैं। एवं (यज्ञियः) परमात्मा (देवान्) दिव्यगुण वाले विद्वानोंको (अप्येति) प्राप्त होता है॥

भावार्थ—जो लोग परमात्माका साक्षात्कार करना चाहें, वे अपने हृदयमें उसका ध्यान करें॥६॥

परा व्यक्तो अरुषो दिवः
कविर्वृषा त्रिपृष्ठो अनविष्ट गा अभि।
सहस्रणीतिर्यतिः परायती रेभो न
पूर्वीरुषसो वि राजति॥७॥

परा । विऽअंक्तः । अरुषः । दिवः । कविः । वृषा । त्रिऽपृष्ठः । अनविष्ट । गाः । अभि । सहस्रंऽनीतिः । यतिः । पराऽयतिः । रेभः । न । पूर्वीः । उषसः । वि । राजति ॥७॥

पदार्थः—(अरुषः) प्रकाशस्वरूपः (वृषा) आनन्दवर्षकः (कविः) सर्वज्ञः (व्यक्तः) स्फुटः परमात्मा (दिवः परा) द्युलोकादपि परोस्ति । तथा (त्रिपृष्ठः) त्रिकालज्ञः परमात्मा (गाः) उपासनारूपा वाणीः (अभि) अभिलक्ष्य (अनविष्ट) स्थिरोस्ति । अथ स परमेश्वरः (सहस्रणीतिः) अनन्तशक्तिमानस्ति । तथा (यतिः) लोकमर्यादाहेतुरस्ति । तथा (परायतिः) सर्वत्र व्याप्तोस्ति । परमात्मा (पूर्वी उषसः) अनादिषूषस्सु (रेभो न) प्रकाशमानः सूर्य इव (विराजति) विराजमानोस्ति ॥

पदार्थ—(अरुषः) प्रकाशस्वरूप (वृषा) आनन्दका वर्षक (कविः) सर्वज्ञ (व्यक्तः) स्फुट परमात्मा (दिवः परा) द्युलोकसे भी परे है । तथा (त्रिपृष्ठः) त्रिकालज्ञ परमात्मा (गाः) उपासनारूपी वाणीको (अभि) लक्ष्य करके (अनविष्ट) स्थिर है । और वह परमेश्वर (सहस्रणीतिः) अनन्त शक्ति वाला है । और (यतिः) लोक मर्यादाका हेतु, और (परायतिः) सर्वत्र व्याप्त है । परमात्मा (पूर्वी उषसः) अनादि कालकी ऊषाओंमें (रेभो न) प्रकाशमान सूर्यके समान (विराजति) विराजमान है ॥

भावार्थ—अनादि कालसे परमात्मा अनेक ऊषाकालोंको प्रकाशित करता हुआ सर्वत्र विद्यमान है ॥७॥

त्वेषं रूपं कृणुते वर्णो अस्य स
यत्राशयत्समृता सेधति स्रिधः ।
अप्सा याति स्वधया दैव्यं जनं
सं सुष्टुती नसते सं गोअग्रया ॥८॥

त्वेषं । रूपं । कृणुते । वर्णः । अस्य । सः । यत्र । अशयत् । सम्ऽऋता । सेधति । स्रिधः । अप्साः । याति । स्वधया । दैव्यं । जनं । सं । सुऽस्तुती । नसते । सं । गोऽअग्रया ॥८॥

पदार्थः—(सोमः) परमात्मा (रूपं) स्वरूपं (त्वेषं) दीप्यमानं (कृणुते) करोति (वर्णः) वरणीयः (सः) असौ परमेश्वरः (यत्र) यस्मिन् (समृता) रणे (अशयत्) स्थिरोभवति (अस्य) तत्र (स्रिधः) दुष्टान् (सेधति) हिनस्ति । (दैव्यं जनं) दिव्यशक्तिमन्तं पुरुषं (अप्साः) सुकर्मदः (संस्तुती) स्तुतियोग्योजगदीशः (स्वधया) स्वानन्दवृष्ट्या (याति) परिपूर्णोस्ति । अथ च (गोअग्रया) वेदवाण्या (संनसते) सर्वत्र संगतोभवति ॥

पदार्थ—(सोमः) परमात्मा (रूपं) रूपको (त्वेषं) दीप्यमान (कृणुते) करता है । (वर्णः) वरणीय (सः) वह परमात्मा (यत्र) जिस (समृता) संग्राममें (अशयत्) स्थिर होता है (अस्य) उसमें (स्रिधः) दुष्टोंको (सेधति) मारता है । (दैव्यं जनं) दिव्यशक्ति वाले मनुष्यको वह (अप्साः) सत्कर्मोंका दाता (संस्तुती) सुन्दर स्तुति योग्य परमात्मा (स्वधया) अपने आनन्दसे (याति) परिपूर्ण है । और (गोअग्रया) वेदवाणीसे (संनसते) सर्वत्र संगत होता है ॥

भावार्थ—इस मंत्रमें इस बातका वर्णन किया गया है, कि परमात्मा प्रत्येक रूपको प्रदीप्त करने वाला है। उसीकी सत्तासे सम्पूर्ण पदार्थ स्थिर हैं। और स्वयं वह निर्लेप होकर इन सब चीजोंमें विराजमान है ॥८॥

उक्षेव यथा परियन्नरावीदधि
त्विषीरधित सूर्यस्य ।
दिव्यः सुपर्णोऽव चक्षत क्षां सोमः
परि क्रतुना पश्यते जाः ॥९॥२१॥

उक्षाऽइव । यूथा । परिऽयन् । अरावीत् । अधि । त्विषीः । अधित । सूर्यस्य । दिव्यः । सुऽपर्णः । अव । चक्षत । क्षां । सोमः । परि । क्रतुना । पश्यते । जाः ॥९॥

पदार्थः—(उक्षेव) विद्युदिव (यूथा) गणान् (परियन्) संप्राप्य (अरावीत्) शब्दायते (सूर्यस्य) सर्वात्मनः (त्विषीः) दीप्तिः (अध्यधित) अधिदधाति स पूर्वोक्तः (दिव्यः) (सुपर्णः) चिद्रूपः परमात्मा (क्षां) पृथिवीं (अवचक्षत) व्याकरोति (सोमः) परमात्मा (क्रतुना) । ज्ञानदृष्ट्या (जाः) प्रजाः (परिपश्यते) पश्यति ॥

पदार्थ—(उक्षेव) विद्युत्के समान (यूथा) गणोंको (परियन्) प्राप्त होकर (अरावीत्) शब्दायमान होता है (सूर्यस्य) सूर्यको (त्विषीः) दीप्तिका (अध्यधित) धारण कराता है । (दिव्यः) दिव्य-गुण वाला (सुपर्णः) चेतन (सोमः) परमात्मा (क्षां) पृथिवीका (अवचक्षत) निर्माण करने वाला है । वह परमात्मा (जाः) प्रजाको (क्रतुना) ज्ञानदृष्टिसे (परिपश्यते) देखता है ॥

भावार्थ—परमात्मा अपनी ज्ञानदृष्टिसे सम्पूर्ण पदार्थोंको देखता है । और सूर्यादि लोकलोकान्तरोंका प्रकाशक है ॥९॥

इत्येकसप्ततितमं सूक्तं षड्विंशोवर्गश्च समाप्तः ।

यह ७१ वां सूक्त और २६ वां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ नवर्चस्य द्विसप्ततितमस्य सूक्तस्य–

१—९ हरिमन्त ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥
छन्दः–१–३, ६, ७ निचृज्जगती । ४, ८
जगती । ५ विराड्जगती ।
९ पादनिचृज्जगती ॥
निषादः स्वरः ॥

अथ परमात्मोपदेशो निरूप्यते ।

अब परमात्मोपदेश निरूपण करते हैं ।

हरिं मृजन्त्यरुषो न युज्यते सं
धेनुभिः कलशे सोमो अज्यते ।
उद्वाचमीरयति हिन्वते मती
पुरुष्टुतस्य कति चित्परिप्रियः ॥१॥

हरिं । मृजन्ति । अरुषः । न । युज्यते । सं । धेनुऽभिः । कलशे । सोमः । अज्यते । उत् । वाचं । ईरयति । हिन्वते । मती । पुरुऽस्तुतस्य । कति । चित् । परिऽप्रियः ॥१॥

पदार्थः—(सोमः) परमेश्वरः (उद्वाचं) सदुपदेशं (ईरयति) प्रेरयति । परमात्मा (मती) बुद्धिं (हिन्वते) प्रेरयति । अथच (पुरुष्टुतस्य) विज्ञानिनां (परिप्रियः) सखा । तस्मै (कतिचित्) बहुधनानि प्रयच्छति (कलशे) संस्कृतान्तःकरणे (सं धेनुभिः) संस्कृतेन्द्रियैः परमात्मा (अज्यते) पूज्यते । सोयं-परमात्मा (अरुषेन) विद्युदिव (युज्यते) सर्वत्र युक्तोभवति ॥

पदार्थ—(सोमः) परमात्मा (उद्वाचं) सदुपदेशकी (ईरयति) प्रेरणा करने वाला है। (मती) बुद्धिका (हिन्वते) प्रेरक है। और (पुरुष्टुतस्य) विज्ञानियोंको (परिप्रियः) सर्वोपरि प्यारा परमात्मा (कतिचित्) अनन्त दान देता है। (अरुषेन) विद्युत्की तरह वह परमात्मा (युज्यते) युक्त होता है। ऐसे (हरिं) परमात्माको उपासक (मृजन्ति) ध्यानविषय करतेहैं। और उसका (संधेनुभिः) इन्द्रियोंके द्वारा (कलशे) अन्तःकरणोंमें (अज्यते) साक्षात्कार किया जाता है॥

भावार्थ—जो लोग अपनी इन्द्रियोंको संस्कृत बनाते हैं, अर्थात् शुद्ध मन वाले होते हैं, परमात्मा अवश्यमेव उनके ध्यानका विषय होता है ॥१॥

साकं वदन्ति बहवो मनीषिण
इन्द्रस्य सोमं जठरे यदादुहुः ।
यदी मृजन्ति सुगभस्तयो नरः
सनीळाभिर्दशभिः काम्यं मधु ॥२॥

साकं । वदन्ति । बहवः । मनीषिणः । इंद्रस्य । सोमं । जठरे । यत् । आऽदुहुः । यदि । मृजन्ति । सुऽगभस्तयः । नरः । सऽनीलाभिः । दशऽभिः । काम्यं । मधु ॥२॥

पदार्थः—(सुगभस्तयः) शोभनकर्माणः (नरः) नेतारो जनाः (यदि) यदा (सनीलाभिः) बलयुक्तैः (दशभिः) दशेन्द्रियैः (काम्यं) सर्वकामप्रदं,(मधु) आनन्दरूपं परमात्मानं (जठरे) अन्तःकरणमें (मृजन्ति) ध्यानविषयं कुर्वन्ति तदा (बह्वः) प्रचुराः (मनीषिणः) योगिनः (साकं वदन्ति) युगपदेव उच्चारयन्ति। किं तत् वदन्ति (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यस्य (सोमं) उत्पादकं परमात्मानं (आदुहः) यूयं साक्षात्कुरुत ॥

पदार्थ—(यदि) जब (बह्वोमनीषिणः) बुद्धिमान् लोग (साकं) साथही (वदन्ति) उसका यशोगान करते हैं। तब (इन्द्रस्य) कर्मयोगीके (जठरे) अन्तःकरणमें (सोमं) शान्तिरूप परमात्मा (दुहः) परिपूर्ण रहते हैं और (सुगभस्तयोनरः) भाग्यवान् लोग (यदा) जब (मृजन्ति) उसका साक्षात्कार करते हैं। तब (सनीलाभिर्दशभिः)-बलयुक्त दश इन्द्रियोंसे (काम्यं मधु) यथेष्ट आनन्दको लाभ करते हैं ॥

भावार्थ—जब कर्मयोगी लोग उस परमात्माका साक्षात्कार करते हैं, तब सामाजिकबल उत्पन्न होता है। अर्थात् बहुतसे लोगोंकी सङ्गति होकर परमात्माके यशका गान करते हैं ॥२॥

अरममाणो अत्येति गा अभि सूर्यस्य
प्रियं दुहितुस्तिरो रवम् ।
अन्वस्मै जोषमभरद्विनङ्गृसः सं द्वयीभिः
स्वसृभिः क्षेति जामिभिः ॥ ३ ॥

अरममाणः । अति । एति । गाः । अभि । सूर्यस्य । प्रियं । दुहितुः । तिरः । रवं । अनु । अस्मै । जोषं । अभ-

रत् । विनऽङ्गृसः । सं । द्वयीभिः । स्वसृऽभिः । क्षेति । जामिऽभिः ॥३॥

पदार्थः—(अरममाणः) जितेन्द्रियः कर्मयोगी (गाः) इन्द्रियाणि (अत्येति) अतिक्रामति (सूर्यस्य प्रियं दुहितुः) रवेः-प्रियाया उषायाः (अभि) सम्मुखं (तिरोरवं) शब्दायमानः सन् स्थिरोभवति ! अथच स कर्मयोगी (द्वयीभिः स्वसृभिः) एकेन मनसाऽऽविर्भावात्स्वसृभावं दधन्त्यौ कर्मयोगस्य द्वे वृत्ती (जामिभिः) ये युगलरूपेण वर्तमाने ताभ्यां (संक्षेति) विचरति । (विनङ्गृसः) स्तोता (अस्मै) कर्मयोगिने (जोषमन्वभरत्) प्रीत्या संसेवते ॥

पदार्थ—(अरममाणः) जितेन्द्रियकर्मयोगी (गाः) इन्द्रियों-का (अत्येति) अतिक्रमण करता है । (सूर्यस्य प्रियं दुहितुः) सूर्यकी प्रिय दुहिता उषाके (अभि) सम्मुख (तिरोरवं) शब्दायमान होकर स्थिर होता है । और वह कर्मयोगी (द्वयीभिः स्वसृभिः) कर्मयोगकी दोनों वृत्तियें जो एक मनसे उत्पन्न होनेके कारण स्वसृभावको धारण किये हुई हैं, और (जामिभिः) जो युगलरूपसे रहतीं हैं, उनसे (संक्षेति) विचरता है । (विनङ्गृसः) स्तोता (अस्मै) उस कर्मयोगीके लिये (जोषमन्वभरत्) प्रीतिसे सेवन करता है ॥

भावार्थ—जितेन्द्रिय पुरुषके यशको स्तोता लोग गान करते हैं । क्योंकि उनके हाथमें इन्द्रिय-रूपी घोड़ोंकी रासें रहतीं हैं । इसी अभिप्रायसे उपनिषत् में यह कहा है, कि "सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम्" वही पुरुष इस संसाररूपी मार्गको तै करके विष्णुके परम पदको प्राप्त होता है, अन्य नहीं ॥३॥

नृधूतो अद्रिषुतो बर्हिषि प्रियः
पतिर्गवां प्रदिव इन्दुर्ऋत्वियः ।
पुरन्धिवान्मनुषो यज्ञसाधनः
शुचिर्धिया पवते सोम इन्द्र ते ॥४॥

नृऽधूतः । अद्रिऽसुतः । बर्हिषि । प्रियः । पतिः । गवाम् । प्रऽदिवः । इन्दुः । ऋत्वियः । पुरन्धिऽवान् । मनुषः । यज्ञऽसाधनः । शुचिः । धिया । पवते । सोमः । इन्द्र । ते ॥४॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे कर्मयोगिन् ! (नृधूतः) सर्वकम्पकः (अद्रिषुतः) संस्कृतेन्द्रियैः साक्षात्कृतस्तथा (बर्हिषि) यज्ञेषु (प्रियः) प्रियकारकः (गवां पतिः) लोकलोकान्तरस्य भर्ता तथा (प्रदिवः) द्युलोकस्य (इन्दुः) प्रकाशकः (ऋत्वियः) त्रिकालज्ञः (पुरन्धिवान्) सर्वज्ञः (मनुषः) मनुष्येभ्यः (यज्ञसाधनः) ज्ञानयज्ञकर्मयज्ञादिदायकः सः (सोमः) परमेश्वरः (शुचिर्धिया) शुद्धबुद्ध्या साक्षात्कृतः सन् (ते) त्वां (पवते) पवित्रयति ॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे कर्मयोगिन् ! परमात्मा (नृधूतः) सबको कम्पायमान करने वाला, और (अद्रिषुतः) संस्कृत इन्द्रियोंकी वृत्तियोंसे साक्षात्कारको जो प्राप्त है, तथा (बर्हिषि) यज्ञोंमें (प्रियः) जो प्रिय है, और जो जगदीश्वर (गवां पतिः) लोकलोकान्तरोंका पति है, तथा (प्रदिवः) द्युलोकका (इन्दुः) प्रकाशक है । और (ऋत्वियः) त्रिकालज्ञ (पुरन्धिवान्) सर्वज्ञ तथा (मनुषः) मनुष्योंके लिये (यज्ञसाधनः) ज्ञानयज्ञ, कर्मयज्ञादिकोंका देने वाला वह (सोमः) परमात्मा (शुचिर्धिया) शुद्धबुद्धिसे साक्षात्कार किया हुआ (ते) तुमको (पवते) पवित्र करता है ॥

भावार्थ—जो लोक-लोकान्तरोंका अधिपति परमात्मा है, उसको जब मनुष्य ज्ञानदृष्टिसे लाभ कर लेता है, तब आनन्दित हो जाता है ॥४॥

नृबाहुभ्यां चोदितो धारया
सुतोऽनुष्वधं पवते सोम इन्द्र ते ।
आप्राः क्रतून्त्समजैरध्वरे मतीर्वेर्न
द्रुषच्चम्वो३रासदद्धरिः ॥ ५ ॥ २७ ॥

नृबाहुऽभ्यां । चोदितः । धारया । सुतः । अनुऽस्वधं । पवते । सोमः । इन्द्र । ते । आ । अप्राः । क्रतून् । सं । अजैः । अध्वरे । मतीः । वेः । न । द्रुऽसत् । चम्वोः । आ असदत् । हरिः ॥५॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे कर्मयोगिन् ! (ते) त्वां (अनुष्वधं) बलार्थं (सोमः) शान्तरूपः परमात्मा (पवते) पवित्रयतु । उक्तः परमेश्वरः (नृबाहुभ्यां) मनुष्याणां ज्ञानेन कर्मणा-च (चोदितः) प्रेरितः अथ च (धारया) धारणरूपबुद्ध्या (सुतः) साक्षात्कृतः सन् पवित्रयतु । उक्तपरमात्मना पवित्रितस्त्वं (क्रतूनाप्राः) कर्माणि प्राप्नुहि । (अध्वरे) धर्मयुद्धे (मतीः) अभिमानिनश्शत्रून् (समजैः) सम्यग्जय (वेर्न) यथा विद्युत् (द्रुषत्) प्रतिगतिशीलपदार्थेषु स्थिरास्ति तथा (हरिः) पापहर्ता परमात्मा (चम्वोः) द्यावापृथिव्योः (आसदत्) स्थिरोस्ति ॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे कर्मयोगिन् ! (ते) तुमको (अनुष्वधं) बलके लिये (सोमः) शान्तरूप परमात्मा (पवते) पवित्र करे । उक्त-

परमात्मा (नृबाहुभ्यां) मनुष्योंके ज्ञान और कर्म द्वारा (चोदितः) प्रेरणा किया हुआ, तथा ((धारया) धारणारूप बुद्धिसे (सुतः) साक्षात्कार किया हुआ पवित्र करे। उक्त परमात्माके पवित्र किये हुए तुम (क्रतूनामाः) कर्मोंको प्राप्त हो। (अध्वरे) धर्मयुद्धमें (मतीः) अभिमानी शत्रुओंको तुम (समजैः) भलीभाँति जीतो। (वेने) जिस प्रकार विद्युत् (द्रुपत्) प्रत्येक गतिशील पदार्थोंमें स्थिर है, इसी प्रकार (हरिः) परमात्मा (चम्वोः) द्युलोक तथा पृथिवीलोकमें (आसदत्) स्थिर है॥

भावार्थ—कर्मयोगी उद्योगी पुरुष धर्मयुद्धमें अन्यायकारी शत्रुओं पर विजय पाते हैं। और विद्युत्के समान सर्वव्यापक परमात्मा पर भरोसा रखकर इस संसारमें अपनी गति करते हैं॥५॥

अंशुं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितं
कविं कवयोऽपसो मनीषिणः।
समी गावो मतयो यान्ति संयत
ऋतस्य योना सदने पुनर्भुवः॥ ६॥

अंशुं। दुहन्ति। स्तनयन्तं। अक्षितं। कविं। कवयः। अपसः। मनीषिणः। सं। ईमिति। गावः। मतयः। यन्ति। संऽयतः। ऋतस्य। योना। सदने। पुनःऽभुवः॥६॥

पदार्थः—(पुनर्भुवः) भूयोभूयोऽभ्यासकारिण्यः (गावो मतयः) बुद्धिरूपा इन्द्रियवृत्तयः (संयतः) संयमिताः (ऋतस्य योना सदने) सत्यस्य यज्ञे स्थिराः (ई) उक्तं परमात्मानं (संयन्ति) प्रापयन्ति। अथच (मनीषिणः) बुद्धिमन्तः (अपसः) कर्मयोगिनः (कवयः) स्तोतारोजनाः (कविं) सर्वज्ञं (अंशुं)

सर्वव्यापकं (स्तनयन्तं) जगद्विस्तारयन्तं (अक्षितं) अविनाशिनं परमेश्वरं (दुहन्ति) साक्षात्कुर्वन्ति ॥

पदार्थ—(पुनर्भुवः) बारम्बार अभ्यास करने वाली (गावोमतयः) बुद्धिरूपी इन्द्रियवृत्तियें (संयतः) संयमको प्राप्त होती हुई (ऋतस्य योना सदने) सचाईके यज्ञमें स्थिर (ईं) उक्त परमात्माको (संयन्ति) प्राप्त कराती हैं । और (मनीषिणः) बुद्धिमान् (अपसः) कर्मयोगी (कवयः) स्तुतिकी शक्ति रखने वाले लोग (कविं) सर्वज्ञ (अंशुं) सर्वव्यापक तथा (स्तनयन्तं) सम्पूर्ण संसारका विस्तार करने वाले (अक्षितं) क्षयरहित परमात्माका (दुहन्ति) साक्षात्कार करते हैं ॥

भावार्थ—जो लोग सर्वाधार और सर्वेश्वर परमात्माके ज्ञानको लाभ करते हैं, वेही उसके सचाईके यज्ञके ऋत्विक् बन सकते हैं, अन्य नहीं ॥६॥

नाभा पृथिव्या धरुणो महो दिवो३
ऽपामूर्मौ सिन्धुष्वन्तरुक्षितः ।
इन्द्रस्य वज्रो वृषभो विभूवसुः
सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः ॥७॥

नाभा । पृथिव्याः । धरुणः । महः । दिवः । अपां । ऊर्मौ । सिन्धुषु । अन्तः । उक्षितः । इन्द्रस्य । वज्रः । वृषभः । विभुऽवसुः । सोमः । हृदे । पवते । चारु । मत्सरः ॥७॥

पदार्थः—(इन्द्रस्य वज्रः) रुद्ररूपः (वृषभः) कामानां वर्षकः (विभूवसुः) पूर्णैश्वर्ययुक्तः (चारु मत्सरः) सर्वोपरि प्रमोदरूपः पूर्वोक्तः (सोमः) जगदीशः (हृदे) मद्हृदयं (पवते) पावित्रयतु । (पृथिव्या नाभा) यः परमेश्वरः पृथिव्या नाभौ स्थिरः

अथच (महोदिवः) महतोद्युलोकस्य (धरुणः) धारकोस्ति । तथा (अपामूर्मौ) जलतरङ्गेषु (सिन्धुषु) समुद्रेषु च (अन्तरुक्षितः) अभिषिक्तोस्ति स परमात्मा मां पवित्रयतु ॥

पदार्थ—(इन्द्रस्य वज्रः) रुद्ररूप परमात्मा (वृषभः) सब कामनाओंकी वृष्टि करने वाला तथा (विभूवसुः) परिपूर्ण ऐश्वर्य वाला और (चारु मत्सरः) जिसका सर्वोपरि आनन्द है, वह उक्त (सोमः) परमात्मा (हृदे) हमारे हृदयको (पवते) पवित्र करे । (पृथिव्या नाभा) जो परमात्मा पृथिवीकी नाभिमें स्थिर है; और (महोदिवः) बड़े द्युलोकका (धरुणः) धारण करने वाला है । तथा (अपामूर्मौ) जलकी लहरोंमें और (सिन्धुषु) समुद्रोंमें (अन्तरुक्षितः) अभिषिक्त किया गया है । उक्त गुणविशिष्ट परमात्मा हमको पवित्र करे ॥

भावार्थ—जो लोग उक्तगुणसे विशिष्ट परमात्माका उपासन करते हैं, और उसमें अटल विश्वास रखते हैं, परमात्मा उनको अवश्यमेव पवित्र करता है। और जो हतविश्वास होकर, ईश्वरके नियमका उल्लङ्घन करते हैं, परमात्मा उनके मदको चूर्ण करनेके लिये वज्रके समान उद्यत रहता है ॥७॥

स तू पवस्व परि पार्थिवं रजः
स्तोत्रे शिक्षन्नाधून्वते च सुक्रतो ।
मा नो निर्भाग्वसुनः सादनस्पृशो-
रयिं पिशङ्गं बहुलं वसीमहि ॥८॥

सः । तु । पवस्व । परि । पार्थिवं । रजः । स्तोत्रे । शिक्षन् । आऽधून्वते । च । सक्रतो इति सुऽक्रतो । मा । नः । निः । भाक् । वसुनः । सदनऽस्पृशः । रयिं । पिशङ्गं । बहुलं । वसीमहि ॥८॥

पदार्थः—(सुक्रतो) हे शोभनयज्ञप्रभो अग्निन्नियन्तः ! (सः) पूर्वोक्तस्त्व (तु) झटिति (पार्थिवं) पृथ्वीलोकस्य तथा (रजः) अन्तरिक्षलोकस्य (परि) चतुर्दिक्षु (पवस्व) मां पवित्रय । अथच (आधून्वते स्तोत्रे) कम्पितं स्तोतारं मां (शिक्षन्) शिक्षयन् पवित्रय । तथा (सादनस्पृशः) यत् मन्दिर-शोभारूपं (वसुनः) धनं वर्तते तेन (नः) अस्मान् (मानिर्भाक्) अवियुक्तान् कुरु । अतः (पिशङ्गं बहुलं रयिं) स्वर्णादियुतं बहुधनं (वसीमहि) वयं प्राप्नुमः ॥

पदार्थ—(सुक्रतो) हे शोभनयज्ञेश्वर परमात्मन् ! (सः) वह पूर्वोक्त आप (तु) शीघ्र (पार्थिवं) पृथिवीलोक और (रजः) अन्तरिक्ष-लोकके (परि) चौरो ओर (पवस्व) हमको पवित्र करें। और (आधून्वते स्तोत्रे) कम्पायमान हुए तथा स्तुति करते हुए मुझको (शिक्षन्) शिक्षा करते हुए आप पवित्र करें । और (सादनस्पृशः) घरके शोभाभूत (वसुनः) जो धन हैं उनमे (नः) हमको (मानिर्भाक्) वियुक्तमत करिये । इस लिये (पिशङ्गं) स्वर्णादियुत (बहुलं रयिं) बहुत धनको (वसीमहि) हम लोग प्राप्त हों ॥

भावार्थ—हे परमात्मन् ! आपकी कृपासे हम लोग पृथिवी तथा अन्तरिक्षलोकके चारो ओर परिभ्रमण करें । और नाना प्रकारके धनोंको प्राप्त करें ॥८॥

आ तू न॑ इन्दो शतदात्वश्व्यं॑
स॒हस्र॑दातु पशु॒मद्धिर॑ण्यवत् ।
उप॑ मास्व बृह॒ती रे॒वती॒रिषोऽधि॑
स्तो॒त्रस्य॑ पवमान नो गहि ॥९॥२८॥

आ । तु । नः । इन्दो इति । शतऽदातु । अश्व्यं । सहस्रऽदातु । पशुऽमत् । हिरण्यऽवत् । उप । मास्व । बृहतीः । रेवतीः । इषः । अधि । स्तोत्रस्य । पवमान । नः । गहि ॥९॥

पदार्थः—(इन्दो) प्रकाशरूप परमात्मन् ! त्वम् (शत-दातु अश्व्यं) विद्युदादिशतविधकलाकौशलयुक्तं तथा (सहस्र-दातु पशुमत हिरण्यवत) सहस्रविधपशुस्वर्णादियुक्तं धनमथच (रेवतीरिषः) धनयुतमैश्वर्यं यत् (बृहतीः) महद्वर्तते तानि मदर्थं (उपमास्व) निर्मिमीष्व । (पवमान) पावक परमेश्वर ! (स्तोत्रस्य) स्तोतॄन् (नः) अस्मान् (अधिगहि) गृह्णातु ॥

पदार्थ—(इन्दो) प्रकाशरूप परमात्मन् ! आप (शतदातु अश्व्यं) विद्युदादि सैकड़ों प्रकारके कलाकौशलयुक्त और (सहस्रदातु) सहस्रों प्रकारके (पशुमत् हिरण्यवत्) पशु और हिरण्यादि युत धन और (रेवती-रिषः) धनयुक्त ऐश्वर्य (बृहतीः) जो सबसे बड़े हैं, उनको हमारे लिये (उपमास्व) निर्माण करिये । (पवमान) सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (स्तोत्रस्य) उक्त स्तुतिके करने वाले (नः) हमको (अधि-गहि) आप ग्रहण करें ॥

भावार्थ—जो पुरुष अपने कर्मयोग और उद्योगके अनन्तर अपने कर्मोंको ईश्वरार्पण कर देता है, अर्थात् निष्काम भावसे कर्मोंको करता है, परमात्मा अवश्यमेव उसका उद्धार करता है ॥९॥

इति द्विसप्ततितमं सूक्तमष्टाविंशोवर्गश्च समाप्तः ॥

यह ७२वां सूक्त और २८वां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ नवर्चस्य त्रिसप्ततितमस्य सूक्तस्य—

१-९ पवित्र ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः-१ जगती । २-७ निचृज्जगती । ८,९ विराड्जगती ॥ निषादः स्वरः ॥

अथ परमात्मना यज्ञकर्मोपदिश्यते ।

अब परमात्मा यज्ञकर्मका उपदेश करते हैं ।

स्रक्के द्रप्सस्य धमतः समस्वरन्नृतस्य
योना समरन्त नाभयः ।
त्रीन्त्स मूर्ध्नो असुरश्चक्र आरभे
सत्यस्य नावः सुकृतमपीपरन् ॥१॥

स्रक्के । द्रप्सस्य । धमतः । सं । अस्वरन् । ऋतस्य । योना । सं । अरन्त । नाभयः । त्रीन् ।सः। मूर्ध्नः । असुरः। चक्रे । आऽरभे । सत्यस्य । नावः । सुऽकृतं । अपीपरन् ॥१॥

पदार्थः——(सत्यस्य नावः) सत्यस्य नौकारूपा उक्ता यज्ञाः (सुकृतं) शोभनकर्माणं जनं (अपीपरन्) ऐश्वर्यैः परिपूरयन्ति । (स सोमः) उक्तपरमात्मना (मूर्ध्नः) सर्वोपरि (त्रीन्) त्रयाणां लोकानां (आरभे) आरम्भाय (असुरश्चक्रे) असुरा-निर्मिताः । अथ च (द्रप्सस्य) कर्मयज्ञस्य (स्रक्के) शिरःस्थानीयाः (धमतः) प्रतिदिनं शुभकर्मणि तत्पराः कर्मयोगिनो-निर्मिताः । पूर्वोक्ताः कर्मयोगिनः (ऋतस्य योना) यज्ञस्य कारणरूपे-

कर्मणि (समस्वरन्) चेष्टां कुर्वन्तः (समरन्तः) सांसारिकीं यात्रां कुर्वन्ति । उक्ताः कर्मयोगिनः परमात्मना (नाभयः) नाभिस्थानीयाः कृताः ॥

पदार्थ—(सत्यस्य नावः) सचाईकी नौकारूप उक्त यज्ञ (सुकृतं) शोभन कर्म वालेको (अपीपरन्) ऐश्वर्योंसे परिपूर्ण करते हैं । (स सोमः) उक्त परमात्माने (मूर्ध्नः) सर्वोपरि (त्रीन्) तीन लोकोंके (आरभे) आरंभके लिये (असुरश्चक्रे) असुरोंको बनाया । और (द्रुपसस्य) कर्मयज्ञके (स्रके) मूर्धास्थानी (धमतः) प्रतिदिन कर्म करनेमें तत्पर कर्मयोगियोंको बनाया । उक्त कर्मयोगी (ऋतस्य योना) यज्ञके कारणरूप कर्ममें (समस्वरन्) चेष्टा करते हुए (समरन्तः) सांसारिक यात्रा करते हैं । उक्त कर्मयोगियोंको परमात्माने (नाभयः) नाभिस्थानीय बनाया ॥

भावार्थ—इस मंत्रमें असुरोंके तीन लोकोंका वर्णन किया है। और वे तीन लोक काम, क्रोध, और लोभ हैं । इसी अभिप्रायसे गीतामें यह कहा है, कि " त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः । कामः क्रोधस्तथालोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥" और इनसे विपरीत कर्मयोगियोंको यज्ञकी नाभि और यज्ञका मुखरूप वर्णन किया है ॥१॥

अथासुरान्निन्दयन्कर्मयोगिनः प्रशंसयन्नाह ।

अब असुरोंकी निन्दा करते हुए, और कर्मयोगियोंकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं ।

सम्यक् सम्यञ्चो महिषा अहेषत
सिन्धोरूर्मावधि वेना अवीविपन् ।
मधोर्धाराभिर्जनयन्तो अर्कमि-
त्प्रियामिन्द्रस्य तन्वमवीवृधन् ॥२॥

सम्यक् । सम्यञ्चः । महिषाः । अहेषत । सिन्धोः । ऊर्मौ । अधि । वेनाः । अवीविपन् । मधोः । धाराभिः । जनयन्तः । अर्कं । इत् । प्रियां । इन्द्रस्य । तन्वं । अवीवृधन् ॥२॥

पदार्थः—(महिषाः) महान्तोजनाः (वेनाः) अभ्युदयाभिलाषिणः (सम्यञ्चः) संगतिमन्तः (सिन्धोरूर्मावधि) संसारसागरेऽस्मिन् (सम्यक्) सुतरां (अहेषत) वृद्धिं प्राप्नुवन्ति । अथ च (अवीविपन्) दुष्टान्कम्पयन्ति च । (मधोर्धाराभिः) ऐश्वर्यस्य धाराभिः (जनयन्तः) प्रकटन्तः (अर्कमित्) अर्चनीयं परमात्मानं प्राप्नुवन्तः (प्रियामिन्द्रस्य तन्वं) ईश्वरस्य प्रियमैश्वर्यं (अवीवृधन्) वर्धयन्ति ॥

पदार्थ—(महिषाः) महान् पुरुष (सम्यञ्चः) संगति वाले (सम्यक्) भलीभांति (सिन्धोरूर्मावधि) इस संसार-रूपी समुद्रमें (वेनाः) अभ्युदयकी अभिलाषा करने वाले (अहेषत) वृद्धिको प्राप्त होते हैं । और (अवीविपन्) दुष्टोंको कम्पायमान करते हैं । (मधोर्धाराभिः) ऐश्वर्यकी धाराओंसे (जनयन्तः) प्रकट होते हुए तथा (अर्कमित्) अर्चनीय परमात्माको प्राप्त होते हुए, (प्रियामिन्द्रस्य तन्वं) ईश्वरके प्रिय ऐश्वर्यको (अवीवृधन्) बढ़ाते हैं ॥

भावार्थ—जो लोग परमात्माके महत्वको धारण करके महान् पुरुष बनते हैं, वे इस भवसागरकी लहरोंसे पार हो जाते हैं । और परमात्माके यशको गान करके, अन्य लोगोंको भी अभ्युदयशाली बनाकर, इस भवसागरकी धारसे पार कर देते हैं ॥२॥

पवित्रवन्तः परि वाचमासते पितैषां
प्रत्नो अभि रक्षति व्रतम् ।

महः समुद्रं वरुणस्तिरो दधे धीरा
इच्छेकुर्धरुणेष्वारभम् ॥ ३ ॥

पवित्रऽवन्तः । परि । वाचं । आसते । पिता । एषां । प्रत्नः । अभि । रक्षति । व्रतं । महः । समुद्रं । वरुणः । तिरः । दधे । धीराः । इत् । शेकुः । धरुणेषु । आऽरभं ॥३॥

पदार्थः—(पवित्रवन्तः) पुण्यकर्माणः कर्मयोगिनः (परिवाचं) वेदवाचं (आसते) आश्रयन्ति (एषां) अमीषां कर्मयोगिनां (प्रत्नः) प्राचीनः (पिता) परमात्मा (व्रतं) एषांसद्व्रतं (अभिरक्षति) रक्षति । अथ च तदभिमुखं (महः समुद्रं) महान्तं संसारसागरमिमं (वरुणं) वरुणरूपेण स्वतरङ्गेषु निमज्जयितुमुद्यतं (तिरोदधे) परमात्मा तिरस्करोति । तथा (धरुणेषु) कर्मयोगज्ञानयोगादिसाधनेषु (आरभं) आरम्भं कर्तुं (धीराः) धीराः पुरुषाः (इत्) एव (शेकुः) समर्था भवन्ति, नान्ये ॥

पदार्थ—(पवित्रवन्तः) उक्त पुण्य कर्म वाले कर्मयोगी (परिवाचं) वेदरूपी वाणीका (आसते) आश्रयण करते हैं । (एषां) इन कर्मयोगियोंका (प्रत्नः) प्राचीन (पिता) परमात्मा (व्रतं) इनके व्रतकी (अभिरक्षति) रक्षा करता है । और उनके साम्हने (महः समुद्रं) इस बड़े संसाररूप सागरको (वरुणं) जो वरुणरूप अपनी लहरोंमें डुबा लेनेकेलिये उद्यत है, उसको (तिरोदधे) परमात्मा तिरस्कार कर देता है । (धरुणेषु) उक्त कर्मयोग और ज्ञानयोगादि-साधनोंमें (आरभं) आरम्भको (धीराः) धीरपुरुष (इत्) ही (शेकुः) समर्थ होते हैं, अन्य नहीं ॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करता है, कि पवित्र कर्मों वाले

पुरुषही वाग्गमी बनते हैं। और वे ही इस भवसागरकी लहरोंसे पारहो सकते हैं, अन्य नहीं। इसी अभिप्रायसे उपनिषत्‌में यह कहा है, कि "कश्चिद्धीर आत्मानमैक्षत्" कि यह संसार छुरेकी धार है। कोई धीर पुरुष ही इस धारका अतिक्रमण कर सकता है। सब नहीं। भवसागरकी लहरें और छुरेकी धार यह एक अत्यन्त उत्तेजना उत्पन्न करनेके लिये वाणीका अलङ्कार है ॥३॥

सहस्रधारेऽव ते समस्वरन्दिवो
नाके मधुजिह्वा असश्चतः ।
अस्य स्पशो न नि मिषन्ति भूर्णयः
पदेपदे पाशिनः सन्ति सेतवः ॥४॥

सहस्रऽधारे । अव । ते । सम् । अस्वरन् । दिवः । नाके । मधुऽजिह्वाः । असश्चतः । अस्य । स्पशः । न । नि । मिषन्ति । भूर्णयः । पदेऽपदे । पाशिनः । सन्ति । सेतवः ॥४॥

पदार्थः—हे जगन्नियन्तः परमेश्वर! (ते) तव (सेतवः) मर्यादारूपाः सेतवः (पदेपदे सन्ति) स्थाने स्थाने विद्यन्ते। अथ च ते मर्यादासेतवः (पाशिनः) पापिभ्यो दण्डदातारः। तथा (भूर्णयः) क्षिप्रकारिणस्सन्ति। अथच (न निमिषन्ति) तदवमानं कृत्वा न कोपि स्थातुं शक्नोति। (अस्य) अमुष्य परमात्मनः (स्पशः) सारभूतानि (असश्चतः) अनन्तानि ज्योतींषि सन्ति। हे परमात्मन्! भवान् (सहस्रधारे) अनन्तानन्दस्वरूपे (अव) मम रक्षां करोतु। तथा (दिवोनाके) द्युलोकमध्ये (समस्वरन्)

ये स्यन्दमाना भवदानन्दाः [मधुजिह्वा] ये आह्लादनीयास्ते मां प्राप्नुवन्तु ॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (ते) आपका (सेतवः) मर्यादारूप सेतु (पदेपदे सन्ति) पद पद पर हैं। और वे मर्यादारूप सेतु (पाशिनः) पापियोंके दण्डदाता हैं। (भूर्णयः) शीघ्रता करने वाले हैं। और (न निमिषन्ति) उनके सामने कोई आँख उठा कर नहीं देख सकता। (अस्य) उस परमात्माके (स्पशः) सारभूत (असश्चतः) अनन्त ज्योतियें हैं ! हे परमात्मन् ! आप (सहस्रधारे) अनन्त आनन्द-स्वरूप-में (अत्र) हमारी रक्षा करें। और (दिवोनाके) द्युलोकके मध्यमें (समस्वरन्) स्रवित होते हुए, आपके आनन्द (मधुजिह्वा) जो अत्यन्त आह्लाद जनक हैं, वे हमको प्राप्त हों ॥

भावार्थ—परमात्माके आनन्दकी सहस्रों धारें इस संसारमें इतस्ततः सर्वत्र बह रही हैं। जो पुरुष परमात्माकी आज्ञाओंको पालन करता है, वही उन आनन्दोंको लाभ करता है, अन्य नहीं ॥४॥

पितुर्मातुरध्या ये समस्वरन्नृचा
शोचन्तः सन्दहन्तो अव्रतान् ।
इन्द्रद्विष्टामप धमन्ति मायया
त्वचमसिक्नीं भूमनो दिवस्परि ॥५॥२९॥

पितुः । मातुः । अधि । आ । ये । सम्ऽअस्वरन् । ऋचा । शोचन्तः । सम्ऽदहन्तः । अव्रतान् । इन्द्रऽद्विष्टाम् । अप । धमन्ति । मायया । त्वचम् । असिक्नीम् । भूमनः । दिवः । परि ॥५॥

पदार्थः—ये मनुष्याः (पितुर्मातुः) मातापित्रोः शिक्षां-

प्राप्य सुशिक्षिताः सन्ति अथ (ये) ये जनाः (ऋचा) वेदस्य ऋग्भिः (समस्वरन्) स्वीयजीवनयात्रां कुर्वन्ति तथा (शोचन्तोऽव्रतान्) शोकशीलानव्रतिनः (संदहन्तः) सम्यग्दाहकास्सन्ति तथा ये (मायया) स्वकीयापूर्वशक्त्या (इन्द्रद्विष्टामपधमन्ति) ईश्वराज्ञाभञ्जकानां राक्षसानां निहन्तारस्सन्ति अथच ये राक्षसाः (असिक्नीं) रात्रेरन्धकारमिव (भूमनः) भूलोकस्य तथा (दिवः) द्युलोकस्य (परि) सर्वतः (त्वचं) त्वगिववर्तमानास्तेषां नाशकाः पितृमन्तो मातृमन्तश्च कथ्यन्ते ॥

पदार्थ—जो लोग (पितुर्मातुः) पिता माताकी शिक्षाको पाकर सुशिक्षित हैं, और (ये) जो लोग (ऋचा) वेदकी ऋचाओंके द्वारा (समस्वरन्) अपनी जीवनयात्रा करते हैं (शोचन्तोऽव्रतान्) तथा शोकशील अव्रतियोंको (संदहन्तः) भलीभांति दाह करने वाले हैं। और जो (मायया) अपनी अपूर्व-शक्तिसे (इन्द्रद्विष्टामपधमन्ति) ईश्वरकी आज्ञाको भङ्ग करने वाले राक्षसोंका नाश करते हैं, और जो राक्षस (असिक्नीं) रात्रिके अन्धकारके समान (भूमनः) भूलोक और (दिवः) द्युलोकके (परि) चारो ओर (त्वचं) त्वचाके समान वर्तमान हैं, उनको नाश करने वाले पितृमान् और मातृमान् कहलाते हैं ॥

भावार्थ—मनुष्य इस संसारमें चार प्रकारसे शिक्षाको लाभ करता है। वे चार प्रकार यह हैं, कि माता, पिता, आचार्य, और गुरु। इसी अभिप्रायसे उपनिषत्में कहा है, कि "मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद" ॥५॥

प्रत्नान्मानादध्या ये समस्वरञ्छ्लोकयन्त्रासो रभसस्य मन्तवः ।

अपानक्षासो बधिरा अहासत
ऋतस्य पन्थां न तरन्ति दुष्कृतः ॥९॥

प्रत्नात् । मानात् । अधि । आ । ये । सम्ऽअस्वरन् । श्लोकऽयन्त्रासः । रभसस्य । मन्तवः । अप । अनक्षासः । बधिराः । अहासत । ऋतस्य । पन्थाम् । न । तरन्ति । दुःऽकृतः ॥

पदार्थः—(अनक्षासः) अज्ञानिनोजनाः (बधिराः) ये-हितमप्युपदेशं न शृण्वन्ति ते (ऋतस्य) सत्यस्य (पन्थां) मार्गं (अपाहासत) उज्झन्ति। (दुष्कृतः) ते दुष्टाचारिणोऽस्य भवसाग-रस्योर्मिं (न तरन्ति) तरितुं न शक्नुवन्ति। अथच (ये) ये नराः (प्रत्नान्मानात्) प्राचीनादाप्तपुरुषात् (अध्या) आगतान् उपदे-शान् (समस्वरन्) पालयन्तः (श्लोकयन्त्रासः) सज्जनैः संगता-स्सन्ति तथा (रभसस्य मन्तवः) परमात्माज्ञापालकास्तेऽस्यभव-सागरस्योर्मिं तरन्ति ॥

पदार्थ—(अनक्षासः) अज्ञानी लोग (बधिराः) जो हितो-पदेशको भी नहीं सुन सकते वे (ऋतस्य पन्थां) सचाईके मार्गको (अपाहासत) छोड़ देते हैं। (दुष्कृतः) वे दुष्टाचारी इस भवसागरकी लहरको (न तरन्ति) नहीं तर सकते। और (ये) जो (प्रत्नात्) प्राचीन (मानात्) आप्त-पुरुषसे (अध्या) आये हुए उपदेशोंको (समस्वरन्) पालन करते हुए (श्लोकयन्त्रासः) सत्पुरुषोंकी संगतिमें रहने वाले हैं तथा (रभसस्य मन्तवः) परमात्माकी आज्ञा मानने वाले हैं, वे इस भव-सागरकी लहरको तर जाते हैं ॥

भावार्थ—जो लोग आप्त-पुरुषोंके वाक्यों पर विश्वास करते हैं,

और सामाजिक-बलको धारण करते हैं, परमात्मा उनकी सदैव रक्षा करता है ॥६॥

सहस्रधारे वितते पवित्र आ वाचं
पुनन्ति कवयो मनीषिणः ।
रुद्रास एषामिषिरासो अद्रुहः
स्पशः स्वञ्चः सुदृशो नृचक्षसः ॥७॥

सहस्रऽधारे । विऽतते । पवित्रे । आ । वाचं । पुनन्ति । कवयः । मनीषिणः । रुद्रासः । एषां । इषिरासः । अद्रुहः । स्पशः । सुऽअञ्चः । सुऽदृशः । नृऽचक्षसः ॥७॥

पदार्थः—(नृचक्षसः) कर्मयोगी तथा (सुदृशः) ज्ञानयोगी (स्वञ्चः) गतिशीलस्तथा (स्पशः) मेधावान् (अद्रुहः) अद्रोग्धा (इषिरासः) गमनशीलः (रुद्रासः) परमात्मनोन्यायपालनाय रुद्ररूपोभवति । (एषां) ज्ञानयोगिकर्मयोगिनां सदैव परमात्मा रक्षकोभवति । अथच ते (सहस्रधारे वितते) अत्यन्तानन्दमये विस्तृते (पवित्रे) पूते परमात्मनि (वाचमापुनन्ति) स्वीयवाचं तस्योपासनया पवित्रयन्ति । पूर्वोक्ता विद्वांस एव (मनीषिणः) मनस्विनस्तथा (कवयः) क्रान्तदर्शिनोभवन्ति ॥

पदार्थ—(नृचक्षसः) कर्मयोगी और (सुदृशः) ज्ञानयोगी (स्वञ्चः) गतीशील और (स्पशः) बुद्धिमान् (अद्रुहः) किसीके साथ द्रोह न करनेवाले हैं । तथा (इषिरासः) गमनशील (रुद्रासः) परमात्माके न्याय पालन करनेके लिये रुद्ररूप होते हैं (एषां) उक्तगुण-सम्पन्न पुरुषोंका-

परमात्मा सदैव रक्षक होता है । और वे लोग (सहस्रधारे वितते) अनन्त आनन्दमय विस्तृत (पवित्रे) पवित्र परमात्मामें (वाचमापुनन्ति) अपनी वाणीको उसकी स्तुति द्वारा पवित्र करते हैं । उक्त प्रकारके विद्वान् ही (मनीषिणः) मनस्वी और (कवयः) क्रान्तदर्शी होते हैं ॥

भावार्थ—जो लोग परमात्माके स्वरूपमें चित्तवृत्तिको लगा कर अपने आपको पवित्र करते हैं, वे ही कर्मयोगी और ज्ञानयोगी बन सकते हैं, अन्य नहीं ॥७॥

ऋतस्य॑ गो॒पा न दभा॑य सु॒क्रतु॒स्त्री
ष प॒वित्रा॑ हृ॒द्य१॒॑न्तरा द॑धे ।
वि॒द्वान्त्स विश्वा॒ भुव॑नाभि प॑श्य॒त्य-
वाजु॑ष्टान्विध्यति क॒र्ते अ॑व्र॒तान् ॥८॥

ऋ॒तस्य॑ । गो॒पाः । न । दभा॑य । सु॒ऽक्रतुः॑ । त्री । सः । प॒वित्रा॑ । हृ॒दि । अ॒न्तः । आ । द॒धे । वि॒द्वान् । सः । विश्वा॑ । भुव॑ना । अ॒भि । प॒श्य॒ति । अव॑ । अजु॑ष्टान् । वि॒ध्य॒ति॒ । क॒र्ते । अ॒व्र॒तान् ॥८॥

पदार्थः—(ऋतस्य गोपाः) सत्यस्य रक्षकः (सुक्रतुः) शोभनकर्मा (न दभाय) यः परैरदम्भनीयः (सः) असौ कर्मयोगी (पवित्रा) पवित्रे स्वकीये (हृद्यन्तः) अन्तःकरणे (त्री) परमात्मनः उत्पत्तिस्थितिप्रलयरूपास्तिस्रः शक्तीः (आदधे) आदधाति । (स विद्वान्) असौ पण्डितः कर्मयोगी (विश्वा भुवना) सम्पूर्णानि लोकलोकान्तराणि (अभिपश्यति) अवलो-

कयति । अथच (कर्ते) कर्तव्ये (अव्रतान्) अव्रतिनः (अजुष्टान्) परमात्मनोवियुक्तान् (अवविध्यति) हिनस्ति ॥

पदार्थ—(ऋतस्य गोपाः) सचाईकी रक्षा करने वाला (सुक्रतुः) शोभन कर्मों वाला कर्मयोगी (न दभाय) जो किसीसे दबाया नहीं जाता (सः) वह (पवित्रा) अपने पवित्र (हृद्यन्ते) अन्तःकरणमें (त्री) परमात्माकी उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयरूप तीनों शक्तियोंको (आदधे) धारण करता है । (विद्वान् सः) वह विद्वान् पुरुष (विश्वा भुवना) सम्पूर्ण लोक-लोकान्तरोंको (अभिपश्यति) देखता है । और (कर्ते) कर्तव्यमें (अव्रतान्) जो अव्रती (अजुष्टान्) और परमात्मासे वियुक्त हैं, उनको (अवविध्यति) मारता है ॥

भावार्थ—जो लोग परमात्मा पर अटल विश्वास रखने वाले हैं, वे किसीसे दबाये नहीं जा सकते ॥८॥

ऋतस्य तन्तुर्विततः पवित्र आ जिह्वाया
अग्रे वरुणस्य मायया ।
धीराश्चित्तत्समिनक्षन्त आशतात्रा
कर्तमव पदात्यप्रभुः ॥९॥३०॥

ऋतस्य । तन्तुः । विऽततः । पवित्रे । आ । जिह्वायाः । अग्रे । वरुणस्य । मायया । धीराः । चित् । तत् । सम्ऽइनक्षन्तः । आशत । अत्र । कर्तम् । अव । पदाति । अप्रऽभुः ॥९॥

पदार्थः—(अप्रभुः) योजनः कर्मयोगी नास्ति सः (कर्तमवपदाति) कर्ममार्गात्पतति (अत्र) कर्मण्यास्मिन् (धीराश्चित) कर्मयोगिन एव (तत्) तत्समक्षं (समिनक्षन्तः)

संगच्छन्तः (आशत) स्थिरतां यान्ति । (ऋतस्य) सत्यस्य (तन्तुः) विस्तारकः (विततः) विस्तृतः परमेश्वरः (वरुणस्य मायया) सम्पूर्णजनवशकारिण्या स्वशक्त्या सह (पवित्रे) तस्य पवित्रेऽन्तःकरणे तथा (जिह्वाया अग्रे) जिह्वाग्रभागे (आ) आवसति । उपसर्गश्रुतेर्योग्यक्रियाध्याहारः ।

पदार्थ—(अप्रभुः) जो पुरुष कर्मयोगी नहीं है, वह (कर्तमव पदाति) कर्मरूप मार्गसे गिर जाता है । (अत्र) इस कर्ममें (धीराश्रित्) कर्मयोगी पुरुष ही (तत्) उसके समक्ष (समिनक्षन्तः) गतिशील होकर (आशत) स्थिर होते हैं । (ऋतस्य) सचाईका (तन्तुः) विस्तार करने वाला (विततः) जो विस्तृत है, वह परमात्मा (वरुणस्य मायया) सबको वशीभूत रखने वाली अपनी शक्तिके साथ (पवित्रे) उसके पवित्र अन्तःकरणमें और (जिह्वाया अग्रे) जिह्वाके अग्रभागमें (आ) निवास करता है ॥

भावार्थ—जो कर्मयोगी और उद्योगी पुरुष हैं, उन्हींके अन्तःकरणमें परमात्मा निवास करता है ॥९॥

इति त्रिसप्ततितमं सूक्तं त्रिंशोवर्गश्च समाप्तः ।

यह ७३ वां सूक्त और ३० वां वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ नवर्चस्य चतुस्सप्ततितमस्य सूक्तस्य—

१—९ कक्षीवानृषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥
छन्दः—१, ३ पादनिचृज्जगती । २ ६
विराड्जगती । ४ ७ जगती । ५ ९
निचृज्जगती । ८ निचृत्त्रिष्टुप् ।
स्वरः—१–७, ९ निषादः ।
८ धैवतः ॥

अथाभ्युदयपात्रतामाह ।

अब अभ्युदयके अधिकारियोंका निरूपण करते हैं।

शिशुर्न जातोऽव चक्रदद्वने स्वर्यद्वाज्यरुषः सिषासति ।
दिवो रेतसा सचते पयोवृधा तमीमहे सुमती शर्म सप्रथः ॥१॥

शिशुः । न । जातः । अव । चक्रदत् । वने । स्वः । यत् । वाजी । अरुषः । सिसासति । दिवः । रेतसा । सचते । पयःऽवृधा । तं । ईमहे । सुऽमती । शर्म । सऽप्रथः ॥१॥

पदार्थः—(वने) भक्तिविषये (यत) यदा (जातः) सद्य उत्पन्नः (शिशुर्न) बालक इव (चक्रदत) अयं जिज्ञासुर्जनः स्वभावत एव रोदिति तदा (स्वः) सुखस्वरूपः (वाजी) बलस्वरूपः (अरुषः) प्रकाशस्वरूपः परमेश्वरः (सिषासति) तस्योद्धारं कर्तुमिच्छति । (दिवोरेतसा) यः परमात्मा द्युलोकत आरभ्य सम्पूर्णलोकलोकान्तरैः सह (सचते) स्वीयशक्त्या संगतोभवति । तथा (पयोवृधा) यः स्वकीयैश्वर्येणाभ्युन्नतः (तं) तस्मात्परमात्मनः (सप्रथः) विततमभ्युदयमथच (शर्म) कल्याणं (ईमहे) वयं प्रार्थयामः ॥

पदार्थ—(वने) भक्तिके विषयमें (यत्) जब (जातः) तत्काल उत्पन्न (शिशुः) बालकके (न) समान यह जिज्ञासु-पुरुष स्वाभाविकरीतिसे (चक्रदत्) रोता है, तब (स्वः) सुख स्वरूप (वाजी) बलस्वरूप (अरुषः) प्रकाशस्वरूप परमात्मा (सिषासति) उसके उद्धारकी इच्छा करता है। (दिवोरेतसा) जो परमात्मा द्युलोकसे लेकर लोक-

लोकान्तरोंके साथ अपनी शक्तिसे (सञ्चते) संगत है। और (पयो-वृधा) जो अपने ऐश्वर्यसे वृद्धिको प्राप्त है, (तं) उस परमात्मासे (सप्रथः) विस्तृत अभ्युदय और (शर्म) निश्रेयस सुख इन दोनोंकी हम लोग (ईमहे) प्रार्थना करते हैं ॥

भावार्थ—जब पुरुष दूध पीने वाले बच्चेके समान मुक्तकण्ठसे परमात्माके आगे रोता है, तब परमात्मा उसे अवश्यमेव ऐश्वर्य देता है ॥१॥

दिवो यः स्कम्भो धरुणः स्वातत
आपूर्णो अंशुः पर्येति विश्वतः ।
सेमे मही रोदसी यक्षदावृता
समीचीने दाधार समिषः कविः ॥२॥

दिवः । यः । स्कम्भः । धरुणः । सुऽआततः । आऽपूर्णः । अंशुः । परिऽएति । विश्वतः । सः । इमे इति । मही इति । रोदसी इति । यक्षत् । आऽवृता । समीचीने इति संऽईचीने । दाधार । सं । इषः । कविः ॥२॥

पदार्थः—(दिवोयः स्कम्भः) यो द्युलोकस्य सहायः अथच (धरुणः) पृथिव्या धारकोस्ति तथा (स्वाततः) विततः (आ-पूर्णः) सर्वत्र परिपूर्णः (अंशुः) व्यापकः परमात्मा (विश्वतः) सर्वतः (पर्येति) प्राप्तोस्ति (सः) असौ परमात्मा (इमे मही रोदसी) इमं भूलोकं द्युलोकं च (आवृता) आश्चर्यकर्मणा (यक्षत्) संगतं करोति । अथच (समीचीने) संगते द्यावा-भूमी स परमात्मैव (दाधार) धारयति । सः (कविः) सर्वज्ञो-

जगदीश्वरः (इषः) ऐश्वर्यान् (सं) संप्रयच्छति । उपसर्गश्रुतेर्योग्यक्रियाध्याहारः ॥

पदार्थ—(दिवोयः स्कम्भः) जो द्युलोकका सहारा है, और (धरुणः) पृथिवीका धारण करने वाला है । तथा (स्वाततः) विस्तृत (आपूर्णः) सर्वत्र परिपूर्ण (अंशुः) व्यापक परमात्मा (विश्वतः) सब ओरसे (पर्येति) प्राप्त है (सः) वह परमात्मा (इमे मही रोदसी) इस भूलोक और अन्तरिक्ष-लोकको (आद्वता) अद्भुतकर्मसे (यक्षत्) संगत करता है, और (समीचीने) संगत द्युलोक और भूलोकको वही परमात्मा (दाधार) धारण करता है । वह (कविः) सर्वज्ञ परमेश्वर (इषः) ऐश्वर्योंको (सं) देता है ॥

भावार्थ—जिस परमात्माने द्युलोक और पृथिवी-लोकादिकोंको लीलामात्रसे धारण किया है, वही सब ऐश्वर्योंका दाता है । अन्य नहीं ॥२॥

महि प्सरः सुकृतं सोम्यं मधूर्वी
गव्यूतिरदितेर्ऋतं यते ।
ईशे यो वृष्टेरित उस्रियो वृषापां
नेता य इतऊतिर्ऋग्मियः ॥३॥

महि । प्सरः । सुऽकृतं । सोम्यं । मधु । उर्वी । गव्यूतिः । अदितेः । ऋतं । यते । ईशे । यः । वृष्टेः । इतः । उस्रियः । वृषा । अपां । नेता । यः । इतःऽऊतिः । ऋग्मियः ॥३॥

पदार्थः—(ऋग्मियः) स्तुत्यः (इत ऊतिः) सर्वविधरक्षकः (यः) यः (नेता) नियन्तास्ति अथच (अपां वृषा)

सम्पूर्णकर्मणां फलदः (उस्रियः) प्रकाशस्वरूपोऽस्ति स परमेश्वरः (इतः) द्युलोकात् उत्पन्नस्य (वृष्टेः) वृष्ट्यादिकस्य (ईशे) ईश्वरोऽस्ति । (महि) महीयान् (स्मरः) सर्वस्यादनकर्ताऽस्ति । तथा (सुकृतं) शोभनकर्म्मास्ति । (सोम्यं) सौम्यस्वभाववान् अस्ति । (अदितेः) तस्मात् ज्ञानस्वरूपात्परमात्मनः (गव्यूतिः) अस्य जीवात्मनोमार्गः (मधु) मधुरः अथच (उर्वी) विस्तृतोभवति । अथच (ऋतं यते) सत्ययज्ञं प्राप्तवते पुरुषाय स परमात्मा शुभं विदधाति ॥

पदार्थ—(ऋग्मियः) स्तुतियोग्य (इत ऊतिः) सब प्रकारका रक्षक (यः) जो (नेता) नियन्ता है, और (अपां वृषा) सब प्रकारके कर्मोंका फल देने वाला (उस्रियः) प्रकाशस्वरूप है (इतः) द्युलोकसे उत्पन्न (वृष्टेः) वृष्ट्यादिका (ईशे) ईश्वर है । (महि) सबसे बड़ा है (स्मरः) सबका अत्ता है (सुकृतं) शोभनकर्मा है । (सोम्यं) सौम्य स्वभाव वाला है । (अदितेः) उस ज्ञानस्वरूप परमात्मासे (गव्यूतिः) इस जीवात्माका मार्ग (मधु) मीठा और (उर्वी) विस्तृत होता है । और (ऋतं यते) सत्यरूप यज्ञको प्राप्त होने वाले पुरुषके लिये वह परमात्मा शुभ करता है ॥

भावार्थ—सन्मार्ग चाहने वाले पुरुषोंको उचित है, कि वे सचाईका यज्ञ करनेके लिये परमात्माकी शरण लें ॥३॥

आत्मन्वन्नभो दुह्यते घृतं पय
ऋतस्य नाभिरमृतं वि जायते ।
समीचीनाः सुदानवः प्रीणन्ति तं
नरो हितमव मेहन्ति पेरवः ॥४॥

आत्मन्ऽवत् । नभः । दुह्यते । घृतं । पयः । ऋतस्य । नाभिः । अमृतं । वि । जायते । संऽईचीनाः । सुऽदानवः । प्रीणन्ति । तं । नरः । हितं । अवं । मेहन्ति । पेरवः ॥४॥

पदार्थः—येन परमात्मना (नभः) आकाशमण्डलात् (आत्मन्वत्) सारभूतं (घृतं) जलादिकं (दुह्यते) प्रपूर्यते अथच (ऋतस्य नाभिः) सत्यस्य नाभिस्थानीयोस्ति तथा (अमृतं) अमृतस्वरूपोस्ति सः (पयः) तृप्तिरूपः परमात्मा (विजायते) विराजमानोवर्त्तते । (नरः) यः पुरुषः तस्योपासनां करोति (तं) तं पुरुषं (पेरवः) सर्वरक्षिकाः शक्तयः (प्रीणन्ति) तर्पयन्ति । अथच (समीचीनाः) सुन्दराः (सुदानवः) दानशीलाश्शक्तयः तदर्थं (हितं) हितस्य (अवमेहन्ति) वृष्टिं कुर्वन्ति ॥

पदार्थ—जिस परमात्मासे (नभः) द्युमण्डलसे (आत्मन्वत्) सारभूत (घृतं) जलादिक (दुह्यते) दुहे जाते हैं, और (ऋतस्य) जो सचाईकी (नाभिः) नाभि है और (अमृतं) अमृतस्वरूप है वह (पयः) तृप्तिरूप परमात्मा (विजायते) सर्वत्र विराजमान है । (नरः) जो पुरुष उसकी उपासना करता है (तं) उसको (पेरवः) सर्वरक्षक शक्तियें (प्रीणन्ति) तृप्त करतीं हैं । और (समीचीनाः) सुन्दर (सुदानवः) दानशील शक्तियें उसके लिये (हितं) हितकी (अवमेहन्ति) वृष्टि करती हैं ॥

भावार्थ—जो पुरुष परमात्माकी आज्ञाओंका पालन करते हैं, परमात्मा उनके लिये अपनी दानशील शक्तियोंसे अनन्त प्रकारके ऐश्वर्योंकी वृष्टि करता है ॥४॥

अरावीदंशुः सचमान ऊर्मिणा
देवाव्यं मनुषे पिन्वति त्वचम् ।
दधाति गर्भमदितेरुपस्थ आ
येन तोकं च तनयं च धामहे ॥५॥३१॥

अरावीत् । अंशुः । सचमानः । ऊर्मिणा । देवऽअव्यं । मनुषे । पिन्वति । त्वचं । दधाति । गर्भं । अदितेः । उपऽस्थे । आ । येन । तोकं । च । तनयं । च । धामहे ॥५॥

पदार्थः—(ऊर्मिणा) स्वीयानन्दतरङ्गैः (सचमानः) संगतः (अंशुः) व्यापकः परमात्मा (अरावीत्) सदुपदेशं करोति । अथच (मनुषे) मनुष्याय (देवाव्यं त्वचं) देवभावोत्पादकं शरीरं (पिन्वति) पुष्णाति । तथा (अदितेरुपस्थे) अस्याः पृथिव्याः (गर्भं) नानाविधौषधेरुत्पत्तिरूपं गर्भं (आदधाति) धारयति । (येन) यतः (तोकं) दुःखनाशकं (तनयं) पुत्र-पौत्रादिकं (धामहे) वयं धारयेम ॥

पदार्थ—(ऊर्मिणा) अपने आनन्दकी लहरोंसे (सचमानः) संगत (अंशुः) सर्वव्यापक परमात्मा (अरावीत्) सदुपदेश करता है । और (मनुषे) मनुष्यके लिये (देवाव्यं त्वचं) देवभावको पैदा करनेवाले शरीरको (पिन्वति) पुष्ट करता है । तथा (अदितेरुपस्थे) इस पृथिवी पर (गर्भं) नाना प्रकारके औषधियोंके उत्पत्तिरूप गर्भको (आदधाति) धारण कराता है । (येन) जिससे (तोकं) दुःखके नाश करने वाले (तनयं) पुत्र-पौत्रको (धामहे) हम लोग धारण करें ॥

भावार्थ—परमात्माकी कृपासे ही सुकर्मी-पुरुषको नीरोग और

दिव्य शरीर मिलता है जिससे वह सत्सन्ततिको प्राप्त होकर इस संसार-में अभ्युदयशाली बनता है ॥५॥

सहस्रधारेऽव ता असश्चतस्तृतीये
सन्तु रजसि प्रजावतीः ।
चतस्रो नाभो निहिता अवो
दिवो हविर्भरन्त्यमृतं घृतश्चुतः ॥६॥

सहस्रऽधारे । अव । ताः । असश्चतः । तृतीये । सन्तु । रजसि । प्रजाऽवतीः । चतस्रः । नाभः । निऽहिताः । अवः । दिवः । हविः । भरन्ति । अमृतं । घृतऽश्चुतः ॥६॥

पदार्थः—(सहस्रधारे) नानाविधैश्वर्यवति (तृतीये) तृतीयेऽन्तारिक्षलोके (रजसि) योलोकोरजोगुणविशिष्टोस्ति तस्मिन् (प्रजावतीः) नानाविधप्रजावन्त्यैश्वर्याणि (सन्तु) अस्मान्मिलन्तु । (असश्चतः) यान्यैश्वर्याणि जीवात्मनोऽशक्तकारीणि न भवन्ति (ताः) तादृशशक्तयः (घृतश्चुतः) या नानाविधस्निग्धपदार्थदात्र्यः (हविः) हवीरूपं (अमृतं भरन्ति) अमृतं ददति । अथच याः (दिवोऽवोनिहिताः) द्युलोकस्याधः स्थितास्तथा यासु (चतस्रोनाभः) चतुर्विधा दीप्तयरमन्ति, धर्मार्थकाममोक्षफलयुता-इति यावत् तादृशशक्तीः परमात्मास्मभ्यं ददातु ॥

पदार्थ—(सहस्रधारे) अनन्त प्रकारके ऐश्वर्य वाले (तृतीये) तीसरे अन्तरिक्षलोकमें (रजसि) जो रजोगुणविशिष्ट है,उसमें (प्रजावतीः) नाना प्रकारकी प्रजा वाले ऐश्वर्य (सन्तु) हमको प्राप्त हों। (असश्चतः)

जो ऐश्वर्य जीवको अशक्त करने वाले न हों (वाः) वे शक्तियें (घृतश्चुतः) जो नाना प्रकारके स्निग्धपदार्थोंकी देने वालीं हैं (विरमृतं भरन्ति) और हवीरूप अमृतको देने वालीं हैं । और जो (दिवोऽवोनिहिताः) द्युलोकके नीचे रक्खी हुई हैं, जिनमें (चतस्रोनाभः) चार प्रकारकी दीप्ति हैं, अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारो प्रकारके फल संयुक्त हैं, वे शक्तियें परमात्मा हमें प्रदान करे ॥

भावार्थ— परमात्मा जिन पर प्रसन्न होता है, उनको चारो प्रकारके फलोंका प्रदान करता है ॥६॥

श्वेतं रूपं कृणुते यत्सिषासति
सोमो मीढ्वाँ असुरो वेद भूमनः ।
धिया शमी सचते सेमभि
प्रवद्दिवस्कवंन्धमवं दर्षदुद्रिणम् ॥७॥

श्वेतम् । रूपम् । कृणुते । यत् । सिसासति । सोमः । मीढ्वान् । असुरः । वेद । भूमनः । धिया । शमी । सचते । सः । ईम् । अभि । प्रऽवत् । दिवः । कवन्धम् । अव । दर्षत् । उद्रिणम् ॥७॥

पदार्थः—(यत्) यदा (सिषासति) मनुष्यः सुखप्रदान्यैश्वर्याण्याभिवाञ्छति तदा परमेश्वरस्तदर्थं (श्वेतं रूपं कृणुते) ऐश्वर्ययुतं रूपं करोति । (मीढ्वान्) सर्वविधैश्वर्यदः (सोमः) परमात्मा (भूमनः) अखिलस्य लोकस्य (वेद) ज्ञाताऽस्ति । (स ईं) स परमात्मा एनं (धिया) ब्रह्मविषयिण्या बुद्ध्या (सचते) सङ्गतोभवति । अथ स परमेश्वरः (दिवः) द्युलोकाद् (उद्रिणं) समाधिकजलवतीं (कवन्धं) वृष्टिं (अवदर्षत)

उत्पादयति । तथा (प्रवत् शमी) रुद्रकर्मवतः (असुरः) राक्षसान् दण्डं (अभि) अभिददाति । उपसर्गश्रुतेर्योग्यक्रियाध्याहारः ॥

पदार्थ—(यत्) जब (सिषासति) मनुष्य सुखप्रद ऐश्वर्यको चाहता है, तब परमात्मा उसके लिये (श्वेतं रूपं कृणुते) ऐश्वर्ययुत रूप करता है । (मीढ्वान्) सब प्रकारके ऐश्वर्योंका देने वाला (सोमः) परमात्मा (भुवनः) सब लोक-लोकान्तरोंका (वेद) ज्ञाता है । (स ईं) वह परमात्मा इस उपासकको (धिया) ब्रह्मविषयिणी बुद्धि द्वारा (सचते) संगत होता है । और वह (दिवः) इस द्युलोकसे (उद्रिणं) बहुत जल वाले (कवन्धं) वृष्टिको (अवदर्षत्) उत्पन्न करता है । और (प्रवत्) रुद्र (शमी) कर्म वाले (असुरः) राक्षसोंको दण्ड (अभि) देता है ॥

भावार्थ—जो लोग अनन्य-भक्ति द्वारा परमात्म-परायण होते हैं, परमात्मा उनको अवश्यमेव तेजस्वी बनाता है । और जो दुष्कर्मी बनकर अन्याय करते हैं, परमात्मा उनको अवश्यमेव दण्ड देता है ॥७॥

अध॑ श्वे॒तं क॒लशं॒ गोभि॑र॒क्तं
कार्ष्म॒न्ना वा॒ज्य॑क्रमीत्सस॒वान् ।
आ हि॑न्विरे॒ मन॑सा देव॒यन्तः॑
क॒क्षीव॑ते श॒तहि॑माय॒ गोना॑म् ॥८॥

अध॑ । श्वे॒तम् । क॒लश॑म् । गोभिः॑ । अ॒क्तम् । कार्ष्म॑न् । आ । वा॒जी । अ॒क्र॒मी॒त् । स॒स॒ऽवान् । आ । हि॒न्वि॒रे॒ । मन॑सा । दे॒व॒ऽयन्तः॑ । क॒क्षीव॑ते । श॒तऽहि॑माय । गोना॑म् ॥८॥

पदार्थः—(अध) यदा (श्वेतं कलशं) सत्वगुणविशिष्टमन्तःकरणं (गोभिः) इन्द्रियवृत्तिभिः (अक्तं) रञ्जितं तथा-

(कार्ष्मन्) अतिशुद्धं तस्मिन् (वाजी) बलवान् परमेश्वरः (आक्रमीत्) स्वदीप्त्या प्रविशति । तं परमात्मानं (ससवान्) संभजन् (मनसा देवयन्तः) मनसा प्रकाशयन् (गोनां) पृथिव्यादिलोकलोकान्तराणां (शतहिमाय) शतहिमर्तुपर्यन्तं नानाविधमैश्वर्यं (कक्षीवते) विदुषे (हिन्विरे) प्रेरयति ॥

पदार्थ—(अध) जब (श्वेतं कलशं) सत्त्व-गुण-विशिष्ट अन्तःकरणको (गोभिः) जो इन्द्रियवृत्तियोंसे (अक्तं) रञ्जित है (कार्ष्मन्) जो अत्यन्त शुद्ध हो गया है, उसमें (वाजी) बलवान् परमात्मा (आक्रमीत्) अपनी दीप्ति द्वारा प्रविष्ट होता है । उस परमात्माका (ससवान्) भजन करता हुआ (मनसा देवयन्तः) मनसे प्रकाश करते हुए, (गोनां) पृथिव्यादि लोकलोकान्तरोंके (शतहिमाय) सौ हेमन्तऋतु पर्यन्त अनन्त प्रकारके ऐश्वर्यको (कक्षीवते) विद्वान्के लिये (हिन्विरे) प्रेरणा करता है ॥

भावार्थ—जो पुरुष शुद्धिकी परा काष्ठाको पहुँच जाता है परमात्मा उस पर अवश्यमेव दया करता है ॥८॥

अद्भिः सोम पपृचानस्य ते
रसोऽव्यो वारं वि पवमान धावति ।
स मृज्यमानः कविभिर्मदिन्तम
स्वदस्वेन्द्राय पवमान पीतये ॥१॥३२॥

अत्ऽभिः । सोम । पपृचानस्य । ते । रसः । अव्यः । वारं । वि । पवमान । धावति । सः । मृज्यमानः । कविऽभिः । मदिन्ऽतम । स्वदस्व । इन्द्राय । पवमान । पीतये ॥१॥३२॥

पदार्थः—(अद्भिः) साद्भिः कर्मभिः (पपृचानस्य) अभिव्यक्तस्य (ते) तव (रसः) आनन्दः यः (अव्यः) सर्वरक्षकोस्ति सः (वारं) वरणीयं पुरुषं प्रति (विधावति) विशेषरूपेण प्राप्तोभवति। (पवमान) सर्वपवित्रयितः परमात्मन्! भवान् (कविभिः) विद्वद्भिः (मृज्यमानः) सक्षात्कृतोस्ति। तथा (पवमान) पवितास्ति। (मदिन्तम) सर्वानन्ददस्त्वम् (इन्द्राय) कर्मयोगिनः (पीतये) तृप्तये (स्वदस्व) प्रियंकारकोभव॥

पदार्थ—(अद्भिः) सत्कर्मोंसे (पपृचानस्य) अभिव्यक्त (ते) आपका (रसः) आनन्द (अव्यः) जो सर्वरक्षक है, वह (वारं) वरणीयपुरुषके प्रति (विधावति) विशेषरूपसे प्राप्त होता है। (पवमान) सबको पवित्र करने वाले (सोम) परमात्मन्! आप (कविभिः) विद्वानोंसे (मृज्यमानः) साक्षात्कृत हैं। और (पवमान) पवित्र करने वाले हैं। और (मदिन्तम) सबको आह्लादकारक आप (इन्द्राय) कर्मयोगीकी (पीतये) तृप्तिके लिये (स्वदस्व) प्रियकारक हों॥

भावार्थ—जो लोग कर्मयोगसे अपनेको पवित्र बनाते हैं, उनके लिये परमात्मा अवश्यमेव अपने ब्रह्मामृतका प्रदान करते हैं॥९॥

इति चतुस्सप्ततितमं सूक्तं द्वात्रिंशोवर्गश्च समाप्तः॥

यह ७४ वां सूक्त और ३२ वां वर्ग समाप्त हुआ॥

अथ पञ्चर्चस्य पञ्चसप्ततितमस्य सूक्तस्य—

१—५ कविर्ऋषिः॥ पवमानः सोमो देवता॥ छन्दः—
१, ३, ४ निचृज्जगती। २ पादनिचृज्जगती।
५ विराड्जगती॥ निषादः स्वरः॥

अथेश्वरः सूर्यादीनां प्रकाशकत्वेन वर्ण्यते ।

अब ईश्वरको सूर्यादिकोंके प्रकाशकत्वरूपसे वर्णन करते हैं ॥

अभि प्रियाणि पवते चनोहितो
नामानि यह्वो अधि येषु वर्धते ।
आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नधि रथं
विष्वंचमरुहद्विचक्षणः ॥ १ ॥

अभि । प्रियाणि । पवते । चनःऽहितः । नामानि । यह्वः । अधि । येषु । वर्धते । आ । सूर्यस्य । बृहतः । बृहन् । अधि । रथं । विष्वंचं । अरुहत् । विऽचक्षणः ॥१॥

पदार्थः—(विचक्षणः) स सर्वज्ञः परमात्मा (विष्वञ्चं) विविधविधामिमंसंसारं (रथं) रम्यं कृत्वा (अध्यरुहत) सर्वोपरि विराजते । स परमात्मा (बृहन्) महानस्ति । तथा (बृहतः-सूर्यस्य) अस्य महतः सूर्यस्याभितः (आ) व्याप्नोति । अथच (चनोहितः) सर्वहितकारकः (अभिप्रियाणि) सर्वेषां कल्याणंकुर्वन् (पवते) पवित्रयति । तथा (यह्वः) महतोमहान् (येषु नामानि) येष्वनन्तानि नामानि सन्ति स जगदीश्वरः (अधिवर्धते) अधिकतया वृद्धिं प्राप्नोति ॥

पदार्थ—(विचक्षणः) वह सर्वज्ञ परमात्मा (विष्वञ्चं) विविधप्रकार वाले इस संसारको (रथं) रम्य बनाकर (अध्यरुहत्) तथा सर्वोपरि होकर विराजमान हो रहा है । वह परमात्मा (बृहन्) बड़ा है । और (बृहतः सूर्यस्य) इस बड़े सूर्यके चारो ओर (आ) व्याप्त होता है । और-

(चनोहितः) सबका हितकारी परमात्मा (अभिप्रियाणि) सबका कल्याण करता हुआ, (पवते) पवित्र करता है । तथा (यह्वः) सबसे बड़ा है । (येषु नामानि) जिसमें अनन्त नाम हैं, वह परमात्मा (अधिवर्धते) अधिकतासे बृद्धिको प्राप्त है ॥

भावार्थ—इस निखिल ब्रह्माण्डका निर्माता परमात्मा सूर्यादि-सबलोक-लोकान्तरोंका प्रकाशक है । इसी अभिप्रायसे कहा है, कि "न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः" अर्थात् परमेश्वरका प्रकाशक कोई नहीं । वही सबका प्रकाशक है ॥१॥

ऋतस्य जिह्वा पवते मधु प्रियं वक्ता
पतिर्धियो अस्या अदाभ्यः ।
दधाति पुत्रः पित्रोरपीच्यं१
नाम तृतीयमधि रोचने दिवः ॥ २ ॥

ऋतस्य । जिह्वा । पवते । मधु । प्रियं । वक्ता । पतिः । धियः । अस्याः । अदाभ्यः । दधाति । पुत्रः । पित्रोः । अपीच्यं । नाम । तृतीयं । अधि । रोचने । दिवः ॥२॥

पदार्थः—(दिवः) द्युलोकस्य (रोचने) प्रकाशनाय (तृतीयं नाम) तृतीयं नामधेयं । (अधिदधाति) धरति। तथा (पुत्रः पित्रोः) सन्तानभावस्य सन्तानीभावस्य च (अपीच्यं) अधिकरणरूपोस्ति। अथच (ऋतस्य जिह्वा) सत्यस्य जिह्वासि त्वम्। तथा (पवते) सर्वान्पवित्रयति । (मधु) मधुरस्य (प्रियं) प्रियवचनस्य (वक्ता) कथनकर्तास्ति। तथा (अदाभ्यः) अदम्भनीयः स परमेश्वरः (अस्या धियः) अमीषां कर्मणामधिपतिरस्ति ॥

पदार्थ—(दिवः) द्युलोकके (रोचने) प्रकाशके लिये (तृतीयं) तीसरा (नाम) नाम (अधिदधाति) धारण करता है। तथा (शुभ्रः पित्रोः) सन्तान, सन्तानीभावका (अपीच्यं) अधिकरण है। और (ऋतस्य-जिह्वा) सचाईकी जिह्वा है। तथा (पवते) सबको पवित्र करता है। (मधु) मधुर (प्रियं) प्रिय वचनोंका (वक्ता) कथन करने वाला है। और (अदाभ्यः) अदम्भनीय वह परमात्मा (अस्या धियः) इन कर्मोंका अधिपति है॥

भावार्थ—जीवके शुभाशुभ सब कर्मोंका अधिपति परमात्मा है। उसी प्रकाशस्वरूप परमात्मासे सब द्यु भुवादि लोक-लोकान्तरोंका प्रकाश होता है॥२॥

अव द्युतानः कलशाँ अचिक्रदन्नृ-
भिर्येमानः कोश आ हिरण्यये।
अभीमृतस्य दोहना अनूषताधि
त्रिपृष्ठ उषसो वि राजति॥ ३॥

अव। द्युतानः। कलशान्। अचिक्रदत्। नृऽभिः। येमानः। कोशे। आ। हिरण्यये। अभि। ईम्। ऋतस्य। दोहनाः। अनूषत। अधि। त्रिऽपृष्ठः। उषसः। वि। राजति॥३॥

पदार्थः— त्रिपृष्ठः) भूर्भुवः, स्वः, इमे त्रयोलोकाः पृष्ठ-स्थानीया यस्य स परमात्मा (उषसः) उषाकालस्य प्रकाशको-भूत्वा- (अधिविराजति) विराजमानोस्ति। (ऋतस्य) सत्यस्य (दोहनाः) दोहनकर्तारः (ईं) अमुं परमात्मानं (अभ्यनूषत) उपासनया विभूषयन्ति। स परमात्मा (हिरण्यये कोशे)

प्रकाशरूपेऽन्तःकरणे (येमानः) अखिलनियमनियामकः परमेश्वरः (अचिक्रदत्) शब्दायमानः सन् (नृभिः) उपासकैः स्तुतोनिवसति । अथच (कलशान्) तेषामन्तःकरणानि (अवद्युतानः) प्रकाशयन् (आ) विराजितोऽस्ति ।

पदार्थ—(त्रिपृष्ठः) भूः, भुवः, स्वः, यह तीन लोक हैं पृष्ठस्थानी जिसके वह परमात्मा (उषसः) उषाकालका प्रकाशक होकर (अधिविराजति) विराजमान है । (ऋतस्य) सचाईके (दोहनाः) दोहन करने वाले (ईं) इस परमात्माको (अभ्यनूषत) उपासक गण उपासना द्वारा विभूषित करते हैं । (हिरण्यये कोशे) प्रकाशरूप अन्तःकरणमें (येमानः) सम्पूर्ण नियमोंका कर्ता वह परमात्मा (अचिक्रदत्) शब्दायमान होता हुआ (नृभिः) उपासक लोगोंसे स्तुति किया गया निवास करता है । (कलशान्) उनके अन्तःकरणोंको (अवद्युतानः) निरन्तर प्रकाश करता हुआ (आ) विराजमान है ॥

भावार्थ—परमात्मा उषाके प्रकाशित सूर्यादिकोंका भी प्रकाशक है। और वह पुण्यात्माओंके स्वच्छ अन्तःकरणको हिरण्मय पात्रके समान प्रदीप्त करता है। अर्थात् जो पुरुष परमात्मपरायण होना चाहे, वह पहिले अपने अन्तःकरणको स्वछ बनाये ॥३॥

अद्रिभिः सुतो मतिभिश्चनोहितः
प्ररोचयन्रोदसी मातरा शुचिः ।
रोमाण्यव्या समया वि धावति
मधोर्धारा पिन्वमाना दिवेदिवे ॥४॥

अद्रिऽभिः । सुतः । मतिऽभिः । चनःऽहितः । प्रऽरोचयन् ।

रोदसी इति । मातरा । शुचिः । रोमाणि । अव्या । समया । वि । धावति । मधोः । धारा । पिन्वमाना । दिवेऽदिवे ॥४॥

पदार्थः—(रोदसी मातरा) अस्य संसारस्य मातृवत् पितृवत् वर्तमानौ द्युलोक-भूलोकौ तौ (प्ररोचयन्) प्रकाशयन् (च) अथच (मतिभिरद्रिभिः) ज्ञानरूपचित्तवृत्तिभिः (सुतः) संस्कृतस्तथा (चनोहितः) सर्वहितकारी (शुचिः) शुद्धस्वरूपः परमेश्वरः (समया) सर्वतः (रोमाण्यव्या) निखिलपदार्थान् रक्षयन् (विधावति) विशेषरूपेण गच्छति । (दिवेदिवे) अहरहः (मधोर्धारा) अमृतवर्षणेन (पिन्वमाना) पुष्णाति ॥

पदार्थ—(रोदसी मातरा) इस संसारके मातापितावत् वर्तमान जो द्युलोक, और पृथिवीलोक हैं, उनको (प्ररोचयन्) प्रकाश करता हुआ (च) और (मतिभिरद्रिभिः) ज्ञानरूपी-चित्तवृत्तियोंसे (सुतः) संस्कृत और (चनोहितः) सबका हितकारी (शुचिः) शुद्धस्वरूप परमात्मा (समया) सब ओरसे (रोमाण्यव्या) सब पदार्थोंकी रक्षा करता हुआ (विधावति) विशेषरूपसे गति करता है । (दिवेदिवे) प्रतिदिन (मधोर्धारा) अमृतवृष्टिसे (पिन्वमाना) पुष्ट करता है ॥

भावार्थ—द्युलोक और पृथिव्यादि लोक-लोकान्तरोंका प्रकाशक परमात्मा अपनी सुधामयी-वृष्टिसे सदैव पवित्र करता है ॥४॥

परि सोम प्र धन्वा स्वस्तये नृभिः
पुनानो अभि वासयाशिरम् ।
ये ते मदा आहनसो विहायसस्ते-
भिरिन्द्रं चोदय दातवे मघम् ॥५॥३३॥२॥

परि । सोम । प्र । धन्व । स्वस्तये । नृऽभिः । पुनानः । अभि । वासय । आऽशिरं । ये । ते । मदाः । आहनसः । विऽहायसः । तेभिः । इन्द्रं । चोदय । दातवे । मघम् ॥५॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (ये ते मदा आहनसः) ये तव स्वभावा वाणीवोपदिशन्ति (तेभिः) तैः (विहायसाः) अस्मा-नाच्छादय । अथच (इन्द्रं) कर्मयोगिनं (मघं दातवे) ऐश्वर्य-दानाय (चोदय) प्रेरय । (सोम) हे जगदीश ! (नृभिः) उप-देशकैः (परिपुनानः) अस्मान्पवित्रयन् (स्वस्तये) मत्कल्या-णाय (प्रधन्व) प्राप्तोभव। तथा (आशिरं) अस्मदाश्रयं (अभि-वासय) अभितोरक्षय ॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (ये ते मदा आहनसः) जो आपके स्वभाव वाणीके समान उपदेश करते हैं (तेभिः) उनसे (विहायसाः) हमारा आप आच्छादन करें । और (इन्द्रं) कर्मयोगीको (मघं दातवे) ऐश्वर्य देनेके लिये (चोदय) प्रेरणा कीजिये । (सोम) हे परमात्मन् ! (नृभिः) उपदेशकों द्वारा (परिपुनानः) हमको पवित्र करते हुए (स्वस्तये) हमारे कल्याणके लिये (प्रधन्व) प्राप्त होइये । और (आशिरं) हमारे आश्रयका (अभिवासय) सब ओरसे रक्षा कीजिये ॥४॥

भावार्थ—जो लोग एकमात्र परमात्माका आश्रयण करते हैं, परमात्मा उनकी सर्वथा रक्षा करते हैं । क्योंकि सर्वनियन्ता और सबका अधिष्ठाता एकमात्र वही है । जैसा कि हम पूर्व भी अनेक स्थलोंमें लिख आये हैं, कि "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्म" तै० ३।१॥ "सर्वाणि वा इमानि भूतान्याकाशादेव समुत्पद्यन्ते आकाशं प्रत्यस्तं यन्त्या-

काशोह्येभ्योज्यायानाकाशः परायणम्" छा० १।९।१॥ "ब्रह्मैवेदं विश्वम्" मु० २।२।११॥ "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" छा० ३।१४।१॥ "आत्मैवेदं सर्वम्" छा० ७।२५।२॥ "पुरुष एवेदं सर्वम्" ऋ० ८।४।१७।१॥ "स एवजातः स जनिष्यमाणः" यजु० ३२।४॥ "नित्योनित्यानाम्" कठ० ५।१३॥ "नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मम्" मु० १।१।६॥ "सत्यं ह्येव ब्रह्म" बृ० ५।४।१॥ "ब्रह्मवादिनोहि प्रवदन्ति नित्यम्" श्वे० ३।२१॥ "योविश्वस्य जगतः प्राणतस्पतिः" ऋ० १।७।१२।५॥ "यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतोबभूव" ऋ० ८।७।३।३॥ "यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति" अथ० १०।८।४।१॥ "ब्रह्मगामश्वं जनयन्त ओषधीं र्वनस्पतीन्पृथिवीं पर्वताँ अपः। सूर्यं दिवि रोहयन्तः सुदानव आर्या व्रता विसृजन्तो अधि क्षमि"॥ इत्यादि वेदोपनिषदोंके वचनोंमें प्रसिद्ध है, कि परमात्मा ही सबका अधिष्ठान है। अधिष्ठान, अधिकरण, आश्रय, ये एकही वस्तुके नाम हैं। उसी परमात्माने इस चराचरात्मक संसारको उत्पन्न किया है। जिसको कोई आश्चर्य रूपसे देख रहा है, कोई आश्चर्य-रूपसे सुन रहा है, और कोई इस गूढ़तत्त्वको न समझकर आज्ञानावस्थामें पड़ा हुआ है। पर इसमें कोई सन्देह नहीं, कि इसके कर्तृत्वका कोई तिरस्कार नहीं कर सकता। अर्थात् नास्तिकसे नास्तिक भी जब इस बातका विचार करता है, कि इस विविध-रचना-संयुक्त-विश्वको किसने उत्पन्न किया, तो उसकी दृष्टि भी किसी अद्भुत शक्ति पर ही ठहरती है। अस्तु—

ये विचार तो उन लोगोंके हैं, जो ब्रह्मको तर्कगम्य मानते हैं। और जिन आस्तिक-लोगोंके विचारमें ब्रह्म शब्द-गम्य है, उनके लिये प्रमाणान्तरकी आवश्यकता नहीं। इसी लिये हमने, ऋ. मं. १०। सू. ६९। मं. ११ में यह स्पष्ट कर दिया कि, ब्रह्मने जब इस संसारको पहिले सूक्ष्मावस्थामें बनाया, और फिर स्थूलावस्थामें मेघाकार, फिर पृथिवी, बनस्पति, ओषधि, और फिर गवाश्वादि-रूपसे इस संसारकी सृष्टि की।

कई एक लोग उक्त मन्त्रके, ये अर्थ करते हैं, कि "दिवि रोहयन्तः" द्युलोकमें आरोहण करते, हुए, और "सूर्यं" सूर्य लोकको आरोहण करते हुए "सुदानवः" दानशील लोग ब्रह्म=अन्न, गौ, अश्वादि सृष्टिको (जनयन्तः) पैदा करते भये। इस अर्थको न केवल सायणाचार्यने किया है किन्तु विलसन, ग्रीफथ, इत्यादि यूरोपियन-विद्वानोंने भी यही अर्थ किये हैं। और वे लोग हेतु यह देते हैं, कि "जनयन्तः" यह बहुवचन उक्त देवोंमें घट सकता है, ब्रह्ममें नहीं। यदि उनसे यह पूछा जाय, कि "आर्या व्रता विसृजन्त" इस वाक्यमें "व्रता" का "व्रतानि" कैसे बना लिया और "आर्या" का "श्रेष्ठानि" कैसे बना लिया। तो उत्तर यही मिलेगा, कि वेदमें इस लौकिकव्याकरणका बल नहीं चलता। यदि इसी-प्रकार लौकिक-व्याकरणका त्याग करना है, तो "ब्रह्म" को कर्ता रखकर यह अर्थ क्यों न किये जायँ, कि ब्रह्मने सम्पूर्ण पृथिवी-पर्वतादि-पदार्थोंको उत्पन्न किया, इस उदाहरणसे हमारा तात्पर्य व्याकरणकी लघुता करनेका नहीं। किन्तु जो लोग व्याकरणका अन्यथा उपयोग करके वेदार्थको बिगाड़ते हैं, उनकी भूल दूर करने का है। इसी प्रकार मं.१ सू०२४ मं.८। में "पन्थानं" के स्थानमें वेदमें "पन्थां" है। और "सूर्यस्य" के स्थानेमें "सूर्याय" है। इसी प्रकार अनेक स्थलोंमें "विप्रेभिः" "प्राचैः" "रथीः" इत्यादि अनेक प्रयोग ऐसे पाये जाते हैं, जो अज्ञोंके गर्वको भञ्जन करके वैदिक-साहित्यके गर्वको स्थिर करते हैं। अस्तु—

मुख्य प्रसङ्ग यह है, कि "आशिरम्" हमारे आध्यात्मिक लक्ष्यकी पूर्ति करने वाला परमात्मा, हममें कर्मयोगियोंको उत्पन्न करके, हमको कर्मयोगी तथा उद्योगी बनाये ॥५॥

इति श्रीमदार्यमुनिनोपनिबद्धे ऋक्संहिताभाष्ये सप्तमाष्टके
द्वितीयोऽध्यायः
समाप्तः ॥

ओ३म्

सम्पूर्ण आर्य्यजनता को विदित हो कि श्री १०८ महर्षि स्वा० दयानन्द सरस्वतीकृत ऋग्वेदभाष्य जो लगभग ४५ वर्ष से अपूर्ण पड़ा था उसको निखिलतंत्रस्वतंत्र-वैदिकरिसर्चसकालर " श्री पं० आर्य्यमुनिजी " महाराज एक रजिस्टर्ड "वेदभाष्य समिति" की संरक्षा में पूर्ण कर रहे हैं जिसके मंत्री रायसाहिब ज्वालाप्रसादजी इन्जिनियर सुपरैन्टैन्डैन्ट आफ वर्क्स बनारस हिन्दूयूनीवरसिटी हैं।

हर्ष का विषय है कि सप्तम तथा नवम दो मण्डल का भाष्य छपकर पूर्ण होगया, विविध विषयों से पूर्ण इन मण्डलों को मंगाकर वेदसाहित्य के प्रेमी अवश्य स्वाध्याय प्रारम्भ करें, मूल्य डाकव्यय सहित दोनों मण्डलों का ११।) है अर्थात् सप्तममण्डल का मू० ३।) और नवम-मण्डल का ८) है।

अब आर्य्यजनता को विदित हो कि " अष्टमपण्डल " का भाष्य बराबर छप रहा है, जो अनुमान है कि छः मास तक छपकर तैयार होजायगा।

इसके अतिरिक्त उपनिषद्शास्त्र के प्रेमियों को ज्ञात होकि उक्त पं०जी महाराजकृत "उपनिषदार्य्यभाष्य" प्रथमभाग जिसमें "ईशादि" आठ उपनिषदों का विस्तारपूर्वकभाष्य है, जो चिरकाल से समाप्त होगया था और जिसकी बहुत मांग आरही थी, वह अबकी बार भलेप्रकार शोध कर मोटे उत्तम सफेद कागज और मोटे टाइप में रायल साइज पर छप कर तैयार है, मू० ४) रु०, द्वितीयभाग भी छप रहा है जिसमें छान्दोग्य तथा बृहदारण्यक का विस्तारपूर्वक भाष्य है, मू० ४)

श्रीपं०आर्य्यमुनिजी महाराजकृत नवीन ग्रन्थः—

ऋग्वेदभाष्य-प्रथम खण्ड	॥)	ऋग्वेदभाष्य-तृतीय खण्ड	४)
" द्वितीय खण्ड	२)	" चतुर्थ खण्ड	३॥)
गीतायोगप्रदीपार्य्यभाष्य		षड्दर्शनादर्श	॥)
पांचवीं आवृति मू० सजिल्द	३)	वेदान्ततत्वकौमुदी	॥)
योगार्य्यभाष्य द्वितीयावृत्ति	१।)	भीष्मपितामह का जीवनचरित्र और	
वेदमर्यादा	॥)	शरशय्या समय का सदुपदेश	॥)

उक्त पं०जीकृत सब ग्रन्थों के मंगाने तथा सब प्रकार का पत्रव्यवहार करने का पता यह है:-

प्रबन्धकर्त्ता-

वेदभाष्य-कार्य्यालय

धर्मकूप-काशी

ओ३म्

नवममण्डलस्य

ऋग्वेदभाष्यम्

श्रीमदार्य्यमुनिना निर्मितम्

संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां समन्वितम्

चतुर्थखण्डात्मकम्

पण्डित देवदत्तशर्म्मणा

धर्मकूप निवासिना

प्रकाशितम्

काश्यां

बी. एल. पावगी रामघट्ट निवासिना

स्वकीय-हितचिन्तक यन्त्रालये

मुद्रितम्

सं० १९७८ वि० सन् १९२१ ई०

मूल्यं ३॥) रूप्यकम्

अथ तृतीयोऽध्यायः ।

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ आसु॑व ।

अथ पञ्चर्चस्य षट्सप्ततितमस्य सूक्तस्य—

१–५ कविर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २ विराड्जगती । ३, ५ निचृज्जगती । ४ पादनिचृज्जगती ॥ स्वरः—१ धैवतः । २–५ निषादः ॥

अथ द्युभ्वादीनामाधारत्वं वर्ण्यते ।

अथ परमात्माको सर्वाधाररूपसे वर्णन करते हैं ।

ध॒र्ता दि॒वः प॑वते॒ कृत्व्यो॒ रसो॒
दक्षो॑ दे॒वाना॑मनु॒माद्यो॒ नृभिः॑ ।
हरिः॑ सृजा॒नो अत्यो॒ न सत्व॑भि॒र्वृथा॒
पाजां॑सि कृणुते न॒दीष्वा ॥ १ ॥

ध॒र्ता । दि॒वः । प॒व॒ते॒ । कृत्व्यः॑ । रसः॑ । दक्षः॑ । दे॒वाना॑म् । अ॒नु॒ऽमाद्यः॑ । नृ॒ऽभिः॑ । हरिः॑ । सृ॒जा॒नः । अत्यः॑ । न । सत्व॑ऽभिः । वृथा॑ । पाजां॑सि । कृ॒णु॒ते॒ । न॒दीषु॑ । आ ॥१॥

पदार्थः—(दिवः) द्युलोकस्य (धर्ता) धारको जगदीश्वरः (पवते) मां पवित्रयतु । (नृभिः) सर्वैरपि जनैः-

(कृत्व्यः) उपासनीयः । अथ च परमेश्वरः (रसः) आनन्दस्वरूपस्तथा (दक्षः) सर्वज्ञः (देवानामनुमाद्यः) विदुषामाह्लादकः (हरिः) पापहारकः परमात्मा (सृजानः) सर्वं सृजन् (अत्योन) विद्युदिव (वृथा) अनायासेनैव (सत्वभिः) प्राणिभिः (पाजांसि) बलानि (कृणुते) करोति । अथ च पूर्वोक्तः परमेश्वरः (नदीषु) प्रकृतेः सर्वासु शक्तिषु (आ) व्याप्नोति । उपसर्गश्रुतेर्योग्यक्रियाध्याहारः ॥

पदार्थ—(दिवः) द्युलोकका (धर्ता) धारणकर्ता परमात्मा (पवते) हमको पवित्र करे (नृभिः) सब मनुष्योंका (कृत्व्यः) जो उपास्य है तथा (रसः) आनन्द स्वरूप है, और (दक्षः) सर्वज्ञ है । (देवानामनुमाद्यः) और विद्वानोंका आह्लादक है । (हरिः) उक्त गुणयुक्त परमात्मा (सृजानः) सम्पूर्ण सृष्टिकी रचना करता हुआ (अत्योन) विद्युत्के समान (वृथा) अनायास से ही (सत्वभिः) प्राणियों द्वारा (पाजांसि) बलोंको (कृणुते) करता है । और उक्त परमात्मा (नदीषु) प्रकृतिकी सम्पूर्ण शक्तियोंमें (आ) व्याप्त है ॥

भावार्थ—प्रत्येक प्राकृत-पदार्थमें परमात्माकी सत्ता विद्यमान है। और वही द्युलोकादिका अधिकरण है ॥१॥

शूरो न धत्त आयुधा गभस्त्योः
स्वः सिषासन्रथिरो गविष्टिषु ।
इन्द्रस्य शुष्ममीरयन्नपस्युभिरि-
न्दुर्हिन्वानो अज्यते मनीषिभिः ॥ २ ॥

शूरः । न । धत्ते । आयुधा । गभस्त्योः । स्वरिति स्वः ।

सिसासन् । रथिरः । गोऽइंष्टिषु । इन्द्रस्य । शुष्मं । ईरयन् ।
अपस्युऽभिः । इन्दुः । हिन्वानः । अज्यते । मनीषिऽभिः ॥२॥

पदार्थः—(इन्दुः) सर्वप्रकाशकः परमेश्वरः (मनीषिभिः) ज्ञानयोगिभिः (अज्यते) साक्षात्क्रियते । तथा (अपस्युभिः) कर्मयोगिभिः (हिन्वानः) प्रेर्यमाणः अथच (इन्द्रस्य) कर्मयोगिनः (शुष्मं) बलं (ईरयन्) प्रेरयन् (शूरोन) शूर इव (गभस्त्योः) स्वकीयकर्मरूप-ज्ञानरूपशक्त्योः (आयुधा) सृष्टेः करणोपकरणरूपाण्यायुधानि (धत्त) दधाति । (स्वः) सुखस्वरूपः परमात्मा (गविष्टिषु) प्रजासु (सिषासन्) संभक्तुमिच्छया (रथिरः) गतिस्वरूपः स परमात्मा स्वकीयगत्या सर्वत्र परिपूर्णो भवति ॥

पदार्थ—(इन्दुः) सर्वप्रकाशक परमात्मा (मनीषिभिः) ज्ञानयोगियों द्वारा (अज्यते) ध्यानविषय किया जाता है । (अपस्युभिः) कर्मयोगियों द्वारा (हिन्वानः) प्रेरणा किया हुआ तथा (इन्द्रस्य) कर्मयोगीके (शुष्मं) बलको (ईरयन्) प्रेरणा करता हुआ (शूरोन) शूर-वीरके समान (गभस्त्योः) अपने कर्म और ज्ञानरूप शक्तिमें (आयुधा) सृष्टिके करणोपकरणरूप आयुधोंको (धत्ते) धारण करता है । (स्वः) वह सुखस्वरूप परमात्मा (गविष्टिषु) प्रजाओंमें (सिषासन्) विभाग करनेकी इच्छासे (रथिरः) गतिस्वरूप परमात्मा अपनी गतिसे सर्वत्र परिपूर्ण होता है ॥

भावार्थ—परमात्मा कर्मोंके फल देनेके अभिप्रायसे सर्वत्र सृष्टिमें अपनी न्यायरूपी-शक्तिसे सम्पूर्ण प्रजामें विराजमान होकर कर्मोंके यथायोग्य फल देता है ॥२॥

इन्द्रस्य सोम पवमान ऊर्मिणा
तविष्यमाणो जठरेष्वा विश ।
प्र णः पिन्व विद्युदभ्रेव रोदसी धिया
न वाजाँ उप मासि शश्वतः ॥ ३ ॥

इन्द्रस्य । सोम । पवमानः । ऊर्मिणा । तविष्यमाणः । जठरेषु । आ । विश । प्र । नः । पिन्व । विऽद्युत् । अभ्राऽइव । रोदसी इति । धिया । न । वाजान् । उप । मासि । शश्वतः ॥३॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (पवमानः) सर्वान्पवित्रयँस्त्वम् (ऊर्मिणा) स्वज्ञानतरङ्गैः (तविष्यमाणः) सर्वस्याभ्युदयमिच्छन् (इन्द्रस्य) कर्मयोगिनः (जठरेषु) अन्तःकरणेषु (आविश) आगत्य विराजस्व । अथच (विद्युत) विद्युत् (अभ्रेव) यथा मेघान् प्रकाशयति तथा (रोदसी) द्यावापृथिव्यौ वर्द्धयति । तथा (नः) अस्मान् (प्रपिन्व) वर्द्धय। अथ च (धिया) कर्मभिः (वाजान्) बलानि (न) साम्प्रतं (शश्वतः) निरन्तरं (उपमासि) निर्मिमीषे ॥

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! (पवमानः) सबको पवित्र करते हुए आप तथा (ऊर्मिणा) अपनी ज्ञानकी लहरोंमे (तविष्यमाणः) सबकी वृद्धि चाहते हुए (इन्द्रस्य) कर्मयोगीके (जठरेष्वाविश) अन्तःकरणोंमें आकर विराजमान हों । और (विद्युत्) बिजली (अभ्रेव) जिस प्रकार मेघोंको प्रकाशित करती है, और (रोदसी) द्युलोक और पृथिवीलोकको वृद्धियुक्त करती है, उस प्रकार (नः) हमको आप (प्रपिन्व) वृद्धियुक्त करें । और (धिया) कर्मोंके द्वारा (वाजान्) बलोंको (शश्वतान) संप्रति निरन्तर (उपमासि) निर्माण करते हैं ॥

भावार्थ—परमात्मा सत्कर्मों द्वारा मनुष्योंको इस प्रकार प्रदीप्त करता है, जिस प्रकार बिजली मेघमण्डलों और द्यु तथा पृथिवी लोकको प्रदीप्त करती है। इस लिये उसकी ज्ञानरूपी दीप्तिका लाभ करनेके लिये सदैव उद्यत रहना चाहिये ॥३॥

विश्वस्य राजा पवते स्वर्दृशं
ऋतस्य धीतिमृषिषाळवीवशत् ।
यः सूर्यस्यासिरेण मृज्यते पिता
मतीनामसमष्टकाव्यः ॥४॥

विश्वस्य । राजा । पवते । स्वःऽदृशः । ऋतस्य । धीतिं । ऋषिषाट् । अवीवशत् । यः । सूर्यस्य । असिरेण । मृज्यते । पिता । मतीनां । असमष्टऽकाव्यः ॥४॥

पदार्थः—(विश्वस्य राजा) समस्तसंसारस्य प्रभुः परमात्मा (पवते) अस्मान्पवित्रयति (ऋतस्य) सत्यवक्तुः कर्मयोगिनः (स्वर्दृशः) सुखज्ञातुः (धीतिं) कर्म (अवीविशत्) वाञ्छति । स परमात्मा (ऋषिषाट्) सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरोऽस्ति । तथा (यः) यः परमेश्वरः (सूर्यस्य) ज्ञानस्य (असिरेण) रश्मिभिः (मृज्यते) साक्षात्क्रियते । अथच (मतीनां) अखिलज्ञानानां (पिता) प्रदाता परमात्मा (असमष्टकाव्यः) वाचामगोचरोऽस्ति ॥

पदार्थ—(विश्वस्य राजा) सम्पूर्ण संसारका राजा परमात्मा (पवते) हमको पवित्र करता है। (ऋतस्य) सत्यवक्ता कर्मयोगीका तथा

(स्वर्दृशः) सुखके ज्ञानाके (धीतिं) कर्मको (अवीवशत्) चाहता है । और परमात्मा (ऋषिपाट्) सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म है । तथा (यः) जो परमात्मा (सूर्यस्य) ज्ञानकी रश्मियोंसे (मृज्यते) साक्षात् किया जाता है । और (मतीनां) समस्त ज्ञानोंका (पिता) प्रदाता है । तथा (असमष्टकाव्यः) जो कवियोंकी वाणीसे परे है ॥

भावार्थ—परमात्मा सब ज्ञानोंका केन्द्र है। और उसको कोई ज्ञानविषय नहीं कर सकता । इस लिये वह अतीन्द्रिय है । अर्थात् "यतोवाचो निवर्तन्ते अप्राप्यमनसा सह" उसको वाणी और मन दोनों ही विषय नहीं कर सकते । अर्थात् वह वाणीका लक्ष्यार्थ है, वाच्यार्थ नहीं ॥ ४ ॥

वृषे॑व यूथा परि॒ कोश॒मर्ष॑स्य॒-
पामु॒पस्थे॑ वृष॒भः कनि॑क्रदत् ।
स इन्द्रा॑य पवसे मत्स॒रिन्त॑मो॒
यथा॒ जेषा॑म समि॒थे त्वोत॑यः ॥५॥

वृषा॑ऽइव । यू॒था । परि॑ । कोश॑म् । अर्ष॑सि । अ॒पाम् । उ॒पऽस्थे॑ । वृ॒ष॒भः । कनि॑क्रदत् । सः । इन्द्रा॑य । प॒व॒से॒ । म॒त्स॒रिन्ऽत॑मः । यथा॑ । जेषा॑म । स॒म्ऽइ॒थे । त्वाऽऊ॑तयः ॥५॥

पदार्थः—(त्वोतयः) भवता सुरक्षिता वयं (यथा) येन प्रकारेण (समिथे) संग्रामे (जेषाम) जयेम तथा भवान्करोतु । (सः) सः (मत्सरिन्तमः) आनन्ददायकस्त्वम् (इन्द्राय) कर्मयोगिने (पवसे) पवित्रयासि । (वृषा) कामनावर्षकाणां (यूथेव) समूह इव (कोशं) ऐश्वर्यस्य कोशं (पर्यर्षसि) प्राप्नोषि ।

यथा (अपामुपस्थे) जलाभिमुखं (वृषभः) मेघमण्डलं (कनिक्रदत्) शब्दं कृत्वा प्राप्नोति तद्वत् ॥

पदार्थ—(त्वोतयः) आपसे सुरक्षित होते हुए (यथा) जैसे (समिथे) संग्राममें (जयाम) हम जीतें वैसा आप करें । (सः) वह (मत्सरिन्तमः) आनन्दके प्रदाता आप (इन्द्राय) कर्मयोगीके लिये (पवसे) पवित्रता प्रदान करते हैं । आप (वृषा) कामनाओंके (यूथेव) दातृगणके समान (कोशं) ऐश्वर्यके कोशको (पर्यर्षसि) प्राप्त होते हैं । जिस प्रकार (अपामुपस्थे) जलोंके समीप (वृषभः) मेघमण्डल (कनिक्रदत्) गर्ज कर प्राप्त होता है ॥

भावार्थ—परमात्मा हमारे ज्ञान विज्ञानादि कोशोंकी रक्षा करनेवाला है, और वह उद्योगी और कर्मयोगियोंको सदैव पवित्र करता है ।

इति षट्सप्ततितमं सूक्तं प्रथमो वर्गश्च समाप्तः ॥

यह ७६ वां सूक्त और पहिला वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य सप्तसप्ततितमस्य सूक्तस्य—

१—५ कविर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ जगती । १, ४, ५ निचृज्जगती ॥ निषादः स्वरः ॥

अथ वाचां सदाचारो वर्ण्यते ।

अब वाणियोंका सदाचार वर्णन करते हैं ।

एष प्र कोशे मधुमाँ अचिक्रददिन्द्रस्य
वज्रो वपुषो वपुष्टरः ।

अभीमृतस्य सुदुघा घृतश्चुतो
वाश्रा अर्षन्ति पयसेव धेनवः ॥१॥

एषः । प्र । कोशे । मधुऽमान् । अचिक्रदत् । इन्द्रस्य । वज्रः । वपुषः । वपुःऽतरः । अभि । ईम् । ऋतस्य । सुऽदुघाः । घृतऽश्चुतः । वाश्राः । अर्षन्ति । पयसाऽइव । धेनवः ॥१॥

पदार्थः—(वाश्राः) शब्दवत्यः (धेनवः) वाण्यः याः (पयसेव) जलप्रवाह इव (अभ्यर्षन्ति) अभिगच्छन्ति ताः (ईं) अस्य (ऋतस्य) सत्यस्य (सुदुघाः) दोग्ध्र्यः सन्ति । तथा (घृतश्चुतः) माधुर्यदात्र्यः सन्ति । (एषः) उक्तः परमेश्वरः (कोशे) अन्तःकरणे (मधुमान्) आनन्दरूपेण वर्तमानः सन् (प्राचिक्रदत्) साक्षित्वेनोपदिशति । स (वपुष्टरः) सर्वेषामादिबीजमस्ति । तथा (इन्द्रस्य) कर्मयोगिनः (वपुषः) शरीरस्य (वज्रः) वज्रोस्ति ॥

पदार्थ—(वाश्राः) शब्द करती हुई (धेनवः) वाणियें जो (पयसेव) जल प्रवाहके समान (अभ्यर्षन्ति) चलतीं हैं, वे वाणीयें (ईं) इस (ऋतस्य) सत्यकी (सुदुघाः) दोहन करने वाली हैं । और (घृतश्चुतः) माधुर्यको देने वालीं हैं । (एषः) उक्त परमेश्वर (कोशे) अन्तःकरणमें (मधुमान्) आनन्द-रूपसे वर्तमान परमात्मा (प्राचिक्रदत्) साक्षीरूपसे उपदेश करता है । और वह (वपुष्टरः) सबका आदिबीज है, तथा (इन्द्रस्य) कर्मयोगीके (वपुषः) शरीरका (वज्रः) वज्र है ॥

भावार्थ—सब सचाइयोंका आश्रय एकमात्र वाणी है । जो पुरुष वाणीको मीठी और सब कामनाओंकी दोहन करने वाली बनाते हैं, वे इस संसारमें सदैव सुख लाभ करते हैं ॥१॥

स पूर्व्यः पवते यं दिवस्परि
श्येनो मथायदिषितस्तिरो रजः ।
स मध्व आ युवते वेविजान
इत्कृशानोरस्तुर्मनसाह बिभ्युषा ॥२॥

सः । पूर्व्यः । पवते । यं । दिवः । परि । श्येनः । मथायत् । इषितः । तिरः । रजः । सः । मध्वः । आ । युवते । वेविजानः । इत् । कृशानोः । अस्तुः । मनसा । अह । बिभ्युषा ॥२॥

पदार्थः—(सः) असौ परमेश्वरः (पूर्व्यः) अनादिरस्ति । तथा (पवते) पवित्रयति । यः (रजः) प्रकृते रजोगुणं (तिरः) तिरस्कृत्य (परिमथायत) सर्वान्मथ्नाति (सः) अयं परमात्मा (मध्वः) मधुरूपोस्ति । तथा (आयुवते) परमाणुरूपप्रकृतिं मिथोमेलयति च । अथ च (वेविजानः) गतिशीलोस्ति (कृशानोः) स्वीयतेजोरूपशक्त्या (अस्तु) आक्षेपकारिजनेभ्यः (मनसा) आत्मीयमननरूपबलेन (बिभ्युषा) भयं ददाति ॥

पदार्थ—(सः) पूर्वोक्त परमात्मा (पूर्व्यः) अनादि है । और (पवते) सबको पवित्र करता है । जो (रजः) प्रकृतिके रजोगुणको (तिरः) तिरस्कार करके (परिमथायत्) सबको मथन करता है (सः) वह (मध्वः) मधुरूप है । और (आयुवते) परमाणुरूप प्रकृतिको आपसमें मिलाने वाला है । (वेविजानः) गतिशील है । (कृशानोः) अपनी तेजरूप-शक्तिसे (अस्तु) आक्षेप्ता-पुरुषोंको (मनसा) अपनी मननरूप-शक्तिसे (बिभ्युषा) भयका देने वाला है ।

भावार्थ—परमात्मा प्रकृतिके रजोरूप-परमाणुओंका संयोग करके इस सृष्टिको उत्पन्न करता है ॥ १ ॥

ते नः पूर्वास उपरास इन्दवो
महे वाजाय धन्वन्तु गोमते ।
ईक्षेण्यासो अह्यो३न चारवो
ब्रह्मब्रह्म ये जुजुषुर्हविर्हविः ॥२॥

ते । नः । पूर्वासः । उपरासः । इन्दवः । महे । वाजाय । धन्वन्तु । गोऽमते । ईक्षेण्यासः । अह्यः । न । चारवः । ब्रह्मऽब्रह्म । ये । जुजुषुः । हविःऽहविः ॥२॥

पदार्थः—(ते) पूर्वोक्ता विद्वांसो ये (नः) अस्माकं (पूर्वासः) पूर्वजाः सन्ति तथा (उपरासः) ये भविष्यन्ति ते (इन्दवः) ज्ञानिनः (महे गोमते) महते ज्ञानाय अथच (वाजाय) बलाय (धन्वन्तु) तं परमात्मानं प्राप्नुवन्तु। अथ च (ये) ये (ब्रह्म ब्रह्म) ब्रह्मप्राप्तये (हविर्हविः) तथा हविष्यार्थं (जुजुषुः) संसेवन्ते ते (चारवोन) श्रेष्ठजना इव (अह्यः) सुरूपाः (ईक्षेण्यासः) दर्शनीयाश्च भवन्ति ॥

पदार्थ—(ते) पूर्वोक्त विद्वान (नः) जो हमारे (पूर्वासः) पूर्वज (उपरासः) और जो भविष्यमें होने वाले हैं (इन्दवः) वे ज्ञानी (महे-गोमते) बड़े ज्ञानके लिये और (वाजाय) बलके लिये (धन्वन्तु) उस परमात्माको प्राप्त हों। और (ये) जो (ब्रह्म ब्रह्म) ब्रह्मप्राप्तिके लिये और (हविर्हविः) हविके लिए (जुजुषुः) सेवन करते हैं, वे (चारवः) श्रेष्ठ लोगोंके (न) समान (अह्यः) सुन्दर और (ईक्षेण्यासः) दर्शनीय होते हैं।

भावार्थ—प्राचीन और अर्वाचीन अर्थात् पुराने और नये दोनों प्रकारके विद्वान् जो वेदको ईश्वर प्राप्तिके लिये पढ़ते हैं, और हवनादि यज्ञोंको कर्मकाण्डके लिये करते हैं, वे इस संसारमें प्राचीनीय और सदाचार फैलानेके हेतु होते हैं । अन्य नहीं ॥ ३ ॥

अयं नो विद्वान्वनवद्वनुष्यत
इन्दुः सत्राचा मनसा पुरुष्टुतः ।
इनस्य यः सदने गर्भमादधे
गवामुरुब्जमभ्यर्षति व्रजम् ॥४॥

अयं । नः । विद्वान् । वनवत् । वनुष्यतः । इन्दुः । सत्राचा । मनसा । पुरुऽस्तुतः । इनस्य । यः । सदने । गर्भं । आऽदधे । गवां । उरुब्जं । अभि । अर्षति । व्रजं ॥४॥

पदार्थः—(अयं) असौ यः (नः) अस्माकं मध्ये (विद्वान्) मनीष्यस्ति सः (वनुष्यतः) अस्माकं शत्रून् (सत्राचा मनसा) समाहितमनसा (वनवत्) नाशयतु । स परमात्मा (इन्दुः) प्रकाशस्वरूपोऽस्ति । तथा (पुरुष्टुतः) मान्योऽस्ति (यः) योजनः (इनस्य) ईश्वरस्य (सदने) सन्निधौ (गर्भं) शिक्षां (आदधे) दधाति सः (गवां) इन्द्रियाणां (व्रजं) फलानि (उरुब्जं) यानि श्रेष्ठतराणि सन्ति तानि (अभ्यर्षति) प्राप्नोति ॥

पदार्थ—(अयं) यह जो (नः) हमारे मध्यमें विद्वान् है, वह (वनुष्यतः) हमारे शत्रुओंको (सत्राचा मनसा) समाहित मनसे नाश कर सकता है। और वह (इन्दुः) प्रकाश-स्वरूप है (पुरुष्टुतः) तथा मान-

नीय है। (यः) जो पुरुष (इनस्य) ईश्वरकी (सद्ने) सन्निधिमें (गर्भं) शिक्षाको (आदधे) धारण करता है, वह (गवां) इन्द्रियोंके (व्रजं) फलको (उरुज्जं) जो सर्वोपरि है, उसको (अभ्यर्षति) प्राप्त होता है।

भावार्थ—जो विद्वान् ईश्वरीयज्ञान पर विश्वास करता है, वह मनुष्य जन्मके फलको लाभ करता है ॥ ४ ॥

चक्रिर्दिवः पवते कृत्व्यो रसो
महाँ अदब्धो वरुणो हुरुग्यते ।
असावि मित्रो वृजनेषु यज्ञियोऽत्यो
न यूथे वृषयुः कनिक्रदत् ॥५॥२॥

चक्रिः । दिवः । पवते । कृत्व्यः । रसः । महान् । अदब्धः । वरुणः । हुरुक् । यते । असावि । मित्रः । वृजिनेषु । यज्ञियः । अत्यः । न । यूथे । वृषऽयुः । कनिक्रदत् ॥५॥

पदार्थः—(चक्रिः) स पुरुषः अनुष्ठानपरायणोभवति तथा (दिवः) द्युलोकं (पवते) पवित्रयति च। अथच (कृत्व्यः) कर्तव्यशीलः (रसः) आमोदरूपः (महान्) बृहत् (अदब्धः) अदम्भनीयः परमेश्वरः (हुरुग्यते) कुटिलजनं (वरुणः) स्वीयविद्याबलेनाच्छादयति। तथा (असावि) ज्ञानबलमुत्पादयति। (मित्रः) सर्वेभ्यः प्रियोऽस्ति। (वृजिनेषु) सर्वत्र (अत्यः) गन्तु शक्नोति। अथ च (यज्ञियः) यज्ञकर्मसु योग्यः (वृषयुः) सर्वासां कामनानां (यूथे) वर्षकगणः (न) इव (कनिक्रदत्) गर्जन् अस्मिन्संसारे यात्रां करोति ॥

पदार्थ—(चक्रिः) वह पुरुष अनुष्ठान-परायण होता है। और (दिवः) द्युलोकको (पवते) पवित्र करता है। (कृत्व्यः) और कर्तव्यशील (रसः) आनन्दस्वरूप (महान्) बड़ा (अदब्धः) किसीसे न दबाये जाने वाला परमेश्वर (ह्रुरयते) कुटिलतासे चलने वाले पुरुषको (वरुणः) अपने विद्याबलसे अच्छादन करता है। और (असावि) ज्ञानरूपी बलको उत्पन्न करता है (मित्रः) सर्व मित्र है (वृजनेषु अत्यः) सब विषयोंमें गमन कर सकता है। और (याज्ञियः) यज्ञसम्बन्धी कर्मोंमें योग्य (वृषयुः) सब कामनाओंके (यूथ) देने वाले गणके (न) समान (कनिक्रदत्) गर्जता हुआ, इस संसारमें यात्रा करता है॥

भावार्थ—जो विद्वान् धीर-वीर दृढव्रती और अपने विद्याप्रभावसे कुटिल वा मायावी पुरुषोंको दबानेकी शक्ति रखता है। वह इस मनुष्य समाजमें वृषभके समान गर्जता हुआ, अपने सदाचारी-समाजकी रक्षा करता है॥ ५॥

इति सप्तसप्ततितमं सूक्तं द्वितीयोवर्गश्च समाप्तः।

यह ७७ वां सूक्त और २सरा वर्ग समाप्त हुआ।

अथ पञ्चर्चस्याष्टसप्ततितमस्य सूक्तस्य—

१—५ कविर्ऋषिः॥ पवमानः सोमो देवता॥ छन्दः—१, निचृज्जगती॥ निषादः स्वरः॥

अथ सर्वनियामकस्येश्वरस्यैश्वर्यमुपदिश्यते।

अब सर्वनियामक परमात्माके ऐश्वर्यका उपदेश करते हैं।

प्र राजा वाचं जनयन्नसिष्यदद्पो
वसानो अभि गा इयक्षति।

गृभ्णाति रिप्रमविरस्य तान्वा

शुद्धो देवानामुप याति निष्कृतम् ॥१॥

प्र । राजा । वाचं । जनयन् । असिस्यदत् । अपः । वसानः । अभि । गाः । इयक्षति । गृभ्णाति । रिप्रं । अविः । अस्य । तान्वा । शुद्धः । देवानां । उप । याति । निः ऽकृतं ॥१॥

पदार्थः—(राजा) सर्वप्रकाशकोजगदीशः (वाचं) वेद-वाणीं (जनयन्) उत्पादयन् (प्रासिष्यदत्) संसारमुत्पाद-यति । अथ च (अपः) कर्माणि (वसानः) दधानः (गाः) पृथिव्यादिलोकानां (अभि) सम्मुखं (इयक्षति,) गतिं करोति । यः पुरुषः (अस्य) परमेश्वरस्य (तान्वा) शक्त्या (रिप्रं) स्व-कीयदोषान् (गृभ्णाति) मार्ष्टि अर्थात् दोषत्वेन गृह्णाति । एवं प्रकारेण (अविः) सुरक्षितः सन् (शुद्धः) पवित्रोस्ति (देवानां) देवतानां (निष्कृतं) स्थानं (उपयाति) प्राप्नोति ॥

पदार्थ—(राजा) सबका प्रकाशक परमात्मा (वाचं) वेदरूपी-वाणीको (जनयन्) उत्पन्न करता हुआ (प्रासिष्यदत्) संसारको उत्पन्न करता है । और (अपः) कर्मोंको (वसानः) धारण करता हुआ (गाः) पृथिव्यादि-लोक लोकान्तरोंके (अभि) सम्मुख (इयक्षति) गति करता है । जो पुरुष (अस्य) उस परमात्माकी (तान्वा) शक्ति-से (रिप्रं) अपने दोषोंको (गृभ्णाति) ग्रहण कर लेता है, अर्थात् उनको समझ कर मार्जन करलेना है, इस प्रकार (अविः) सुरक्षित होकर (शुद्धः)-शुद्ध है तथा (देवानां) देवताओंके (निष्कृतं) पदको (उपयाति) प्राप्त होता है ॥

भावार्थ—जो पुरुष परमात्माके जगत्कर्तृत्वमें विश्वास करता है, वह उसकी उपासना द्वारा शुद्ध होकर देव पदको प्राप्त होता है ॥१॥

इन्द्राय सोम परि षिच्यसे
नृभिर्नृचक्षा ऊर्मिः कविरज्यसे वने ।
पूर्वीर्हि ते स्रुतयः सन्ति
यातवे सहस्रमश्वा हरयश्चमूषदः ॥२॥

इन्द्राय । सोम । परि । सिच्यसे । नृऽभिः । नृऽचक्षाः । ऊर्मिः । कविः । अज्यसे । वने । पूर्वीः । हि । ते । स्रुतयः । सन्ति । यातवे । सहस्रं अश्वाः । हरयः । चमूऽसदः ॥२॥

पदार्थः—(वने) भक्तिमार्गे (कविः) सर्वज्ञः परमेश्वरः (नृभिः) मनुष्यैः (अज्यसे) उपासितो जगदीशः (नृचक्षाः) सर्वान्तर्याम्यस्ति (ऊर्मिः) आनन्दसमुद्ररूपोस्ति च। (सोम) हे जगन्नियन्तः! भवान् (इन्द्राय) कर्मयोगिने (परिषिच्यसे) लक्ष्यरूपेण निर्मितः (ते) तव (स्रुतयः) शक्तयः (हि) यतः (पूर्वीः) प्राचीनाः सन्ति। (यातवे) गमनशीलाय कर्मयोगिने (सहस्रं) बहुविधासु (अश्वाः) गतिशीलासु (चमूषदः) सेनासु स्थित्वा (हरयः) विनाशं धारयन्त्यः (सन्ति) कर्मयोगिनं प्राप्नुवन्ति ॥

पदार्थ—(वने) भक्तिके मार्गमें (कविः) सर्वज्ञ परमात्मा (नृभिः) मनुष्योंके द्वारा (अज्यसे) उपासना किया जाता है। वह (नृचक्षाः) सबका अन्तर्यामी है। (ऊर्मिः) आनन्दका समुद्र है। (सोम)

हे परमात्मन्! आप (इन्द्राय) कर्मयोगीके लिये (परिषिच्यसे) लक्ष्य-बनाये गये हो। (ते) तुम्हारी [स्तवयः) शक्तियें (हि) क्योंकि (पूर्वीः) सनातन हैं। (यातवे) गतिशील कर्मयोगीके लिये (सहस्रं) अनन्त प्रकारकी (अश्वाः) गतिशील (चमूषदः) सेनामें स्थिर होकर (हरयः) विनाशको धारण करतीं हुईं (सन्ति) कर्मयोगीको प्राप्त होतीं हैं॥

भावार्थ—जो लोग परमात्माकी भक्तिमें विश्वास करते हैं, परमात्मा उनके बलको अवश्यमेव बढ़ाता है। अर्थात् उत्पत्ति, स्थिति और संहार-रूप परमात्माकी शक्तियें कर्मयोगियोंकी आज्ञा-पालन करनेके लिये आ उपस्थित होती हैं॥२॥

समुद्रियां अप्सरसों मनीषिणमा-
सीना अन्तरभि सोममक्षरन्।
ता ईं हिन्वन्ति हर्म्यस्य सक्षणिं
याचन्ते सुम्नं पवमानमक्षितम्॥३॥

समुद्रियाः। अप्सरसः। मनीषिणं। आसीनाः। अंतः। अभि। सोमं। अक्षरन्। ताः। ईं। हिन्वन्ति। हर्म्यस्य। सक्षणिं। याचंते। सुम्नं। पवमानं। अक्षितं॥३॥

पदार्थः—(सोममभि) परमात्मनः समक्षं (समुद्रिया आसीना अप्सरसः) अन्तरिक्षस्य स्थिरशक्तयः (अक्षरत्) क्षरन्त्यःसत्यः (मनीषिणं) मनस्विनं पुरुषं (अन्तः) अन्तःकरणे उद्बोधयन्ति। (ताः) शक्तयः (ईं) अमुं (हिन्वन्ति) प्रेरयन्ति। अथ च उक्तपरमात्मनः सकाशात् (हर्म्यस्य) अखिलसौन्दर्य-साधनभुतं (सक्षणिं) समस्तापत्तिसंहारकं (पवमानं) पावकं (अक्षितं) क्षयरहितं पदमुपासकाः (याचन्ते) प्रार्थयन्ते॥

पदार्थ—(सोममभि) परमात्माके समक्ष (समुद्रिया आसीना अप्सरसः) अन्तरिक्षकी स्थिर-शक्तियें (अक्षरन्) क्षरण करती हुई (मनीषिणं) मनस्वी पुरुषके (अन्तः) अन्तःकरणमें उद्बोधन करतीं हैं । (ताः) वे शक्तियें (ईं) इसको (हिन्वन्ति) प्रेरणा करतीं हैं । और उक्त परमात्मासे (हर्म्यस्य) सब सौन्दर्योंके साधन तथा (सक्षणिं) सब आपत्तियोंके संहारने वाले (पवमानं) सबको पवित्र करने वाले (अक्षितं) क्षयरहित पदकी (याचन्ते) उपासक लोग याचना करते हैं ॥

भावार्थ—विद्युदादि अनन्तशक्तियें जो अन्तरिक्षमें स्थिर हैं, उसी अनन्त-शक्तिमद्ब्रह्मसे लोग अक्षय-पदकी याचना करते हैं ॥३॥

गोजिन्नः सोमो रथजिद्धिरण्य-
जित्स्वर्जिदब्जित्पवते सहस्रजित् ।
यं देवासश्चक्रिरे पीतये मदं
स्वादिष्ठं द्रप्समरुणं मयोभुवम् ॥४॥

गोऽजित् । नः । सोमः । रथऽजित् । हिरण्यऽजित् । स्वःऽजित् । अप्ऽजित् । पवते । सहस्रऽजित् । यं । देवासः । चक्रिरे । पीतये । मदं । स्वादिष्ठं । द्रप्सं । अरुणं । मयःऽभुवं ॥४॥

पदार्थः—(सोमः) परमेश्वरः (गोजित्) नानाविधसूक्ष्मातिसूक्ष्मशक्तिजेतास्ति । तथा (रथजित्) महावेगवन्तमपिपदार्थं जयति । अथ च (हिरण्यजित्) महतीमपि शोभामभि[illegible] । तथा (स्वर्जित्) सकलसुख-विजयकर्तास्ति तथा (अ[illegible]) महान्तमपि वेगं विजयते अथच (सहस्रजित्) असंख्यवर[illegible]जे-

तास्ति। (यं) इमं (मदं) आह्लादकं (स्वादिष्ठं) ब्रह्मानन्ददं (द्रप्सं) रसस्वरूपं (अरुणं) प्रकाशरूपं (मयोभुवं) सुखदं परमात्मानं (देवासः) दिव्यगुणवन्तोविद्वज्जनाः (नः) अस्माकं (पीतये) तृप्तये (चक्रिरे) व्याख्यानं कुर्वते॥

पदार्थ—(सोमः) परमात्मा (गोजित्) सब प्रकारकी सूक्ष्म-शक्तियोंको जीतने वाला है। तथा (रथजित्) बड़ेसे बड़े वेग वाले पदार्थको जीतने वाला है। और (हिरण्यजित्) बड़ी बड़ी शोभाओंको जीतने वाला है। तथा (स्वर्जित्) सब सुखोंको जीतने वाला है। और (अब्जित्) बड़े २ वेगको जीतने वाला है। तथा (सहस्रजित्) अनन्त पदार्थोंको जीतने वाला है (यं) जिस (मदं) आह्लादक (स्वादिष्ठं) ब्रह्मानन्द देने वाले (द्रप्सं) रसस्वरूप (अरुणं) प्रकाशस्वरूप (मयोभुवं) सुख देने वाले परमात्माका (देवासः) विद्वद्गण (नः) हमारी (पीतये) तृप्तिके लिये (चक्रिरे) व्याख्यान करते हैं॥

भावार्थ—परमात्माके आगे इस संसारकी सब शक्तियें तुच्छ-है। अर्थात् वह सर्वविजयी है। इसीसे विद्वान लोग नित्यसुखकी प्रार्थना करते हैं॥४॥

एतानि सोम पवमानो अस्मयुः
सत्यानि कृण्वन्द्रविणान्यर्षसि।
जहि शत्रुमन्तिके दूरके च य
उर्वी गव्यूतिमभयञ्च नस्कृधि॥५॥१॥

एतानि। सोम। पवमानः। अस्मऽयुः। सत्यानि। कृण्वन्। द्रविणानि। अर्षसि। जहि। शत्रुं। अंतिके। दूरके। च। यः। उर्वीं। गव्यूतिं। अभयं। च। नः। कृधि॥५॥

पदार्थः—(सोम) हे जगदीश ! (पवमानः) पवित्रः तथा (अस्मयुः) अस्मद्धितचिन्तकस्त्वं (सत्यानि कृण्वन्) सदुपदिशन् (एतानि) पूर्वोक्तान्यखिलानि (द्रविणानि) ऐश्वर्याणि (अर्षसि) ददासि (अथच) ये मम (अन्तिके) समीप (च) तथा (दूरके) दूरवर्तिनः (शत्रुं) शत्रवः सन्ति तान् (जहि) मारय (यः) योहि (उर्वी) विस्तृतः (गव्यूतिः) मार्गोस्ति तं मदर्थमनावरुद्धं कुरु । अथच (नः) अस्मान् (अभयं) भयरहितान् (कृधि) कुरु ॥

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! (पवमानः) पवित्र (अस्मयुः) हमारे शुभकी इच्छा करने वाले आप (सत्यानि) सदुपदेशोंको (कृण्वन्) करते हुए (एतानि) पूर्वोक्त समस्त (द्रविणानि) ऐश्वर्योंको (अर्षसि) देते हैं । और जो हमारे (अन्तिके) समीपवर्ती (च) तथा (दूरके) दूरवर्ती (शत्रुं) शत्रु हैं, उनको आप (जहि) नाश करें । (यः) जो (उर्वी) विस्तृत (गव्यूतिः) मार्ग है, उसे हमारे लिये खोल दें । और (नः) हमको (अभयं) भयरहित (कृधि) कर दीजिये ॥

भावार्थ—शत्रुसे तात्पर्य यहाँ अन्यायकारी-मनुष्योंका है । वे मनुष्य दूरवर्ती वा निकटवर्ती हों उन सबके नाशकी प्रार्थना इस मन्त्रमें परमात्मासे की गयी है ॥५॥

इत्यष्टसप्ततितमं सूक्तं तृतीयोवर्गश्च समाप्तः ॥

यह ७८ वां सूक्त और तीसरा वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ पञ्चर्चस्यैकोनाशीतितमस्य सूक्तस्य–

१–५ कविर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः–१,३ पादनिचृज्जगती । २, ४, ५ निचृज्जगती ॥ निषादः स्वरः ॥

अचोदसो नो धन्वन्त्विन्दवः प्र
सुवानासो बृहद्दिवेषु हरयः ।
वि च नशन्न इषो अरातयोऽर्यो
नशन्त सनिषन्त नो धियः ॥१॥

अचोदसः । नः । धन्वंतु । इंदवः । प्र । सुवानासः । बृहत्ऽदिवेषु । हरयः । वि । च । नशन् । नः । इषः । अरातयः । अर्यः । नशंत । सनिषंत । नः । धियः ॥१॥

पदार्थः—(अचोदसः) स्वतन्त्रः परमात्मा (नः) अस्मान् (प्रधन्वन्तु) प्राप्नोतु स (इन्दवः) स परमेश्वरः (सुवानासः) सर्वोत्पादकः (हरयः) हरणशीलः (बृहत दिवेषु) बृहद् यज्ञेषु अस्मान् रक्षतु (च) किञ्च ये (नः) अस्माकं (इषोऽरातयः) ऐश्वर्य्यस्य विनाशकाः (अर्य्यः) शत्रवः तान् (विनशन्) नाशयतु (नः) अस्माकं (नशंत) विनश्यन्तु (नोधियः) यान्यस्माकं कर्म्माणि तानि (सनिषन्त) शोधयन्तु अत्र बहुलं छन्दसीत्यनेन सूत्रेण बहुवचनस्य स्थाने एकवचनम् ।

पदार्थ—(अचोदसः) स्वतन्त्रपरमात्मा जो किसीसे प्रेरणा नहीं किया जाता वह (नः) हमको (प्रधन्वन्तु) प्राप्त हो । वह परमात्मा

(इन्दवः) सर्वैश्वर्ययुक्त है। और (सुवानासः) सर्वोत्पादक है (हरयः) दुष्टोंके हरण करने वाला है (बृहत् दिवेषु) आध्यात्मिकादि तीनों प्रकारके यज्ञोंमें हमारी रक्षा करे (च) और (इषोऽरातयः) हमारे ऐश्वर्यके विनाशक (अर्यः) शत्रुओंको (विनशन) नाश करके (नः) हमको ऐश्वर्य दे। और (नोधियः) हमारे कर्म्मोंको (सनिषन्त) शुद्ध करे।

भावार्थ—जो लोग परमात्मपरायण होकर अपने कर्म्मोंका शुभ-रीतिसे अनुष्ठान करते हैं, परमात्मा उनकी सदैव रक्षा करते हैं। अर्थात् वे लोग आध्यात्मिक आधिभौतिक तथा आधिदैविक तीनों प्रकारके यज्ञोंसे अपनी तथा अपने समाजकी उन्नति करते हैं ॥१॥

प्र णो धन्वन्त्विन्दवो मदच्युतो धना
वा येभिरर्वतो जुनीमसि ।
तिरो मर्तस्य कस्य चित्परिह्वृतिं
वयं धनानि विश्वधा भरेमहि ॥२॥

प्र । नः । धन्वंतु । इंदवः । मदऽच्युतः । धना । वा । येभिः । अर्वतः । जुनीमसि । तिरः । मर्तस्य । कस्य । चित् । परिऽह्वृतिं । वयं । धनानि । विश्वधा । भरेमहि ॥२॥

पदार्थः—(मदच्युतः) आनन्दप्रदः (इन्दवः) प्रकाशस्वरूपः परमात्मा (नः) अस्माकं (प्रधन्वन्तु) प्रागच्छन्तु (वा) अथवा (धना) धनानि प्रददातु (येभिः) यैर्धनैः (अर्वात) बलवच्छत्रुःसमीपं गत्वा (जुनीमसि) जयामः (कस्याचित् मर्तस्य) कस्यापिमनुष्यस्य (तिरः) तिरस्कारं कृत्वा (वयं) ईश्वरोपासकः (धनानि) गोहिरण्यरूपाणि (विश्वधा) सर्वदा (भरेमहि) न धारयामः ॥

पदार्थ—(मदच्युतः) सबको आनन्द देने वाला परमात्मा (इन्दवः) जो प्रकाश स्वरूप है वह (नः) हमको (प्रधन्वन्तु) प्राप्त हो (वा) अथवा (धना) गोहिरण्यरूपधन हमको प्रदान करे (येभिः) जिन धनों-से हम (अर्वता) बल वाले शत्रुओं को (जुनीमसि) जीतें (कस्यचित्) किसीके (मर्तस्य) मनुष्यका (तिरः) तिरस्कार करके (परिहृतिं) पीडा देकर (वयं) हम लोग (धनानि) धनोंको (विश्वधा) सदैव (भरेमहि) धारण न करे ॥

भावार्थ—मनुष्य को परमात्मा से सदैव इस प्रकार के बलकी याचना करनी चाहिये कि वह किसी मनुष्य को अन्याय से पीडा देकर धनका संग्रह न करे किन्तु यदि धन संग्रह की इच्छा हो तो वह अपने शत्रुओं को पराजय करके धनका लाभ करे ॥२॥

उत स्वस्या अरात्या अरिर्हि
स उतान्यस्या अरात्या वृको हि षः ।
धन्वन्न तृष्णा समरीत ताँ अभि
सोम जहि पवमान दुराध्यः ॥३॥

उत । स्वस्याः । अरात्याः । अरिः । हि । सः । उत । अन्यस्याः । अरात्याः । वृकः । हि । सः । धन्वन् । न । तृष्णा । सं । अरीत । तान् । अभि । सोम । जहि । पवमान । दुःऽआध्यः ॥३॥

पदार्थः—(उत) अथवा (स्वस्याअरात्याः) स्वस्य शत्रोः (उत) अथवा (अन्यस्या अरात्याः) अन्यस्य शत्रोः (सः) परमात्मा (वृकः) हिंसको भवति (हि) यतः (धन्वन् न तृष्णा)

यथा निरुदकदेशतृष्णा (समरीत) व्याप्नोति (तां) तृष्णां (सोम) हे परमात्मन्! त्वं (अभिजहि) नाशय (दुराध्यः) हे इन्द्रियागोचर! (पवमान) शुद्धस्त्वं पुंसः कामरूपां तृष्णां जहि ॥

पदार्थ—(उत) अथवा (स्वस्या अरात्याः) अपना शत्रु हो (उत) अथवा (अन्यस्या अरात्याः) दूसरेका शत्रु हो दोनों प्रकारके शत्रु हिंसनीय होते हैं (हि) क्योंकि (सः) वह (वृकः) हिंसक रूप है (धन्वन न तृष्णा) जिस प्रकार बाधा देने वाली तृष्णा (समरीत) आकर प्राप्त होती है (तानभि) उस तृष्णाको (सोम) हे परमात्मन् तुम (जहि) नाश करो (पवमान) हे सबके पवित्र करने वाले (दुराध्यः) हे इन्द्रियागोचरपरमात्मन् आप इस कामना-रूप तृष्णाका नाश करें ॥

भावार्थ—हे परमात्मन्! आप, जो दुराराध्य शत्रु हैं, अर्थात् दुःखसे वशीभूत होने वाले हैं उनका हनन करें यहां शत्रुसे तात्पर्य कामरूप शत्रु का भी है। इसी अभिप्रायसे गीतामें कृष्णजीने कहा है, कि "पाप्मानं जहिह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम्" कि ज्ञान और विज्ञानको नाश करने वाले इस पापी कामको नाश करो ॥३॥

दिवि ते नाभा परमो य आददे
पृथिव्यास्ते रुरुहुः सानवि क्षिपः ।
अद्रयस्त्वा बप्सति गोरधि
त्वच्यप्सु त्वा हस्तैर्दुदुहुर्मनीषिणः ॥४॥

दिवि । ते । नाभा । परमः । यः । आऽददे । पृथिव्याः । ते । रुरुहुः । सानवि । क्षिपः । अद्रयः । त्वा । बप्सति । गोः । अधि । त्वचि । अप्ऽसु । त्वा । हस्तैः । दुदुहुः । मनीषिणः ॥४॥

पदार्थः—(मनीषिणः) मेधाविनोजनाः (त्वा) त्वां (हस्तैः) ज्ञानयोगकर्मयोगादिसाधनैः (दुदुहुः) साक्षात्कुर्वते अथ च तेषां (अद्रयः) चित्तवृत्तयः (गोरधित्वचि) स्वमनसि (अप्सु) कर्मभ्यः (त्वा) भवन्तं (वप्सति) गृह्णन्ति। हे परमात्मन्! (ते) तव। (दिविनाभा) लोक-लोकान्तरस्य बन्धन रूपद्युलोके (यः) यः पुरुषः (आददे) त्वां गृह्णाति स (परमः) सर्वोत्कृष्टो भवति। अथ च (ते) तव (पृथिव्याः) पृथ्वीलोकस्य (सानवि) उपरि भागे (क्षिपः) धृतः सन् (रुरुहुः) उत्पद्यते।

पदार्थ—(मनीषिणः) मेधावी लोग (त्वा, तुमको (हस्तैः) ज्ञानयोग कर्म्मयोगादि साधनों द्वारा (दुदुहुः) साक्षात्कार करते हैं। और उनकी (अद्रयः) चित्तवृत्तियें (गोरधित्वचि) अपने मनमें (अप्सु) कर्म्मोंके लिये (त्वा) तुमको (वप्सति) ग्रहण करतीं हैं। हे सोम! (ते) तुम्हारे (दिविनाभा) लोक-लोकान्तरोंके बन्धनरूप द्युलोकमें (यः) जो पुरुष (आददे) तुमको ग्रहण करता है, वह (परमः) सर्वोत्कृष्ट होताहै। और (ते) तुम्हारे (पृथिव्याः) पृथिवीलोकके (सानवि) उच्चशिखरमें (क्षिपः) रक्खा हुआ (रुरुहुः) उत्पन्न होता है॥

भावार्थ—जो लोग चित्तवृत्तिनिरोधद्वारा परमात्माका साक्षात्कार करते हैं, वे परमात्माकी विभूतिमें सर्वोपरि होकर विराजमान होते हैं॥४॥

एवा त इन्दो सुभ्वं सुपेशसं
रसं तुञ्जन्ति प्रथमा अभिश्रियः।
निदंनिदं पवमान नि तारिष
आविस्ते शुष्मो भवतु प्रियो मदः॥५॥४॥

एव । ते । इंदो । इतिं । सुऽभ्वं । सुऽपेशसं । रसं । तुंजंति । प्रथमाः । अभिऽश्रियः । निदंऽनिदं । पवमान । नि । तारिषः । आविः । ते । शुष्मः । भवतु । प्रियः । मदः ॥५॥४॥

पदार्थः—(इन्दो) हे परमैश्वर्य्ययुक्तपरमात्मन् ! (ते) तव (सुपेशसं) रूपं (सुभ्वं) सुन्दरमस्ति (अभिश्रियः) त्वदुपासकाः (प्रथमाः) मुख्यं (रसं) आनन्दं (तुंजन्ति) गृह्णन्ति (पवमान) हे सर्वपवित्रकारकपरमात्मन् ! (निदं निदं) प्रतिनिन्दकं भवान् (नितारिषः) विनाशयतु । पुनः (ते) तव (शुष्मः) बलं (प्रियः) यःसर्वप्रियकर्ता (मदः) आनन्ददातास्तिसः (आविः) प्रादुर्भवति ॥

पदार्थ—(इंदो) हे परमैश्वर्य्ययुक्त परमात्मन् ! (ते) तुम्हारा (सुपेशसं) रूप (सुभ्वं) सुन्दर है । (अभिश्रियः) तुम्हारे उपासक लोग (प्रथमा) मुख्य (रसं) आनन्दको (तुञ्जन्ति) ग्रहण करते हैं । (पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (निंदंनिदं) प्रत्येक निन्दकको आप (नितारिषः) नाश करते हैं । और (ते) तुम्हारा (शुष्मः) बल (प्रियः) जो सबके प्रिय करने वाला है (मदः) और आनन्द देने वाला है, वह (आविः) प्रकट हो ।

भावार्थ—परमात्माका आनन्द परमात्मयोगियोंके लिये सदैव आह्लादक है । और दुराचारि-दुष्टोंके लिये परमात्माका बल नाशका हेतु है । इस लिये परमात्म-परायण-पुरुषोंको चाहिये कि वे सदैव परमात्माके नियमोंके पालनमें तत्पर रहें ॥५॥

इत्येकोनाशीतितमं सूक्तं चतुर्थोवर्गश्च समाप्तः ।

यह ७९ वां सूक्त और ४ था वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ पञ्चर्चस्याशीतितमस्य सूक्तस्य—

१–५ वसुर्भारद्वाज ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥
छन्दः—१, ४ जगती । २, ५ विराड्जगती ।
३ निचृज्जगती ॥ निषादः स्वरः ॥

अथ परमात्मन ऐश्वर्यं प्रकारान्तरेण निरूप्यते ।

अब परमात्माके ऐश्वर्यको प्रकारान्तरसे निरूपण करते हैं ।

सोमस्य धारा पवते नृचक्षस
ऋतेन देवान्हवते दिवस्परि ।
बृहस्पते रवथेना वि दिद्युते समुद्रासो
न सवनानि विव्यचुः ॥१॥

सोमस्य । धारा । पवते । नृऽचक्षसः । ऋतेन । देवान् । हवते । दिवः । परि । बृहस्पतेः । रवथेन । वि । दिद्युते । समुद्रासः । न । सवनानि । विव्यचुः ॥१॥

पदार्थः—(नृचक्षसः) परमात्मन उपासकान् (सोमस्य) सर्वोत्पादकस्य परमेश्वरस्य (धारा) आमोदमयी वृष्टिः (पवते) पुनाति । अथ च (देवान्) विद्वज्जनान् (ऋतेन) सत्येन (दिवस्परि) परितः (पवते) परमात्मा पवित्रयति (बृहस्पतेः) वाक्पतिं विद्वांसं जगदीश्वरः (रवथेन) शब्दद्वारा पुनाति (न) यथा (समुद्रासः) अन्तरिक्षलोकाः (सवनानि) यज्ञानां

(विव्यचुः) विस्तारं कुर्वन्ति । तथा शाब्दिका विद्वांसः परमात्मन ऐश्वर्यं तन्वते ॥

पदार्थ—(नृचक्षसः) परमात्माके उपासक लोगोंके लिये (सोमस्य) सर्वोत्पादक परमात्माकी (धारा) आनन्दमयवृष्टि (पवते) पवित्र करती है। और (देवान्) विद्वान् लोगोंको (ऋतेन) शास्त्रीय सत्यद्वारा (दिवस्परि) सब ओरसे (पवते) परमात्मा पवित्र करता है। (बृहस्पतेः) वाणियोंके पति विद्वान्को परमात्मा (रवथेन) शब्दसे पवित्र करता है। (न) जिस प्रकार (समुद्रासः) अन्तरिक्ष लोक (सवनानि) यज्ञोंका (विव्यचुः) विस्तार करते हैं, इसी प्रकार शब्द विद्याके वेत्ता विद्वान् परमात्माके ऐश्वर्यका विस्तार करते हैं ॥

भावार्थ—मनुष्यको चाहिये कि प्रथम शब्द ब्रह्मका ज्ञाताबने, फिरमुख्य ब्रह्मका ज्ञाता बनाकर लोगोंको सदुपदेश दें ॥१॥

यं त्वा वाजिन्नघ्न्या अभ्यनूषतायोहतं
योनिमा रोहसि द्युमान् ।
मघोनामायुः प्रतिरन्महि श्रव
इन्द्राय सोम पवसे वृषा मदः ॥२॥

यं । त्वा । वाजिन् । अघ्न्याः । अभि । अनूषत । अयःऽहतं । योनिं । आ । रोहसि । द्युऽमान् । मघोनां । आयुः । प्रऽतिरन् । महि । श्रवः । इंद्राय । सोम । पवसे । वृषा । मदः ॥२॥

पदार्थः—(सोम) हे जगद्रक्षकपरमात्मन् ! भवान् (मघोनां) उपासकानां (आयुः) जीवनं (प्रतिरन्) वर्द्धयति

अथ च (इंद्राय) कर्मयोगिने (महिश्रवः) बलप्रदाताचास्ति । तथा (मदः) सकलजनाह्लादकोस्ति । अथ च (वृषा) कामनावर्षकस्त्वम् (पवसे) पुनासि । हे चराचरजगदुत्पादकपरमेश्वर ! (वाजिन्) हेबलस्वरूप परमात्मन् ! (त्वां) यं भवन्तं (अघ्न्याः) प्रकृत्याद्यविनाशिन्यः शक्तयः (अभ्यनूषत) विभूषयन्ति । तथा (अयोहतं) त्वं हिरण्मयं (योनिं) स्थानं (आरोहसि) व्याप्नोषि । अथ (द्युमान्) सर्वप्रकाशकोसि ।

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! आप (मघोनां) उपासकोंकी (आयुः) आयुके (प्रतिरन्) बढ़ाने वाले हैं । और (इन्द्राय) कर्मयोगीके लिये (महिश्रवः) बड़े बलके देने वाले हैं । (मदः) सबके आह्लादक हैं और (वृषा) सब कामनाओंकी वृष्टि करने वाले हैं । और (पवसे) पवित्र करते हैं । हे परमात्मन् ! (वाजिन्) हे बलस्वरूप ! (यंत्वा) जिस आपको (अघ्न्याः) प्रकृत्यादि अविनाशी शक्तियें (अभ्यनूषत) विभूषित करतीं हैं । (अयोहतं) आप हिरण्यमय (योनिं) स्थानको (आरोहसि) व्याप्त किये हुए हैं । और (द्युमान्) प्रकाशस्वरूप हैं ।

भावार्थ—परमात्मा इस हिरण्यमय प्रकृति-रूपी-ज्योतिका अधिकरण है । वा यों कहो, कि इस हिरण्यमयप्रकृतिने उसके स्वरूपको आच्छादन किया है । इसी अभिप्रायसे उपनिषदमें कहा है, कि 'हिरण्यमयेन पात्रेण सत्यास्यापिहितं मुखम्' कि हिरण्यमय-पात्रसे परमात्माका स्वरूप ढका हुआ है ॥२॥

ऐन्द्रस्य कुक्षा पवते मदिन्तम
ऊर्जं वसानः श्रवसे सुमङ्गलः ।
प्रत्यङ् स विश्वा भुवनाभि
पप्रथे क्रीळन्हरिरत्यः स्यन्दते वृषा ॥३॥

आ । इंद्रस्य । कुक्षा । पवते । मदिन्ऽतमः । ऊर्जं । वसानः । श्रवसे । सुऽमंगलः । प्रत्यङ् । सः । विश्वा । भुवना । अभि । पप्रथे । क्रीलन् । हरिः । अत्यः । स्यंदते । वृषा ॥३॥

पदार्थः—(श्रवसे) सर्वोत्कृष्टबलाय (सुमङ्गलः) मङ्गलरूपोस्ति । (ऊर्जं वसानः) तथा सर्वेषां जीवनाधारो भूत्वा विराजमानोस्ति । तथा (मदिन्तमः) सकलामोददायकोस्ति । (इन्द्रस्य) कर्मयोगिनः (कुक्षा) अन्तःकरणं (पवते) पुनाति (सः) असौ परमात्मा (प्रत्यङ्) सर्वव्यापकोस्ति । अथच (विश्वा भुवना) सकल लोकलोकान्तराणि (अभिपप्रथे) निर्मिमीते । (हरिः) सोऽनन्तबल युक्तः परमात्मा (क्रीलन्) क्रीड़ा कुर्वन् तथा (अत्यः) सर्वत्र व्याप्नुवन् अथ च (वृषा) आनन्दं ददन् (स्यन्दते) स्वकीयव्यापकताशक्त्या सर्वत्र परिपूर्णोस्ति ॥

पदार्थ—(श्रवसे) सर्वोपरि बलके लिये (सुमंगलः) मंगलरूप है । (ऊर्जं वसानः) सबका प्राणाधार होकर विराजमान हो रहा है । (मदिन्तमः) सबका आनन्द कारक है (इन्द्रस्य) कर्मयोगीके (कुक्षा) अन्तःकरणमें (पवते) पवित्रता प्रदान करता है (सः) वह (प्रत्यङ्) सर्वव्यापक है । और (विश्वा भुवना) सम्पूर्ण लोक-लोकान्तरोंको (अभिपप्रथे) रचता है । (हरिः) वह अनन्तबलयुक्त (क्रीलन्) क्रीड़ा करता हुआ और (अत्यः) सर्वव्यापक होकर और (वृषा) आनन्दका वर्षक होकर (स्यन्दते) अपनी व्यापक शक्ति द्वारा सर्वत्र परिपूर्ण हो रहा है ॥

तं त्वा देवेभ्यो मधुमत्तमं
नरः सहस्रधारं दुहते दश क्षिपः ।
नृभिः सोम प्रच्युतो ग्रावभिः
सुतोविश्वान्देवाँ आ पवस्वा सहस्रजित् ॥४॥

तं । त्वा । देवेभ्यः । मधुमत्ऽतमं । नरः । सहस्रऽधारं । दुहते । दश । क्षिपः । नृऽभिः । सोम । प्रऽच्युतः । ग्रावऽभिः । सुतः । विश्वान् । देवान् । आ । पवस्व । सहस्रऽजित् ॥४॥

पदार्थः—(देवेभ्यः) विद्वद्भ्यः (मधुमत्तमं) अत्यन्तानन्ददं तथा (सहस्रधारं) विविधानन्दवर्षकं (तं त्वां) पूर्वोक्तं भवन्तं (नरः) ऋत्विगादयः (दुहते) दुहन्ति । अथ च (दशक्षिपः) कर्मेन्द्रियज्ञानेन्द्रियाणां दशानां (ग्रावभिः) शक्तिभिः (सुतः) सिद्धः (सोम) हे परमात्मन् ! भवान् (नृभिः) मनुष्यैः साक्षात्क्रियते । (सहस्रजित्) हे अनेकानेकासुरीशक्तिनाशकपरमात्मन् ! त्वम् (विश्वान् देवान्) अखिला न्विदुषः (आपवस्व) पुनीहि ॥

पदार्थ—(देवेभ्यः) विद्वानोंके लिये (मधुमत्तमं) अत्यन्त आनन्दकेप्रदाता (तं त्वा) पूर्वोक्त तुमको (नरः) ऋत्विगादि लोग (दुहते) दुहते हैं । और (दश क्षिपः) पांच कर्मेन्द्रिय और पांच ज्ञानेन्द्रियोंकी (ग्रावभिः) शक्तियोंसे (सुतः) सिद्ध किये हुए (सोम) हे परमात्मन् ! आप (नृभिः) मनुष्योंसे साक्षात्कार किये जाते हैं । (सह-

स्रजित्) अनन्त प्रकारकी आसुरीय शक्तियोंको तिरस्कृत करने वाले आप (विश्वान् देवान्) सम्पूर्ण विद्वानोंको (आपवस्व) पवित्र करें ।

भावार्थ—जो लोग परमात्माका साक्षात्कार करते हैं, परमात्मा उन्हें अवश्य पवित्र करते हैं ॥४॥

तं त्वा हस्तिनो मधुमन्तमद्रि-
भिर्दुहन्त्यप्सु वृषभं दश क्षिपः ।
इन्द्रं सोम मादयन्दैव्यं जनं
सिन्धोरिवोर्मिः पवमानो अर्षसि ॥५॥५॥

तं । त्वा । हस्तिनः । मधुऽमंतं । अद्रिऽभिः । दुहंति । अप्ऽसु । वृषभं । दश । क्षिपः । इंद्रं । सोम । मादयन् । दैव्यं । जनं । सिंधोःऽइव । ऊर्मिः । पवमानः । अर्षसि ॥

पदार्थः—(तं त्वा) प्रागुक्तगुणसम्पन्नं त्वां (वृषभं) कामनावर्षकं परमात्मानं (दशक्षिपः) दशसंख्याकाः प्राणाः (अद्रिभिः) स्वशक्तिभिः (हस्तिनः) स्वच्छतापूर्वकं (अप्सु) कर्मविषये (दुहन्ति) दुहते ! (सोम) हे परमात्मन् (इन्द्रं दैव्यं जनं) दिव्यगुणसम्पन्नं कर्मयोगिनं (मादयन् आनन्दयन्) (सिन्धोरिवोर्मिः) समुद्रवीचिरिव (पवमानः) पवित्रयन्त्वमर्षसि प्राप्तो भवसि ॥

पदार्थ—(तं त्वा) पूर्वोक्त गुणसम्पन्न आपको जो (वृषभं) जो सब कामनाओं की वृष्टि करता है (अद्रिभिः) अपनी शक्तियोंसे

(दशक्षिपः) दशप्राण (हस्तिनः) स्वच्छता युक्त (अप्सु) कर्म्मविषयक (दुहंति) दुहते हैं परमात्मन् ! (इन्द्र दैव्यं जनं) दिव्यगुणसम्पन्न कर्म्म योगीको (मादयन्) आनन्द देते हुए (सिंधोरिवोर्मिः) समुद्रकी लहरोंके समान (पवमानः) पवित्र करते हुए (अर्षसि) प्राप्त होते हैं ।

भावार्थ—जो पुरुष कर्म्मयोग वा ज्ञानयोगद्वारा अपने आपको परमात्माकी कृपाका पात्र बनाते हैं, परमात्मा उन्हें सिन्धुकी लहरोंके समान अपने आनन्द-रूपी-वारिसे सिञ्चित करता है ॥५॥

इत्यशीतितमं सूक्तं पञ्चमो वर्गश्च समाप्तः ।

यह अस्सीवाँ सूक्त और पाचवाँ वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ पञ्चर्चस्य एकाशीतितमस्य सूक्तस्य—

१–५ वसुर्भारद्वाज ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥
छन्दः–१,३ निचृज्जगती । ४ जगती । ५
निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः १–४
निषादः । ५ धैवतः ॥

अथेश्वरज्ञानाधिकारिणो निरूप्यन्ते ।

अब ईश्वरके ज्ञानके अधिकारियोंका निरूपण करते हैं ।

प्र सोम॑स्य पव॑मानस्यो॒र्मय॒
इन्द्र॑स्य यन्ति ज॒ठरं॑ सु॒पेश॑सः ।
द॒ध्ना यदी॒मुन्नी॑ता य॒शसा॒ गवां॑
दाना॑य॒ शूर॑मु॒दम॑न्दिषुः सु॒ताः ॥१॥

प्र । सोम॑स्य । पव॑मानस्य । ऊर्मये॑ः । यंति । जठर॑ । सुऽपे॑-
शसः । द॒ध्ना । यत् । ई॒ । उत्ऽनी॑ताः यशसा॑ । गवा॑ ।
दा॒नाय॑ । शूर॑ । उत्ऽअमं॑दिषुः । सुताः ॥१॥

पदार्थः—(पवमानस्य) सर्वपावकस्य (सोमस्य) पर-
मेश्वरज्ञानस्य (ऊर्मयः वीचयः (इन्द्रस्य) ज्ञानयोगिनः (जठरं)
अन्तःकरणं (प्रयन्ति) प्राप्नुवन्ति । या वीचयः (सुपेशसः)
सुन्दराः सन्ति । (गवां) इन्द्रियाणां (दानाय) सुज्ञानदानाय
(दध्ना यदीमुन्नीताः) सहायकसंस्कारद्वारा (यशसा) बलेन
(उदमंदिषुः) मोदे (सुताः) संस्कृताः (शूरं) वीरं कर्मयोगिनं
प्रदीप्तं कुर्वन्ति ॥

पदार्थ—(पवमानस्य) सबको पवित्र करने वाले (सोमस्य)
परमात्माके ज्ञानकी (ऊर्मयः) लहरें (इन्द्रस्य (ज्ञानयोगीके) (जठरं)
अन्तःकरणको (प्रयन्ति) प्राप्त होती हैं । जो लहरें (सुपेशसः) सुन्दर हैं
और (गवां) इन्द्रियोंके (दानाय) सुन्दर ज्ञान देनेके लिये (दध्ना यदी-
मुन्नीताः) सहायक-संस्कार द्वारा (यशसा) बलसे (उदमंदिषुः) आनन्द
में (सुताः) संस्कार किये हुए (शूरं) शूरवीर कर्म्मयोगीको प्रदीप्त
करतीं हैं ।

भावार्थ—परमात्माके सदुपदेश ज्ञानयोगीको पवित्र करते हैं ।
और उसके उत्साहको प्रतिदिन बढ़ाते हैं ॥१॥

अच्छा॒ हि सोम॑ः क॒लशाँ॒
असि॑ष्यद॒दत्यो॒ न वोळ्हा॑ र॒घुव॑र्तनि॒र्वृषा॑ ।

अथा॑ दे॒वाना॑मु॒भय॑स्य॒ जन्म॑नो
वि॒द्वाँ अ॑श्नोत्य॒मुत॑ इ॒तश्च॒ यत् ॥२॥

अच्छ॑ । हि । सोम॑ः । क॒लशा॑न् । असि॑स्यदत । अत्य॑ः । न । वोळ्हा॑ । र॒घुऽव॑र्तनिः । वृषा॑ । अथ॑ । दे॒वाना॑म् । उ॒भय॑स्य । जन्म॑नः । वि॒द्वान् । अ॒श्नो॒ति॒ । अ॒मुत॑ः इ॒तः । च॒ यत् ॥२॥

पदार्थः—(देवानां) कर्मयोगि-विज्ञानयोगिनोः (उभयस्य) द्वयोः (जन्मनः) ज्ञानकर्मणोः (विद्वान्) ज्ञाता (सोमः) सौम्यस्वभावः परमात्मा (कलशान्) तदन्तःकरणानि (अत्यः) शीघ्रगा (वोल्हा न) विद्युदिव (अच्छा सिस्यन्दत) सम्यक् सिञ्चनं करोति । स परमेश्वरः (रघुवर्तनिः) सूक्ष्मादपि सूक्ष्मतरोऽस्ति । अथ च (वृषा) सर्वाभीष्टदायकोऽस्ति योजन्मनि (अमुतः) इहजन्मनि तन्महत्वं विजानाति स पुरुषः (अश्नोति) ब्रह्मानन्दं भुनक्ति । (अथ च यत्) योह्यानन्दः (इतः) अमुष्मात् ज्ञानयोगात् लभ्यते स खलु नान्यसाधनेन प्राप्यते जनैः ॥

पदार्थ—(देवानां) कर्म्मयोगी और विज्ञानयोगी आदि जो विद्वान हैं, उनके (उभयस्य) दोनों (जन्मनः) ज्ञान और कर्म्मको (विद्वान्) जानता हुआ (सोमः) सौम्यस्वभाव परमात्मा (कलशान्) उनके अन्तःकरणोंको (अत्यः) अतिशीघ्रगामी (वोल्हा) विद्युतके (न) समान (अच्छा सिस्यन्दत्) भलिभांति सिञ्चन करता है । वह परमात्मा (रघुवर्तनिः) सूक्ष्मसे सूक्ष्म है । और (वृषा) सब कामनाओंका प्रदाता है जो पुरुष (अमुतः) इसी जन्ममें (उसके महत्वको जान लेता है, वह अश्नोति) ब्रह्मानन्दको भोगता है । (च) और (यत्) जो आनन्द (इतः) इसी ज्ञानयोगसे मिलता है अन्य किसी साधनसे नहीं ।

भावार्थ—मनुष्यको उन्नतिके लिये इस लोकमें ज्ञान और कर्म दो ही साधन हैं। इस लिये मनुष्यको चाहिये कि, वह इन दोनों मार्गोंका अवलम्बन करे ॥२॥

आ नः सोम पवमानः किरा
वस्विन्दो भव मघवा राधसो महः ।
शिक्षा वयोधो वसवे सु चेतुना
मा नो गयमारे अस्मत्परा सिचः ॥३॥

आ । नः । सोम । पवमानः । किर । वसु । इंदो इति । भव । मघऽवा । राधसः । महः । शिक्ष । वयःऽधः । वसवे । सु । चेतुना । मा । नः । गयं । आरे । अस्मान् । परा । सिच ।

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! भवान् (पवमानः) पवितास्ति । (इंन्दो) हे सर्वप्रकाशक ! त्वम् (नः) अस्मान् (वसु) सर्वविधं धनं (आकिर) देहि । (मघवा) सर्वधन स्वाम्यसि । अतोमह्यं (महोराधसः) उत्कृष्टधनस्य (भव) प्रदाता भव । हे परमेश्वर ! त्वं मह्यं (सुचेतुना) स्वियपवित्र ज्ञानेन (शिक्ष) शिक्षय । अथ च (वयोधः) त्वं सर्वैश्वर्य धारकोसि (वसवे) ऐश्वर्ययोग्याय ममैश्वर्यंदेहि । अथ च (गयं) धनं (अस्मादारे) मत्सकाशात (मापरासिचः) मान्यत्रकुरु ।

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! (पवमानः) आप सबको पवित्र करने वाले हैं । (इन्दो) हे सर्वप्रकाशक ! आप (नः) हमको (वसु) सब प्रकारके धनको (आकिर) दें । (मघवा) आप सब ऐश्वर्य

के स्वामी हैं । इस लिये हमारे (महो राधसः) अत्यन्त धनको (भव) प्रदाता बनें रहें परमात्मन ! आप हमको अपने (सुचेतुना) पवित्रज्ञानसे (शिक्ष) शिक्षा दें । और (वयोध) आप सब प्रकारके ऐश्वर्यौंको धारण करनेवाले हैं । (वसवे) ऐश्वर्यके पात्र मेरे लिये आप ऐश्वर्य प्रदान करें । और (मयं) धनको (अस्मदारे) हमसे (मापरासिचः) मत दूर करें ।

भावार्थ—ईश्वरोपासकोंको चाहिये, कि ईश्वरकी प्राप्तिके हेतु ईश्वरके परम ऐश्वर्यका कदापि त्याग न करें । और ईश्वरसे भी सदा यही प्रार्थना करें कि हे परमेश्वर ! आप हमको ऐश्वर्यसे कदापि वियुक्त न करें ॥३॥

आ नः पूषा पवमानः सुरातयो
मित्रो गच्छन्तु वरुणः सजोषसः ।
बृहस्पतिर्मरुतो वायुरश्विना त्वष्टा
सविता सुयमा सरस्वती ॥४॥

आ । नः । पूषा । पवमानः । सुऽरातयः । मित्रः । गच्छंतु । वरुणः । सऽजोषसः । बृहस्पतिः । मरुतः । वायुः । अश्विना । त्वष्टा । सविता । सुऽयमा । सरस्वती ॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (नः) अस्मान् (पूषा) धर्मोपदेशेन पुष्टिकारकोविद्वान् (पवमानः) पथ्यापथ्यमुक्त्वा पवित्रकारकोमनीषी (सुरातयः) दानशीलः (मित्रः) सर्वप्रियः (वरुणः) सर्ववशकारकः (बृहस्पतिः) वाक्पतिः (मरुतः) ज्ञानयोगी (वायुः) कर्मयोगी (अश्विना) कर्मयोगिज्ञानयोगिनावुभावपि (त्वष्टा) कार्यकरणे समर्थौ (सविता) उत्तमोत्तम-

पदार्थ निर्मातारौ। (सुयमा) सर्वनियामकौ (सरस्वती) ज्ञान-भूषकौ विद्वांसौ (आगच्छन्तु) प्राप्नुतः छान्दसत्वात् "व्यत्ययेन द्विवचन स्थाने बहुवचनम्" ॥

पदार्थ—हे परमात्मन्! (नः) हमको (पूषा) धर्म्मोपदेश द्वारा पुष्टि करने वाला विद्वान् (पवमानः) पथ्यापथ्य बताकर पवित्र करने वाला विद्वान् (सुरातयः) दानशीलविद्वान् (मित्रः) सबसे मैत्री करने वाला विद्वान् (वरुणः) सबको वशीभूत करने वाला विद्वान् (बृहस्पतिः) वाणियोंके पति (मरुतः) ज्ञानयोगी (वायुः) कर्म्मयोगी (अश्विना) कर्म्म और ज्ञानयोगी दोनों (त्वष्टा) कार्य्य करनेमें समर्थ विद्वान् (सविता) उत्तमोत्तमपदार्थोंका निर्माता विद्वान् (सुयमा) सबको नियममें रखनेवाला विद्वान् (सरस्वती) ज्ञानको सर्वोपरि भूषणरूपसे धारण करने वाला विद्वान् ये सब पूर्वोक्त विद्वान् (नः) हमको (आगच्छन्तु) प्राप्त हों।

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करता है, कि हे मनुष्यो! तुम सामाजिकउन्नतिके लिये पूर्वोक्त विद्वानोंका संग्रह करो। ताकि तुम सब विद्याओंमें निपुण होकर संसारमें अभ्युदयशाली बनो ॥४॥

उभे द्यावा पृथिवी विश्वमिन्वे
अर्यमा देवो अदितिर्विधाता।
भगो नृशंस उर्व१न्तरिक्षं विश्वे
देवाः पवमानञ्जुषन्त ॥५॥६॥

उभे इति। द्यावापृथिवी इति। विश्वमिन्वे इति। विश्वम्ऽइन्वे। अर्यमा। देवः। अदितिः। विऽधाता। भगः। नृऽशंसः। उरु। अंतरिक्षं। विश्वे। देवाः। पवमानं। जुषंत ॥५॥

पदार्थः—(पवमानं) सर्वपावकं परमात्मानं (उभे द्यावा पृथिवी) द्वावपि द्युलोक-पृथ्वीलोकौ (विश्वमिन्वे) यौ विस्तार रूपेण व्याप्तौ वर्तेते । (अर्यमादेवः) तथा न्यायकारिणो राजानः (अदितिः) तथा अज्ञानखण्डनकर्त्तारो विद्वाँसः (विधाता) अखिल-नियमनिर्मातारः (भगः) ऐश्वर्यवन्तः (नृशंसः) पदार्थगुण-वर्णकाः (उर्वन्तरिक्षं) अन्तरिक्षविद्यावेत्तारः (विश्वे देवाः) इमे सर्वे देवाः (जुषन्त) सेवन्ते ॥

पदार्थ—(पवमाने) सबको पवित्र करने वाले परमात्माको (उभे द्यावा पृथिवी) पृथिवीलोक और द्युलोक (विश्वमिन्वे) जो विस्तृत रूपसे व्याप्त है (अर्यमादेवः) और न्याय करने वाला राजा (अदितिः) अज्ञानका खण्डन करने वाला विद्वान् (विधाता) सब नियमोंका विधान करने वाला (भगः) ऐश्वर्यसम्पन्न (नृशंसः) पदार्थोंके गुणोंका वर्णन करने वाला (उर्वन्तरिक्षं) अन्तरिक्षकी विशाल विद्याको जानने वाला (विश्वे देवाः) ये सब देव (जुषन्त) सेवन करते हैं ।

भावार्थ—परमात्माकी विभूति द्युलोक पृथिवीलोक अन्तरिक्ष लोक ये सब लोक-लोकान्तर है ! और इन सब लोकलाकान्तरोंके ज्ञाता विद्वान् भी परमात्मा की विभूति हैं ॥५॥

इत्येकाशीतितमं सूक्तं षष्ठो वर्गश्च समाप्तः ।

यह ८१वां सूक्त औ ६वां वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ पञ्चर्चस्य द्व्यशीतितमस्य-

१-५ वसुर्भारद्वाज ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥
छन्दः-१, ४ विराड्जगती । २ निचृज्जगती ।
३ जगती । ५ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः-१-४
निषादः ५ धैवतः ॥

असावि सोमो अरुषो वृषा हरी
राजेव दस्मो अभि गा अचिक्रदत् ।
पुनानो वारं पर्येत्यव्ययं श्येनो
न योनिं घृतवन्तमासदम् ॥ १ ॥

असावि । सोमः । अरुषः । वृषा । हरिः । राजाऽइव । दस्मः । अभि । गाः । अचिक्रदत् । पुनानः । वारं । परि । एति । अव्ययं । श्येनः । न । योनिं । घृतऽवंत । आऽसदं ।

पदार्थः—(सोमः) यः सर्वोत्पादकः परमात्मा (अरुषः) प्रकाशस्वरूपः (वृषा) सद्गुणानां वृष्टिकर्ता (हरिः) पापनाशकश्चास्ति । स (राजेव) राजतुल्यः (दस्मः) दर्शनीयोऽस्ति । स च (गाः) लोकलोकान्तराणाञ्चतुर्दिक्षु (अभि अचिक्रदत्) शब्दायमानो भवति । स (वारं) वरणीयपुरुषं यो दृढभक्तोऽस्ति तं (पुनानः) पवित्रयन् (पर्य्येति) प्राप्नोति (न) येन प्रकारेण (श्येनः) विद्युत् (घृतवन्तं) स्नेहवन्तं (आसदं) स्थानानां (योनिं) समाश्रितं प्राप्नोति । एवमुक्तगुणयुक्तः परमात्मा [असावि] निर्ममे ॥

पदार्थ—(सोमः) जो सर्वोत्पादक (अरुषः) प्रकाश स्वरूप (वृषा) सद्गुणोंकी वृष्टि करनेवाला (हरिः) पापोंके हरण करनेवाला है, वह (राजेव) राजाके समान (दस्मः) दर्शनीय है। और वह (गाः) पृथिव्यादि लोकलोकान्तरोंके चारो ओर (अभि अचिक्रदत्) शब्दायमान हो रहा है। वह (वारं) वरणीयपुरुषको जो (अव्ययं) दृढ़भक्त है उसको (पुनानः) पवित्र करता हुआ (पर्य्येति) प्राप्त होता है। (न) जिसप्रकार (श्येनः) विद्युत् (घृतवन्तं) स्नेहवाले (आसदं) स्थानोंको (योनिं) आधार बनाकर प्राप्त होता है। इसी प्रकार उक्तगुणवाला परमात्माने (असावि) इस ब्रह्माण्डको उत्पन्न किया।

भावार्थ—"सुते चराचरं जगदिति सोमः" जो इस चराचर ब्रह्माण्डको उत्पन्न करता है उसका नाम सोम है। यह शब्द षूङ् प्राणिगर्भविमोचनेसे सिद्ध होता है। और उसी धातुसे असावियत् प्रयोग है। जिसके अर्थ किसी वस्तुको उत्पन्न करनेके हैं। और सायणाचार्य्यने जो इसके अर्थ सोमके कूटेजानेके किये हैं वह कदापि ठीक नहीं हो सकते क्योंकि सोम तो यहाँ कर्त्ता है कर्म्म नहीं। और यदि कोई यह कहे कि यहाँ कर्म्ममें प्रत्यय है तो सोममें तृतीया क्यों नहीं तो इसका उत्तर यह है कि यह वैदिक प्रयोग है॥१॥

कविर्वे॒धस्या॒ पर्ये॑षि॒ माहि॑न॒मत्यो॒
न मृ॒ष्टो अ॒भि वाज॑मर्षसि।
अ॒प॒सेध॑न्दुरि॒ता सो॑म मृळय
घृ॒तं वसा॑नः॒ परि॑ यासि नि॒र्णिज॑म्॥२॥

क॒विः। वे॒ध॒स्या। परि॑। ए॒षि॒। माहि॑नम्। अत्यः॑। न।
मृ॒ष्टः। अ॒भि। वाज॑म्। अ॒र्ष॒सि॒। अ॒प॒ऽसेध॑न्। दुः॒ऽइ॒ता।
सो॒म॒। मृ॒ळ॒य॒। घृ॒तम्। वसा॑नः। परि॑। या॒सि॒। निः॒ऽनिज॑म्॥२॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (वेधस्या) उपदेष्टुमिच्छया भवान् (माहिनं) महापुरुषान् (पर्येषि) प्राप्नोति अथच त्वम् (अत्यो, न) अतिगत्वरपदार्थ इव (अभिवाजं) मदाध्यात्मिकं यज्ञं (अभ्यर्षसि) प्राप्नोषि। त्वं (कविः) सर्वज्ञोसि (मृष्टः) तथा शुद्धस्वरूपोसि। (दुरिता) मदीयदुष्कृतानि अपसेधन् विदूरं कृत्वा (सोम) हे परमात्मन् ! (मृळय) मां सुखय अथ च (घृतं वसानः) प्रेमभावमुत्पादयन् (निर्निजं) पवित्रताम् (परियासि) उत्पादयसि ॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (वेधस्या) उपदेश करनेकी इच्छासे आप (माहिनं) महापुरुषोंको (पर्येषि) प्राप्त होतेहो। और आप (अत्यः) अत्यन्तगतिशील पदार्थके (न) समान (अभिवाजं) हमारे अध्यात्मिक यज्ञको (अभ्यर्षसि) प्राप्त होते हैं। आप (कविः) सर्वज्ञ हैं (मृष्टः) शुद्धस्वरूप हैं (दुरिता) हमारे पापोंको (आपसेधन्) दूर करके (सोम) हे सोम ! (मृळय) आप हमको सुख दें। और (घृतं वसानः) प्रेमभावको उत्पन्न करते हुए (निर्निजं) पवित्रताको (परियासि) उत्पन्न करें।

भावार्थ—इस मन्त्रमें सर्वज्ञ परमात्मासे यह प्रार्थना है कि हे परमात्मन् ! आप हमको शुद्ध करें। और सबप्रकारके सुख प्रदान करें। यहाँ सोमके लिये कवि शब्द आया है। सायणके मतमें यहां सोमलता को ही कवि=सर्वज्ञ कथन किया गया है। वास्तवमें वेदोंमें कवि शब्द जड़के लिये कहीं भी नहीं आता। इतनाही नहीं किन्तु "कविर्मनीषी, परिभूःस्वयम्भू य० ४०८ इत्यादि वाक्योंमें कवि शब्द परमात्माके लिये आया है इसप्रकार उक्त मन्त्रमें कवि शब्दसे परमात्माका ग्रहण करना चाहिये जड़ सोमका नहीं ॥ २ ॥

पर्जन्यः पिता महिषस्य पर्णिनो नाभा पृथिव्या गिरिषु क्षयं दधे।

स्वसा॑र आपो॑ अभि गा उतास॑रन्त्सं
ग्रावा॑भिर्नसते वीते॑ अ॑ध्वरे ॥३॥

पर्जन्य॑ः । पिता । महि॒षस्य॑ । पर्णिन॑ः । नाभा॑ । पृथि॒व्याः ।
गिरि॑षु । क्षयं॑ । द॒धे । स्वसा॑रः । आप॑ः । अ॒भि । गाः ।
उ॒त । अ॒सर॒न् । सं । ग्राव॑ऽभिः । न॒स॒ते । वी॒ते । अ॒ध्व॒रे ॥३॥

पदार्थः—(वीते अध्वरे) पवित्रेषु यज्ञेषु (ग्रावभिः) रक्षया भवान् (नसते) प्राप्तो भवति (उत) अथ च (गाः) पृथिव्यादि लोकलोकान्तरेषु (अभिसरन्) गच्छन् (आपः) सर्वव्यापको भवान् (स्वसारः) स्वयं गतिशीलः सन् विराजमानो भवति। कथं भूतो भवान् (पर्जन्यः) सर्वतर्पकोस्ति अथ च (पिता) सर्वरक्षकोस्ति। तथा (महिषस्य पर्णिनः) महागतिशीलपदार्थानां नियन्तास्ति अथच (पृथिव्या, नाभा) पृथिव्यादिलोकलोकान्तराणां केन्द्रोभूत्वा (गिरिषु) सकलपदार्थेषु (क्षयं दधे) रक्षामुत्पादयति ॥

पदार्थ—(वीते अध्वरे) पवित्र यज्ञोंमें (ग्रावभिः) रक्षासे आप (नसते) प्राप्त होते हैं। और (उत) और (गाः) पृथिव्यादि लोकलोकान्तरों में (अभिसरन्) गति करते हुए। (आपः) सर्वव्यापक आप (स्वसारः) स्वयंगतिशील होकर विराजमान होते हैं। आप कैसे हैं (पर्जन्यः) सबके तर्पक हैं और (पिता) सबके रक्षक हैं और (महिषस्य पर्णिनः) बड़ेसे बड़े गतिशीलपदार्थोंके नियन्ता हैं और (पृथिव्या, नाभा) पृथिव्यादि लोकलोकान्तरोंके केन्द्र होकर (गिरिषु) सब पदार्थोंमें (क्षयं दधे) रक्षाको उत्पन्न करते हैं।

भावार्थ—परमात्मा इस चराचर ब्रह्माण्डका उत्पादक है । और पर्जन्यके समान सबका तृप्तिकारक है । उसीपरमात्मासे सब प्रकारकी शान्ति रक्षा उत्पन्न होती है ॥ ३ ॥

अथ परमात्माशीलमुपदिशति ।

अब परमात्मा सदाचारका उपदेश करता है ।

जायेव पत्यावधि शेव मंहसे
पज्राया गर्भ शृणुहि ब्रवीमिते ।
अन्तर्वाणीषु प्र चरा सु
जीवसेऽनिन्द्यो वृजने सोम जागृहि ॥४॥

जायाऽइव । पत्यौ । अधि । शेव । मंहसे । पज्रायाः । गर्भ । शृणुहि । ब्रवीमि । ते । अंतः । वाणीषु । प्र । चर । सु । जीवसे । अनिन्द्यः । वृजने । सोम । जागृहि ॥४॥

पदार्थः—(गर्भ) गृह्णातीति गर्भः, हे सद्गुणग्राहिन् जीवात्मन् ! (ते) त्वां (ब्रवीमि) कथयामि । त्वं (शृणुहि) शृणु (पज्रायाः) यथा पृथिव्याः (पत्यौ, अधि) पर्जन्यरूपपत्यौ अतिप्रीतिर्भवति । (जायाइव) यथा साध्वी स्त्री स्वपतिं प्रीणयति तथा सर्वाभिः स्त्रीभिः कर्तव्यम् एवं कृते (शेव मंहसे) प्रत्यधिकारिभ्यः सुखप्राप्तिर्भवति । (अनिन्द्यः) सर्वदोषपरित्यक्तः (वृजने) स्वलक्ष्येषु सावधानी भूय (सोम) हे सौम्यस्वभाव जीवात्मन् ! (जागृहि) जागृहि । अथ च (अन्तर्वाणिषु) विद्यारूपवाणीषु

(प्रचरासु) सर्वत्रव्याप्तासु (जीवसे) स्वजीवनाय (प्रचर) प्रकर्षेण जागृहि ॥

पदार्थ—(गर्भ) हे गर्भ ! गृह्णातीति गर्भ हे सद्गुणोंके ग्रहण करने वाले जीवात्मन् ! (ते) तुमको (ब्रवीमि) मैं कहता हूँ कि (शृणुहि) तुम सुनो । (पत्न्यायाः) जिसप्रकार पृथिवीकी (पत्यौ, अधि) पर्जन्यरूप पतिमें अत्यन्त प्रीति होती है (जाया इव) जैसे कि सदाचारिणी स्त्रीकी अपने पतिमें प्रीति होती है । वैसेही सब स्त्रियोंको अपने २ पतियोंमें प्रीति करनी चाहिए । ऐसा करने पर (मंहसे) प्रत्येक अधिकारीके लिये सुखकी प्राप्ति होती है । (अनिन्द्यः) सब दोषोंसे दूर होकर (वृजने) अपने ल... में सावधान होकर (सोम) हे सोमस्वभाव जीवात्मन् ! (जागृहि) तुम जागो । और (अन्तर्वाणीषु) विद्यारूपी वाणीमें (प्रचरासु) जो सबमें प्रचार पाने योग्य है उसमें (जीवसे) अपने जीनेके लिये जागृतिको धारण करो ॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करता है कि हे जीव ! तुमको अपने कर्त्तव्यमें सदैव जागृत रहना चाहिये । जो पुरुष अपने कर्त्तव्यमें नहीं जागता उसका संसारमें जीना निष्फल है । यहां सोम शब्दके अर्थ जीवात्माके हैं । जैसे कि "स्याच्चैकस्य ब्रह्मशब्दवत्" ब्र० सू० २।३।५॥ यहां ब्रह्मसूत्रके अनुसार प्रकरण भेदसे अर्थका भेद हो जाता है इसी प्रकार यहां शिक्षा देनेके प्रकरणसे सोम नाम जीवात्माका है ॥ ४ ॥

यथा पूर्वेभ्यः शतसा अमृध्रः सहस्रसाः
पर्यया वाजमिन्दो ।
एवा पवस्व सुविताय नव्यसे
तव व्रतमन्वापः सचन्ते ॥५॥७॥

यथा । पूर्वेभ्यः । शतऽसाः । अमृध्रः । सहस्रऽसाः । परि-

ऽअयाः । वाजं । इंदो इति । एव । पवस्व । सुवितायं । नव्यसे । तवं । व्रतं । अनुं । आपंः । सचंते ॥५॥

पदार्थः—(इन्दो) हे जीवात्मन् (यथा) येन प्रकारेण (पूर्वेभ्यः) पूर्वजन्मभ्यः (शतसाः) शतशः तथा (सहस्रसाः) सहस्रशः (वाजं) बलानि (पर्ययाः) त्वं प्राप्नोषि (एव) इत्थं (नव्यसे) अस्मै नव्यजन्मने (सुविताय) अभ्युदयाय (तव व्रतं) भवद्व्रतं (अन्वापः) सत्कर्म (सचंते) सङ्गतं भवति अतस्त्वं (पवस्व) पवित्रय ॥

पदार्थ—(इन्दो) हे जीवात्मन्! (यथा) जैसे (पूर्वेभ्यः) पूर्वजन्मोंके लिये (शतसाः) सैकड़ों (सहस्रसाः) हजारों प्रकारके (वाजं) बलोंको (पर्ययाः) तुम प्राप्त हुए (एवा) इसी प्रकार (नव्यसे) इस नवीन जन्मके लिये (सुविताय) अभ्युदयार्थ (तव व्रतं) तुम्हारे व्रतको (अनु आपः) सत्कर्म्म (सचंते) सङ्गत हों। इसलिये आप (पवस्व) पवित्र करें ॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करता है कि हे जीवो! तुम्हारे पूर्व जन्म बहुत व्यतीत हुए हैं तुम इस नूतन जन्ममें सत्कर्म करके अभ्युदयशाली और तेजस्वी बनो। यहां पूर्व और उत्तर जन्मोंका कथन सृष्टिको प्रवाहरूपसे अनादि मानकर है। और यही भाव 'सूर्याचन्द्रमसौ धाता। यथा पूर्वमकल्पयत्" इस मन्त्रमें वर्णन किया गया है ॥५॥

इति त्र्यशीतितमं सूक्तं सप्तमो वर्गश्च समाप्तः।

यह ८३ वां सूक्त और ७ वां वर्ग समाप्त हुआ।

अथ पञ्चर्चस्य चतुरशीतितमस्य सूक्तस्य–

१—५ पवित्र ऋषिः ॥ पवमानः ॥ सोमो देवता ॥
छन्दः–१, ४ निचृज्जगती । २, ५ विराड्जगती ।
३ जगती ॥ निषादः स्वरः ॥

अथ तितिक्षोपदिश्यते ।

पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते
प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः ।
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते
शृतास इद्वहन्तस्तत्समाशत ॥१॥

पवित्रं । ते । विऽततं । ब्रह्मणः । पते । प्रऽभुः । गात्राणि । परि । एषि । विश्वतः । अतप्तऽतनूः । न । तत् । आमः । अश्नुते । शृतासः । इत् । वहन्तः । तत् । सं । आशत ॥१॥

पदार्थः—(ब्रह्मणस्पते) हे वेदपते परमात्मन् ! (ते) तावकं स्वरूपं (पवित्रं) पूतमस्ति । अथ च (विततं) विस्तृतमपि वर्तते । भवान् (प्रभुः) सर्वेषां स्वामी । तथा (विश्वतः, गात्राणि) सकलमूर्तपदार्थानां (पर्येषि) परितो व्यापकोस्ति। अथ च (अतप्ततनूः) योहि तपो रहितोसि (तदामः) स अपरिपक्वबुद्धिस्तवानन्दं (नाश्नुते) न भोक्तुं शक्नोति । (शृतास इत्) तपस्वीजन एव (वहन्तः) त्वां प्राप्स्यान्ति । ते (तत) भवदानन्दं (समासत) भोक्ष्यन्ति ।

पदार्थ—(ब्रह्मणस्पते) हे वेदोंके पति परमात्मन् ! (ते) तुम्हारा स्वरूप (पवित्रं) पवित्र है । और (विततं) विस्तृत है । (प्रभुः) आप सबके स्वामी हैं । और (विश्वतः, गात्राणि) सब मूर्तपदार्थोंके (पर्येषि) चारों ओर व्यापक हैं । (अतप्ततनूः) जिसने अपने शरीरसे तप नहीं किया (तदामः) वह पुरुष कचा है । वह तुम्हारे आनन्दको (न अश्नुते) नहीं भोग सकता (शृतास इत्) अनुष्ठानीपुरुषही (वहन्तः) तुमको प्राप्त हो सकते हैं । वे (तत्) तुम्हारे आनन्दको (समाशत) भोग सकते हैं ।

भावार्थ—इस मन्त्रमें तपका वर्णन स्पष्टरीतिसे किया गया है । जो लोग तपस्वी हैं वेही परमात्माको प्राप्त हो सकते हैं अन्य नहीं । यहां शरीरका तप एक उपलक्षणमात्र है । वास्तवमें आध्यात्मिकादि सबप्रकारके तपोंका यहां ग्रहण है ॥ १ ॥

तपोष्पवित्रं विततं दिवस्पदे
शोचन्तो अस्य तन्तवो व्यस्थिरन् ।
अवन्त्यस्य पवीतारमाशवो
दिवस्पृष्ठमधि तिष्ठन्ति चेतसा ॥२॥

तपोः । पवित्रं । विऽततं । दिवः । पदे । शोचन्तः । अस्य । तन्तवः । वि । अस्थिरन् । अवन्ति । अस्य । पवितारं । आशवः । दिवः । पृष्ठं । अधि । तिष्ठन्ति । चेतसा ॥२॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! (दिवस्पदे) द्युलोके भवतः (तपोः) तपः कर्म (पवित्रं) पूतं (विततं) विस्तृतं पदंविराजते । (अस्य) तस्य पदस्य (शोचन्तः) दीप्तिशालिनः (तन्तवः) किरणाः (व्यस्थिरन्) स्थिराः सन्ति । (अस्य) अमुष्य पदस्य

(पवितारं) उपासकं (आशवः) अस्य पदस्यानन्दं (अवन्ति) रक्षन्ति । उक्तपदोपासकाः (दिवस्पृष्ठमधि) द्युलोकशिखरे (चेतसा) स्वबुद्धिबलेन (तिष्ठन्ति) निवसन्ति ।

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (दिवस्पदे) द्युलोकमें आपका (तपोः) तपोरूपी (पवित्रं) पवित्र (विततं) विस्तृतपद विराजमान है । (अस्य) उस पदकी (तन्तवः) किरणें (शोचन्तः) दीप्तिवाली (व्यवास्थिरन्) स्थिर हैं । (अस्य) इस पदके (पवितारं) उपासकको (आशवः) इस पदके आनन्द (अवन्ति) रक्षा करते हैं । उक्तपदके उपासक (दिवस्पृष्ठमधि) द्युलोकके शिखर पर (चेतसा) अपने बुद्धिबलसे (तिष्ठन्ति) स्थिर होते हैं ।

भावार्थ—इस मन्त्र में परमात्मा ने इस बात का उपदेश किया है कि संसार में तपही सर्वोपरि है । जो लोग तपस्वी हैं वे सर्वोपरि उच्च पद को ग्रहण करते हैं । इस लिए हे मनुष्यो ! तुम तपस्वी बनो ॥२॥

अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा
बिभर्ति भुवनानि वाजयुः ।
मायाविनो ममिरे अस्य मायया
नृचक्षसः पितरो गर्भमा दधुः ॥३॥

अरूरुचत् । उषसः । पृश्निः । अग्रियः । उक्षा । बिभर्ति । भुवनानि । वाजऽयुः । मायाऽविनः । ममिरे । अस्य । मायया । नृऽचक्षसः । पितरः । गर्भं । आ । दधुः ॥३॥

पदार्थः—पूर्वोक्तपरमात्मा (उषसः) रवेः प्रभामण्डलम् (अरूरुचत) प्रकाशयते । अथच प्राश्नुते सर्वमिति (पृश्निः)

प्रलयकारकः (उक्षा) महान् परमेश्वरः (भुवनानि) सर्वान्लोकान् (बिभर्ति) पुष्णाति । तथा स जगदीश्वरः (वाजयुः) सकलबलाधारोस्ति । (अस्य) अमुष्य परमात्मनः (मायया) शक्त्या (मायाविनोममिरे) मायिनोम्रियन्ते । (नृचक्षसः) स सर्वज्ञईश्वरः (पितरः) सर्वोत्पादकाः (गर्भ) संसाररूपगर्भमिमं (आदधुः) दधाति ।

पदार्थ—पूर्वोक्तपरमात्मा (उषसः) सूर्य्यके प्रभामण्डलको (अरूरुचत्) वह प्रकाश करताहै । और (पृश्निः) प्राश्नुते सर्वमितिपृश्निः, प्रलयकाल में जो सबको भक्षण करे उसका नाम पृश्निहै । (उक्षा) उक्षतीतिउक्षा इति महन्नामसुपठितम्–नि. रु. ३—१३—३ । जो इस सम्पूर्णसंसार को अपने प्रेमवारि से सिञ्चित करे उस महान पुरुषका नाम उक्षा है । (भुवनानि बिभर्ति) वह सब भुवनों का भरणपोषण करता है । (वाजयुः) सब बलों का आधार है । (अस्य मायया) उसकी शक्ति से (मायाविनो ममिरे) मायावीलोक मर जातेहैं । (नृचक्षसः) वह सर्वज्ञ (पितरः) सबको उत्पन्न करनेवाला (गर्भ) इस संसाररूपी गर्भको (आदधुः) धारण करता है ।

भावार्थ—इस मन्त्र में परमात्माके स्वरूपका वर्णनहै कि वह प्रकाशस्वरूप है । और लोकलोकान्तरों का अधिष्ठान है । सब बलोंका केन्द्र है और सब मायावियों की माया को मर्द्दन करनेवाला है । तात्पर्य्य यह है कि उसी पूर्ण पुरुषकी उपासना से पुरुष तपस्वी बन सकताहै ॥३॥

गन्धर्व इत्था पदमस्य रक्षति
पाति देवानां जनिमान्यद्भुतः
गृभ्णाति रिपुं निधया निधापतिः
सुकृत्तमा मधुनो भक्षमाशत ॥४॥

गंधर्वः । इत्था । पदं । अस्य । रक्षति । पाति । देवानां । जनिमानि । अद्भुतः । गृभ्णाति । रिपुं । निऽधया । निधाऽपतिः । सुकृत्ऽतमाः । मधुनः । भक्षं । आशत ॥४॥

पदार्थः—(गन्धर्वः) गांधरतीति गन्धर्वः पृथिव्यादि लोक-लोकान्तराणांधारकः (इत्था) अयंसत्यनामसु पठितो निरुक्ते ३।१३।१०। सत्यस्वरूपः परमात्मा (देवानां जनिमानि) विदुषांजन्मानि (रक्षति) गोपायति । स परमेश्वरः (अद्भुतः) महानस्ति अद्भुत इति महन्नामसु पठितंनिरुक्ते ३।१३।१३ (निधापतिः) सर्वशक्तीनांस्वामी (निधया) स्वशक्त्या (रिपुं) स्वानुकूलशक्तिं (गृभ्णाति) स्वाधीनंकरोति । (अस्य) अमुष्य (मधुनः) आनन्दमयस्य परमात्मनः (पदं) पदं (सुकृत्तमाः) सुकृतितराः पुरुषाः (भक्षं) भोगयोग्यं विधाय (आशत) तिष्ठन्ति । तथापूर्वोक्तानुपासकान् (पाति) रक्षति ॥

पदार्थ—(गांधरतीतिगन्धर्वः) जो पृथिव्यादि लोकलोकान्तरों को धारण करे उसका नाम यहां गन्धर्व है। (इत्था) इति सत्यनामसुपठितं नि. रू. ३—१३—१० । वह सत्यरूप परमात्मा (देवानां जनिमानि) विद्वानोंके जन्म की (रक्षति) रक्षा करता है। (अद्भुतः) बड़ा है अद्भुतइति महन्नासुपठितं नि. रू. ३—१३—१३ (निधापतिः) सब शक्तियों का पति (निधया) अपनी शक्ति से (रिपुं) अपने से प्रतिकूल शक्तिवाले शत्रुको (गृभ्णाति) स्वाधीन करता है। (अस्यमधुनः पदं) इस आनन्दमयपरमात्मा के पदको (सुकृत्तमाः) पुण्यात्मालोग (भक्षं) भोग्य बना कर (आशत) स्थिर होते हैं। और उक्त उपासकों की (पाति) रक्षा करता है।

भावार्थ-(तद्विष्णोः परमंपदं सदापश्यन्ति सूरयः) उस विष्णु के परमपद को सदा विद्वान् लोग देखते हैं । उसी व्यापक परमात्माके परमपदका इस मन्त्र में वर्णन किया है । कि उस परमपदके उपासक लोग ब्रह्मानन्द को भोगते हैं अन्य नहीं ॥४॥

हविर्हविष्मो महि सद्म दैव्यं
नभो वसानः परि यास्यध्वरम् ।
राजा पवित्ररथो वाजमारुहः
सहस्रभृष्टिर्जयसि श्रवो बृहत् ॥५॥

हविः । हविष्मः । महि । सद्म । दैव्यं । नभः । वसानः । परि । यासि । अध्वरं । राजा । पवित्रऽरथः । वाजं । आ । अरुहः । सहस्रऽभृष्टिः । जयसि । श्रवः । बृहत् ॥

पदार्थः—हे परमेश्वर ! (हविः) त्वंहविःस्वरूपोसि । अथच (हविष्मः) हविर्वानसि । (महि) महानसि । (दैव्यं) दिव्यस्वरूपवान् (नभः) विस्तृत आकाशः (सद्म) त्वदीयं-गृहमस्ति । अस्मिन्गृहे (वसानः) निवसन् (अध्वरं) अहिंसा-रूपं यज्ञं (परियासि) प्राप्नोषि । तथा (राजा) त्वंसर्वत्र विरा-जसे । अथच त्वं (पवित्ररथः) पूतगतिवान् (वाजमारुहः) सर्वविधबलधारकोसि । तथा (सहस्रभृष्टिः) नानाविधपवित्रतां-अदधत (बृहत्, श्रवः) सर्वोत्कृष्टयशोबिभ्रत् (जयसि) अखिला-न्जनान् विजयसे ॥

पदार्थ—हे परमात्मन् (हविः) आप हवि हैं । (हविष्मः) और

हविवाले हैं। (महि) बड़े हैं। (दैव्यं) दिव्यरूपवाला (नभः) यह विस्तृत आकाश (सद्मः) आप का गृह है। इसमें (वसानः) निवास करते हुए (अध्वरं) अहिंसारूप यज्ञको (परियासि) प्राप्त होते हैं। (राजा) आप सर्वत्र विराजमान हो रहे हैं। (पवित्ररथः) पवित्रगतिवाले (वाजमारूहः) सब प्रकारके बलों को धारण किये हुये हैं। (सहस्रभृष्टिः) अनन्त प्रकारकी पवित्रताओं को धारण किये हुये हैं (बृहत्श्रवः) सर्वोपरि यशको धारण किये हुये आप जयसि सबको जय करते हैं।

भावार्थ—इस मन्त्र में परमात्मा को सहस्रशक्तियोंवाला वर्णन किया है। जैसा कि सहस्र शीर्षापुरुष इस मन्त्र में वर्णन किया गया है। उस अनन्तशक्ति युक्त परमात्मा की उपासना करके जो पुरुष तपस्वी बनते हैं वे इस भवनिधि से पार होते हैं ॥५॥

इति त्र्यशीतितमंसूक्तमष्टमोवर्गश्च समाप्तः।

यह ८३ वां सूक्त और ८ वां वर्ग समाप्त हुआ।

अथ पञ्चर्चस्य चतुरशीतितमस्य सूक्तस्य—

१-५ प्रजापतिर्वाच्य ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥
छन्द—१, ३ विराड्जगती। ४ जगती। २
निचृत्त्रिष्टुप्। ५ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—
१,३,४ निषादः। २, ५ धैवतः ॥

पवस्व देवमादनो विचर्षणिरप्सा
इन्द्राय वरुणाय वायवे।
कृधी नो अद्य वरिवः स्वस्तिमदुरुक्षितौ
गृणीहि दैव्यं जनम् ॥१॥

पवस्व । देवऽमादनः । विऽचर्षणिः । अप्साः । इंद्राय । वरुणाय । वायवे । कृधि । नः । अद्य । वरिवः । स्वस्तिऽमत् । उरुऽक्षितौ । गृणीहि । दैव्यं । जनं ॥१॥

पदार्थः—(देवमादनः) विदुषामामोदकारकपरमात्मन् ! (विचर्षणिरप्साः) कर्मणांद्रष्टा (इन्द्राय) कर्मयोगिने (वरुणाय) विज्ञानिने (वायवे) ज्ञानयोगिने (पवस्व) त्वं पवित्रतांदेहि अथच (नः) अस्मान् (अद्य) अस्मिन्समये (वरिवः) धनिनः (कृधि) कुरु । तथा (स्वस्तिमत्) भवान् स्वकीयेन ज्ञानेन मामविनाशिनं करोतु । अथच (उरुक्षितौ) विस्तृतेऽस्मिन्भूगर्भे (जनं) अमुम्पुरुषं (दैव्यं) दिव्यं विधाय (गृणीहि) अनुगृह्णातु ॥

पदार्थ—(देवमादनः) हे विद्वानोंके आनन्दके वर्द्धकपरमात्मन् ! (विचर्षणिरप्सा) हे कर्म्मोंका द्रष्टा ! (इन्द्राय) कर्म्मयोगीके लिये (वरुणाय) विज्ञानीके लिये (वायवे) ज्ञानीके लिये (पवस्व) आप पवित्रता प्रदान करें । और (नः) हमको (अद्य) इस समये (वरिवः) धनयुक्त करें । और (उरुक्षितौ) इस विस्तृत भूमण्डलमें (जनं) इस जनको (दैव्यं) दिव्यबनाकर (गृणीहि) अनुग्रह करें ।

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! आप ज्ञानी विज्ञानी बनकर कर्म्मोंके नियन्ता देवसे यह प्रार्थना करो कि हे भगवन् ! आप अपने ज्ञानद्वारा हमको अविनाशी बनाएँ । और हमसे दरिद्रता मिटा कर आप हमको ऐश्वर्य्ययुक्त करें ॥१॥

आ यस्तस्थौ भुवनान्यमर्त्यो
विश्वानि सोमः परि तान्यर्षति ।

कृण्वन्त्सञ्चृतं विचृतमभिष्टय
इन्दुः सिषक्त्युषसं न सूर्यः ॥२॥

आ । यः । तस्थौ । भुवनानि । अमर्त्यः । विश्वानि । सोमः । परि । तानि । अर्षति । कृण्वन् । संऽचृतं । विऽचृतं । अभिष्टये । इंदुः । सिषक्ति । उषसं । न । सूर्यः ॥२॥

पदार्थः—(इन्दुः) प्रकाश-स्वरूपः परमेश्वरः (सूर्यः) भानुः (उषसं न) उषेव (सिषक्ति) संयुनक्ति । अथच (अभिष्टये) ऐश्वर्याय (संचृतं) प्रकाशयुतं तथा (विचृतं) अज्ञानशून्यं (कृण्वन्) कुर्वाणः (आतस्थौ) ममहृदयआगत्य विराजमानोभवतु (यः) यः परमेश्वरः (अमर्त्यः) मरणधर्मरहितोऽस्ति । तथा (विश्वानिभुवनानि) अखिललोकलोकान्तराणां (परि, अर्षति) चतुर्दिक्षुव्यापकोस्ति सः (सोमः) सौम्यस्वभावः परमात्मा अस्मान् रक्षतु ॥

पदार्थ—(इन्दुः) प्रकाशस्वरूप परमात्मा (सूर्य्यः) सूर्य्यके (उषसं) उषाके (न) समान (सिषक्ति) संयुक्त करता है । और अभिष्टये) ऐश्वर्य्य के लिये (संचृतं) प्रकाशों से संयुक्त और (विचृतं) अज्ञानोंसे रहित (कृण्वन्) करता हुआ (आतस्थौ) आकर हमारे हृदयमें विराजमानहो । (यः) जो परमात्मा (अमर्त्यः) अविनाशी है । और (विश्वानि भुवनानि) सब लोकलोकान्तरोंके (परि, अर्षति) चारों ओर व्यापक है । वह (सोमः) सोमगुणसम्पन्नपरमात्मा हमारी रक्षा करे ।

भावार्थ—इस मन्त्र में परमात्मा ने ज्ञानी विज्ञानी लोगों को सूर्य्यकी प्रभा के समान वर्णन किआ । तात्पर्य्य यह है कि ज्ञान विज्ञान-

द्वारा ही पुरुष तेजस्वी और सूर्य्यके समान प्रभाकर बन सकता है। अन्यथा नहीं ॥२॥

आ यो गोभिः सृज्यत
ओषधीष्वा देवानां सुम्न इषयन्नुपावसुः ।
आ विद्युता पवते धारया सुत
इन्द्रं सोमो मादयन्दैव्यं जनम् ॥३॥

आ । यः । गोभिः । सृज्यते । ओषधीषु । आ देवानां । सुम्ने । इषयन् । उपऽवसुः । आ । विऽद्युता । पवते । धारया । सुतः । इंद्रं । सोमः । मादयन् । दैव्यं । जनं ॥३॥

पदार्थः—(सोमः) जगदुत्पादकोजगदीश्वरः (दैव्यंजनं) दिव्यगुणं (इन्द्रं) कर्मयोगिनं (मादयन्) आनन्दयन् (उपावसुः) स्थिरोभवति। (यः) यः परमेश्वरः (गोभिः) पृथिव्यादिसूक्ष्मपञ्चतन्मात्रमारभ्य (ओषधिषु आ) ओषधिपर्यन्तं (आसृज्यते) सकलं ब्रह्माण्डं विरचयति। अथच (देवानां) विद्वज्जनानां (सुम्ने) सुखस्य (इषयन्) इच्छांकुर्वन् (विद्युता) विद्युद्रूपशक्त्यासर्वान् पवित्रयति। अथ यः परमेश्वरः (धारयासुतः) स्वयमानन्दमयोवरीवर्ति ॥

पदार्थ—(सोमः) परमात्मा (दैव्यंजनं) दिव्यगुणवाले (इन्द्रं) कर्मयोगीको (मादयन्) आनन्द करता हुआ (उपावसुः) स्थिर होताहै। (यः) जो परमात्मा (गोभिः) पृथिव्यादिकों की सूक्ष्म पञ्चतन्मात्रोंसे लेकर (ओषधिषुआ) ओषधियों तक (आसृज्यते) सब ब्रह्माण्डोंको

रचता है । और (देवानां) विद्वानों के (सुम्ने) सुखके लिये (इषयन्) इच्छा करता हुआ (विद्युता) विद्युत् रूपी शक्तिसे सबको पवित्र करताहै । और (धारयासुतः) सुधामय है ।

भावार्थ—जो विद्वान पुरुष ईश्वरीय विद्या को प्राप्त होकर संसार की रक्षा करना चाहते हैं परमात्मा उनके सुखकी सदैववृद्धि करता है ॥३॥

एष स्य सोमः पवते सहस्र-
जिद्धिन्वानो वाचमिषिरामुषर्बुधम् ।
इन्दुः समुद्रमुदियर्ति वायुभिरेन्द्रस्य
हार्दि कलशेषु सीदति ॥४॥

एषः । स्यः । सोमः । पवते । सहस्रऽजित् । हिन्वानः । वाचं । इषिरां । उषःऽबुधं । इंदुः । समुद्रं । उत् । इयर्ति । वायुऽभिः । आ । इंद्रस्य । हार्दि । कलशेषु । सीदति ॥४॥

पदार्थः—(सहस्रजित्) अनन्तशक्तिसम्पन्नः परमेश्वरो-विदुषां (इषिरां) ज्ञानप्रदां (वाचं) वाणीं (उषर्बुधं) याहि-ऊषाकालेप्रबोधयति तां (हिन्वानः) प्रेरयन् (पवते) पवित्रयति । (एषः स्यः सोमः) असावेषः सौम्यगुणसम्पन्नः परमेश्वरः (इन्दुः) प्रकाशस्वरूपोऽस्ति । अथच (समुद्रं) अन्तारिक्षं (उदियर्ति) वर्षणशीलंकरोति । तथा (वायुभिः) स्वीयज्ञानशक्तिभिः (इन्द्रस्य) ज्ञानयोगिनः (हार्दि) हृदयव्यापिनि (कलशेषु) हृदयाकाशे (सीदति) स्थिरो भवति ।

पदार्थ—(सहस्रजित्) अनन्तशक्तिसम्पन्न परमात्मा विद्वानोंकी (इषिरां) ज्ञानप्रद (वाचं) वाणीको (उषर्बुधं) जो उषाकालमें जगाने-वाली है। उसको (हिन्वानः) प्रेरणा करता हुआ (पवते) पवित्र बनाता है। (एष स्यः सोमः) वह परमात्मा (इन्दुः) प्रकाशस्वरूप है। और (समुद्रं) अन्तरिक्षको (उदियर्ति) वर्षणशील बनाता है। और (वायुभिः) अपनी ज्ञानरूपी शक्तियोंसे (इन्द्रस्य) ज्ञानयोगीके (हार्दि) हृदयव्यापी (कलशेषु) हृदय आकाशमें (सीदति) स्थिर होता है।

भावार्थ—"समुद्रमिति अन्तरिक्षनामसु पठितं" नि० रू० २।१० ।५॥ समुद्रवन्त्यस्मादाप इति समुद्रं" जिससे जलोंका प्रवाह बहे उसका नाम यहां समुद्र है। तात्पर्य यह है कि जिस परमात्माने अन्तरिक्षलोकको वर्षणशील और पृथ्वीलोकको दृढ़ताप्रदान की है। वह लोकलोकान्तरों का पति परमात्मा अपनी ज्ञानगतिसे कर्मयोगीके हृदयमें आकर विराज-मान होता है।

अभि त्यं गावः पर्यसा पयोवृधं
सोमं श्रीणन्ति मतिभिः स्वर्विदम् ।
धनञ्जयः पवते कृत्व्यो रसो
विप्रः कविः काव्येना स्वर्चनाः ॥५॥९॥

अभि । त्यं । गावः । पर्यसा । पयःऽवृधं । सोमं । श्रीणंति । मतिऽभिः । स्वःऽविदं । धनंऽजयः । पवते । कृत्व्यः । रसः । विप्रः । कविः । काव्येन । स्वःऽचनाः ॥५॥

पदार्थः—हे जगदीश ! (पयोवृधं) ज्ञानवृद्धो भवान् (त्यं) तं भवन्तं (गावः) इन्द्रियाणि (पयसा) ज्ञानद्वारा (अभि श्रीणन्ति) संसेवन्ते। अथ च (सोमं) सौम्यगुणसम्पन्नं

भवन्तं (स्वर्विदं) देवतानां लक्ष्यस्थानीयं त्वां (मतिभिः) ब्रह्मविषयिणीभिर्बुद्धिभिः (पवते) विद्वांसः साक्षात्कुर्वते । भवान् (धनञ्जयः) सकलधनजेतास्ति । तथा (कृत्व्यः) सर्वासांशक्तीनां केन्द्रस्वरूपो भवान् (रसः) आमोदरूपोऽस्ति अथ च (विप्रः) मेधाव्यस्ति । (कविः) सर्वज्ञोऽस्ति । (काव्येन स्वर्चनाः) स्वीयाखिलशक्त्या सर्वलोक-लोकान्तराणां प्रलयकर्तास्ति ॥

पदार्थ—हे परमात्मन्! (पयोवृधं) ज्ञानसे वृद्धिकोप्राप्त जो आप हैं (त्वा) उस आपको (गावः) इन्द्रियें (पयसा) ज्ञानद्वारा (अभिश्रीणन्ति) सेवन करतीं हैं । और (सोमं) सोमगुणविशिष्ट आपको (स्वर्विदं) जो आप देवताओंके लक्ष्यस्थानीय हैं आपको (मतिभिः) ब्रह्मविषयिणी बुद्धिद्वारा (पवते) विद्वानलोग साक्षात्कार करते हैं । (धनञ्जयः) आप धनञ्जय हैं । सम्पूर्ण धनोंके जेता हैं । (कृत्व्यः) सब शक्तियोंके केन्द्र हैं । (रसः) आनन्दरूप हैं । (विप्रः) मेधावी हैं । (कविः) सर्वज्ञ हैं । (काव्येन स्वर्चनाः) अपनी सर्वशक्तिसे सबलोक लोकान्तरोंके प्रलयकर्त्ता हैं ।

भावार्थ—जो परमात्मा पूर्वोक्तगुणोंसे सम्पन्न है । उसका ज्ञानयोगी अपने चित्तवृत्तिनिरोधरूपी योगद्वारा साक्षात्कार करते हैं ॥५॥

इति चतुरशीतितमं सूक्तं नवमोवर्गश्च समाप्तः ।

यह ८४ वां सूक्त और नवां वर्ग समाप्त हुआ ।

१–१२ वेनो भार्गव ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—
१, ५, ९, १० विराड्जगती । २, ७ निचृज्जगती । ३ जगती ।
४, ६ पादनिचृज्जगती । ८ आर्चीस्वराड्जगती । ११
भुरिक् त्रिष्टुप् । १२ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१–१०
निषादः । ११, १२ धैवतः ॥

इन्द्राय सोम सुषुतः परि
स्रवापामीवा भवतु रक्षसा सह ।
मा ते रसस्य मत्सत द्वयाविनो
द्रविणस्वन्त इह सन्त्विन्दवः ॥१॥

इन्द्राय । सोम । सुऽसुतः । परि । स्रव । अप । अमीवा । भवतु । रक्षसा । सह । मा । ते । रसस्य । मत्सत । द्वयाविनः । द्रविणस्वन्तः । इह । सन्तु । इन्दवः ॥१॥

पदार्थः—(इन्दवः) कर्मयोगिनोऽस्मिन्संसारे (द्रविणस्वन्तः) ऐश्वर्यवन्तो भूत्वा (इह) अस्मिन्नध्वरे (सन्तु) विराजन्ताम् । अथ च (द्वयाविनः) सत्यासत्याविवेकिनोमायाविपुरुषाः (ते रसस्य) भवदीयानन्दस्य (मा मत्सत) लाभं नाप्नुवन्तु । (सोम) हे जगत्स्रष्टः ! (इन्द्राय) कर्मयोगिने (सुषुतः) साक्षाद्भूतो भवान् (परिस्रव) ज्ञानद्वारा तदीयहृदयमागत्य विराजताम् । अथ च (रक्षसा सह) राक्षसैः कृताः कर्मयोगिनां (अमीवा) रोगाः (अप भवन्तु) दूरी भवन्तु ।

पदार्थ—(इन्दवः) कर्म्मयोगी इस संसारमें (द्रविणस्वंतः) ऐश्वर्यवाले होकर (इह) इस यज्ञमें (सन्तु) विराजमान हों । और (द्वयाविनः) झूठ सचका विवेक न करने वाले मायावि पुरुष (ते रसस्य) तुम्हारे आनन्दका (मा मत्सत) मत लाभ उठावें (सोम) हे जगत्कर्त्ता परमात्मन् ! (इन्द्राय) कर्म्मयोगीके लिये (सुषुतः) साक्षात्कारको प्राप्त हुए आप (परिस्रव) ज्ञानद्वारा उसके हृदयमें आकर विराजमान होवो । और (रक्षसा सह) राक्षसों करके किये हुए कर्म्मयोगियोंके रोगादिक (अपभवतु) दूर हों ।

भावार्थ—जो लोग सत्यासत्यमें विवेक नहीं कर सकते और असत्यको त्यागकर दृढ़तापूर्वक सत्यका ग्रहण नहीं कर सकते वे सदैव सत्यामृतके सागरमें गोते खाते रहते हैं। इसलिये मनुष्यको चाहिए कि वह सत्यासत्यका विवेक करके सत्यग्राही बनें ॥१॥

अस्मान्त्समर्ये पवमान चोदय
दक्षो देवानामसि हि प्रियो मदः ।
जहि शत्रूँरभ्या भन्दनायतः
पिबेन्द्र सोममव नो मृधो जहि ॥२॥

अस्मान् । सऽमर्ये । पवमान । चोदय । दक्षः । देवानां । असि । हि । प्रियः । मदः । जहि । शत्रून् । अभि । आ । भंदनाऽयतः । पिब । इन्द्र । सोमं । अव । नः । मृधः । जहि ॥२॥

पदार्थः—(पवमान) सर्वपवितः परमात्मन् ! त्वं (समर्ये) वैदिकाध्वरेषु (अस्मान्) नः (चोदय) प्रेरय । त्वं (देवानां) दिव्यगुणसम्पन्नानां विदुषां (दक्षोसि) प्रेरकोसि । (हि) यतः (प्रियो मदः) आनन्दस्य प्रियोस्ति भवान् (इन्द्र) ऐश्वर्यसम्पन्न (शत्रूञ्जहि) त्वमन्यायकारिशत्रून्नाशय । अथ च (अभ्या) सर्वथा महाप्राप्तोभव। (भन्दनायतः) उपासकस्य (सोमं) स्तवनं (पिब) भवान् गृह्णातु । तथा (नो मृधः) मम यज्ञेभ्यो विघ्नकारिणः (अवजहि) दूरय ।

पदार्थ—(पवमान) हे सबको पवित्र करनेवाले परमात्मन् ! (समर्ये) वैदिक यज्ञोंमें आप (अस्मान्) हमको (चोदय) प्रेरणा करें।

आप (देवानां) विद्वानोंके (दक्षोऽसि) प्रेरक हैं। (हि) क्योंकि (प्रियो मदः) आनन्दके प्यारे हैं। (शत्रूञ्जहि) आप अन्यायकारी शत्रुओंका नाश करें। और (अभ्या) सब प्रकारसे हमको प्राप्त होएँ (मन्दनायतः) उपासकके (सोमं) स्तुतिको (पिब) आप ग्रहण करें। और (नोमृधः) हमारे यज्ञोंसे विघ्नकारियोंको (अप जहि) दूर करें।

भावार्थ—जो लोग परमात्मपरायण होकर परमात्माके स्वरूपमें ध्यानद्वारा प्रविष्ट होते हैं। परमात्मा उन्हें अवश्यमेव ग्रहण करता है ॥२॥

अद॑ब्ध इन्दो पवसे म॒दिन्त॑म
आ॒त्मेन्द्र॑स्य भवसि धा॒सिरु॑त्त॒मः ।
अ॒भि स्व॑रन्ति ब॒हवो॑ मनी॒षिणो॒
राजा॑नमस्य भुव॑नस्य निंसते ॥३॥

अद॑ब्धः । इंदो॒ इति॑ । प॒व॒से॒ । म॒दिन्ऽत॑मः । आ॒त्मा । इन्द्र॑स्य । भ॒व॒सि॒ । धा॒सिः । उ॒त्ऽत॒मः । अ॒भि । स्व॒रं॒ति॒ । ब॒हवः॑ । म॒नी॒षिणः॑ । राजा॑नं । अ॒स्य । भुव॑नस्य । निं॒स॒ते॒ ॥३॥

पदार्थः—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप जगदीश्वर ! त्वं (अदब्धः) अदम्भनीयोऽसि। तथा (मदिन्तमः) आमोदरूपोसि। अथ च त्वं (पवसे) सर्वान्पवित्रयसि। तथा (इन्द्रस्य) प्रकाशपूर्णविद्युदादिपदार्थेषु (आत्मा भवसि) व्यापकरूपेण विराजसे। तथा (धासिरुत्तमः) उत्तमोत्तमगुणान् धारयसि। (बहवो मनीषिणः) प्रभूताज्ञानिविज्ञानिनः पुरुषाः (अभि स्वरन्ति) भवत स्तवनं कुर्वन्ति। अथ च (अस्य भुवनस्य) अस्य संसारस्य (राजानं) प्रकाशकं भवन्तं (निंसते) सन्मन्यन्ते ॥

पदार्थ—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूपपरमात्मन्! आप (अदब्धः) किसीसे दबाये नहीं जा सकते। और (मदिन्तमः) आनन्दस्वरूप हैं। (पवसे) पवित्र करते हैं। (इन्द्रस्य) प्रकाशयुक्त विद्युदादिपदार्थोंमें (आत्मा भवसि) व्यापकरूपसे विराजमान हो रहे हैं। और (धासिरुत्तमः) उत्तमोत्तमगुणोंको धारणकर रहे हैं। (बह्वो मनीषिणः) बहुतसे ज्ञानी विज्ञानीलोग (अभिस्वरन्ति) आपकी स्तुति करते हैं। और (अस्य भुवनस्य) इस संसारके (राजानं) प्रकाशक आपको (निंसते) मानते हैं।

भावार्थ—इस मन्त्रमें परमात्माको आत्मा शब्दसे वर्णन किया है। अर्थात् "अतति सर्वत्रव्याप्नोतीति आत्मा" जोसर्वत्र व्यापक हो उसका नाम आत्मा है। यहांसर्वोत्पादकसोमपरमात्मा को व्यापकरूपसे वर्णन किया है। जो लोग सोमशब्द को जड़लतावाचक ही मानते हैं उनको इस मंत्रसे शिक्षा लेनी चाहिये कि सोम यहां सर्वव्यापक परमात्माका नाम है ॥३॥

सहस्रणीथः शतधारो अद्भुत
इन्द्रायेन्दुः पवते काम्यं मधु।
जयन्क्षेत्रमभ्यर्षा जयन्नप उरुं
नो गातुं कृणु सोम मीढ्वः ॥४॥

सहस्रऽनीथः। शतऽधारः। अद्भुतः। इन्द्राय। इन्दुः। पवते। काम्यं। मधु। जयन्। क्षेत्रं। अभि। अर्ष। जयन्। अपः। उरुं। नः। गातुं। कृणु। सोम। मीढ्वः ॥४॥

पदार्थः—(सहस्रनीथः) भवान् सहस्राक्षोसि। तथा (शतधारा) नानाविधामोदानां स्रोतः। अथ च (अद्भुतः) आश्चर्यमयोस्ति। (इन्द्राय इन्दुः) ऐश्वर्यस्य प्रकाशकश्चास्ति।

(काम्यं मधुः) कामनारूपमाधुर्य्यं (पवते) पवित्रयति । अथच (क्षेत्रं जयन्) विस्तृतमिमं ब्रह्माण्डं तथा (अपः) कर्माणि च स्ववशे कुर्वन् (नो गातुं) मदीयामुपासनां (उरुं कृणु) विस्तारयतु । (सोम) हे परमात्मन् ! भवान् विविधविधानामानन्दानां (मीढ्वः) सिञ्चनकर्त्ताऽस्ति ॥

पदार्थ—(सहस्रनीथः) आप सहस्राक्ष हैं । (शतधारा) अनेक प्रकारके आनन्दोंके श्रोत हैं । (अद्भुतः) आश्चर्यमय हैं । (इन्द्राय इन्दुः) ऐश्वर्यके प्रकाशक हैं । (काम्यं मधु) कामनारूप मधुरताको (पवते) पवित्र करनेवाले हैं । और (क्षेत्रं जयन) इस विस्तृत ब्रह्माण्डको वशीभूत करते हुए और (अपः) कर्म्मोंको वशीभूत करते हुए (नोगातुं) हमारी उपासनाको (उरुं कृणु) विस्तृत करें । (सोम) हे परमात्मन् ! आप सबप्रकारके आनन्दोंको (मीढ्वः) सिञ्चनकरनेवाले हैं ।

भावार्थ—परमात्मा में ज्ञान की अनन्तशक्तियें हैं । और आनन्द की अनन्तशक्तियें हैं । बहुत क्या ? सब आनन्दोंकी वृष्टि करनेवाला एकमात्र परमात्मा ही है । इसलिये उपासकोंको चाहिये कि उस सर्वैश्वर्य्यप्रद परमात्माकी उपासना करें ॥५॥

कनिक्रदत्कलशे गोभिरज्यसे
व्य१व्ययं समया वारमर्षसि ।
मर्मृज्यमानो अत्यो न सानसि-
रिन्द्रस्य सोम जठरे समक्षरः ॥५॥

कनिक्रदत् । कलशे । गोभिः । अज्यसे । वि । अव्ययं । समया । वारं । अर्षसि । मर्मृज्यमानः । अत्यः । न । सानसिः । इंद्रस्य । सोम । जठरे । सं । अक्षरः ॥५॥

पदार्थः—हे जगन्नियन्तः ! (कनिक्रदत्) स्वसत्तया-गर्जन् (कलशे) विदुषामन्तःकरणे (गोभिः) अन्तःकरणवृत्तिभिः (अज्यसे) साक्षात्क्रियसे (अव्ययं) स्वाव्ययस्वरूपेण (समया) सह (वारं) वरणीयं ज्ञानपात्रं (अर्षसि) प्राप्तो भवसि । (मर्मृज्यमानः) साक्षात्कृतः (अत्यो न) गत्वरपदार्थ इव (सानसिः) उपासनीयोभवान् (इन्द्रस्य) कर्मयोगिनः (जठरे) अन्तःकरणे (सोम) हे परमात्मन् ! (समक्षरः) सम्यग् विराजमानो भवति॥५॥

पदार्थ—हे परमात्मन् (कनिक्रदत्) स्वसत्तासे गर्जतेहुए (कलशे) विद्वानों के अन्तःकरण में (गोभिः) अन्तःकरण की वृत्तियोंसे (अज्यसे) साक्षात्कारको प्राप्त होतेहैं । (अव्ययं) अपने अव्यय स्वरूपके (समया) साथ (वारं) वर्णनीयज्ञानके पात्रको (अर्षसि) प्राप्त होते हैं । (मर्मृज्यमानः) साक्षात्कारको प्राप्त (अत्यो न) गतिशील पदार्थोंके समान (सानसिः), उपासनायोग्य आप (इन्द्रस्य) कर्मयोगीके (जठरे) अन्तःकरणमें (सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् आप (समक्षरः) भलीभांति विराजमान होते हैं ।

भावार्थ—परमात्मा का अविनाशीभाव जब मनुष्य के हृदय में आता है तो मनुष्य मानों ईश्वर के समीप पहुँच जाताहै । इसी का नाम परमात्मप्राप्ति है । वास्तव में परमात्मा किसी के पास चल कर नहीं आता । और न किसी से दूर जाता । इसी अभिप्राय से वेदमें लिखा है कि "तद्दूरे तद्वन्तिके" अर्थात् अज्ञानियोंसे दूर और ज्ञानियोंके समीपहै ।

स्वादुः पवस्व दिव्याय जन्मने
स्वादुरिन्द्राय सुहवीतुनाम्ने ।
स्वादुर्मित्राय वरुणाय वायवे
बृहस्पतये मधुमाँ अदाभ्यः ॥६॥१०॥

स्वादुः । पवस्व । दिव्याय । जन्मने । स्वादुः । इंद्राय ।
सुहवीतुऽनाम्ने । स्वादुः । मित्राय । वरुणाय । वायवे ।
बृहस्पतये । मधुऽमान् । अदाभ्यः ॥ ६ ॥ १० ॥

पदार्थः—(अदाभ्यः) अदम्भनीयपरमेश्वर ! (बृहस्पतये) वाक्पतये विदुषे (मधुमान्) भवान् मधुरोस्ति । (मित्राय) सुहृदे (वरुणाय) वरणीयाय (वायवे) ज्ञानयोगिने (स्वादुः) स्वादयुतोस्ति । भवान् (दिव्यायजन्मने) पवित्रजन्मने मां(स्वादुः) प्रियतां प्रणीय (पवस्व) पवित्रयतु । अथच (इन्द्राय) कर्मयोगिने मां (स्वादुः) प्रियं विदधातु । तथा (सुहवीतुनाम्ने) कर्मयोगिने मां पवित्रयतु ॥

पदार्थ—(अदाभ्यः) हे अदम्भनीय परमात्मन ! (बृहस्पतये) वाणियोंके पति विद्वानके लिये आप (मधुमान्) मीठे हैं । (मित्राय) सर्वमित्र (वरुणाय) वरणीय (वायवे) ज्ञानयोगीके लिये (स्वादुः) सर्वप्रिय बना कर (पवस्व) हमको पवित्र करें । और (इन्द्राय) कर्म्मयोगीके लिये आप हमको (स्वादुः) प्रिय बनायें और (सुहवीतुनाम्ने) कर्म्मयोगीके लिये आप हमको पवित्र बनायें ।

भावार्थ—जो पुरुष परमात्माका उपासन करते हैं । उनकी कुटिलतायें ज्ञानयोगसे दग्ध हो जाती हैं । इसलिये वे सर्वप्रिय हो जाते हैं ॥ ६ ॥ १० ॥

अत्यं मृजन्ति कलशे दश क्षिपः
प्र विप्राणां मतयो वाच ईरते ।
पवमाना अभ्यर्षन्ति सुष्टुतिमेन्द्रं
विशन्ति मदिरास इन्दवः ॥ ७ ॥

अत्यं । मृजंति । कलशे । दश । क्षिपः । प्र । विप्राणां । मतयः । वाचः । ईरते । पवमानाः । अभि । अर्षति । सुऽस्तुतिं । आ । इंद्रं । विशंति । मदिरासः । इंदवः ॥ ७ ॥

पदार्थः—(मदिरास इन्दवः) आनन्दवर्द्धक ज्ञानप्रकाशकस्वभावा हि (इन्द्रमाविशन्ति) कर्मयोगिनं प्राप्नुवन्ति । कथंभूतं कर्मयोगिनं प्राप्नुवन्ति-तथाहि (सुस्तुतिं) शोभनस्तुतिकर्तारं । तं कर्मयोगिनं (पवमानाः) परमेश्वरस्य पवित्रतरा भावा (अभ्यर्षन्ति) प्राप्ताभवन्ति । तस्य (कलशे) अन्तःकरणे (दशक्षिपः) दशप्राणाः (अत्यं) गतिशीलं परमात्मानं (मृजन्ति) साक्षात्कुर्वन्ति (विप्राणां मतयः) विज्ञानिजनानांबुद्धयः (वाचईरते) तस्मिन् परमात्मनि वाण्याः प्रयोगंकुर्वन्ति ।

पदार्थ—(मदिरास इन्दवः) आनन्दके वर्द्धक और ज्ञानके प्रकाशकस्वभाव (इंद्रमाविशन्ति) कर्म्मयोगीको आकर प्राप्त होते हैं । जो कर्म्मयोगी (सुस्तुतिं) सुन्दरस्तुति करनेवाला है । उसको (पवमानः) परमात्माके पवित्रभाव (अभ्यर्षन्ति) प्राप्त होतेहैं । उसको (कलशे) अन्तःकरणमें (दशक्षिपः) दशप्राण (अत्यं) गतिशील परमात्माको (मृजन्ति) साक्षात्कार करते हैं । (विप्राणां मतयः) विज्ञानी पुरुषोंकी बुद्धियें (वाच ईरते) उस परमात्मामें वाणियोंका प्रयोग करतीं हैं ।

भावार्थ—परमात्माकी उपासनासे मनुष्यको सुन्दरशील मिलता है जिस शीलके द्वारा मनुष्य सद्विद्याको प्राप्त होकर ब्रह्मज्ञानका अधिकारी बनता है ॥ ७ ॥

पवमानो अभ्यर्षा सुवीर्यमुर्वीं
गव्यूतिं महि शर्म सप्रथः ।

मार्किर्नो अस्य परिष्टुतिरी-

शतेन्दो जयेमत्वया धनंन्धनम् ॥८॥

पवमानः । अभि । अर्ष । सुवीर्यं । उर्वीं । गव्यूतिं । महि । शर्म । सऽप्रथः । मार्किः । नः । अस्य । परिंसूतिः । ईशत । इंदो इति । जयेम । त्वया । धनंऽधनं ॥८॥

पदार्थः—(पवमानः) सर्वपावकः परमात्मा (सुवीर्यमुर्वीं) बलप्रदं विस्तृतमध्वानं (गव्यूतिं) इन्द्रियाणां ज्ञानमार्गं दत्वा हे परमात्मन् ! त्वम् (महि) महत् (सप्रथः) बृहत् (शर्म) सुखं (अभ्यर्षा) देहि । (इन्दो) सर्वप्रकाशकपरमेश्वर !परि-षूतिरीशत) कस्यापिद्वेष्टा (नः) मां (माकिः) माकुरु ।अथच (त्वया) भवदुत्पादितं (अस्य) संसारस्य (धनंधनं) सकल मैश्वर्यं (जयेम) वयंजयेम ॥ ८ ॥

पदार्थ—(पवमानाः) हे सबको पवित्र करनेवाले परमात्मन ! (सुवीर्यमुर्वीं) बलके देनेवाले विस्तृतमार्गको जो (गव्यूतिं) इन्द्रियोंका ज्ञानमार्ग है उसको देकर हे परमात्मन् ! आप (महि) महत् (सप्रथः) सबप्रकारसे बड़ा (शर्म्म) सुख (अभ्यर्षा) दें । (इन्दो) हे सर्वप्रकाशक परमात्मन् ! (परिषूतिरीशत) किसीका द्वेषी (नः) हमको (माकिः) मत करो । और (त्वया) तुम्हारे से उत्पन्न किया हुआ (धनं धनं)सबधनको (जयेम) हम जीतें ॥

भावार्थ—जिन लोगोंके ऐश्वर्य्यसम्बन्धी इन्द्रिय विशाल होते हैं। वह किसी के साथ द्वेष नहीं करते । और बुद्धिबलसे ही सब ऐश्वर्य्य उनके अधीन हो जाते हैं ॥ ८ ॥

अधि द्यामस्थाद्वृषभो विचक्षणो-
ऽरूरुचद्वि दिवो रोचना कविः ।
राजा पवित्रमत्येति रोरुवद्दिवः
पीयूषं दुहते नृचक्षसः ॥ ९ ॥

अधि । द्यां । अस्थात् । वृषभः । विऽचक्षणः । अरूरुचत् । वि । दिवः । रोचना । कविः । राजा । पवित्रं । अति । एति । रोरुवत् । दिवः । पीयूषं । दुहते । नृऽचक्षसः ॥ ९ ॥

पदार्थः—(कविः) सर्वज्ञः परमेश्वरः (दिवोरोचना) द्युलोकप्रकाशकानि नक्षत्राणि (अरूरुचत्) प्रकाशयति स परमात्मा (विचक्षणः) विविधपदार्थद्रष्टास्ति । अथच (वृषभः) बलवानस्ति । (अधिद्यामस्थात्) द्युलोकमाश्रित्य स्थिरोस्ति । (राजा) सकलस्यवस्तुनः प्रकाशकोस्ति । अथच (पवित्रमत्येति) महा पवित्रोस्ति । तथा (रोरुवद्दिवः) योहि द्युलोकमपिशब्दायमानं करोति । (पीयूषं) तममृतमयं परमात्मानं (नृचक्षसः) विज्ञानिनोजनाः (दुहते) परिपूरयन्ति ॥ ९ ॥

पदार्थ—(कविः) सर्वज्ञपरमात्मा (दिवोरोचना) द्युलोकके-प्रकाशकनक्षत्रोंको (अरूरुचत्) प्रकाश करता है । वह परमात्मा (विचक्षणः) विविधपदार्थों का द्रष्टा है । और (वृषभः) बल वाला है । अधिद्यामस्थात्) द्युलोकको आश्रितकरके स्थिर है । (राजा) सबका प्रकाशक है । और (पवित्रमत्येति) सर्वोपरि पवित्र है (रोरुवद्दिवः) जो द्युलोक को भी शब्दायमान कर रहा है। (पीयूषं) उस अमृतमय को (नृचक्षसः) विज्ञानी लोग (दुहते) परिपूर्ण करते हैं ।

भावार्थ—द्युलोक के नक्षत्रादिकोंका प्रकाशक स्वयंप्रकाशपरमात्मा ही है । उसीसे सूर्यचन्द्रादिकोंका प्रकाश होताहै । वही स्वतः प्रकाशस्वरूपपरमात्मा (पीयूषं) अमृत का धामहै। उसीसे नित्य सुख मुक्तिकी इच्छा करनी चाहिये ॥ ९ ॥

दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतो
वेना दुहन्त्युक्षणं गिरिष्ठाम् ।
अप्सु द्रप्सं वावृधानं समुद्र आ
सिन्धोरूर्मा मधुमन्तं पवित्र आ ॥ १० ॥

दिवः । नाके । मधुऽजिह्वाः । असश्चतः । वेनाः । दुहंति उक्षणं । गिरिऽस्थां । अप्ऽसु । द्रप्सं । ववृधानं । समुद्रे । आ । सिंधोः । ऊर्मा । मधुऽमंतं । पवित्रे । आ ॥ १० ॥

पदार्थः—(गिरिष्ठां) वाण्यादीनां प्रकाशकं (उक्षणं) सर्वोपरि बलस्वरूपं परमेश्वरं (वेनाः) यज्ञीयाजनाः (दुहन्ति) पूर्णतया साक्षात्कुर्वन्ति । योहि याज्ञिकोजनः (असश्चतः) कामनास्वसक्तोस्ति । (मधुजिह्वा) मधुरभाषिणः (दिवो नाके) आध्यात्मिकयज्ञेषु ये स्थिराआसते (पवित्रे) पूतान्तःकरणे (आ) आप्नुवन्ति । यः परमेश्वरः (मधुमन्तं) आमोदस्वरूपोस्ति । अथच (समुद्रे) अन्तरिक्षे (सिन्धोरूर्मा) वाष्परूपपरमाणूनां (वावृधानं) वर्द्धकोस्ति । तथा यः (अप्सु) सर्वरसेषु (द्रप्सं) सर्वोत्कृष्टरसोस्ति ॥ १० ॥

पदार्थ—(गिरिष्ठां) वाण्यादिकोंके प्रकाशक (उक्षणं) सर्वो-

परि बलस्वरूपपरमात्माको (वेनाः) याज्ञिकलोग (दुहन्ति) परिपूर्णरूपसे साक्षात्कार करते हैं। जो याज्ञिक (असश्चतः) कामनाओंमें संसक्तनहीं । (मधुजिह्वा) मधुरबोलनेवाले (दिवो नाके) आध्यात्मिक यज्ञोंमें जो स्थिर हैं। वे (पवित्रे) पवित्र अन्तःकरण में (आ) आप्नुवन्ति । सब ओरसे प्राप्त होते हैं। जो परमात्मा (मधुमन्तं) आनन्दस्वरूप है । और (समुद्रे) अन्तरिक्ष में (सिन्धोरूर्म्मा) वाष्परूपपरमाणुओं को (वावृधानं) जो बढ़ने वाला है । और (अप्सु द्रप्सं) जो सब रसोंमें सर्वोपरि रस है ।

भावार्थ—याज्ञिकलोग जो नित्य मुक्तिसुखकी इच्छा करते हैं। वे आनन्दमय परमात्मा का अपने पवित्र अन्तःकरणमें ध्यान करते हैं। जिस प्रकार जलादिपदार्थों के सूक्ष्मरूप परमाणु इस विस्तृतनभोमण्डल में व्याप्त हो जाते हैं इसी प्रकार परमात्मा के अपहत पापादिधर्म्म उनके रोम २ में व्याप्त होजाते हैं। अर्थात् वे सर्वाङ्ग से पवित्र होकर परमात्मा के भावों को ग्रहण करते हैं ॥ १० ॥

नाके सुपर्णमुपपप्तिवांसं
गिरो वेनानामकृपन्त पूर्वीः ।
शिशुं रिहन्ति मतयः पनिप्नतं
हिरण्ययं शकुनं क्षामणि स्थाम् ॥ ११ ॥

नाके । सुऽपर्णं । उपपप्तिऽवांसं । गिरः वेनानां । अकृपन्त । पूर्वीः शिशुं । रिहंति । मतयः । पनिप्नतं । हिरण्ययं । शकुनं । क्षामणि । स्था ॥ ११ ॥

पदार्थः—यः स्वसत्तया विराजमानः, उपदेशकवचोभिः

स्तूयते (वेनानाम्) उपासकानाम् (गिरः) वाण्यः तं परमात्मानम् (उपाकृपन्त) अभिष्टुवन्ति कीदृशं (सुपर्णम्) स्वसत्तया विराजमानम (उपपप्तिवांसम्) शब्दायमानम् (शिशुम्) श्यति सूक्ष्मंकरोति प्रलयकाले चराचरंजगदिति शिशुः । तं शिशुं (मतयः) बुद्धयः (रिहन्ति) प्राप्नुवन्ति (तं कीदृशं हिरण्ययम्) प्रकाशस्वरूपम् (शकुनम्) सर्वशक्तिमन्तम् (क्षामणि, स्थाम्) क्षमायां तिष्ठन्तम् ।

पदार्थ—(वेनानां) उपासकलोगों की (पूर्वीः, गिरः) बहुतसी वाणियें (अकृपन्त) उसकी स्तुति करतीं हैं । जो (नाके) सुख में (सुपर्णम्) अपनी चित्सत्ता से (उपपप्तिवांसम्) शब्दायमान होता है । शिशुम् श्यति सूक्ष्मं करोति प्रलयकाले इति शिशुः परमात्मा, जो प्रलयकाल में सब पदार्थों को सूक्ष्म करे उसका नाम यहां शिशु है । उस परमात्मा को (रिहन्ति) जो प्राप्त होते हैं । (मतयः) सूक्ष्मबुद्धिवाले (पनिप्नतम्) जो शब्दायमान है (हिरण्ययम्) प्रकाशस्वरूप है । और (शकुनम्) शक्नोति सर्वं कर्तुमिति शकुनं, जो सर्वशक्तिमान हो उसका नाम यहां शकुन है । (क्षामणिस्थाम्) जो क्षमा में स्थिर है ।

भावार्थ—परमात्मा विद्वानों की वाणी द्वारा मनुष्योंके हृदय में प्रकाशित होता है । इसलिये मनुष्यों को चाहिये कि वे सदोपदेश द्वारा उसका ग्रहण करें ॥ ११ ॥

ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि नाके
अस्थाद्विश्वा रूपा प्रतिचक्षाणो अस्य ।
भानुः शुक्रेण शोचिषा
व्यद्यौत्प्रारूरुचद्रोदसी मातरा शुचिः ॥१२॥११॥४॥

ऊर्ध्वः । गंधर्वः । अधि । नाके अस्थात् । विश्वा । रूपा ।
प्रतिऽचक्षाणः । अस्य । भानुः । शुक्रेण । शोचिषा । वि ।
अद्यौत् । प्र । अरूरुचत् । रोदसी इति । मातरा । शुचिः ॥

पदार्थः—(विश्वा, रूपा, प्रति चक्षाणोऽस्य) अस्यसूर्य्य मण्डलस्यानेकानिरूपाणि प्रख्यापयन् परमात्मा (अधि, नाके, अस्थात्) सर्वोपरि सुखे विराजमानोऽस्ति । (ऊर्ध्वः) सर्वोपर्य्यस्ति (शुक्रेण) निजबलेन अपि च (शोचिषा) निजतेजसा (भानुः) सूर्य्यमपि (व्यद्यौत्) प्रकाशयति । अपि च (रोदसी, मातरा) अन्यलोकलोकान्तराणांनिर्माता (द्यावापृथिव्योः प्रकाशकोऽस्ति (शुचिः) पवित्रोस्ति । अपि च (गन्धर्वः) सर्वलोक लोकान्तराणामधिष्ठाता अस्ति ।

पदार्थ—(विश्वा, रूपा, प्रतिचक्षाणोऽस्य) इस सूर्य्यमण्डलकी प्रतिचक्षाण, रूपा नाना प्रकारके रूपोंको प्रख्यात करता हुआ परमात्मा (अधि, नाके, अस्थात्) सर्वोपरि सुखमें विराजमान है । (ऊर्ध्वः) सर्वोपरिहै । और (शुक्रेण) अपने बलसे और (शोचिषा) अपनी दीप्तिसे (भानुः) सूर्य्यको भी (व्यद्यौत्) प्रकाशित करता है । और (रोदसी मातरा) अन्य लोकलोकान्तरोंका निर्माण कर्ता हुआ द्यावा पृथिवीको (प्रारूरुचत्) प्रकाशित करने वाला है । (शुचिः) पवित्र है । और (गन्धर्वः) सर्वलोकलोकान्तरों का अधिष्ठाता है ।

भावार्थ—परमात्मा अपने प्रकाश से सूर्य्यचन्द्रादिकों का प्रकाशक है । और सम्पूर्ण विश्वका निर्माता विधाता और अधिष्ठाता है, उसीकी उपासना सबलोगों को करनी चाहिये ॥ १२ ॥

इति पञ्चाशीतितमं सूक्तं एकादशो वर्गश्च समाप्तः ॥

अथाष्टचत्वारिंशदृचस्य षडशीतितमस्य सूक्तस्य

ऋषिः—१-१० आकृष्टामाषाः । ११-२० सिकता निवावरी । २१-३० पृश्नयोऽजाः । ३१-४० त्रय ऋषिगणाः । ४१-४५ अत्रिः । ४६-४८ गृत्समदः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ६, २१, २६, ३३, ४०, जगती । २, ७, ८, ११, १२, १७, २०, २३, ३०, ३१, ३४, ३५, ३६, ३८, ३९, ४२, ४४, ४७, विराड्जगती । ३-५, ९, १०, १३, १६, १८, १९, २२, २५, २७, ३२, ३७, ४१, ४६, निचृज्जगती । १४, १५, २८, २९, ४३, ४८, पादनिचृज्जगती । २४ आर्चीजगती । ४५ आर्चीस्वराड्जगती ॥ निषादः स्वरः ॥

प्र त॑ आ॒शवः॑ पवमान धी॒जवो॒ मदा॑
अर्ष॑न्ति र॒घुजा इ॑व॒ त्मना॑ ।
दि॒व्याः सु॑प॒र्णा मधु॑मन्त॒ इन्द॑वो
म॒दिन्त॑मासः॒ परि॒ कोश॑मासते ॥ १ ॥

प्र । ते॒ । आ॒शवः॑ । प॒व॒मा॒न॒ । धी॒ऽजवः॑ । मदाः॑ । अर्ष॑न्ति । र॒घु॒जाःऽइ॑व । त्मना॑ । दि॒व्याः । सु॒ऽप॒र्णाः । मधु॑ऽमन्तः । इन्द॑वः । म॒दिन्ऽत॑मासः । परि॑ । कोश॑म् । आ॒स॒ते॒ ।

पदार्थः—(पवमान) हे सर्वपवित्रकारक परमात्मन् !

(ते) तव (धीजवः) ज्ञानस्य (आशवः) ज्ञानेन्द्रियरूपाः भावाः (रघुजाइव, त्मना) विद्युदिव शीघ्रगतिकारकाः (मदाः) अपिच आनन्दरूपाः (प्रार्षन्ति) अनायासेन प्रत्यहं गच्छन्ति । अपि च ते भावाः (दिव्याः) दिव्याः (सुपर्णाः) चेतनरूपाः (मधुमन्तः) आनन्दरूपाः (इन्दवः) प्रकाशरूपाः सन्ति । (मन्दिन्तमासः) आह्लादकाः सन्ति । ते उपासकस्य (कोशम्) अन्तःकरणे (पर्य्यासते) स्थिरा भवन्ति ।

पदार्थ—(पवमान) हे सबको पवित्र करनेवाले परमात्मन् (ते) तुम्हारे (धीजवः) ज्ञानके (आशवः) प्राणरूपभाव (रघुजाइवत्मना) विद्युत्के समान शीघ्रगति करनेवाले (मदाः) और आनन्दरूप (प्रार्षन्ति) अनायाससे प्रतिदिन गति कर रहे हैं । और वे भाव (दिव्याः) दिव्य हैं (सुपर्णाः) चेतनरूप हैं (मधुमन्तः) आनन्दरूप हैं (इन्दवः) प्रकाशरूप हैं । (मन्दिन्तमासः) आह्लादक हैं । वे उपासकके (कोशं) अन्तःकरणमें (पर्य्यासते) स्थिर होते हैं ।

भावार्थ—जो लोग पदार्थान्तरों से चित्तवृत्तिको हटाकर एकमात्र परमात्माका ध्यान करते हैं उनके अन्तःकरणको प्रकाशित करने के लिये परमात्मा दिव्यभावसे आकर उपस्थित हो जाते हैं ॥ १ ॥

प्र ते मदा॑सो मदि॒रास॑ आ॒शवो॒

ऽसृ॑क्षत॒ रथ्या॑सो य॒था पृथ॑क् ।

धे॒नुर्न व॒त्सं पय॑सा॒भि व॒ज्रिण॒-

मिन्द्र॒मिन्द॑वो॒ मधु॑मन्त ऊ॒र्मय॑: ॥ २ ॥

प्र । ते॒ । मदा॑सः । म॒दि॒रास॑: । आ॒शव॑: । असृ॑क्षत । रथ्या॑सः । य॒था॑ । पृथ॑क् । धे॒नुः । न । व॒त्सं । पय॑सा । अ॒भि ।

वज्रिणं । इंद्रं । इंदवः । मधुऽमंतः । ऊर्मयः ॥ २ ॥

पदार्थः—(वज्रिणम, इन्द्रम्) विद्युच्छक्तिधारकाय-कर्म्मयोगिने (धेनुः) गौः (न) यथा (वत्सम्) निजपुत्रकम्-(पयसा) दुग्धेन (अभिगच्छति) प्राप्नोति, एवमेव (इन्दवः) परमात्मनः प्रकाशरूपस्वभावाः (मधुमन्तः) ये आनन्दमयाः (ऊर्मयः) अपि च समुद्रस्य तरङ्गा इव गतिशीलाः सन्ति । ते (मदासः) आह्लादकाय (मदिरासः) उत्तेजकाय (आशवः) व्याप्तिशीलस्वभावाय (ते) तुभ्यम् (प्रासृक्षत) विरचिताः (यथा) येन प्रकारेण (रथ्यासः) रथगत्यै अश्वादयः (पृथक्) भिन्नाः २ विरचितास्तथैव (ते) तुभ्यं हे उपासक उक्तस्वभावा रचिताः ।

पदार्थ—(वज्रिणम, इन्द्रम) विद्युतकी शक्ति रखनेवाले कर्म्म-योगीके लिये (धेनुः) गौ (न) जैसे (वत्सं) अपने बच्चेको (पयसा) दुग्धके द्वारा (अभिगच्छति) प्राप्त होती है । इसी प्रकार (इन्दवः) परमात्माके प्रकाशरूपस्वभाव (मधुमन्तः) जो आनन्दमय हैं । (ऊर्म्मयः) और समुद्रकी लहरोंके समान गतिशील हैं। वे (मदासः) आह्लादक (मदिरासः) उत्तेजक (आशवः) व्याप्तिशीलस्वभाव (ते) तुम्हारे लिये (प्रासृक्षत) रचेगये हैं। (यथा) जैसे (रथ्यासः) रथकी गतिके लिये अश्वादिक (पृथक्) भिन्न २ रचे गये हैं इसी प्रकार (ते) तुम्हारे लिये हे उपासक उक्त स्वभाव रचे गये हैं ।

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे उपासक ! तुम्हारे शरीररूपी रथके लिये ज्ञानके विचित्र भाव घोड़ोंके समान जिसप्रकार घोड़े रथको गतिशील बनाते है । इसीप्रकार विज्ञानी पुरुषकी चित्तवृत्तियें उसके शरीरको गतिशील बनाती हैं ॥ २ ॥

अत्यो न हियानो अभि वाजमर्ष
स्वर्वित्कोशं दिवो अद्रिमातरम् ।
वृषा पवित्रे अधि सानो अव्यये
सोमः पुनान इन्द्रियाय धायसे ॥ ३ ॥

अत्यः । न । हियानः । अभि । वाजं । अर्ष । स्वःऽवित् । कोशं । दिवः । अद्रिऽमातरं । वृषा । पवित्रे । अधि । सानौ । अव्यये । सोमः । पुनानः । इन्द्रियाय । धायसे ॥ ३ ॥

पदार्थः—(सोमः) हे परमात्मन् ! (पुनानः) सर्वं पवित्रयन् (इन्द्रियाय धायसे) धनधारणाय (अव्यये) अविनाशिने (पवित्रे) पवित्रात्मनि (अधिसानौ) यः सर्वोपरि विराजमानोऽस्ति । एवंविधपवित्रात्मने (वृषा) सर्वकामान् वर्षकः परमात्मा (स्ववित) यः सर्वज्ञोऽस्ति ।(अत्यः) गतिशीलपदार्थस्य (न) समानः (हियानः) प्रेरकः परमात्मा (वाजम्) यज्ञस्य (अभि) सम्मुखे (अर्ष) गच्छति । (दिवो, अद्रिमातरम्) द्युलोकान्मेघस्य निर्माता (कोशम्) निधानमुत्पादयति ।

पदार्थ—(सोमः) परमात्मा (पुनानः) सबको पवित्र करता हुआ (इन्द्रियायधायसे) धनके धारण कराने के लिये (अव्यये) अविनाशी (पवित्रे) पवित्र आत्मामें (अधिसानौ) जो सर्वोपरि विराजमान है ऐसे पवित्र आत्माके लिये (वृषा) सब कामनाओंकी दृष्टिकर्ता परमात्मा (स्ववित) जो सर्वज्ञ है (अत्यः) गतिशील पदार्थके (न) समान (हियानः)

प्रेरणा करनेवाला परमात्मा (वाजम्) यज्ञके (अभि) सम्मुख (अर्ष) गति करता है (दिवो, अद्रिमातरम्) द्युलोकसे मेघका निर्म्माता (कोशम्) निधि-को उत्पन्न करता है ।

भावार्थ—परमात्मा विद्युदादि पदार्थों के समान गतिशील है । और प्रकाशमात्रके आधार निधियोंका निर्म्माता है । वही परमात्मा पवित्र अन्तःकरणवाले पुरुषको ऐश्वर्य्यसम्पन्न करता है ॥ ३ ॥

प्र त आश्विनीः पवमान धीजुवो
दिव्या असृग्रन्पयसा धरीमणि ।
प्रान्तर्ऋषयः स्थाविरीरसृक्षत ये
त्वा मृजन्त्यृषिषाण वेधसः ॥ ४ ॥

प्र । ते । आश्विनीः । पवमान । धीऽजुवः । दिव्याः । असृग्रन् । पयसा । धरीमणि । प्र । अंतः । ऋषयः । स्थावि-रीः । असृक्षत । ये । त्वा । मृजंति । ऋषिऽसान । वेधसः ।

पदार्थः—(पवमान) हे परमात्मन् ! (ते) तव (आ-श्विनीः) व्याप्तयः (धीजुवः) या मनोवेगसमानगतिशीलाः (दिव्याः) अपि च दिव्यरूपाः सन्ति (धरीमणि) भवद्धारके अन्तःकरणे (पयसा, प्रासृग्रन्) अमृतं वाहयन्त्यो गच्छन्ति । (वेधसः) कर्म्मविधातारः (ऋषिषाण) ज्ञानिनः (ये) ये (त्वा) त्वाम् (मृजन्ति) तत्वमिथ्यात्वे विविच्य जानन्ति । ते ऋषयः (स्थाविरीः) सर्वकामान् वर्षकं भवन्तम् (अन्तः) अन्तःकरणे (प्रासृक्षत) ध्यानविषयं विदधति ।

पदार्थ—(पवमान) हे परमात्मन् (ते) तुम्हारी (आश्विनीः) व्याप्तियें (धीजुवः) जो मनके वेगके समान गतिशील और (दिव्याः) दिव्यरूप हैं । (धर्मणि) आपको धारणकरनेवाले अन्तःकरणमें (पयसासृग्रन्) अमृतको बहाती हुई गमन करती हैं । (वेधसः) कर्म्मोंका विधान करनेवाले (ऋषिषाण) ज्ञानी (ये) जो (त्वा) तुमको (मृजन्ति) विवेक करके जानते हैं । वे ऋषि (स्थाविरी) सब कामनाओंकी वृष्टि करनेवाले आपको (अन्तः) अन्तःकरणमें (प्रासृक्षत) ध्यानका विषय बनाते हैं ।

भावार्थ—जो लोग दृढ़तासे ईश्वरकी उपासना करते हैं । परमात्मा उनके ध्यानका विषय अवश्यमेव होता है । अर्थात् जब तक पुरुष सब ओरसे अपनी चित्तवृत्तियोंको हटाकर एकमात्र ईश्वरपरायण नहीं होता तब तक वह सूक्ष्मसे सूक्ष्म परमात्मा उसकी बुद्धिका विषय कदापि नहीं होता । इसी अभिप्रायसे कहा है कि 'दृश्यते त्वग्रया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः' वह सूक्ष्मदर्शियोंकी सूक्ष्म बुद्धिद्वारा ही देखाजाता है अन्यथा नहीं ॥ ४ ॥

विश्वा धामा॑नि विश्वचक्ष ऋभ्व॑सः
प्रभोस्ते॑ सतः परि॑ यन्ति केतवः॑ ।
व्यानशिः॑ पवसे सोमधर्म॑भिः
पतिर्विश्व॑स्य भुव॑नस्य राजसि ॥ ५ ॥ १२ ॥

विश्वा॑ । धामा॑नि । विश्वऽचक्षः । ऋभ्व॑सः । प्रऽभोः । ते । सतः । परि॑ । यंति । केतवः॑ । विऽआनशिः । पवसे । सोम । धर्म॑ऽभिः । पतिः॑ । विश्व॑स्य । भुव॑नस्य । राजसि ॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन्! त्वं (विश्वस्य भुवनस्य)

सर्वभुवनानाम् (पतिः) स्वामी असि । अपि च (धर्मभिः) नित्यादिधर्म्मैः (राजसि) विराजमानो भवसि (व्यानशिः) अपि च सर्वत्र व्यापको भूत्वा (पवसे) सर्वं पवित्रयसि (विश्वचक्षःप्रभो) हे सर्वज्ञ जगत्स्वामिन् ! (ते) तव (ऋभ्वसः) महत्यः (केतवः) शक्तयः (परियन्ति) सर्वत्र विद्यन्ते । अपि च (ते सतः) तव सत्तायाः (विश्वाधामानि) अखिल-लोकलोकान्तराणि उत्पद्यन्ते ।

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! आप (विश्वस्य भुवनस्य) सम्पूर्ण भुवनोंके (पतिः) स्वामी हैं । और (धर्मभिः) अपने नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभावादि धर्म्मोंके द्वारा (राजसि) विराजमान है । (व्यानशिः) और सर्वत्र व्यापक होकर (पवसे) सबको पवित्र करते हो (विश्वचक्षः-प्रभोः) हे सर्वज्ञ जगत्स्वामिन् ! (ते) तुम्हारी (ऋभ्वसः)बड़ी (केतवः) शक्तियें (परियन्ति) सर्वत्र विद्यमान हैं । और (ते सतः) तुम्हारी सत्ता से (विश्वाधामानि) सम्पूर्ण लोकलोकान्तर उत्पन्न होते हैं ।

भावार्थ—जो यह संसार के पति हैं, वह अपहत पाप्मादि धर्म्मोंसे सर्वत्र परिपूर्ण हो रहा है । सायणादिभाष्यकार 'धर्म्मभिः' के अर्थ भी सोमके वहनेके करते है यदि कोई इनसे पूछे कि, अस्तु धर्म्मके अर्थ वहन ही सही पर पतिर्विश्वस्य भुवनस्य इस वाक्यके अर्थ जड़सोममें कैसे संगत होते हैं । क्योंकि एक लताविशेषवस्तु सम्पूर्ण लोकलोकान्तरोंके पति कैसे हो सकती है । वास्तवमें बात यह है कि मन्त्रोंके आध्यात्मिक अर्थोंको छोड़कर इनको केवल भौतिक अर्थ ही प्रिय लगते हैं ॥ ५ ॥ १२ ॥

उभयतः पवमानस्य रश्मयो
ध्रुवस्य सतः परि यन्ति केतवः ।

यदी पवित्रे अधि मृज्यते हरिः
सत्ता नि योना कलशेषु सीदति ॥ ६ ॥

उभयतः । पवमानस्य । रश्मयः । ध्रुवस्य । सतः । परि । यंति । केतवः । यदि । पवित्रे । अधि । मृज्यते । हरिः । सत्ता । नि । योना । कलशेषु । सीदति ॥

पदार्थः—(ध्रुवस्य) अस्य ध्रुवरूपपरमात्मनः कथम्भूतस्य तस्य (सतः) सर्वत्र विद्यमानस्य पुनः कथम्भूतस्य (पवमानस्य) सर्वं पूयमानस्य । एवम्भूतस्य (रश्मयः) तेजांसि (उभयतः) इतश्चामुतश्च (परियन्ति) परिगच्छन्ति तानि तेजांसि (केतवः) सर्वोत्कृष्टत्वेन केतुतुल्यानि सन्ति । (यदि) यदा (पवित्रे) पूतान्तःकरणे (हरिः) परमात्मा (अधिमृज्यते) साक्षात्क्रियते । तदा (सत्ता) तस्य सत्ता (नि) सततम् (कलशेषु, योना) अन्तःकरणस्थानेषु (सीदति) विराजते ।

पदार्थ—(ध्रुवस्य) इस ध्रुव परमात्माको (सतः) जो सर्वत्र विद्यमान है और (पवमानस्य) जोकि सबको पवित्र करने वाला है। उसको (रश्मयः) ज्योतियें (उभयतः) दोनों लोकोंमें (परियन्ति) प्राप्त होती हैं । वे ज्योतियें (केतवः) सर्वोपरि होनेसे केतुके समान हैं । (यदि) जब (पवित्रे) पवित्र अन्तःकरणमें (हरिः) परमात्मा (अधिमृज्यते) साक्षात्कार कियाजाता है । तब (सत्ता) उसकी सत्ता (नि) निरन्तर (कलशेषु योना) अन्तःकरणस्थानोंमें (सीदति) विराजमान होती है ।

भावार्थ—जो पुरुष अपने अन्तःकरणोंको सत्कर्म्मद्वारा शुद्ध बनाते हैं। उन्हींके अन्तःकरणोंमें परमात्मा प्रतिबिम्बित होता है । अन्योंके नहीं ।

यज्ञस्य केतुः पवते स्वध्वरः सोमो
देवानामुप याति निष्कृतम् ।
सहस्रधारः परि कोशमर्षति वृषा
पवित्रमत्येति रोरुवत् ॥ ७ ॥

यज्ञस्य । केतुः । पवते । सुऽअध्वरः । सोमः । देवानां । उप ॥ याति । निःऽकृतं । सहस्रऽधारः । परि । कोशं । अर्षति वृषा । पवित्रं । अति । एति । रोरुवत् ॥

पदार्थः—(यज्ञस्य, केतुः) परमात्मा ज्ञानयज्ञादिनां प्रज्ञापकोऽस्ति । (पवते) सर्वंपुनाति अपि च (स्वध्वरः) शोभन यज्ञकर्ता अस्ति । (सोमः) सोमस्वभावपरमात्मा (देवानाम्) विदुषाम् (निष्कृतम्) संस्कृतान्यन्तःकरणानि प्राप्नोति । किम्भूतः परमात्मा (सहस्रधारः) अनन्तशक्तिसम्पन्नः (कोशम्) ज्ञानिपुरुषस्यान्तःकरणम (पर्य्यर्षति) प्राप्नोति । स परमात्मा (पवित्रम्) प्रत्येकपवित्रताम (अत्येति) अतिक्रामति अर्थात् सर्वोपरि पवित्रोऽस्ति । किम्भूतः परमात्मा (वृषा) बलरूपः पुनः किम्भूतः (रोरुवत्) सर्वत्र शब्दायमानोऽस्ति ।

पदार्थ—(यज्ञस्य केतुः) ज्ञानयज्ञ, कर्म्मयज्ञ, ध्यानयज्ञ, योगयज्ञ, इत्यादि यज्ञोंका परमात्मा केतु है । (पवते) सबको पवित्र करनेवाला है । और (स्वध्वरः) अहिंसाप्रधान यज्ञोंवाला है । (सोमः) वह सोमस्वभाव परमात्मा (देवानां) विद्वानों के (निष्कृतम्) संस्कृत अन्तःकरणोंको प्राप्त होता है । (सहस्रधारः) अनन्तशक्तिसम्पन्न है । और (कोशम्) ज्ञानी-

पुरुषके अन्तःकरणको (पर्य्येषति) प्राप्त होता है। वह परमात्मा (पवित्रं) प्रत्येक-पवित्रताको (अत्येति) अतिक्रमण करता है। अर्थात् सर्वोपरि पवित्र है। (वृषा) वह बलस्वरूप है। और (रोरुवत) सर्वत्र शब्दायमान है।

भावार्थ—परमात्मा अपनी अनन्तशक्तिसे सर्वत्रविराजमान है, यद्यपि वह सर्वत्रविद्यमान है तथापि उसकी अभिव्यक्ति विद्वानोंके अन्तःकरणमें ही होती है। अन्यत्र नहीं ॥ ७ ॥

राजा समुद्रं नद्यो३वि गाहते-
ऽपामूर्मिं सचते सिन्धुषु श्रितः ।
अध्यस्थात्सानु पवमानो अव्ययं
नाभा पृथिव्या धरुणो महो दिवः ॥ ८ ॥

राजा । समुद्रं । नद्यः । वि । गाहते । अपां । ऊर्मिं । सचते । सिंधुषु । श्रितः । अधि । अस्थात् । सानु । पवमानः । अव्ययं । नाभा । पृथिव्याः । धरुणः । महः । दिवः ।

पदार्थ—यः परमात्मा (पृथिव्याः) पृथिवीलोकस्य अपि च (महोदिवः) अस्य महतो द्युलोकस्य (धरुणः) आधारोऽस्ति। (पवमानः) सर्वपवित्रयन् परमात्मा (नद्यः) सर्वाः समृद्धिः अपि च (अव्ययम्, समुद्रम्) अविनाशिमन्तरिक्षम् (विगाहते) विगाहनं करोति (अपामूर्मिम्) जलतरङ्गरूपनदीः (सिन्धुषु) महासागरेषु (सचते) सङ्गताः करोति (श्रितः) स सर्वस्याश्रयोभूत्वा (अध्यस्थात्) विराजते। अपिच (सानुनाभा) अत्युच्चशिखराणामपि मध्ये विराजते।

पदार्थ—जो परमात्मा (पृथिव्याः) पृथिवीलोक और (महो-

दिवः) इस बड़े द्युलोकका (धरुणः) आधार है । (पवमानः) सबको पवित्र करनेवाला परमात्मा (नद्य) सब समृद्धिओंको और (अव्ययं-समुद्रम्) इस अविनाशी अन्तरिक्षको (विगाहते) विगाहन करता है ; (अपामूर्मिम) जलकीलहरेंरूपनदियोंको (सिन्धुषु) महासागरोंमें (सचते) संगत करता है । (श्रितः) वह सबका आश्रयहोकर (अध्यस्थात्) विराजमान हो रहा है । और (सानुनाभा) उच्चसे उच्च शिखरोंके मध्यमें भी विराजमान है ।

भावार्थ—यद्यपि स्थूलदृष्टिसे यह पृथिव्यादिलोक अन्यपदार्थोंके अधिष्ठान प्रतीत होते हैं,तथापि सर्वाधिकर्म्म एकमात्र परमात्मा ही है क्यों कि सब लोकलोकान्तरोंकीरचना करनेवाला और नदियोंको सागरोंके साथ संगत करनेवाला और ग्रह उपग्रहोंको सूर्य्यादि बड़ी २ ज्योतियोंमें,संगत करनेवाला एकमात्र परमात्माही सबका अधिष्ठान है कोई अन्यवस्तु नहीं ॥८॥

दिवो न सानुं स्तनयंन्नचिक्रदद्द्यौश्च
यस्यं पृथिवी च धर्मऽभिः ।
इन्द्रंस्य सख्यं पवते विवेवि-
दत्सोमंः पुनानः कलशेषु सीदति ॥ ९ ॥

दिवः । न । सानुं । स्तनयंन् । अचिक्रदत् । द्यौः । च ।
यस्यं । । पृथिवी । च । धर्मऽभिः । इंद्रंस्य । सख्यं । पवते
विऽवेविदत् । सोमंः । पुनानः । कलशेषु । सीदति ॥

पदार्थः—यः परमात्मा (दिवः, सानु) द्युलोकस्योच्च-शिखराणि (स्तनयन्) विस्तारयन् (न) इव (अचिक्रदत्) गर्जति । (च) पुनः (यस्य धर्म्मभिः) यत्पुण्यैः (द्यौः) द्युलोकः,

अपिच (पृथिवी) पृथिवीलोकास्तिष्ठति । स परमात्मा (इन्द्रस्य) कर्म्मयोगिनः (सख्यम्) मित्रताम् (पवते) पवित्रयति । तथा (विवेविदत्) प्रसिद्धयति । सः (सोमः) परमात्मा (पुनानः) मां पवित्रयन् (कलशेषु) मदन्तःकरणेषु (सीदति) विराजते ।

पदार्थ—जो परमात्मा (दिवःसानु) द्युलोकके उच्चशिखरको (स्तनयन) विस्तारकरनेकी (न) नाईं (अचिक्रदत्) गर्जरहा है । (च) और (यस्य धर्मभिः) जिसके धर्मोंसे (द्यौः) द्युलोक और पृथ्वी पृथ्वीलोक स्थिर है, वह परमात्मा (इन्द्रस्य) कर्मयोगीके (सख्यं) मैत्रीभावको (पवते) पवित्र करता है तथा (विवेविदत) प्रसिद्ध करता है । वह (सोमः) परमात्मा (पुनानः) हमको पवित्र करता हुआ (कलशेषु) हमारे अन्तःकरणों में (सीदति) विराजमान होता है ॥

भावार्थ—इस मन्त्रमें परमात्माने इस बातका निरूपण किया है कि द्युलोक और पृथ्वी-लोक किसी चेतन वस्तु के सहारेसे स्थिर हैं । और उस चेतन में भी जगत्कर्तृत्वादि-धर्मोंसे इनको धारण किया है । वेदमें इतना स्पष्टईश्वरवाद होनेपर भी सायणादि-भाष्यकार इन मन्त्रोंको जड-सोमलतामें लगाते हैं और ऐसे मिथ्या अर्थ करना ब्राह्मण और उपनिषदोंसे सर्वथा विरुद्ध है । देखो "साच प्रशासनात्" १।३।११ इस सूत्र में महर्षिव्यासने " शतपथ " ब्राह्मण के आधार पर यह लिखा है, कि एतस्य वा अक्षरस्य वा गार्गि ! द्यावापृथिव्यौ विधृते तिष्ठतः बृ. ३। ८।९। इस अक्षरकी आज्ञा में हे गार्गि ! द्यु-लोक और पृथ्वी लोक स्थिर है । इससे स्पष्टसिद्ध है यहां ईश्वरका वर्णन है जड सोमका नहीं ॥ ९ ॥

ज्योतिर्यज्ञस्य पवते मधु प्रियं
पिता देवानां जनिता विभूवसुः ।

दधाति रत्नं स्वधयोरपीच्यं मदिन्तमो

मत्सर इन्द्रियो रसः ॥ १० ॥ १३ ॥

ज्योतिः । यज्ञस्य । पवते । मधु । प्रियं । पिता देवानां । जनिता । विभुऽवसुः । दधाति । रत्नं । स्वधयोः अपीच्यं । मदिन्ऽतमः । मत्सरः । इन्द्रियः । रसः ॥

पदार्थः—स परमात्मा (यज्ञस्य) अध्वरस्य (ज्योतिः) तेजोऽस्ति । अपिच (मधु) आनन्दरूपोऽस्ति (प्रियं पवते) यस्तस्य प्रियङ्करोति तं पवित्रयति । (देवानाम्) सर्वलोकलोकान्तराणाम् (पिता) रक्षकः । अपिच (जनिता) जनकः (विभुवसुः) अपिचात्यन्तैश्वर्य्यवान्अस्ति । (स्वधयोरपीच्यम्) तथा द्यावापृथिव्योरन्तर्गतम् (रत्नम) मणिम् (दधाति) धारणङ्करोति । अपिच स परमात्मा (मदिन्तमः) आनन्दरूपोऽस्ति । तथा (मत्सरः) सर्वानन्ददायकः । अपिच (इन्द्रियः) ऐश्वर्य्यवान् तथा (रसः) आनन्दस्वरूपोऽस्ति ।

पदार्थ—वह परमात्मा (यज्ञस्य) यज्ञकी (ज्योतिः) ज्योति है । और (मधु) आनन्दरूप है । प्रियं पवते) जो उससे प्रेम करते हैं उन्हें पवित्र करता है । (देवानां) सबलोक-लोकान्तरोंका (पिता) पालन करनेवाला और (जनिता) उत्पन्नकरनेवाला है । (विभुवसुः) और अत्यन्त ऐश्वर्यवाला है । (स्वधयोरपीच्यं) तथा द्यावा-पृथिवी के अन्तर्गत (रत्नं) रत्नोंको (दधाति) धारणकरता है । और वह परमात्मा (मदिन्तमः) आनन्दस्वरूप है । तथा (मत्सरः) सबको आनन्द देने वाला है । और (इन्द्रियः) ऐश्वर्य युक्त है तथा (रसः) आनन्दस्वरूप है ।

भावार्थ—इस मन्त्र में परमात्मा को नानाविध रत्नों का धाता विधाता, और निर्माता, कथन किया है । अर्थात वही सृष्टि का धारणकरने-वाला है, वही पालनकरने वाला है और वही प्रलयकरने वाला है । इस मन्त्र में "मत्सर" और मदादिक जो नाम आये हैं वे परमात्मा के गौरव-को कथन करते हैं आधुनिक संस्कृत में मद मत्सरादिनाम बुरे अर्थों में आने लगे हैं वेद में इनके ये अर्थ न थे । इससे स्पष्ट सिद्ध होता है, कि आधु-निकसंस्कृत और वैदिकसंस्कृत में बड़ा प्रभेद है ॥ १० ॥ १३ ॥

अभिक्रन्दन्कलशं वाज्यर्षति
पतिर्दिवः शतधारो विचक्षणः ।
हरिर्मित्रस्य सदनेषु सीदति
मर्मृजानोऽविभिः सिन्धुभिर्वृषा ॥ ११ ॥

अभिऽक्रंदन् । कलशं । वाजी । अर्षति । पतिः । दिवः । शतऽधारः । विऽचक्षणः । हरिः । मित्रस्य । सदनेषु । सीदति । मर्मृजानः । अविऽभिः । सिंधुऽभिः । वृषा ।

पदार्थः—(अभिक्रन्दन्) स्वसत्तयागर्जन् (कलशम्) अस्मै ब्रह्माडाय (वाज्यर्षति) बलपूर्वकं गतिं ददाति । अन्यच्च (दिवः) द्युलोकस्य (पतिः) रक्षकः तथा (शतधारः) अनेकानन्दानां स्रोतस्तथा (विचक्षणः) सर्वद्रष्टा अपिच (हरिः) सर्वशक्तीनां स्वाधीनकारकोऽस्ति । अपरञ्च (मित्रस्य) प्रेम-पात्राणाम् (सदनेषु) अन्तःकरणेषु (सीदति) विराजते । तथा (मर्मृजानः) सर्वपरिशोधयन् (अविभिः, सिन्धुभिः) स कृपासागरः (वृषा) निजकृपावृष्टिभिः सर्वं सिञ्चन्ति ।

पदार्थ—(अभिक्रन्दन्) स्वसत्ता से गर्जता हुआ (कलशं) इस ब्रह्माण्ड को (वाज्यर्षति) बलपूर्वक गति देनेवाला है । और (दिवः) द्युलोकका (पतिः) स्वामी है । तथा (शतधारः) अनन्तप्रकारके आनन्दोंका स्रोत है । तथा (विचक्षणः) सर्वद्रष्टा । और (हरिः) सब शक्तियोंको स्वाधीन रखनेवाला है । और (मित्रस्य) प्रेमपात्रलोगोंके (सदनेषु) अन्तःकरणोंमें (सादति) विराजमान होता है । तथा (मर्मृजानः) सबको शुद्ध करता हुआ (अविभिः सिन्धुभिः) वह कृपासिन्धु (वृषा) अपनी कृपारूप वृष्टिसे सबको सिञ्चित करता है ।

भावार्थ—उपासकोंको चाहिये कि अपने मनोरूप मन्दिरको इस प्रकारसे मार्जित करें जिससे परमात्माका निवास-स्थान बनकर मन उनकी उपासनाका मुख्य साधन बने ॥ ११ ॥

अग्रे सिन्धूनां पवमानो अर्षत्यग्रे
वाचो अग्रियो गोषु गच्छति ।
अग्रे वाजस्य भजते महाधनं
स्वायुधः सोतृभिः पूयते वृषा ॥ १२ ॥

अग्रे । सिन्धूनां । पवमानः । अर्षति । अग्रे । वाचः । अग्रियः । गोषु । गच्छति । अग्रे । वाजस्य । भजते । महाऽधनं । सुऽआयुधः । सोतृऽभिः । पूयते । वृषा ॥

पदार्थः—यः परमात्मा (वाचोऽग्रियः) वेदवाणीनां प्रधानकारणमस्ति । अन्यच्च (गोषु) स्वसत्तया लोकलोकान्तरेषु (गच्छति) प्राप्नोति । (सिन्धूनाम्) प्रकृते र्वाष्परूपावस्थया (अग्रे) प्रथमम् (पवमानः) पवित्रयन् (अर्षति) सर्वत्र

प्राप्नोति । एवम्भूतस्य परयात्मन उपासकः (वाजस्याग्रे) धनाद्यैश्वर्यैः प्रथमम् (महाधनम्) महाधन परमात्मानम् (भजते) सेवते । एवम्भूतमुपासकम् (स्वायुधः) अनन्तशक्ति सम्पन्नः (सोतृभिः) स्वसंस्कारकशक्तिभिः (वृषा) बलस्वरूप परमात्मा (पूयते) पवित्रयति ।

पदार्थ—जो परमात्मा (वाचोऽग्रियः) वेदरूपी वाणियोंका मुख्यकारण है । और (गोषु) अपनी सत्तासे लोक-लोकान्तरोंमें (गच्छति) प्राप्त है । (सिन्धूनां) प्रकृतिकी वाष्परूपअवस्थासे (अग्र) पहले (पवमानः) पवित्र करता हुआ (अर्षति) सर्वत्र प्राप्त है । ऐसे परमात्माको उपासक (वाजस्याग्रे) धनादि ऐश्वर्योंसे पहले (महाधनं) महाधनरूप उक्त परमात्माको (भजते) सेवन करता है । ऐसे उपासक को (स्वायुधः) अनन्तप्रकारकी शक्तिवाला (सोतृभिः) अपनी संस्कृत करनेवाली शक्तियोंके-द्वारा (वृषा) बलस्वरूप परमात्मा (पूयते) पवित्र करता है ।

भावार्थ—परमात्मा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन पञ्चतन्मात्राओं के आदिकारण अहङ्कार और महत्तत्त्व तथा प्रकृतिसे भी पहले विराजमान-था । उसी ने इस शब्द स्पर्श, रूप, रस, गन्धादि गुण युक्त संसारका निर्माण-किया है। जिन विचित्रशक्तियोंसे परमात्मा इन सूक्ष्मसे सूक्ष्म तत्त्वोंका निर्माता है उनसे हमारे हृदयको शुद्ध करे ॥१३॥

अयं मतवाञ्छकुनो यथा
हितोऽव्ये ससार पवमान ऊर्मिणा ।
तव क्रत्वा रोदसी अन्तरा कवे
शुचिर्धिया पवते सोम इन्द्र ते ॥ १३॥

अयं । मतऽवान् । शकुनः । यथा । हितः । अव्ये । ससार । पवमानः । ऊर्मिणा । तव । क्रत्वा । रोदसी इति । अंतरा । कवे । शुचिः । धिया । पवते । सोमः । इंद्र । ते ॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे कर्मयोगिन् ! (ते) तुभ्यम् (शुचिः) शुद्धस्वरूपः (सोमः) परमात्मा (पवते) पवित्रतां ददाति । (कवे) हे व्याख्यातः ! (तवक्रत्वाधिया) तव सुन्दर कर्म्मभिः (रोदसी अन्तरा) अस्मिन् ब्रह्माण्डे तुभ्यम् शुभफलं ददाति। अपरञ्च (अयं, मतवान्) अयं सर्वज्ञः परमात्मा (शकुनो-यथा) विद्युदिव (हितः) हितकरो भूत्वा (अव्ये) रक्षायुक्त-पदार्थे (ससार) प्रविष्टोभवति । एवम् (पवमानः) पवित्रयन् परमात्मा (ऊर्मिणा) स्वप्रेम्णः वेगरूपशक्तिभिः सर्वं पवित्रयति ।

पदार्थ—(इन्द्र) हे कर्म्मयोगिन (ते) तुम्हारे लिये (शुचिः) शुद्धस्वरूप (सोमः) परमात्मा (पवते) पवित्रता देनेवाला है । (कवे) हे व्याख्यातः । (तवक्रत्वाधिया) तुम्हारे सुन्दर कर्म्मों के द्वारा (रोदसी-अन्तरा) इस ब्रह्माण्डमें तुम्हें शुभफल देता है । और (अयं, मतवान्) यह सर्वज्ञ परमात्मा (शकुनो यथा) जिस प्रकार विद्युत (हितः) हितकर होकर (अव्ये) रक्षायुक्त पदार्थ में (ससार) प्रविष्ट होजाता है । एवं (पवमानः) सबको पवित्र करनेवाला परमात्मा (ऊर्मिणा) अपने प्रेमकी वेगरूप शक्तियों-से सबको पवित्र करता है ।

भावार्थ—परमात्मा कर्म्मोंके द्वारा शुभफलोंका प्रदाता है । इस लिये मनुष्योंको चाहिये कि वे उत्तम कर्म्म करें । ताकि उन्हे कर्म्मानुसार उत्तम फल मिले ॥ १३ ॥

द्रापिं वसा॑नो यज॒तो दि॑वि॒स्पृश॑-
मन्तरिक्ष॒प्रा भुव॑ने॒ष्वर्पि॑तः ।
स्व॑र्जज्ञा॒नो नभ॑सा॒भ्य॑क्रमीत्प्र॒त्नम॑स्य
पि॒तर॒मा वि॑वासति ॥ १४ ॥

द्रापिं । वसा॑नः । य॒ज॒तः । दि॒वि॒ऽस्पृश॑म् । अ॒न्त॒रि॒क्ष॒ऽप्राः । भुव॑नेषु । अर्पि॑तः । स्वः॑ । ज॒ज्ञा॒नः । नभ॑सा । अ॒भि । अ॒क्र॒मी॒त् । प्र॒त्नम् । अ॒स्य॒ । पि॒तर॑म् । आ । वि॒वा॒स॒ति ॥ १४ ॥

पदार्थः—(द्रापिम) य. स्वकवचकर्म्मभिः (वसानः) शारीरिकींयात्रां करोति । (यजतः) अमुंकर्म्मशीलम) (दिविस्पृशम) सत्कर्म्मभिरुच्चपुरुषम् (अन्तरिक्षप्राः) अन्तरिक्ष पूरकः परमात्मा (भुवनेष्वर्पितः) यः सर्वत्र विद्यते (स्वर्जज्ञानः) स्वर्गादिलोकानामुत्पादकः (नभसा) सूक्ष्मसूत्रात्मभिः (अक्रमीत) चेष्टते (अस्यपितरम्) अस्यब्रह्माण्डस्यपिता (प्रत्नम्) अपि च प्राचीनोऽस्ति । तमुपासकः (आविवासति) स्वलक्ष्यं कृत्वा गृह्णाति ।

पदार्थ—(द्रापिम) जो अपने कवचरूपी कर्म्मोंके द्वारा (वसानः) शारीरिकयात्रा करता है । (यजतः) उस कर्म्मशील (दिविस्पृशम्) सत्कर्म्मों-द्वारा उच्च पुरुषको (अन्तरिक्षप्रा) अन्तरिक्षकी पूर्ति करनेवाला परमात्मा (भुवनेष्वर्पितः) जो सर्वत्र व्याप्त है । (स्वर्जज्ञानो) स्वर्गादि लोकोंको उत्पन्न करनेवाला (नभसा) सूक्ष्मसूत्रात्मा द्वारा (अक्रमीत्) चेष्टा करता-है । (अस्य पितरं) इस संपूर्ण ब्रह्माण्डका जो पिता है (प्रत्नं) और-

जो कि प्राचीन है । उसको उपासक पुरुष (आविवासति) अपना लक्ष्य बनाकर ग्रहण करता है ।

भावार्थ—स्वर्गलोकके अर्थ यहां सुखकी अवस्था विशेषके हैं ॥१४॥

सो अस्य विशे महि शर्म यच्छति
यो अस्य धाम प्रथमं व्यानशे ।
पदं यदस्य परमे व्योमन्यतो विश्वा
अभि सं याति संयतः ॥ १५ ॥ १४ ॥

सः । अस्य । विशे । महि । शर्म । यच्छति । यः । अस्य । धाम । प्रथमं । विऽआनशे । पदं । यत् । अस्य । परमे । विऽओमनि । अतः । विश्वाः । अभि । सं । याति । संऽयतः ॥

पदार्थः—(सः) उक्तपरमात्मा (अस्य) जिज्ञासोः (विशे) शरणागते सति (महि) महत (शर्म्म) सुखं तस्मै (यच्छति) ददाति । यो जिज्ञासुः (अस्य धाम) अस्य स्वरूपम् (प्रथमम्) प्राक् (व्यानशे) प्रविश्य गृह्णाति । अपरञ्च (यत्, अस्य) परमात्मनः (पदम्) स्वरूपमस्ति । (परमे, व्योमनि) यः सूक्ष्मादपि सूक्ष्मे महदकाशे विस्तीर्णस्तं गृह्णाति । (अतः) अस्मात्कारणात् (विश्वाः) सर्वथा (संयतः) संयमी भूत्वा (सत्कर्माण्यभि) सत्कर्म्माणि (संयाति) प्राप्नोति ।

पदार्थ—(सः) उक्त परमात्मा) (अस्य) जिज्ञासु के (विशे)-शरणागत होनेपर (महि) बड़ा (शर्म्म) सुख (यच्छति) उसको देता-

है । (यः) जो जिज्ञासु) (अस्य धाम) इसके स्वरूपको (प्रथमं) पहले (व्यानशे) प्रवेश होकर ग्रहण करता है । और (यत्) जो (अस्य) इस परमात्माका (पदं) स्वरूप है । (परमे व्योमनि) जो सूक्ष्मसे सूक्ष्म महदकाशमें फैला हुआ है । उसको ग्रहण करता है ।(अतः) इसलिये (विश्वाः) सब प्रकारसे (संयतः) संयमी जिज्ञासु कर (सत्कर्म्माण्यभि) सत्कर्मोंको (संयाति) प्राप्त होता है ।

भावार्थ—तद्विष्णोः परमं पदं सदापश्यन्ति सूरयः, इत्यादि विष्णु के स्वरूप निरूपण करनेवाले मंत्रोंमें जो विष्णुके स्वरूपका वर्णन है वही वर्णन यहां पद शब्दसे किया है । पदके अर्थ किसी अङ्ग विशेषके नहीं किन्तु स्वरूपके हैं ॥ १९ ॥

प्रो अ॑यासी॒दिन्दु॒रिन्द्र॑स्य निष्कृ॒तं सखा॒
सख्यु॒र्न प्र मि॑नाति स॒ङ्गिर॑म् ।
मर्य॑ इव यु॒व॒ति॒भि॒ः सम॑र्षति॒ सोम॑ः
क॒लशे॑ श॒तया॑म्ना प॒था ॥ १६ ॥

प्रो इति॑ । अ॒या॒सी॒त् । इन्दु॑ः । इन्द्र॑स्य । निः॒ऽकृ॒तं । सखा॑ । सख्यु॑ः । न । प्र । मि॒ना॒ति॒ । सं॒ऽगिर॑ं । मर्य॑ःऽइव । यु॒व॒ति॒ऽभि॑ः । सं । अ॒र्ष॒ति॒ । सोम॑ः । क॒लशे॑ । श॒त॒ऽया॑म्ना । प॒था ॥

पदार्थः—(इन्दुः) सर्वप्रकाशः परमात्मा (इन्द्रस्य) कर्मयोगिनः (निष्कृतम्) संस्कृतमन्तःकरणम् (प्रो अयासीत्) सर्वप्रकारेण प्राप्नोति । अन्यच्च (सख्युः) मित्रस्य (न) इव (सखा) मित्रं भवति । अपरञ्च (संगिरम्) सर्वशक्तीः

(प्रमिनाति) प्रमाणयति (युवितिभिरिव) प्रौढस्त्रीभिर्यथा (मर्य्यः) मर्य्यादा स्थिरा भवति । (कलशे) अस्मिन् ब्रह्माण्डकलशे (शतयाम्ना पथा) शतशक्तिमता मार्गेण परमात्मा (समेर्षति) सर्वथा गच्छति ।

पदार्थ—(इन्दुः) सर्वप्रकाशक परमात्मा (इन्द्रस्य) कर्मयोगी के (निष्कृतं) संस्कृत अन्तःकरणको (प्रो अयासीत्) भलिभाँति प्राप्त होता है । और (सख्युः) सखाके (न) समान (सखा) होता है । और (संगिरं) सम्पूर्ण शक्तियोंको (प्रमिनाति) प्रमाणित कर देता है । (युवतिभिरिव) युवति स्त्रियोंके द्वारा जैसे (मर्य्यः) मर्य्यादा स्थिर कि जाती है । (कलशे) इस ब्रह्माण्डरूपी कलशमें (शतयाम्ना पथा) सैकड़ों-शक्तियों वाले रास्तेसे परमात्मा (समर्षति) भलिभाँति गति कर रहा है ।

भावार्थ—जिस प्रकार स्त्रियें अपने सदाचारसे मर्यादाको बान्धती हैं, वा यों कहो कि मर्यादापुरुषोत्तम पुरुषोंको उत्पन्न करके मर्य्यादा बान्धती हैं इसी प्रकार परमात्मा वेद मर्य्यादारूप वैदिक पथसे महापुरुषोंका उत्पन्न करके मर्य्यादा बान्धते हैं ॥ १६ ॥

प्र वो धियो मन्द्रयुवो विपन्युवः
पनस्युवः संवसनेष्वक्रमुः ।
सोमं मनीषा अभ्यनूषत स्तुभोऽभि
धेनवः पयसेमशिश्रयुः ॥ १७ ॥

प्र । वः । धियः । मंद्रऽयुवः । विपन्युवः । पनस्युवः । संऽवसनेषु । अक्रमुः । सोमं । मनीषाः । अभि । अनूषत । स्तुभः । अभि । धेनवः । पयसा । ईं । अशिश्रयुः ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे परमात्मन्! (प्रबोधियः) तव ध्यानपरायणाः (मन्द्रयुवः) तवानन्दयाचकाः (विपन्युवः) उपासकाः (पनस्युवः) स्तुतिं कामयमानाः (संवसनेषु) उपासनास्थानेषु (अक्रमुः) प्रविशन्ति। अपिच (सोमम्) सर्वोत्पादकं परमात्मानम् (मनीषा) मनसः सूक्ष्मवृत्त्या (अभ्यनूषत) सर्वथा भवति निवसन्ति। (स्तुभो) यथोपास्यस्य (अभि) अभिमुखम् (धेनवः) इन्द्रियाणां वृत्तयः (पयसा) वेगेन (अशिश्रयुः) तमाश्रयन्ति। एवमुपासकचित्तवृत्तय ईश्वरस्याभिमुखं गच्छन्ति।

पदार्थ—हे परमात्मन्! (प्रबोधियः) तुम्हारा ध्यान करनेवाले (मन्द्रयुवः) तुम्हारा आनन्द चाहनेवाले (विपन्युवः) उपासकलोग (पनस्युवः) स्तुति की कामना करते हुए (संवसनेषु) उपासना स्थानोंमें (अक्रमुः) प्रवेश करते हैं। और (सोमं) सर्वोत्पादक परमात्माको (मनीषा) चित्तकी सूक्ष्मवृत्ति द्वारा (अभ्यनूषत) सब प्रकारसे आपमें निवास करते हैं (स्तुभो) जैसे उपास्यके (अभि) अभिमुख (धेनवः) इन्द्रियोंकी वृत्तियें (पयसा) वेगसे (अशिश्रयुः) उसको आश्रयण करती हैं। इसी प्रकार उपासककी चित्तवृत्तियें ईश्वर की ओर झुक जाती हैं।

भावार्थ—जो पुरुष समाहित चित्तसे ईश्वरका ध्यान करते हैं। उन की चित्तवृत्तियें प्रबलप्रवाहसे ईश्वरकी ओर झुक जाती हैं॥ १७॥

आ नः सोम संयतं पिप्युषी-
मिषमिन्दो पवस्व पवमानो अस्त्रिधम्।
या नो दोहते त्रिरहन्नसंश्चुषी
क्षुमद्वाजवन्मधुमत्सुवीर्यम्॥ १८॥

आ । नः । सोम । संऽयतं । पिप्युषीं । इषं । इंदो इति । पर्वस्व पर्वमानः । अस्रिधं । या । नः । दोहते । त्रिः । अहन् । असश्चुषी । क्षुऽमत् । वाजंऽवत् । मधुंऽमत् । सुऽवीर्यं ॥ १८ ॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप । (त्वम्) (नः) अस्माकम् (संयतम्) सम्बन्धि अपि च (पिप्युषीं) वृद्धियुक्तम् (इषम्) ऐश्वर्य्यम् (अस्रिधम्) अक्षयधनैः (आपवस्व) सर्वथा मां पवित्रयतु । (या) यतोहि (नः) अस्माकम् (त्रिरहन्) भूतादित्रिकालेषु (असश्चुषी) अप्रातिबन्धम (क्षुमत) महदैश्वर्य्यवत् (वाजवत्) बलयुक्तम् (मधुमत्) मधुयुक्तम् (सुवीर्य्यम्) बलकारकमैश्वर्य्यं भवान् (दोहते) परिपूरयतु ।

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप ! आप (नः) हमारे (संयतं) सम्बन्धी और (पिप्युषीम्) वृद्धियुक्त (इषं) ऐश्वर्यको (अस्रिधं) जो अक्षय हो ऐसे धनसे (आपवस्व) सब ओर से हमको पवित्र करें । (या) जो कि (नः) हमारे सम्बन्धमें (त्रिरहन्) भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालोंमें (असश्चुषी) प्रतिबन्ध रहित (क्षुमत्) बहुत ऐश्वर्य वाली (वाजवत्) बलवाली (मधुमत्) मधुर युक्त (सुवीर्यं) बल करने वाले ऐश्वर्यको आप (दोहते) परिपूर्ण करें ॥

भावार्थ—स्वनियमानुकूलचलनेवाले पुरुषोंके लिये परमात्मा अक्षय धनको प्रदान करते हैं ॥ १८ ॥

वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो
अह्नः प्रतरीतोषसो दिवः ।

क्राणा सिन्धूनां कलशाँ अवीवश-

दिन्द्रस्य हार्द्याविशन्मनीषिभिः ॥ १९ ॥

वृषा । मतीनां । पवते । विऽचक्षणः । सोमः । अह्नः । प्रऽतरीता । उषसः । दिवः । क्राणा । सिंधूनां । कलशान् । अवीवशत् । इंद्रस्य । हार्दि । आऽविशन् । मनीषिऽभिः ॥

पदार्थः—परमात्मा (मनीषिभिः) सदुपदेशैरुपदिष्टस्य (इन्द्रस्य) कर्म्मयोगिनः (हार्दि) हृदये (आविशन्) प्रवेशं कुर्वन् (कलशान्) कर्म्मयोगिनोऽन्तःकरणानि (अवीवशत्) कामयते। यः परमात्मा (दिवः) द्युलोकस्य (सिन्धूनां) स्यन्दनशीलसूक्ष्मपदार्थानां (क्राणा) कर्ता अस्ति । अपि च (अह्नः) दिवसस्य (उषसः) ज्योतिषां (प्रतरीता) वर्द्धकोऽस्ति । (सोमः) सर्वोत्पादकपरमात्मा (विचक्षणः) सर्वज्ञः परमेश्वरो (मतीनां) उपासकानां कामनानां (वृषा) पूरकः पूर्वोक्तपरमात्मा अस्मान् (पवते) पवित्रयतु ।

पदार्थ—परमात्मा (मनीषिभिः) सदुपदेशकोंसे उपदेश किया हुआ (इन्द्रस्य) कर्मयोगीके (हार्दि) हृदयमें (आविशन्) प्रवेश करता हुआ (कलशान्) कर्मयोगियोंके अन्तःकरणोंकी (अवीवशत्) कामना करता है । जो परमात्मा (दिवः) द्युलोकको (सिन्धूनां) स्यन्दनशील सूक्ष्म तत्त्वोंका (क्राणा) कर्ता है और (अह्नः) दिनके (उषसः) ज्योतियोंका (प्रतरीता) वर्द्धक है । (सोमः) वह सर्वोत्पादक परमात्मा (विचक्षणः) सर्वज्ञ परमेश्वर हमारी (मतीनां) उपासकोंको कामनाओंकी (वृषा) पूर्ति करने वाला उक्त परमात्मा हम लोगोंको (पवते) पवित्र करे।

भावार्थ—जो लोग सदुपदेशकोंके सदुपदेशको श्रद्धापूर्वक ग्रहण करते हैं, उनके अन्तःकरणोंको परमात्मा अवश्यमेव पवित्र करता है ॥

मनीषिभिः पवते पूर्व्यः कविर्नृ-
भिर्यतः परि कोशाँ अचिक्रदत् ।
त्रितस्य नाम जनयन्मधु
क्षरदिन्द्रस्य वायोः सख्याय कर्तवे ॥२०॥१५॥

मनीषिऽभिः । पवते । पूर्व्यः । कविः । नृऽभिः । यतः । परि । कोशान् । अचिक्रदत् । त्रितस्य । नाम । जनयन् । मधु । क्षरत् । इंद्रस्य । वायोः । सख्याय । कर्तवे ॥

पदार्थः—(मनीषिभिः) विद्वद्भिरुपदिष्टः (पूर्व्यः) अनादिसिद्धः परमात्मा (पवते) अस्मान् पवित्रयति । यः परमात्मा (कविभिः) विद्वद्भिः (यतः) गृहीतोऽस्ति । सः (कोशान्) प्रकृतेः कोशान् (अचिक्रदत्) शब्दादिभिः प्रसिद्धयति । सः (मधु) सानन्दः परमात्मा (त्रितस्य) सत्वरजस्तमसां साम्यावस्थारूपप्रकृतिपुञ्जं (नामजनयन्) नामरूपे विभजमानः (इन्द्रस्य) कर्म्मयोगिनः (वायोः) तथा ज्ञानयोगिनः (सख्याय) मैत्रीं (कर्तवे) कर्तुं (क्षरत) निजानन्दं प्रवाहयति ।

पदार्थ—(मनीषिभिः) विद्वानोंसे उपदेश किया हुआ (पूर्व्यः) अनादिसिद्ध परमात्मा (पवते) हमको पवित्र करता है जो परमात्मा

(कविभिः) विद्वानों द्वारा (यतः) ग्रहण किया हुआ है, वह (कोशान्) प्रकृतिके कोशोंको (अचिक्रदत्) शब्दादि द्वारा प्रसिद्ध करता है । वह (मधु) आनन्दयुक्त परमात्मा (त्रितस्य) सत्व रज और तमो गुणकी साम्यावस्थारूप प्रकृतिपुञ्जको (नामजनयन्) नाम रूपमें विभक्त करता हुआ (इन्द्रस्य) कर्मयोगी के (वायोः) तथा ज्ञानयोगीके साथ (सख्याय) मैत्री (कर्तवे) करनेके लिये (त्वरत) अपने आनन्दको प्रवाहित करता है ॥

भावार्थ—कर्मयोगी और ज्ञानयोगी लोग परमात्मगुणोंके धारण करनेसे परमात्माके साथ एक प्रकारकी मैत्री उत्पन्न करते हैं । अर्थात् " अहंवात्वामसिभगवो देवेतत्त्वंवा अहमस्मि " कि-" मैं, तू , " और " तू मैं " इस प्रकारकी अहंग्रहउपासना द्वारा अर्थात् अभेदोपासना द्वारा परमात्माका ध्यान करते हैं ॥ २० ॥

अयं पुनान उषसो विरोचयदयं
सिन्धुभ्यो अभवदु लोककृत् ।
अयं त्रिः सप्त दुदुहान आशिरं
सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः ॥ २१ ॥

अयं । पुनानः । उषसः । वि । रोचयत् । अयं । सिंधुऽभ्यः । अभवत् । ऊं इति । लोकऽकृत् । अयं । त्रिः । सप्त । दुदुहानः । आऽशिरं । सोमः । हृदे । पवते । चारु । मत्सरः ।

पदार्थः—(अयं) पूर्वोक्तः परमात्मा स्वशक्तिभिः (पुनानः) पवित्रयन् अपिच (उषसः) प्रभातकालं (विरोचयत) प्रकाशयन् (सिन्धुभ्यः) स्यन्दनशीलप्रकृतेः सूक्ष्मतत्त्वैः

(लोककृत्) जगत्कर्ता (अभवत) भवतिस्म । (उ) अयं दृढताबोधकोऽस्ति (अयं, त्रिः, सप्त) अयं परमात्मा प्रकृतेरेकविंशतिसंख्याकमहत्तत्वादिपदार्थान् (दुदुहानः) दुहन् (आशिरं) ऐश्वर्य्यमुत्पाद्य (सोमः) अयं जगदुत्पादकपरमात्मा किम्भूतः, (चारुमत्सरः) अतिशयाह्लादकः (हृदे) मम हृदये (पवत) पवित्रयति ।

पदार्थ—(अयं) पूर्वोक्त परमात्मा अपनी शक्तियोंसे (पुनानः) पवित्र करता हुआ और (उपसः) उषाकालका (विरोचयत्) प्रकाश करता हुआ (सिन्धुभ्यः) स्यन्दनशीला प्रकृतिके सूक्ष्म तत्त्वोंसे (लोककृत्) संसारका करनेवाला (अभवत) हुआ (उ) यह दृढताबोधक है । (अयं त्रिः सप्त) यह परमात्मा प्रकृतिके एकविंशति महत्तत्वादि तत्त्वों को (दुदुहानः) दोहन करता हुआ (आशिरं) ऐश्वर्यको उत्पन्न करके (सोमः) यह जगदुत्पादक परमात्मा (चारुमत्सरः) जो अत्यन्त आह्लादक है वह (हृदये) हमारे हृदयमें (पवते) पवित्रता प्रदान करता है ।

भावार्थ—परमात्माने प्रकृतिसे महत्तत्व उत्पन्न किया और महत्तत्त्वसे जो अहंकारादि एकविंशति गण है उसीका यहां " त्रिः सप्त " शब्दसे गणन है किसी अन्यका नहीं ॥ २१ ॥

पव॑स्व सोम दि॒व्येषु॒ धाम॑सु सृजा॒न
इन्दो॑ क॒लशे॑ प॒वित्र॒ आ ।
सीद॒न्निन्द्र॑स्य ज॒ठरे॒ कनि॑क्रद॒-
न्नृभि॒र्यतः॒ सूर्य॒मारो॑हयो॒ दि॒वि ॥ २२ ॥

पव॑स्व । सोम॒ । दि॒व्येषु॑ । धाम॑ऽसु । सृ॒जा॒नः॒ । इं॒दो॒ इति॑ ।

कलशे । पवित्रे । आ । सीदन् । इंद्रस्य । जठरे । कनि-
क्रदत् । नृऽभिः । यतः । सूर्यं । आ । अरोहयः दिवि ॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (दिव्येषु धामसु) द्युलोकादिस्थानेषु (सृजानः) उक्तसृष्टिरचयिता त्वं (पवस्व) पवित्रय । (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (पवित्रे कलशे) पूतान्तःकरणेषु (आसीदन्) तिष्ठन् (इन्द्रस्य) कर्म्मयोगिनः (जठरे) सत्तास्फूर्तिदायके जठराग्नौ (कनिक्रदत) गर्जन् (नृभिर्यतः) मनुष्यस्थानविषये त्वं (दिवि) द्युलोके (सूर्य्यं) रवेः (आरोहय) आश्रयणं कुरु ।

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन ! (दिव्येषु धामसु) द्युलोकादि स्थानोंमें (सृजानः) उक्त सृष्टिको रचनेवाले आप (पवस्व) पवित्र करें । (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप ! (पवित्रे कलशे) पवित्र अन्तःकरणों में (आसीदन) स्थिति करते हुए आप (इन्द्रस्य) कर्मयोगीकी (जठरे) सत्तास्फूर्ति देनेवाली जठराग्निमें (कनिक्रदत) गर्जते हुए (नृभिर्यतः मनुष्यों के स्थान के विषय आप (दिवि) द्युलोकमें (सूर्यं) सूर्य को (आरोहयः) आश्रय करे ।

भावार्थ—परमात्मा सूर्य-चन्द्रमादिकोंका निर्माण करता हुआ इस विविध प्रकारकी रचनाका निर्माण करके प्रजाको उद्योगी बनाने के लिये कर्मयोगी की कर्माग्निको प्रदीप्त करता है ॥ २२ ॥

अद्रिभिः सुतः पवसे पवित्र आँ
इन्दविन्द्रस्य जठरेष्वाविशन् ।

त्वं नृचक्षा अभवो विचक्षण सोम
गोत्रमङ्गिरोभ्योऽवृणोरप ॥ २३ ॥

अद्रिऽभिः । सुतः । पवसे । पवित्रे । आ । इंदोइति । इंद्रस्य । जठरेषु । आऽविशन् । त्वं । नृऽचक्षाः । अभवः । विऽचक्षण । सोम । गोत्रं । अंगिरःऽभ्यः । अवृणोः । अप ॥

पदार्थः—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूपपरमात्मन् । त्वं (इन्द्रस्य) कर्म्मयोगिनः कर्म्मप्रदीप्ते (जठरेषु) अग्नौ (आविशन्) प्रवेशं कुर्वन् (अद्रिभिः सुतः) वज्रेण संस्कृतं कर्म्मयोगिनं (पवसे) पवित्रयसि । (आ) अपिच (पवित्रे) अस्य पवित्रान्तःऽकरणे (अभवः) निवस (नृचक्षाः) त्वं सर्वद्रष्टाऽसि (विचक्षणः) तथा सर्वज्ञोऽसि । (सोम) हे जगदुत्पादक ! त्वं (अङ्गिरोभ्यः) प्राणायामा दिभिः (गोत्रं) कर्म्मयोगिशरीरं रक्ष । अन्यच्च तस्य विघ्नानि (अपावृणोः) अपसारय ।

(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन ! आप (इन्द्रस्य) कर्मयोगी के कर्मप्रदीप्त (जठरेषु) अग्नि में (आविशन) प्रवेश करते हुए (अद्रिभिः सुतः) वज्रसे संस्कार किये हुए कर्मयोगीको (पवसे) पवित्र करते हैं । (आ) और (पवित्रे) उसके पवित्र अन्तःकरणमें (अभवः) निवास करें । (नृचक्षाः) तुम सर्वद्रष्टा हो (विचक्षणः) तथा सर्वज्ञ हो । (सोम) हे जगदुत्पादक ! आप (अङ्गिरोभ्यः) प्राणायामादि द्वारा (गोत्रं) कर्मयोगीके शरीरकीरक्षा करें और उसके विघ्नों को (अपावृणोः) दूर करें ॥

भावार्थ—"गौर्वाग्गृहीता अनेनेति गोत्रं शरीरम्" जो वाणी को ग्रहण करे उसका नाम यहां गोत्र है इस प्रकार यहां शरीर और प्राणोंका वर्णन इस मन्त्रमें किया गया है । और सायणाचार्यने गोत्रके अर्थ यहां मेघके किये हैं और "आङ्गिरोभ्यः" के अर्थ कुछ नहीं किये हैं यदि सायणाचार्यके अर्थोंको उपयुक्त भी माना जाय तो अर्थ ये बनते हैं हे सोमलते ! तुम अङ्गिरादि ऋषियोंसे मेघोंको दूर करो इस प्रकार सर्वथा असंबद्ध प्रलाप हो जाता है । वास्तवमें यह प्रकरण कर्मयोगीका है और उसी को प्राणोंकी पुष्टिके द्वारा विघ्नोंको दूर करना लिखा है॥२३॥

त्वां सोम पवमानं स्वाध्योऽनु
विप्रासो अमदन्नवस्यवः ।
त्वां सुपर्ण आभरद्दिवस्परीन्दो
विश्वाभिर्मतिभिः परिष्कृतम् ॥ २४ ॥

त्वां । सोम । पवमानं । सुऽआध्यः । अनु । विप्रासः । अमदन् । अवस्यवः । त्वां । सुऽपर्णः । आ । अभरत् । दिवः । परि । इंदो इति । विश्वाभिः । मतिऽभिः । परिऽकृतं ॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (पवमानं,त्वां) सर्वपूज्यं त्वां (स्वाध्यः) सुकर्म्माणः किम्भूताः (विप्रासः) मेधाविनः पुनः किम्भूताः (अवस्यवः) त्वदुपासनपरायणाः (अन्वमदन्) भवन्तंस्तुवन्ति । (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप ! (त्वां) भवन्तं (सुपर्णः) सबोधोपासकः (आभरत्) उपासनया गृह्णाति किम्भूतस्त्वं (दिवस्परि) द्युलोकस्य मर्य्यादा-

मुलङ्घ्यस्थितः । अपरञ्च (विश्वाभिर्मतिभिः) निखिलज्ञानैः (परिष्कृतं) अलङ्कृतोऽसि ।

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन ! (पवमानं त्वां) सर्वपूज्य तुझको (स्वाध्यः) सुकर्म्मीलोग (विप्रासः) जो मेधावी हैं । और (अवस्यव) आपकी उपासनाकी इच्छा करनेवाले हैं । वे (अन्वमदन) आपकी स्तुति करते हैं । (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप (त्वां) तुझको (सुपर्णः) बोधयुक्त उपासक (आभरत) उपासना द्वारा ग्रहण करता है । तुम कैसे (दिवस्परि) कि द्युलोककी भी मर्य्यादा को उलंघन करके वर्तमान हो । और (विश्वाभिर्मतिभिः) सम्पूर्ण ज्ञानोंसे (परिष्कृतम) अलंकृत हो ।

भावार्थ—जो लोग विद्या द्वारा अपनी बुद्धिका परिष्कार करते हैं । वेही परमात्माकी विभूतिको जान सकते हैं । अन्य नहीं ॥ २४ ॥

अव्ये॑ पुना॒नं परि॒ वार॑ ऊ॒र्मिणा॒ हरिं॒
नव॑न्ते अ॒भि स॒प्त धे॒नवः॑ ।
अ॒पामु॒पस्थे॑ अ॒ध्याय॒वः॑ क॒विमृ॒तस्य॒
योना॑ महि॒षा अ॑हेषत ॥ २५ ॥ १६ ॥

अव्ये॑ । पु॒नानं॑ । परि॑ । वारे॑ । ऊ॒र्मिणा॑ हरिः॑ । न॒व॒न्त॒ । अ॒भि । स॒प्त । धे॒नवः॑ । अ॒पां । उ॒पऽस्थे॑ । अधि॑ । आ॒यवः॑ । क॒विं । ऋ॒तस्य॑ । योना॑ । म॒हि॒षाः । अ॒हे॒ष॒त ॥

पदार्थः—(अव्ये, वारे) वरणीयपुरुषे (ऊर्मिणा) प्रीत्या (पुनानं) पवित्रकर्तारं (हरिं) परमात्मानं (सप्तधेनवः)

इन्द्रियाणां सप्तवृत्तयः (अभिनवन्ते) प्राप्नुवन्ति (अपामुपस्थे) कर्म्माध्यक्षतायांयः(कविं) सर्वज्ञोऽस्ति तं (अध्यायवः) उपासकाः किम्भूताः (महिषाः) महाशयाः (ऋतस्ययोना) सत्यस्थानेषु (अध्यहेषत) उपासनां कुर्वन्ति ।

पदार्थ—(अव्ये वारे) वरणीय पुरुषको (ऊर्मिणा) प्रेमसे (पुनानं) पवित्र करनेवाले (हरिम्) परमात्माको (सप्तधेनवः) इन्द्रियोंकी सात वृत्तियें (अभिनवन्ते) प्राप्त होती हैं (अपामुपस्थे) कर्म्मोंकी अध्यक्षतामें जो (कविं) सर्वज्ञ है । उसको (अध्यायवः) उपासक लोग जो (महिषाः) महाशय हैं वे (ऋतुस्ययोना) सचाईके स्थानमें (अध्यहेषत) उपासना करते हैं ।

भावार्थ—सदसद्विवेकी लोग अन्य उपास्य देवोंकी उपासनाको छोड़कर सब कर्म्मोंके अधिष्ठाता परमात्माकी ही एकमात्र उपासना करते हैं । किसी अन्य की नहीं ॥ २८ ॥

इन्दुः पुनानो अति गाहते मृधो
विश्वानि कृण्वन्त्सुपथानि यज्यवे ।
गाः कृण्वानो निर्णिजं हर्यतः कवि-
रत्यो न क्रीळन्परि वारमर्षति ॥ २६ ॥

इंदुः । पुनानः । अति । गाहते । मृधः । विश्वानि । कृण्वन् । सुऽपथानि । यज्यवे । गाः । कृण्वानः । निःऽनिजं । हर्यतः । कविः । अत्यः । न । क्रीळन् । परि । वारं । अर्षति ॥२६॥

पदार्थः—(यज्वे) यज्ञकर्तृभ्यो यजमानेभ्यः परमात्मा (विश्वानिसुपथानि) सर्वान् मार्गान्(कृण्वन्) संशोधयन् (मृधः) तस्य विघ्नानि (अतिगाहते) मर्दनं करोति । अपिच (पुनानः) तं पवित्रयन्, अन्यच्च (निर्निजं) निजरूपम् (गाः कृण्वानः) सरलयन् (हर्य्यतः) सकान्तिमयः परमात्मा किम्भूतः (कविः) सर्वज्ञः (अत्योन) विद्युदिव (क्रीळन्) खेलन् (वारं) वरणीय पुरुषं (पर्य्यर्षति) प्राप्नोति ॥

पदार्थ—(यज्वे) यज्ञ करनेवाले यजमानोंके लिये परमात्मा (विश्वानि सुपथानि) सब रास्तोंको(कृण्वन) सुगम करता हुआ (मृधः) उनके विघ्नोंको (अतिगाहते) मर्दन करता है । और (पुनानः) उनको पवित्र करता हुआ और (निर्निजं), अपने रूपको (गाः कृण्वानः) सरल करता हुआ (हर्य्यतः) वह कान्तिमय परमात्मा (कविः) सर्वज्ञ (अत्योन) विद्युत्के समान (क्रीळन्) क्रीड़ा करता हुआ (वारं) वरणीय पुरुषको (पर्य्यर्षति) प्राप्त होता है ।

भावार्थ—जो लोग परमात्माकी आज्ञाओं का पालन करते हैं । परमात्मा उनके लिये सब रास्तों को सुगम करता है ॥ २६ ॥

असश्चतः शतधारा अभिश्रियो
हरिं नवन्तेऽव ता उदन्युवः ।
क्षिपो मृजन्ति परि गोभिरावृतं
तृतीये पृष्ठे अधि रोचने दिवः ॥ २७ ॥

असश्चतः । शतऽधाराः । अभिऽश्रियः । हरिं । नवंते । अवं । ताः । उदन्युवः । क्षिपः । मृजंति । परि । गोभिः । आऽवृतं । तृतीये । पृष्ठे । अधि । रोचने । दिवः ॥ २७ ॥

पदार्थः—(उदन्युवः) प्रीतेः (ताः) पूर्वोक्ताः (शतधाराः) शतधाराः याः (असश्चतः) नानारूपेषु (अभिश्रियः) स्थितिं लभन्ते । ताः (हरिं) परमात्मानं (अवनवन्ते) प्राप्नुवन्ति (गोभिरावृतं) प्रकाशपुञ्जंपरमात्मानं (क्षिपः) बुद्धिवृत्तयः (मृजन्ति) विषयं कुर्वन्ति । यः परमात्मा (दिवः, तृतीये, पृष्ठे) द्युलोकस्य तृतीयके पृष्ठे विराजते । अन्यच्च (रोचने) प्रकाशस्वरूपोऽस्ति बुद्धिवृत्तयस्तं प्रकाशयन्ति ।

पदार्थ—(उदन्युवः) प्रेम की (ताः) वे (शतधाराः) सैकड़ों धारायें (असश्चतः) जो नानारूपों में (अभिश्रियः) स्थिति को लाभ कर रही हैं। वे (हरिं) परमात्माको (अवनवन्ते) प्राप्त होती हैं । (गोभिरावृतं) प्रकाशपुञ्ज परमात्माको (क्षिपः) बुद्धिवृत्तियें (मृजन्ति) विषय करती हैं । जो परमात्मा (दिवस्तृतीये पृष्ठे) द्युलोकके तीसरे पृष्ठ पर विराजमान है। और (रोचने) प्रकाशस्वरूप है । उस को बुद्धिवृत्तियें प्रकाशित करती हैं ॥

भावार्थ—द्युलोकादिकोंके प्रकाशक परमात्माको मनुष्य ज्ञानकी वृत्तियों से ही साक्षात्कार करता है । अन्यथा नहीं ॥ २७ ॥

तवेमाः प्रजा दिव्यस्य रेतसस्त्वं
विश्वस्य भुवनस्य राजसि ।

अथेदं विश्वं पवमान ते वशे त्व-
मिन्दो प्रथमो धामधा असि ॥ २८ ॥

तवं । इमाः । प्रऽजाः । दिव्यस्यं । रेतसः । त्वं । विश्वस्य । भुवनस्य । राजसि । अथं । इदं । विश्वं । पवमान । ते । वशे । त्वं । इंदो इतिं । प्रथमः । धामऽधाः । असि ॥

पदार्थः—(तव, दिव्यस्य, रेतसः) ते दिव्यसामर्थ्यात् (इमाः, प्रजाः) एते जना उत्पद्यन्तेस्म । (त्वं) पूर्वोक्तः (विश्वस्य, भुवनस्य) सम्पूर्णसृष्टेः (राजसि) राजाभूत्वा विराजसे । (पवमान) हे सर्वपावक परमात्मन् ! (इदं, विश्वं) इदं सर्वं जगत् (ते, वशे) तवाधीनम् । (अथ) अपि च (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! (त्वं, प्रथमं) त्वमेव प्रथमं (धामधाः, असि) निवासस्थानमसि ।

पदार्थ—(तव दिव्यस्य, रेतसः) तुम्हारे दिव्य सामर्थ्यसे (इमाः प्रजाः) ये सब प्रजा उत्पन्न हुई हैं । (त्वं) तुम (विश्वस्य) भुवनस्य) सम्पूर्ण सृष्टिके (राजसि) राजा होकर विराजमान हो । (पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (इदं विश्वं) ये सम्पूर्ण संसार (ते वशे) तुम्हारे वशमें है । (अथ) और (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (त्वं प्रथमं) तुमही पहले (धामधाः) सबके निवास स्थान (असि) हो ।

भावार्थ—परमात्मा सबका अधिकरण है । इसलिये सब भूतोंका निवास स्थान वहीं है ॥ २८ ॥

त्वं संमुद्रो अंसि विश्वविकवे
तवेमाः पञ्च प्रदिशो विधर्मणि ।
त्वं द्यां च पृथिवीं चाति जभ्रिषे
तव ज्योतींषि पवमान सूर्यः ॥ २९ ॥

त्वं । समुद्रः । असि । विश्वऽवित् । कवे । तव । इमाः । पंच । प्रऽदिशः । विऽधर्मणि । त्वं । द्यां । च । पृथिवीं । च । अति । जभ्रिषे । तव । ज्योतींषि । पवमान । सूर्यः ॥

पदार्थः—(विश्वावित्, कवे) हे सर्वविश्वज्ञ ! परमात्मन् ! (त्वं) पूर्वोक्तस्त्वं (समुद्रोऽसि) समुद्रः "सम्यग्द्रवन्ति भूतानि यस्मात्ससमुद्रः, यस्मात्सर्वभूतान्युत्पद्यन्ते तस्येह नाम समुद्रः । (तव विधर्म्मणि) तव विशेषसत्तायां (इमाः, पञ्च, प्रदिशः) एषां पञ्चभूतानां सूक्ष्माणि पञ्च तन्मात्राणि विराजन्ते । अपि च (त्वं, द्याञ्च) त्वं द्युलोकस्य (पृथिवीञ्च) पृथिवीलोकस्य च (अति, जभ्रिषे) भरणं पोषणञ्च करोषि । अन्यच्च हे परमात्मन् ! (सूर्य्यः) सूर्य्यो पि (तवऽज्योतींषि) तव तेजांस्यस्ति ।

पदार्थ—(विश्ववित् कवे) हे सम्पूर्ण विश्व के ज्ञाता परमात्मन् (त्वं) तुम (समुद्रोऽसि) समुद्र हो "सम्यग् द्रवन्ति भूतानि यस्मात् स समुद्रः, जिसमें सब भूत उत्पत्ति स्थिति प्रलय को प्राप्त हों उसका नाम यहां समुद्र है । (तव विधर्म्मणि) तुम्हारी विशेषसत्ता में (इमाः पञ्च प्रदिशः । इन पांचों भूतों के सूक्ष्म पञ्च तन्मात्र विराजमान हैं । और (त्वंद्याञ्च) आप द्युलोक

को (पृथिवीश्च) और पृथिवी लोक को अति (जभ्रिषे) भरणपोषण करते हैं । और हे पवमान परमात्मन ! (सूर्य्यः) सूर्य्य भी (तव ज्योतींषि) तुम्हारी ज्योति है ।

भावार्थ—सम्पूर्ण भूतों की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय का हेतु होने से परमात्माका नाम समुद्र है । उसी सर्वाधार सर्वनिधि महासागर से यह सम्पूर्ण संसार की उत्पत्ति स्थिति प्रलय होता है । किसी अन्य से नहीं ॥ २९ ॥

त्वं पवित्रे रजसो विधर्मणि देवे-
भ्यः सोम पवमान पूयसे ।
त्वामुशिजः प्रथमा अगृभ्णत तुभ्येमा
विश्वा भुवनानि येमिरे ॥ ३० ॥ १७ ॥

त्वं । पवित्रे । रजसः । विऽधर्मणि । देवेभ्यः । सोम । पवमान । पूयसे । त्वां । उशिजः । प्रथमाः । अगृभ्णत । तुभ्य । इमा । विश्वा । भुवनानि । येमिरे ।

पदार्थ—(त्वं) पूर्वोक्तस्त्वं (पवित्रे, विधर्म्मणि) स्वपूतस्वरूपे (देवेभ्योरजसः) दिव्यगुणयुक्तरजोगुणस्य परमाणुभिरिदंजगदुत्पादयसि । (सोम) हे परमात्मन् (पवमान) निखिल पवित्रकर्तः त्वं (पूयसे) पवित्रयासि । (त्वामुशिजः) पूर्वोक्तं त्वां विज्ञानिनः प्रथमं (अगृभ्णत) अग्रहीषुः । (तुभ्य, इमाः) तुभ्यमिमानि (विश्वा, भुवनानि) निखिललोकलोकान्तराणि (येमिरे) आत्मानंसमर्पयन्ति ।

पदार्थ—(त्वं) तुम (पवित्रेविधर्म्मणि) अपने पवित्र स्वरूप में (देवेभ्यो रजसः) दिव्यगुणयुक्त रजोगुणके परमाणुओं से इस संसार को उत्पन्न करते हो । (सोम) हे परमात्मन् (पवमानः) सबको पवित्र करनेवाले (पुयसे) तुम पवित्र करते हो । (त्वामुशिजः) तुमको विज्ञानी लोगों ने(प्रथमाः) पहले (अगृभ्णत) ग्रहण किया । (तुभ्यइमाः) तुम्हारे लिये ये (विश्वाभुवनानि) सम्पूर्णलोकलोकान्तर (येमिरे) अपने आपको समर्पित करते हैं ।

भावार्थ—परमात्माही सम्पूर्ण लोक लोकान्तरों की उत्पत्ति का कर्ता है । और उसीकी विभूतिको सबलोकलोकान्तर प्रदीप्त कर रहे हैं ।

प्र रेभ एत्यति वारमव्ययं वृषा
वनेष्वव चक्रदद्धरिः ।
सं धीतयो वावशाना अनूषत शिशुं
रिहन्ति मतयः पनिप्नतम् ॥ ३१ ॥

प्र । रेभः । एति । अति । वारं । अव्ययं । वृषा । वनेषु । अव । चक्रदत् । हरिः । सं । धीतयः । वावशानाः । अनूषत । शिशुं । रिहंति । मतयः । पनिप्नतं ॥ ३१ ॥

पदार्थः—(रेभः) शब्दब्रह्माश्रयः परमात्मा (वारमव्ययम) वरणीयमुपासकं (प्र, अत्येति) सर्वप्रकारेण संगच्छति । यः परमात्मा (वृषा) बलानि ददाति । (सः, हरिः) स सर्वस्य सत्तायां लीनः परमात्मा (वनेषु) उपासनासु (अव, चक्रदत्)

शब्दायमानोभवति (धीतयः) उपासकाः (वावशानाः) तस्योपासनासु मग्नाः सन्तः (समनषत) सर्वप्रकारैः, तं स्तुवन्ति । (पनिप्नतं) शब्दब्रह्मणो निदानं ब्रह्म यत् (शिशुम्) सर्वस्य लक्ष्यस्थानमस्ति तत् (मतयः) बुद्धिमन्तः (रिहन्ति) साक्षात्कारं कुर्वन्ति ।

पदार्थ—(रेभः) शब्दब्रह्मका आधार परमात्मा (वारमव्ययं) वरणीय उपासकको (प्र अत्येति भलीभांति प्राप्त होता है । जो परमात्मा (वृषा) बलोंका दाता है (स हरिः) वह सबको स्वसत्ता में लीन करने वाला परमात्मा (वनेषु) उपासनाओंमें (अवचक्रदत्) शब्दायमान होता है (धीतयः) उपासक लोग (वावसानाः) उसकी उपासनामें मग्न हुए हुये (समनूषत) भलीभाँति उसकी स्तुति करते हैं । (पनिप्नतम) उस शब्द ब्रह्मके आदि कारण ब्रह्मको जो (शिशुं) सबका लक्ष्य स्थान है । उसको (मतयः) सुमति लोग (रिहन्ति) साक्षात्कार करते हैं ।

भावार्थ—जो लोग चित्तवृत्तिको अन्य प्रवाहोंसे हटाकर एक मात्र परमात्माका ध्यान करते हैं । वेही परमात्माको भलीभाँति साक्षात्कार करते हैं । अन्य नहीं ॥ ३१ ॥

स सूर्यस्य रश्मिभिः परि व्यत
तन्तुं तन्वानस्त्रिवृतं यथा विदे ।
नयन्नृतस्य प्रशिषो नवीयसीः
पतिर्जनीनामुप याति निष्कृतम् ॥ ३२ ॥

सः । सूर्यस्य । रश्मिऽभिः । परि । व्यत । तंतुं । तन्वानः । त्रिऽवृतं । यथा । विदे । नयन् । ऋतस्य । प्रऽशिषः । नवीयसीः । पतिः । जनीनां । उप । याति । निःऽकृतं ॥

पदार्थः—स परमात्मा (यथाविदे) सत्यज्ञानिने (त्रिवृतं) त्रिधा ब्रह्मचर्य्यं (तन्वानः) विस्तारयन् (तन्तुंपरिव्यत) सन्ततिरूपतन्तुं विस्तारयाति (सः) अपि च सपरमात्मा (सूर्य्यस्य रश्मिभिः) सूर्य्यकिरणैः प्रकाशयन् (ऋतस्य प्राशिषः) सत्यस्य प्रशंसा (नवीयसीः) यानित्यनूतनाऽस्ति तां (नयन्) प्राप्नुवन् (जनीनां) मानवानां (निष्कृतं) संस्कृतमन्तःकरणं (उपयाति) प्राप्नोति । (पतिः) स एव परमात्मा अस्य निखिलब्रह्माण्डस्येश्वरोऽस्ति ।

पदार्थ—वह परमात्मा (यथाविदे) यथार्थज्ञानीके लिये (त्रिवृतं) ३-प्रकार के ब्रह्मचर्य्य को (तन्वानः) विस्तार करता हुआ (तन्तुं परिव्यत) सन्ततिरूप तन्तुका विस्तार करता है। (सः) और वह परमात्मा (सूर्य्यस्य रश्मिभिः) सूर्य्यकी किरणों द्वारा प्रकाश करता हुआ (ऋतस्य प्राशिषः) सचाई की प्रशंसा (नवीयसीः) जो कि नित्य नूतन है। उसको (नयन) प्राप्त कराता हुआ (जनीनां) मनुष्यों के (निष्कृतं) संस्कृत अन्तःकरणको (उपयाति) प्राप्त होता है। (पतिः) वही परमात्मा इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का पति है।

भावार्थः—परमात्मा इस संसार में प्रथम मध्यम उत्तम ३-प्रकारके ब्रह्मचर्य्य की मर्यादा को निर्माण करता है। उन कृतब्रह्मचर्य्य पुरुषों से शुभसन्ततिका प्रवाह संसार में प्रचलित होता है ॥ ३२ ॥

राजा सिन्धूनां पवते पतिर्दिव ऋतस्य
याति पथिभिः कनिक्रदत् ।
सहस्रधारः परि षिच्यते हरिः
पुनानो वाचं जनयन्नुपावसुः ॥ ३३ ॥

राजा॑। सिन्धू॑नाम्। पवते। पतिः॑। दिवः। ऋतस्य॑। याति।
पथिऽभिः॑। कनि॑क्रदत्। सहस्र॑ऽधारः। परि॑। सिच्यते।
हरिः॑। पुनानः। वाचं॑। जनय॑न्। उप॑ऽवसुः॥

पदार्थः—(हरिः) परमात्मा (पुनानः) सर्वं पवित्रयन् (वाचं जनयन्) वेदवाणीमुत्पादयन् किम्भूतः (उपावसुः) सर्वधनानामाधारः (परिषिच्यते) विद्वद्भिरुपास्यते (सहस्रधारः) सोऽनन्तशक्तिमान् अस्ति। अन्यच्च (सिन्धूनां राजा) स्यन्दनशीलनिखिलपदार्थानां राजाऽस्ति। अपिच (दिवःपतिः) द्युलोकस्य पतिः (ऋतस्य, पथिभिः) सत्यमार्गैः (कनिक्रदत्) शब्दायमानः परमात्मा (याति) निजभक्तान् गच्छति। तथा (पवते) तान् पवित्रयति।

पदार्थ—(हरिः) परमात्मा (पुनान)सब को पवित्र करता हुआ (वाचं जनयन्) वेदरूपी वाणी को उत्पन्न करता हुआ (उपावसुः) सब धनों का आधार (परिषिच्यते) विद्वानों द्वारा उपासना किया जाता है। (सहस्रधारः) वह अनन्तशक्तिमान् है। (सिन्धूनांराजा) और स्यन्दनशील सब पदार्थों का राजा है और (दिवः) द्युलोक का (पतिः) पति है। (ऋतस्य पथिभिः) सचाई की रास्तों से (कनिक्रदत्) वह शब्दायमान ब्रह्म (याति) अपने भक्तों की गति करता है। तथा (पवते) उनको पवित्र करता है।

भावार्थ—परमात्मा अपनी वेदरूपी वाणी को उत्पन्न करके सदा उपदेश करता है। परमात्मानुयायी पुरुषों को चाहिये कि उसकी आज्ञानुसार अपना जीवन बनावें॥ ३३॥

पवमान मह्यर्णो वि धावसि सूरो न
चित्रो अव्ययानि पव्यया ।
गभस्तिपूतो नृभिरद्रिभिः सुतो महे
वाजाय धन्याय धन्वसि ॥ ३४ ॥

पवमान । महि । अर्णः । वि । धावसि । सूरः । न । चित्रः । अव्ययानि । पव्यया । गभस्तिऽपूतः । नृऽभिः । अद्रिऽभिः । सुतः । महे । वाजाय । धन्याय । धन्वसि ॥

पदार्थः—(पवमान) हे सर्वपावकपरमात्मन् ! त्वं (मह्यर्णः) गतिस्वरूपोऽसि अपिच (विधावसि) स्वगत्या सर्वं गमयसि । (सूरः, न) सूर्य्यो यथा (चित्रः) अनेकवर्णविशिष्टान् (अव्ययानि) रक्षायुक्तपदार्थान् (पव्यया) स्वशक्त्या पवित्रयति एवं (गभस्तिपूतः) भवत्तेजोभिः पवमानाः भवदुपासका भवत उपासनां कुर्वन्ति । (अद्रिभिर्नृभिः) भवत्साक्षात्कारिकाभिश्चित्तवृत्तिभिः (सुतः) साक्षात्कृतस्त्वं (महे, वाजाय) महैश्वर्य्याय अन्यच्च (धन्याय) धनाय (धन्वसि) ऐश्वर्य्यप्रदो भवसि ।

पदार्थ—(पवमान) हे सबको पवित्र करनेवाले परमात्मन् ! आप (मह्यर्णः) गतिस्वरूपहो (विधावसि) अपनी गतिसे सबको गमन कराते हैं । (सूरः न) जैसे सूर्य्य (चित्रः) नानावर्णविशिष्ट (अव्ययानि) रक्षायुक्तपदार्थोंको (पव्यया) अपनी शक्तिसे पवित्र

करते हैं। इसी प्रकार (गभस्तिपूतः) आपकी रोशनीसे पवित्र हुए आपके उपासक (अद्रिभिर्नृभिः) आपको साक्षात्कार करनेवाली चित्तवृत्तियों द्वारा (सुतः) आपकी उपासना करते हैं (महेवाजाय) तब आप बड़े ऐश्वर्यके लिये और (धन्याय) धनके लिये (धन्वसि) ऐश्वर्य्यप्रद होते हैं।

भावार्थ—जिस प्रकार सूर्य्य अपनी किरणों द्वारा स्वाश्रित पदार्थों को प्रकाशित करता है। इसी प्रकार परमात्मा अपनी ज्ञानशक्तिसे अपने भक्तोंका प्रकाशक है ॥ ३४ ॥

इषमूर्जं पवमानाभ्यर्षसि श्येनो
न वंसु कलशेषु सीदसि ।
इन्द्राय मद्वा मद्यो मदः सुतो दिवो
विष्टम्भ उपमो विचक्षणः ॥ ३५ ॥ १८ ॥

इषं । ऊर्जं । पवमान । अभि । अर्षसि । श्येनः । न । वंसु । कलशेषु । सीदसि । इंद्राय । मद्वा । मद्यः । मदः । सुतः । दिवः । विष्टंभः । उपऽमः । विऽचक्षणः ॥

पदार्थः—(पवमान) हे सर्वपावकपरमात्मन् ! त्वं (इषं) ऐश्वर्य्यमपिच (ऊर्जं) बलं (अभ्यर्षसि) ददासि श्येनो, (न) यथा विद्युत (वंसु, कलशेषु) निवासयोग्यस्थानेषु स्थिता भवति, तथैव (सीदसि) त्वं पवित्रेऽन्तःकरणे स्थिरो भवसि । (इन्द्राय) कर्म्मयोगिने (मद्वा) आनन्दकर्ता

(मद्यः) आनन्दहेतुः (मदः) अपिचानन्दस्वरूपोऽसि (सुतः) स्वयंसिद्धः (दिवो, विष्टम्भः) द्युलोकस्याश्रयः अपरञ्च (उपमः) द्युलोकस्योपमायोग्यः किञ्च (विचक्षणः) सर्वोपरिप्रवक्ता असि ।

पदार्थ—(पवमान) हे सबको पवित्र करनेवाले परमात्मन् आप (इषं) ऐश्वर्य्य और (ऊर्जं) बलको (अभ्यर्षसि) देते हैं । (श्येनो न) जिस प्रकार बिजली (वंसुकलशेषु) निवास योग्य स्थानोंमें स्थिर होती है । इसी प्रकार (सीदसि) आप पवित्र अन्तःकरणोंमें स्थिर होते हैं । (इन्द्राय) आप कर्म्मयोगीके लिये (मद्वा) आनन्द करनेवाले (मद्यः) और आनन्दके हेतु हैं । (मदः) स्वयं आनन्दस्वरूप हैं । (सुतः) स्वयं सिद्ध हैं । (दिवो विष्टम्भः) द्युलोकके आधार हैं । (उपमः) और द्युलोककी उपमावाले हैं । (विचक्षणः) सर्वोपरिप्रवक्ता हैं ।

भावार्थ—परमात्मा द्युभ्वादि लोकोंका आधार है । और उसी के आधार में चराचर सृष्टिकी स्थिति है । और वेदादि विद्याओंका प्रवक्ता होनेसे वह सर्वोपरि विचक्षण है ॥ ३५ ॥

सप्त स्वसा॑रो अ॒भि मा॒त॒रः॒ शिशुं॒
नवं॑ जज्ञा॒नं॑ जेन्यं॑ वि॒पश्चि॑तम् ।
अ॒पां ग॑न्ध॒र्वं दि॒व्यं नृ॒चक्ष॑सं
सोमं॒ विश्व॑स्य॒ भुव॑नस्य रा॒जसे॑ ॥ ३६ ॥

सप्त । स्वसा॑रः । अ॒भि । मा॒तरः॑ । शिशु॑म् । नव॑म् । ज॒ज्ञा॒नम् ।

जेन्यं । विपःऽचितं । अपां । गंधर्वं । दिव्यं । नृऽचक्षसं ।
सोमं । विश्वस्य । भुवनस्य । राजसे ॥

पदार्थः—(सप्तस्वसारः) ज्ञानेन्द्रियाणा सप्तच्छिद्रैः गामिन्य इन्द्रियाणां सप्तवृत्तय' (अभिमातरः) याःज्ञानयोग्यपदार्थप्रमाणितं कुर्वन्ति ताः (शिशुं) सर्वोपास्यपरमात्मानं (नवं) नित्यनूतनं पुनः किम्भूतं (यज्ञानं) स्फुटं किञ्च । (जेन्यं) सर्वजेतारं पुनः (विपश्चितं) सर्वोपरि विज्ञानिनमेवम्भूतं तं विषयं कुर्वन्ति । अपिच परमात्मा (अपां) जलानां अपिच (गन्धर्वं) पृथिव्या धारणकर्ता अस्ति । (दिव्यं) प्रकाशमानः अपिच (नृचक्षसं) सर्वान्तर्याम्यस्ति । (सोमं) सर्वोत्पादकश्चास्ति । तं (विश्वस्य, भुवनस्य राजसे) अखिलभुवनानां ज्ञानाय विद्वांस उपसेवन्ते ।

पदार्थ—(सप्त स्वसारः) ज्ञानेन्द्रियोंके सप्त छिद्रोंसे गति करनेवाली इन्द्रियोंकी ७ वृत्तियें (अभिमातरः) जो ज्ञान योग्य पदार्थको प्रमाणित करती हैं । वे (शिशुं) सर्वोपास्यपरमात्माको (नवं) जो नित्य नूतन है । (यज्ञानं) और स्फुट है (जेन्यं) सबका जेता (विपश्चितं) और सबसे बड़ा विज्ञानी है । उसको विषय करती हैं । जो परमात्मा (अपां) जलोंका (गन्धर्वं) और पृथिवीका धारण करनेवाला है । (दिव्यं) दिव्य है । (नृचक्षसं) सर्वान्तर्य्यामी है (सोमं) सर्वोत्पादक है । उसकी (विश्वस्य भुवनस्य राजसे) सम्पूर्ण भुवनोंके ज्ञानके लिये विद्वान लोग उपासना करते हैं ।

भावार्थ—परमात्माका ध्यान इसलिये कियाजाता है कि परमात्मा अपहतपाप्मादि गुणोंको देकर उपासकको भी दिव्य दृष्टि दे । ताकि

उपासक लोकलोकान्तरोंके ज्ञानको उपलब्ध कर सके। इसी अभिप्रायसे योग-में लिखा है कि 'भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात्' परमात्मामें चित्तवृत्तिका निरोध करनेसे लोकलोकान्तरोंका ज्ञान होता है ॥ ३६ ॥

ईशान इमा भुवनानि वीयसे
युजान इन्दो हरितः सुपर्ण्यः ।
तास्ते क्षरन्तु मधुमद्घृतं पय-
स्तव व्रते सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः ॥ ३७ ॥

ईशानः । इमा । भुवनानि । वि । ईयसे । युजानः । इंदो इति । हरितः । सुऽपर्ण्यः । ताः । ते । क्षरंतु । मधुऽमत् । घृतं । पयः । तव । व्रते । सोम । तिष्ठंतु । कृष्टयः ।

पदार्थः—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूपपरमात्मन् ! (ईशानः) त्वमीश्वरोऽसि । (इमा, भुवनानि) इमान्यखिलानि भुवनानि (वीयसे) चालयसि । (हरितः) हरणशीलशक्तयः (सुपर्ण्यः) याश्चेतनास्सन्ति ताः योजयसि । (ताः) पूर्वोक्ताः (ते) तव शक्तयः (मधुमद्घृतं) मधुरप्रेम मह्यं (क्षरन्तु) परिवाहयन्तु । अपिच (पयः) दुग्धादिस्निग्धपदार्थान् ददतु । (सोम) हे परमात्मन् ! (तव व्रते) तव नियमे (कृष्टयः) सर्वे मानवाः (तिष्ठन्तु) स्थिता भवन्तु ।

पदार्थ—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूपपरमात्मन् ! (ईशानः) आप ईश्वर हैं । (इमा भुवनानि) इन सब भुवनोंको (वीयसे) चलाते हैं ।

(हरितः) हरणशीलशक्तियें (सुपर्ण्यः) जो चेतन हैं । उनको (युजान) नियुक्त करते हैं । (ताः) वे (ते) तुम्हारी शक्तियें (मधुमद्घृतं) मीठा प्रेम हमारे लिये (क्षरन्तु) बहावें । (पयः) और दुग्धादि स्निग्ध पदार्थों का प्रदान करें । (सोम) हे परमात्मन् ! (तव व्रते) तुम्हारे नियममें (कृष्टयः) सब मनुष्य (तिष्ठन्तु) स्थिर रहें ।

भावार्थ—इस मन्त्रमें परमात्माके नियममें स्थिर रहनेका वर्णन है जैसा कि (अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि) इत्यादि मन्त्रोंमें व्रतकी प्रार्थना है यहां भी परमात्माके नियमरूपव्रतके परिपालनकी प्रार्थना है ।

त्वं नृचक्षा असि सोम विश्वतः
पवमान वृषभ ता वि धावसि ।
स नः पवस्व वसुमद्धिरण्यवद्वयं
स्याम भुवनेषु जीवसे ॥ ३८ ॥

त्वं । नृऽचक्षाः । असि । सोम । विश्वतः । पवमान । वृषभ । ता । वि । धावसि । सः । नः । पवस्व । वसुऽमत् । हिरण्यऽवत् । वयं । स्याम । भुवनेषु । जीवसे ॥

पदार्थः—(सोम) हेपरमात्मन् ! (त्वं) पूर्वोक्तस्त्वं (नृचक्षाः, असि) मानवेभ्यः कर्म्मणां पृथक् २ फलं ददासि । अपिच (पवमान) हेपरमात्मन् (विश्वतः) सर्वतः (वृषभ) अनन्तशक्तियुक्तोऽसि । (ता, विधावसि) ताभिः शक्तिभिस्त्वंमां परिशोधय (सः) तच्छक्तियुक्तस्त्वं [नः] अस्मान्

(पवस्व) पवित्रय (वसुमत) ऐश्वर्य्यवान् (हिरण्यवत) सप्रकाशोऽसि । (वयं) वयं (भुवनेषु) अस्मिन् संसारे (जीवसे) जीवनाय (स्याम) उत्कैश्वर्य्ययुक्ता भवाम ।

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् । (त्वं) तुम (नृचक्षाः असि) मनुष्योंके कर्मोंके भिन्न २ फल देनेवाले हो और (पवमान) हे पवित्र करनेवाले (विश्वतः) सब प्रकारसे (वृषभ) हे अनन्तशक्तियुक्त परमात्मन् (ता विश्वावसि) उन शक्तियोंसे आप हमको शुद्ध करें (सः) उक्तशक्तियुक्त आप (नः) हमको (पवस्व) पवित्र करें । आप (वसुमत) ऐश्वर्य्यवाले और । (हिरण्यवत) प्रकाशवाले हैं । (वयं) हम (भुवनेषु) इस संसारमें (जीवसे) जीनेके लिये (स्याम) उक्त ऐश्वर्य्ययुक्त हों ।

भावार्थ—इस मन्त्रमें परमात्माको कर्मोंके साक्षीरूपसे वर्णन किया है ।

गोवित्पवस्व वसुविद्धिरण्य-
विद्रेतोधाइन्दो भुवनेष्वर्पितः ।
त्वं सुवीरो असि सोम विश्ववित्तं
त्वा विप्रा उप गिरेम आसते ॥ ३९ ॥

गोऽवित् । पवस्व । वसुऽवित् । हिरण्यऽवित् । रेतःधाः । इंदो इति । भुवनेषु । अर्पितः । त्वं । सुऽवीरः । असि । सोम । विश्वऽवित् । तं । त्वा । विप्राः । उप । गिरा । इमे । आसते

पदार्थः—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूपपरमात्मन्! [गोवित] त्वं विज्ञान्यसि । ज्ञानेन मां (पवस्व) पवित्रय । (वसुवित)

ऐश्वर्य्यसम्पन्नोऽसि । ऐश्वर्येण मां पवित्रय । (हिरण्यवित्) प्रकाशस्वरूपोऽसि प्रकाशेन मां पवित्रय । (रेतोधाः) त्वं प्रजाया बीजरूपसामर्थ्यं दधासि । अन्यच्च (भुवनेषु, अर्पितः) निखिलजगति व्याप्तोऽसि । (त्वं) पूर्वोक्तस्त्वं (सुवीरोऽसि) सर्वोपरि बलयुक्तोऽसि । (सोम) हे सर्वोत्पादक ! (विश्ववित्) सर्वज्ञातास्मि । (तं त्वां) पूर्वोक्तं त्वां (विप्राः) विद्वांसः (उपगिरेम) उपासीनाः (आसते) तिष्ठन्ति ।

पदार्थः—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूपपरमात्मन् ! (गोवित्) आप विज्ञानी हैं । ज्ञान से (पवस्व) हमको पवित्र करें ! (वसुवित्) ऐश्वर्य्यसे सम्पन्न हैं ऐश्वर्य्यसे हमको पवित्र करें । (हिरण्यवित्) प्रकाशस्वरूप हैं प्रकाशसे हमको पवित्र करें । (रेतोधाः) आप प्रजाके बीजस्वरूप सामर्थ्य-को धारण करनेवाले हैं । (भुवनेषु अर्पितः) और सब संसारमें व्याप्त हैं । (त्वं) तुम (सुवीरोऽसि) सर्वोपरि बलयुक्त हो । (सोम) सर्वोत्पादक हो (विश्ववित्) सर्वज्ञाता हो । (तं त्वां) उक्तगुणयुक्त आपको (विप्राः) विद्वान्लोग (उपगिरेम) उपासना करते हुए (आसते) स्थित होते हैं ।

भावार्थः—इस मन्त्रमें परमात्माको ज्ञान, प्रकाश और क्रिया इत्यादि अनन्तगुणोंके आधाररूपसे वर्णन किया है, कि इसी आशयको लेकर (स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया) इत्यादि उपनिषद्वाक्योंमें परमात्माको ज्ञान बल क्रिया का आधार वर्णन किया है ।

उन्मध्व ऊर्मिर्वनना अतिष्ठिपदपो
वसानो महिषो वि गाहते ।
राजा पवित्ररथो वाजमारुह-
त्सहस्रभृष्टिर्जयति श्रवो बृहत् ॥ ४० ॥ १९

उत् । मध्वः । ऊर्मिः । वननाः । अतिस्थिपत् । अपः । वसानः । महिषः । वि । गाहते । राजा । पवित्रऽरथः । वाजं । आ । अरुहत् । सहस्रऽभृष्टिः । जयति । श्रवः । बृहत् ।

पदार्थ—(मध्वः) मधुरां (ऊर्मिर्वननाः) तरङ्गवतीं वेदवाणीं (उदतिष्ठिपत्) त्वमाश्रयसि । तथा (राजा) त्वं सर्वप्रकाशकः (पवित्ररथः) पवित्रगतिमाँश्रासि । तथा (वाजमारुहत्) एश्वर्य्यशक्तिमाश्रयसि । अपिच (सहस्रभृष्टिः) अनन्तशक्तिभिरस्य संसारस्य पालनं करोषि । तथा (बृहच्छ्रवः) महाशक्तिमानसि । अपरञ्च (जयति) सर्वोत्कृष्टत्वेन वर्तसे ! उक्तगुणसम्पन्नस्त्वा (अपो वसानः) कर्मयोगी (महिषः) महापुरुष (विगाहते) साक्षात्करोति ।

पदार्थ—(मध्वः) मीठी (ऊर्मिर्वननाः) लहरोंवाली वेदवाणी (उदतिष्ठिपत्) तुम आश्रय किये हो । तथा (राजा) तुम सबको प्रकाश देनेवाले हो । और (पवित्ररथः) आप पवित्रगतिवाले हैं । तथा (वाजमारुहत्) ऐश्वर्यरूपीशक्तिको आश्रय किये हुए हो । और (सहस्रभृष्टिः) अनन्तशक्तियोंसे इस संसारको पालन करनेवाले हो । तथा (बृहच्छ्रवः) बड़ेयशवाले हो । और (जयति) सर्वोत्कृष्टतासे वर्तमान हो । उक्तगुणसम्पन्न आपको (अपोवसानः) कर्म्मयोगी (महिषः) महापुरुष (विगाहते) साक्षात्कार करता है ।

भावार्थ—महिषशब्दके अर्थ यहां महापुरुषके हैं । महिष इति महन्नामसु पठितम् । नि० अ० । ३ । खं० १३ ॥ महिष यह निरुक्तमें महत्वका वाचक है महापुरुष यहां कर्मयोगी और ज्ञानयोगीको माना है उक्त

पुरुषोंमें महत्व परमात्माके सद्गुणोंके धारण करनेसे आता है इसीलिये इनको महापुरुष कहा है ।

स भन्दना उदियर्ति प्रजावतीर्विश्वायुर्विश्वाः सुभरा अहर्दिवि ।
ब्रह्म प्रजावद्रयिमश्वपस्त्यं पीत इन्दविन्द्रमस्मभ्यं याचतात् ॥ ४१ ॥

सः । भंदनाः । उत् । इयर्ति । प्रजाऽवतीः । विश्वऽआयुः । विश्वाः । सुऽभराः । अहःऽदिवि । ब्रह्म । प्रजाऽवत् । रयिं । अश्वऽपस्त्यं । पीतः । इंदो इति । इंद्रं । अस्मभ्यं । याचतात् ॥

पदार्थ—(सः) पूर्वोक्तः कर्म्मयोगी (भन्दनाः) वन्दनां (उदियर्ति) करोति । या वन्दना (अहर्दिवि) सन्ततं (प्रजावतीः) शुभप्रजादायिका तथा (विश्वायुः) अखिलायुर्दायिका । अपरञ्च (विश्वाः) सर्वप्रकाराया: (सुभराः) पूर्तेःकारिका चास्ति । (ब्रह्म) वेदः (प्रजावत्) यः सदुपदेशैः शुभप्रजाः अपिच (रयिं) धनं (अश्व, पस्त्यं) अन्यगतिशीलपदार्थांश्च ददाति । (पीतः) सततत्तृप्तस्त्वं (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूपपरमात्मन् ! (इन्द्रं) कर्म्मयोगिनं तथा (अस्मभ्यं) मह्यं उत्कैश्वर्य्यं (याचतात्) देहि ।

पदार्थ—(सः) पूर्वोक्तकर्मयोगी (भन्दनाः) वन्दना (उदियर्ति) करता है जो वन्दना (अहर्दिवि) सर्वदा (प्रजावतीः) शुभ-

प्रजाको देनेवाली है तथा (विश्वायुः) सम्पूर्णआयुको देनेवाली है। और (विश्वाः) सब प्रकारकी (सुभराः) पूर्तियोंकी करनेवाली है। (ब्रह्म) वेद (प्रजावत्) जो सदुपदेशद्वारा शुभप्रजाओंको देने वाला है और (रयिं) धन और (अश्वपस्त्यं) अन्य गतिशीलपदार्थोंको देनेवाला है। (पीतः) नित्यतृप्त (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूपपरमात्मन्। आप (इन्द्रे) कर्मयोगीको तथा (अस्मभ्यं) हमारे लिये उक्तऐश्वर्य (याचतात) दें।

भावार्थ—इस मन्त्र में ऐश्वर्य्य की प्रार्थना करते हुए वेदोंके सदुपदेशरूपी महत्व का वर्णन किया है।

सो अग्रे अह्नां हरिर्हर्यतो मदः
प्र चेतसा चेतयते अनु द्युभिः।
द्वा जना यातयन्नन्तरीयते नरा
च शंसं दैव्यं च धर्तरि॥ ४२॥

सः। अग्रे। अह्नां। हरिः। हर्यतः। मदः। प्र। चेतसा चेतयते। अनु। द्युऽभिः। द्वा। जना। यातयन्। अंतः। ईयते। नराशंसं। च। दैव्यं। च। धर्तरि॥

पदार्थः—(सः सोमः) उक्तगुणसम्पन्नपरमात्मा (अह्नामग्रे) अस्मादहर्दिवात्प्राक् (हर्य्यतो हरिः) हारकशक्तीना हरणकारकः। (मदः) आनन्दस्वरूपः (अनुद्युभिः) द्युभ्वादि लोकानां (चेतसा) निज चैतन्यरूपशक्त्या (प्रचेतयते) गतिशीलकारकश्चासीत्। (द्वाजना) कर्म्मयोगिनां ज्ञानयोगिनाञ्च

(यातयन्) वेदविधिना प्रेरणां कृत्वा (अन्तरीयते) अस्य द्युलोकस्यापिच । पृथिवीलोकस्य मध्ये गतिशीलोऽस्ति । (च) पुनः (नरा) उक्तपुरुषद्वयं (शंसं) प्रशंसनीयं (दैव्यं) दिव्यं च (धर्तरि) धारणविषये सर्वोपरि निर्ममे ।

पदार्थ—(सः सोमः) उक्तगुणसम्पन्नपरमात्मा (अह्नामग्रे) इस दिनरातसे पहले (रयिंतोहरिः) हरण करनेवाली शक्तियोंका हरण करनेवाला था । (मदः) आनन्दस्वरूप था । और (अनुद्युभिः) द्युभ्वादिलोकोंको (चेतसा) अपनी चैतन्यस्वरूपशक्तिसे (प्रचेतयते) गतिशील करनेवाला था (द्वाजना) कर्मयोगी और ज्ञानयोगी दोनों पुरुषोंको (यातयन्) वेदविधिसे प्रेरणा करके (अन्तरीयते) इस द्युलोक और पृथिवीलोकके मध्यमें गतिशील है (च) और (नरा) उक्त दोनों पुरुषोंको (शंसं) प्रशंसनीय (दैव्यं) दिव्य (च) और (धर्तरि) धारणाविषयमें सर्वोपरि बनाता है ॥

भावार्थ—वह परमात्मा इस प्रकृतिकी नानाविधशक्तियोंको संयोजन करता हुआ कर्मयोगी और ज्ञानयोगी दोनों प्रकारके पुरुषोंको प्रशंसनीय बनाता है ॥

अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते
क्रतुं रिहन्ति मधुनाभ्यञ्जते ।
सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं
हिरण्यपावाः पशुमासु गृभ्णते ॥ ४३ ॥

अंजते । वि । अंजते । सं । अंजते । क्रतुं । रिहंति ।

मधुना । अभि । अंजते । सिंधोः । उत्ऽश्वासे । पतयंतं । उक्षणं । हिरण्यऽपावाः । पशुं । आसु । गृभ्णते ॥

पदार्थः—(अञ्जते) उक्तपरमात्मा निजज्ञानेन गतिहेतुरपिच (व्यञ्जते) पूर्वकृतकर्म्मभिः जीवानां विविध-जन्मना कारणं तथा (समञ्जते) स्वयं न्यायशीलो भूत्वा गमनहेतुश्चास्ति । अतः सम्यग्गतिकारकः (ऋतुं) यज्ञरूपञ्च परमात्मानं (रिहन्ति) उपासका गृह्णन्ति । यः परमात्मा (मधुना) निजानन्देन (अभ्यञ्जते) सर्वत्र प्रकटोऽस्ति । अन्यच्च (सिन्धोरुच्छ्वासे) यः सिन्धोरुच्चतरङ्गेषु (पतयन्तं) पतितः (उक्षणं) अपिच बलस्वरूपः (हिरण्यपावाः) सद-सद्विवेकी (पशुं) अन्यच्च यो ज्ञानदृष्ट्या पश्यति, तमुक्तपुरुषं परमात्मा (आसु) निजार्द्रभावेन अर्थात् कृपादृष्ट्या (गृभ्णते) गृह्णाति ।

पदार्थः—(अञ्जते) उक्त परमात्मा अपने ज्ञान द्वारा गतिका हेतु है। और (व्यञ्जते) पूर्वकृत कर्मोंके द्वारा जीवोंके विविध प्रकारके जन्मोंका हेतु है। तथा (समञ्जते) स्वयं न्यायशील होकर गतिका हेतु है इस-लिये सम्यग्गति करानेवाला कथन कियागया। और (क्रतुं) यज्ञरूप-परमात्माको (रिहन्ति) उपासकलोग ग्रहण करते हैं। जो परमात्मा (मधुना) अपने आनन्दसे (अभ्यञ्जते) सर्वत्र प्रगट है। और (सि-न्धोरुच्छ्वासे) जो सिन्धुकी उच्च लहरोंमें (पतयन्तं) गिरा हुआ मनुष्य है (उक्षणं) और बलस्वरूप है (हिरण्यपावाः) और सदसद्विवेकी है और (पशुं) जो ज्ञानदृष्टिसे देखता है "पशुः पश्यतेरिति निरुक्तम्" ३।१६

उक्त पुरुषको परमात्मा (आसु) अपने आर्द्रभावसे अर्थात् कृपादृष्टिसे (गृभ्णते) ग्रहण करता है ।

भावार्थ—परमात्मा पतितोद्धारक है जो पुरुष अपने मन्दकर्मोंसे गिरकर भी उद्योगी बना रहता है, परमात्मा उसका अवश्यमेव उद्धार करता है ।

विपश्चिते पवमानाय गायत
मही न धारात्यन्धो अर्षति ।
अहिर्नजूर्णामति सर्पति त्वच-
मत्यो न क्रीळन्नसरद्वृषा हरिः ॥ ४४ ॥

विपःऽचिते । पवमानाय । गायत । मही । न । धारा । अति । अंधः । अर्षति । अहिः । न । जूर्णा । अति । सर्पति । त्वचं । अत्यः । न । क्रीळन् । असरत् । वृषा । हरिः ॥

पदार्थः—हे ज्ञानिपुरुषाः ! (विपश्चिते) सर्वज्ञपरमात्मने (पवमानाय) यः सर्वपावकोस्ति । तस्मै त्वं (गायत) गानंकुरुत यः (धारा, न) धारेव (मही) महत् (अत्यन्धः) ऐश्वर्यं (अर्षति) ददाति । यदभिज्ञाय पुरुषः (अहिः) सर्पस्य (जूर्णा, त्वचं, न) जीर्णत्वचइव (अतिसर्पति) परित्यज्य गच्छति । (अत्योन) विद्युदिव (क्रीळन्) क्रीडन् (असरत्) सर्वत्र गतिशीलो भवति । अपि च (वृषा) सर्वान् कामान् वर्षति (हरिः) तथा सर्वाविपत्तीर्हरति ।

पदार्थ—हे ज्ञानीपुरुषो ! (विपश्चिते) सर्वज्ञपरमात्माके (पवमानाय) जो सबको पवित्र करनेवाला है, उसके लिये आप (गायत) गान करें जो (धारा न) धाराके समान (मही) बड़े (अत्यन्धः) ऐश्वर्यको (अर्षति) देनेवाला है। जिसको जानकर पुरुष (अहिः) सांपकी (जूर्णां त्वचं न) जीर्णत्वचाके समान (अतिसर्पति) त्याग कर गमन करता है (अत्योन) विद्युतके समान (क्रीलन्) क्रीडा करता हुआ (असरत्) सर्वत्र गतिशील होता है। और (वृषा) सब कामनाओंकी वृष्टि करता है (हरिः) तथा सब विपत्तियोंको हरलेता है।

भावार्थ—इस मन्त्रमें परमात्माकी उपासना का कथन कियागया है कि, हे उपासकलोगो तुम उस सर्वज्ञपुरुषकी उपासना करो जो सर्वोपरि विज्ञानी और पतितोद्धारक है इस मन्त्रमें विपश्चित्, शब्द परमात्माके लिये आया है और पहिलेपहिल (विपश्चित्) शब्द मेधावीके लिये वेदमें ही आया है इसीका अनुकरण आधुनिक कोषोंमें भी कियागया है।

अग्रेगो राजाप्यस्तविष्यते
विमानो अह्नां भुवनेष्वर्पितः ।
हरिर्घृतस्नुः सुदृशीको अर्णवो
ज्योतीरथः पवते राय ओक्यः ॥ ४५ ॥ २०

अग्रेऽगः । राजा । अप्यः । तविष्यते । विऽमानः । अह्नाम् । भुवनेषु । अर्पितः । हरिः । घृतऽस्नुः । सुऽदृशीकः । अर्णवः । ज्योतिःऽरथः । पवते । राये । ओक्यः ॥

पदार्थः— यः परमात्मा [अग्रेगः] सर्वाग्रगामी तथा [राजा]

सर्वस्य पतिः (अप्यः) सर्वगतश्चास्ति। (ताविष्यते) स स्तूयते (अह्नोविमानः) अपिच सूर्य्यचन्द्रादीनां निर्माता, (भुवनेषु, अर्पितः) सर्वलोकेषु स्थिरः (हरिः) हरणशीलः, तथा (घृतस्नुः) प्रेमाभिलाषी, तथा (सुदृशीकः) सुन्दरः, अपिच (अर्णवः) सुखसमुद्रः, (अपरञ्च (ज्योतीरथः) (ज्योतिस्स्वरूपः (ओक्यः) सर्वस्य निवासस्थानञ्चास्ति। स परमात्मा (राये) ऐश्वर्य्याय (पवते) मां पवित्रयतु ॥

पदार्थ—जो परमात्मा (अग्रेगः) सबसे पहले गति करनेवाला है, तथा (राजा) सबका स्वामी है और (अप्यः) सर्वगत है (तविष्यते) वह स्तुति किया जाता है। (अह्नोविमानः) सूर्यचन्द्रमादिकोंका निर्माता है (भुवनेष्वर्पितः) सबलोकोंमें स्थिर है और (हरिः) हरणशील है तथा (घृतस्नुः) प्रेमको चाहनेवाला है, तथा (सुदृशीकः) सुन्दर है। (अर्णवः) सुखोंका समुद्र हैं (ज्योतीरथः) ज्योतिःस्वरूप है। और (ओक्यः) सबका निवासस्थान है वह परमात्मा (राये) ऐश्वर्यके लिये (पवते) हमें पवित्र करे।

भावार्थ—इस मन्त्रमें परमात्माको सर्वाधिकरणरूपसे वर्णन किया है, जैसा कि (यस्मिन्विश्वानि भुवनानि तस्थुः) ऋ० । १० । १२ । ६ । में यही वर्णन किया है कि सर्व लोकालोकान्तर उसीमें निवास करते हैं।

असर्जि स्कम्भो दिव उद्यतो
मदः परि त्रिधातुर्भुवनान्यर्शति ।
अंशुं रिहन्ति मतयः पनिप्नतं गिरा
यदि निर्णिजमृग्मिणो ययुः ॥ ४६ ॥

असर्जि । स्कम्भः । दिवः । उत्ऽयतः । मदः । परि । त्रिऽधातुः । भुवनानि । अर्षति । अंशुं । रिहंति । मतयः । पनिप्नतं । गिरा । यदि । निःऽनिजं । ऋग्मिणः । ययुः ।

पदार्थः—यः परमात्मा (दिवस्कम्भः) द्युलोकस्याधारः अपि च (त्रिधातुर्भुवनानि) प्रकृतेस्त्रयाणां गुणानां कार्य्यभूतो यो लोकस्तं (पर्य्यर्षति) चालयति अपरञ्च (मदः) आनन्दस्वरूपस्तथा (उद्यतः) स्वसत्तया सदैव जीवितः जागरितश्चास्ति। (असर्जि) तेनेमानि लोकलोकान्तराणि विरचितानि। (अंशुं) तं गतिशीलं परमात्मानं (मतयः) बुद्धिमन्तः (गिरा) वेदवाण्या (रिहन्ति) साक्षात्कुर्वन्ति। कदा ? (यदि) यदा (पनिप्नतं) शब्दायमानं (निर्निजं) अमुं शुद्धस्वरूपं (ऋग्मिणः) स्तोतारस्तुत्या (ययुः) प्राप्नुवन्ति।

पदार्थ—जो परमात्मा (दिवःस्कम्भः) द्युलोकका आधार है और (त्रिधातुर्भुवनानि) प्रकृतिके तीनों गुणोंके कार्य जो लोक हैं उनको (पर्यर्षति) चलानेवाला है। और (मदः) आनन्दस्वरूप है तथा (उद्यतः) अपनी सत्तासे सदैव जीवित जागृत है (असर्जि) उसने इन लोकलोकान्तरोंको रचा। (अंशुं) उस गतिशील (पनिप्नतं) शब्दायमान परमात्माको (मतयः) बुद्धिमान् (गिरा) वेदवाणी द्वारा (रिहन्ति) साक्षात्कार करते हैं। कब २ (यदि) जब २ (निर्णिजं) उस शुद्धस्वरूपको (ऋग्मिणः] स्तोता लोग स्तुति द्वारा (ययुः) प्राप्त होते हैं।

भावार्थ—जब उपासक शुद्धभावसे उसका स्तवन करता है तो उसकी प्राप्ति अवश्यमेव होती है।

प्र ते धारा अत्यण्वानि मेष्यः

पुनानस्य संयतो यन्ति रंहयः ।

यद्गोभिरिन्दो चम्वोः समज्यस आ

सुवानः सोम कलशेषु सीदसि ॥४७॥

प्र । ते । धाराः । अति । अण्वानि । मेष्यः । पुनानस्य । संऽयतः । यंति । रंहयः । यत् । गोभिः । इंदो इति । चम्वोः । संऽअज्यसे । आ । सुवानः । सोम । कलशेषु । सीदसि ॥

पदार्थः—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (यद्) यदा त्वं (गोभिः) ज्ञानिभिः (चम्वोः) सेनासम्बन्धे (समज्यसे) उपसेव्यसे तदा त्वं (आसुवानः) सर्वव्यापकः (सोम) हे शान्तस्वभावपरमात्मन् ! (कलशेषु) उपासकानामन्तःकरणेषु (सीदसि) विराजसे अपि च (ते धाराः) तवप्रेमधाराः (अत्यण्वानि) याः सूक्ष्माः सन्ति । (संयतः) संयमिनं पुरुषं (पुनानस्य) यः सदुपदेशैः सर्वपावकोऽस्ति । तं (यन्ति) प्राप्नुवन्ति । याः प्रेमधाराः (रंहयः) गतिशीलास्सन्ति ।

पदार्थ—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूपपरमात्मन् ! (यद्) जब आप (गोभिः) ज्ञानीपुरुषोंद्वारा (चम्वोः) आध्यात्मिकवृत्तियोंकी सेनाके सम्बन्धमें (समज्यसे) उपासना कियेजाते हो तब आप (आसुवानः) । सर्वव्यापक (सोम) हे शान्तिस्वरूप परमात्मन् ! (कलशेषु) उपासकोंके अन्तःकरणोंमें (सीदसि) विराजमान होते हो । और (ते धाराः) तुम्हारी प्रेम की धारायें (अत्यण्वानि) जो सूक्ष्महैं (संयतः) संयमीपुरुषको (पुनानस्य)

जो सदुपदेशद्वारा सबको पवित्र करनेवाला है उसको (यन्ति) प्राप्त होती हैं जो प्रेमधारायें (रंहयः) गतिशील हैं ॥

भावार्थ––जब उपासक बाह्यवृत्तियोंका निरोध करके अन्तर्मुख होकर परमात्माका ध्यान करता है तो वह परमात्माके साक्षात्कारको अवश्य-मेव प्राप्त होता है ।

पवस्व सोम क्रतुविन्नं उक्थ्योऽव्यो
वारे परि धाव मधु प्रियम् ।
जहि विश्वांन्रक्षसं इन्दो अत्रिणों
बृहद्वदेम विदथें सुवीरांः ॥ ४८ ॥ २१ ॥

पवस्व । सोम । क्रतुऽवित् । नः । उक्थ्यः । अव्यः । वारे । परि । मधु । प्रियं । जहि । विश्वान् । रक्षसः । इंदोइति । अत्रिणः । बृहत् । वदेम । विदथे । सुऽवीराः ॥

पदार्थः––(सोम) हे परमात्मन् ! त्वं (क्रतुवित्) कर्म्मणा वेत्ताऽसि । (नः) अस्मान् (पवस्व) पवित्रय । (उक्थ्यः) त्वं सर्वासामुपासनानामाधाराऽसि । अपिच (अव्यः) रक्षकः । तथा (वारे) वरणीये पुरुषे (प्रियं, मधु) प्रियानन्दं (परिधाव) परिदेहि । (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! त्वं (अत्रिणो, विश्वान् रक्षसः) सर्वाणि हिंसकरक्षांसि (जहि) हिंसय । (सुवीराः) सुसन्ततिमन्तो वयम् (विदथे) महत्सु यज्ञेषु (बृहद्वदेम) भवतः स्तुतिं कुर्य्याम ॥

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! आप (ऋतुवित्) कर्मोंके वेत्ता हैं (नः) हमको आप (पवस्व) पवित्र करें। (उक्थ्यः) आप सर्वोपासनाओंके आधार हैं। और (अव्यः) रक्षक हैं। तथा (वारे) वरणीय-पुरुषमें (प्रियं मधु) प्यारे आनन्दको (परिधाव) दें। (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप ! (अत्रिणो विश्वान् रक्षसः) सम्पूर्ण हिंसक राक्षसोंको आप (जहि) मारें (सुवीराः) सुन्दरसन्तानवाले हम (विदथे) बड़े बड़े यज्ञों में (बृहद्वदेम) आपकी अत्यन्त स्तुति करें ॥

भावार्थ—इस मन्त्रमें राक्षसोंसे तात्पर्य्य यज्ञविघ्नकारी दुष्टाचारियोंसे है क्योंकि (रक्षन्ति येभ्यस्ते राक्षसाः) जिनसे रक्षा कीजाय उनका नाम यहां राक्षस है, तात्पर्य्य यह कि सब विघ्नोंसे बचाकर परमात्मा हमारे यज्ञोंकी पूर्ति करें ॥

इति षडशीतितमं सूक्तमेकविंशो वर्गश्च समाप्तः ॥

यह ८६ वाँ सूक्त और २१ वाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ नवर्चस्य सप्ताशीतितमस्य सूक्तस्य—

१–९ उशना ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २ निचृत्त्रिष्टुप्। ३ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ४,८ विराट् त्रिष्टुप् । ५–७, ९ त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥

अस्मिन् सूक्ते ऋषिविप्रादिनामभिः परमात्मैववर्ण्यते—

इस सूक्तमें ऋषिविप्रादिनामोंसे परमात्माकाही वर्णन है—

प्र तु द्रव परि कोशं नि षीद

नृभिः पुनानो अभि वाजमर्ष ।

अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयन्तोऽ-

च्छा बर्ही रशनाभिर्नयन्ति ॥ १ ॥

प्र । तु । द्रव । परि । कोशं । नि । सीद । नृऽभिः । पुनानः । अभि । वाजं । अर्ष । अश्वं । न । त्वा । वाजिनं । मर्जयंतः । अच्छ । बर्हिः । रशनाभिः । नयंति ॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (तु) शीघ्रं (प्रद्रव) गच्छ । गत्वाच (कोशं) कर्म्मयोगिनोऽन्तःकरणं (परिनिषीद) गृहाण । (नृभिः) अपिच नरैः (पुनानः) पूज्यमानस्त्वं (वाजं) बलं (अभ्यर्ष) वर्ष । अश्वं) विद्युतः (न) तुल्यं (त्वा, वाजिनं) बलस्वरूपं त्वां (मर्जयन्तः) उपासकाः (अच्छाबर्हिः) यज्ञं प्रति (रशनाभिः) उपासनाभिः (नयन्ति) प्राप्नुवन्ति ।

पदार्थ— हे परमात्मन् ! (तु) शीघ्र (प्रद्रव) गमन करो और गमन करके (कोशं) कर्म्मयोगीके अन्तःकरणको (परिनिषीद) ग्रहण करो (नृभिः) और मनुष्योंसे (पुनानः) पूज्यमान आप (वाजं) बलकी (अभ्यर्ष) वृष्टि करो (अश्वं) विजली के (न) समान (त्वा वाजिनं) बलस्वरूप आपकी (मर्जयन्तः) उपासना करते हुए उपासक लोग (अच्छाबर्हिः) यज्ञके प्रति आपकी (रशनाभिः) उपासना द्वारा (नयन्ति) आपका साक्षात्कार करते हैं ।

भावार्थ—यहां (वाजी) नाम बलवान् का है, बलस्वरूपपरमात्मासे यहां हृदयकी शुद्धिकी प्रार्थना कीगई है, जो लोग 'वाजी' के अर्थ घोड़ा करके वेदों के अर्थोंको उच्चभावसे गिराकर निन्दित बनादेते हैं वे अत्यन्त भूल करते हैं 'वाज' शब्दके अर्थ (अन्न, ऐश्वर्य्य, और बल) ही हैं इसलिये (ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वम्) इत्यादिमन्त्रोंमें ऐश्वर्यके परिपक्व करनेका अर्थहै घोड़ा मारनेका नहीं।

स्वायुधः पवते देव इन्दु-
रशस्तिहा वृजनं रक्षमाणः ।
पिता देवानां जनिता सुदक्षो
विष्टम्भो दिवो धरुणः पृथिव्याः ॥ २ ॥

सुऽआयुधः । पवते । देवः । इंदुः । अशस्तिऽ हा । वृजनं । रक्षमाणः । पिता । देवानां । जनिता । सुऽदक्षः विष्टंभः । दिवः । धरुणः । पृथिव्याः ॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! त्वं (दिवः) द्युलोकस्य (विष्टम्भः) आधारस्तथा (पृथिव्याः) (धरण्याः) धरुणः) धारकः (सुदक्षः) चतुरस्तथा (देवानां जनिता) सूर्य्यादिदिव्यज्योतिषामुत्पादकः। वृजनं) व्यसनेभ्यः (रक्षमाणः) रक्षांकुर्वाणः (पिता) पितृतुल्यः (अशस्तिहा) रक्षसां हननकर्ता। (इन्दुः) सर्वप्रकाशकः (देवः) दिव्यरूपश्चासि। (स्वायुधः) सर्वशक्तिसम्पन्नः परमात्मा (पवते) मां पवित्रयतु।

पदार्थ—हे परमात्मन् ! आप (दिवः) द्युलोकके (विष्टम्भः) आधार हैं तथा (पृथिव्याः) पृथिवीके (धरुणः) धारण करनेवाले हैं। (सुदक्षः) चतुर तथा (देवानां जनिता) सूर्य्यादिदिव्यज्योतियोंके उत्पादक हैं ! (वृजिनं) व्यसनोंसे (रक्षमाणः) रक्षा करते हुए (पिता) पिताके समान (अशास्तिहा) राक्षसोंको हनन करनेवाले हैं और (इन्दुः) सर्व-प्रकाशक हैं। (देवः) दिव्यरूप हैं (स्वायुधः) सर्वशक्तिसम्पन्न हैं उक्त गुणोंवाले आप (पवते) हमको पवित्र करें ॥

भावार्थ—यहां सुदक्षादिनामोंसे उक्त परमात्माका प्रकारान्तरसे वर्णन किया है ॥

ऋषिर्विप्रः पुरएता जनानामृ-
भुर्धीर उशना काव्येन ।
स चिद्विवेद निहितं यदासाम-
पीच्यं गुह्यं नाम गोनाम् ॥ ३ ॥

ऋषिः । विप्रः । पुरःऽएता । जनानां । ऋभुः । धीरः । उशना । काव्येन । सः । चित् । विवेद । निःऽहितं । यत् । आसां । अपीच्यं । गुह्यं । नाम । गोनां ॥

पदार्थः—(ऋषिः) ऋषति जानात्यतीन्द्रियार्थमिति ऋषिः, योऽतीन्द्रियार्थस्य ज्ञाता तस्येह नाम ऋषिः । तथा (विप्रः) यो मेधावी । (पुर, एता, जनानां) अपि च यो नराणां हृदये पूर्व-मेव प्राप्तः । अपरञ्च (ऋभुः) अनन्तशक्तिसम्पन्नस्तथा

(धीरः) धीरः (काव्येन) अन्यच्च स्वसर्वज्ञतया (उशना) सर्वत्र देदीप्यमानोऽस्ति । (सः चित्) स एव परमात्मा (यदासां) याः प्रकृतेः शक्तयः दीप्तिमत्यः तासां (अपीच्यं) अभ्यन्तरे (गुह्यं नाम) सर्वथा गुप्तरहस्यं (निहितं) न्यदधात् । तं परमात्मैव जानाति ।

पदार्थ—(ऋषिः) ऋषति जानात्यतीन्द्रियार्थमिति ऋषिः, जो अतीन्द्रियार्थको जाने उसका नाम यहां ऋषि है तथा (विप्रः) जो मेधावी है (पुर एता जनानां) और जो मनुष्योंके हृदयमें पहिलेही प्राप्त है और (ऋभुः) अनन्तशक्तिसम्पन्न तथा (धीरः) धीर है और (काव्येन) अपनी सर्वज्ञतासे (उशना) सर्वत्र देदीप्यमान है । (सश्चित्) वही परमात्मा । (यदासां) जो प्रकृतिकी शक्तियोंके (गोनां) जो दीप्तिवाली हैं उनके (अपीच्यं) भीतर (गुह्यंनाम) सर्वोपरि गुह्य रहस्य (निहितं) रक्खा है उसको परमात्माही (विवेद) जानता है ।

भावार्थ—' ऋषति सर्वत्र गच्छति व्यापकत्वेन सर्वं व्याप्नोति ' इति, ऋषिः परमात्मा जो सर्वत्र व्यापक है उसका नाम यहां ऋषि है, यहां ऋषि, विप्र, इत्यादि नामोंसे परमात्माका वर्णन किया है । किसी जड़ वस्तुका नहीं ।

एष स्य ते मधुमाँ इन्द्र सोमो
वृषा वृष्णे परि पवित्रे अक्षाः ।
सहस्रसाः शतसा भूरिदावा
शश्वत्तमं बर्हिरा वाज्यस्थात् ॥ ४॥

एषः । स्यः । ते । मधुऽमान् । इंद्र । सोमः । वृषा । वृष्णे ।

परि॑ । प॒वित्रे॑ । अ॒क्षा॒रि॒ति॒ । स॒ह॒स्र॒ऽसाः । श॒त॒ऽसाः भूरि॒ऽदावा॑ । श॒श्व॒त्ऽत॒मं । ब॒र्हिः । आ । वा॒जी । अ॒स्था॒त् ॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे जगदीश्वर ! (सोमः) सोमस्वभावः । अपिच (वृषा) सर्वकामनानां दाताऽसि (वृष्णे) हे व्यापकपरमात्मन् ! (एषः, स्य) अयंसः (ते) तव (मधुमान्) मधुरतादिगुणानां दाता (शतसाः, सहस्रसाः) शतसहस्रशक्तीनां निधाता (भूरिदावा) अनेककामपूरकः (शश्वत्तमम्) सन्ततफलोत्पादकः (बर्हिः) यो यज्ञस्तथा (वाजी) बलयुक्तोऽस्ति, तं त्वं (अस्थात) निजसत्तया सुशोभयसि । तथा (पवित्रे) पवित्रान्तःकरणेषु त्वं (पर्य्यक्षाः) आनन्दवर्षुकोस्ति ।

पदार्थ—(इन्द्र) हे जगदीश्वर ! (सोमः) आप सोमस्वभाव हैं । और (वृषा) सब कामनाओंके देनेवाले हैं तथा (पवित्रे) पवित्र अन्तःकरणोंमें आप (पर्यक्षाः) आनन्दकी वृष्टि करनेवाले हैं (वृष्णे) हे व्यापकपरमात्मन् ! (एषः स्यः) वो ये (ते) तुम्हारा (मधुमान्) मधुरतादिगुणोंको देनेवाला (शतसाः, सहस्रसाः) सैकड़ों और हजारों शक्तियोंको रखनेवाला (भूरिदावा) जो अनन्तप्रकारकी कामनाओंको देनेवाला है (शश्वत्तमम्) निरन्तर फल उत्पन्न करनेवाला (बर्हिः) जो यज्ञ है तथा (वाजी) बलयुक्त है उसको आप (अस्थात्) अपनी सत्तासे सुशोभित करते हैं ।

भावार्थ—बर्हिः, इति 'अन्तरिक्षनामसुपठितम्' नि० अ० । २ । खं० १ । बर्हिः शब्दके मुख्यार्थ अन्तरिक्षके हैं जिसप्रकार अन्तरिक्ष नानाप्रकारकी ज्योतियोंका आधार और अनन्तप्रकार कामनारूपवृष्टियोंका

आधार इसीप्रकार यज्ञ भी अन्तरिक्षके समान विस्तृत है यहां रूपकालङ्कारसे यज्ञको बर्हिःरूपसे वर्णन किया है ।

एते सोमा अभि गव्या सहस्रा
महे वाजायामृताय श्रवांसि ।
पवित्रेभिः पवमाना असृग्रञ्छ्रवस्यवो
न पृतनाजो अत्याः ॥ ५ ॥ २२

एते । सोमाः । अभि । गव्या । सहस्रा । महे । वाजाय । अमृताय । श्रवांसि । पवित्रेभिः । पवमानाः । असृग्रन् । श्रवस्यवः । न । पृतनाजः । अत्याः ॥

पदार्थः—(एते) पूर्वोक्ताः (सोमाः) परमात्मनःसौम्यस्वभावाः (गव्या) गतिशीलाय (सहस्रा) सहस्रशक्तिमते (महे) महते (वाजाय, अमृताय) यज्ञाय (श्रवांसि) ये ऐश्वर्य्यरूपाः (पवित्रेभिः) पूतान्तःकरणैः ये (पवमानाः) पावकाश्च सन्ति,उक्तस्वभावानां (श्रवस्यवः) यश इच्छवः उपासकाः (पृतनाजः) ये युद्धेषु जयमिच्छन्ति ते (अत्याः न) शीघ्रगामिन्या विद्युतः शक्तय इव (अभ्यसृग्रन्) दधतु ।

पदार्थ—(एते) पूर्वोक्त (सोमाः) परमात्माके सौम्यस्वभाव (गव्या) गतिशील (सहस्रा) सहस्रशक्तियोंवाले (महे) बड़े (वाजाय अमृताय) यज्ञके लिये जो (श्रवांसि) ऐश्वर्यरूप हैं (पवित्रेभिः) पवित्र अन्तकरणोंसे जो (पवमानाः) पवित्रतावाले हैं वे उक्तस्वभावोंको (श्रवस्यवः) यशकी इच्छा करनेवाले उपासकलोग (पृतनाजः) जो युद्धोंमें

जता बननेकी इच्छा करते हैं, वे (अत्या न) शीघ्रगामिनी विद्युत्की शक्तियोंके समान (अभ्यसृग्रन) धारण करें ।

भावार्थ—जो लोग संसारमें विजेता बनना चाहें वे परमात्माके विचित्रभावोंको धारण करें जिसप्रकार सत्पुरुषके भावोंको धारण करनेसे पुरुष सत्पुरुष बन सकता है इसीप्रकार उस आदिपुरुषपरमात्माके गुणोंके धारण करनेसे उपासक सत्पुरुष महापुरुष बन सकता है इसका नाम परमात्मयोग है ॥

परि हि ष्मा पुरुहूतो जनानां
विश्वासरद्भोजना पूयमानः ।
अथाभर श्येन भृत प्रयांसि रयिं
तुञ्जानो अभि वाजमर्ष ॥ ६ ॥

परि । हि । स्म । पुरुऽहूतः । जनानां । विश्वा । असरत् । भोजना । पूयमानः । अथ । आ । भर । श्येनऽभृत । प्रयांसि । रयिं । तुंजानः । अभि । वाजं । अर्ष ॥

पदार्थः—(हि) यतः परमात्मा (पुरुहूतः) सर्वस्योपास्यदेवोऽस्ति । (जनानां) मानवानां (विश्वा) सर्वेषां (भोजना) भोग्यपदार्थानां (पूयमानः) पावकः (पर्य्यसरत्) उपासकाना हृदये समागत्य विराजते । (श्येनभृतः) विद्युच्छक्तिधारकः परमात्मा (प्रयांसि) सर्वाण्यैश्वर्य्याणि पूरयताम् । अपिच त्वं (रयिं) धनं (तुञ्जानः) ददासि अपरञ्च त्वं मह्यं (वाजं) बलं (अभ्यर्ष) सर्वथा देहि ।

पदार्थ—(हि) क्योंकि परमात्मा (पुरुहूतः) सबका उपास्य-देव है । (जनानां) मनुष्योंके (विश्वा) सब (भोजना) भोग्यपदार्थों-को (पूयमानः) पवित्र करनेवाला (पर्यसरत्) उपासकोंके हृदयमें आकर विराजमान होता है । (अथ) और (श्येनभृतः) विद्युत्की शक्तियोंको धारणकरनेवाला परमात्मा (प्रयांसि) सब ऐश्वर्योंको (आभर) पूर्ण करें और आप (रयिं) धनको (तुञ्जानः) देनेवाले हैं और आप हमको वाजं) बल (अभ्यर्ष) सब प्रकारसे दें ।

भावार्थ—इस मन्त्रमें परमात्माको सर्वैश्वर्य्यप्रदातारूपसे वर्णन किया है ।

एष सुवानः परि सोमः पवित्रे
सर्गो न सृष्टो अदधावदर्वा ।
तिग्मे शिशानो महिषो न शृङ्गे
गा गव्यन्नभि शूरो न सत्वा ॥ ७ ॥

एषः । सुवानः । परि । सोमः । पवित्रे । सर्गः । न । सृष्टः । अदधावत् । अर्वा । तिग्मेइति । शिशानः । महिषः । न । शृंगेइति । गाः । गव्यन् । अभि । शूरः । न । सत्वा ॥

पदार्थः—(एषः) उक्तपरमात्मा (सुवानः) सर्वत्राविर्भूतः (सोमः) यः सौम्यस्वभावयुक्तः सः (पवित्रे) पवित्रान्तःकरणे (सृष्टः) विरचितानां (सर्गः) सृष्टीनां (न) तुल्यः (अर्वा) गतिशीलो यः परमात्मा सः (पर्य्यदधावत्) उपासकानामभिमुखं निजज्ञानदृष्ट्या समागच्छति । अपिच (न) यथा (तिग्मे)

तीक्ष्णे (शृङ्गे) अज्ञानविदारणे (शिशानः) निमग्नः (महिषः) महापुरुषो भवति । अथवा (शूरः) वीरः (न) यथा (सत्वा) स्थितिमान् भूत्वा (गव्यन्, गाः) महदैश्वर्य्यमिच्छन् स्वलक्ष्याभिमुखं गच्छति तथैव परमात्मा उपासकान् ज्ञानदृष्ट्या लक्ष्यं निर्माति ।

पदार्थ—(एषः) उक्तपरमात्मा (सुवानः) सर्वत्र आविर्भूत (सोमः) जो सौम्यस्वभावयुक्त है वह (पवित्रे)पवित्रअन्तःकरणमें (सृष्टः) रचेहुए (सर्गः) सृष्टियोंके (न) समान (अर्वा) गतिशील जो परमात्मा है वह (पर्यद्धावत्) उपासकोंकी ओर अपनी ज्ञानदृष्टिसे आता है । (न) जिसप्रकार (तिग्मे) तीक्ष्ण (शृङ्गे) अज्ञानके विदारणमें (शिशानः) मग्न हुआ (महिषः) महापुरुष होता है अथवा (शूरः) शूरवीर (न) जैसे (सत्वा) स्थितिवाला होकर (गव्यन् गाः) बड़े ऐश्वर्य्यकी इच्छा करता हुआ अपने लक्ष्यकी ओर (अभि) जाता है इसीप्रकार परमात्मा उपासकोंको ज्ञान–दृष्टिसे लक्ष्य बनाता है ।

भावार्थ—जो लोग श्रवणमननादि साधनोंके द्वारा अपने अन्तःकरणको ज्ञानका पात्र बनाते हैं परमात्मा उनके अन्तःकरणको अवश्यमेव ज्ञानसे भरपूर करता है ।

एषा ययौ परमादन्तरद्रेः
कूचित्सतीरूर्वे गा विवेद ।
दिवो न विद्युत्स्तनयन्त्यभ्रैः
सोमस्य ते पवत इन्द्र धारा ॥ ८ ॥

एषा । आ । ययौ । परमात् । अंतः अद्रेः । कूऽचित् । सतीः ।

ऊर्वे । गाः । विवेद । दिवः । न । विऽद्युत् । स्तनयंती ।
अभ्रैः । सोमस्य । ते । पवते । इंद्र । धारा ॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे कर्म्मयोगिन् ! (सोमस्य) सौम्यगुणसम्पन्नस्य परमात्मनः (धारा) ज्ञानस्य धारा (ते) त्वा (पवते) पवित्रयतु । (न) यथा (दिवः) द्युलोकात् (अभ्रैः) मेघैः (विद्युत्) तड़ित् (स्तनयन्ती) शब्दायमाना विस्तारं प्राप्नोति तथैव परमात्मनो ज्ञानज्योतिस्त्वयि विस्तारं प्राप्नोतु । (एषा) उक्तधारा (परमादद्रेः) सर्वविदारको यः परमात्मा अस्ति तस्य (अन्तः) स्वरूपे (कूचित्) कस्मिन्नप्येकस्थाने गुप्तासती (ऊर्वे) गुप्तदेशे या (गाः) निजसत्तां (विवेद) लभते सा (आययौ) उपासकस्यान्तःकरणे स्थिरा भवति ।

पदार्थ—(इन्द्र) हे कर्मयोगिन् ! (सोमस्य) सौम्यगुणविशिष्ट-परमात्माकी (धारा) ज्ञानकी धारा (ते) तुमको (पवते) पवित्र करे (न) जिसप्रकार (दिवः) द्युलोकसे (अभ्रैः) अभ्रोंके द्वारा (विद्युत) बिजली (स्तनयन्ती) शब्द करतीहुई विस्तार पाती है इसी प्रकार परमात्माकी ज्ञानज्योति तुममें विस्तारको प्राप्त हो । (एषा) उक्तधारा (परमादद्रेः) सबको विदीर्ण करनेवाला जो परमात्मा है उसके (अन्तः) स्वरूपमें (कूचित्सती) किसी एक स्थानमें गूढ़ हुई (ऊर्वे) गूढ़देशमें जो (गाः) अपनी सत्ताको (विवेद) लाभ कर रही है वह (आययौ) उपासकके अन्तःकरणमें स्थिर होती है ॥

भावार्थ—परमात्मा अपने भक्तके हृदयमें अपने भावोंको प्रकाश करता है ।

उत स्म राशिं परि यासि
गोनामिन्द्रेण सोम सरथं पुनानः ।

पूर्वीरिषो बृहतीर्जीरदानो शिक्षा

शचीवस्तव ता उपष्टुत् ॥ ६ ॥ २३ ॥

उत। स्म। राशिं। परि। यासि। गोनाम्। इन्द्रेण। सोम।
सऽरथम्। पुनानः। पूर्वीः। इषः। बृहतीः। जीरदानो इति
जीरऽदानो। शिक्ष। शचीऽवः। तव। ताः। उपऽस्तुत् ॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (इन्द्रेण) कर्म्मयोगिना सह (सरथं) मित्रतां (पुनानः) पवित्रयन् त्वं (गोनां राशिं) ज्ञानशक्तीनां समूहं (परियासि) प्राप्नोषि (उतस्म) तथा च (पूर्वीः) पुरातनानि (बृहतीः इषः) यानिमहैश्वर्याणितेषां (जीरदानो) दायकोऽसि (शचीवः) हे ऐश्वर्य्यसम्पन्न परमात्मन् ! (उपष्टुत्) स्तुतियोग्योऽसि (ताः) तासामैश्वर्य्यादिशक्तीनां त्वं मह्यं शिक्षां देहि ।

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन ! (इन्द्रेण) कर्मयोगीके साथ (सरथं) मैत्रीभावको (पुनानः) पवित्र करते हुए आप (गोनां राशिं) ज्ञानरूपीशक्तियोंके भण्डारको (परियासि) प्राप्त होते हैं। (उतस्म) अपिच (पूर्वीः) अनादिकालके जो (बृहतीः) बडे (इषः) ऐश्वर्य हैं उनके (जीरदानो) आप देनेवाले हैं। (शचीवः) हे ऐश्वर्यसम्पन्नपरमात्मन् (उपष्टुत्) आप स्तुतियोग्य हैं (ताः) उन ऐश्वर्यादि शक्तियोंकी आप हमें शिक्षा प्रदान करें॥

भावार्थ—इस मन्त्रमें परमात्मा शुभ शिक्षाओंका उपदेश करता है और ऐश्वर्य प्रदानके भावोंका प्रकाश करता है।

इति सप्ताशीतितमं सूक्तं त्रयोविंशो वर्गश्च समाप्तः।
यह ८७ वां सूक्त और २३ वां वर्ग समाप्त हुआ।

अथाष्टर्चस्याष्टाशीतितमस्य सूक्तस्य–

१–८ उशना ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः–१ पंक्तिः । २, ४, ८ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ६, ७ निचृत्त्रिष्टुप् । ५ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः–१ पञ्चमः २–८ धैवतः ॥

अयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्वे
तुभ्यं पवते त्वमस्य पाहि त्वं ।
ह यं चकृषे त्वं ववृषे इन्दुं
मदाय युज्याय सोमम् ॥ १ ॥

अयं । सोमः । इन्द्र । तुभ्यं । सुन्वे । तुभ्यं । पवषे । त्वं । अस्य । पाहि । त्वं । ह । यं । चकृषे । त्वं । ववृते । इंदुं । मदाय । युज्याय । सोमं ॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे कर्म्मयोगिन् (तुभ्यं, सुन्वे) तव संस्काराय (अयं, सोमः) अयं सोमःपरमात्मा (तुभ्यं, पवते) त्वा पवित्रयति । (त्वं) पूर्वोक्तस्त्वं (अस्य) अमुष्याज्ञा (पाहि) रक्ष । (त्वं) पूर्वोक्तस्त्वं (यं) यस्य (इन्दुं)प्रकाशस्वरूपस्य (सोमं) परमात्मन (चकृषे) उपासना करोषि, सः (त्वं) तव (ववृषे) वरणाय (मदाय) आनन्ददानाय च

स्वीकरोति त्वाम् अतस्त्वं (युज्याय) स्वसाहाय्याय (सोमं) सोमस्वरूपपरमात्मन उपासनां कुरु ।

पदार्थ—(इन्द्र) हे कर्म्मयोगिन् ! (तुभ्यं सुन्वे) तुम्हारे संस्कार के लिये (अयं सोमः) यह सोमपरमात्मा (तुभ्यं पवते) तुमको पवित्र करता है । (त्वं) तुम (अस्य) इसकी आज्ञाको (पाहि) पालन करो । (त्वं) तुम (यं) जिस (इन्दुं) प्रकाशरूप (सोमं) परमात्माकी (चकृषे) उपासना करते हो । वह (त्वं) तुम्हारे (ववृषे) वरण करनेके लिये और (मदाय) आनन्द देनेके लिये स्वीकार करता है । इसलिये तुम (युज्याय) अपनी सहायताके लिये (सोमं) सोमरूपपरमात्माकी उपासना करो ।

भावार्थ—जोलोग परमात्माको शुद्धभावसे वर्णन करते हैं परमात्मा उनको अवश्यमेव शुद्धि प्रदान करता है ।

स ईं रथो न भुरिषाळयोजि महः
पुरूणि सातये वसूनि ।
आदीं विश्वा नहुष्याणि जाता
स्वर्षाता वन ऊर्ध्वा नवन्त ॥ २ ॥

सः । ईं । रथः । न । भुरिषाट् । अयोजि । महः । पुरूणि । सातये । वसूनि । आत् । ईं । विश्वा । नहुष्याणि । जाता । स्वःऽसाता । वने । ऊर्ध्वा । नवंत ॥

पदार्थः—(सः, ईं) सोऽयं सोमः (रथो, न) गतिशील विद्युदादि पदार्थो इव (भुरिषाट्) सर्वगतिकारकोऽस्ति

अपिच सर्वपदार्थोनुत्पत्तिसमये (अयोजि) संमिश्रयति । (पुरूणि, वसूनि) बहूनि धनानि (सातये) सुखं दातुं (आर्दी) निश्चयेनयः (नहुष्याणि) मनुष्ययोग्योऽस्ति तस्मैददाति । (वने, स्वर्षाता) संग्रामे (विश्वा) बहवः (जाताः) येऽस्य उत्पन्नाः (ऊर्ध्वा, नवन्त) ते ऊर्ध्वपदात नीचैर्भवन्तु ।

पदार्थ—(सः इं) यह सोम (रथो न) गतिशील विद्युदादि-पदार्थोंके समान (भुरिषाट्) सबको गति करानेवाला है । और सब पदार्थों-को उत्पत्तिसमयमें (अयोजि) मिलाता है । (पुरूणि वसूनि) बहुतसे धनों-को (सातये) सुख देनेके लिये (आर्दी) निश्चय जो (नहुष्याणि) मनुष्यत्व के योग्य हैं उनको देता है (वनेस्वर्षाता) संग्राममें (विश्वा) जो बहुतसे (जाताः) शत्रु उत्पन्न हो गये हैं वे (ऊर्ध्वानवन्त) नीचे हों ।

भावार्थ—परमात्मा हमको अनन्त प्रकारके ऐश्वर्य्य प्रदान करे और हमारे अन्यायकारी प्रतिपक्षियोंको दूर करे

वायुर्न यो नियुत्वाँ इष्टयामा
नासत्येव हव आ शम्भविष्ठः ।
विश्ववारो द्रविणोदा इव त्मन्पूषेव
धीजवनोऽसि सोम ॥ ३ ॥

वायुः । न । यः । नियुत्वान् । इष्टऽयामा । नासत्याऽइव । हवे । आ । शंऽभविष्ठः । विश्वऽवारः । द्रविणोदाःऽइव । त्मन् । पूषाऽइव । धीऽजवनः । असि । सोम ॥

पदार्थः—(यः) यः सोमः (वायुर्न) पवन इव (नियुत्वान्) वेगवान्, (इष्टयामा) स्वेच्छया गमनशीलः, नासत्येव विद्युदिव (सम्भविष्टः) अतिशयसुखदायकः, (विश्ववारः) निखिलवरणीय, (पूषेव) पूषेव पोषकः, (सवितेव, धीजवनः, असि) सूर्य्यसमानो मनोवेगवाँश्चासि । हे उक्तगुणसम्पन्न सोम ! त्वं मा पाहि ।

पदार्थ—(यः) जो सोम (वायुर्न) वायुके समान (नियुत्वान्) वेगवाला है । (इष्टयामा) स्वेच्छाचारी गमनवाला है । और (नासत्येव) विद्युत्के समान (शम्भविष्ठः) अत्यन्त सुखके देनेवाला है । (विश्ववारः) सबके वरण करने योग्य है । (पूषेव) पूषाके समान पोषक है । (सवितेव, धीजवनः, असि) सूर्य्यके समान मनोरूपवेगवाला है । उक्तगुणसम्पन्न हे सोम ! आप हमारी रक्षा करें ।

भावार्थ—इस मन्त्रमें पूर्वोक्तगुणसम्पन्न परमात्मासे यह प्रार्थना है कि, हे परमात्मन् ! आप हमारे अन्तःकरणको शुद्ध करें ।

इन्द्रो न यो महा कर्माणि चक्रि-
र्हन्ता वृत्राणामसि सोम पूर्भित् ।
पैद्वो न हि त्वमहिनाम्नां हन्ता
विश्वस्यासि सोम दस्योः ॥ ४ ॥

इन्द्रः । न । यः । महा । कर्माणि । चक्रिः । हंता । वृत्राणां । असि । सोम । पूःऽभित् । पैद्वः । न । हि । त्वं । अहिऽनाम्नां । हंता । विश्वस्य । असि । सोम । दस्योः ॥

पदार्थः—(यः) योऽयं सोमः (इन्द्रो, न) इन्द्रतुल्यः (महाकर्म्माणि) महतां कर्म्मणां कारकोऽस्ति । (सोम) हे परमात्मन् ! (वृत्राणां, हन्ता, असि) त्वमज्ञानानां नाशकोसि । (पूर्भित्) अज्ञानग्रन्थिभेदकोऽसि । (पैद्वो, न) विद्युदिव (अहिनाम्नां) तमसां (हन्ता) घातकश्चासि । (विश्वस्य, दस्योः) त्वं निखिलदस्यूनां (हन्ता, असि) हननकर्ताऽसि ।

पदार्थ—(यः) जो सोम (इन्द्रोन) इन्द्रके समान (महाकर्म्माणि) बड़े २ कर्म्मोंको (चक्रिः) करता है । (वृत्राणां हन्ता असि) अज्ञानोंके तुम हनन करनेवाले हो । (सोम) हे सोम । (पूर्भित्) अज्ञानरूपीग्रन्थिओंको भेदन करनेवाले हो (पैद्वान) और विद्युत् के समान (अहिनाम्नां) अन्धकारोंके (हन्ता) हनन करनेवाले हो । (विश्वस्य दस्योः) सम्पूर्ण दस्युओंके आप (हन्ता, असि) हनन करने वाले हैं ।

भावार्थ—परमात्मा सबप्रकारके अज्ञानोंका नाश करनेवाला है उसकी कृपासे उपासकमें ऐसा प्रभाव उत्पन्न होता है जिससे वह विद्युतके समान तेजस्वी बनकर विरोधी शक्तियोंका दलन करता है ॥

अग्निर्नयो वन आ सृज्यमानो
वृथा पाजांसि कृणुते नदीषु ।
जनो न युध्वा महत उपब्दिरियर्ति
सोमः पवमान ऊर्मिम् ॥ ५ ॥

अग्निः । न । यः । वने । आ । सृज्यमानः । वृथा । पाजांसि ।

कृणुते । नदीषु । जनः । न । युध्वा । महतः । उपब्दिः । इयर्ति । सोमः । पवमानः । ऊर्मिम् ॥

पदार्थः—(यः) यः सोमः (सृज्यमानोऽग्नि,र्न) उत्पन्नाग्निरिव (वने) अरण्ये (पाजांसि) बलानि (वृथा कृणुते) व्यर्थयति । (नदीषु) अन्तरिक्षेषु (पाजांसि) जलबलानि (वृथाकृणुते) व्यर्थयति । (जनोन) यथा नरः (युध्वा) युद्धं कृत्वा (महत,उपब्दिः) महाशब्दंकुर्वन्(इयर्ति) प्रेरयाति । एवमेव (पवमानः) सर्वपावकः (सोमः) परमात्मा (ऊर्मि) आनन्दतरंगान् वाहयति ।

पदार्थ—(यः) जो सोम (सृज्यमानः अग्निर्न) उत्पन्न की हुई अग्निके समान (वने) वनमें (पाजांसि) बलोंको (वृथा कृणुते) व्यर्थ कर देता है । (नदीषु) अन्तरिक्षोंमें (पाजांसि) जलके बलोंको वृथा कृणुते) व्यर्थ कर देता है । जनोन) जिसप्रकार मनुष्य (युध्वा) युद्ध करके (महत उपब्दिः) बड़ा शब्द करता हुआ (इयर्ति) प्रेरणा करता है । इसी प्रकार (पवमानः) सबको पवित्र करनेवाला (सोमः) सोम (ऊर्म्मिम) आनन्दकी लहरोंको बढ़ाता है ।

भावार्थ—अग्नि जिस प्रकार सब तेजोंको तिरस्कृत करके अपने में मिलालेता है अर्थात् विद्युदादितेज, जैसे अन्य तुच्छ तेजोंको तिरस्कृत करदेता है इसी प्रकार परमात्माके समक्ष सब तेज तुच्छ हैं अर्थात् परमात्मा ही सब ज्योतियोंकी ज्योति होनेसे स्वयंज्योति है ।

एते सोमा अति वाराण्यव्या
दिव्या न कोशासो अभ्रवर्षाः ।

वृथा समुद्रं सिन्धवो न नीचीः

सुतासो अभि कलशाँ असृग्रन् ॥ ६ ॥

एते । सोमाः । अति । वाराणि । अव्या । दिव्याः । न । कोशासः । अभ्रऽवर्षाः । वृथा । समुद्रं । सिन्धवः । न । नीचीः । सुतासः । अभि । कलशान् । असृग्रन् ॥

पदार्थः—(एते, सोमाः) उक्तपरमात्मनः सोमादिगुणाः (वाराण्यव्या) वरणीयान् रक्षणीयाञ्च सर्वदिव्यपदार्थान् (कोशासः) पात्राणिच (अभ्रवर्षाः, न) मेघस्य वर्षा इव परिपूर्णयन्ति । अपिच (वृथा) यथाऽनायासेनैव (समुद्रं) अन्तरिक्षं (सिन्धवः) स्यन्दनशीलप्रकृतेः सत्वादिगुणाः प्राप्नुवन्ति, तथैव (नीची, न) निम्नाभिमुखं (सुतासः) आविर्भावं प्राप्नुवन्तो गुणाः (कलशां) शुद्धान्तःकरणान्यभि (अभि, असृग्रन्) सर्वथा गच्छन्ति ।

पदार्थ—(एते सोमाः) उक्त परमात्माके सोमादिगुण (वाराण्यव्या) वरणीय और रक्षणीय दिव्यांदिव्य पदार्थोंको (कोशासः) पात्रोंको (अभ्रवर्षाः, न) मेघकी वर्षाके समान परिपूर्णकर देते हैं। और (वृथा) जैसे अनायाससे ही (समुद्रं) अन्तरिक्षको (सिन्धवः) स्यन्दनशील प्रकृतिके सत्वादिक गुण प्राप्त होते हैं इसी प्रकार (नीचर्न) नीचाईकी ओर (सुतासः) आविर्भावको प्राप्त हुए हुए गुण (कलशां) शुद्ध अन्तःकरणोंकी (अभि, असृग्रन्) ओर भलीभांति गमन करते हैं ।

भावार्थ—जिन पुरुषोंका अन्तःकरण पवित्र है ' अर्थात् जिन्होंने

श्रवण मनन तथा निदिध्यासन द्वारा अपने अन्तःकरणोंको शुद्ध किया है ' परमात्माके ज्ञानका प्रवाह उनके अन्तःकरणोंकी ओर स्वतः ही प्रवाहित होता है ।

शुष्मी शर्धो न मारुतं पवस्वा-
नभिशस्ता दिव्या यथा विट् ।
आपो न मक्षू सुमतिर्भवा नः
सहस्राप्साः पृतनाषाण्न यज्ञः ॥ ७ ॥

शुष्मी । शर्धः । न । मारुतं । पवस्व । अनभिऽशस्ता । दिव्या । यथा । विट् । आपः । न । मक्षु । सुऽमतिः । भव । नः । सहस्रऽअप्साः । पृतनाषाट् । न । यज्ञः ॥

पदार्थः—(शुष्मी)"सर्वशोषणात्परमात्मनोनाम शुष्मी" हे बलस्वरूप परमात्मन् ! (मारुतं) विदुषागणान् (शर्धो, न) बलवत् (पवस्व) त्वं पवित्रय (यथा) येन प्रकारेण (दिव्या विट्) दिव्यप्रजाना (अनभिशस्ता) सुखप्रदोराजा पूतो भवति । तथैव (आपो, न) सत्कर्मतुल्यः (मक्षू) शीघ्रं (सुमतिः, भव) मह्यं सुमतिमुत्पादय । (सहस्राप्साः) अनन्तशक्तिसम्पन्नस्त्वं (पृतनाषाट्) संग्रामेषु दुराचारिणान्नाशकर्त्तः परमात्मन् ! त्वं (यज्ञो, न) मह्यं यज्ञतुल्यो भव ।

पदार्थ—(शुष्मी) सबको शोषण करनेके कारण परमात्माका नाम शुष्मी है । हे बलस्वरूपपरमात्मन् ! (मारुतं) विद्वानोंके गणको

(शर्धो न) बलके समान (पवस्व) आप पवित्र करें । (यथा) जैसे (दिव्या, विट्) दिव्यप्रजाओंका (अनभिशस्ता) सुख देनेवाला राजा पवित्र होता है इसीप्रकार (आपान) सत्कर्मों के समान (मक्षु) शीघ्र (सुमतिः भव) हमारे लिये सुमति उत्पन्न करें (सहस्राप्साः) अनन्तशक्तियोंवाले आप (पृतनाषाट्) अनाचारियोंको युद्धमें नाश करनेवाले परमात्मन्! (यज्ञोन) आप हमारे लिये यज्ञके समान हों ।

भावार्थ—परमात्माका बल सब बलोंमेंसे मुख्य है इसीलिये (य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते । ऋ० । मं० । १० । २१ । २ इत्यादि मन्त्रोंमें जिसको सर्वोपरि बलस्वरूप कथन किया गया है वह हमको बल प्रदान करे ॥

राज्ञो नु ते वरुणस्य व्रतानि
बृहद्गभीरं तव सोम धाम ।
शुचिष्टमसि प्रियो न मित्रो
दक्षाय्यो अर्यमेवासि सोम ॥ ८ ॥ २४ ॥

राज्ञः । नु । ते । वरुणस्य । व्रतानि । बृहत् । गभीरं । तव । सोम । धाम । शुचिः । त्वं । असि । प्रियः । न । मित्रः । दक्षाय्यः । अर्यमाऽइव । असि । सोम ॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (ते, वरुणस्य, राज्ञः) यस्त्वं निजशक्त्यां सर्वेषां वस्तूनाम् स्थापको राजाऽसि (ते) तव (नु) निश्चयेन (व्रतानि) अहम् आराधनानि दधानि । (सोम) हे परमात्मन् ! (तव धाम) तव स्वरूपाणि (बृहद्गभीरं) अतिगभीराणि सान्ति । अपिच (शुचिस्त्वमासि) त्वं नित्य शुद्धादि-

स्वभावोऽसि । (प्रियो, न) प्रियतुल्योऽसि । (मित्रो, न) सखे-वासि । (दक्षाय्यः) मान्योऽसि । (अर्यमा, इवासि, सोम) हेपरमात्मन् ! न्यायकारीभवान् ।

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (ते वरुणस्य राज्ञः) तुम सब वस्तुओंको अपनी शक्तिमें रखनेवाले श्रेष्ठतम राजा हो । (ते) तुमारे (नु) निश्चय करके (व्रतानि) व्रतोंको हम धारण करें । (सोम) हे परमात्मन् ! (तव-धाम) तुम्हारा स्वरूप (बृहद्गभीरं) बहुत गम्भीर है । और (शुचिस्त्वमसि) तुम नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव हो । (प्रियो, न) प्रियके समान हो । (मित्रोन) मित्रके समान हो । (दक्षाय्यः) मान्य हो । (अर्य्यमा इवासि, सोम) हे सोम परमात्मन् ! आप न्यायकारी हो ।

भावार्थः—इस मन्त्रमें परमात्माने व्रतपालनका उपदेश किया जो पुरुष व्रती होकर परमात्माके नियमका पालन करता है वह परमात्माकी आज्ञाओंका पालन करता है ।

इत्यष्टाशीतितमं सूक्तं चतुर्विंशोवर्गश्च समाप्तः ॥
यह ८८ वाँ सूक्त और २४ वाँ वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ सप्तर्चस्य नवाशीतितमस्य सूक्तस्य—

१–७ उशना ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः–१ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । २, ५, ६, त्रिष्टुप् । ३, ७ विराट् त्रिष्टुप् । ४ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥

अथ परमात्मनि तद्धर्म्मताप्राप्तियोगो निरूप्यते ।

अब परमात्माके गुण धारण करने रूपी योगका वर्णन करते हैं ।

प्रो स्य वह्निः पथ्याभिरस्यान्दिवो
न वृष्टिः पवमानो अक्षाः ।

सहस्रधारो असदन्न्य१स्मे मातु-
रुपस्थे वन आ च सोमः ॥ १ ॥

प्रो इति । स्यः । वह्निः । पथ्याभिः । अस्यान् । दिवः । न । वृष्टिः । पवमानः । अक्षारिति । सहस्रऽधारः । असदत् । नि । अस्मे इति । मातुः । उपऽस्थे । वने । आ । च । सोमः ॥

पदार्थः—(वह्निः) वहति प्रापयतीति वह्निः, य उत्तमगुणानां प्रापकस्तस्येह नाम वह्निरस्ति परमात्मा (पथ्याभिः) शुभमार्गैः (अस्यान्) शुभस्थानानि प्रापयति । (प्रोस्यः) स परमात्मा (दिवः) द्युलोकस्य (वृष्टिः) वर्षणं (न) इव (पवमानः) पावकोऽस्ति । (अक्षीः) स सर्वान् पश्यति । परमात्मा (सहस्रधारः) अनन्तशक्तियुक्तोऽस्ति । (अस्मे) मह्यं (न्यसदत्) विराजते । (मातुरुपस्थे) मातृक्रोडे (च) पुनः (वने) अरण्ये (सोमः) स परमात्मा (आ) सर्वत्रागत्य मां रक्षति ।

पदार्थ—(वह्निः) वहति प्रापयतीति वह्निः जो उत्तम गुणोंको प्राप्त कराये उसका नाम यहां वह्नि है परमात्मा (पथ्याभिः) शुभ मार्गों द्वारा (अस्यान्) शुभस्थानोंको प्राप्त कराता है । (प्रोस्यः) वह परमात्मा (दिवः) द्युलोककी (वृष्टिः) वृष्टिके (न) समान (पवमानः) पवित्र करनेवाला है (अक्षाः) वह सर्वद्रष्टा परमात्मा है (सहस्रधारः) अनन्तशक्तियोंसे युक्त है (अस्मे) हमारेलिये (न्यसदत्) विराजमान होता है । (मातुरुपस्थे) माताकी गोदमें (च) और (वने) बनमें (सोमः) वह परमात्मा (आ) सब जगहपर आकर हमारी रक्षा करता है ॥

भावार्थ—जिसप्रकार माताकी गोदमें पुत्र सानन्द विराजमान होता है इसीप्रकार उपासकलोग उसके अङ्कमें विराजमान हैं ।

तात्पर्य यह है कि ईश्वर विश्वासी भक्तोंको ईश्वरपर इतनाविश्वास होता है कि वे माताके समान उसकी गोदमें विराजमान होकर किसी दुःखका अनुभव नहीं करते ।

राजा सिन्धूनामवसिष्ट वास
ऋतस्य नावमारुहद्रजिष्ठाम् ।
अप्सु द्रप्सो वावृधे श्येनजूतो
दुह ईं पिता दुह ईं पितुर्जाम् ॥ २ ॥

राजा । सिन्धूनां । अवसिष्ट । वासः । ऋतस्य । नावं । आ । अरुहत् । रजिष्ठां । अप्ऽसु । द्रप्सः । ववृधे । श्येनऽजूतः । दुहे । ईं । पिता । दुहे । ईं । पितुः । जां ॥

पदार्थः—स परमात्मा (सिन्धूना) प्रकृत्यादिपदार्थाना (राजा) पतिरस्ति । अपिच (वासः) सर्वस्थानानि (अवसिष्ट) आच्छादयति (रजिष्टां, ऋतस्य, नावं) यः सर्वेभ्यः सुखकारिणी कर्मरूपानौरस्ति; तस्यां (आरुहत) आरोह्य (अप्सु) कर्मसमुद्रात् पारयति । (द्रप्सः) स आनन्दस्वरूपः परमात्मा (ववृधे) सदैव वृद्धिं प्राप्नोति । (श्येनजूतः) विद्युदिव दीप्तिमद्वृत्या गृहीतः परमात्मा ध्यानविषयो भवति । (ईं) अमुं (पिता) सत्कर्मभिः यज्ञपालको यजमानः (दुहे) परिपूर्णरूपेण दोग्धि । अर्थान्निजहृदयगतङ्करोति । (पितुर्जाम्)

सदुपदेशकेनाविर्भावं प्राप्नुवन्तममुं परमात्मानं (दुहे) अहं प्राप्नोमि ।

पदार्थ—वह परमात्मा (सिन्धूनां) प्रकृत्यादि पदार्थोंका (राजा) स्वामी है। और (वासः) सर्वनिवासस्थानोंका (अवसिष्ट) आच्छादन करता है। (रजिष्ठा ऋतस्य नावं) सबसे सुखाली जो कर्म्मोंकी नौका है। उसमें (आरुहत) चढ़ाकर (अप्सु) कर्म्मोंके सागरसे पार करता है। (द्रप्सः) वह आनन्दस्वरूप परमात्मा (ववृधे) सदैव वृद्धिको प्राप्त है। (श्येनजूतः) विद्युतके समान दीप्तिमतीवृत्तिसे ग्रहण कियाहुआ परमात्मा ध्यानका विषय होता है। (ईं) इसको (पिता) सत्कर्म्मों द्वारा यज्ञका पालन करनेवाला यजमान (दुहे) परिपूर्णरूपसे दुहता है। अर्थात् अपने हृदयङ्गत करता है। (पितुर्जाम्) सदुपदेशकसे आविर्भावको प्राप्तहुए इस परमात्माको (दुहे) मैं प्राप्त करता हूँ।

भावार्थ—जो पुरुष कर्मयोगी बनकर परमात्माकी आज्ञाके अनुसार परमात्माके नियमोंको पालन करता है वह परमात्माके साक्षात्कारको अवश्यमेव प्राप्त होता है।

सिंहं नसन्त मध्वो अयासं
हरिमरुषं दिवो अस्य पतिम् ।
शूरो युत्सु प्रथमः पृच्छते
गा अस्य चक्षसा परि पात्युक्षा ॥ ३ ॥

सिंहं । नसंत । मध्वः । अयासं । हरिं । अरुषं । दिवः । अस्य । पतिम् । शूरः । युतऽसु । प्रथमः । पृच्छते । गाः । अस्य । चक्षसा । परि । पाति । उक्षा ॥

पदार्थः—(सिंहं) यः सिंहतुल्यः, (मध्वः) आनन्दस्वरूपः, (अयासं) योऽनायासेनैव सृष्टेरुत्पत्तिस्थितिप्रलयकारकः, (अरुषं) दीप्तिमान् (दिवः) यो द्युलोकस्येश्वरश्चास्ति (अस्य) पूर्वोक्तस्य परमात्मनो ज्ञानं (युत्सु, शूरः) ज्ञानयज्ञादौ यो वीरः (प्रथमः) सर्वाग्रगण्यः स प्राप्नोति । (अस्य, पृच्छते) अपिचास्य ज्ञानं यः पृच्छति, तस्मै जिज्ञासवे (अस्य, चक्षसा) तस्य कथयिता (गाः) तज्ज्ञानमुपदिशति । अपरञ्च (उक्षा) निखिलकामनापूरकः परमात्मा (परि, पाति) तं रक्षति ।

पदार्थ—(सिंहं) जो सिंहके समान है (मध्वः) आनन्दस्वरूप है । (अयासं) जो अनायाससे ही सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करनेवाला है (अरुषं) दीप्तिवाला (दिवः) जो द्युलोकका (पाति) है (अस्य) उस परमात्माके ज्ञानको (युत्सु शूरः) जो ज्ञानयज्ञादिरूप युद्धमें शूरवीर (प्रथमः) जो सबसे अग्रगण्य है । वह पाता है । (अस्य पृच्छते) और जो इसके ज्ञानको पूछता है । उस जिज्ञासुकेलिये (अस्य चक्षसा) इसका कथन करनेवाला (गाः) उस ज्ञानका उपदेश करता है । और (उक्षा) सब कामनाओंको परिपूर्ण करनेवाला परमात्मा (परिपाति) उसकी रक्षा करता है ।

भावार्थ—जो पुरुष परमात्मपरायण होते हैं परमात्मा उनकी अपने ज्ञानके द्वारा रक्षा करता है ।

मधुपृष्ठं घोरमयासमश्वं
रथे युञ्जन्त्युरुचक्र ऋष्वम् ।
स्वसार ईं जामयो मर्जयन्ति
सनाभयो वाजिनमूर्जयन्ति ॥ ४ ॥

मधुऽपृष्ठं । घोरं । अयासं । अश्वं । रथे । युंजंति । उरुऽचक्रे । ऋष्वं ।
स्वसारः । ईं । जामयः । मर्जयंति । सऽनाभयः । वाजिनं ।
ऊर्जयंति ।

पदार्थः—(मधुपृष्ठं) यः सैन्धवघनवत्सर्वत आनन्दमयः (घोरमयासं) यस्य प्रयत्नः घोरः अर्थाद्भयानकः (अश्वं) योगतिस्वरूपश्चास्ति । (ऊरुचक्रे, रथः) योद्रुतगतौ (युंजन्ति) विनियुङ्क्ते । (स्वसारः) स्वयं सरन्तीति स्वसारः इन्द्रियवृत्तयः (जामयः) या मनस उत्पन्नत्वात् परस्परं बन्धुतायाः सम्बन्धं विदधति । (सनाभयः) चित्तादुत्पन्नत्वात्सनाभिसम्बन्धवत्यः । चित्तवृत्तः (मर्जयन्ति) उक्तपरमात्मानं विषयीकुर्वन्ति । अपिच (वाजिनं) तंबलस्वरूपं विषयीकृत्योपासकस्यात्याध्यात्मिकबलं प्रददति ।

पदार्थ—(मधुपृष्ठं) जो सैन्धवघनवत् सर्व ओरसे आनन्दमय है (घोरमयासं) जिसका प्रयत्न घोर है । अर्थात् भयानक है और (अश्वं) जो गतिरूप है (ऊरुचक्रे रथे) अत्यन्त वेगवाली द्रुतगति में (युंजन्ति) जिसने नियुक्त किया है । (स्वसारः) "स्वयं सरन्तीति स्वसारः इन्द्रियवृत्तयः" स्वाभाविकगतिशीलइन्द्रियोंकी वृत्तियें (जामयः) जो मनसे उत्पन्न होनेके कारण परस्पर बन्धुपनका सम्बन्ध रखती हैं (सनाभयः) चित्तसे उत्पन्न होनेके, कारण सनाभि सम्बन्ध रखनेवाली चित्तवृत्तियें (मर्जयन्ति) उक्तपरमात्माको विषय करती हैं । और (वाजिनं) इस बलस्वरूपको (ऊर्जयन्ति) विषय करके उपासकको अत्यन्त आध्यात्मिकबल प्रदान करती हैं ।

भावार्थ—इस मन्त्रमें जामीनाम चित्तवृत्तिका क्योंकि वृत्ति मनसे

उत्पन्न होती है और मनसे उत्पन्न होनेके कारण अन्यवृत्तियें भी उसके साथ सम्बन्ध रखनेके कारण जामी कहलाती हैं।

उक्त वृत्तियें जब परमात्माका साक्षात्कार करती हैं तो उपासकमें आत्मिकबल उत्पन्न होता है अर्थात् शारीरिक आत्मिक सामाजिक तीनों प्रकारके बलकी उत्पत्तिका कारण एकमात्र परमात्मा है कोई अन्य नहीं।

चतस्र ईं घृतदुहः सचन्ते
समाने अन्तर्धरुणे निषत्ताः ।
ता ईमर्षन्ति नमसा पुनानास्ता
ईं विश्वतः परि षन्ति पूर्वीः ॥ ५ ॥

चतस्रः । ईं । घृतऽदुहः । सचंते । समाने । अंतः । धरुणे । निऽसत्ताः । ताः । ईं । अर्षंति । नमसा । पुनानाः । ताः । ईं । विश्वतः । परि । सन्ति । पूर्वीः ॥

पदार्थः—(चतस्रः) पृथिव्यप्तेजोवायूनां चतस्रः शक्तयः (ईं) अमुं परमात्मानं (घृतदुहः) याः स्नेहदोग्ध्र्यः सन्ति, ताः (सचन्ते) संगच्छन्ति (समाने, धरुणे,) एकस्मिन्नधिकरणे (अन्तः, निषत्ताः) व्याप्यव्यापकतायाः सम्बन्धं स्वीकृत्य (ताः) पूर्वोक्ताः शक्तयः (पूर्वीः) या अनन्ताः सन्ति, ताः (ईं) अमुं परमात्मानं (परिषन्ति) सर्वतो विभूषयन्ति ।

पदार्थ—(चतस्रः) पृथिवी जल तेज और वायुकी चारो शक्तियें (ई) इस परमात्माको जो (घृतदुहः) स्नेहके दोहन करनेवाली हैं। वे (सचन्ते) संगत होती हैं। (समाने धरुणे) एक अधिकरणमें (अन्तः

निषत्ताः) व्याप्यव्यापकताका सम्बन्ध रखकर (ताः) वे शक्तियें (ईं) इस परमात्माको (अर्षन्ति) प्राप्त होती हैं । (नमसा) ऐश्वर्य्यसे (पुनानाः) पवित्र करती हुई (ताः) वे शक्तियें (पूर्वीः) जो अनन्त हैं वे (ईं) इस परमात्माको (परिषन्ति) सर्व ओरसे विभूषित करती हैं ।

भावार्थ—प्रकृतिकी परमाणुरूपशक्तियोंसे ईश्वरका ऐश्वर्य विभूषित होरहा है इन सब शक्तियोंका केन्द्र एकमात्र परमात्माही है उसी एकमात्र परब्रह्ममें ये उत्पत्ति स्थिति प्रलय करती हैं अर्थात् आविर्भावका नाम उत्पत्ति और सूक्ष्मरूपसे विराजमानहोने कानाम प्रलय है ।

विष्टम्भो दिवो धरुणः पृथिव्या
विश्वा उत क्षितयो हस्ते अस्य ।
असत्त उत्सो गृणते नियुत्वान्मध्वो
अंशुः पवत इन्द्रियाय ॥ ६ ॥

विष्टंभः । दिवः । धरुणः । पृथिव्याः । विश्वाः । उत । क्षितयः । हस्ते । अस्य । असत् । ते । उत्सः । गृणते । नियुत्वान् । मध्वः । अंशुः । पवते । इंद्रियाय ॥

पदार्थः—(दिवोविष्टम्भः) यो द्युलोकस्याधिकरणं (धरुणः, पृथिव्याः) पृथिव्यधिकरणश्चास्ति । (उत) अपिच (विश्वाः, क्षितयः) सर्वाणि लोकान्तराणि (अस्य, हस्ते) तस्य परमात्मनो हस्तगतानि सन्ति । (उत्सः) सर्वलोकानामुत्पत्तिस्थानम् । (गृणते, ते) स्तोत्रे उपासकाय (नियुत्वान्, असत्) ज्ञानप्रदः स्यात् (मध्वः) आनन्दस्वरूप (अंशुः) सर्वव्या-

पकश्चासि । (इन्द्रियाय) कर्म्मयोगिने (पवते) पवित्रता प्रददातु ।

पदार्थ—(दिवोविष्टम्भः) जो द्युलोकका सहारा है (धरुणः पृथिव्याः) और पृथिवीका आधार है (उत) और (विश्वाः, क्षितयः) सब लोकलोकान्तर (अस्य, हस्ते) उस परमात्मा के हस्तगत हैं।(उत्सः) वह सब लोगोंका उत्पत्तिस्थान है परमात्मा (गृणते ते) स्तुति करनेवाले उपासकके लिये (नियुत्वान्, असत्) ज्ञानप्रद हो (मध्वः) जो परमात्मा आनन्दस्वरूप है (अंशुः) सर्वव्यापक है । (इन्द्रियाय) कर्म्मयोगीके लिये (पवते) पवित्रता दे ।

भावार्थ—द्युभ्वादिलोकोंका अधिकरण एकमात्र वही परमात्मा है अर्थात् उसी परमात्माके सहारे सब ब्रह्माण्डोंकी स्थिति है इस प्रकार यहां परमात्माको अधिकरणरूपसे वर्णन किया है ।

वन्वन्नवातो अभि देववीति-
मिन्द्राय सोम वृत्रहा पवस्व ।
शग्धि महः पुरुश्चन्द्रस्य रायः
सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ ७ ॥ २५ ॥

वन्वन् । अवातः । अभि । देवऽवीतं। इंद्राय। सोम। वृत्रऽहा। पवस्व । शग्धि । महः । पुरुऽचंद्रस्य । रायः । सुऽवीर्यस्य । पतयः । स्याम ॥

पदार्थः— (सोम) हे परमात्मन् ! त्वं (वृत्रहा) अज्ञानविनाशकः (इन्द्राय) कर्म्मयोगिनं (देववीतिं) यो देवानायज्ञं

प्राप्नोति । (वन्वन्नवातः) अपिच योऽगाधोऽस्ति तं (अभि, पवस्व) सर्वतः पवित्रय । (शग्धि) सर्वयाचनापूरकः (महः) सर्वमहान् अपिच (पुरुश्चन्द्रस्य,रायः) सर्वेषामाह्लादकानामाह्लादको य आनन्दस्वरूपस्त्वमसि । तवानुकम्पया (सुवीर्य्यस्य) सर्वबलानामहं (पतयः) स्वामी भवेयम् ।

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! (वृत्रहा) अज्ञानके नाश करनेवाले (इन्द्राय) कर्मयोगीको जो (देववीतिं) जोदेवताओंके यज्ञको प्राप्त है (वन्वन्नवातः) और जो गम्भीर है उसको (अभि पवस्व) सब ओरसे आप पवित्र करिये । (शग्धि) सबकी याचनाको पूर्ण करनेवाले (महः) सबसे बड़े और (पुरुश्चन्द्रस्य रायः) सब आह्लादकों के आह्लादक जो आनन्दस्वरूप आप हैं आपकी कृपा से (सुवीर्यस्य) सब बलोंके हमलोग (पतयः) स्वामी (स्याम) हों ।

भावार्थ—हे परमात्मन् आपकी कृपासे हम सबलोकलोकान्तरोंके पति हों ।

इत्येकोननवतितमंसूक्तं पञ्चविंशोवर्गश्च समाप्तः ।

यह ८९ सूक्त २५ वां वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ षड्ऋचस्य नवतितमस्य सूक्तस्य

॥ ९० ॥ १—६ वसिष्ठ ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥
॥ छन्दः—१, ३, ४, त्रिष्टुप् । २, ६, निचृत्त्रिष्टुप् ।
५ भुरिक् त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥

प्र हि॑न्वा॒नो ज॑नि॒ता रोद॑स्यो॒
रथो॒ न वाजं॑ सनि॒ष्यन्न॑यासीत् ॥

इन्द्रं गच्छन्नायुधासंशिशानो
विश्वा वसु हस्तयोरादधानः ॥ १ ॥

प्र । हिन्वानः । जनिता । रोदस्योः । रथः । न । वाजं । सनिष्यन् । अयासीत् । इन्द्रं । गच्छन् । आयुधा । संऽशिशानः । विश्वा । वसु । हस्तयोः । आऽदधानः ॥

पदार्थः—(हिन्वानः)शुभकर्म्मणि प्रेरयन् (रोदस्योर्जनिता) द्युलोकं पृथिवीलोकञ्चोत्पादयन् (रथोन) गतिशील विद्युदादि पदार्थोइव (वाजं) बलं (सनिष्यत) ददत (अयासीत) आगत्य त्वं मम हृदये विराजस्व । हे परमात्मन् ! त्वं (आयुधा) बलप्रदशस्त्राणि (संशिशानः) संधुक्षयन् (इन्द्रं, गच्छन्) कर्म्मयोगिनं प्राप्नुवन् (विश्वावसु) सर्वप्रकाराण्यैश्वर्य्याणि (हस्तयोः) करयोः (आदधानः) धारयन् (प्रायासीत) मत्सांमुख्यमागच्छ ।

पदार्थ—(हिन्वानः) शुभ कर्मोंमें प्रेरणा करते हुए (रोदस्योर्जनिता) द्युलोक और पृथिवीलोकको उत्पन्न करते हुए (रथोन) गतिशील विद्युदादिपदार्थोंके समान (वाजं) बलको (सनिष्यन्) देतेहुए (अयासीत्) आकर आप हमारे हृदयमें विराजमान हों,हे परमात्मन् ! आप (आयुधा) बलप्रद शस्त्रोंको (संशिशानः) तीक्ष्ण करते हुए (इन्द्रंगच्छन्) कर्मयोगीको प्राप्त होते हुए (विश्वावसु) सब प्रकारके ऐश्वर्योंको (हस्तयोः) हाथोंमें (आदधानः) धारण करते हुए (प्रायासीत्) हमारी ओर आयें ।

भावार्थ—जो जो विभूतिवाली वस्तु हैं उनसबमें परमात्माका तेज

विराजमान है इसलिये यहां परमात्माके आयुधोंका वर्णन किया है वास्तवमें परमात्मा किसी आयुधको धारण नहीं करता क्योंकि वह निराकार है।

अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामाङ्गू-
षाणामवावशन्त वाणीः ।
वना वसानो वरुणो न सिन्धून्वि
रत्नधा दयते वार्याणि ॥ २ ॥

अभि । त्रिऽपृष्ठं । वृषणं । वयःऽधां । आंगूषाणां । अवावशंत । वाणीः । वना । वसानः । वरुणः । न । सिंधून् । वि । रत्नऽधाः । दयते । वार्याणि ॥

पदार्थः—(त्रिपृष्ठं) त्रियज्ञवद्ब्रह्मचर्य्यं सम्पादयन् (वृषणं) बलशीलकर्म्मयोगिन उपदेशाय त्वं (वयोधां) बलधारकः (आंगूषाणां) बलप्रदवाण्याः प्रयोजकश्चास्ति । एवं स्तोतृवाण्यां (अवावशन्) निवसन् त्वं (वना, वसानः) सर्वप्रकाराः सूक्ष्म शक्तीर्धारयन् (वरुणः) सर्वान् स्वशक्त्याऽऽच्छादयन् (सिन्धून्, न) समुद्रतुल्यः (विरत्नधाः) अनेकविधरत्नानि धारयन् त्वं (वार्य्याणि) उत्तमधनानि (दयते) कर्म्मयोगिभ्यो ददासि ।

पदार्थ—(त्रिपृष्ठं) तीनों सवनोंवाले ब्रह्मचर्यको करते हुए (वृषणं) बलशील कर्मयोगीके उपदेशके लिये आप (वयोधां) बलको धारण करानेवाले (आंगूषाणां) बलदायक वाणी के प्रयोग करने वाले हैं ऐसेस्तोता लोगोंकी वाणीमें (अवावशत्) निवास करते हुए (वनावसानः)

सब प्रकारकी सूक्ष्मशक्तियोंको धारण करते हुए (वरुणः) सबको स्वशक्तिसे आच्छादन करते हुए और (सिंधून् न) समुद्रके समान (विरत्नधाः) नानाप्रकारके रत्नोंको धारण करते हुए आप (वार्याणि) उत्तमधनोंको (दयते) कर्मयोगियोंके लिये देते हैं ।

भावार्थ—यहां तीनों प्रकारके ब्रह्मचर्यका वर्णन अर्थात ब्रह्मचर्य्य प्रथम २४ वें वरसतक दूसरा ३६ और तीसरा ४० इनको प्रथम मध्यम उत्तम कहते हैं जो पुरुष उक्तप्रकारके ब्रह्मचर्यांको धारण करते हैं उनको परमात्मा सवप्रकारके ऐश्वर्य प्रदान करता है ॥

शूरग्रामः सर्ववीरः सहावाञ्जेता
पवस्व सनिता धनानि । तिग्मायुधः
क्षिप्रधन्वा समत्स्वषाळ्हः
साळ्हान्पृतनासु शत्रून् ॥ ३ ॥

शूरऽग्रामः । सर्वऽवीरः । सहावान् । जेता । पवस्व । सनिता । धनानि । तिग्मऽआयुधः । क्षिप्रऽधन्वा । समत्ऽसु । अषाळ्हः । सळ्हान् । पृतनासु । शत्रून् ॥

पदार्थः—(शूरग्रामः) यः शूरवीराणा स्वामी (सर्ववीरः) स्वयमपि सर्वप्रकारेणवीरश्चास्ति अपिच (सहावान्) धैर्य्यवान् (जेता) तथा सर्वजेता अस्ति (सनिता) यश्चैश्वर्यो-पार्जने लग्नःतम् (पवस्व) त्वं रक्ष । त्वं (तिग्मायुधः) तीक्ष्णशस्त्रवान् (क्षिप्रधन्वा) शीघ्रगतिश्चासि । अन्यच्च (समत्सु) संग्रामे [अषाळ्हः] परशक्त्यसहनशीलः,

[पृतनासु] प्रधानसेनाया [सत्वान्] धुरन्धराणां [शत्रूणाम्] रिपूणाञ्जेताचासि ।

पदार्थ—(शूरग्रामः) जो शूरवीरोंके समुदायवाले हैं (सर्ववीरः) और स्वयं भी सब प्रकारसे वीर हैं और (सहावान्) धैर्यवान् हैं । तथा (जेता) सबको जीतनेवाले हैं (धनानि सनिता) और जो ऐश्वर्योपार्जनमें लगे हुए हैं उनको आप (पवस्व) पवित्र करें । आप (तिग्मायुधः) तीक्ष्ण शस्त्रोंवाले हैं और (क्षिप्रधन्वा) शीघ्रगतिशस्त्रोंवाले हैं । और (समत्सु) संग्राममें (अषाढः) परशक्ति को न सहनेवाले हैं । और (पृतनासु) परसेनामें (सत्वान्) धुरन्धर (शत्रून्) शत्रुओंके (जेता) जीतनेवाले हैं ॥

भावार्थ—यहां परमात्माका रुद्रधर्मका निरूपण किया रुद्रधर्मको धारण करनेवाला परमात्मावीरोंके अनन्त, सत्वों में शक्ति उत्पन्न करके संसारसे पापकी निवृत्ति करता है । उस अनन्त शक्तियुक्त परमात्माके अतितीक्ष्ण शस्त्र हैं जिससे वह अन्यायकारियोंकी सेनाको विदीर्ण करता है॥

उरुगव्यूतिरभयानि
कृण्वन्त्समीचीने आ पवस्वा पुरंधी ।
अपः सिषासन्नुषसः स्व१र्गाः
सं चिक्रदो महो अस्मभ्यं वाजान् ॥ ४ ॥

उरुऽगव्यूतिः । अभयानि । कृण्वन् । समीचीने इति । संऽईचीने । आ । पवस्व । पुरंधी इति पुरंधी । अपः । सिसासन् । उषसः । स्वः । गाः । सं । चिक्रदः । महः । अस्मभ्यं । वाजान् ॥

पदार्थः—(ऊरु गव्यूतिः) विस्तृतमार्गवांस्त्वं (समीचीने) धर्म्ममार्गे (अभयानि कृण्वन्) अभयं प्रददत् (आपवस्व) मां पवित्रय । त्वं (पुरंधी) सर्वजगद्धारकोऽसि । अपिच (अपः) शुभकर्म्माणि (सिषासन्) शिक्षयन् (उषसः) प्रातःकालस्य (स्वर्गाः) किरणान् (संचिक्रदः) निजवैदिकशब्दैर्विस्तारयसि । (महः) हे सर्वपूज्यपरमात्मन् ! (अस्मभ्यं) अस्माकं (वाजान्) बलानि देहि ।

पदार्थ—(उरुगव्यूतिः) विस्तृत मार्गोंवाले आप (समीचीने) धर्मकी राहमें (अभयानि कृण्वन्) अभय प्रदान करते हुए (आपवस्व) हमको पवित्र करें । आप (पुरन्धी) सम्पूर्ण संसारके धारण करनेवाले हैं । और (अपः) शुभ कर्मोंकी (सिषासन्) शिक्षा करते हुए (उषसः) उषाकालकी (स्वर्गाः) रश्मियोंको (संचिक्रदः) अपने वैदिक शब्दोंसे विस्तृत करते हैं (महः) हे सर्वपूज्यपरमात्मन् ! अस्मभ्यं) हमको (वाजान्) बलोंको दें ।

भावार्थ—जो लोग परमात्माके उपदेश किये हुये शुभमार्गों पर चलते हैं परमात्मा उनको शुभमार्गोंकी प्राप्ति कराता है ।

मत्सि सोम वरुणं मत्सि मित्रं
मत्सीन्द्रमिन्दो पवमान विष्णुम् ।
मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि
देवान्मत्सि महामिन्द्रमिन्दो मदाय ॥ ५ ॥

मत्सि । सोम । वरुणं । मत्सि । इंद्रं । इंदो इति । पवमान ।

विष्णुं । मत्सि । शर्धः । मरुतं । मत्सि । देवान् । मत्सि । महां । इन्द्रं । इंदो इति । मदाय ॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (वरुणम्) सर्वाच्छादनशक्तिधारिणं विद्वांसम् त्वम् (मत्सि) तर्पय आपिच (मित्रम्) स्नेहशक्तिमन्तं विद्वांसम् (मत्सि) तर्पय, (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूपपरमात्मन् ! (विष्णुम्) सर्वासु विद्यासु व्याप्तिशीलं विद्वांसम्, किञ्च (इन्द्रम्) कर्मयोगिनम्, पवित्रय, (पवमान) हे सर्वपावनपरमात्मन् ! (मरुतम्) पूर्वोक्तानां विदुषां समुदायम्, (मत्सि) तर्पय (शर्धः) रुद्ररूपो योविदुषां गणस्तम्, (मत्सि) तर्पय, (देवान्) शान्त्यादिदिव्यगुणवतोविदुषः (मत्सि) तर्पय, (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूपपरमेश्वर ! (इन्द्रम्) कर्मयोगिनम्, नित्यार्चनीयस्त्वम (मदाय) आनन्दाय (मत्सि) तर्पय, ।

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! (वरुणं) सबको आच्छादन करनेकी शक्ति रखनेवाले विद्वानको आप (मत्सि) तृप्त करें । (मित्रं) और स्नेहकी शक्ति रखनेवाले विद्वानको (मत्सि) तृप्त करें । (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूपपरमात्मन् (पवमान) सबको पवित्र करनेवाले ! परमात्मन् ! (विष्णुं) सब विद्याओंमें व्याप्तिशील विद्वानको और (इन्द्रं) कर्मयोगीको (मत्सि) तुम तृप्त करो । (शर्धः) रुद्ररूप जो विद्वानोंका गण है उसे (मत्सि) तृप्त करें (देवान्) शान्त्यादि दिव्यगुणयुक्त विद्वानोंको (मत्सि) तृप्त करें (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूपपरमेश्वर ! (महां) सर्व पूज्य आप (मदाय) आनन्दके लिये (इन्द्रं) कर्मयोगी को (मत्सि) तृप्त करें ।

भावार्थ—इस मन्त्रमें कर्मयोगीके क्रिया कौशल्यकी पूर्तिके लिये परमात्मासे प्रार्थनाकी गई है कि हे परमात्मन् ! आप कर्मयोगीको सब प्रकारसे निपुण करिये ।

एवा राजेव क्रतुमाँ अमेन
विश्वा घनिघ्नद्दुरिता पवस्व ।
इन्दो सूक्ताय वचसे वयोधा
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥ २६ ॥

एव । राजाऽइव । क्रतुऽमान् । अमेन । विश्वा । घनिघ्नत् । दुःऽइता । पवस्व । इंदोइति । सुऽउक्ताय । वचसे । वयः । धाः । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! त्वम् (राजेव) सर्वप्रकाशकः सर्वस्वामीचासि (क्रतुमान्) कर्मणामधिष्ठाताऽसि (विश्वा, अमेन) सम्पूर्णेन बलेन (दुरिता, घनिघ्नत्) सर्वाण्यपि पापानि दूरीकुर्वन्, त्वम् (पवस्व) अस्मान् पवित्रय (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूपपरमात्मन् ! (सूक्ताय, वचसे) शोभनानां वाणीनामभिधानाय (वयोधाः) ऐश्वर्यं धेहि (यूयम्) त्वम्, (स्वस्तिभिः) कल्याणकारिभिर्भावैः ! (सदा) सदैव (नः) अस्मान् (पात) रक्ष ।

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (राजेव) आप सबको प्रदीप्त करनेवाले और सर्वस्वामी हैं ।(क्रतुमान्) कर्मोंके अधिष्ठाता हैं (विश्वा, अमेन) सम्पूर्ण

बलसे (दुरिता, घनिघ्नत्) समस्त पापोंको दूर करतेहुए (पवस्व ; हमको पवित्र करें (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूपपरमात्मन् ! (सूक्ताय वचसे) सुन्दरवाणियों के कथन करनेको (वयोधाः) ऐश्वर्य देनेवाले (यूयं) आप (स्वस्तिभिः) कल्याणकारी भावोंसे (सदा) सदैव (नः) हमको (पात,) पवित्र करें ।

भावार्थ—इसमें परमात्मासे कल्याणकी प्रार्थना कीगई है ।

इति नवतितमं सूक्तं षड्विंशोवर्गश्च समाप्तः ।

यह ९० वां सूक्त और २६ वां वर्ग समाप्त हुआ ॥

इति श्रीमदार्यमुनिनोपनिबद्धे ऋक्संहिताभाष्ये सप्तमाष्टके तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ।

अथैकनवतितमस्य षड्ऋचस्य सूक्तस्य—

१—६ कश्यप ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ६ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् । ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥

अब चिरजीवी होनेका कथन करते हैं—

असर्जि वक्वा रथ्ये यथाजौ
धिया मनोता प्रथमो मनीषी ।
दश स्वसारो अधि सानो अव्येऽ
जन्ति वह्निं सदनान्यच्छ ॥ १ ॥

असर्जि । वक्वा । रथ्ये । यथा । आजौ । धिया । मनोता ।

प्रथमः । मनीषी । दश । स्वसारः । अधि । सानौ । अव्ये । अजंति । वह्निं । सदनानि अच्छं ॥

पदार्थः—(मनीषी) योहि मनुष्यः परमात्मपरायणः किञ्च गुणेषु प्रशस्ततया (प्रथमः) मुख्योऽस्ति, (मनोता) यश्च सर्वप्रियः सः (धिया) स्वकीयया बुद्ध्या (आजौ) आध्यात्मिके यज्ञे ज्ञानाहुतिं प्रदद्यात् (यथा) यथा कर्मरूपे यज्ञे (वक्का) वक्ता पुरुषो वाणीरूपकर्म (असर्जि) विदधाति, (अव्ये, अधिसानौ) सर्वरक्षकपरमात्मरूपे यज्ञकुण्डे (दश स्वसारः) दश प्राणाः प्राणायामरूपयज्ञं कुर्वन्ति ।

पदार्थ—(मनीषी) जो परमात्मपरायण पुरुष है । और (प्रथमः) गुणोंमें श्रेष्ठ होनेसे मुख्य है । (मनोता) जो सर्वप्रिय है । वह (धिया) अपनी बुद्धिसे (आजो) आध्यात्मिकयज्ञमें ज्ञानकी आहुति प्रदान करे । (यथा) जैसे (रथ्ये) कर्म्मरूपीयज्ञमें (वक्का) वक्ता पुरुष वाणीरूपी कर्म्मको (असर्जि) करता है । (अव्येऽ (धिसानौ) सर्वरक्षकपरमात्मरूप यज्ञकुण्डमें (दश स्वसारः) दश प्राणों को (अधि) उक्त यज्ञके विषयमें (अजन्ति) डालते हैं । जिस प्रकार (सदनानि) सुन्दरवेदिओंके (अच्छ) प्रति (वह्निं) वाह्निको लक्ष्य बनाकर हवन कियाजाता है । इस प्रकार आध्यात्मिकयज्ञमें परमात्माको वाह्निस्थानीय बनाकर हवन कियाजाता है ।

भावार्थ—इस मन्त्रमें प्राणायामका वर्णन किया है जो लोग भलीभांति प्राणायाम करते हैं वे आध्यात्मिकयज्ञ करते हैं ।

वीती जनस्य दिव्यस्य कव्यैरधि

सुवानो नंहुष्येभिरिन्दुः ।

प्र यो नृभिरमृतो मर्त्येभिर्म—
मृजानोऽविभिर्गोभिरद्भिः ॥ २ ॥

वीती । जनस्य । दिव्यस्य । कव्यैः । अधि । सुवानः । नहुष्ये-भिः । इंदुः । प्र । यः । नृऽभिः । अमृतः । मर्त्येभिः । मर्मृजानः । अविऽभिः । गोभिः । अत्ऽभिः ॥

पदार्थः—(अद्भिः) कर्मभिः ' अपइति कर्मनामसु पठितम् ' नि०—२—१—(गोभिः) ज्ञानद्वारा (अविभिः) रक्षया (मर्मृजाानः) संशोध्यमानः एवम्भूतः (मर्त्येभिर्नृभिः) मनुष्यैः क्रियमाणः (अमृतः) अमृतरूपो भवति, योयज्ञः (दिव्यस्य जनस्य) ज्ञानिनः पुरुषस्य (कव्यैः) हवनैः (अधिसुवानः) प्रादुर्भूतः सन् (इन्दुः) दीप्तिशाली भवति, किञ्च (वीती) देवमार्गाय भवति, यश्चोक्तयज्ञः सः (नहुष्येभिः) मानवैर्विधीयमानः शोभनफलवान् भवति ।

पदार्थ—(अद्भिः) कर्म्मोंके द्वारा "अपइति कर्म्मनामसु" पठितम्—निघण्टौ—२—१ (गोभिः) ज्ञानके द्वारा (अविभिः) रक्षासे (मर्मृजानः) जिसका संशोधन किया गया है । ऐसा यज्ञ (मर्त्येभिर्नृभिः) मनुष्यों से किया हुआ (अमृतः) अमृत होता है । जो यज्ञ (दिव्यस्यजनस्य) ज्ञानी पुरुष के (कव्यैः) हवनोंके द्वारा (अधिसुवानः) उत्पन्न हुआ (इन्दुः) दीप्तिवाला होता है । और (वीती) देवमार्गके लिये होता है और यह उक्त यज्ञ (नहुष्येभिः) मनुष्योंके द्वारा किया हुआ उत्तम फलवाला होता है ।

भावार्थ—जो लोग सत्कर्मोंके द्वारा कर्मयज्ञका सम्पादन करते हैं वे उत्तम सुखके भागी होते हैं ।

वृषा वृष्णे रोरुवदंशुरस्मै
पवमानो रुशदीर्ते पयो गोः ।
सहस्रमृक्वा पथिभिर्वचोविदध्व-
स्मभिः सूरो अण्वं वि याति ॥ ३ ॥

वृषा । वृष्णे । रोरुवत् । अंशुः । अस्मै । पवमानः । रुशत् । ईर्ते । पयः । गोः । सहस्रं । ऋक्वा । पथिऽभिः । वचःऽवित् । अध्वस्मऽभिः । सूरः । अण्वं । वि । याति ॥

पदार्थः—(वृषा) कामनां वर्षुकः परमात्मा (वृष्णे) कर्मयोगिने (रोरुवत्) अतितरां शब्दायमानः (अस्मै) अस्मै कर्मयोगिने (अंशुः) सर्वव्यापकः, अपिच (पवमानः) सर्वपावकः परमात्मा (रुशत्) दीप्तिं ददत् (गोः) इन्द्रियाणाम् (पयः) सारभूतज्ञानम् (ईर्ते) प्राप्नोति येन (सहस्रं ऋक्वा) बहुविधाना वाणीना वक्ता (वचोवित्) वाणीनाञ्ज्ञाता (पथिभिः) वाणीनां मार्गैः, ये खलु (अध्वस्माभिः) हिंसारहितास्तैः (सूरः) विज्ञानी (अण्वम्) सूक्ष्मपदार्थानां तत्त्वम् (वियाति) प्राप्नोति ।

पदार्थ—(वृषा) कामनाओंकी वृष्टि करनेवाला परमात्मा (वृष्णे) कर्म्मयोगीके लिये (रोरुवद्) अत्यन्त शब्द करता हुआ

(अस्मै) इस कर्म्मयोगीके लिये (अंशुः) सर्वव्यापक और (पवमानः) सबको पवित्र करनेके लिये परमात्मा (रुशद्) दीप्ति देता हुआ (गोः) इन्द्रियोंके (पयः) सारभूत ज्ञानको (ईर्ते) प्राप्त होता है। जिससे (सहस्रं ऋक्वा) अनन्त प्रकारकी वाणियोंका वक्ता (वचोवित्) वाणियोंका ज्ञाता (पथिभिः) वाणियोंकी गतिसे जो (अध्वस्मभिः) हिंसारहित हैं। (सूरः) विज्ञानी (अण्वं) सूक्ष्म पदार्थोंके तत्वको (वियाति) प्राप्त होता है।

भावार्थ—जो लोग वेदवाणियोंका अभ्यास करते हैं वे सूक्ष्मसे सूक्ष्म पदार्थोंको प्राप्त होते हैं।

रुजा दृळ्हा चिद्रक्षसः सदांसि
पुनान इन्द्र ऊर्णुहि वि वाजान् ।
वृश्चोपरिष्टात्तुजता वधेन ये
अन्ति दूरादुपनायमेषाम् ॥ ४ ॥

रुज । दृळ्हा । चित् । रक्षसः । सदांसि । पुनानः । इंदो इति । ऊर्णुहि । वि । वाजान् । वृश्च । उपरिष्टात् । तुजता । वधेन । ये । अंति । दूरात् । उपऽनायं । एषां ॥

पदार्थः—अपिच स कर्मयोगी (रक्षसः) राक्षसानाम् (दृळहासदांसि) दृढसमितीः (चित्) अपि (रुजा) आत्मीयनाशकशक्त्या विनाशयति, अपिच (विवाजान्) न्यायकारिणाम् बलशालिनां पुरुषाणां शक्तीः (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूपपरमात्मन् ! त्वम् (ऊर्णुहि) आच्छादय, किञ्च

(उपरिष्टात्) उपरिष्टात् (ये दूरात्) दूरदेशाद्वाऽगच्छन्ति (एषाम्) एषां राक्षसानाम् (उपनायम्) स्वामिनम् (तुजताव-धेन) तीक्ष्णेन शस्त्रेण विनाशय ।

पदार्थ—और वह कर्म्मयोगी (रक्षसः) राक्षसोंकी (दृळ्हासदांसि) दृढ़सभाओंको (चिद्) भी (रुजा) अपनी नाशकशक्तिसेनष्ट करदेता है । और (विराजान्) न्यायकारी बलयुक्त पुरुषोंकी शक्तियोंको (इन्दो) हे प्रकाशमान परमात्मन् ! तुम (ऊर्णुहि) आच्छादन करो । और (उपरिष्टात्) जो ऊपरकी ओरसे आते हैं । अथवा (दूरात्) दूरदेशसे जो आते हैं । (एषां) इन राक्षसोंके (उपनायं) स्वामीको (तुजता वधेन) तीक्ष्णवधसे नाश करो ।

भावार्थ—जो पुरुष शमदमादि साधनसम्पन्न होकर परमात्मपरायण होते हैं परमात्मा उनके सब विघ्नोंको दूर करता है और उनके विघ्नकारी राक्षसोंको दमन करके उनके मार्गको सुगम करता है ।

स प्रत्नवन्नव्यसे विश्ववार
सूक्ताय पथः कृणुहि प्राचः ।
ये दुःषहासो वनुषा बृहन्तस्तांस्ते
अश्याम पुरुकृत्पुरुक्षो ॥ ५ ॥

सः । प्रत्नऽवत् ! नव्यसे । विश्वऽवार । सुऽउक्ताय । पथः । कृणुहि । प्राचः । ये । दुःऽसहासः । वनुषा । बृहन्तः । तान् । ते । अश्याम । पुरुऽकृत् । पुरुक्षो इति । पुरुऽक्षो ।

पदार्थः—(विश्ववार !) हे विश्ववरणीय परमात्मन् !

(सप्रत्नवत्) पुरातनस्त्वम् (नव्यसे) अस्मन्नवीनजन्मने (प्राचः पथः) प्राचीनान्मार्गान् (सूक्ताय, कृणुहि) सरलान्विधेहि, किञ्च (पुरुकृत) हे बहुकर्मकारिन् ! (पुरुक्षाः) हे शब्दब्रह्मजनकपरमात्मन् ! ये तव स्वभावाः (ये, दुःसहासः) राक्षसैरसोढव्याः पुनश्च (वनुषा) हिंसास्वरूपाः पुनः कीदृशाः ! (बृहन्तः) महान्तः तान् (ते) पूर्वोक्तास्ते स्वभावान् वयं (अश्याम) प्राप्नुयाम ।

पदार्थ—(विश्ववार) हे विश्ववरणीयपरमात्मन् ! (सप्रत्नवत्) आप प्राचीन हैं । (नव्यसे) हमको नूतन जन्म देनेके लिये हमारेलिये (प्राचः, पथः) प्राचीन रास्तोंको (सूक्ताय कृणुहि) सरल कीजिये । (पुरुकृत) हे बहुत कर्म्म करनेवाले (पुरुक्षाः) हे शब्दब्रह्मके उत्पादकपरमात्मन् ! (ये दुःसहासः) जो राक्षसोंके सहने योग्य नहीं (वनुषा) और जो हिंसारूप हैं (बृहन्तः) बड़े हैं । (तान्) उन (ते) तुम्हारे भावोंको यज्ञमें (अश्याम) हम प्राप्त हों ।

भावार्थ—परमात्माके स्वभाव अर्थात् परमात्माके सत्यादि धर्मोंको राक्षसलोग धारण नहीं करसकते उनको केवल दैवीसम्पत्तिवाले ही धारण करसकते हैं अन्य नहीं इस मन्त्रमें देवभावके दिव्यगुणोंका और राक्षसोंके दुर्गुणोंका वर्णन है ।

एवा पुनानो अपः स्वर्गा
अस्मभ्यं तोका तनयानि भूरि ।
शं नः क्षेत्रमुरु ज्योतींषि सोम
ज्योङ्नः सूर्यं दृशये रिरीहि ॥ ६ ॥ १ ॥

एव । पुनानः । अपः । स्वः । गाः । अस्मभ्यं । तोका । तनयानि । भूरि । शं । नः । क्षेत्रं । उरु । ज्योतींषि । सोम । ज्योक् । नः । सूर्यं । दृशये । रिरीहि ॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (एवपुनानः) अनेन प्रकारेण पवित्रयँस्त्वम् (अपः) अन्तरिक्षम् (स्वः) स्वर्गलोकम् (गाः) पृथिवीलोकञ्च (अस्मभ्यम्) अस्मभ्यम, देहि (तोका) पुत्रान् (भूरि) प्रचुरान् (तनयानि) पौत्रांश्च वितर, किञ्च (नः) अस्मभ्यम् (शम्) कल्याणं भवेत् (उरुक्षेत्रम्) विस्तृतानि क्षेत्राणि च स्युः (सोम) हे परमात्मन् ! (उरु, ज्योतींषि) भूयांसि तेजांसि (नः) अस्मदर्थं सन्तु, किञ्च हे परमात्मन्, (ज्योक्) चिरकालपर्य्यन्तम् (सूर्यं दृशये) तेजोमयमिमं सूर्य्यमाभिविलोकयितुम् (रिरीहि) अस्मान् सामर्थ्यशालिनः कुरु ।

पदार्थ—हे परमात्मन् । (एवपुनानः) इस प्रकार पवित्र करते हुए आप (अपः) अन्तरिक्षलोक (स्वर्) स्वर्गलोग और (गाः) पृथिवीलोक (अस्मभ्यं) हमारे लिये दें । (तोका) पुत्र और (तनयानि) पौत्र (भूरि) बहुतसे प्रदान करें । और (नः) हमारे लिये (शं) कल्याण हो । (उरुक्षेत्रं) और विस्तृत क्षेत्र हों । (सोम) हे परमात्मन् ! (उरु ज्योतींषि) बहुतसी ज्योतियें (नः) हमारेलिये हों । और (ज्योक्) चिरकालतक (सूर्य्यं दृशये) इस तेजोमय सूर्य्यके देखनेके लिये (रिरीहि) सामर्थ्ययुक्त बनायें ।

भावार्थ—जो लोग ईश्वरकी आज्ञाको पालन करते हैं परमात्मा उनके लिये सबप्रकारके ऐश्वर्य प्रदान करता है ।

इत्येकनवतितमंसूक्तं प्रथमो वर्गश्च समाप्तः ॥

अथषड्ऋचस्य द्विनवतितमस्य सूक्तस्य—

॥ ९२ ॥ १—६ कश्यप ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ भुरिक् त्रिष्टुप् । २, ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप् । ३ विराट्त्रिष्टुप् । ६ त्रिष्टुप् धैवतः स्वरः ॥

परि सुवानो हरिरंशुः पवित्रे
रथो न सर्जि सनये हियानः ।
आपच्छ्लोकमिन्द्रियं पूयमानः प्रति
देवाँ अजुषत प्रयोभिः ॥ १ ॥

परि । सुवानः । हरिः । अंशुः । पवित्रे । रथः । न । सर्जि । सनये । हियानः । आपत् । श्लोकं । इंद्रियं । पूयमानः । प्रति । देवान् । अजुषत । प्रयःऽभिः ॥

पदार्थः—(सुवानः) सर्वव्यापकः (हरिः) हरणशीलः (अंशुः) अश्नुते सर्वत्रेत्यंशुः । सूत्रात्मा परमात्मा (पवित्रे) विशुद्धान्तःकरणे (रथोन) गतिशीलपदार्थाइव (परिसर्जि) साक्षात्क्रियते, यः परमात्मा (सनये) उपासनार्थम् (हियानः) प्रेरयति जनानिति शेषः यः परमात्मा (इन्द्रियम्) कर्मयोगिनं (श्लोकम्) शब्दसमुदायम् (आपत्) जनयति पुनश्च कीदृशः सः परमात्मा (पूयमानः) सर्वपावकः (प्रयोभिः)

निजैराशीर्वादैः (देवान्, प्रति) देवेभ्यः विद्वद्भ्यइत्यर्थः—(अजुषत) स्नेहमुत्पादयति ॥

पदार्थ—(सुवानः) सर्वव्यापकः (हरिः) हरणशील (अंशुः) सूत्रात्मा परमात्मा (पवित्रे) पवित्रअन्तःकरणमें (रथोन) गतिशील-पदार्थोंके समान (परिसर्जि) साक्षात्कार कियाजाता है (सनये) जो परमात्मा उपासनाके लिये (हियानः) प्रेरणा करता है । और (इन्द्रियम्) कर्म्मयोगीको (श्लोकं) शब्द संघातको (आपत) उत्पन्न करता है (पूयमानः) सबको पवित्र करनेवाला परमात्मा (प्रयोभिः) अपने आशीर्वादोंसे (देवान्, प्रति) देवतावोंके लिये (अजुषत) प्रेमको उत्पन्न करता है ।

भावार्थ—जो लोग शुद्ध अन्तःकरणसे परमात्माकी उपासना करते हैं परमात्मा उनके अन्तःकरणमें पवित्रज्ञान प्रादुर्भूत करता है ॥

अच्छा॑ नृ॒चक्षा॑ असरत्प॒वित्रे॒
नाम॒ दधा॑नः क॒विर॑स्य॒ योनौ॑ ।
सीद॒न्होते॑व॒ सद॑ने च॒मूषू॒-
पे॑मग्मन्नृ॒षय॑: स॒प्तविप्रा॑: ॥ २ ॥

अच्छ॑ । नृ॒ऽचक्षा॑: । अ॒स॒र॒त् । प॒वित्रे॑ । नाम॑ । दधा॑नः । क॒विः । अ॒स्य॒ । योनौ॑ । सीद॑न् । होता॑ऽइव । सद॑ने । च॒मूषु॑ । उप॑ । ई॒ । अ॒ग्म॒न् । ऋ॒षय॑: । स॒प्त । विप्रा॑: ।

पदार्थः—(नृचक्षाः) सर्वद्रष्टा (कविः) सर्वज्ञश्च

(नामदधानः) इत्यादि नामानि धारयन् परमात्मा (अस्ययोनौ) कर्मयोगिनोऽन्तःकरणे (पवित्रे) बहुभिः साधनैः पवित्रतां प्राप्तं तस्मिन् (अच्छा, सरत्) सम्यक् प्राप्नोति (होतेव) यथा होता (सदने) यज्ञे (सीदन्) आगच्छन् (चमूषु) बहुषु समुदायेषु स्थिरो भवति एवमेव (उपेम्) अस्य समीपे (सप्तर्षयः) मनोबुद्धी पञ्च प्राणाश्च ये (विप्राः) मानवान्पवित्रयन्तिते समागत्य प्राप्नुवन्ति ।

पदार्थ—(नृचक्षाः) सब काद्रष्टा (कविः) और सर्वज्ञ (नामदधानः) इत्यादिनामोंको धारणकरनेवाला परमात्मा (अस्य, योनौ) कर्म्मयोगीके अन्तःकरणमें (पवित्रे) जो साधनों द्वारा पवित्रताको प्राप्त है। उसमें (अच्छासरत्) भलीभाँति प्राप्त होता है। (होतेव) जिसप्रकार होता (सदने) यज्ञमें (सीदन्) प्राप्त होता हुआ (चमूषु) बहुतसे समुदायोंमें स्थिर होता है। इसीप्रकार (उपेम्) इसके समीप (सप्तर्षयः) पांचप्राण, मन, और बुद्धि (विप्राः) जो मनुष्यको पवित्रकरनेवाले हैं वह आकर प्राप्तहोते हैं।

भावार्थः—जो पुरुप कर्मयोगी है उसके पाचों प्राण मन तथा बुद्धि वशीकृत होती है। उक्तसाधनों द्वारा परमात्माका अपने अन्तःकरणमें साक्षात्कार करता है।

प्र सुमेधा गातुविद्विश्वदेवः
सोमः पुनानः सद एति नित्यम् ।
भुवद्विश्वेषु काव्येषु रन्तानु
जनान्यतते पञ्च धीरः ॥ २ ॥

प्र । सुऽमेधाः । गातुऽवित् । विश्वऽदेवः । सोमः । पुनानः ।
सदः । एति । नित्यं । भुवत् । विश्वेषु । काव्येषु । रंता ।
अनु । जनान् । यतते । पंचधीरः ॥

पदार्थः—(सुमेधाः) शोभनप्रज्ञावान्, अपिच (गातु-वित्) मार्गज्ञः (विश्वदेवः) यस्य ज्ञानं सर्वत्र विद्यते (सोमः) सर्वोत्पादकः परमात्मा (पुनानः) सर्वाञ्जनान्पवित्रयन् (नित्यम्) सदैव (सदः) तस्मिन् स्थाने (एति) प्राप्नोति यस्मिन्स्थाने (विश्वेषु काव्येषु) सर्वप्रकारास्वपि रचनासु (रन्ता) रमणकर्त्ता योगी (पञ्चधीरः) पञ्चविधान् (जनान्) प्राणान् (अनुयतते) युनक्ति योजयित्वा च प्राणायामं विधाय (भुवत्) रमणशीलो भवति ।

पदार्थ—(सुमेधाः) शोभन प्रज्ञावाला और (गातुवित्) मार्गके जाननेवाला (विश्वदेवः) जिसका ज्ञान सर्वत्र विद्यमान है । (सोमः) सर्वोत्पादक परमात्मा (पुनानः) सबको पवित्र करता हुआ परमात्मा (नित्यं) सदैव (सदः) उस स्थानको (एति) प्राप्त होता है । जिस स्थानमें (विश्वेषुकाव्येषु) सम्पूर्ण प्रकारकी रचनाओंमें (रन्ता) रमण करनेवाला योगी (पञ्चधीरः) पांचप्रकारके (जनान्) प्राणोंको (अनुयतते) लगाता है । और लगाकर अर्थात्प्राणायाम करके (भुवत्) रमणशील होता है ।

भावार्थ—योगीपुरुष प्राणायामद्वारा परमात्माका साक्षात्कार करता है इसी अभिप्रायसे यह कथन किया है कि योगीको परमात्मा प्राप्त होता है वास्तवमें परमात्मा सर्वव्यापक है उसका जाना आना कहीं नहीं होता ।

तव त्ये सोम पवमान निण्ये
विश्वे देवास्त्रय एकादशासः ।
दश स्वधाभिरधि सानो अव्ये
मृजन्ति त्वा नद्यः सप्त यह्वीः ॥ ४ ॥

तव । त्ये । सोम । पवमान । निण्ये । विश्वे । देवाः ।
त्रयः । एकादशासः । दश । स्वधाभिः । अधि । सानौ ।
अव्ये । मृजंति । त्वा । नद्यः । सप्त । यह्वीः ॥

पदार्थः—(विश्वेदेवाः) सर्वे देवाः (त्रयएकादशासः) त्रयस्त्रिंशत्संख्याकाः सन्ति ते (निण्ये) अन्तरिक्षे विद्यन्ते (सोम) हे सर्वोत्पादकपरमात्मन् ! (त्ये) ते (तव) तुभ्यम् (दशस्वधाभिः) पञ्चानांसूक्ष्मभूतानां पञ्चनांस्थूलभूतानाञ्च (स्वधाभिः) सूक्ष्माभिः शक्तिभिः (अधिसानौ) त्वदीये सर्वश्रेष्ठ स्वरूपे (अव्ये) यत्खलु सर्वपालकं विद्यते तस्मिन् (मृजन्ति) संशोधयन्ति अपि च (त्वाम्) त्वां (सप्त यह्वीः, नद्यः) याः किल वृहत्तराः सप्त नाड्यः सन्ति ताभिः, प्राप्नुवन्ति ।

पदार्थ—(विश्वेदेवाः) सम्पूर्ण देव जो (त्रय एकादशासः) ३३ हैं । वे (निण्ये) अन्तरिक्षमें वर्तमान हैं । (सोम) हे सर्वोत्पादकपरमात्मन् ! (त्ये) वे (तव) तुम्हारेलिये (दशस्वधाभिः) पाँचसूक्ष्मभूत और पाँचस्थूलभूतोंका (स्वधाभिः) सूक्ष्मशक्तियों द्वारा (अधिसानौ) तुम्हारे सर्वोपरि उच्चस्वरूपमें (अव्ये) जो सर्वरक्षक है । उसमें (मृजन्ति) संशोधन करनेवाले हैं । और (त्वां) तुझको (सप्तयह्वीः नद्यः) जो

बड़ी सातनाड़ियां हैं उनकेद्वारा प्राप्तहोते हैं ।

भावार्थ—इसमन्त्रमें योगविद्याका वर्णनकिया है और सप्तनद्यः से तात्पर्य सातप्रकारकी नाड़ियोंका है जिनको इड़ापिङ्गलादि नाड़ियोंके सुष्मणानामोंसे कथनकिया है तात्पर्य यह है कि योगीपुरुष उक्तनाड़ियोंके द्वारा संयम करके परमात्मयोगी बने अर्थात् परमात्मा में युक्त हो ।

तन्नु सत्यं पवमानस्यास्तु यत्र
विश्वे कारवः संनसन्त ।
ज्योतिर्यदह्ने अकृणोदु लोकं
प्रावन्मनुं दस्यवे करभीकम् ॥ ५ ॥

तत् । नु । सत्यं । पवमानस्य । अस्तु । यत्र । विश्वे । कारवः । संऽनसंत । ज्योतिः । यत् । अह्ने । अकृणोत् । ऊं इति । लोकं । प्र । आवत् । मनुं । दस्यवे । करः । अभीकं ॥

पदार्थः—(पवमानस्य) यः सर्वेषां पवित्रयिता परमात्माऽस्ति तस्य (सत्यम्) सत्यस्थानं (नु) निश्चयम् (तत्) तदस्ति (यत्र) यस्मिन् (विश्वे) सर्वे (कारवः) उपासकाः (संनसन्त) संगताभवन्ति (अह्ने) प्रकाशकाय (यत्) यत् ज्योतिरस्ति (उ) तथाच (लोकम्, अकृणोत्) यज्ज्योतिः प्रकाशमुत्पादयति (मनुम्) विज्ञानिपुरुषंच (प्रावत्) रक्षति । तस्माज्ज्योतिषः (दस्यवे) अज्ञानिनम्, असंस्कारिणम्,

अवैदिकम् वा पुरुषं (अभीकं) भयरहितम् (कः) कः कर्तुं शक्नोति ।

पदार्थ—(पवमानस्य) जो सबको पवित्रकरनेवाला परमात्मा है उसका (सत्यं) सत्यका स्थान (नु) निश्चयकरके (तत्) वह है (यत्र) जिसमें (विश्वे) सब (कारवः) उपासक (सन्नसन्त) संगत होते हैं। (अह्ने) प्रकाशकके लिये (यत्) जो ज्योति है । (उ) और (लोकम-कृणोत्) जो ज्योति ज्ञानरूप प्रकाशको उत्पन्न करती है। और (मनुं) विज्ञानी पुरुषकी (प्रावत्) रक्षा करती है । उसज्योतिसे (दस्यवे) अज्ञानी, असंस्कारी, वा अवैदिक, पुरुषकेलिये (अभीकं) निर्भयता (कः) कौन करसकता है ।

भावार्थ—इस मंत्रमें परमात्माके सद्रूपका वर्णन किया और उक्त-परमात्माको सब ज्योतियोंका प्रकाशक माना है ।

परि सद्मेव पशुमान्ति होता
राजा न सत्यः समितीरियानः ।
सोमः पुनानः कलशाँ अयासी-
त्सीदन्मृगो न महिषो वनेषु ॥ ६ ॥ २ ॥

परि । सद्मऽइव । पशुऽमंति । होता । राजा । न । सत्यः । संऽइतिः । इयानः । सोमः । पुनानः । कलशान् । अयासीत् । सीदन् । मृगः । न । महिषः । वनेषु ।

पदार्थः—(होता) उक्तपरमात्मोपासकः (पशुमन्ति,

सद्मेव) ज्ञानागारमिव तं (परियाति) प्राप्नोति (राजा, न) यथा राजा (सत्यः) सत्यानुयायी (समितीः) सभाः (इयानः) प्राप्नुवन् प्रसीदति तथैव विद्वान् ज्ञानागारं प्राप्य प्रसीदति (सोमः) सर्वोत्पादकः परमात्मा (पुनानः) सर्वान् पावयन् [कलशान्] अन्तःकरणानि [अयासीत्] प्राप्नोति (न) यथा [महिषः, मृगः) महाबली (वनेषु) वनेषु प्राप्नोति ।

पदार्थ——(होता) उक्तपरमात्माका उपासक (पशुमन्तिसद्मेव) ज्ञानागारके समान (परियाति) उसको प्राप्त होता है (राजान) जैसेकि राजा (सत्यः) सत्यका अनुयायी (समितीः) सभाको (इयानः) प्राप्त होता हुआ प्रसन्न होता है इसीप्रकार विद्वान् ज्ञानागारको प्राप्त होकर प्रसन्न होता है । (सोमः) सर्वोत्पादकपरमात्मा (पुनानः) सबको पवित्र करता हुआ (कलशां) अन्तःकरणोंको (अयासीत्) प्राप्त होता है । (न) जैसेकि (महिषो मृगः) बलवाला (वनेषु) वनोंमें) प्राप्त होता है ।

भावार्थ——इस मंत्रमें राजधर्मका वर्णन है कि जिसप्रकार राजा-लोग सत्यासत्यकी निर्णयकरनेवाली सभाको प्राप्त होते हैं इसीप्रकार, विद्वानलोगभी न्यायके निर्णय करनेवाली सभाओंको प्राप्त होकर संसारका उद्धार करते हैं—

तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार राजालोग अपने न्यायरूपी सत्य से संसारका उद्धार करते हैं इसी प्रकार विद्वानलोग अपने सदुपदेशों द्वारा संसारका उद्धार करते हैं ।

इति द्विनवतितमं सूक्तं द्वितीयो वर्गश्च समाप्तः ।

अथ त्रिनवतितमस्य पञ्चर्चस्य सूक्तस्य ।

१—५ नोधा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—
१, ३, ४ विराट् त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप् । ५ पादनिचृत्त्रि-
ष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥

साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो
दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः ।
हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य द्रोणं
ननक्षे अत्यो न वाजी ॥ १ ॥

साकंऽउक्षः । मर्जयंत । स्वसारः । दश । धीरस्य । धीतयः । धनुत्रीः । हरिः । परि । अद्रवत् । जाः । सूर्यस्य । द्रोणं । ननक्षे । अत्यः । न । वाजी ॥

पदार्थः—[अत्योवाजी] विद्युदादयो महाबलाः पदार्थाः [न] यथा [ननक्षे] व्याप्नुवन्ति तथैव [सूर्यस्य, द्रोणं] सूर्यमण्डलस्य यः प्रभाकलशोऽस्ति तथा [जाः] तदीया या दिशः उपदिशश्च सन्ति तासु [हरिः] हरणशीलः परमात्मा [पर्यद्रवत्] सर्वत्र परिपूरितः तं पूर्णपरमात्मानं [साकमुक्षः] युगपत् [मर्जयन्त] विषयं कुर्वत्यः (स्वसारः] स्वयं सरणशीलाः (दश, धीः) दशधा इन्द्रियवृत्तयः [धीतयः] या

ध्यानेन परमात्मानं विषयीकुर्वन्ति तथा [धनुत्रीः] मनः प्रेरिकाश्चसन्ति ता एव परमात्मस्वरूपं विषयीकुर्वन्ति ।

पदार्थ—(अत्योवाजी) बलवाले विद्युदादि पदार्थ (न) जैसे (ननक्षे) व्याप्त होजाते हैं । इसीप्रकार (सूर्य्यस्य द्रोणं) सूर्य्य मण्डलका जो प्रभाकलश है । तथा (जाः) उसकी जो दिशा उपदिशायें हैं । उनमें (हरिः) हरणशीलपरमात्मा (पर्य्यद्रवत्) सर्वत्र परिपूर्ण है । उस पूर्णपरमात्माको (साकमुक्षः) एक समयमें (मर्जयन्त) विषय करती हुई (स्वसारः) स्वयं सरणशील (दश धीः) १० प्रकारकी इन्द्रियवृत्तियें (धीतयः) जो ध्यानद्वारा परमात्माको विषय करनेवाली हैं । और (धनुत्रीः) और मनकी प्रेरक हैं वे परमात्माके स्वरूपको विषय करती हैं ।

भावार्थ—योगी पुरुष जब अपने मनका निरोध करता है तो उसकी इन्द्रियरूप वृत्तियें परमात्माका साक्षात्कार करती हैं ।

सं मातृभिर्न शिशुर्वावशानो
वृषा दधन्वे पुरुवारो अद्भिः ।
मर्यो न योषामभि निष्कृतं
यन्त्सं गच्छते कलश उस्रियाभिः ॥२॥

सं । मातृऽभिः । न । शिशुः । वावशानः । वृषा । दधन्वे । पुरुऽवारः । अत्ऽभिः । मर्यः । न । योषां । अभि । निःऽकृतं । यन् । सं । गच्छते । कलशे । उस्रियाभिः ॥

पदार्थः—[वृषा] कर्मयोगी यः [पुरुवारः] अनेक-

जनैः वरणीयः सः अद्भिः] सत्कर्मभिः [दधन्वे] धार्यते । यः कर्मयोगी [वावशानः] परमात्मविषयककामनावान् तथा [मातृभिः] स्वेन्द्रियवृत्तिभिः [शिशुः न] सूक्ष्मकर्तेव (संदधन्वे) धारयति (न) यथा [योषां] स्त्रियम् [मर्यः] मनुष्यः धारयति तथैव [उस्रियाभिः] ज्ञानशक्तिद्वारा कर्मयोगी परमात्मविभूतीर्धारयति । तथा यः परमात्मा (निष्कृतम्] ज्ञानविषयो भवन् (कलशे) तस्य कर्मयोगिनोन्तःकरणे संगच्छते प्राप्नोति ॥

पदार्थ—(वृषा) कर्म्मयोगी जो (पुरुवारः) बहुतलोगों को वरणीय है । वह (अद्भिः) सत्कर्म्मों द्वारा (दधन्वे) धारण किया जाता है । जो कर्म्मयोगी (वावशानः) परमात्माकी कामनावाला है और (मातृभिः) अपनी इन्द्रियवृत्तियोंसे (शिशुः) सूक्ष्म करनेवालेके (न) समान (संदधन्वे) धारण करता है (न) जिस प्रकार (योषां) स्त्रीको (मर्य्यः) मनुष्य धारण करता है इस प्रकार (उस्रियाभिः) ज्ञान की शक्तियोंके द्वारा कर्म्मयोगी परमात्माकी विभूतियोंको धारण करता है । और जो परमात्मा (निष्कृतं) ज्ञानका विषय हुआ हुआ (कलशे) उस कर्म्मयोगीके अन्तःकरण में (संगच्छते) प्राप्त होता है ।

भावार्थ—जिस प्रकार ऐश्वर्यप्रद प्रकृतिरूपी विभूतिको उद्योगी पुरुष धारण करता है इसी प्रकार प्रकृतिकी नानाशक्तिरूपविभूतिको कर्मयोगी पुरुष धारण करता है ।

उत प्र पिप्य ऊधरघ्न्याया
इन्दुर्धाराभिः सचते सुमेधाः ।
मूर्धानं गावः पयसा चमूष्वभि
श्रीणन्ति वसुभिर्न निक्तैः ॥ ३ ॥

उत । प्र । पिप्ये । ऊधः । अघ्न्यायाः इन्दुः । धाराभिः । सचते । सुऽमेधाः । मूर्धानं । गावः । पयसा । चमूषु । अभि । श्रीणंति । वसुऽभिः । न । निक्तैः ॥

पदार्थ—[सुमेधाः] सर्वोपरि विज्ञानवान् (इन्दुः) प्रकाशस्वरूपपरमात्मा (धाराभिः) स्वानन्तशक्तीनामैश्वर्येण (सचते) सर्वत्र संगच्छते (उत) तथा (अघ्न्यायाः, ऊधः) गवां दुग्धाधारं स्तनमण्डलं (प्रपिप्ये) नितान्तं वर्धयति तथा (गावश्चमूषु) गवां संघेषु (पयसा) दुग्धेन (अभिश्रीणन्ति) परिपूरणं करोति, तथा (निक्तैर्वसुभिर्न) शुभ्रधनानीव (मूर्धानम्) तस्य परमात्मनः मुख्यस्थानीयैश्वर्यं वयं प्राप्नवाम ॥

पदार्थ—(सुमेधाः) सर्वोपरि विज्ञानवाला (इन्दुः) प्रकाशस्वरूपपरमात्मा (धाराभिः) अपनी अनन्तशक्तियोंके ऐश्वर्यसे (सचते) सर्वत्र संगत होता है । (उत) और (अघ्न्याया ऊधः) गौवोंके दुग्धाधार स्तनमण्डलको (प्रपिप्ये) अत्यन्त वृद्धियुक्त करता है । और (गावश्चमूषु) गौवोंकी सेनामें (पयसा) दुग्धसे (अभिश्रीणन्ति) संयुक्त करता है । और (निक्तैर्वसुभिर्न) शुभ्रधनोंके समान (मूर्धानं) उस परमात्माके मुख्य स्थानीय ऐश्वर्य्यको हमलोग प्राप्त हों ।

भावार्थ—इस मन्त्रमें इस बातकी प्रार्थना है किपरमात्मा गौ, अश्वादि उत्तम धनोंका हमको प्रदान करे ।

स नो देवेभिः पवमान

रदेन्दो रयिमश्विनं वावशानः ।

रथिरायतामुशती पुरंन्धिरस्मद्र्यगा
दानवे वसूनाम् ॥ ४ ॥

सः । नः । देवेभिः । पवमान । रद । इंदो इति । रयिं अश्विनं । वावशानः । रथिरायतां । उशती । पुरंऽधिः । अस्मद्र्यक् । आ दानवे वसूनां ॥

पदार्थः—(इंदो) हे प्रकाशस्वरूपपरमात्मन् ! (अश्विनं) कर्मयोगिने ज्ञानयोगिने च (रयिम्) धनं (वावशानः) धारयन् भवान् (रद) तेभ्यः संप्रददातु (पवमान) हे सर्वपावक ! (देवेभिः) दिव्यशक्तिद्वारा (न) अस्मभ्यम् (वसूनाम्) धनाना (रथिरायताम्, उशती) अत्यन्त बलयुक्तशक्तीः (पुरन्धिः) या उत्कृष्टपदार्थधारिकाः ताः (अस्मद्र्यक्) मदधीनाः कुरु ॥

पदार्थ—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूपपरमात्मन ! (रयिं) धन (अश्विनं) कर्मयोगियों और ज्ञानयोगियोंके लिये (वावशानः) धारण किये हुए आप (रद) प्रदान करो (पवमान) हे सबको पवित्र करनेवाले परमात्मन ! (देवेभिः) दिव्यशक्तियोंके द्वारा (नः) हमको (वसूनां)धनोंकी (रथिरायतामुशती) अत्यन्त बलवती शक्ति (पुरन्धिः) जो बड़े बड़े पदार्थोंके धारण करनेवाली है वह (अस्मद्र्यक) हमारे लिये आप दें ।

भावार्थ—जिन पुरुषोंपर परमात्मा अत्यन्त प्रसन्न होता है उनको धनादि ऐश्वर्यकी हेतु सर्व शक्तियों से परिपूर्ण करता है ।

नूनो र॒यिमुप॑ मास्व नृवन्तं॑
पु॒ना॒नो वा॒ताप्यं॑ वि॒श्वश्च॑न्द्रम् ।
प्र व॑न्दि॒तुरि॑न्दो ता॒र्यायुः॑ प्रा॒तर्म॑क्षु
धि॒याव॑सुर्जगम्यात् ॥ ५ ॥ ३ ॥

नु । नः॒ । र॒यिं । उप॑ । मा॒स्व॒ । नृऽव॑न्तं । पु॒ना॒नः । वा॒ताप्यं॑ । वि॒श्वऽच॑न्द्रं । प्र । व॒न्दि॒तुः । इ॒न्दो॒ इति॑ । ता॒रि॒ । आ॒युः॑ । प्रा॒तः । म॒क्षु । धि॒याऽव॑सुः । ज॒ग॒म्या॒त् ॥

पदार्थः—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (नु) निश्चयं (नः) अस्मभ्यम् (रयिं) ऐश्वर्यं (उपमास्व) देहि तथा (नृवन्तम्) लोकसंग्रहवन्तं मां (पुनानः) पावयन् (वाताप्यम्) प्रेमरूपम् (विश्वचन्द्रम्) विश्वप्रसादकमैश्वर्यं मह्यं देहि, तथा (वन्दितुः) अस्योपासकस्य भवद्द्वारा (प्रतारि) वृद्धिर्भवतु (आयुः) आयुश्चभवतु (धियावसुः) अखिलज्ञान-निधिर्भवान् (प्रातः) उपासनाकाले (मक्षु) शीघ्रं (जगम्यात्) आगत्य मद्बुद्धौ रूढो भवतु ॥

पदार्थ—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन ! (नु) निश्चय करके (नः) हमारे लिये (रयिं) एश्वर्य (उपमास्व) आप दें और (नृवन्तं) लोकसंग्रह वाले मुझको (पुनानः) पवित्र करते हुए आप (वाताप्यं) प्रेमरूप (विश्वचन्द्रं) जो विश्वको प्रसन्न करनेवाला ऐश्वर्य्य है । वह मुझे दें । और (वन्दितुः) इस उपासककी आपके द्वारा (प्रतारि) वृद्धि हो ।

और (आयुः) आयु हो) (धियावसु) सम्पूर्ण ज्ञानों के निधि जो आप हैं (प्रातः) उपासनाकालमें (मक्षु) शीघ्र (जगम्यात्) आकर हमारी बुद्धिमें आरूढ़ हों ।

भावार्थ—इस मंत्रमें प्रकाशस्वरूपपरमात्मासे ऐश्वर्य्यकी प्रार्थना की गई है

इति त्रिनवतितमं सूक्तं तृतीयो वर्गश्च समाप्तः ।

अथ पञ्चर्चस्य चतुर्नवतितमस्य सूक्तस्य

॥ ९४ ॥ १—५ कण्व ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥
छन्दः—१ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ३, ५ विराट्त्रिष्टुप् ।
४ त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥

अथ परमात्मनः श्रेयोधामत्वं निरूप्यते ।

अब परमात्माको सर्वैश्वर्य्यका धाम निरूपण करते हैं ।

अधि यदस्मिन्वाजिनीव शुभः
स्पर्धन्ते धियः सूर्ये न विशः ।
अपो वृणानः पवते कवीयन्व्रजं
न पशुवर्धनाय मन्म ॥ १ ॥

अधि । यत् । अस्मिन् । वाजिनिऽइव । शुभः । स्पर्धंते । धियः । सूर्ये । न । विशः । अपः । वृणानः । पवते । कविऽ-

यत् । व्रजं । न । पशुऽवर्धनाय । मन्म ॥

पदार्थः—(सूर्ये) सूर्यविषये (न) यथा (विशः) रश्मयः प्रकाशयन्ति तथैव (धियः) मनुष्यबुद्धयः (स्पर्धन्ते) स्वोत्कटशक्त्या विषयं कुर्वन्ति (अस्मिन्, अधि) यस्मिन् परमात्मनि (वाजिनीव) सर्वोपरिबलानीव (शुभः) शुभबलमस्ति स परमात्मा (अपोवृणानः) कर्माध्यक्षोभवन् (पवते) सर्वान्पावयति (कवीयन्) कविरिवाचरन् (पशुवर्धनाय) सर्वद्रष्टृत्वपदाय (व्रजं, न) इन्द्रियाधिकरणमन इव (मन्म) यः अधिकरणरूपोऽस्ति स एव श्रेयोधामास्ति ॥

पदार्थ—(सूर्य्ये) सूर्य्यके विषयमें (न) जैसे (विशः) रश्मियें प्रकाशित करती हैं। उसी प्रकार (धियः) मनुष्योंकी बुद्धियें (स्पर्धन्ते) अपनी २ उत्कट शक्तिसे विषय करती हैं। (अस्मिन् अधि) जिस परमात्मामें (वाजनीव) सर्वोपरि बलोंके समान (शुभः) शुभ बल है। वह परमात्मा (अपोवृणानः) कर्म्मोंका अध्यक्ष होता हुआ (पवते) सबको पवित्र करता है। (कवीयन्) कवियोंकी तरह आचरण करता हुआ (पशुवर्धनाय) सर्वद्रष्टृत्वपदके लिये (व्रजं, न) इन्द्रियोंके अधिकरण मनके समान 'व्रजन्ति इन्द्रियाणि यस्मिन् तद्व्रजम्' (मन्म) जो अधिकरणरूप है। वही श्रेयका धाम है।

भावार्थ—परमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण है जो लोग उसके साक्षात् करनेके लिये, अपनी चित्तवृत्तियोंका निरोध करते हैं परमात्मा उनके ज्ञानका विषय अवश्यमेव होता है।

द्विता व्यूर्ण्वन्नमृतस्य धाम

स्वर्विदे भुवनानि प्रथन्त ।

धियः पिन्वानाः स्वसरे न गाव ऋतायन्तीरभि वावश्र इन्दुम् ॥ २ ॥

द्विता । विऽऊर्ण्वन् । अमृतस्य । धाम । स्वःऽविदे । भुवनानि । प्रथन्त । धियः । पिन्वानाः । स्वसरे । न । गावः । ऋतऽयन्तीः । अभि । वावश्रे । इन्दुं ॥

पदार्थः—स परमात्मा (द्विता) जीवप्रकृतिरूपद्वैतम् (व्यूर्ण्वन्) आच्छादयन् (अमृतस्य, धाम) अमृताधारोऽस्ति तस्मै (स्वर्विदे) सर्वज्ञाय (भुवनानि) सम्पूर्णलोकलोकारान्तराणि (प्रथन्त) विस्तीर्यन्ते । सपरमात्मा (धियः, पिन्वानाः) विज्ञानेन परिपूर्णः (स्वसरे) स्वरूपे (न) यथा (गावः) इन्द्रियाणि (ऋतयन्तीः) यज्ञेच्छां कुर्वाणानि सर्वतः (अभिवावश्रे) शब्दं कुर्वन्ति अथवा (इन्दुम्) प्रकाशस्वरूपपरमात्मानम् कामयन्ते । एवंहि जिज्ञासवः उक्तपरमात्मानं कामयन्ताम् ॥

पदार्थ— वह परमात्मा (द्विता) जीव और प्रकृतिरूपद्वैतको (व्यूर्ण्वन्) आच्छादन करताहुआ (अमृतस्य धाम) अमृतके धाम है । उस (स्वर्विदे) सर्वज्ञके लिये (भुवनानि) सम्पूर्णलोकलोकरान्तर (प्रथन्त) विस्तीर्ण होते हैं । वह परमात्मा (धियः पिन्वानाः) विज्ञानोंसे भराहुआ (स्वसरे) अपने स्वरूपमें (न) जैसे कि (गावः) इन्द्रियें (ऋतयन्तीः) यज्ञ की इच्छा करतीहुई सव ओरसे (अभिवावश्रे) शब्द करती है । अथवा (इन्दुं) प्रकाशरूपपरमात्माकी कामना करती हैं । इसी प्रकार जिज्ञासुलोग उस परमात्माकी कामना करें ।

भावार्थ— इस मंत्रमें परमात्माके द्वैतवादका वर्णन किया है ।

परि यत्कविः काव्या भरते शूरो
न रथो भुवनानि विश्वा ।
देवेषु यशो मर्ताय भूषन्दक्षाय
रायः पुरुभूषु नव्यः ॥ ३ ॥

परि । यत् । कविः । काव्या । भरते । शूरः । न । रथः । भुवनानि । विश्वा । देवेषु । यशः । मर्ताय । भूषन् । दक्षाय । रायः । पुरुऽभूषु । नव्यः ॥

पदार्थः—(यत्) यः परमात्मा (कविः) सर्वज्ञः (काव्या, भरते) कविभावस्य पूरकः, यत्र (शूरो न) शूरस्येव (रथः) क्रियाशक्तिः (विश्वा, भुवनानि) सर्वे लोका यत्र स्थिराः (देवेषु) सर्वविद्वत्सु (यशः) यस्य कीर्त्तिः (मर्ताय, भूषन्) सर्वजनान् भूषयन् (दक्षाय, रायः) यश्चातुर्यस्य धनस्य च (पुरु, भूषु) स्वाम्यस्ति (नव्यः) नित्यनूतनश्च ।

पदार्थ—(यत्) जो परमात्मा (कविः) सर्वज्ञ है (काव्या भरते) कवियोंके भावको पूर्ण करनेवाला है । जिसमें (शूरो न) शूरवीरके समान (रथः) क्रियाशक्ति हैं (विश्वाभुवनानि) सम्पूर्ण भुवन जिसमें स्थिर हैं । (देवेषु) सब विद्वानोंमें (यशः) जिसका यश है । (मर्ताय भूषन्) सब मनुष्योंको विभूषित करता हुआ (दक्षायरायः) जो चातुर्य्यका और धनका (पुरुभूषु) स्वामी है । और (नव्यः) नित्यनूतन है ।

भावार्थ—परमात्मा सर्वज्ञ है और अपनी सर्वज्ञतासे सबके ज्ञान-में प्रवेश करता है ।

श्रिये जातः श्रिय आ निरियाय
श्रियं वयो जरितृभ्यो दधाति ।
श्रियं वसाना अमृतत्वमायन्भवन्ति
सत्या समिथा मितद्रौ ॥ ४ ॥

श्रिये । जातः । श्रिये । आ । निः । इयाय । श्रियं । वयः । जरितृऽभ्यः । दधाति । श्रियं । वसानाः । अमृतऽत्वं । आयन् । भवंति । सत्या । संऽइथा । मितऽद्रौ ॥

पदार्थः—स परमात्मा (श्रिये, जातः) ऐश्वर्याय सर्वत्र प्रकाश्यते (श्रियं, निरियाय) श्रिये हि सर्वत्र गतिशीलोऽस्ति (श्रियम्) ऐश्वर्यं तथा (वयः) आयुश्च (जारितृभ्यः) उपासकेभ्यः (दधाति) धारयति (श्रियं, वसानाः) श्रियं धारयन् (अमृतत्वम्, आयन्) अमृतत्वं विस्तारयन् (सत्या,-समिथा) सत्यरूप यज्ञानां कर्ता भवति (मितद्रौ) सर्वत्र गतिशीले परमात्मनि (सत्या, भवन्ति) ब्रह्मयज्ञाः चित्तस्थैर्य हेतवो भवन्ति ॥

पदार्थ—वह परमात्मा (श्रियेजातः) ऐश्वर्य्यके लिये सर्वत्र प्रगट है । और (श्रियंनिरियाय) श्रीके लिये ही सर्वत्र गतिशील है ।

और (श्रियं) ऐश्वर्य्यको और (वयः) आयुको (जरितृभ्यः) उपासकोंके लिये (दधाति) धारण करता है । (श्रियं वसानाः) श्रीको धारण करता हुआ (अमृतत्वमायन्) अमृतत्वको विस्तार करता हुआ (सत्या समिथा) सत्यरूपी यज्ञोंके करनेवाला होता है । (मितद्रौ) सर्वत्र गतिशील परमात्मामें (सत्या भवन्ति) ब्रह्मयज्ञ चित्तकी स्थिरताके हेतु होते हैं ।

भावार्थ—जो परमात्मोपासक हैं उनको परमात्मा सब प्रकारका ऐश्वर्य देता है ।

इषमूर्जमभ्यर्षाश्वं गामुरुज्योतिः
कृणुहि मत्सि देवान् । विश्वानि
हि सुषहा तानि तुभ्यं पवमान
बाधसे सोम शत्रून् ॥ ५ ॥ ४ ॥

इषं ऊर्जं । अभि । अर्ष । अश्वं । गां । उरु । ज्योतिः ।
कृणुहि । मत्सि । देवान् । विश्वानि । हि । सुऽसहा । तानि ।
तुभ्यं । पवमान । बाधसे । सोम । शत्रून् ॥

पदार्थः—(इषम्) ऐश्वर्यं (ऊर्जम्) बलंच (अभ्यर्ष) भवान्ददातु (अश्वम्) क्रियाशक्तिम् (गाम्) ज्ञानशक्तिंच इमे द्वे अपि (उरुज्योतिः) विस्तृतज्योतिषौ (कृणुहि) करोतु (देवान्) विदुषः (मत्सि) तर्पयतु (विश्वानि, हि, सुषहा) सर्वसहनशीलशक्तयो भवन्तु विद्यन्ते (तानि) ताः शक्तयः त्वा भूषयन्ति (पवमान) हे सर्वपावक ! (तुभ्यम्) त्वत्तः

इदं प्रार्थये यत्त्वं (शत्रून्) अन्यायकारिणां [बाधसे] निवृत्तौ समर्थः [सोम] हे परमात्मन् ! भवान् अस्मास्वपि एवंविधं-बलं ददातु ॥

पदार्थ—(इषम्) ऐश्वर्य और (उर्जम) बल (अभ्यर्ष) हे परमात्मन् आप दें । और (अश्वम्) क्रियाशक्ति और (गाम्) ज्ञानरूपी शक्ति इन दोनों को आप (उरुज्योतिः) विस्तृतज्योत (कृणुहि) करें और (देवान्) विद्वान् लोगोंको (मत्सि) तृप्त करें । (विश्वानि हि सुषहा) सम्पूर्ण सहनशीलशक्तियें निश्चय करके आपमें हैं । (तानि) वे शक्तियें तुमको विभूषित करती हैं । (पवमान) हे सबको पवित्र करनेवाले परमात्मन ! (तुभ्यम्) तुमसे मैं यह प्रार्थना करता हूं कि तुम (शत्रून्) अन्यायकारीदुष्टोंको (बाधसे) निवृत्त करनेके लिये समर्थ हो । (सोम) हे परमात्मन् । आप हममें भी इसप्रकारका बल दीजिये ।

भावार्थ—परमात्मा अनन्तशक्तिरूप है जब वह अपने भक्तोंको पात्र समझता है तो सब प्रकारके अन्यायकारियोंको दमन करके सुनीति और धर्मका प्रचार संसारमें फैलादेता है । तात्पर्य यह है कि जो लोग परमात्माकी दयाका पात्र बनते हैं उन्हींके शत्रुभूत दुष्टदस्युवोंका परमात्मा दमनकरता है अन्यों के नहीं ।

इति चतुर्नवतितमंसूक्तं चतुर्थोवर्गश्च समाप्तः ।

अथ पञ्चर्चस्य पञ्चनवतितमस्य सूक्तस्य —

॥ ९५ ॥ १—५ प्रस्कण्व ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २ संस्तारपंक्तिः । ३ विराट्त्रिष्टुप् । ४ निचृत्त्रिष्टुप् । ५ पादनिचृत्त्रिष्टुप् ! स्वरः—१, ३—५ धैवतः । २ पंचमः ॥

कनिक्रन्ति हरिरासृज्यमानः
सीदन्वनस्य जठरे पुनानः ।
नृभिर्यतः कृणुते निर्णिजं गा
अतो मतीर्जनयत स्वधाभिः ॥ १ ॥

कनिक्रंति । हरिः । आ । सृज्यमानः । सीदन् । वनस्य । जठरे । पुनानः । नृऽभिः । यतः । कृणुते । निःऽनिजं । गाः । अतः । मतीः । जनयत । स्वधाभिः ॥

पदार्थः —(हरिः) हरणशीलशक्तिमान् परमात्मा (सृज्यमानः) साक्षात्कारं प्राप्नोति तदा (वनस्य) भक्तस्य (जठरे) अन्तःकरणे [सीदन्] स्थितिं कुर्वन् (पुनानः) तं पावयंश्च विराजते (यतः) यस्मात् [नृभिः] मनुष्यैः [निर्णिजं कृणुते] साक्षात्क्रियते तदा [गाः] इन्द्रियाणिशोधयन् [मतीः जनयत] सुमतिमुत्पादयति [स्वधाभिः] स्वशक्तिभिः [कनिक्रन्ति] पुनः पुनः शब्दायमान इव साक्षात्कारं लभते ।

पदार्थ—(हरिः) हरणशील शक्तियोंवाला परमात्मा (सृज्यमानः) साक्षात्कारको प्राप्त होता है। तब (वनस्य) भक्तके (जठरे) अन्तःकरणमें (सीदन्) ठहरताहुआ और (पुनानः) उसको पवित्र करताहुआ विराजमान होता है। (यतः) जिसलिये (नृभिः) मनुष्यों द्वारा (निर्णिजं कृणुते) साक्षात्कार कियाजाता है। तब (गाः) इन्द्रियोंको शुद्ध करके (मतिर्जनयत) अभ्युदयकारिणी बुद्धि उत्पन्न करता है (स्वधाभिः) स्वशक्तियोंके द्वारा और (कनिक्रन्ति) पुनः शब्दायमानके समान साक्षात्कारको प्राप्त होता है।

भावार्थ—वास्तवमें परमात्मा सर्वव्यापक है उसके लिये विराजमान होना और न विराजमान होना कथन नहीं किया जासकता, विराजमान होना यहाँ साक्षात्कारके अभिप्रायसे कथन कियागया है।

हरिः सृजानः पथ्यामृतस्ये-
यर्ति वाचमरितेव नावम्।
देवो देवानां गुह्यानि नामावि-
ष्कृणोति बर्हिषि प्रवाचे ॥ २ ॥

हरिः। सृजानः। पथ्याम्। ऋतस्य। इयर्ति। वाचम्। अरिताऽइव। नावम्। देवः। देवानाम्। गुह्यानि। नाम। आविः। कृणोति। बर्हिषि। प्रऽवाचे ॥

पदार्थः—(हरिः) स पूर्वोक्तः परमात्मा (सृजानः) साक्षात्क्रियमाणः (ऋतस्य, पथ्यां) वाग्द्वारा मुक्तिमार्गं (इयर्त्ति) प्रेरयति (अरिता, इव, नावम्) यथा नावस्तरणकाले नाविकः

प्रेरणां करोति स परमात्मा (देवानां देवः) सर्वदेवानामधिष्ठाता (गुह्यानि) गुप्ताः (नाम, आविष्कृणोति) संज्ञाः प्रकटयति (बर्हिषि, प्रवाचे) वाग्यज्ञार्थम् ।

पदार्थ—(हरिः) वह पूर्वोक्त परमात्मा (सृजानः) साक्षात्कारको प्राप्त हुआ (ऋतस्य, पथ्यां) वाक्‌द्वारा मुक्तिमार्गकी (इयर्ति) प्रेरणा करता है । (अरितेवनावम्) जैसा कि नौकाके पार लगानेके समयमें नाविक प्रेरणा करता है । और (देवानां देवः) सब देवोंका देव (गुह्यानि) गुप्त (नामाविष्कृणोति) संज्ञायोंको प्रगट करता है (बर्हिषि प्रवाचे) वाणीरूपी यज्ञके लिये ।

भावार्थ—परमात्माने ब्रह्मयज्ञके लिये बहुतसी संज्ञाओंको निर्माण किया, अर्थात्—शब्दब्रह्म जो वेद है उसका निर्माण अर्थात्—आविर्भाव संज्ञा संज्ञिभाव पर निर्भर करता है । इसीलिये संज्ञासंज्ञिभावको रहस्यरूपसे कथन कियागया है ।

अपामिवेदूर्मयस्तर्तुराणाः
प्र मनीषा ईरते सोममच्छ ।
नमस्यन्तीरुप च यन्ति सं चा
च विशन्त्युशतीरुशन्तम् ॥ ३ ॥

अपाऽइव । इत् । ऊर्मयः । तर्तुराणाः । प्र । मनीषा । ईरते । सोमं । अच्छ । नमस्यन्तीः । उप । च । यंति । सं । च । आ । च । विशंति । उशतीः । उशतं ॥

पदार्थः—(उशतीः) शोभमानस्तुतयः (उशन्तम)

शोभमानं (संविशन्ति) प्राप्नुवंति यथा (तर्तुराणाः) शीघ्र-कारिणां (मनीषा) बुद्धयः (प्रेरते) प्रेरयन्ति एवंहि (सोमम्) परमात्मानम् (अच्छ) सम्यक् प्राप्नुवन्ति (च) तथा (अपाम्, इव, ऊर्मयः) यथा जलवीचयः जलं भूषयन्ति एवं हि परमात्म विभूतयः परमात्मानं मण्डयन्ति (च) तथा (नमस्यन्ति) ताः परमात्मविभूतयः सत्कुर्वन्ति (च) तथा (उपयन्ति) तं लभन्ते ।

पदार्थ—(उशतीः) शोभावाली स्तुतियें (उशन्तम) शोभावाले-को (संविशन्ति) प्राप्त होती हैं जैसे कि (तर्तुराणाः) शीघ्र करनेवाले लोगोंकी (मनीषा) बुद्धियें (प्रेरते) प्रेरणा करती हैं। इसी प्रकार (सोमम्) परमात्माको (अच्छ) भलीभांति प्राप्त होती हैं। (च) और (अपामिवोर्मयः) जैसे कि जलोंकी लहरें जलोंको सुशोभित करती हैं। इसी प्रकार परमात्माकी विभूतियें परमात्माको सुशोभित करती हैं। (च) और (नमस्यन्ति) परमात्माकी विभूतियें सत्कार करती हैं। और (उप-यन्ति) उसको प्राप्त होती हैं।

भावार्थ—इसमें परमात्माकी विभूतिओंका वर्णन है कि पर-मात्माकी विभूतियें परमात्माके भावोंको प्रतिक्षण द्योतन करती हैं, जिनसे परमात्मापरायण पुरुष परमात्माका साक्षात्कार करते हैं।

तं मर्मृजानं महिषं न
सानावंशुं दुहन्त्युक्षणं गिरिष्ठाम् ।
तं वावशानं मतयः सचन्ते
त्रितो बिभर्ति वरुणं समुद्रे ॥ ४ ॥

तं । मर्मृजानम् । महिषं । न । सानौ । अंशुं । दुहन्ति । उक्षणं । गिरिऽस्थां । तं । वावशानं । मतयः । सचन्ते । त्रितः । बिभर्ति । वरुणं । समुद्रे ।

पदार्थः—(तं, मर्मृजानम्) तं भक्तैरुपास्यमानं परमात्मानं (सानौ) सर्वोपरि शिखरे (महिषं, न) महापुरुषमिव विराजमानं (अंशुम) सूक्ष्मादपि सूक्ष्मम् (उक्षणम्) सर्वाधिकबलदम् (गिरिष्ठाम्) वेदवागधिष्ठातारं (तं, वावशानम्) सर्वोपरि कमनीयम (मतयः, सचन्ते) सुमतयः सेवन्ते यश्च (समुद्रे) अन्तरिक्षे (वरुणम) वरणीयपदार्थान् (बिभर्ति) पोषयति (त्रितः) जीवप्रकृतिमहत्तत्वरूपसूक्ष्मजगत्कारणानामधिष्ठाताऽस्ति अथवा (त्रितः) कालत्रयाधिष्ठातास्ति ॥

पदार्थ—(तं मर्मृजानम) उस भक्तों द्वारा उपासित परमात्माको (सानौ) सर्वोपरि शिखरपर (महिषंन) महापुरुषके समान विराजमानको (अंशुम) जो सूक्ष्मसे सूक्ष्म है । (उक्षणम) जो सर्वोपरि बलप्रद है । (गिरिष्ठाम) जो वेदरूपी वाणीका अधिष्ठाता है । (तं वावशानम) उस सर्वोपरि कमनीय परमात्माको (मतयः) सुमतिलोग (सचन्ते) संगत होते हैं । और जो परमात्मा (समुद्रे) अन्तरिक्षमें (वरुणम) वरणीयपदार्थोंको (बिभर्ति) धारण करता है । और (त्रितः) प्रकृति, जीव, और महत्तत्व रूप सूक्ष्म जगतकारणोंका अधिष्ठाता है । अथवा (त्रितः) भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान तीनों कालोंका अधिष्ठाता है ।

भावार्थ— इस मन्त्रमें परमात्माके स्वरूपका वर्णन है कि वह अत्यन्त सूक्ष्म और दुर्विज्ञेय है उसको संयमी पुरुष साक्षात्कार कर सकते हैं ।

इष्यन्वाचमुपवक्तेव होतुः
पुनान इन्दो वि ष्या मनीषाम् ।
इन्द्रश्च यत्क्षयथः सौभगाय
सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ ५ ॥ ५ ॥

इष्यन् । वाचं । उपवक्ताऽइव । होतुः । पुनानः । इंदो इति । वि । स्य । मनीषां । इंद्रः । च । यत् । क्षयथः । सौभगाय । सुऽवीर्यस्य । पतयः । स्याम ॥

पदार्थः—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूपपरमात्मन् ! भवान् (मनीषां) अस्मभ्यं बुद्धिं (विष्य) प्रयच्छतु तथा (वाचमिच्छन्) वाणीं कामयमानः (उपवक्ता, इव) वक्ताइव तथा (होतुः) उपासकं सदैवोपदिशतु (च) तथा (यत्) यद्वि (इन्द्रः) कर्मयोगी भवांश्च (क्षयथः) उभावपि अद्वैतभावं प्राप्तौ (सौभगाय) अस्मै सौभाग्याय धन्यं मन्ये भवन्तम् प्रार्थयेच (सुवीर्यस्य) सर्वोपरि बलस्य (पतयः, स्याम) पतयो भवेम ॥

पदार्थ—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूपपरमात्मन् ! आप (मनीषाम) बुद्धिको हमारे लिये (विष्य) प्रदान कीजिये । और (वाचमिष्यन) वाणीकी इच्छा करतेहुए (उपवक्तेव) वक्ताके समान (होतुः) उपासकको सदुपदेश करें । (च) और (यत) जो (इन्द्रः) कर्म्मयोगी और आप (क्षयथः) दोनों अद्वैतभावको प्राप्त हैं । (सौभगाय) इस सौभाग्य के लिये हम आपका धन्यवाद करते हैं । और आपसे प्रार्थना करते हैं कि (सुवीर्य्यस्य पतयः स्याम) सर्वोपरि बलके पति हों ।

भावार्थ—इस मन्त्रमें उक्तपरमात्मासे बलकी प्रार्थना कीगयी है ।

इति पञ्चनवतितमं सूक्तं पञ्चमोवर्गश्च समाप्तः ।

अथ चतुर्विंशत्यृचस्य षण्णवतितमस्य सूक्तस्य—

१—२४ प्रतर्दनो दैवोदासिर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ११, १२ १४, १९ २३, त्रिष्टुप् । २, १७ विराट त्रिष्टुप्। ४-१०, १३, १५, १८, २१, २४ निचृत्त्रिष्टुप् । १६ आर्ची भुरिक्त्रिष्टुम् २०, २२ पादनिचृत्त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥

प्र सेनानीः शूरो अग्रे रथानां
गव्यन्नेति हर्षते अस्य सेना ।
भद्रान्कृण्वन्निन्द्रहवान्त्सखिभ्य आ
सोमो वस्त्रा रभसानि दत्ते ॥ १ ॥

प्र । सेनाऽनीः । शूरः । अग्रे । रथानां । गव्यन् । एति । हर्षते । अस्य । सेना । भद्रान् । कृण्वन् । इंद्रऽहवान् । सखिऽभ्यः । आ । सोमः । वस्त्रा । रभसानि । दत्ते ॥

पदार्थः—(सोमः) सोमरूपः परमात्मा (रभसानि) अतिवेगेन (वस्त्रा) आच्छादकास्त्राणि (आदत्ते) गृह्णाति

(सखिभ्यः) अनुयायिभ्यः (इन्द्रहवान्) कर्मयोगिभ्यः (भद्राणि, कृण्वन्) कल्याणान्युत्पादयन् आस्ते यथा (शूरः) भटः (सेनानीः) सेनानायकः (रथानाम्) संग्रामानाम् (अग्रे) समक्षं (गव्यन्) यजमानानामैश्वर्यमिच्छन् (एति) प्राप्नोति एवं हि परमात्मा न्यायिनामैश्वर्यमिच्छन् तान्संरक्षति ! (अस्य, सेना)अस्य शूरस्य सेना (हर्षते) यथा हृष्टा भवति एवं हि परमात्मानुयायिनामपि सेना हर्षं लभते ॥

पदार्थ—(सोमः) सोमरूपपरमात्मा (सखिभ्यः) अपने अनुयायी (इन्द्रहवान) जो कर्म्मयोगी हैं उनके लिये (भद्राणि कृण्वन) भलाई करताहुआ (वस्त्रारभसानि) अत्यन्त वेगवाले शस्त्रोंको (आदत्ते) ग्रहण करता है। जैसाकि (शूरः) शूरवीर (सेनानीः) जो सेनाओंका नेता है। वह (रथानाम्) संग्रामोंके (अग्रे) समक्ष (गव्यन्) यजमानोंके ऐश्वर्य्यकी इच्छा करता हुआ (एति) प्राप्त होता है। इसप्रकार परमात्मा न्यायकारियोंके ऐश्वर्य्यको चाहता हुआ अपने रूपसे न्यायकारियोंकी रक्षा करता है। (अस्य) उस शूरवीरकी (सेना) फौज (हर्षते) जैसे प्रसन्न होती है। इसी प्रकार परमात्माके अनुयायियोंकी सेना भी हर्षको प्राप्त होती है।

भावार्थ—इस मन्त्रमें राजधर्मका वर्णन है कि परमात्मपरायण-पुरुष राजधर्म द्वारा अनन्तप्रकारके ऐश्वर्योंको प्राप्त होते हैं।

समस्य हरिं हरयो मृजन्त्य-
श्वहयैरनिशितं नमोभिः।
आ तिष्ठति रथमिन्द्रस्य सखा
विद्वाँ एना सुमतिं यात्यच्छ ॥ २ ॥

सं । अस्य । हरिं । हरयः । मृजंति । अश्वऽहयैः । अनिंऽशितं । नमःऽभिः । आ । तिष्ठति । रथं । इंद्रस्य । सखा । विद्वान् । एन । सुऽमतिं । याति । अच्छ ॥

पदार्थः—(अस्य, हरिम्) अस्य परमात्मनो हरणशीलशक्तीः (हरयः) ज्ञानकिरणाः (मृजन्ति) प्रदीपयन्ति तथा (अश्व-(हयैः) विद्युदादिशक्तयइव (अनिशितम्) असंस्कृतमपि (नमोभिः) सत्कारद्वारेण संस्कृतं कुर्वन् (आतिष्ठति) आगत्य विराजते (रथम्) उक्तगतिशीलपरमात्मानम् (इन्द्रस्य) कर्मयोगिनः (सखा) मित्रम् (विद्वान्) मेधावी जनः (एन) उक्तमार्गेण (सुमतिम्) सुमार्गम् (अच्छ, याति) सम्यक् प्राप्नोति

पदार्थ—(अस्य हरिम्) उस परमात्माकी हरणशीलशक्तिको (हरयः) ज्ञानकी किरणें (मृजन्ति) प्रदीप्त करती हैं। और (अश्वहयैः) विद्युदादि शक्तियोंके समान (अनिशितम्) असंस्कृतको भी (नमोभिः) सत्कारद्वारा संस्कृत करताहुआ (आतिष्ठति) आकर विराजमान होता है। (रथम्) उक्तगतिस्वरूपपरमात्माको (इन्द्रस्य) कर्मयोगीका (सखा) मित्र (विद्वान्) मेधावीपुरुष (एना) उक्त रास्तेसे (सुमतिम्) सुन्दर-मार्गको (अच्छ याति) भलीभांति प्राप्त होता है।

भावार्थ—जो लोग नम्रभावसे परमात्माकी उपासना करते हैं वे असंस्कृत होकर भी शुद्ध होजाते हैं, अर्थात्—उनकी शुद्धिका कारण एकमात्र परमात्मोपासनरूपी संस्कार ही संस्कार है कोईअन्य संस्कार नहीं।

स नो देव देवताते पवस्व
महे सोम प्सरस इन्द्रपानः ।

कृण्वन्नपो वर्षयन्द्यामुतेमामुरोरा
नो वरिवस्या पुनानः ॥ ३ ॥

सः । नः । देव । देवऽताते । पवस्व । महे । सोम । प्सरसे ।
इंद्रऽपानः । कृण्वन् । अपः । वर्षयन् । द्यां । उत । इमां ।
उरोः । आ । नः । वरिवस्य । पुनानः ॥

पदार्थः—(देव, सोम) हे दिव्यगुणयुक्तपरमात्मन् ! (देवताते) विद्वद्भिः विस्तृते (महे) महति (प्सरसे) सुन्दर यज्ञे भवान् (पवस्व) पवित्रयतु (इन्द्रपानः) भवान् कर्मयोगिनां तृप्तिरूपोऽस्ति (अपः, कृण्वन्) शुभकर्माणि कुर्वन् (उत) अथवा (इमां द्याम्) इमं द्युलोकमुत्पादयन् (उरः) अस्य कर्मयोगस्य विस्तृतमार्गेण (आ) आगच्छन् (नः) अस्मान् (वरिवस्य) धनाद्यैश्वर्यद्वारेण (पुनानः) पावयन् एत्य अस्मद्हृदये विराजताम् ।

पदार्थ—(देव सोम) हे दिव्यगुणयुक्तपरमात्मन ! (देवताते) विद्वानोंसे विस्तृत कियेहुए (महे) बड़े (प्सरसे) सुन्दरयज्ञमें आप (पवस्व) पवित्र करें (इन्द्रपानः) आप कर्म्मयोगियोंके तृप्तिरूप हैं । और (अपः कृण्वन) शुभकर्मोंको करते हुए (उत) अथवा (इमां द्याम) इस द्युलोकको उत्पन्न करते हुए आप (उरः) इस कर्म्मयोगके विस्तृतमार्गसे (आ) आतेहुए (नः) हमको (वरिवस्य) धनादि ऐश्वर्य्यके द्वारा (पुनानः) पवित्र करतेहुए आप आकर हमारे हृदयमें विराजमान हों ।

भावार्थ—इस मन्त्रमें कर्मयोगका वर्णन है कि कर्मयोगी अपने योगजकर्म द्वारा परमात्माका साक्षात्कार करता है ।

अजीतयेऽहतये पवस्व
स्वस्तये सर्वतातये बृहते ।
तदुशन्ति विश्वे इमे सखायस्तदहं
वश्मि पवमान सोम ॥ ४ ॥

अजीतये । अहतये । पवस्व । स्वस्तये । सर्वऽतातये । बृहते । तत् । उशंति । विश्वे । इमे । सखायः । तत् । अहं । वश्मि । पवमान । सोम ॥

पदार्थः—(सोम) हे सर्वोत्पादक ! (पवमान) सर्वपावक ! (अजीतये) अहं न केनापि पराजितः स्याम् (अहतये) अहतो भवेयम् (पवस्व) एतदर्थं मां पवित्रय (स्वस्तये) मङ्गलाय (बृहते, सर्वतातये) बृहद्यज्ञाय च (तदुशन्ति) एतद्विषयिकां कामनां (इमे, विश्वे) इमे सर्वे (सखायः) मित्राणि कुर्वन्ति (तत्) तस्मात् (अहं, वश्मि) अहमेतत्कामये अतः हे परमात्मन् ! भवान् मह्यमुक्तैश्वर्यं ददातु यतो भवानस्य ब्रह्माण्डस्योत्पादकः ।

पदार्थ— सोम) हे सर्वोत्पादक ! (पवमान) हे सबको पवित्र करनेवाले परमात्मन्! (अजीतये) हम किसीसे जीते न जायें। (अहतये) किसीसे मारे न जायें (पवस्व) इस बातके लिये आप हमको पवित्र बनायें और

(स्वस्तये) मङ्गलके लिये (बृहते सर्वतातये) सर्वोपरि बृहत् यज्ञके लिये (तदुशन्ति) इसी पदकी कामना (इमे विश्वे) ये सब (सखायः) मित्रगण करते हैं । (तत) इसलिये (अहम) मैं (वश्मि) यही कामना करता हूँ । इसलिये हे परमात्मन! आप हमको उक्त प्रकारका ऐश्वर्य्य दें । क्योंकि आप इस ब्रह्माण्डके उत्पत्तिकर्ता हैं ।

भावार्थ—जो लोग परमात्माकी आज्ञाओंका पालन करते हैं वे किसीसे दबाये व दमन नहीं किये जा सकते ।

सोमः पवते जनिता मतीनां
जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः ।
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनि-
तेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ॥ ५ ॥ ६ ॥

सोमः । पवते । जनिता । मतीनां । जनिता । दिवः । जनिता । पृथिव्याः । जनिता । अग्नेः । जनिता । सूर्यस्य । जनिता । इंद्रस्य । जनिता । उत । विष्णोः ॥

पदार्थः—(सोमः) सर्वोत्पादकः परमात्मा (पवते) सर्वान्पुनाति (जनिता, मतीनाम्) ज्ञानानामुत्पादकः (दिवो जनिता) द्युलोकस्योत्पादकः (पृथिव्या जनिता) पृथिव्या उत्पादकः (सूर्यस्य, जनिता) सूर्यस्योत्पादकः (अग्नेः, जनिता) अग्नेरुत्पादकः (उत) अथच (विष्णोः जनिता) ज्ञानयोग्युत्पादकः (इन्द्रस्य, जनिता) कर्मयोग्युत्पादकः ।

पदार्थ—(सोमः) उक्तसर्वोत्पादक परमात्मा (पवते) सबको पवित्र करता है (जनिता मतीनाम्) और ज्ञानोंको उत्पन्न करनेवाला है (दिवो जनिता) द्युलोकको उत्पन्न करनेवाला है। (पृथिव्या जनिता) पृथिवीलोकको उत्पन्न करनेवाला है (अग्नेर्जनिता) अग्निको उत्पन्न करनेवाला है। और (सूर्यस्य जनिता) सूर्य्यको उत्पन्न करनेवाला है। (उत) और (विष्णोः जनिता) ज्ञानयोगीको उत्पन्न करनेवाला है। (इन्द्रस्य जनिता) कर्म्मयोगीको उत्पन्न करनेवाला है।

भावार्थ—इस मन्त्रमें परमात्माके सर्वकर्तृत्वका वर्णन किया है।

ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीना-
मृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम् ।
श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां
सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥ ६ ॥

ब्रह्मा। देवानां। पदऽवीः। कवीनां। ऋषिः। विप्राणां। महिषः। मृगाणां। श्येनः। गृध्राणां। स्वऽधितिः। वनानां। सोमः। पवित्रं। अति। एति। रेभन् ॥

पदार्थः—(सोमः) सर्वोत्पादकः परमात्मा (पवित्रम्) वज्रिणमपि (रेभन्) शब्दायमानः (अत्येति) अतिक्रामति, यथा (गृध्राणाम्) शस्त्राणां मध्ये (स्वधितिः) वज्रनामशस्त्रं सर्वाण्यतिक्रामति (मृगाणां, श्येनः) यथाच शीघ्रगतिकपक्षिणा मध्ये श्येनः (विप्राणाम्, कवीनाम्, ऋषिः) विप्राणां कवीना मध्ये ऋषि

(देवानां, ब्रह्मा) विदुषां मध्ये चतुर्णामपि वेदानामध्येता सर्वान-तिक्रामति एवं हि (पदवी) सर्वोच्चपदरूपः सोमः सर्वेषुवस्तुषु मुख्यः ॥

पदार्थ—(सोमः सर्वोत्पादकपरमात्मा , पवित्रम) वज्रवालेको भी (रेभन्) शब्द करता हुआ अतिक्रमण कर जाता है । जिसप्रकार (गृध्राणाम) "गृध्यति शस्त्रच्छेत्तुमभिकांक्षति इति गृध्रः शस्त्रम" । शस्त्रोंके मध्यमें (स्वधितिः) वज्र सबको अतिक्रमणकर जाता है और (मृगाणां श्येनः) शीघ्रगतिवाले पक्षियोंमें बाज और (विप्राणाम, कवीनां, ऋषिः) विप्र और कविओंके मध्यमें ऋषि सबको अतिक्रमण कर जाता है । (देवानाम्) और विद्वानों के मध्यमें (ब्रह्मा) ४ वेदोंका वक्ता सबको अतिक्रमण कर जाता है । इसीप्रकार (पदवी) सर्वोपरि उच्चपदरूपपरमात्मा सब वस्तुओं में मुख्य है ।

भावार्थः—इस मंत्रमें कवि, विप्र, ब्रह्मादि मुख्य २ शक्तियोंवाले पुरुषोंका दृष्टान्त देकर परमात्माकी मुख्यता वर्णन की है ।

प्रावीविपद्वाच ऊर्मिं न सिन्धुर्गिरः
सोमः पवमानो मनीषाः ।
अन्तः पश्यन्वृजनेमावराण्या
तिष्ठति वृषभो गोषु जानन् ॥७॥

प्र । अवीविपत् । वाचः । ऊर्मिं । न । सिंधुः । गिरः । सोमः । पवमानः । मनीषाः । अंतरिति । पश्यन् । वृजना । इमा । अवराणि । आ । तिष्ठति । वृषभः । गोषु । जानन् ॥

पदार्थः—स परमात्मा (वाच ऊर्मिम्) वाण्या तरङ्गान् (सिन्धुर्न) यथा सिन्धुः स्ववीचीः तथा (अवीविपत्) कम्पयति (सोमः) स एव (पवमानः) सर्वपावकः (मनीषाः) मनसोऽपिप्रेरकः (अन्तः, पश्यन्) सर्वान्तर्यामी भवन् (वृजना) अस्मिन्संसाररूपयज्ञे (इमा, अवराणि, आतिष्ठति) इमानि प्रकृति कार्य्याणि आश्रयते यथा (वृषभः) सर्वबलप्रदः जीवात्मा (जानन्) चेतनरूपेण अधिष्ठातृत्वं सम्पाद्य (गोषु) इन्द्रियेषु विराजते ।

पदार्थ—वह परमात्मा (वाच ऊर्मिम्) वाणीकी लहरों को (सिन्धुर्न) जैसे कि सिन्धु (प्रावीविपत) कँपाता है, इसीप्रकारसे कँपाता है । (सोमः) वह सोमरूपपरमात्मा (पवमानः) सबको पवित्र करता है । (मनीषाः) मनका भी प्रेरक है । (अन्तः पश्यन्) सबका अन्तर्यामी होकर (वृजना) इस संसाररूपी यज्ञमें (इमा अवराणि आतिष्ठति) इन प्रकृतिके कार्य्योंको आश्रयण करता है । जिस प्रकार (वृषभः) सब बलको देने वाला जीवात्मा (जानन्) चेतनरूपसे अधिष्ठाता बनकर (गोषु) इन्द्रियों में विराजमान होता है ।

भावार्थ—परमात्मा सबका अन्तर्यामी है वह सर्वान्तर्यामी होकर सर्वप्रेरक है " यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्यामन्तरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवीशरीरम् यः पृथिवीमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः " इत्यादि वाक्य उक्त वेदके आधारपर निर्माण कियेगये हैं ।

स मत्सरः पृत्सु वन्वन्नवातः
सहस्ररेता अभि वाजमर्ष ।

इन्द्रायेन्दो पर्वमानो मनीष्यं१ॆ
शोरूर्मिमीरय गा इषण्यन् ॥ ८ ॥

सः। मत्सरः। पृत्ऽसु। वन्वन्। अवातः। सहस्रऽरेताः। अभि। वाजं। अर्ष। इंद्राय। इंदो इति। पर्वमानः। मनीषी। अंशोः। ऊर्मिम्। ईरय। गाः। इषण्यन्॥

पदार्थः—(सः) स परमात्मा (मत्सरः) आनन्दस्वरूपः (पृत्सु) यज्ञेषु (वन्वन्) सर्वविघ्नानि अपसारयन् (अवातः) स्थिरीभूय विराजते (सहस्ररेताः) अनेकधा बलयुक्तोऽस्ति (वाजम्) सर्वबलेभ्यः (अभि) आश्रयं दत्वा (अर्ष) व्याप्नोति (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप! (पवमानः) भवान् सर्वपावकः! (मनीषी) मनःप्रेरकश्च (गाः, अंशोः, इषण्यन्) इन्द्रियप्रसारं प्रेरयन् (ऊर्मिं, ईरय) आनन्दतरङ्गान् मामभिप्रेरयतु॥

पदार्थ—(सः) वह परमात्मा (मत्सरः) आनन्दस्वरूप है। (पृत्सु) यज्ञोंमें (वन्वन्) सब विघ्नोंको नाश करताहुआ (अवातः) निश्चल होकर विराजमान है। (सहस्ररेताः) अनन्त प्रकार के बलोंसेयुक्त है। (वाजम्) सब बलोंको (अभि) आश्रय देकर (अर्ष) व्याप्त हो रहा है (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूपपरमात्मन् (पवमानः) आप सबको पवित्र करनेवाले हैं। (मनीषी) मनके प्रेरक हैं। (अंशोः इषण्यन्) इन्द्रियोंकी प्रेरणा करते हुए (उर्मिमीरय) आनन्दकी लहरोंको हमारे ओर प्रेरित करें।

भावार्थ—जो पुरुष अनन्यभक्तिसे अर्थात्—एकमात्र ईश्वर-

परायण होकर ईश्वरकी उपासना करते हैं, परमात्मा उन्हें अवश्यमेव आनन्द-का प्रदान करता है ।

परि॑ प्रि॒यः क॒लशे॑ दे॒ववा॑त
इन्द्रा॑य॒ सोमो॒ रण्यो॒ मदा॑य ।
स॒हस्र॑धारः श॒तवा॑ज॒ इन्दु॑र्वा॒जी
न सप्ति॒ः सम॑ना जिगाति ॥ १ ॥

परि॑ । प्रि॒यः । क॒लशे॑ । दे॒वऽवा॑तः । इं॒द्रा॑य । सोम॑ः । रण्य॑ः । मदा॑य । स॒ह॒स्र॑ऽधारः । श॒तऽवा॑जः । इंदु॑ः । वा॒जी । न । सप्ति॑ः । सम॑ना । जि॒गा॒ति ॥

पदार्थः—(प्रियः) सर्वप्रियः परमात्मा (देववातः) विदुषां सुगमः (सोमः) सर्वोत्पादकः (रण्यः) रम्यः (इन्द्राय, मदाय) कर्मयोग्याह्लादाय (सहस्रधारः) अनन्तशक्तिसम्पन्नः (शतवाजः) बहुविधबलसम्पन्नः (इन्दुः) परमैश्वर्यसम्पन्नः सः (सप्तिर्न) विद्युच्छक्तिरिव (वाजी) बलरूपः (समना, परि-जिगाति) आध्यात्मिकयज्ञेषु (कलशे) विद्वज्जनान्तःकरणे विराजते ॥

पदार्थ—(प्रियः) सर्वप्रियपरमात्मा (देववातः) जो विद्वानोंसे सुगम है वह (सोमः) सर्वोत्पादक (रण्यः) रमणीक (इद्राय मदाय) कर्मयोगीके आहलादके लिये (सहस्रधारः) जो अनन्तप्रकारकी शक्तिसे सम्पन्न और (शतवाजः) अनन्तप्रकारके बलसे सम्पन्न है वह (इन्दुः)

परमैश्वर्य्यशाली (सप्तिर्न) विद्युतकी शक्तिके समान (वाजी) बलरूप-परमात्मा (समना. परिगिगाति) आध्यात्मिकयज्ञोंमें (कलशे) " कलाः शेरते अस्मिन् इति कलशम्" नि.-९-१२ अन्तःकरणम्। जिसमें परमात्मा अपनी कलावोंके द्वारा विराजमान हो उसका नाम यहां कलश है।विद्वानोंके अन्तःकरणमें आकर उपस्थित होता है।

भावार्थ—जो लोग ब्रह्मविद्याद्वारा परमात्माके तत्वका चिन्तन करते हैं, परमात्मा अवश्यमेव उनके ज्ञानका विषय होता है।

स पूर्व्यो वसुविज्जायमानो
मृजानो अप्सु दुदुहानो अद्रौ ।
अभिशस्तिपा भुवनस्य राजा
विदद्गातुं ब्रह्मणे पूयमानः ॥ १० ॥ ७ ॥

सः। पूर्व्यः। वसुऽवित्। जायमानः। मृजानः। अप्ऽसु। दुदुहानः। अद्रौ। अभिशस्तिऽपाः। भुवनस्य। राजा। विदत्। गातुं। ब्रह्मणे। पूयमानः ॥

पदार्थः—(सः) स एव (पूर्व्यः) अनादिसिद्धः परमात्मा (वसुवित) सर्वधनानां नेता (जायमानः) यः सर्वत्र व्याप्नोति (मृजानः) शुद्धः (अप्सु) कर्मसु (दुदुहानः) पूर्णोभवति (अद्रौ) सर्वसंकटेषु (अभिशास्तिपाः) शत्रुतोरक्षकः (भुवनस्य, राजा) सर्वलोकानां शासकः (ब्रह्मणे, पूयमानः) कर्मसु पवित्रतां प्रददत (गातुम्) उपासकाय (विदत्) पवित्रता प्रददाति ॥

पदार्थ—(सः) वह (पूर्व्यः) अनादिसिद्धपरमात्मा (वसुवित्) सबधनोंका नेता (जायमानः) जो सब जगहपर व्यापक है । (मृजानः) शुद्ध है (अप्सु) कर्म्मोंमें (दुदुहानः) पूर्ण कियाजाता है । और (अद्रौ) सबप्रकारके संकटोंमें (अभिशस्तिपाः) शत्रुओंसे रक्षा करनेवाला है । (भुवनस्य राजा) सबभुवनोंका राजा है । (ब्रह्मणे पूयमानः) कर्म्मोंमें पवित्रता प्रदान करता हुआ (गातुम्) उपासकोंके लिये (विदत्) पवित्रता प्रदान करता है ।

भावार्थ—शुद्धभावसे उपासना करनेवाले लोगोंको परमात्मा सर्वप्रकारके ऐश्वर्य्य और पवित्रताओंका प्रदान करता है ।

त्वया हि नः पितरः सोम पूर्वे
कर्माणि चक्रुः पवमान धीराः ।
वन्वन्नवातः । परिधीँरपोर्णु
वीरेभिरश्वैर्मघवा भवा नः ॥ ११ ॥

त्वया । हि । नः । पितरः । सोम । पूर्वे । कर्माणि चक्रुः । पवमान । धीराः । वन्वन् । अवातः । परिऽधीन् । अप । ऊर्णु । वीरेभिः । अश्वैः । मघऽवा । भव । नः ॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (पूर्वे, पितरः) पूर्वकालिकाः पितृपितामहादयः (धीराः) ये धीरास्ते (त्वया) त्वत्प्रेरणयैव(कर्माणि,चक्रुः)कर्माणिअकार्षुः(पवमान)हे सर्वपावक ! (वन्वन्) भवन्तं सेवमानः (अवातः) निश्चलः सन् (परिधीन्) राक्षसान् (अपोर्णु) अपसारयाणि (वीरेभिः) वीर-

पुरुषैः (अश्वैः) शक्तिसम्पन्नैश्च अस्मान् (मघवा, भव) ऐश्वर्यसम्पन्नं कुर्याः ॥

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! (पूर्वे, पितरः) पूर्वकालके पिता पितामह (धीराः) जो धीर हैं (त्वया) तुम्हारी प्रेरणासे (कर्म्माणि, चक्रुः) कर्म्मोंको करते हैं । (पवमान) हे सबको पवित्र करनेवाले परमात्मन् ! (वन्वन्) आपका भजन करतेहुए (अवातः) निश्चल होकर (परिधीन्) राक्षसोंको (अपोर्णु) दूर करें (वीरेभिः) वीरपुरुषोंसे (अश्वैः) और जो शक्तिसम्पन्न हैं उनसे (नः) हमको (मघवा, भव) ऐश्वर्यसम्पन्न करें ।

भावार्थ—परमात्माकी आज्ञा पालन करनेसे देशमें ज्ञानी तथा विज्ञानीपुरुषोंकी उत्पत्ति होती है और देश ऐश्वर्य्यसम्पन्न होता है इसप्रकार राक्षसभावनिवृत्त होकर सभ्यताके भावका प्रचार होता है ।

यथापवथा मनवे वयोधा
अमित्रहा वरिवोविद्धविष्मान् ।
एवा पवस्व द्रविणं दधान इन्द्रे
सं तिष्ठ जनयायुधानि ॥ १२ ॥

यथा । अपवथाः । मनवे । वयःऽधाः । अमित्रऽहा । वरिवःऽवित् । हविष्मान् । एव । पवस्व । द्रविणं । दधानः । इन्द्रे । सं । तिष्ठ । जनय । आयुधानि ॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (यथा, मनवे) यथा विज्ञानिने (अपवथाः) धनादि दानाय भवान् तं पवित्रयति (वयोधाः)

अन्नादिदाता (अमित्रः) दुष्टशासकः (वरिवो वित्) ऐश्वर्यदाता (हविष्मान्) हव्ययुक्तोभक्तः भवत्प्रियोभवति तथैव (एव) निश्चयेन (पवस्व) मां पुनीहि (इन्द्रे) कर्मयोगिनि च (द्रविणं, दधानः) ऐश्वर्यं धारयन् (संतिष्ठ) आगत्य विराजताम् ((जनय, आयुधानि) कर्मयोगिभ्यः विविधान्यायुधानि निष्पादयतु ॥

पदार्थ—हे परमात्मन ! (यथा) जिसप्रकार (मनवे) विज्ञानीपुरुषके लिये (अपवथाः) धनादिक देनेके लिये आप पवित्र करते हैं अन्नादिकों के देनेवाला (अमित्रः) दुष्टोंका दण्ड देनेवाला (वरिवोवित) और धनादि ऐश्वर्य्यका देनेवाला (हविष्मान) हविवाला भक्तपुरुष आपको प्रिय होता है । इसप्रकार हे परमात्मन! (एव) निश्चय करके (पवस्व) आप हमको पवित्र करें । और (इन्द्रे) कर्म्मयोगीमें (द्रविणं, दधानः) ऐश्वर्य्यको धारण करते हुए आप (सन्तिष्ठ) आकर विराजमान हों । तथा (जनय, आयुधानि) कर्म्मयोगीके लिये अनन्तप्रकारके आयुधोंको उत्पन्न करें ।

भावार्थ—परमात्मपरायणपुरुष परमात्मामें चित्तवृत्तिनिरोधद्वारा अनन्त प्रकारके ऐश्वर्य्य और आयुधोंको उत्पन्न करके देशको अभ्युदयशाली बनाते हैं ।

पव॑स्व सोम॒ मधु॑माँ ऋ॒ताप॒ो
वसा॑नो॒ अधि॒ सानो॒ अव्ये॑ ।
अव॒ द्रोणा॑नि घृ॒तवन्ति सीद
म॒दिन्त॑मो मत्स॒र इ॑न्द्र॒पानः॑ ॥ १३ ॥

पव॑स्व । सोम॒ । मधु॑ऽमान् । ऋ॒तऽवा॑ । अ॒पः । वसा॑नः ।

अधि॑ । सानौ॑ । अव्ये॑ । अवं॑ । द्रोणा॑नि । घृतऽवं॑न्ति । सीद॑ ।
मदिन्ऽतमः । मत्सरः । इन्द्रऽपानः ॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! भवान् (मधुमान्) आनन्दमयोऽस्ति (ऋतावापः) कर्मरूपयज्ञानामधिष्ठाता च (अव्ये) रक्षणीये (अधिसानौ) सर्वोपर्युच्चपदे (वसानः) विराजते च (पवस्व) मामभिरक्षतु (द्रोणानि) अन्तःकरणरूपकलशाः (घृतवन्ति) येहि सस्नेहास्तेषु (अवसीद) विराजताम् (मत्सरः) भवान् सकलजनतृप्तिकारकः(मदिन्तमः) आह्लादकतमश्च (इन्द्रपानः) कर्मयोगितृप्तिकारणं च ॥

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! आप (मधुमान्) आनन्दमय हैं (ऋतावापः) कर्मरूपीयज्ञके अधिष्ठाता हैं । (अव्ये) रक्षायुक्त (अधिसानौ) सर्वोपरि उच्च पदमें (वसानः) विराजमान हैं । (पवस्व) आप हमारी रक्षा करें । और (द्रोणानि) अन्तःकरणरूपी कलश (घृतवन्ति) जोस्नेहवाले हैं । (अवसीद) उनमें आकर स्थिर हों । आप (मत्सरः) सबके तृप्तिकारक हैं । और (मदिन्तमः) अत्यन्त ह्लादक हैं । और आप (इन्द्रपानः) कर्म्मयोगीकी तृप्ति के कारण हैं ।

भावार्थ—जिन पुरुषोंके अन्तःकरण प्रेमरूप वारिसे नम्रभावको ग्रहण किये हुए हैं उनमें परमात्माके भाव आविर्भावको प्राप्त होते हैं ।

वृष्टिं दि॒वः श॒तधा॑रः पवस्व
स॒ह॒स्र॒सा वा॑ज॒युर्दे॒ववी॑तौ ।
सं सिन्धु॑भिः क॒लशे॑ वावशा॒नः
समु॒स्रिया॑भिः प्रति॒रन्न॒ आयुः॑ ॥ १४ ॥

वृष्टिं । दिवः । शतऽधारः । पवस्व । सहस्रऽसाः । वाजऽयुः । देवऽवीतौ । सं । सिंधुऽभिः । कलशे । वावशानः । सं । उस्रियाभिः । प्रऽतिरन् । नः । आयुः ॥

पदार्थः—(शतधारः) भवाननन्तशक्तियुक्तः (दिवः, वृष्टिम्) द्युलोकाद्वृष्ट्या (सं, पवस्व) सम्यक् तर्पयतु (देववीतौ) यज्ञेषु (वाजयुः) विविधबलानां धारकोऽस्ति (सिन्धुभिः) प्रेमभावैः (कलशे) ममान्तःकरणे (वावसानः) वासं कुर्वन् (उस्रियाभिः) ज्ञानरूपशक्तिभिः (नः) मम (आयुः) वयः (प्रतिरन्) द्राघयतु ॥

पदार्थ—(शतधारः) आप अनन्तशक्तियुक्त हैं । और (दिवः) द्युलोकसे (वृष्टिम्) वृष्टि (संपवस्व) से पवित्र करें । (देववीतौ) यज्ञोंमें (वाजयुः) अनेक प्रकारके बलोंको प्राप्त हैं । और (सिन्धुभिः) प्रेमके भावोंसे (कलशे) हमारे अन्तःकरणमें (वावसानः) वास करते हुए (उस्रियाभिः) ज्ञानरूपशक्तियोंसे (नः) हमारी (आयुः) उमरको (प्रतिरन्) बढ़ायें ।

भावार्थ—जो पुरुष परमात्माके ज्ञानविज्ञानादिभावोंको धारण करके अपनेको योग्य बनाते हैं परमात्मा उनके ऐश्वर्य्यको अवश्यमेव बढ़ाता है ।

एष स्य सोमो मतिभिः पुना-
नोऽत्यो न वाजी तरती दरातीः ।

पयो न दुग्धमदितेरिषिरमुर्विव
गातुः सुयमो न वोळ्हा ॥ १५ ॥ ८ ॥

एषः । स्यः । सोमः । मतिऽभिः । पुनानः । अत्यः । न । वाजी । तरति । इत् । अरातीः । पयः । न । दुग्धं । अदितेः । इषिरं । उरुऽइव । गातुः । सुऽयमः । न । वोळ्हा ॥

पदार्थः—(एषः, स्यः, सोमः) असौ प्रसिद्धः परमात्मा (मतिभिः) ज्ञानविज्ञान द्वारेण (पुनानः) पावयन् (अत्योन) विद्युदिव (वाजी) बलवान् (अरातीः) शत्रून् (इत्, तरति) अवश्यमभिभवति सच (अदितेः) गोः (दुग्धम्, पयः, न) दोहनिष्पन्नदुग्धमिव (इषिरम्) सर्वप्रियोऽस्ति (उरु, गातुः, इव) विस्तीर्णमार्गइव सर्वाश्रयणीयोऽस्ति । (वोल्हा, न) तथाच सम्यङ्नियन्तेवास्ति ॥

पदार्थ—(एषः स्यः सोमः) यह उक्तपरमात्मा (मतिभिः) ज्ञानविज्ञानोंद्वारा (पुनानः) पवित्र करता हुआ (अत्योन)। विद्युतके समान (वाजी) बलरूप परमात्मा (अरातीः शत्रुओंको (इत्) अवश्य (तरति) उल्लङ्घन करता है वह परमात्मा (अदितेः) गौके (दुग्धम्) दुहहुए (पयः) दुग्ध के (न) समान (इषिरम्) सर्वप्रिय हैं (उरु) विस्तीर्ण गातुरिव मार्गके समान सबका आश्रयणीय है । तथा (वोल्हा) सम्यक् नियन्ताके (न) समान है ।

भावार्थ—परमात्माके सदृश इस संसारमें कोई नियन्ता नहीं उसी के नियममें सबलोकलोकान्तर भ्रमण करते हैं ।

स्वायुधः सोतृभिः पूयमा-
नोऽभ्यर्ष गुह्यं चारु नाम ।
अभि वाजं सप्तिरिव श्रव-
स्याभि वायुमभि गा देव सोम ॥ १६ ॥

सुऽआयुधः । सोतृऽभिः । पूयमानः । अभि । अर्ष । गुह्यं । चारु । नाम । अभि । वाजं । सप्तिःऽइव । श्रवस्या । अभि । वायुं । अभि । गाः । देव । सोम ।

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (गुह्यम्) सर्वोपरिरहस्यं (चारु) रम्या (नाम)या संज्ञा भवतः (अभ्यर्ष) तज्ज्ञानं कारयतु । भवान् (सोतृभिः, पूयमानः) उपासकैः स्तूयमानः (स्वायुधः) स्वाभाविकशक्तिसम्पन्नश्चाऽस्ति । (सप्तिरिव) विद्युदिव (श्रवस्या अभि) ऐश्वर्याभिमुखं करोतु (वायुमभि) प्राण-विद्यावेत्तारं च मां करोतु (देव) हे दिव्यशक्तिसम्पन्न ! (गाः) इन्द्रियाणाम् (अभिगमय) नियमनज्ञातारं च करोतु ।

पदार्थ—हे परमात्मन ! (गुह्यम) सर्वोपरिरहस्य (चारु) श्रेष्ठ (नाम) जो तुम्हारी संज्ञा है । (अभ्यर्ष) उसका ज्ञान करायें आप (सोतृभिः, पूयमान) उपासकलोगों से स्तूयमान हैं । (स्वायुधः) स्वाभाविकशक्तिसे युक्त हैं । और (सप्तिरिव) विद्युत्के समान (श्रवस्याभि) ऐश्वर्यके सम्मुख प्राप्त कराइये और (वायुमभि) हमको प्राणोंकी विद्याका वेत्ता बनाइये । (देव) हे सर्वशक्तिसम्पन्न-परमेश्वर ! हमको (गाः) इन्द्रियोंके (अभिगमय) नियमनका ज्ञाता बनाइये ।

भावार्थ—जो लोग परमात्मा पर विश्वास रखते हैं वे अवश्यमेव संयमी बनकर इन्द्रियोंके स्वामी बनते हैं ।

शिशुं जज्ञानं हर्यतं मृजन्ति
शुम्भन्ति वह्निं मरुतो गणेन ।
कविर्गीर्भिः काव्येना कविः
सन्त्सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥ १७ ॥

शिशुं । जज्ञानं । हर्यतः । मृजंति । शुंभंति । वह्निं । मरुतः । गणेन । कविः । गीःऽभिः । काव्येन । कविः । सन् । सोमः । पवित्रं । अति । एति । रेभन् ॥

पदार्थः—(जज्ञानम्) शश्वत्प्रकाशमानं (शिशुम्) परमात्मानम् (हर्यतः) योहि नितान्तकमनीयस्तम् (मृजन्ति) उपासका बुद्धिविषयं कुर्वन्ति (शुंभन्ति) स्तुतिभिर्गुणांश्च वर्णयन्ति । (मरुतः) विद्वांसः (वह्निम्) तं परमात्मानं (गणेन) गुणसमूहेन वर्णयन्ति (कविः) कवयश्च (गीर्भिः) वाग्भिः (काव्येन) कवितयाच तं स्तुवन्ति (सोमः) परमात्मा (पवित्रम) पवित्रगुणः (रेभन्, सन्) शब्दं कुर्वन्सन् कारणावस्थायामतिसूक्ष्मप्रकृतिम (अत्येति) अतिक्रामति ॥

पदार्थ—(शिशुम्)" श्यति सूक्ष्मं करोति प्रलयकाले जगदिति शिशुः परमात्मा " उस परमात्माको (जज्ञानम्) जो सदा प्रगट है । (हर्य्यतः) जो अत्यन्त कमनीय है । उसको उपासकलोग (मृजन्ति)

वृद्धिविषय करते हैं । और (शुंभन्ति) उसकी स्तुतिद्वारा उसके गुणोंका वर्णन करते हैं । और (मरुतः) विद्वान्लोग (वाह्निम्) उस गतिशील परमात्माका (गणेन) गुणोंके गणों द्वारा वर्णन करते हैं । और (कविः) कविलोग (गीर्भिः) वाणीद्वारा और (काव्येन) कवित्वसे उसकी स्तुति करते हैं । (सोमः) सोमस्वरूप (पवित्रम) पवित्र वह परमात्मा कारणावस्थामें अतिसूक्ष्म प्रकृतिको (रेभन, सन) गर्जता हुआ (अत्येति) अतिक्रमण करता है ।

भावार्थ—परमात्माके अनन्त सामर्थ्यमें यह ब्रह्माण्ड सूक्ष्मसे स्थूलावस्थाको प्राप्त होता है और उसीसे प्रलयावस्थाको प्राप्त होजाता है ।

ऋषिमना य ऋषिकृत्स्वर्षाः
सहस्रणीथः पदवीः कवीनाम् ।
तृतीयं धाम महिषः सिषा-
सन्त्सोमो विराजमनु राजति ष्टुप् ॥ १८ ॥

ऋषिऽमनाः । यः । ऋषिऽकृत् । स्वःऽसाः । सहस्रऽनीथः । पदऽवीः । कवीनां । तृतीयं । धाम । महिषः । सिसासन् । सोमः । विऽराजं । अनु । राजति । स्तुप् ॥

पदार्थः—(सोमः) सोमस्वरूपः परमात्मा (सिसासन्) पालनेच्छां कुर्वन् (महिषः) सर्वपूज्यः (तृतीयं, धाम) देवयानपितृयानाभ्यांपृथक् तृतीये मुक्तिधाम्नि (विराजम्) विराजन्तं ज्ञानयोगिनम् (अनु, राजति) प्रकाशयति (स्तुप्) स्तूयमानश्चास्ति (कवीनां, पदवीः) क्रान्तदर्शिनां कवीनां मुख्यस्थानं

चास्ति (सहस्रनीथः) सहस्रधा स्तवनीयः (ऋषिमनाः) सर्व-ज्ञानसाधनमनोयुक्तः स. (ऋषिकृत) ज्ञानप्रदः (स्वर्षाः) सूर्यादिकानामपि प्रकाशकः । स एव जिज्ञासुभिः उपास्यः ।

पदार्थ—(सोमः) सोमस्वरूपपरमात्मा (सिषासन) पालनकी इच्छा करता हुआ (महिषः) जो महान् है वह परमात्मा (तुरीयं धाम) देवयान और पितृयान इन दोनोंसे पृथक् तीसरा जो मुक्तिधाम है, उसमें (विराजम्) विराजमान जो ज्ञानयोगी है उसको (अनुराजति) प्रकाश करनेवाला है। और (स्तुप्) स्तूयमान है। (कवीनाम् पदवीः) जो क्रान्तदर्शियोंकी पदवी अर्थात् मुख्य स्थान है। और (सहस्रनीथः) अनन्तप्रकारसे स्तवनीय है। (ऋषिमनाः) सर्वज्ञानके साधनरूप मनवाला वह परमात्मा (यः) जो (ऋषिकृत्) सब ज्ञानोंका प्रदाता (स्वर्षाः) सूर्य्यादिकोंको प्रकाशक है। वह जिज्ञासुके लिये उपासनीय है।

भावार्थ—परमात्मा सबलोकलोकान्तरोंका नियन्ता है तथा मुक्त धाममें विराजमान पुरुषोंका भी नियन्ता है।

चमूषच्छ्येनः शकुनो विभृत्वा
गोविन्दुर्द्रप्स आयुधानि बिभ्रत् ।
अपामूर्मिं सचमानः समुद्रं
तुरीयं धाम महिषो विवक्ति ॥ १९ ॥

चमूऽसत् । श्येनः । शकुनः । विऽभृत्वा । गोऽविन्दुः । द्रप्सः । आयुधानि । बिभ्रत् । अपां । ऊर्मिं । सचमानः । समुद्रं । तुरीयं । धाम । महिषः । विवक्ति ॥

पदार्थः—(अपामूर्मिम्) प्रकृतेः सूक्ष्मतमशक्तिभिः (सचमानः) सङ्गतः (समुद्रम्) उत्पत्तिस्थितिप्रलयाश्रयः (तुरीयं, धाम) स चतुर्थधाम परमपदं परमात्माऽस्ति (महिषः) महान् पुरुषः उक्ततुरीयपरमात्मानं (विवक्ति) वर्णयतिसएव (चमूसत्) प्रत्येकबले सीदति (श्येनः) सर्वाधिकप्रशंसनीयः (शकुनः) सर्वशक्तिमान् (गोविन्दुः) उपास्यतर्पकः (द्रप्सः) द्रुतगतिः (आयुधानि, बिभ्रत्) अनन्तशक्तिंदधत् संसारस्योत्पादकः ।

पदार्थ—(अपामूर्मिम) प्रकृतिकी सूक्ष्मसे सूक्ष्मशक्तियोंके साथ (सचमानः) जो सङ्गत है और (समुद्रम) "सम्यक् द्रवन्ति भूतानि यस्मात् स समुद्रः," जिससे सब भूतोंका उत्पत्ति स्थिति और प्रलय होता है । वह (तुरीयम्) चौथा (धाम) परमपद परमात्मा है । उसको (महिषः) महते इतिमहिषः महिषइति महन्नामसु नि० ३–१३–पठितम् । महापुरुष उक्त तुरीयपरमात्माका (विवक्ति) वर्णन करता है । वह परमात्मा (चमूसत्) जो प्रत्येक बलमें स्थित है (श्येनः) सर्वोपरि प्रशंसनीय है और (शकुनः) सर्वशक्तिमान् है । (गोविन्दुः,) यजमानोंको तृप्त करके जो (द्रप्सः) शीघ्र गतिवाला है (आयुधानि, बिभ्रत्) अनन्तशक्तियोंको धारण करता हुआ इस संपूर्णसंसारका उत्पादक है ।

भावार्थ—परमात्मा इस विविध रचनाका नियन्ता है उसने अन्तरिक्षलोकको सम्पूर्णभूतोंके इतस्ततः भ्रमणका स्थान बनाया है ।

मर्यो न शुभ्रस्तन्वं मृजानोऽत्यो
न सृत्वा सनये धनानाम् ।

वृषेव यूथा परि कोशमर्ष
न्कनिक्रदच्चम्वो३रा विवेश ॥ २० ॥

मर्यः । न । शुभ्रः । तन्वं । मृजानः । अत्यः । न । सृत्वा ।
सनये । धनानां । वृषाइव । यूथा । परि । कोशं । अर्षन् ।
कनिक्रदत् । चम्वोः । आ । विवेश ॥

पदार्थः—(यूथा, वृषेव) सपरमात्मा यथा सेनापतिः संघं प्राप्नोति तथा (कोशम्, अर्षन्) ब्रह्माण्डरूपकोशं प्राप्नुवन् (कनिक्रदत्) उच्चस्वरेण गर्जन् (चम्वोः, पर्याविवेश) अस्मिन्ब्रह्माण्डरूपिविस्तृतप्रकृतिखण्डे सम्यक् प्राविशति । (न) यथाच (मर्यः) मनुष्यः (शुभ्रस्तन्वं मृजानः) शुभ्रशरीरं दधत् (अत्योन) अत्यन्तगतिशीलपदार्था इव (धनाना, सनये) धनप्राप्तये (सृत्वा) गमनशीलो भूत्वा कटिबद्धो भवति तथैव प्रकृतिरूपैश्वर्यं धारयितुं परमात्मा सदैवोद्यतः ॥

पदार्थ—वह परमात्मा (यूथा, वृषेव) जिसप्रकार एक संघको उसका सेनापति प्राप्त होता है । इसीप्रकार (कोशम्) इस ब्रह्माण्डरूपी कोशको (अर्षन्) प्राप्त होकर (कनिक्रदत्) उच्चस्वरसे गर्जताहुआ (पर्य्याविवेश) भलीभाँति (चम्वोः) इस ब्रह्माण्डरूपी विस्तृत प्रकृतिखण्डमें प्रविष्ट होता है । और (न) जैसे कि (मर्यः) मनुष्य (शुभ्रस्तन्वं, मृजानः,) शुभ्रशरीरको धारण करता हुआ (अत्योन) अत्यन्त गतिशीलपदार्थोंके समान (सनये) प्राप्तिके लिये (सृत्वा) गतिशील होताहुआ (धनानाम्) धनोंकेलिये कटिबद्ध होता है इसीप्रकार प्रकृतिरूपी ऐश्वर्य्यको धारण करनेके लिये परमात्मा सदैव उद्यत है ।

भावार्थ—जिसप्रकार मनुष्य इस स्थूलशरीरको चलाता है अर्थात् जीवरूपसे इसका अधिष्ठाता है एवंपरमात्मा इसप्रकृति रूपशरीरका अधिष्ठाता है।

पवस्वेन्दो पवमानो महोभिः
कनिक्रदत्परि वाराण्यर्ष ।
क्रीळञ्चम्वोरा विश पूयमान
इन्द्रं ते रसो मदिरो ममत्तु ॥ २१ ॥

पवस्व । इंदो इति । पवमानः । महःऽभिः । कनिक्रदत् । परि । वाराणि । अर्ष । क्रीळन् । चम्वोः । आ । विश । पूयमानः । इंद्रं । ते । रसः । मदिरः । ममत्तु ॥

पदार्थः—(इन्दो) हेप्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (महोभिः, पवमानः) श्रेष्ठजनैरुपास्यमानो भवान् (पवस्व) मां पावयतु (कनिक्रदत्) वेदवाग्भिः शब्दायमानो भवान् (वाराणि, पर्यर्ष) श्रेष्ठपुरुषान् लभताम् (चम्वोः, क्रीळन्) ब्रह्माण्डे क्रीडां कुर्वन् (पूयमानः) सर्वान् पावयन् (आविश) मदन्तःकरणे निवसतु हे परमात्मन् ! (ते, रसः) भवत आनन्दः (मदिरः) यः सर्वाह्लादकः सः (इन्द्रं, ममत्तु) कर्मयोगिनं तर्पयतु ।

पदार्थ—(इन्दो) हेप्रकाशस्वरूप (महोभिः) महापुरुषोंसे (पवमानः) उपास्यमान आप (पवस्व) हमको पवित्र करें । और

(कनिक्रदत्) वैदिकवाणियोंके द्वारा शब्दायमान होते हुए आप (वाराणि) श्रेष्ठपुरुषोंके प्रति (पर्य्यर्ष) प्राप्त हों। और (चम्वोः,-क्रीळन्) इस ब्रह्माण्डमें क्रीडा करते हुए। और (पूयमानः) सबको पवित्र करते हुए (आविश) हमारे अन्तःकरणमें आकर प्रविष्ट हों। हे परमात्मन् ! (ते) तुम्हारा (मदः) आनन्द (मदिरः) जो ह्लादित करनेवाला है। वह (इन्द्रम्) कर्म्मयोगीको (मदतु) प्रसन्न करे।

भावार्थ——परमात्माके आनन्दामृतके रसको केवल कर्म्मयोगीही पान कर सकता है आलसी निरुद्यमीलोग उक्त आनन्दके अधिकारी कदापि नहीं होसकते।

प्रास्य धारा बृहतीरसृग्रन्नक्तो
गोभिः कलशाँ आ विवेश ।
साम कृण्वन्त्सामन्यो विपश्चि
त्क्रन्दन्नेत्यभि सख्युर्न जामिम् ॥ २२ ॥

प्र । अस्य । धाराः । बृहतीः । असृग्रन् । अक्तः । गोभिः । कलशान् । आ । विवेश । साम । कृण्वन् । सामन्यः । विपःऽचित् । क्रंदन् । एति । अभि । सख्युः । न । जामिं ॥

पदार्थः—(अस्य) अस्य परमात्मनः (बृहतीः, धाराः) आनन्दस्य महत्यो धाराः (प्रासृग्रन्) याः परमात्मप्रेरणया रचिताः (अक्तः) सर्वव्यापकः परमात्मा (गोभिः) स्वज्ञान-ज्योतिर्भिः (कलशान्) उपासकान्तःकरणानि (आविवेश) प्रविशति (साम, कृण्वन्) अखिलजगति शान्तिं तन्वन्

(सामन्यः) शान्तितत्परः (विपश्चित्) सर्वज्ञः सः (सख्युः) मित्रस्य (जामिं, न) हस्तं गृहीत्वेव (क्रन्दन्, अभ्येति) शुभशब्दान्कुर्वन् मां प्राप्नोतु ॥

पदार्थ—(अस्य) इस परमात्माके आनन्दकी (बृहतीः, धाराः) बड़ी धारायें (प्रासृग्रन) जो परमात्माकी ओरसे रची गई हैं । (अक्तः) सर्वव्यापकपरमात्मा (गोभिः) अपने ज्ञानकी ज्योतिद्वारा (कलशान्) उपासकोंके अन्तःकरणोंको (आविवेश) प्रवेश करता है । और (सामकृण्वन) सम्पूर्णसंसार में शान्ति फैलाताहुआ (सामन्यः) शान्तिरसमें तत्पर परमात्मा (विपश्चितः) जो सर्वोपरि बुद्धिमान् है । वह (सख्युः) मित्रके (न, जामिम) हाथको पकड़नेके समान (क्रन्दन, अभ्येति) मंगलमयशब्द करताहुआ हमको प्राप्त हो ।

भावार्थ—परमात्मा अपने भक्तोंको सदैव सुरक्षित रखता है जिस प्रकार मित्र अपने मित्र पर सैदव रक्षाके लिये हाथ प्रसारित करता है एवं स्वमर्य्यादानुयायीलोगों पर ईश्वर सदैव कृपादृष्टि करता है ॥

अपघ्नन्नेषि पवमान शत्रून्प्रियां
न जारो अभिगीत इन्दुः ।
सीदन्वनेषु शकुनो न पत्वा सोमः
पुनानः कलशेषु सत्ता ॥ २३ ॥

अपऽघ्नन् । एषि । पवमान । शत्रून् । प्रियां । न । जारः । अभिऽगीतः । इंदुः । सीदन् । वनेषु । शकुनः । न । पत्वा । सोमः । पुनानः । कलशेषु । सत्ता ॥

पदार्थः—(पवमान) हे सर्वपावक ! (शत्रून्, अपघ्नन्) अन्यायकारिशत्रून्नाशयन् (एषि) सत्कर्मिणं प्राप्नोति भवान् (जारः) अग्निः (प्रियां, न) यथा कमनीयकन्यां प्राप्तः तां संस्करोति यथा च (अभिगीतः, इन्दुः) सत्क्रियाभिराहूतः ज्ञानयोगी (वनेषु,सीदन्) भक्तेषु वर्तमानस्तेषु शर्म वितनोति (शकुनः, न) यथा वा विद्युत् (पत्वा) स्वप्रभावेण पदार्थानुत्तेजयति एवं इह (सोमः) परमात्मा (पुनानः) सर्वान् पावयन् (कलशेषु) भक्तान्तःकरणेषु (सत्ता) स्थिरो भवति ॥

पदार्थ—(पवमान) हे सबको पवित्र करनेवाले परमात्मन ! (शत्रून्, अपघ्नन्) अन्यायकारी शत्रुओंको नाश करते हुए (एषि) आप सत्पुरुषोंको प्राप्त होते हैं। (जारः, न) जारयतीति जारोऽग्निः, जैसे अग्नि (प्रियाम्) कमनीयकन्याको प्राप्त होकर उसे संस्कृत करता है जिसप्रकार (अभिगीतः, इन्दुः) सत्कार द्वारा आह्वान किया हुआ ज्ञानयोगी (वनेषु, सीदन्) भक्तोंमें स्थिर होता हुआ उनको शान्तिप्रदान करता है। और (शकुनः) विद्युतशक्ति (न) जैसे (पत्वा) अपने प्रभावको डालकर उन्हें उत्तेजित करती है। इसीप्रकार (सोमः) सर्वोत्पादक परमात्मा (पुनानः) सबको पवित्र करता हुआ (कलशेषु) भक्त पुरुषोंके अन्तःकरणमें (सत्ता) स्थिर होता है।

भावार्थ—अन्यपदार्थ जीवात्माका ऐसा संस्कार नहीं कर सकते जैसा कि परमात्मा करता है अर्थात् परमात्मज्ञानके संस्कार द्वारा जीवात्मा सर्वथा शुद्ध होजाता है ॥

आ ते रुचः पवमानस्य सोम
योषेव यन्ति सुदुघाः सुधाराः ।
हरिरानीतः पुरुवारो अप्स्व
चिक्रदत्कलशे देवयूनाम् ॥ २४ ॥ १० ॥ ५ ॥

आ । ते । रुचः । पर्वमानस्य । सोम । योषांऽइव । यंति । सुऽदुघाः । सुऽधाराः । हरिः । आऽनीतः । पुरुऽवारः । अप्ऽसु । अचिक्रदत् । कलशे । देवऽयूनां ॥

पदार्थः—(सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (पवमानस्य, ते, रुचः) सर्वपावकस्य तव दीप्तयः (सुदुघः) याः सम्यक् सर्वेषां परिपूरयित्र्यः (सुधाराः) शोभनधारायुक्ताश्च सन्ति ता भक्तजनानाभि (योषेव, यन्ति) अति प्रेमकर्त्री मातेव प्राप्नुवन्ति (हरिः) दुःखनाशकः परमात्मा (आनीतः) उपासितः (अप्सु, पुरुवारः) प्रकृतिरूपब्रह्माण्डे अत्यन्तवरणीयः सच (देवयूनाम्) परमात्मदिव्यशक्तिमिच्छूनामुपासकानां (कलशे) हृदये (अचिक्रदत) सर्वदैव शब्दायते ।

पदार्थ—(सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (पवमानस्य, ते, रुचः) सबको पवित्र करनेवाले आपकी दीप्तियें (सुदुघाः) जो भलीभांति सबको परिपूर्ण करने वाली हैं (सुधाराः) और सुन्दरधाराओं वाली हैं । वे भक्त पुरुषके प्रति (योषेव, यन्ति) परमप्रेम करनेवाली माताके समान प्राप्त होती हैं । (हरिः) जो सब दुःखोंको हरण करनेवाला परमात्मा है । वह (आनीतः) सबओरसे भलीभांति उपासनाकिआहुआ (अप्सु, पुरुवारः) प्रकृतिरूपीब्रह्माण्डमें अत्यन्त वरणीय हैं । वह (देवयूनाम्) परमात्माकी दिव्यशक्तिचाहनेवाले उपासकों के (कलशे) हृदयमें (अचिक्रदत्) सर्वदैव शब्दायमान है ।

भावार्थ—यों तो परमात्मा चराचर ब्रह्माण्डमें सर्वत्रैव देदीप्यमान है पर भक्तपुरुषोंके स्वच्छ अन्तःकरणोंमें परमात्माकी अभिव्यक्ति सबसे अधिक दीप्तिमती होती है ॥

॥ इति षण्णवतितमं सूक्तं दशमो वर्गश्च समाप्तः ॥

अथाष्टपञ्चाशदृचस्य सप्तनवतितमस्य सूक्तस्य—

ऋषिः—१–३ वसिष्ठः । ४–६ इन्द्रप्रमतिर्वासिष्ठः । ७–९ वृषगणो वासिष्ठः । १०–१२ मन्युर्वासिष्ठः । १३–१५ उपमन्युर्वासिष्ठः । १६–१८ व्याघ्रपाद्वासिष्ठः । १९-२१ शक्तिर्वासिष्ठः । २२–२४ कर्णश्रुद्वासिष्ठः । २५–२७ मृळीको वासिष्ठः । २८–३० वसुक्रोवासिष्ठः । ३१–४४ पराशरः । ४५–५८ कुत्सः ॥ पवमानः सोमो देवता छन्दः-१, ६, १०, १२, १४, १५, १९, २१, २५, २६, ३२, ३६, ३८, ३९, ४५, ४६, ५२, ५४, ५६, निचृत्त्रिष्टुप् । २–४, ७, ८, ११, १६, १७, २०, २३, २४, ३३, ४८, ५३ विराट्त्रिष्टुप् । ५, ९, १३, २२, २७–३०, ३४, ३५, ३७, ४२–४४, ४७, ५७, ५८ त्रिष्टुप् । १८, ४१, ५०, ५१, ५५ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् । ३१, ४९ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ४० भुरिक्त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥

अथविदुषांगुणाः वर्ण्यन्ते ।

अब विद्वानोंके गुण वर्णन किये जाते हैं ।

अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो
देवो देवेभिः समपृक्तरसम् ।
सुतः पवित्रं पर्येति रेभन्मितेव
सद्म पशुमान्ति होता ॥ १ ॥

अस्य । प्रेषा । हेमना । पूयमानः । देवः । देवेभिः । सम् । अपृक्त । रसं । सुतः । पवित्रं । परि । एति । रेभन् । मितऽइव । सद्म । पशुऽमंति । होता ॥

पदार्थः—(सुतः) विद्यया संस्कृतो विद्वान् (रेभन्) शब्दं कुर्वन् (पवित्रं, पर्येति) पवित्रतां लभते यथा (पशुमन्ति) यज्ञगृहम् (मिता, इव, सद्म) ज्ञानस्थानं नियमीपुरुष इव (होता) यज्ञकर्ता प्राप्नोति (अस्य, प्रेषा) उक्तविदुषो जिज्ञासुः पुरुषः (हेमना, पूयमानः) सुवर्णादिभूषणेन पवित्रः सन् (देवेभिः, सम्पृक्तः) विद्वद्भिः संगतः (देवः) दिव्य भाववान् सन् (रसं,) ब्रह्मानन्दं प्राप्नोति ।

पदार्थ—(सुतः) विद्याद्वारा संस्कृत हुआ हुआ विद्वान् (रेभन्) शब्दायमान होता हुआ (पवित्रं, पर्य्येति) पवित्रताको प्राप्त होता है । जिसप्रकार (पशुमन्ति) ज्ञानवाले स्थानको (मिता, इव) नियमी पुरुषके समान (होता) यज्ञकर्ता पुरुष प्राप्त होता है । (अस्य, प्रेषा) उक्त विद्वान्की जिज्ञासा करनेवाला पुरुष (हेमना, पूयमानः) सुवर्णादि भूषणोंसे पवित्र होता हुआ (देवेभिः, सम्पृक्तः) विदानोंसे संगतिको लाभ

करता हुआ (देवः) दिव्यभाववाला (रसम्) ब्रह्मानन्दको प्राप्त होता है ।

भावार्थ—विद्वान्पुरुषोंके शिष्य अर्थात् जो पुरुष वेदवेत्ता विद्वानोंसे शिक्षा पाकर विभूषित होते हैं वे सदैव ऐश्वर्य्यसे विभूषित रहते हैं ॥

भद्रा वस्त्रा समन्या वसानो
महान्कविर्निवचनानि शंसन् ।
आ वच्यस्व चम्वोः पूयमानो
विचक्षणो जागृविर्देववीतौ ॥ २ ॥

भद्रा । वस्त्रा । समन्या । वसानः । महान् । कविः । निऽवचनानि । शंसन् । आ । वच्यस्व । चम्वोः । पूयमानः । विऽचक्षणः । जागृविः । देवऽवीतौ ॥

पदार्थः—(विचक्षणः) उत्कटबुद्धिर्विद्वान् (जागृविः) जागरणशीलः (चम्वोः, पूयमानः) महतः समाजान् स्वज्ञान शक्त्या पावयन् (समन्या, वस्त्रा) शान्तिरक्षकान् (भद्राः) शोभनभावान् (वसानः) दधत् (निवचनानि, शंसन्) सुवक्तव्यानि जानन् (महान्, कविः) महाविद्वान् सम्पद्यते (देववीतौ) यज्ञे उक्तविद्वांसं (आ, वच्यस्व) इत्थं सुवाचा सत्कुर्यात् ।

पदार्थ—उक्तविद्वान् (विचक्षणः) विलक्षण बुद्धिवाला (जागृविः)

जागरणशील (चम्वोः, पूयमानः) बड़े २ समाजोंको अपने ज्ञानद्वारा पवित्र करता हुआ (समन्या) शान्तिकी (वस्त्रा) रक्षा करनेवाले (भद्राः) सुन्दर भावोंको (वसानः) धारण करता हुआ (निवचनानि) शंसन् जो सुन्दर वक्तव्य हैं उनका जानता हुआ (महान्, कविः) महा विद्वान् होता है । (देववीतौ) यज्ञके विषयमें उक्त विद्वानको (आवच्यस्व) ऐसा बचन कहकर सत्कृत करें ।

भावार्थ—जो पुरुष अपने आध्यात्मिकादियज्ञोंमें उक्त विद्वानोंकी प्रशंसा तथा सत्कार करते हैं वे अभ्युदयशील होते हैं ।

समु प्रियो मृज्यते सानौ अव्ये
यशस्तरो यशसां क्षैतो अस्मे ।
अभि स्वर धन्वा पूयमानो यूयं
पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥

सं । उइति । प्रियः । मृज्यते । सानौ । अव्ये । यशःऽतरः । यशसां । क्षैतः अस्मेइति । अभि । स्वर । धन्व । पूयमानः । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः सदा । नः ॥

पदार्थः—यशस्विमध्ये यः (यशस्तरः) अतिविद्वानस्ति (क्षैतः) पृथिव्यादि लोकेषु (यशसां, प्रियः) यशः कामयमानः (अव्ये, सानौ) रक्षाया उच्चशिखरे (समुमृज्यते) साधु शोधितः एवंभूतो विद्वान् (अस्मे) अस्मभ्यम् (धन्वा) अन्तरिक्षे (अभिस्वर) सदुपदेशं कुर्यात् (पूयमानः) सर्वेषा पावयिता विद्वान् शश्वत्सत्कर्त्तव्यः । हे मनुष्याः ! यूयं पूर्वोक्त

विदुषः प्रति एवं ब्रूयात् (स्वस्तिभिः) कल्याणवाग्भिः (यूयम्) भवन्तः (सदा) सर्वदा (नः) अस्मान् (पात) रक्षन्तु ।

पदार्थ—यशस्वियों के मध्यमें जो (यशस्तरः) अत्यन्त विद्वान् है और (क्षेतः) पृथिव्यादि लोकोंमें (यशसां, प्रियः) यशोको चाहनेवाला है (सानौ, अव्ये) रक्षाके उच्चशिखरमें जो (ममृ, मृज्यते) भलीभाँति मार्जन कियागया है उक्तगुणोंवाला विद्वान् (अस्मे) हमारे लिये (धन्वा) अन्तरिक्षमें (अभि, स्वर) हमारे लिये सदुपदेश करे (पूयमानः) सबको पवित्र करनेवाला विद्वान् सदा सत्कारयोग्य होता है हे मनुष्यो ! तुमलोग उक्तविद्वानोंके प्रति इसप्रकारका स्वस्तिवाचन कहो कि (स्वस्तिभिः) कल्याणरूपवाणियोंके द्वारा (यूयं) आपलोग (सदा) सदैव (नः) हमारी (पात) रक्षा करें ।

भावार्थ—स्वस्तिवाचनद्वारा मङ्गलको करनेवाले पुरुष सदैव उन्नतिशील होते हैं ॥

प्र गा॑यताभ्य॑र्चाम दे॒वान्त्सोमं॑
हि॒नोत म॒हते धना॑य ।
स्वा॒दुः प॑वाते॒ अति॒ वार॒मव्य॒मा
सीदा॑ति क॒लशं॑ देव॒युर्नः॑ ॥ ४ ॥

प्र । गा॒य॒त । अ॒भि । अ॒र्चा॒म॒ । दे॒वान् । सोम॑म् । हि॒नो॒त । म॒ह॒ते । धना॑य । स्वा॒दुः । प॒वा॒ते॒ । अति॑ । वार॑म् । अव्य॑म् । आ । सी॒द॒ति॒ । क॒लश॑म् । दे॒व॒ऽयुः । नः॒ ।

पदार्थः—हे मनुष्याः ! यूयं (महते, धनाय) महैश्वर्य

प्राप्तये (देवान्) विदुषः (प्रगायत) स्तुत (अभ्यर्चाम) तानेव सत्कुरुत (सोमं) तत्रच सौम्यस्वभावं विद्वांसं (हिनोतु) प्रेरयत, यतः युष्मान्सः समुपदिशतु (स्वादुः) आनन्दप्रदपदार्थाय च (पवाते) पावयतु (वारम्, अव्यम्) वरणीयः रक्षकश्च स विद्वान् (नः) अस्माकम् (कलशं) हृदये (आसीदति) स्थिरो भवतु ।

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुमलोग (महते, धनाय) बड़े ऐश्वर्य्यकी प्राप्तिके लिये (देवान) विद्वान् लोगोंका (प्र, गायत) स्तवनकरो (अभ्यर्चामः) और उन्हीका सत्कारकरो और (सोमं) उनमे जो सौम्यगुण सम्पन्न विद्वान है उसको (हिनोत) प्रेरणाकरो कि वह तुमको सदुपदेशकरे और (स्वादुः) आनन्ददायक पदार्थोंके लिये (पवाते) पवित्रकरे (देवयुः) दिव्यगुण और (वारं) वरणीय (अव्यं) रक्षक उक्त विद्वान् (नः) हमारे (कलशं) अन्तः करणमे (आसीदाति) स्थिरहो ॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेशकरता है कि हेपुरुषो तुमकल्याणकी प्राप्ति केलिये विद्वानों का सत्कारकरो ॥

इन्दुर्देवानामुप सख्यमायन्त्स-
हस्रधारः पवते मदाय ।
नृभिः स्तवानो अनु धाम
पूर्वमगन्निन्द्रं महते सौभगाय ॥ ५ ॥

इन्दुः । देवानां । उप । सख्यं । आऽयन् । सहस्रऽधारः । पवते । मदाय । नृऽभिः । स्तवानः । अनु । धाम । पूर्वं । अगन् । इन्द्रं । महते । सौभगाय ॥

पदार्थः—(इन्दुः) कर्मयोगी (देवानाम्) विदुषाम् (उपसख्यम्) मैत्रीभावम् (आयत्) प्राप्नुवन् (मदाय) आनन्दाय (पवते) सर्वान्पावयति, सकर्मयोगी (सहस्रधारः) अनन्तशक्तिधारकः (महते, सौभगाय) महासौभाग्याय (इन्द्रम्) ऐश्वर्यं (अगन्) प्राप्नुवन् (नृभिः, स्तवानः) जनैः स्तूयमानः (पूर्व्यं, धाम) सर्वोच्चं धाम निर्माति ॥

पदार्थ—(इन्दुः) कर्म्मयोगी विद्वान (देवानाम) विद्वानोंके (उपसख्यं) मैत्रीभावको (उपयन्) प्राप्त होता हुआ (मदाय) आनन्दके लिये (पवते) सबको पवित्र करता है । वह कर्म्मयोगी (सहस्रधारः) अनन्त प्रकारकी शक्तियें रखता हुआ (महतेसौभगाय) बड़े सौभाग्यके लिये (इन्द्रं) ऐश्वर्य्यको (अगन) प्राप्त होता हुआ (पूर्व्यं धाम) सर्वोपरि धाम बनाता है ।

भावार्थ—जिन पुरुषोंके मध्यमें एक भी कर्मयोगी होता है वह सबको उद्योगी बनाकर पवित्र बनादेता है ।

स्तोत्रे राये हरिरर्षा पुनान
इन्द्रम्मदो गच्छतु ते भराय ।
देवैर्याहि सरथं राधो अच्छा
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

स्तोत्रे । राये । हरिः । अर्ष । पुनानः । इंद्रं । मदः । गच्छतु । ते । भराय । देवैः । याहि । सऽरथं । राधः । अच्छ । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ।

पदार्थः—(हरिः) प्रलयकाले सर्ववस्तूनामात्मनि संहरणात् हरिः परमात्मा (इन्द्रम्) कर्मयोगिनम् (पुनानः) पावयन् (अर्ष) आयाति (राये) ऐश्वर्य्याय (स्तोत्रं) याज्ञिकस्तुतौ समायाति । हे हरे ! (ते, मदः) तवानन्दः (भराय) संग्रामाय (गच्छतु) प्राप्यताम् (देवैः) विद्वद्भिः (याहि) प्राप्नोतु माम् (राधः, अच्छ) शुभैश्वर्यं च ददातु (यूयम्) भवान् (स्वस्तिभिः) शुभवाग्भिः (सदा) शश्वत् (नः, पात) अस्मान् रक्षतु ।

पदार्थः—(हरिः) "हरतीति हरिः" जो प्रलयकालमें सब कार्य्योंको अपनेमें लय कर लेता है उसका नाम यहां हरि है । वह हरि (इन्द्रम्) कर्मयोगीको (पुनानः) पवित्र करता हुआ (अर्ष) आता है और (राये) ऐश्वर्य्यके लिये (स्तोत्रं) यज्ञ सम्बन्धी स्तोत्रोंमें आकर प्राप्त होता है, हे हरि ! (ते) तुम्हारा (मदः) आनन्द (भराय) संग्रामके लिये (गच्छतु) प्राप्त हो और (देवैः) विद्वानोंके साथ (याहि) आकर आप हमको प्राप्त हो (राधः) ऐश्वर्य्य (अच्छ) हमको दें और (यूयम्) आप (स्वस्तिभिः) स्वस्तिवाचनोंसे (नः) हमारी सदाके लिये (पात) रक्षा करें ।

भावार्थ—जो परमात्मा प्रलयकालमें सब वस्तुओंका एकमात्र आधार होता हुआ विराजमान है वह परमात्मा हमको आनन्द प्रदान करे ।

प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो
देवानां जनिमा विवक्ति ।
महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः
पदा वराहो अभ्येति रेभन् ॥ ७ ॥

प्र । काव्यं । उशनाऽइव । ब्रुवाणः । देवः । देवानां । जनिम । विवक्ति । महिऽव्रतः । शुचिऽबंधुः । पावकः । पदा । वराहः । अभि । एति । रेभन् ॥

पदार्थः—(देवानाम्) विदुषां मध्ये (देवः) योमुख्यविद्वान् सः (उशना, इव, काव्यं, ब्रुवाणः) कान्तिशीलविद्वानिव सन्दर्भरचनां कुर्वन् (जनिम, विवक्ति) अनेकजन्मवृत्तं वर्णयति (महिव्रतः) महाव्रतशीलः (शुचिबन्धुः) पवित्रताप्रियः (पावकः) सर्वेषां पावयिता (वराहः) सुतेजस्वी विद्वान् (रेभन्) साधूपदिशन् (पदा, अभ्येति) सन्मार्गेणागत्योपदिशति ॥

पदार्थ—(देवानाम) विद्वानोंके मध्यमें (देवः) जो मुख्य विद्वान् है वह (उशनेव काव्यं ब्रुवाणः) कान्तिशील विद्वान्के समान संदर्भरचनाको करनेवाला विद्वान् (जनिम विवक्ति) अनेक जन्मजन्मान्तरोंका वर्णन करता है । (महिव्रतः) बड़ेव्रतको धारण करनेवाला (शुचिबन्धुः) पवित्रताका बन्धु (पावकः) सबको पवित्र करनेवाला है (वराहः) (वरश्च-तदहश्चेतिवराहः वराहो विद्यतेयस्यस वराहः) जिसका श्रेष्ठ तेज हो उसका नाम यहां वराह है । उक्तप्रकारका विद्वान् (रेभन्) सुन्दरोपदेश करता हुआ (पदाऽभ्येति) सन्मार्गद्वारा आकर उपदेश करता है ।

भावार्थ—जो उत्तम विद्वान् हैं वे अपनी रचना द्वारा पुनर्जन्मादि सिद्धान्तोंका वर्णन करते हैं वराह शब्द यहां सर्वोपरि तेजस्वी विद्वान्के लिये आया है, सायणाचार्य्य कहते हैं कि पाँव से भूमिको खोदता हुआ वराह जिसप्रकार शब्द करता है इसीप्रकार सोम भी शब्द करता हुआ आता है । कई एक नवीन लोग इसको वराहावतारमें भी लगाते हैं अस्तु वराहावतार वा सोम के पक्षमें काव्यका बनाना और उपदेश करना कदापि सङ्गत नहीं होसकता इसलिये वराह के अर्थ यहां विद्वान्के ही हैं ।

प्र हंसासस्तृपलं मन्युमच्छा-
मादस्तं वृषगणा अयासुः ।
आङ्गूष्यं1 पवमानं सखायो ।
दुर्मर्षं साकं प्रवदन्ति वाणम् ॥ ८ ॥

प्र । हंसासः । तृपलं । मन्युं । अच्छ । अमात् । अस्तं । वृषऽगणाः । अयासुः । आंगूष्यं । पवमानं । सखायः । दुःऽमर्षं । साकं । प्र । वदंति । वाणं ॥

पदार्थः—(वृषगणाः) विद्वत्संघाः (हंसासः) हंसा इव विचरन्तः (तृपलम्) द्रुतम् (मन्युम्, अच्छ, अमात्, अस्तम्) दुष्टानां सम्यग् दमनकर्तारं परमात्मानम् (आंगूष्यम्) सर्वलक्ष्यम् (पवमानम्) पावयितारम् (प्रायासुः) प्राप्नुवन्ति, ततः (सखायः) मिथो मैत्रीभावं वर्द्धयन्तः (वाणम्) भजनीयम् (दुर्मर्षम्) दुःखलभ्यम् तं (साकम्) सहैव (प्रवदन्ति) वर्णयन्ति ॥

पदार्थ—(वृषगणाः) विद्वानोंके गण (हंसासः) हंसोंके समान विचरते हुए (तृपलम्) शीघ्रही (मन्युमच्छ अमात् अस्तम्) दुष्टोंके दमन करनेवाले उक्तपरमात्माको (आंगूष्यम्) जो सबका लक्ष्य है और (पवमानम्) सबको पवित्र करनेवाला है उसको (प्रायासुः) प्राप्त होते हैं तदनन्तर (सखायः) परस्पर मैत्रीभावसे सङ्गत होते हुए (वाणम्) भजनीय (दुर्मर्षम्) जो दुःखसे प्राप्त होने योग्य लक्ष्य है उस लक्ष्यके (साकम्) साथ २ (प्रवदन्ति) वर्णन करते हैं ।

भावार्थ—जो पुरुष परमात्माके सद्गुणोंको परमप्रेमसे धारण करते हैं वे मानो परमात्माके साथ मैत्री करते हैं वास्तवमें परमात्मा किसी का शत्रु वा मित्र नहीं कहा जा सकता।

स रंहत उरुगायस्य जूतिं वृथा
क्रीळन्तं मिमते न गावः ।
परीणसं कृणुते तिग्मशृङ्गो
दिवा हरिर्ददृशे नक्तमृज्रः ॥ ९ ॥

सः । रंहते । उरुऽगायस्य । जूतिं । वृथा । क्रीळन्तं । मिमते । न । गावः । परीणसं । कृणुते । तिग्मऽशृङ्गः । दिवा । हरिः । ददृशे । नक्तं । ऋज्रः ॥

पदार्थः—(सः) सपरमात्मा (रंहते) गतिशीलः (उरुगायस्य) तस्य सर्वोपास्यस्य (जूतिम्) गतिम् स्मरन्ति अपि (गावः) इन्द्रियाणि (न, मिमत) तत्तत्त्वं न लभन्ते (वृथा,-क्रीळन्तम्) अनायासेनैव यः क्रीडति (तिग्मशृङ्गः) अज्ञान-भञ्जकः परमात्मा (परीणसम्) विविधज्ञानप्रकाशम् (कृणुत) करोति (हरिः) यश्चपरमात्मा (दिवा, नक्तम्) नक्तंदिवम् ज्ञानदृष्ट्या (ऋज्रः) एकरसः (ददृशे) दृश्यते ।

पदार्थः—(सः) उक्तपरमात्मा (रंहते) गतिशील है (उरुगायस्य) सर्वोपासनीय परमात्माकी (जूतिम्) गतिको स्मरण करते हुए (गावः) इन्द्रियें (न मिमते) उसके तत्त्वको नहीं पासकतीं जो (वृथा

अनायाससे (क्रीळन्तम्) क्रीडा कर रहा है (तिग्मशृङ्गः) अज्ञानोंको नाश करनेवाला परमात्मा (परीणसम्) अनन्त प्रकारके ज्ञानका प्रकाश (कृणुते) करता है और (हरिः) जो परमात्मा (दिवानक्तम्) दिनरात ज्ञानदृष्टिसे (ऋज्रः) एकरस (ददृशे) देखा जाता है ।

भावार्थ—यद्यपि परमात्मा समय समय पर उत्पत्तिस्थिति और संहारका कारण है तथापि उसके स्वरूपमें कोई विकार न उत्पन्न होनेसे वह सदैव एकरस है ॥

इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा
इन्द्रे सोमः सह इन्वन्मदाय ।
हन्ति रक्षो बाधते पर्यरातीर्वरिवः
कृण्वन्वृजनस्य राजा ॥ १० ॥ ॥ १२ ॥

इंदुः । वाजी । पवते । गोऽन्योघाः । इंद्रे । सोमः । सहः । इन्वन् । मदाय । हंति । रक्षः । बाधते । परि । अरातीः । वरिवः । कृण्वन् । वृजनस्य । राजा ॥

पदार्थः—(वृजनस्य) बलस्य (राजा) दीपयिता परमात्मा (वरिवः) ऐश्वर्यं (कृण्वन्) उत्पादयन् (रक्षः, अरातीः) शत्रून् राक्षसान् (परिबाधते) नाशयति (इन्दुः) प्रकाशमयः सः (वाजी) बलवान् (गोन्योघाः) गतिशीलः (पवते) मां पुनाति च (सोमः) सौम्यस्वभावः (सहः) सहनशीलः परमात्मा (इन्द्रे) कर्मयोगिनि (मदाय) आनन्दाय (हन्ति) विघ्नानि नाशयति (इन्वन्) तं प्रेरयति च ।

पदार्थ—(वृजनस्य) बलका (राजा) प्रदीप्त करनेवाला परमात्मा (वस्वः) ऐश्वर्य्यको (कृण्वन्) करता हुआ (अरातीः) शत्रुरूप राक्षसोंको (परिबाधते) नाश करता है और (इन्दुः) वह प्रकाशस्वरूप (वाजी) बलस्वरूप (गव्यायाः) गतिशील (पवते) हमको पवित्र करता है और (इन्द्र) कर्मयोगीके (सोम) सौम्यस्वभाव (सहः) शीलस्वभावको (इन्वन्) प्रेरणा करता हुआ (मदाय) आनन्दके लिये उक्त गुणोंका प्रदान करता है।

भावार्थ—कर्मयोगी उद्योगी पुरुषोंके सब विघ्नोंकी निवृत्ति करके परमात्मा कर्मयोगीके लिये आत्मभावोंका प्रकाश करता है।

अध धारया मध्वा पृचान-
स्तिरो रोम पवते अद्रिदुग्धः ।
इन्दुरिन्द्रस्य सख्यं जुषाणो
देवो देवस्य मत्सरो मदाय ॥ ११ ॥

अध । धारया । मध्वा । पृचानः । तिरः । रोम । पवते । अद्रिऽदुग्धः । इंदुः । इन्द्रस्य । सख्यं । जुषाणः । देवः । देवस्य । मत्सरः । मदाय ॥

पदार्थः—(अद्रिदुग्धः) चित्तवृत्त्या साक्षात्कृतः स परमात्मा । (पवते) अस्मान्पुनाति (अध) अथ च (मध्वा, धारया) आनन्दधारया (पृचानः) विदुषस्तर्पयन् (रोम, तिरः) अज्ञानं तिरस्कुर्वन् मां पुनाति (देवस्य) दिव्यरूपस्य तस्य (मत्सरः) आह्लादकानन्दः (मदाय) अस्मन्मोदाय भवतु

(इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवतस्तस्य (सख्यम्) मित्रताम् (जुषाणः) सेवमानः (देवः) विद्वान् (इन्दुः) प्रकाशस्वरूपः सन् सद्गतिं लभते॥

पदार्थ—(अद्रिदुग्धः) चित्तवृत्तियोंसे साक्षात्कार किया हुआ परमात्मा (पवते) हमको पवित्र करता है (अध) और (मध्वा, धारया) आनन्दकी धाराओंसे (पृणानः) विद्वानोंको तृप्त करता हुआ (रोम, तिरः) अज्ञानको तिरस्कृत करके हमको पवित्र करे और (देवस्य) उक्त दिव्यस्वरूप परमात्माका (मत्सरः) आह्लादक जो आनन्द है वह (मदाय) हमारे मोदके लिये हो। (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यसम्पन्न परमात्माके (सख्यम्) मैत्रीभावको (जुषाणः) सेवन करता हुआ (इन्दुः) प्रकाशस्वरूप (देवः) विद्वान् सद्गतिको प्राप्त होता है।

भावार्थ—अज्ञानकी निवृत्तिके लिये परमात्माकी उपासना सर्वोपरि साधन है॥

अभि प्रियाणि पवते पुनानो
देवो देवान्त्स्वेन रसेन पृञ्चन्।
इन्दुर्धर्माण्यृतुथा वसानो दश
क्षिपो अव्यत सानो अव्ये॥ १२॥

अभि। प्रियाणि। पवते। पुनानः। देवः। देवान्। स्वेन। रसेन। पृञ्चन्। इन्दुः। धर्माणि। ऋतुऽथा। वसानः। दश। क्षिपः। अव्यत। सानौ। अव्ये॥

पदार्थः—(देवः) परमात्मदेवः (देवान्) विदुषः (स्वेन) आत्मीयेन (रसेन) आनन्देन (पृंचन्) तर्पयन् (अभिप्रियाणि) सर्वान्प्रियपदार्थान् (पवते) पुनाति (पुनानः) सर्वान्पावयन् (इन्दुः) प्रकाशमयः सः (धर्माणि) वर्णाश्रमधर्मान्पृथक्कुर्वन् (ऋतुथा) सर्वर्तुषु (वसानः) निवसन् (दश,-क्षिपः) पञ्चस्थूलानि पञ्च च सूक्ष्माणि भूतानि तेषाम् (अव्ये. सानौ) ब्रह्माण्डरूपकार्ये विराजमानः (अव्यत) अस्मान्रक्षति।

पदार्थ—(देवः) उक्त परमात्मारूप देव (देवान्) विद्वानोंको (स्वेन) अपने (रसेन) आनन्दसे (पृञ्चन्) तृप्त करता हुआ (अभिप्रियाणि) सब प्रिय पदार्थोंको (पवते) पवित्र करता है (पुनानः) सबको पवित्र करनेवाला परमात्मा (इन्दुः) जो प्रकाशस्वरूप है, वह (धर्माणि) वर्णाश्रमोंके धर्म्मोंको पृथक् २ विधान करता हुआ (ऋतुथा) सब ऋतु और देश कालोंमें (वसानः) निवास करता हुआ (दश क्षिपः) पांच स्थूल और पांच सूक्ष्म भूतोंके (अव्ये, सानौ) ब्रह्माण्डरूप इस कार्य्यमें विराजमान होकर (अव्यत) हमारी रक्षा करता है ॥

भावार्थ—परमात्मा सूत्रात्मारूपसे सब सूक्ष्म और स्थूल भूतोंमें विराजमान है, और उसीने आदिसृष्टिमें वर्णाश्रमोंका गुण, कर्म, स्वभाव द्वारा विभाग किया है ॥

वृषा शोणो अभिकनिक्रदद्गा
नदयन्नेति पृथिवीमुत द्याम् ।
इन्द्रस्येव वग्नुरा शृण्व आजौ
प्रचेतयन्नर्षति वाचमेमाम् ॥ १३ ॥

वृषा । शोणः । अभिऽकनिक्रदत् । गाः । नदयन् । एति । पृथिवीं । उत । द्यां । इंद्रऽइव । वग्नुः । आ । शृण्वे । आजौ । प्रऽचेतयन् । अर्षति । वाचं । आ । इमां ॥

पदार्थः—(शोणः) तेजस्वी सपरमात्मा (वृषा) आनन्दानां वर्षुकः (गाः, अभि, कनिक्रदत्) लोकलोकान्तराण्यभि शब्दायमानः (द्याम्) द्युलोकम् (उत, पृथिवीम) भूलोकं च (नदयन्) समृद्धं कुर्वन् (एति) प्राप्नोति (आजौ) धर्मविषये जीवात्मानम् (प्रचेतयन्) बोधयन् (इमां, वाचम्) इमां वेदवाचम् (अर्षति) प्राप्नोति तस्य (वग्नुः) शब्दः (इन्द्रइव) विद्युदिव (आ।शृण्वे) श्रूयते।

पदार्थ—(शोणः) वह तेजस्वी परमात्मा (वृषा) आनन्दोंका वर्षक है (गा, अभि, क्रनिक्रदत) लोकलोकान्तरोंके समक्ष शब्दायमान होता हुआ (द्याम) द्युलोक (उत) और (पृथिवीम) पृथिवीलोकको (नदयन) समृद्धिको प्राप्त करता हुआ (एति) विराजमान होता है (आजौ) धर्म्म विषयमें जीवात्माको (प्रचेतयन) बोधन कराता हुआ (इमां, वाचम्) इस वेदरूपी वाणीको (अर्षति) प्राप्त होता है और उसका (वग्नुः) शब्द (इन्द्रइव) विद्युत् के समान (शृण्वे) सुना जाता है ।

भावार्थ—सब आनन्दोंकी राशि एकमात्र परमात्माही है इसलिये उसीमें चित्तवृत्तिका निरोध करके ब्रह्मानन्दका उपभोग करना चाहिये ।

रसाय्यः पयसा पिन्वमान
ईरयन्नेषि मधुमन्तमंशुम् ।

पवमानः सन्तनिमेषि कृण्व-
न्निन्द्राय सोम परिषिच्यमानः ॥ १४ ॥

रसाय्यः । पयसा । पिन्वमानः । ईरयन् । एषि । मधुऽमन्तं । अंशुं । पवमानः । संऽतनिं । एषि । कृण्वन् । इंद्राय । सोम । परिऽसिच्यमानः ॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (परिषिच्यमानः) उपास्यमानो भवान् (सन्तनिम्) अभ्युदयं (कृण्वन्) विस्तृण्वन् (इन्द्राय, एषि) कर्म्मयोगिनं प्राप्नोति (पवमानः) सर्वस्य पावयिता भवान् (पयसा, रसाय्यः) रसेन परिपूर्णः (पिन्वानः) विविधाभ्युदयेन वृद्धिं प्राप्तो भवान् (मधुमन्तम्, अंशुम्) माधुर्य-युक्ताष्टसिद्धीः (ईरयन्) प्रेरयन् (एषि) प्राप्नोति ।

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! (परिषिच्यमानः) उपास्यमान आप (सन्तनिम्) अभ्युदयका (कृण्वन) विस्तार करते हुए (इन्द्राय) कर्मयोगीके लिये (एषि) प्राप्त होते हैं (पवमानः) सबको पवित्र करने वाले आप (पयसा रसाय्यः) आनन्दस्वरूप हैं सब प्रकारके अभ्युदयोंसे (पिन्वानः) वृद्धिको प्राप्त आप (मधुमन्तमंशुम्) माधुर्य्ययुक्त अष्टसिद्धियों को (ईरयन्) प्रेरणा करते हुए (एषि) प्राप्त होते हैं ।

भावार्थ—अभ्युदय और निश्रेयसका प्रदाता एकमात्र परमात्माही है इसलिये मनुष्यको चाहिये कि उसी परमात्माको दृढ़ भक्तिसे सब प्रकारके ऐश्वर्य और मुक्तिको लाभकरे ।

एवा पवस्व मदिरो मदायो-
दग्राभस्य नमयन्वधस्नैः ।
परि वर्णं भरमाणो रुशन्तं
गव्युर्नो अर्ष परि सोम सिक्तः ॥१५॥१३॥

एव । पवस्व । मदिरः । मदाय । उदऽग्राभस्य । नमयन् । वधऽस्नैः । परि । वर्णं । भरमाणः । रुशंतं । गव्युः । नः । अर्ष । परि । सोम । सिक्तः ॥

पदार्थः—(मदिरः) हे आनन्दस्वरूपपरमात्मन् ! (मदाय) आनन्दाय (उदग्राभस्य) अज्ञानमेघान् (वधस्नैः, नमयन्) स्वबाधकशस्त्रैर्नम्रीकुर्वन् (रुशन्तम्) दीप्तिमत् (गव्युः) ज्ञानम् (नः) अस्मभ्यम (पर्यर्ष) प्रयच्छतु (सोम) हे सौम्यगुणसम्पन्नभगवन् ! (वर्णं, भरमाणः) अस्मासु योग्यतां समुत्पादयन् (परिषिक्तः) ज्ञानप्रदो भवतु ।

पदार्थ—(मदिरः) हे आनन्दस्वरूपपरमात्मन् ! (मदाय) हमारे आनन्दके लिये आप (उदग्राभस्य) अज्ञानके बादलको (वधस्नैर्नमयन) अपने बाधक शस्त्रोंसे नम्र करते हुए (रुशन्तम्) दीप्तिवाले (गव्युः) ज्ञानको (नः) हमारे लिये (पर्य्यर्ष) प्रदान कीजिये । (सोम) हे सौम्यगुणसम्पन्नपरमात्मन ! (वर्णं भरमाणः) हममें योग्यताको करते हुए आप (परिसिक्तः) हमारे लिये ज्ञानप्रद हूजिये ।

भावार्थ—जो लोग अनन्यभक्तिसे परमात्माका भजन करते

है परमात्मा उनके अज्ञानके बीजको छिन्न भिन्न करके अवश्यमेव ज्ञानका प्रकाश करता है ॥

जुष्ट्वी न इन्दो सुपथा सुगा-
न्युरौ पवस्व वरिवांसि कृण्वन् ।
घनेव विष्वग्दुरितानि विघ्नन्नधि
ष्णुना धन्व सानो अव्ये ॥ १६ ॥

जुष्ट्वी । नः । इंदो इति । सुऽपथा । सुऽगानि । उरौ । पवस्व । वरिवांसि । कृण्वन् । घनाऽइव । विष्वक् । दुःइतानि । विऽघ्नन् । अधि । स्नुना । धन्व । सानौ । अव्ये ॥

पदार्थः—(इन्दो) हेप्रकाशस्वरूपपरमात्मन् ! भवान् (वरिवांसि) धनानि (कृण्वन्) अस्मासु संचिन्वन् (नः, पवस्व) अस्मान् रक्षतु (जुष्ट्वी) मत्प्रार्थनाभिः प्रसन्नो भवान् (सुपथा, सुगानि) सुखगम्यानां वैदिकधर्ममार्गाणामुपदेष्टा भवतु (उरौ) विस्तीर्णे (सानौ, अव्ये) रक्षणपथे (विष्वग्दुरितानि) विषमादपिविषमं पापम् (घना इव) मेघानिव (विघ्नन्) नाशयन् (स्नुना) स्वीयानन्दमयधाराभिः (अधि, धन्व) प्राप्नोतु ।

पदार्थ—(इन्दो) हे स्वप्रकाशपरमात्मन ! आप (वरिवांसि) धनोंका प्रदान (कृण्वन) करते हुए (नः) हमारी (पवस्व) रक्षा करें, और (जुष्ट्वी) हमारी प्रार्थनाओंसे प्रसन्न हुए आप (सुपथा,) सुन्दर

मार्ग और (सुगानि) सरलवैदिकधर्म्मके रास्तोंका उपदेश करें । (उरौ) विस्तीर्ण (सानौ, अन्ये) रक्षाके पथमें (विष्वग्दुरितानि) विषमसे विषम पापोंको (घनाइव) बादलोंके समान (विघ्नन्) नाश करते हुए (ष्णुना) अपनी आनन्दमय धाराओंसे (अधिधन्व) प्राप्त हों ।

भावार्थ—जो लोग परमात्माका प्रीतिसे सेवन करते हैं अर्थात् सर्वोपरि प्रिय एकमात्र परमात्माही जिनको प्रतीत होता है वे कर्मयोगी तथा ज्ञानयोगी होकर इस संसारमें स्वतन्त्रतापूर्वक विचरते हैं ॥

वृष्टिं नो अर्ष दिव्यां जिगत्नु-
मिळावतीं शङ्गयीं जीरदानुम् ।
स्तुकेव वीता धन्वा विचिन्वन्ब-
न्धूँरिमाँ अवराँ इन्दो वायून् ॥ १७ ॥

वृष्टिं । नः । अर्ष । दिव्यां । जिगत्नुं । इळाऽवतीं । शंऽगयीं । जीरऽदानुं । स्तुकाऽइव । वीता । धन्व । विऽचिन्वन् । बंधून् । इमान् । अवरान् । इंदो इति । वायून् ॥

पदार्थः—(इन्दो) हे परमात्मन् ! (नः) अस्मभ्यम (दिव्याम्, वृष्टिम) दिव्यवर्षं (अर्ष) प्रयच्छतु या वृष्टिः (जिगत्नुं) सर्वत्र व्याप्ता (इलावतीम) अन्नप्रदा (शंगयीम्) सुखप्रदा (जीरदानुम) ऐश्वर्यप्रदा च स्यात् । भवांश्च (वीता, स्तुका इव) कान्तसन्ततीरिव (विचिन्वन्) उत्पादयन् (इमान्, बन्धून्) इमान्बन्धुगणान् (अवरान्) देशदेशा-

न्तरस्थान् (वायून्) वायुमिव गतिशीलान् (धन्व) आगत्य प्राप्नोतु ॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (नः) हमारे लिये आप (दिव्याम्) दिव्य (वृष्टिम्) वृष्टि (अर्ष) दें,-जो वृष्टि (जिगत्नुं) सर्वत्र व्याप्त हो (इळावतीम्) अन्नवाली हो (शङ्गयीम्) सुखप्रद हो (जीरदानुम्) शीघ्र ऐश्वर्यके देनेवाली हो और तुम (वीता. स्तुका, इव) सुन्दर सन्तानोंके समान (विचिन्वन्) उत्पन्न करते हुए (इमान्, बन्धून्) इस बन्धुगणको (अवरान्) जो देशदेशान्तरोंमें स्थिर है, और (वायून्) वायुके समान गतिशील है, उसको (धन्व) आकर प्राप्त हो ।

भावार्थ—यद्यपि परमात्मा स्वस्वकर्मानुकूल ऊँच नीच गतिप्रदान करता है, तथापि वह सन्तानोंके समान जीवमात्रकी भलाई चाहता है इसलिये कर्मों द्वारा सुधार करके सबको शुभमार्गमें प्रेरित करता है ।

ग्रन्थिं न विष्यं ग्रथितं पुनान
ऋजुं च गातुं वृजिनं च सोम ।
अत्यो न क्रदो हरिरा सृजानो
मर्यो देव धन्व पस्त्यावान् ॥ १८ ॥

ग्रंथिं । न । वि । स्य । ग्रथितं । पुनानः । ऋजुं । च । गातुं । वृजिनं । च । सोम । अत्यः । न । क्रदः । हरिः । आ । सृजानः । मर्यः । देव । धन्व । पस्त्यऽवान् ॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (ग्रथितम्) बद्धपुरुषाणाम् (पुनानः) मुक्तिदो भवान् (नः) अस्माकम् (ग्रन्थिम्)

बन्धनम् (विष्य) मोचयतु (च) तथा (गातुम्) मन्मार्गम् (ऋजुम्) सुगमं करोतु (सोम) हे सौम्यस्वभाव! (वृजिनं, च) बलं च सम्पादयतु (अत्यो न) विद्युच्छक्तिरिव (क्रदः) शब्दकारी भवान् (आ, सृजानः) उत्पत्तिकाले सर्वस्रष्टा (हरिः) प्रलये च हरणकर्ताऽस्ति (देव) हे भगवन् ! (पस्त्यवान्) अन्यायिशत्रूणां (मर्यः) नाशकः (धन्व) मदन्तःकरणं शोधयतु ।

पदार्थ—हे परमात्मन ! (ग्रथितम्) बद्धपुरुषोंके (पुनानः) मुक्तिदाता आप (नः) हमारे (ग्रन्थिम) बन्धनको (विष्य) मोचन करें (च) और (गातुम) हमारे मार्गको (ऋजुम्) सरल करें । (सोम) हे परमात्मन ! (च) तथा (वृजिनम्) हमको बलप्रदान करें (अत्योन) विद्युतकी शक्तिके समान (क्रदः) आप शब्दायमान हैं (आ, सृजानः) उत्पत्तिकालमें सबके स्रष्टा है, और प्रलयकालमें (हरिः) सबके हरणकर्त्ता हैं । (देव) हे देव ! (पस्त्यवान) अन्यायकारी शत्रुओंके (मर्यः) आप नाशक हैं, (धन्व) आप हमारे अन्तःकरणोंको शुद्ध करें ।

भावार्थ—परमात्मा स्वभावसे न्यायकारी है वह आप उपासकोंके अन्तःकरणको शुद्धिप्रदान करता है । और अनाचारियोंको रुद्ररूपसे विनाश करता हुआ इस संसारमें धर्म और नीतिको स्थापन करता है ।

जुष्टो मदाय देवतात इन्दो परि
ष्णुना धन्व सानो अव्ये ।
सहस्रधारः सुरभिरदब्धः परि
स्रव वाजसातौ नृषह्ये ॥ १९ ॥

जुष्टः । मदाय । देवऽताते । इंदो इति । परि । स्नुना । धन्व । सानौ । अव्ये । सहस्रऽधारः । सुरभिः । अदब्धः । परि । स्रव । वाजऽसातौ । नृऽसह्ये ॥

पदार्थः—(सहस्रधारः) अनन्तशक्तिरीश्वरः (सुरभिः, अदब्धः) केनापि अनभिभाव्यः (वाजसातौ) यज्ञे (नृषह्ये) मनुष्याणां तपोबलस्योन्नताऽस्ति (अव्ये, सानौ) रक्षारूपस्य स्वस्योच्चशिखरे (ष्णुना) स्वप्रवाहैः (इन्दो) हे परमात्मन् ! (धन्व, पवस्व) भवान् आगत्य पावयतु, यतः (देवताते) विदुषां विस्तृतयज्ञे (मदाय) आनन्दस्य (जुष्टः) प्रीत्याऽनुभवितास्ति भवान् ।

पदार्थ—(सहस्रधारः) अनन्तशक्तियुक्तपरमात्मा (सुरभिरदब्धः) किसी से न दबाये जानेवाला (वाजसातौ) यज्ञमें (नृषह्ये) जो मनुष्योंके तपोबलका वर्धक है, और (अव्ये) सबका रक्षक है (सानौ) रक्षा रूप उच्च शिखरपर (ष्णुना) अपने प्रवाहसे (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप-परमात्मन ! तुम (धन्व, पवस्व) हमको पवित्र करो, क्योंकि, आप (देवताते) विद्वानोंके विस्तृतयज्ञमें (मदाय) आनन्दको (जुष्टः) प्रीतिसे सेवन करनेवाले हैं, ॥

भावार्थ—जो लोग परमात्मपरायण होते हैं परमात्मा उनकी सदैव रक्षा करता है ॥

अश्मानो येऽरथा अयुक्ता अत्यासो न संसृजानास आजौ ।

एते शुक्रासो धन्वन्ति सोमा
देवासस्ताँ उप याता पिबध्यै ॥२०॥१४॥

अरश्मानः । ये । अरथाः । अयुक्ताः । अत्यासः । न । ससृजानासः । आजौ । एते । शुक्रासः । धन्वंति । सोमाः । देवासः । तान् । उप । यात । पिबध्यै ॥

पदार्थः— (आजौ) ज्ञानयज्ञे ये विद्वांसः (ससृजानासः) दीक्षिताः कृताः (अत्यासः, न) विद्युदिव ये (अयुक्ताः) निर्बन्धनाः (अरश्मानः) ये च जीवन्तो मुक्ताः सन्तः(अरथाः) कर्मबन्धरहिताः (एते, शुक्रासः) एते पूर्वोक्तविद्वांसः (धन्वन्ति) अव्याहतगतयः सन्तः विचरन्ति (सोमाः, देवासः) सौम्या दिव्याश्च ये परमात्मनो गुणकर्मस्वभावाः (तान्) तान्स्वभावान् (पिबध्यै, उपयात) सेवितुं प्रयतन्ता विद्वांसः ।

पदार्थ— (आजौ) ज्ञानयज्ञोंमें जो विद्वान (ससृजानासः) दीक्षित कियेगये हैं (अत्यासः) विद्युतके (नः) समान जो (अयुक्ताः) बन्धनरहित हैं, (अरश्मानः) जीवन्मुक्त होते हुए ये जो (अरथाः) कर्मोंके बन्धनोंसे रहित हैं (एते शुक्रासः) उक्ततेजस्वी विद्वान् (धन्वन्ति) अव्याहतगति होकर सर्वत्र विचरते हैं । (सोमाः) सौम्य (देवासः) दिव्य जो परमात्माके गुणकर्मस्वभाव हैं (तान्) उनको (पिबध्यै, उपयात) विद्वानोंसे प्रार्थना है कि आपलोग उक्तपरमात्मा के गुणोंको सेवन करने का प्रयत्न करें ।

भावार्थ— इस मन्त्रमें परमात्माके गुणकर्मस्वभावके सेवन

करनेका उपदेश है अर्थात् परमात्माके गुणोंके धारण करनेसे पुरुष पवित्र और तेजस्वी होजाता है ॥

एवा न इन्दो अभि देववीतिं
परि स्रव नभो अर्णश्चमूषु ।
सोमो अस्मभ्यं काम्यं बृहन्तं
रयिं ददातु वीरवन्तमुग्रम् ॥ २१ ॥

एव । नः । इन्दोइति । अभि । देवऽवीतिं । परि । स्रव । नभः । अर्णः । चमूषु । सोमः । अस्मभ्यं । काम्यं । बृहंतं । रयिं । ददातु । वीरऽवंतं । उग्रं ॥

पदार्थः—(इन्दो) हे प्रकाशमयपरमात्मन् ! (नः) अस्माकम (देववीतिम्, अभि) यज्ञं प्रति (परिस्रव) ज्ञानवृष्टिं करोतु (चमुषु) मत्क्षेत्ररूपयज्ञे (नभः) आकाशात् (अर्णः) जलवृष्टिं करोतु (सोमः) सौम्यो भवान् (अस्मभ्यम) अस्मदर्थम् (काम्यम्) कमनीयम् (बृहन्तम्) महत् (रयिं) धनं (ददातु) प्रयच्छतु (उग्रम्, वीरवन्तम) तच्च पुष्टवीरवदपि स्यात् ।

पदार्थ—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूपपरमात्मन ! (नः) हमारे (देववीतिम, अभि) यज्ञके प्रति (परिस्रव) ज्ञानकी वृष्टि करें और (चमूषु) हमारे क्षेत्ररूपयज्ञोंमें (नभः) नभोमण्डलसे (अर्णः) जलकी वृष्टि करें, (सोमः) सोमगुणसम्पन्न आप (अस्मभ्यम) हमारे लिये

(काम्यम्) कमनीय (बृहन्तम्) बड़े (रयिम्) धनको (ददातु) दें और वह धन (उग्रं वीरवन्तम) उग्रवीरोंकी सम्पत्तिवाला हो ।

भावार्थ—जो लोग अनन्यभक्तिसे ईश्वरकी उपासना करते हैं । ईश्वर उनको अनन्त प्रकारके ऐश्वर्य प्रदान करता है ॥

तक्षद्यदी मनसो वेनतो वाग्ज्ये-
ष्ठस्य वा धर्मणि क्षोरनीके ।
आदीमायन्वरमा वावशाना
जुष्टं पतिं कलशे गाव इन्दुम् ॥ २२ ॥

तक्षत् । यदि । मनसः । वेनतः । वाक् । ज्येष्ठस्य । वा । धर्मणि । क्षोः । अनीके । ईं । आयन् । वरं । आ । वावशानाः । जुष्टं । पतिं । कलशे । गावः । इंदुं ॥

पदार्थः—(क्षोः, अनीके, धर्मणि) वैदिके शुभधर्मे (वेनतः, मनसः) कमनीयमनसः (वाक्) वाणी (तक्षत्) आत्मनः संस्करोति (यदि, वा) यद्वा (गावः) इन्द्रियाणि (इन्दुम्) परमात्मानम (पतिम्) जगदीश्वरम् (वरम्) वरणीयम् (जुष्टम्) प्रेम्णा सर्वोपास्यम (ईम) इत्थंभूतम् (कलशे) अन्तःकरणे (आयन्)आगच्छन्तम् (वावशानाः, आत्) तंगृहीत्वा बुद्ध्या साक्षात्कुर्वन्ति ।

पदार्थ—(क्षोरनीके, धर्मणि) वैदिकधर्ममें (वेनतो मनसः) अत्यन्तकान्तिवाले मनकी (वाक्) वाणी (तक्षत्) आत्माका संस्कार कर-

ती है (यद्वा, अथवा (गावः) इन्द्रियें (इन्दुम) प्रकाशस्वरूपपरमात्मा-का, जो (पतिम्) लोकलोकान्तरोंका पति है (वरम) वरणीय है (जुष्टम) जो सबका प्रेमपूर्वक उपासनीय है (कलशे) अन्तःकरणमें (ईम्) उक्त-परमात्माको (आयन्) आतेहुये (वावशानाः) ग्रहण करके (आन) तदनन्तर तुरन्तही साक्षात्कार करती हैं ॥

भावार्थ—जो लोग कर्मयज्ञ तथा ज्ञानयज्ञ द्वारा मनका संस्कार करते हैं उनको शुद्धरूप परमात्माके ज्ञानका लाभ करता है ।

प्र दानुदो दिव्यो दानुपिन्व
ऋतमृताय पवते सुमेधाः ।
धर्मा भुवद्वृजन्यस्य राजा
प्र रश्मिभिर्दशभिर्भारि भूम ॥ २३ ॥

प्र । दानुऽदः । दिव्यः । दानुऽपिन्वः । ऋतं । ऋताय । पवते । सुऽमेधाः । धर्मा । भुवत् । वृजन्यस्य । राजा । प्र । रश्मिभिः । दशऽभिः । भारि । भूम ॥

पदार्थः—(सुमेधाः) सर्वज्ञः परमात्मा (ऋतम्) सत्यताम् (ऋताय) कर्मयोगिने (पवते) पुनाति सच (दानुपिन्वः) जिज्ञासूना धनादिभिः पुष्टिकारकः (दिव्यः) तेजोमयः (दानुदः) दातॄणामपि दाताऽस्ति (धर्मा, भुवत्) अखिलधर्माणां धारकः (वृजन्यस्य) बलस्य च धारकः (रश्मि-भिः, दशभिः) स्थूलसूक्ष्मभेदेन दशसंख्याकभूताना शक्तिभिः

(भृम, प्रभारि) चराचरं जगद्धारयति (राजा) अखिलसृष्टेः प्रकाशकश्च ।

पदार्थ—(सुमेधाः) स्वप्रकाशपरमात्मा (ऋतम्) सचाईको (ऋताय) कर्मयोगीके लिये (पवते) पवित्र करता है, वह परमात्मा (दानुपिन्वः) जिज्ञासुओंको धनदानादिकोंसे पुष्ट करनेवाला है (दिव्यः) दिव्य है (दानुदः) सब दाताओंका दाता है, वह (धर्माभुवत्) सब धर्मोंको धारण करनेवाला है (वृजन्यस्य) साधुबलके धारण करनेवाला है (रश्मिभिर्दशभिः) पाँच सूक्ष्म पाँच स्थूल भूतोंकी शक्तियों द्वारा (भृम, प्रभारि) इस चराचर जगत्को धारण कर रहा है और (राजा) सब लोकलोकान्तरोंका प्रकाश करने वाला है ।

भावार्थ—परमात्मा इस चराचर जगतका निर्माण करनेवाला है उसीने सम्पूर्ण संसारको रचकर धर्मकी मर्यादाको बांधा है ।

पवित्रेभिः पवमानो नृचक्षा
राजा देवानामुत मर्त्यानाम् ।
द्विता भुवद्रयिपती रयीणा-
मृतं भरत्सुभृतं चार्विन्दुः ॥ २४ ॥

पवित्रेभिः । पवमानः । नृऽचक्षाः । राजा । देवानां । उत । मर्त्यानां । द्विता । भुवत् । रयिऽपतिः । रयीणां । ऋतं । भरत् । सुऽभृतं । चारु । इन्दुः ॥

पदार्थः—(इन्दुः) प्रकाशस्वरूपः परमात्मा (चारु)

रम्यं (ऋतम्) प्रकृत्यात्मकसत्यम् (भरत्) धारयति, तच्च सत्यम् (सुभृतम्) सम्यक् लोकतृप्तिकारणम् स परमात्मा च (रयीणाम्) धनानाम् (पतिः) स्वाम्यस्ति (द्विता) जीवप्रकृतिरूपद्वैताय (भुवत्) स्वामित्वेन विराजते (उत) तथा (मर्त्यानाम्) साधारणजनानाम् (देवानाम्) विदुषां च (राजा) अधिष्ठातास्ति (नृचक्षाः) शुभाशुभकर्मद्रष्टा (पवित्रेभिः) स्वपवित्रशक्तिभिः (पवमानः) पवित्रयन्नास्ते ॥

पदार्थ—(इन्दुः) प्रकाशस्वरूपपरमात्मा (चारु) सुन्दर (ऋतम्) प्रकृतिरूपीसत्यको (भरत्) धारणकियेहुए है, वह प्रकृतिरूपीसत्य (सुभृतम्) भलीभांति सबकी तृप्तिका कारण है, उक्तपरमात्मा (रयीणाम्) धनोंका (पतिः) स्वामी है और (द्विता) जीव और प्रकृतिरूपी द्वैतके लिये (भुवत्) स्वामीरूपसे विराजमान है, (उत) और (मर्त्यानाम्) साधारणमनुष्योंका और (देवानाम्) विद्वानोंका (राजा) राजा है (नृचक्षाः) शुभाशुभकर्मोंका द्रष्टा है तथा (पवित्रेभिः) अपनी पवित्र शक्तियोंसे (पवमानः) पवित्रता देनेवाला है ।

भावार्थ—परमात्माने प्रकृतिरूपी परिणामी नित्य और जीवरूपी कूटस्थ नित्य द्वैतको धारण किया है । इसप्रकार जीव और प्रकृतिका परमात्मासे भेद है इसविषयका वर्णन वेदके कई एक स्थानोंमें अन्यत्र भी पाया जाता है । जैसा कि (न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकम् अन्तरं बभूव) तुम उसको नहीं जानते जिसने इस संसारको उत्पन्न किया है वह तुमसे भिन्न है । इस मन्त्रमें द्वैतवादका वर्णन स्पष्ट रीतिसे पाया जाता है ।

अर्वा इव श्रवसे सातिमच्छेन्द्रस्य वायोरभि वीतिमर्ष ।

स नः सहस्रा बृहतीरिषो दा भवा
सोम द्रविणोवित्पुनानः ॥ २५ ॥ १५ ॥

अर्वान्ऽइव । श्रवसे । सातिं । अच्छ । इंद्रस्य । वायोः । अभि । वीतिं । अर्ष । सः । नः । सहस्रा । बृहतीः । इषः । दाः । भव । सोम । द्रविणःऽवित् । पुनानः ॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! भवान् (सहस्रा) सहस्रधा (बृहतीः) महताम् (इषः) ऐश्वर्याणाम (दाः) दातास्ति यतः (द्रविणोवित्) भवान्सर्वैश्वर्यज्ञः अतः (पुनानः) ऐश्वर्येण पावयन् (अर्वा, इव) गतिशीलविद्युदिव (श्रवसे) ऐश्वर्याय (सातिम्, अच्छ) यज्ञं प्रयच्छतु (इन्द्रस्य) कर्मयोगिनः (वायोरभि) ज्ञानयोगिनश्च (वीतिं, अर्ष) ज्ञानं ददातु (सः) एवंभूतो भवान् (नः) ज्ञानप्रदानेन मां पावयतु ।

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन ! आप (सहस्रा) सहस्रों प्रकारके (बृहतीः) बड़े २ (इषः) ऐश्वर्य्योंके (दाः) देनेवाले (भव) हो क्योंकि आप (द्रविणोवित) सबप्रकारके ऐश्वर्य्योंके जाननेवाले हैं । इसलिये (पुनानः) ऐश्वर्य्यों द्वारा पवित्र करते हुए (अर्वाइव) गतिशील विद्युतके समान (श्रवसे) ऐश्वर्य्यके लिये (सातिम) यज्ञको (अच्छ) हमारे लिये दें । और (इन्द्रस्य) कर्मयोगीको और (वायोरभि) ज्ञानयोगीको (वीतिम) ज्ञान (अर्ष) दें (सः) उक्तगुणसम्पन्न आप (नः) हमको ज्ञानप्रदानसे पवित्र करें ।

भावार्थ—परमात्मा ज्ञानयोगीको नानाप्रकारके ऐश्वर्य्य प्रदान करता है इसलिये मनुष्यको चाहिये कि वह ज्ञानयोगका सम्पादन करे ॥

देवाव्यो॑ नः परिषि॒च्यमा॑नाः

क्षयं॑ सु॒वीरं॑ धन्वन्तु॒ सोमाः॑ ।

आ॒य॒ज्यवः॑ सुम॒तिं वि॒श्ववा॑रा होता॑रो

न दि॑वि॒यजो॑ म॒न्द्रत॑माः ॥ २६ ॥

दे॒व॒ऽअव्यः॑ । नः । प॒रि॒ऽसि॒च्यमा॑नाः । क्षय॑म् । सु॒ऽवीर॑म् ।
ध॒न्व॒न्तु॒ । सोमाः॑ । आ॒ऽय॒ज्यवः॑ । सु॒ऽम॒तिम् । वि॒श्वऽवा॑राः ।
होता॑रः । न । दि॒वि॒ऽयजः॑ । म॒न्द्रऽत॑माः ॥

पदार्थः—(देवाव्यः) ज्ञानद्वारेण विदुषां तर्पकः परमात्मा (आयज्यवः) यजनशीलः (विश्ववाराः) सर्ववरणीयः (होतारः, न) होतार इव (दिवियजः) द्युलोके सूर्यादिदिव्यतेजसा यज्ञकर्ता (मन्द्रतमाः) आनन्दस्वरूपः (परिषिच्यमानाः) स परमात्मा उपासितः सन् (सोमाः) सौम्यस्वभावो भवन् (सुवीरम्) सुवीरसन्तानम् (क्षयम) निवासस्थानं च (धन्वन्तु) ददातु ॥

पदार्थ—(देवाव्यः) विद्वानोंको ज्ञानद्वारा तृप्त करनेवाला परमात्मा और (आयज्यवः) यजनशील (विश्ववाराः) सबका उपास्यदेव (होतारः) होताओंके (न) समान (दिवियजः) द्युलोकमें सूर्य्यादि अग्निपुञ्जोंके द्वारा यज्ञ करनेवाला (मन्द्रतमाः) आनन्दस्वरूप, उक्तगुणसम्पन्नपरमात्मा (परिषिच्यमानाः) उपासना कियाहुआ (सोमाः) सौम्यस्वभावपरमात्मा (सुवीरम्) सुवीरसन्तान और (क्षयम) निवासस्थान (धन्वन्तु) दे । यहां बहुवचन आदरके लिये है ।

भावार्थ—सुसम्पत्ति तथा सुन्दर सन्तान एकमात्र पुण्यकर्म्मोंसे प्राप्त होती है इसलिये पुण्यात्मा बनकर पुण्योंका सञ्चय करना चाहिये ।

एवा देव देवताते पवस्व महे
सोम प्सरसे देवपानः ।
महश्चिद्धिष्मसि हिताः समर्ये
कृधि सुष्ठाने रोदसी पुनानः ॥ २७ ॥

एव । देव । देवऽताते । पवस्व । महे । सोम । प्सरसे । देवऽपानः । महः । चित् । हि । स्मसि । हिताः । सऽमर्ये । कृधि । सुस्थाने इति । सुऽस्थाने । रोदसी इति । पुनानः ॥

पदार्थः—(देव) हे दिव्यस्वरूपपरमात्मन् ! (देव-पानः) विदुषां तृप्तिकर्ता भवान् (देवताते) विद्वद्भिः प्रस्तुते यज्ञे (महे) महति (सोम) हे सौम्यस्वभाव ! (प्सरसे) विद्वत्तृप्तये (पवस्व) पवित्रतां समुत्पादयतु (रोदसी) द्युलोके पृथिवीलोकमध्ये (सुष्ठाने) शोभनस्थाने (पुनानः) मां पावयन् (समर्ये) संसारस्य युद्धस्थलरूपक्षेत्रे (हिताः, कृधि) हितकरे सम्पादयतु माम् (हि) यतः (महश्चित) भवान् तीक्ष्णतमशक्तीः (स्मसि, एव) दधाति हि ।

पदार्थ—(देव) हे दिव्यस्वरूप परमात्मन् ! आप (देवपानः) विद्वानों से प्रारम्भ किये हुए यज्ञ में (महे) जो सबसे बड़ा है उसमें (सोम) हे सौम्य स्वभाव परमात्मन् ! (प्सरसे) विद्वानों की तृप्ति के

लिये (पवस्व) पवित्र करे, और (रोदसी) द्युलोक और पृथिवीलोक के मध्यमें (सुष्ठाने) शोभन स्थानमें (पुनानः) हमको पवित्र करते हुए आप (समर्ये) इस संसार के युद्धरूपी क्षेत्रमें (हिताः) हितकार (कृषि) बनाएँ, (हि) क्योंकि आप (महश्चित) बड़ी से बड़ी शक्तियों को (स्मसि) अनायास से (एव) ही धारण कर रहे हो ।

भावार्थ—परमात्मा सब लोक लोकान्तरोंको अनायाससे धारण कर रहा है । उसी सर्वाधार परमात्माकी सुरक्षासे पुरुष सुरक्षितरहता है अत एव शुभ कर्म्म करते हुए एक मात्र उसीसे सुरक्षाकी प्रार्थना करनी चाहिये ।

अश्वो न क्रदो वृषभिर्युजानः
सिंहो न भीमो मनसो जवीयान् ।
अर्वाचीनैः पथिभिर्ये रजिष्ठा आ
पवस्व सौमनसं न इन्दो ॥ २८ ॥

अश्वः । न । क्रदः । वृषऽभिः । युजानः । सिंहः । न । भीमः । मनसः । जवीयान् । अर्वाचीनैः । पथिऽभिः । ये । रजिष्ठाः । आ । पवस्व । सौमनसं । नः । इंदोइति ॥

पदार्थः—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप ! (अर्वाचीनैः) भवदभिमुखंकुर्वाणैः (पथिभिः) मार्गैः (ये, रजिष्ठाः) ये सरलमार्गाः तद्द्वारा (नः) अस्मान् (सौमनसम्) संस्कृत-मनो दत्त्वा (पवस्व) पुनातु (मनसो जवीयान्) भवान् मनोवेगादप्यधिकवेगवान् (सिंहः, न) सिंह इव भयप्रदः

(अश्वः, न) विद्युदिव (क्रदः) शब्दवानस्ति (वृषभिः) योगिभिः (युजानः) संयुक्तः ।

पदार्थ—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूपपरमात्मन् ! (अर्वाचीनैः) आपके अभिमुख करनेवाले (पथिभिः) मार्गोंसे (ये) जो मार्ग (रजिष्ठाः) सरल हैं । उनके द्वारा (नः) हमको (सौमनसम्) संस्कृतमन देकर पवित्र करें, आप (मनसोजवीयान्) मनके वेगसे भी शीघ्रगामी हैं, (अर्थात) मनके पहुँचनेसे पहिले वहां विद्यमान हैं । (सिंहः) सिंहके (न) समान भयप्रद हैं, (अश्वः) विद्युत्के (न) समान (क्रदः) शब्दायमान हैं (वृषभिः) योगियोंसे (युजानः) जुड़े हुए हैं ।

भावार्थ—जो लोग परमात्मासे मनकी शुद्धिकी प्रार्थना करते हैं परमात्मा उनके मनको शुद्ध करके उन्हे शुभ बुद्धि प्रदान करता है ।

शतं धारा देवजाता असृग्रन्त्स-
हस्रमेनाः कवयो मृजन्ति ।
इन्दो सनित्रं दिव आ पवस्व
पुरएतासि महतो धनस्य ॥ २१ ॥

शतं । धाराः । देवऽजाताः । असृग्रन् । सहस्रं । एनाः । कवयः । मृजन्ति । इंदो इति । सनित्रं । दिवः । आ । पवस्व । पुरःऽएता । असि । महतः । धनस्य ॥

पदार्थः—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! भवान् (सनित्रम्) उपासनासाधनैश्वर्यम् (दिवः) द्युलोकादृत्त्वा

(आपवस्व) मां पुनातु, यतः (पुरः) प्राचीनकालादेव भवान् (महतः, धनस्य, एता, असि) महतो धनस्य दातास्ति (शतंधाराः) अनन्तब्रह्माण्डानां (असृग्रन्) उत्पाद्य धारकः (सहस्रम्) सहस्रधाविभूतयः (मृजन्ति) अलंकुर्वन्ति भवन्तम् (देवजाताः) दिव्यशक्तिसम्पन्नाः (कवयः) क्रान्तदर्शिनो विद्वांसः भवन्तम् शुद्धस्वरूपेण वर्णयन्ति ।

पदार्थ—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूपपरमात्मन ! आप (सनित्रम्) उपासनाके साधनरूप ऐश्वर्य्यको (दिवः) द्युलोकसे देकर (आपवस्व) हमको पवित्र करें, क्योंकि, (पुरः) प्राचीनकालसे ही आप (महतो धनस्य) बड़े धनों के (एता) दाता (असि) हो, आप कैसे हैं। (शतधाराः) अनन्त ब्रह्माण्डोंके (असृग्रन्) धारण करने वाले हैं। और (सहस्रम्) सहस्रों प्रकारकी (एनाः) विभूतियें (मृजन्ति) आपको अलंकृत करती हैं, (देवजाताः) दिव्यशक्तिसम्पन्न (कवयः) क्रान्तदर्शी विद्वान् तुमको शुद्ध स्वरूपसे वर्णन करते हैं ।

भावार्थ—परमात्माके ऐश्वर्य्यको सब लोक लोकान्तर वर्णन करते हैं जो कुछ यह ब्रह्माण्ड है वह परमात्माकी विभूति है अर्थात् यह सब चराचर जगत् परमात्मा के एकदेशमें स्थिर है और परमात्मा इसको अपनेमें अभिव्याप्त करके सर्वत्र परिपूर्ण हो रहा है।

दिवो न सर्गा असमृग्रमह्नां
राजा न मित्रं प्र मिनाति धीरः ।
पितुर्न पुत्रः क्रतुभिर्यतान आ
पवस्व विशे अस्या अजीतिम् ॥३०॥१६॥

दिवः । न । सर्गाः । असमृग्रं । अह्नां । राजा । न । मित्रं । प्र । मिनाति । धीरः । पितुः । न । पुत्रः । क्रतुऽभिः । यतानः । आ । पवस्व । विशे । अस्यै । अजीतिं ॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! भवान् मह्यम् (अजीतिम्) अजयभावं (पवस्व) पुनातु (दिवः न) यथा स्वर्गात् (अह्नाम्, सर्गाः) आदित्यरश्मयः (असमृग्रम्) प्रचारं लभन्ते, इत्थं परमात्मज्योतींष्यपि तेजोमयात्तस्मात् प्रचारं लभन्ते (न) यथा (धीरः, राजा) धीरस्वामी (मित्रं, न, प्रमिनाति) मित्रप्रजा न हिनस्ति एवं परमात्मापि सदाचारिणं न हिनस्ति (न) यथा च (यतानः, पुत्रः) यतमानः सुतः (क्रतुभिः) पितुः यज्ञैः पितुरैश्वर्यं वाञ्छति एवं वयमपि सत्कर्मभिर्भवदैश्वर्यं कामयामहे अतः (विशे, आपवस्य) सन्तानरूपप्रजां रक्षतु ॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! आप हमको (अजीतिम्) अजयभाव देकर (पवस्व) पवित्र करें । (दिवः) द्युलोकसे (न) जिस प्रकार (अन्हाम) आदित्यकी (सर्गाः) रश्मियें (असमृग्रम्) प्रचार पाती हैं इसी प्रकार परमात्माकी ज्योतिमें प्रकाशरूप परमात्मासे प्रचार पाती हैं । और (न) जिस प्रकार धीरः, धीर (राजा) प्रजाका स्वामी (मित्रम्) मित्ररूप प्रजाको (न प्रमिनाति) नहीं मारता इसी प्रकार परमात्मा सदाचारी लोगों को (न प्रमिनाति) नहीं मारता, और (न) जिस प्रकार (यतानः) यत्नशील (पुत्रः) पुत्र (क्रतुभिः) यज्ञोंके द्वारा (पितुः) पिताके ऐश्वर्य्य को चाहता है इसी प्रकार हम लोग आपके ऐश्वर्य्यको सत्कर्मों द्वारा चाहते हैं। इस लिये (विशे) सन्तानरूप प्रजा को (आपवस्व) आप पवित्र करें ।

भावार्थ—जो लोग परमात्मासे सन्तानोंकी शुद्धिकी प्रार्थना करते हैं परमात्मा उनकी सन्तानोंको अवश्यमेव शुद्धि प्रदान करता है ।

प्र ते धारा मधुमतीरसृग्र-
न्वारान्यत्पूतो अत्येष्यव्यान् ।
पवमान पवसे धाम गोनां
जज्ञानः सूर्यमपिन्वो अर्कैः ॥ ३१ ॥

प्र । ते । धाराः । मधुऽमतीः । असृग्रन् । वारान् । यत् । पूतः । अतिऽएर्षि । अव्यान् । पवमान । पवसे । धाम । गोनां । जज्ञानः । सूर्यं । अपिन्वः । अर्कैः ॥

पदार्थः—(पवमान) हे सर्वपावक ! भवान् (गोनाम्, धाम) सर्वज्योतिषामाश्रयः (जज्ञानः) आविर्भवन् (अर्कैः, सूर्यं, अपिन्वः) स्वकिरणैः सूर्यं पुष्णाति (ते, धाराः) भवदानन्दवीचयः (मधुमतीः) मधुराः (यत्) यदा (पूतः) स्वपवित्रभावयुक्तः (अव्यान्, अत्येषि) रक्षितव्यपदार्थान् प्राप्नोति (प्रासृग्रन्) तदा ते धाराः विविधभावान् जनयन्ति (वारान्) वरणीयपदार्थांश्च (पवसे) पवित्रयति भवान् ।

पदार्थ—(पवमान) हे सबको पवित्र करनेवाले परमात्मन् ! आप (गोनाम्) सब ज्योतियोंका (धाम) निवासस्थान है और (जज्ञानः) आप अपने अविर्भावसे (अर्कैः) किरणोंके द्वारा (सूर्यम्, सूर्यको (अपिन्वः) पुष्ट करते हैं और (ते धाराः) तुम्हारे आनन्दकी लहरें (मधुमतीः) मीठी हैं, और (यत्) जब (पूतः) अपने पवित्रभावसे

(अव्यान) रक्षायुक्त पदार्थोंको (अत्येषि) प्राप्त होते हो तब तुम्हारी उक्तधारायें (प्रासृग्रन) अनन्तप्रकारके भावोंको उत्पन्न करती हैं, और आप (वारान) वरणीय पदार्थोंको (पवसे) पवित्र करते हैं ॥

भावार्थ—इस मंत्रमें परमात्माकी ज्योतियोंका वर्णन है अर्थात् परमात्माकी दिव्य ज्योतियां सब पदार्थोंको पवित्र करती हैं।

कनिंक्रददनु पन्थांमृतस्यं
शुक्रो वि भांस्यमृतंस्य धामं ।
स इन्द्रांय पवसे मत्सरवांन्हिन्वानो
वाचं मतिभिः कवीनाम् ॥ ३२ ॥

कनिंक्रदत् । अनुं । पंथां । ऋतस्यं । शुक्रः । वि । भासि । अमृतंस्य । धामं । सः । इंद्राय । पवसे । मत्सरऽवांन् । हिन्वानः । वाचं । मतिऽभिः । कवीनां ॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (ऋतस्य, पन्थाम) सत्यस्य मार्गं (कनिक्रदत) उपदिशन् (शुक्रः, विभासि) बलस्वरूपो भवान् विराजते (अमृतस्य, धाम) मोक्षस्थानं च भवान् (सः) सपूर्वोक्तोभवान् (इन्द्राय, पवसे) कर्मयोगिनं पुनाति (मत्सरवान्) आनन्दस्वरूपः (कवीनां, वाचम) मेधाविवाणीं (मतिभिः, हिन्वानः) स्वज्ञानैः प्रेरयन् (पवसे) पावित्रयति ।

पदार्थ— हे परमात्मन् ! (ऋतस्य) सच्चाईके (पन्थाम) रास्ते-

का (कानिक्रदत्) उपदेश करते हुए (शुक्रः) बलस्वरूप आप (विभासि) प्रकाशमान हो रहे हो, तुम (अमृतस्य, धाम) अमृतके धाम हो (सः) उक्त-गुणसम्पन्न आप (इन्द्राय) कर्मयोगीको (पवसे) पवित्र करते हैं, (मत्सरवान्) आप आनन्दस्वरूप हैं, (कवीनाम्) मेधावी पुरुषोंकी (वाचम) वाणीको (मतिभिः) अपने ज्ञानों द्वारा (हिन्वानः) प्रेरणा करते हुए (पवसे) पवित्र करते हैं।

भावार्थ—जो लोग ज्ञानयोगी व कर्मयोगी हैं परमात्मा उनके उद्योगको अवश्यमेव सफल करता है ॥

दिव्यः सुपर्णोऽव चक्षि सोम
पिन्वन्धाराः कर्मणा देववीतौ ।
एन्दो विश कलशं सोमधानं
क्रन्दन्निहि सूर्यस्योप रश्मिम् ॥ ३३ ॥

दिव्यः । सुऽपर्णः । अव । चक्षि । सोम । पिन्वन् । धाराः । कर्मणा । देवऽवीतौ । आ । इंदो इति । विश । कलशं । सोमऽधानं । क्रंदन् । इहि । सूर्यस्य । उप । रश्मिं ॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! भवान् (दिव्यः) दिव्यस्वरूपः (सुपर्णः) चेतनः (अवचक्षि) मां साधूपदिशतु (सोम) हे सौम्य ! (देववीतौ) देवानां यज्ञे (कर्मणा, पिन्वन्) साधु रक्षया पोषयन् (धाराः) स्वकृपादृष्ट्या पोषयतु (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप ! भवान् (सोमधानम्) सौम्यगुणानां धारकः (कलशं,

विश) अन्तःकरणं प्रविशतु (सूर्यस्य, रश्मिम्) ज्ञानकरान् (क्रन्दन्) उपदिशन् (उप, एहि) प्राप्नोतु ॥

पदार्थः—हे परमात्मन ! आप (दिव्यः) दिव्यस्वरूप हैं (सुपर्णः) चेतन हैं (अवचाक्षि) आप हमको सदुपदेश करें, (सोम) हे सोम ! (देववीतौ) देवताओंके यज्ञमें (कर्मणा) (पिन्वन) पुष्ट करते हुए आप (धाराः) अपनी कृपामयी वृष्टिसे पुष्ट करें, (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन ! आप (सोमधानम्) सोमगुणके धारण करनेवाले (कलशम्) अन्तःकरण को (विश) प्रवेश करें । और (सूर्यस्य रश्मिम्) ज्ञानकी रश्मियोंका (क्रन्दन्) उपदेश करते हुए (उप, एहि) आकार प्राप्त हों ।

भावार्थ—इस मंत्रमें परमात्माके स्वरूपका वर्णन किया है कि परमात्मा स्वतः ज्ञानस्वरूप है अर्थात स्वतःप्रकाश है ।

तिस्रो वाचं ईरयति प्र
वह्निर्ऋतस्यं धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम् ।
गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः
सोमं यन्ति मतयो वावशानाः ॥ ३४ ॥

तिस्रः । वाचः । ईरयति । प्र । वह्निः । ऋतस्यं । धीतिं । ब्रह्मणः । मनीषां । गावः । यंति । गोऽपतिं । पृच्छमानाः । सोमं । यंति । मतयः । वावशानाः ॥

पदार्थः—(वह्निः) सर्वप्रेरकः परमात्मा (तिस्रोवाचः) त्रिप्रकारा वाणीः (प्रेरयति) प्रेरिताः करोति साच वाणी

(ऋतस्य, धीतिम) सत्यताया धारिका (ब्रह्मणः) शब्द-ब्रह्मरूपवेदानां (मनीषाम्) मनोरूपा एवंभूतां वाचं प्रेरयति (गोपतिम्) यथा तेजोधिपं सूर्यम (गावः, यन्ति) किरणाः प्राप्नुवन्ति इत्थं हि (वावशानाः) कामयमानाः (पृच्छमानाः) जिज्ञासवः (मतयः) मेधाविनः (सोमं, यान्ति) परमात्मानं प्राप्नुवन्ति ॥

पदार्थ—(वन्हिः) (वहतीति वन्हिः) सर्वप्रेरकपरमात्मा (तिस्रोवाचः) तीन प्रकारकी वाणियोंको (प्रेरयति) प्रेरणा करता है उक्तवाणी (ऋतस्य, धीतिम) सचाईका धारण करनेवाली है (ब्रह्मणः) शब्दब्रह्मरूपवेदका (मनीषाम) मनरूप है ऐसी वाणीकी उक्त परमात्मा प्रेरणा करता है, (गोपतिम) जिसतरह प्रकाशोंके पति सूर्य्यको (गावः) किरणें (यन्ति) प्राप्त होती हैं, इसीप्रकार (वावशानाः) कामनावाले जिज्ञासु (पृच्छमानाः) जिनको ज्ञानकी जिज्ञासा है । वैसे (मतयः) मेधावी लोग (सोमम) परमात्माको (यन्ति) प्राप्त होते हैं ।

भावार्थ—जो लोग अपने शील को बनाते हैं अर्थात सदाचारी बनकर परमात्मपरायण होते हैं परमात्मा उन्हें अवश्यमेव अपने ज्ञान-से प्रदीप्त करता है ।

सोमं गावो धेनवो वावशानाः
सोमं विप्रा मतिभिः पृच्छमानाः ।
सोमः सुतः पूयतेअज्यमानः
सोमे अर्कास्त्रिष्टुभः सं नवन्ते ॥ ३५ ॥ १७ ॥

सोमं । गावः । धेनवः । वावशानाः । सोमं । विप्राः ।

मतिऽभिः । पृच्छमानाः । सोमः । सुतः । पूयते । अज्यमानः ।
सोमं । अर्काः । त्रिऽस्तुभः । सं । नवंते ॥

पदार्थः—(सोमम्) उक्तपरमात्मानम् (गावोधेनवः) ज्ञानमयवाचः (वावशानाः) वाञ्छन्ति (सोमम्) तमेव परमात्मानम् (विप्राः) मेधाविजनाः (मतिभिः) ज्ञानैः (पृच्छमानाः) जिज्ञासन्ते (अज्यमानः) उपासितः (सुतः) आविर्भूतः (सोमः) परमात्मा (पूयते) साक्षात्क्रियते (सोमे) तस्मिन्परमात्मनि) (त्रिष्टुभः) कर्मोपासनाज्ञानविषयास्त्रिप्रकारा अपि वाचः (अर्काः) याश्च परमात्मनोऽर्चिकाः ताः (संनवन्ते) संगता भवन्ति ॥

पदार्थ—(सोमम) उक्तपरमात्माकी (गावो. धेनवः) ज्ञानरूपवाणियें इच्छा करती हैं, (सोमम) उक्तपरमात्माकी (विप्राः) मेधावीलोग (मतिभिः) ज्ञानो द्वारा (पृच्छमानाः) जिज्ञासा करते हैं (अज्यमानः) उपासना किया हुआ (सुतः) आविर्भावको प्राप्त हुआ (सोमः) परमात्मा (पूयते) साक्षात्कार किया जाता है (सोमे) उक्तपरमात्मामें (त्रिष्टुभः) कर्म, उपासना, ज्ञानरूप तीनों प्रकारकी वाणियें (अर्काः) जो परमात्माकी अर्चना करनेवाली हैं, वे (संनवन्ते) सङ्गत होती हैं ॥

भावार्थ—कर्म, उपासना, तथा ज्ञान तीनो प्रकारके भावोंको वर्णन करनेवाली वेदरूपी वाणियें एकमात्र परमात्मामें ही संगत होती हैं अथवा यों कहो कि जिसप्रकार सब नदियें समुद्रकी ओर प्रवाहित होती हैं इसी प्रकार वेदरूपी वाणियें परमात्मारूपी समुद्रकी शरण लेती हैं ।

एवा नः सोम परिषिच्यमानः

आ प॑वस्व पू॒यमा॑नः स्व॒स्ति ।
इन्द्र॒मा वि॑श बृह॒ता रवे॑ण
व॒र्धया॒ वाचं॑ ज॒नया॒ पुरं॑धिम् ॥ ३६ ॥

ए॒व । नः॒ । सो॒म॒ । प॒रि॒ऽसि॒च्यमा॑नः । आ । प॒व॒स्व॒ । पू॒यमा॑नः । स्व॒स्ति । इन्द्र॑म् । आ । वि॒श॒ । बृ॒ह॒ता । रवे॑ण । व॒र्धय॑ । वाच॑म् । ज॒नय॑ । पुरं॑ऽधिम् ॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (परिषिच्यमानः) उपास्यमानो भवान् (नः) अस्मान् (आपवस्व) पवित्रयतु (पूयमानः) शुद्धस्वरूपोभवान् (स्वस्ति) मङ्गलवाचा कल्याणं करोतु (इन्द्रम्) कर्मयोगिनम् (आविश) आगत्य प्रविशतु (बृहता, रवेण) महदुपदेशेन (वर्धय) तं समुन्नयतु (पुरन्धिम्) ज्ञानप्रदाम् (वाचम्) वाणीम् (जनय) तस्मिन्नुत्पादयतु ।

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन ! (परिषिच्यमानः) उपासना किये हुए आप (नः) हमको (आपवस्व) पवित्र करें, और (पूयमानः) शुद्धस्वरूप आप (स्वस्ति) मङ्गलवाणीसे हमारा कल्याण करें, और (इन्द्रम) कर्मयोगीको (आविश) आकर प्रवेश करें तथा (बृहतारवेण) बड़े उपदेशसे उसको (वर्धय) बढ़ाएं और (पुरन्धिम) ज्ञानके देनेवाली (वाचम) वाणीको (जनय) उसमें उत्पन्न करें ॥

भावार्थ—जो लोग उपासना द्वारा परमात्माके स्वरूपका साक्षातकार करते हैं परमात्मा उन्हें अवश्यमेव शुद्ध करता है ।

आ जागृविर्विप्र ऋता मतीनां
सोमः पुनानो असदच्चमूषु ।
सपन्ति यं मिथुनासो निकामा
अध्वर्यवो रथिरासः सुहस्ताः ॥ ३७ ॥

आ । जागृविः । विप्रः । ऋता । मतीनां । सोमः । पुनानः । असदत् । चमूषु । सपंन्ति । यं । मिथुनासः । निऽकामाः । अध्वर्यवः । रथिरासः । सुऽहस्ताः ॥

पदार्थः—(चमूषु) सर्वविधबलानि (पुनानः) पवित्रयन् (सोमः) सौम्यगुणः परमात्मा (मतीनाम्) मेधाविनां हृदि (आसदत्) विराजते सच (ऋता) सत्यः (विप्रः) सर्वज्ञः (जागृविः) ज्ञानस्वरूपश्चास्ति (यम्) यं परमात्मानम् (मिथुनासः) कर्मयोगिज्ञानयोगिनौ (निकामाः) यौच निष्कामकर्माणौ (अध्वर्यवः) अहिंसाव्रतं धारयन्तौ च (रथिरासः) ज्ञानशील एकः (सुहस्ताः) कर्मशीलो द्वितीयः तौ प्राप्नुतः ।

पदार्थ—(चमूषु) सब प्रकारके बलोंको (पुनानः) पवित्र करता हुआ (सोमः) सोमरूप परमात्मा (मतीनाम) मेधावीलोगोंके हृदयमें (आसदत) विराजमान होता है, वह परमात्मा (ऋता) सत्यस्वरूप है, (विप्रः) मेधावी है (जागृविः) ज्ञानस्वरूप है (यम) जिस परमात्माको (मिथुनासः) कर्मयोगी और ज्ञानयोगी (निकामाः) जो निष्कामकर्म करनेवाले हैं, और (अध्वर्यवः) अहिंसारूपी व्रतको धारण किये हुए हैं, (रथिरासः) ज्ञानी और (सुहस्ताः) कर्मशील हैं, वे प्राप्त होते हैं ।

भावार्थ—उक्त विशेषणों वाले ज्ञानयोगी और कर्मयोगी परमात्माको प्राप्त होते हैं ।

स पुनान उप सूरे न धातोभे
अप्रा रोदसी वि ष आवः ।
प्रिया चिद्यस्य प्रियसास ऊती स तू
धनं कारिणे न प्र यंसत् ॥ ३८ ॥

सः । पुनानः । उप । सूरे । न । धाता । आ । उभेइति । अप्राः । रोदसीइति । वि । सः । आवरित्यावः । प्रिया । चित् । यस्य । प्रियसासः । ऊती । सः । तु । धनं । कारिणे । न । प्र । यंसत् ॥

पदार्थः—(पुनानः) सर्वं पावयन् (सः, सोमः) सपरमात्मा (व्यावः) अज्ञानं नाशयति (न) यथा (उभे,-रोदसी) द्यावापृथिव्योर्मध्ये (सूरे) सूर्यआश्रयभूते (धाता) कालो निवसति एवंहि सर्वेलोकाः परमात्मानमाश्रित्य तिष्ठन्ति (आप्राः) सच परमात्मा सर्वत्र पूरितः (चित्) अथच (यस्य. प्रियाः) यस्य प्रेमधाराः (प्रियसासः) अत्यन्त प्रियाः (ऊती) जगद्रक्षायै प्रचारं लभन्ते (सः, सोमः) सपरमात्मा (धनम) ऐश्वर्यं मह्यं ददातु (न) यथा (कारिणः) धनस्वामी स्वभृत्याय (प्रयंसत) ददाति एवं परमात्मा मह्यमपि प्रयच्छतु ।

पदार्थ—(ससोमः) वह उक्त परमात्मा अज्ञानोंको (व्यावः) नाश करता है (न) जिस प्रकार (उभे रोदसी) द्युलोक और पृथिवी-लोकके मध्यमें (सूरे) सूर्य्यके आश्रित (धाता) कालनिवास करता है, इसी प्रकार सम्पूर्णलोक लोकान्तर परमात्माको आश्रय कर स्थिर होते हैं, इसी प्रकार परमात्मा (आप्राः) लोकलोकान्तरोंका प्रचार करता है (चित) और (सत्य) जिस परमात्माके (प्रियाः) प्रेममय धाराएं (प्रियसासः) जो अत्यन्त प्रिय हैं (ऊती) जगद्रक्षाके लिये प्रचार पाती हैं (सः) वह (सोमः) परमात्मा हमको ऐश्वर्य्य प्रदान करे (न) जैसे कि धनका स्वामी (कारिणे) अपने भृत्यके लिये (धनम) धनको (प्रयंसत) देता है इसी प्रकार परमात्मा हमको धन प्रदान करे

भावार्थ—अविद्यान्धकारको परमात्मारूपी सूर्य्य ही निवृत्त करता है भौतिकप्रकाश उस अन्धकारके निवृत्त करनेके लिये समर्थ नहीं होता।

स वर्धिता वर्धनः पूयमानः सोमो
मीढ्वाँ अभि नो ज्योतिषावीत् ।
येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञाः
स्वर्विदो अभि गा अद्रिमुष्णन् ॥ ३९ ॥

सः । वर्धिता । वर्धनः । पूयमानः । सोमः । मीढ्वान् । अभि । नः । ज्योतिषा । आवीत् । येन । नः । पूर्वे । पितरः । पदऽज्ञाः । स्वःऽविदः । अभि । गाः । अद्रिं । उष्णन् ॥

पदार्थः—(सः) परमात्मा (वार्धिता) सर्वेषां वर्धकः (वर्धनः) स्वयं च वर्धमानः (पूयमानः) शुद्धः (सोमः)

सौम्यस्वभावः (मीढ्वान्) सर्वकामनानां वर्षुकः सः (नः) अस्माकम् (ज्योतिषा) ज्ञानैः (अभ्यावीत्) रक्षां करोतु (येन) येन परमात्मना (नः, पूर्वे, पितरः) मम प्रथमसृष्टे ज्ञानिनः (पदज्ञाः) पदपदार्थज्ञानवन्तः (स्वर्विदः) स्वतन्त्र-सत्ताज्ञाः (अद्रिम्, उष्णन्) चित्तवृत्तिं निरुन्धन् (अभि, गाः) ज्ञानं लक्ष्यीकृत्य तं सोमम् उपासतेस्म तेनैव भावेन वयमपि तमुपासीमहि ॥

पदार्थ—(सः) वह परमात्मा (वर्धिता) सबको बढानेवाला है (वर्धनः) स्वयं वर्धमान है (पूयमानः) शुद्धस्वरूप है (सोमः) सौम्यस्व-भाव है, (मीढ्वान्) सबकामनाओंकी वृष्टि करता है, वह (नः) हमारी (ज्योतिषा) अपने ज्ञान द्वारा (अभ्यावीत्) रक्षा करे, और (येन) जिस परमात्मा से (नः) हमारे (पूर्वे) प्रथम सृष्टिके (पितरः) ज्ञानी लोग (पदज्ञाः) पदपदार्थके जाननेवाले (स्वर्विदः) स्वतन्त्रसत्ताके जाननेवाले (अद्रिमुष्णन्) अपनी चित्तवृत्तिका निरोध करते हुए (अभिगाः) ज्ञानको लक्ष्य बनाकर उक्त परमात्माकी उपासना करते थे उसीभावसे हम भी उक्त परमात्माकी उपासना करें ।

भावार्थ—जिसप्रकार पूर्वजलोग परमात्माकी उपासना करते थे उसीप्रकारकी उपासनाओंका विधान इस मंत्रमें किया गया है तात्पर्य्य यह है कि " सूर्य्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् " इत्यादि मंत्रोंमें जो इसे सृष्टिप्रवाहरूपसे वर्णन किया है उसी भावको यहां प्रकारान्तरसे वर्णन किया है ।

अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधर्मञ्जनयन्प्रजा भुवनस्य राजा ।

वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये
बृहत्सोमो वावृधे सुवान इन्दुः ॥ ४० ॥ १८ ॥

अक्रान् । समुद्रः । प्रथमे । विऽधर्मन् । जनयन् । प्रऽजाः । भुवनस्य । राजा । वृषा । पवित्रे । अधि । सानौ । अव्ये । बृहत् । सोमः । ववृधे । सुवानः । इन्दुः ॥

पदार्थः—(समुद्रः) सम्यग्भूतद्रवणाधारः परमात्मा (भुवनस्य) लोकस्य (राजा) स्वामी (प्रथमे, विधर्मन्) नानाधर्मवति प्रथमान्तरिक्षे (प्रजाः, जनयन्) प्रजा उत्पादयन् (अक्रान्) सर्वोपरि विराजते (इन्दुः) स प्रकाशस्वरूपः (सोमः) परमात्मा (सुवानः) सर्वस्य जनयिता (बृहत्) सर्वमहान् (वृषा) कामनाप्रदः (अव्ये, सानौ) रक्षायुक्ते ब्रह्माण्डस्य उच्चशिखरे (पवित्रे) शुद्धे (अधिवावृधे) सर्वव्यापकरूपेण विराजते ।

पदार्थ—(सम्यग्द्रवन्ति गच्छन्ति भूतानि यस्मात्स समुद्रः) परमात्मा । उससे सब भूतोंकी उत्पत्ति स्थिति और प्रलय होता है इसलिये उसका नाम समुद्र है वह (भुवनस्य) सम्पूर्ण लोकलोकान्तरोंका (राजा) स्वामी परमात्मा (प्रथमे) पहिला (विधर्मन्) जो नाना प्रकारके धर्म्मोंवाला अन्तरिक्ष है उसमें (प्रजाः) प्रजाओंको (जनयन्) उत्पन्न करता हुआ (अक्रान्) सर्वोपरि होकर विराजमान है (इन्दुः) वह प्रकाशस्वरूप परमात्मा (सुवानः) सर्वोत्पादक (सोमः) सोमगुणसम्पन्न (बृहत्) जो सब से बड़ा है, (वृषा) सब कामनाओंका देनेवाला है, वह (अव्ये)

रक्षायुक्त (पवित्रे) पवित्रे ब्रह्माण्डके (सानौ) उच्चशिखरमें (अधि-वाद्धे) सर्व व्यापकरूपसे विराजमान होरहा है ।

महत्तत्सोमो महिषश्चकारापां
यद्गर्भोऽवृणीत देवान् ।
अदधादिन्द्रे पवमान ओजो-
ऽजनयत्सूर्ये ज्योतिरिन्दुः ॥ ४१ ॥

महत् । तत् । सोमः । महिषः । चकार । अपां । यत् । गर्भः । अवृणीत । देवान् । अदधात् । इंद्रे । पवमानः । ओजः । अजनयत् । सूर्ये । ज्योतिः । इंदुः ॥

पदार्थः—(इन्दुः) स परमात्मा (सूर्ये) भौतिक सूर्ये (ज्योतिः, अजनयत्) प्रकाशमुत्पादयति (पवमानः) सर्वस्य-पावकः सः (इन्द्रे) कर्मयोगिनि (ओजः अदधात्) ज्ञानबलं दधाति (महिषः) महान् (सोमः) परमात्मा (तत्, महत्, चकार) तत् महत्कार्यं करोति (यत्) यत् कार्यं (अपाम्) वाष्परूपप्रकृतेः अंशेषु (देवान्) सूर्यादिदिव्यपदार्थानाम् (गर्भः) उत्पत्तिरूपगर्भात् (अवृणीत) व्रियतेस्म ।

पदार्थ—(इन्दुः) जो प्रकाशस्वरूपपरमात्मा (सूर्ये) भौतिक सूर्यमें (ज्योतिः) प्रकाशको (अजनयत्) उत्पन्न करता है और (पवमानः) सबको पवित्र करनवाला वह परमात्मा (इन्द्रे) कर्मयोगीके लिये (ओजः) ज्ञानप्रकाशरूपी बल (अदधात्) धारण कराता है और (महिषः) महान्

(सोमः) सोम (तत्, महत्) उस बड़े कामको (चकार) करता है (यत्) जो (अपाम्) वाष्परूपप्रकृतिके अंशोंमें (देवान्) सूर्यादिदिव्यपदार्थोंके (गर्भः) उत्पत्तिरूपगर्भसे (अवृणीत) वरण किया गया है।

भावार्थ—इस मंत्रमें परमात्माको सूर्य्यादिकोंके प्रकाशकरूपसे वर्णन किया है इसी अभिप्रायसे उपनिषद्कार ऋषियोंने परमात्माको सूर्य्यादिकोंका प्रकाशक माना है।

मत्सि॑ वा॒युमि॒ष्टये॒ राध॑से च॒
मत्सि॑ मि॒त्रावरु॑णा पू॒यमा॑नः ।
मत्सि॒ शर्धो॒ मारु॑तं॒ मत्सि॑ दे॒वान्मत्सि॒
द्यावा॑पृथि॒वी दे॑व सोम ॥ ४२ ॥

मत्सि॑ । वा॒युं । इ॒ष्टये॑ । राध॑से । च॒ । मत्सि॑ । पू॒यमानः॑ । मि॒त्रावरु॑णा । मत्सि॑ । शर्धः॑ । मारु॑तं । मत्सि॑ । दे॒वान् । मत्सि॑ । द्यावा॑ पृ॒थि॒वी इति॑ । दे॒व॒ । सो॒म ॥

पदार्थः—(पूयमानः) सशुद्धस्वरूपः परमात्मा (मित्रावरुणा) अध्यापकोपदेशकान् (राधसे) धनाय (मत्सि) उत्साहयति (वायुं, च) कर्मयोगिनं च (इष्टये) यज्ञाय (मत्सि) उत्साहयाति (मारुतम्) विद्वद्गणं (शर्धः) बलाय (मत्सि) उत्साहयाति (देवान्) विदुषः (द्यावापृथिवी) द्युलोकपृथिवीलोकयोः विद्यायै (मत्सि) उत्साहयति (देव)

हे दिव्यस्वरूप ! (सोम) परमात्मन् ! (मत्सि) एवं सर्वान् स्वोपासकान् उत्साहयसि भवान् ॥

पदार्थ—(पूयमानः) वह शुद्धस्वरूप परमात्मा (मित्रावरुणा) अध्यापक और उपदेशकको (राधसे) धनके लिये (मत्सि) उत्साहित करता है (च) और (वायुम्) कर्मयोगीको (इष्टये) यज्ञादिकर्मोंके लिये (मत्सि) उत्साहित करता है, और (मारुतम्) विद्वानोंके गणको (शर्धः) बलके लिये (मत्सि) उत्साहित करता है और (देवान्) विद्वानोंको (द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथिवीलोककी विद्याके लिये (मत्सि) उत्साहित करता है (देव) उक्त दिव्यस्वरूप (सोम) सर्वोत्पादक परमात्मन् ! आप उक्तप्रकारसे पूर्वोक्त अधिकारियोंको (मत्सि) उत्साहित करतेहैं ।

भावार्थ—परमात्मा उद्योगियोंके हृदयमें सर्वदा उत्साह उत्पन्न करता है जिसप्रकार सूर्य्य चक्षु वाले लोगोंके प्रकाशक है इसीप्रकार अन उद्योगी परमालसियोंके लिये परमात्मा उद्योगदीपक नहीं ।

ऋजुः पंवस्व वृजिनस्यं हन्ता-
पामीवां बाधमानो मृधंश्च ।
अभिश्रीणन्पयः पयंसाभि गोना-
मिन्द्रंस्य त्वं तवं वयं सखायः ॥ ४३ ॥

ऋजुः । पवस्व । वृजिनस्यं । हंता । अप । अमीवां । बाधमानः । मृधंः । च । अभिऽश्रीणन् । पयंः । पयंसा । अभि । गोनां । इंद्रस्य । त्वं । तवं । वयं । सखायः ॥

पदार्थः—(ऋजुः) सरलस्वभावोभवान् (वृजिनस्य, हन्ता) अज्ञाननाशकः (अमीवां) व्याधिं (बाधमानः) अपसारयन् (मृधः, च) दुष्टहिंसकांश्च अपसारयन् (गोनाम्) इन्द्रियाणाम् (पयसा) तर्पकवृत्त्या (पयः) ज्ञानं लक्ष्यीकृत्य (अभिश्रीणन्) भवान् लक्ष्यीक्रियते (त्वं) भवान् (इन्द्रस्य) कर्मयोगिनः मित्रमस्ति अतः (वयं, तव, सखायः) वयमपि भवतो मित्रतां वाञ्च्छामि (पवस्व) अस्मान्पुनातु भवान् ।

पदार्थ—(ऋजुः) शान्तभावसे शासन करनेवाले आप (वृजिनस्य) अज्ञानरूप वृजिन दोषके (हंता) हनन करनेवाले हैं, (अमीवां) सवप्रकारकी व्याधियोंको (अपसारय) दूर करें, (च) और (मृधः) दुष्ट हिंसकोंको (बाधमानः) दूर करते हुए आप (गोनाम्) इन्द्रियोंकी (पयसा) तृप्तिकारकवृत्तिद्वारा (पयः) ज्ञानका लक्ष्य करके (अभिश्रीणन्) आप लक्ष्य बनाए जाते हैं (त्वम्) आप (इन्द्रस्य) कर्मयोगीके मित्र हैं इसलिये (वयं, तव, सखायः) तुम्हारी मैत्री हम चाहते हैं ॥

भावार्थ—इस मन्त्रमें सब दुःखोंके दूर करनेवाले परमात्मासे दुःखनिवृत्तिकी प्रार्थना है, अर्थात् आध्यात्मिक आधिभौतिक तथा आधिदैविक उक्त तीनोंप्रकारके तापों की निवृत्ति परमात्मासे कथन की गयी है । सायणाचार्य्य ' ऋजुः पवस्व ' के अर्थ यहां सोमरसके सीधा होकर बहनेके करते हैं । अर्थात् क्षर के करते हैं सो (पूञ् पवने) धातुके सर्वत्र अयुक्त है ।

मध्वः सूदं पवस्व वस्व उत्सं वीरं
च न आ पवस्वा भगं च ।

स्वदस्वेन्द्राय पवमान इन्दो रयिं
च न आ पवस्वा समुद्रात् ॥ ४४ ॥

मध्वः । सूदं । पवस्व । वस्वः । उत्सं । वीरं । च । नः ।
आ । पवस्व । भगं । च । स्वदस्व । इंद्राय । पवमानः ।
इंदो इति । रयिं । च । नः । आ । पवस्व । समुद्रात् ॥

पदार्थः—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूपभगवन् ! भवान् (मध्वः, सूदम) माधुर्यरसान् (पवस्व) मह्यं ददातु (वस्वः) धनस्य (उत्सम्) उपयोगिनमैश्वर्यं च ददातु (वीरं, च) वीर सन्तानं च (नः) अस्मभ्यम् (आपवस्व) संप्रददातु (भगम्) विविधैश्वर्यं च ददातु (इन्द्राय) कर्मयोगिने (स्वदस्व) आनन्दं दत्त्वा (पवमानः) पवित्रयन् (रयिम्) ऐश्वर्यं (समुद्रात्) अन्तरिक्षात् (नः) अस्मभ्यम् (आपवस्व) ददातु ।

पदार्थ—(इन्दो) प्रकाशस्वरूपपरमात्मन् ! आप (मध्वः सूदम) मधुरताके रसोंको (आपवस्व) हमको दें (वस्वः) धनोंके (उत्सम) उपयोगी ऐश्वर्योंको आप हमें दें और (वीरम) वीरसन्तानोंको आप (नः) हमें (आपवस्व) दें, (च) और (भगम) सबप्रकारके ऐश्वर्य्य आप हमें दे (इन्द्राय) कर्मयोगीके लिये (स्वदस्व) आनन्द देकर (पवमानः) पवित्र करते हुए (रयिम्) सब प्रकार के ऐश्वर्योंको आप (समुद्रात) अन्तरिक्षसे (आपवस्व) हमको दें ।

भावार्थ—परमात्मा कर्मयोगी अर्थात् उद्योगी पुरुषोंपर प्रसन्न होकर उन्हें नाना प्रकारके ऐश्वर्य्य प्रदान करता है इसलिये पुरुषको चाहिये कि वह उद्योगी बनकर परमात्माके ऐश्वर्य्यका अधिकारी बने ।

सोमः सुतो धारयात्यो न हित्वा
सिन्धुर्न निम्नमभि वाज्यक्षाः ।
आ योनिं वन्यमसदत्पुनानः
समिन्दुर्गोभिरसरत्समद्भिः ॥ ४५ ॥

सोमः । सुतः । धारया । अत्यः । न । हित्वा । सिंधुः । न । निम्नं । अभि । वाजी । अक्षारिति । आ । योनिं । वन्यं । असदत् । पुनानः । सं । इंदुः । गोभिः । असरत् । सं । अत्ऽभिः ॥

पदार्थः—(सोमः) सर्वोत्पादकः (सुतः) स्वयं सिद्धः परमात्मा (धारया) स्वशक्त्या (अत्यः,न) विद्युदिव (हित्वा) गतिशीलो भवन् (सिन्धुः, न) स्यन्दनशीलानदीव (निम्नम्) अधस्तात् (वाजी) बलाधिकः (वन्यम्) भक्तियुक्तम् (योनिम्) अन्तःकरणम् (पुनानः) पावयन् (असदत्) तिष्ठति (इन्दुः) प्रकाशस्वरूपः सः (गोभिः) इन्द्रियवृत्तिभिः (सम्, अद्भिः) प्रेमप्रवाहेण अन्तःकरणसंसिञ्चनशीलाभिः (समसरत्) ज्ञानरूपेण व्याप्नोति (अभ्यक्षाः) भक्तान्रक्षति च ।

पदार्थ—सोमः सर्वोत्पादक (सुतः) स्वयंसिद्ध जो परमात्मा है वह (धारया) अपनी स्वतःसिद्ध शक्तियोंके द्वारा (अत्यः) विद्युत्के समान (सम्) भलीप्रकार (हित्वा) गतिशील होताहुआ (सिन्धुः) स्यन्दनशीलनदीके (न) समान (निम्नम्) नीचेकी ओर (वाजी) बलस्वरूप उक्त परमात्मा (वन्यम्) भक्तियुक्त (योनिम्)

अन्तःकरणरूप स्थानको (पुनानः) पवित्र करता हुआ (असदत्) स्थिर होता है, वह (इन्दुः) प्रकाशस्वरूपपरमात्मा (न)भक्तोंके प्रति (अभ्यक्षाः) रक्षा करता है (गोभिः) इन्द्रियोंकी वृत्तियों द्वारा (अद्भिः) जो प्रेमके प्रवाहसे अन्तःकरणको सिञ्चित करती हैं, उनसे (समसरत्) ज्ञानरूपसे व्याप्त होता है ।

भावार्थ—इस मंत्रमें रूपकालंकारसे यह वर्णन किया है कि परमात्मा नम्रस्वभाववाले पुरुषोंको निम्नभूमिके समान सुसिञ्चित करता है ।

एष स्य ते पवत इन्द्र सोम-
श्चमूषु धीर उशते तवस्वान् ।
स्वर्चक्षा रथिरः सत्यशुष्मः कामो
न यो देवयतामसर्जि ॥ ४६ ॥

एषः । स्यः । ते । पवते । इंद्र । सोमः । चमूषु । धीरः । उशते । तवस्वान् । स्वःऽचक्षाः । रथिरः । सत्यऽशुष्मः । कामः । न । यः । देवऽयतां । असर्जि ॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे कर्मयोगिन् ! (ते) त्वाम् (एषः, स्यः) अयं परमात्मा (पवते) पवित्रयति (यः, सोमः) यः परमात्मा (चमूषु) सर्वविधबलेषु (धीरः) स्थिरः (उशते) कामयमानाय कर्मयोगिने च (तवस्वान्) बलस्वरूपः (स्वर्चक्षाः) सुखोपदेष्टा (रथिरः) गतिशीलः

(सत्यशुष्मः) सत्यपराक्रमः (देवयताम्) देवत्वमिच्छता (कामः) कामनेव (असर्जि) उपदिष्टः ।

पदार्थ—(इन्द्र) हे कर्मयोगिन् ! (ते) तुम्हारे लिये (एषः, स्यः) वह उक्त परमात्मा (पवते) पवित्र करता है (यः) जो (सोमः) सौम्य-स्वभाव (वपुष) सब प्रकारके वर्णोंमें (धीरः) धीर है और (उशते) कान्ति-वाले कर्मयोगीके लिये (तवस्वान्) बलस्वरूप है (स्वर्चक्षाः) सुखका उपदेष्टा (रथिरः) गतिस्वरूप (सत्यशुष्मः) सत्यरूपबलवाला और (देवयताम्) देवभावकी इच्छा करनेवालोंके लिये जो (कामः) कामनाके समान (असर्जि) उपदेश किया गया ।

भावार्थ—परमात्मा ही सब कामनाओंका मूल है जो लोग ऐश्वर्य की कामनावाले हैं उनको चाहिये कि वे कर्मयोगी और उद्योगी बनकर उससे ऐश्वर्योंकी प्राप्तिके अभिलाषी बनें ।

एष प्रत्नेन वयसा पुनानस्तिरो
वर्पांसि दुहितुर्दधानः ।
वसानः शर्म त्रिवरूथमप्सु
होतेव याति समनेषु रेभन् ॥ ४७ ॥

एषः । प्रत्नेन । वयसा । पुनानः । तिरः । वर्पांसि । दुहितुः । दधानः । वसानः । शर्म । त्रिऽवरूथं । अप्ऽसु । होताऽइव । याति । समनेषु । रेभन् ॥

पदार्थः—(एषः) अयं परमात्मा (प्रत्नेन, वयसा) प्राचीनैश्वर्येण (पुनानः) पावयन् (दुहितुः) पृथिव्याः (वर्पांसि)

रूपाणि (तिरोदधानः) स्वतेजसाऽऽच्छादयन् (शर्म) सुखम् (वसानः) दधानः (त्रिवरूथम्) त्रिगुणामपि प्रकृतिम् धारयन् (अप्सु) कर्मयज्ञेषु (होता, इव) यज्ञकर्तेव (समनेषु) यज्ञेषु (रेभन्) शब्दं कुर्वन् (याति) सर्वत्र व्याप्नोति ।

पदार्थः—(एषः) उक्त परमात्मा (प्रत्नेन वयसा) प्राचीनैश्वर्यसे (पुनानः) पवित्र करता हुआ और (दुहितुः) पृथिवीके (वपूंषि) रूपोंको (तिरोदधानः) अपने तेजसे आच्छादन करता हुआ (शर्म) सुखको (वसानः) धारण करता हुआ (त्रिवरूथम) सत्वरजः तमोरूप तीनों गुणों वाली प्रकृतिको धारण करते हुए (अप्सु) कर्मयज्ञोंमें यज्ञ करने वाले (होता, इव) होताके समान (समनेषु) यज्ञोंमें (रेभन्) शब्दायमान होता हुआ परमात्मा (याति) सर्वत्र व्याप्त होरहा है ।

भावार्थ—जिस प्रकार होता अथवा उद्गातादि ऋत्विज लोग वेदोंका गायन करते हुए इस विविधरचनारूप विराटका वर्णन करते हैं इसी प्रकार परमात्मा स्वयं उद्गातारूप होकर वेदरूप गीतिके द्वारा चराचर ब्रह्माण्डों का वर्णन करता है अर्थात प्रकृतिके तीनों गुणों द्वारा इस चराचर जगत्की विविध रचनाका हेतु एक मात्र परमात्मा ही है कोई अन्य नहीं ।

नू नस्त्वं रथिरो देव सोम
परि स्रव चम्वोः पूयमानः ।
अप्सु स्वादिष्ठो मधुमाँ ऋतावा
देवो न यः सविता सत्यमन्मा ॥४८॥

नु । नः । त्वं । रथिरः । देव । सोम । परि । स्रव । चम्वोः

पूयमानः । अप्ऽसु । स्वादिष्ठः । मधुऽमान् । ऋतऽवा । देवः न । यः । सविता । सत्यऽमन्मा ।

पदार्थः—(सोम) हे सर्वोत्पादक ! (देव) दिव्यस्वरूप परमात्मन् ! (त्वम्) भवान् (रथिरः) बलस्वरूपोऽस्ति (चम्वोः) भुवनानि (पूयमानः) पावयन् (अप्सु) जलेषु (मधुमान्) मधुरं (स्वादिष्ठः) स्वादुतमम् रसम् (ऋतावा) वितरन् (देवः, न) दिव्यशक्तिरिव (नु) शीघ्रम् (नः) अस्मभ्यम् (सत्यमन्मा) सत्यस्वरूपो भवन् भवान् (परिस्रव) मदन्तःकरणे विराजताम् ।

पदार्थ—(सोम) हे सर्वोत्पादक ! (देव) दिव्यस्वरूप परमात्मन् ! (त्वम्) तुम (रथिरः) बलस्वरूप हो (चम्वोः) सब भुवनोंको (पूयमानः) पवित्रकरते हुए (अप्सु) जलोंमें (मधुमान्) मीठा (स्वादिष्ठ) स्वादुरस (ऋतावा) वितीर्ण करते हुए (देवः) दिव्यशक्तिके (न) समान (नु) शीघ्र (नः) हमारेलिये (सत्यमन्मा) सत्यस्वरूप आप हमारे अन्तःकरणमें आकर (परिस्रव) विराजमान हो ।

भावार्थ—इस मंत्रमें परमात्मामें स्वस्वामिभावकी प्रार्थनाकी गई अथवा यों कहो प्रेर्य और प्रेरकभावसे परमात्माकी उपासना की गई है ।

अभि वायुं वीत्यर्षा गृणानो३
भिमित्रावरुणा पूयमानः ।
अभि नरं धीजवनं रथेष्ठामभीन्द्रं
वृषणं वज्रबाहुम् ॥ ४९ ॥

अभि । वायुं । वीती । अर्ष । गृणानः । अभि । मित्रावरुणा । पूयमानः । अभि । नरं । धीऽजवनं । रथेऽस्थां । अभि । इंद्रं । वृषणं । वज्रऽबाहुं ॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (वायुम्) कर्मयोगिनं (वीती) तृप्तये (अभ्यर्ष) प्राप्नोतु (गृणानः) उपास्यमानश्च (मित्रावरुणा) अध्यापकोपदेशकान् (अभ्यर्ष) प्राप्नोतु (पूयमानः) पावयन् भवान् (धीजवनं, नरं) कर्मयोगिपुरुषम् (अभ्यर्ष) प्राप्नोतु (रथेष्ठाम्) कर्मगत्यां स्थितं च प्राप्नोतु (वज्रबाहुम) दृढभुजम् (वृषणम्) बलिनम् (इन्द्रम्) योधं च प्राप्नोतु ।

पदार्थ—(सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! आप (वायुम्) ज्ञानयोगीकी (वीती) तृप्तिके लिये (अभ्यर्ष) प्राप्त हों (गृणानः) उपास्यमान आप (मित्रावरुणा) अध्यापक और उपदेशकको (अभ्यर्ष) प्राप्त हों, (पूयमानः) सबको पवित्र करते हुए आप (धीजवनं, नरम्) कर्मयोगी पुरुषको (अभ्यर्ष) प्राप्त हों, (रथेष्ठाम्) जो कर्मोंकी गतिमें स्थिर है, उसको प्राप्त हों, (वज्रबाहुम्) वज्रके समान भुजाओंवाले (इन्द्रं) योद्धा पुरुषको (वृषणम्) जो बलस्वरूप है उसको प्राप्त हों ।

भावार्थ—इसमन्त्र में परमात्माकी प्राप्तिके पात्र ज्ञानयोगी कर्मयोगी और शूरवीरोंका वर्णन किया है । तात्पर्य यह है कि जो पुरुष परमात्माकी कृपाका पात्र बनना चाहे उसे स्वयं उद्योगी वा कर्मयोगी अथवा शूर वीर बनना चाहिये क्योंकि परमात्मा स्वयं बलस्वरूप है इसलिये जो बलिष्ठ पुरुष हैं उसकी कृपाका पात्र बनसकते हैं अन्य नहीं ।

अभि वस्त्रा सुवसनान्यर्षाभि

धेनूः सुदुघाः पूयमानः ।
अभि चन्द्रा भर्तवे नो
हिरण्याभ्यश्वान्रथिनो देव सोम ॥ ५० ॥ २०

अभि । वस्त्रा । सुऽवसनानि । अर्ष । अभि । धेनूः । सुऽदुघाः । पूयमानः । अभि । चन्द्रा । भर्तवे । नः । हिरण्या । अभि । अश्वान् । रथिनः । देव । सोम ॥

पदार्थः—(सोम, देव) हे दिव्यस्वरूप भगवन् ! (नः, भर्तवे) अस्मत्तृप्तये (वस्त्रा, सुवसनानि) स्वाच्छाद्यवस्त्राणि (अभ्यर्ष) प्रयच्छतु (पूयमानः) सर्वान्पावयन् (सुदुघाः, धेनूः) स्वर्थाः वाचः (अभ्यर्ष) ददातु (चन्द्रा, हिरण्या) आह्लादकधनं च (अभ्यर्ष) ददातु (रथिनः) वेगवतः (अश्वान्) वाहान् (अभ्यर्ष) मह्यं ददातु ।

पदार्थ—(सोम) हे सर्वोत्पादक (देव) दिव्यस्वरूप परमात्मन् ! तृप्तिके लिये (वस्त्रा,सुवसनानि) शोभन वस्त्र (अभ्यर्ष) दें (पूयमानः) सबको पवित्र करते हुये आप (सुदुघाः) सुन्दर अर्थों से परिपूर्ण (धेनूः) वाणियें (अभ्यर्ष) हमको दें, (चन्द्रा, हिरण्या) आल्हादक धन आप (नः) हमको (अभ्यर्ष) दें, (रथिनः) वेगवाले (अश्वान्) घोड़े (नः) हमको (अभ्यर्ष) दें ।

भावार्थ—इस मंत्रमें पुनरपि ऐश्वर्यप्राप्तिकी प्रार्थना है कि हे परमात्मन् ! आप हमको ऐश्वर्यशाली बननेके लिये ऐश्वर्य प्रदान करें पुनः पुनः ऐश्वर्यकी प्रार्थना करना अर्थपुनरुक्ति नहीं किन्तु अभ्यास अर्थात् दृढ़ता

के लिये उपदेश है जैसा कि "आत्मा वारे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः" इत्यादिकोंमें बार २ चित्तवृत्तिका लगाना परमात्मामें कथन किया गया है इसी प्रकार यहां भी दृढ़ताके लिये उसी अर्थ का पुनः २ कथन है जो अज्ञानियोंको वेदमें पुनरुक्ति दोष प्रतीत होता है वेदमें पुनरुक्ति दोष नहीं यह केवल अज्ञानियोंकी भ्रान्ति है ।

अभी नो अर्ष दि॒व्या वसू॒न्यभि
विश्वा॒ पार्थिवा पू॒यमा॑नः ।
अभि येन॒ द्रवि॑णम॒श्नवा॑मा॒भ्यार्षे॒यं
जमदग्निवन्नः ॥ ५१ ॥

अभि । नः । अर्ष । दि॒व्या । वसू॑नि । अभि । विश्वा॑ । पार्थिवा । पू॒यमा॑नः । अ॒भि । येन॑ । द्रवि॑णं । अ॒श्नवा॑म । अ॒भि । आर्षे॒यं । ज॒मद॒ग्नि॒ऽवत् । नः ॥

पदार्थः—(सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (पूयमानः) शुद्धस्वरूपो भवान् (दिव्या, वसूनि) दिव्यधनानि (नः अभ्यर्ष) अस्मभ्यं ददातु (विश्वा, पार्थिवा) सर्वान्पार्थिवपदार्थान् (नः) अस्मभ्यं (अभि) ददातु (जमदग्निवत्) चक्षुषः दिव्यदृष्टिरिव (येन) येन सामर्थ्येन (आर्षेयम्) ऋषियोग्यम् (द्रविणं) धनम् (अश्नवाम) भुञ्जीमहि तत्सामर्थ्यम् (नः) अस्मभ्यं प्रयच्छतु ।

पदार्थ—(सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (पूयमानः) शुद्धस्वरूप आप (दिव्या, वसूनि) दिव्यधन (नः) हमें (अभ्यर्ष) दें. (विश्वा,

पार्थिवा) सम्पूर्ण पृथिवी सम्बन्धी धन आप (नः) हमें दें (जमदग्निवत्) चक्षुकी दिव्य दृष्टिके समान (येन) जिस सामर्थ्यसे हम (आर्षेयम्) ऋषियों के योग्य (द्रविणम्) धनको (अश्नवाम) भोग सकें वह सामर्थ्य आप (नः) हम को दें ।

भावार्थ—इस मंत्र में परमात्मासे भोक्तृत्वशक्तिकी प्रार्थनाकी गई है तात्पर्य यह है कि जो पुरुष स्वामी होकर ऐश्वर्य्योंको भोग सकता है वही ऐश्वर्य्यसम्पन्न कहलाता है अन्य नहीं इसी अभिप्रायसे उपनिषदोंमें अन्नाद अर्थात् ऐश्वर्य्योंके भोक्ता होने की प्रार्थना की गई है ।

अया पवा पवस्वैना वसूंनि
मांश्चत्व इन्दो सरसि प्र धन्व ।
ब्रध्नश्चिदत्र वातो न जूतः
पुरुमेधश्चित्तकवे नरं दात् ॥ ५२ ॥

अया । पवा । पवस्व । एना । वसूनि । मांश्चत्वे । इन्दो इति । सरसि । प्र । धन्व । ब्रध्नः । चित् । अत्र । वातः । न । जूतः । पुरुऽमेधः । चित् । तकवे । नरं । दात् ॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (अया, पवा, पवस्व) अनया पाविकया वृष्ट्या मां पुनातु. (एना, वसूनि) इमानि-धनानि च ददातु (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप ! (मांश्चत्वे, सरसि) वाण्याः समुद्रे मां (प्रधन्व) प्रेरयतु ततश्च सपत्कृवि-त्वंनिष्पादयतु (वातः, न) कर्मयोगिनमिव (जूतः) गतिशीलं कुर्वन् (अत्र) उक्तज्ञान विषये (ब्रध्नः) प्रामाणिकम् (चित्)

तथा (पुरुमेधः) बहुबुद्धिम् सम्पादयतु (चित) तथा (तकवे) संसारगतौ (नरम्) कर्मयोगिनम् सन्तानम् (दात्) ददातु मह्यम् ।

पदार्थ—(सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (अया) इस (पवा) पवित्र करनेवाली वृष्टिसे (पवस्व) आप हमको पवित्र करें (एना) यह (वसूनि) धन आप हमको दें, (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (माँश्चत्वे, सरसि) वाणीके समुद्रमें आप हमको (प्रधन्व) प्रेरणा करके स्नातक बनाएं, और (वातः) कर्मयोगीके (न) समान (जूतः) गतिशील बनाते हुए आप (अत्र) उक्त विज्ञान विषयमें (ब्रध्नः) प्रामाणिक (चित) और (पुरुमेधः) बहुत बुद्धिवाला बनाएं (चित्) और (तकवे) संसारकी गतिमें (नरम) कर्मयोगी सन्तान (दात्) मुझे दें ।

भावार्थ—जो लोग उक्त प्रकारसे शक्तिसम्पन्न होनेकी ईश्वर से प्रार्थना करते हैं परमात्मा उन्हें अवश्यमेव ऐश्वर्य्यसम्पन्न बनाता है ।

उत नं एना पंवया पंवस्वाधि
श्रुते श्रवाय्यंस्य तीर्थे ।
षष्टिं सहस्रां नैगुतो वसूंनि वृक्षं
न पक्वं धूनवद्रणांय ॥ ५३ ॥

उत । नः । एना । पवया । पवस्व । अधि । श्रुते । श्रवाय्यस्य । तीर्थे । षष्टिं । सहस्रां । नैगुतः । वसूंनि । वृक्षं । न । पक्वं । धूनवत् । रणांय ।

पदार्थः—(उत) तथा च (एना, पवया) अनया पवित्रदृष्ट्या (श्रवाय्यस्य) श्रवणयोग्ये (तीर्थे) तीर्थस्वरूपे (श्रुते) श्रवणे विषये (अधिपवस्व) अत्यन्तं पावयतु माम् येनाहम् (नैगुतः) शत्रोः (षष्टिं, सहस्रा, वसूनि) असंख्यात-धनान्यपहरन् (पक्वम्, वृक्षम्, न) पक्ववृक्षमिव (रणाय) युद्धस्थले (धूनवत्) शत्रूंश्चलयन् संसारे विहराणि ।

पदार्थ—(उत) और (एना) इस (पवया) पवित्रदृष्टिसे (श्रवाय्यस्य) जो सबके सुननेके योग्य (श्रुते) श्रवण हैं और (तीर्थे) तीर्थस्वरूप है उसमें (अधि) अत्यन्त (पवस्व) आप हमको पवित्र करें ताकि, हम (नैगुतः) शत्रुओंके (षष्टि, सहस्रा, वसूनि) असंख्यातधनोंको हरण करते हुए (पक्वम्) पके हुए (वृक्षम्) वृक्षके (न) समान (रणाय) रणके लिये (धूनवत्) उनको कँपाते हुए संसारमें यात्रा करें ॥

भावार्थ—जो लोग उक्त प्रकारसे कर्मयोगी वा उद्योगी बनते हैं परमात्मा उन्हें अवश्यमेव अविद्यारूपी शत्रुओंके हनन करनेका सामर्थ्य देता है ॥

महीमे अस्य वृषनाम शूषे
मांश्चत्वे वा पृशने वा वधत्रे ।
अस्वापयन्निगुतः स्नेहयच्चा-
पामित्राँ अपाचितो अचेतः ॥ ५४ ॥

महि । इमे इति । अस्य । वृषनाम । शूषे इति । माँश्चत्वे । वा । पृशने । वा । वधत्रे इति । अस्वापयत् । निऽगुतः ।

स्नेहयंत् । च । अपं । अमित्रान् । अपं । अचितः । अच । इतः ॥

पदार्थः—(वधत्रे) वधक्रिये (पृशने) युद्धे (माश्चत्वे) गतिशीलशक्त्युपयोगवति (महि) महति (इमे, वृषनाम) इमे द्वे कार्ये (अस्य) अस्य परमात्मनः (शूषे) सुखप्रदे स्तः (निगुतः) शत्रूणाम् (अस्वापयत) स्वापनम् (च) तथा (अपमित्रान्) अमित्रेभ्यः (स्नेहयत) स्नेह प्रदानमिति (अचितः) परमात्मभक्तिहीनानां नास्तिकाना (इतः) अस्मादास्तिकसमवायात् (अपाच) अपसारणं च ॥

पदार्थ—(वधत्रे) वध करनेवाले (पृशने) युद्धमें (माँश्चत्वे) जिनमें गतिशीलशक्तियोंका उपयोग किया जाता है उनमें (महि) बड़े (इमे) यह (अस्य) इस परमात्माके (वृषनाम) दो काम (शूषे) सुखकर हैं (निगुतः) शत्रुओंको (अस्वापयत्) सुलादेना (च) और (अपमित्रान्) अमित्रोंको (स्नेहयत्) स्नेह प्रदान करना (वा) और (अचितः) जो लोग परमात्माकी भक्ति नहीं करते अर्थात् नास्तिक हैं, उनको (इतः) इस आस्तिक समाजसे (अपाच) दूर करना ।

भावार्थ—इस मंत्रमें आस्तिकधर्मके प्रचार करनेके लिये अर्थात् वैदिक धर्मकी शिक्षाओंके लिये तेजस्वी भावोंका वर्णन किया है ।

सं त्री पवित्रा वितंतान्ये-
ष्यन्वेकं धावसि पूयमानः ।
असि भगो असिं दात्रस्यं दातासिं
मघवा मघवंद्भ्य इन्दो ॥ ५५ ॥ २१ ॥

सं । त्री । पवित्रा । विऽततानि । एषि । अनु । एकं । धावसि । पूयमानः । असि । भगः । असि । दात्रस्य । दाता । असि । मघऽवा । मघवत्ऽभ्यः । इंदो इति ॥

पदार्थः—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! भवान् (त्री) त्रीन् (विततानि, पवित्रा) विस्तृतपदार्थान् (समेषि) सम्यक् प्राप्तः (पूयमानः) भवान् पावयंश्च (अन्वेकम्) प्रतिपदार्थम् (धावसि) गतिरूपेण विराजते च (भगः, असि) ऐश्वर्य्यरूपश्चास्ति (दात्रस्य) धनस्य (दाता, असि) दाताऽपि अस्ति यतो भवान् (मघवद्भ्यः) सर्वधनिकेभ्यः (मघवा) धनिकतमोऽस्ति ।

पदार्थ—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूपपरमात्मन् ! आप (त्री) तीन (विततानि) विस्तृत (पवित्रा) पवित्र पदार्थोंको (सम्) भली प्रकार (एषि) प्राप्त हैं, और (पूयमानः) सबको पवित्र करते हुए (अन्वेकम्) प्रत्येकपदार्थमें (धावसि) गतिरूपसे विराजमान हैं (भगः) आप ऐश्वर्य्यस्वरूप (असि) हैं, (दात्रस्य) धनके (दाता) देनेवाले (असि) हैं, क्योंकि, आप (मघवद्भ्यः) सम्पूर्ण धनिकोंसे (मघवा) धनी हैं. ।

भावार्थ—परमात्मा सब ऐश्वर्य्योंका स्वामी है और सब धनिकोंसे धनी हैं इसलिये उसीकी कृपासे सब ऐश्वर्य्योंकी प्राप्ति होती है अन्यथा नहीं ।

एष विश्ववित्पवते मनीषी
सोमो विश्वस्य भुवनस्य राजा ।

द्रप्साँ ईरयन्विदथेष्विन्दुर्वि
वारमव्यं समयाति याति ॥५६ ॥

एषः । विश्वऽवित । पवते । मनीषी । सोमः । विश्वस्य । भुवनस्य । राजा । द्रप्सान् । ईरयन् । विदथेषु । इन्दुः । वि । वारं । अव्यं । सम्ऽया । अति । याति ॥

पदार्थः—(एषः) अयं परमात्मा (विश्ववित) सर्वज्ञः (पवते) पुनाति च सर्वान् (मनीषी) सूक्ष्मतरशक्तिप्रेरकः (सोमः) सर्वोत्पादकः सः (विश्वस्य, भुवनस्य) अखिल लोकानाम् (राजा) प्रकाशकः (इन्दुः) प्रकाशमयः सः (विदथेषु) ज्ञानवद्यज्ञेषु (द्रप्सान्) ज्ञानानि (ईरयन्) प्रेरयन् (अव्यम्) रक्षार्हम् (वारम्) वरणीयम् पुरुषम् (समयाति, याति) अत्यन्तान्तिकं प्राप्नोति ।

पदार्थ—(एषः) उक्तपरमात्मा (विश्ववित) सर्वज्ञ है (पवते) सबको पवित्र करनेवाला है, (मनीषी) सूक्ष्मसे सूक्ष्म शक्तियोंका प्रेरक है, (सोमः) वह सर्वोत्पादकपरमात्मा (विश्वस्य) सम्पूर्ण (भुवनस्य) लोकोंका (राजा) प्रकाशक है (इन्दुः) वह प्रकाशस्वरूप परमात्मा (विदथेषु) ज्ञानयज्ञोंमें (द्रप्सान) ज्ञानोंकी (ईरयन) प्रेरणा करता हुआ (अव्यम्) रक्षायोग्य (वारम्) वरणीय पुरुषको (समयाति, याति) अतिसंनिहित प्राप्त होता है ।

भावार्थ—जो परमात्मज्ञानके अधिकारी हैं परमात्मा उन्हींको प्राप्त होता है अन्योंको नहीं ।

इन्दुं रिहन्ति महिषा अदब्धाः
पदे रेभन्ति कवयो न गृध्राः ।
हिन्वन्ति धीरा दशभिः क्षिपाभिः
समञ्जते रूपमपां रसेन ॥ ५७ ॥

इंदुं । रिहंति । महिषा । अदब्धाः । पदे । रेभंति । कवयः । न । गृध्राः । हिन्वन्ति । धीराः । दशऽभिः । क्षिपाभिः । सं । अंजते । रूपं । अपां । रसेन ॥

पदार्थः—(इन्दुम्) उक्तपरमात्मानम् (अदब्धाः) दृढप्रतिज्ञाः (महिषाः) सद्गुणप्रभावेण महापुरुषाः (रिहन्ति) लभन्ते (न, गृध्राः) निष्कामकर्मिणः (कवयः) विद्वांसः (पदे) ज्ञानयज्ञवेद्याम् (रेभन्ति) यथा शब्दायन्ते (धीराः) धीरजनाः (दशभिः, क्षिपाभिः) दशभिः प्राणगतिभिः (अपां,- रसेन) सत्कर्मणा परिपाकेन (रूपम्) परमात्मस्वरूपम् (समञ्जते) साक्षात्कुर्वन्ति ।

पदार्थ—(इन्दुम्) प्रकाशस्वरूप परमात्माको (अदब्धाः) दृढ़प्रतिज्ञावाले (महिषाः) जो सद्गुणोंके प्रभावसे महापुरुष हैं, वे (रिहंति) प्राप्त होते हैं, (न, गृध्राः) निष्कामकर्मी (कवयः) विद्वान् (पदे) ज्ञानरूपीयज्ञकी वेदीमें (रेभन्ति) जैसे शब्दायमान होते हैं, (धीराः) धीरलोग (दशभिः) दश (क्षिपाभिः) प्राणोंकी गतिसे (अपाम्) सत्कर्मोंके (रसेन) परिपाकसे (रूपम्) उक्त परमात्माके स्वरूपको (समञ्जते) साक्षात्कार करते हैं ।

भावार्थ—इस मंत्रमें प्राणायामके द्वारा परमात्माकी प्राप्तिका वर्णन किया है ।

त्वया॑ व॒यं पव॑मानेन सोम
भरे॑ कृ॒तं वि चि॑नुयाम शश्व॑त् ।
तन्नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो मामहन्तामदि॑-
तिः सिन्धुः॑ पृथि॒वी उ॒तद्यौः ॥ ५८ ॥ २२ ॥

त्वया॑ । व॒यं । पव॑मानेन । सोम॑ । भरे॑ । कृ॒तं । वि । चि॒नु॒-याम॑ । शश्व॑त् । तत् । नः॒ । मि॒त्रः । वरु॑णः । म॒म॒ह॒न्तां । अदि॑तिः । सिन्धुः॑ । पृ॒थि॒वी । उ॒त । द्यौः ॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (पवमानेन, त्वया) सर्वपावकेन भवता सहायेन (वयम्, भरे) वयमज्ञानवृत्तिनाशकसंग्रामे (शश्वत्) सदैव (कृतम्) सत्कर्म (विचिनुयाम) संचितम् करवाम (तत्) तस्मात् (मित्रः, वरुणः) अध्यापकः उपदेशकश्च (अदितिः) अज्ञाननाशको विद्वान् (सिन्धुः) समुद्रः (पृथिवी) भूः (उत, द्यौः) तथा द्युलोकः एते सर्वेऽपि (ममहंताम्) मदनुकूलाः सन्तः मां समुन्नयन्तु ।

पदार्थ—(सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन ! (पवमानेन) पवित्र करनेवाले (त्वया) आपकी सहायतासे (वयम) हमलोग (भरे) अज्ञानकी वृत्तियोंको नाश करनेवाले सङ्ग्राममें (कृतम) सत्कर्मोंका (शश्वत्) निरन्तर (विचिनुयाम) संग्रह करें, (तत) इसलिये (मित्रः,

वरुणः) अध्यापक और उपदेशक, (अदितिः) अज्ञानके खण्डन करनेवाला विद्वान् (सिन्धुः) समुद्र (पृथिवी) पृथिवी (उत) और (द्यौः) द्युलोक ये सब पदार्थ (ममहंताम्) मेरे अनुकूल होकर मुझे पूज्य बनाएं ।

भावार्थ—जो लोग सदाचारी अध्यापकों वा उपदेशकों द्वारा परमात्मज्ञानकी शिक्षा पाते हैं वे अवश्यमेव अज्ञानको नाश करके ज्ञानरूपी प्रदीपसे प्रदीप्त होते हैं ।

॥ इति सप्तनवतितमं सूक्तं द्वाविंशो वर्गश्च समाप्तः ॥

अथ द्वादशर्चस्य अष्टनवतितमस्य सूक्तस्य—

॥ ९८ ॥१—१२ अम्बरीष ऋजिष्वा च ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४, ७, १० अनुष्टुप् ३, ५, ९ निचृदनुष्टुप् । ६, १२ विराडनुष्टुप् । ८ आर्ची स्वराडनुष्टुप् । ११ निचृद्बृहती ॥ स्वरः—१—१०, १२ गान्धारः । ११ मध्यमः ॥

अभि नों वाजसातमं
रयिमर्ष पुरुस्पृहम् ।
इन्दो सहस्रभर्णसं
तुविद्युम्नं विभ्वासहम् ॥ १ ॥

अभि । नः । वाजऽसातमं । रयिं । अर्ष । पुरुऽस्पृहं ।
इंदो इति । सहस्रऽभर्णसं । तुविऽद्युम्नं । विभ्वऽसहं ॥

पदार्थः—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप ! (सहस्रभर्णसम) अनेकप्रकारैः पोषकम् (पुरुस्पृहम्) सर्वप्रार्थितम् (वाजसातमम्) अनेकविधबलप्रदम (रयिम्) धनम् (नः) अस्मभ्यम् (अभ्यर्ष) प्रददातु (तुविद्युम्नम्) बहुविधयशःप्रदं च यत्स्यात् यच्च (विभ्वसहम) सर्वविरुद्धशक्तिरोधकं च स्यात् ।

पदार्थ—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूपपरमात्मन ! (सहस्रभर्णसम) अनेकप्रकारका पालन पोषण करनेवाला (पुरुस्पृहम) जो सबको अभिलषित है (वाजसातमम) जो अनन्त प्रकारके बलोंका देनेवाला है, (रयिम) ऐसे धनको (नः) हमारे लिये (अभ्यर्ष) आप दें, (तुविद्युम्नम) जो अनन्तप्रकारके यशोंका देनेवाला और (विभ्वसहम) सबतरहकी प्रतिकूल शक्तियोंको दबादेनेवाला है, इस प्रकारका धन आप दें ।

भावार्थ—इस मंत्रमें अक्षय धनकी प्राप्तिका वर्णन है ।

परि ष्य सुवानो अव्ययं
रथे न वर्माव्यत ।
इन्दुरभि द्रुणा हितो
हियानो धाराभिरक्षाः ॥ २ ॥

परि । स्यः । सुवानः । अव्ययं । रथे । न । वर्म । अव्यत । इंदुः । अभि । द्रुणा । हितः । हियानः । धाराभिः । अक्षारिति ॥

पदार्थः—(स्यः) सः (सुवानः) सर्वोत्पादकः परमात्मा (अव्ययम्) सुरक्षितजनम् (धाराभिः) स्वकृपावृष्ट्या (अक्षाः) रक्षति (न) यथा (रथे) कर्मयोगवर्तिपुरुषं (वर्म, पर्यव्यत) कर्मयोगो रक्षति (इन्दुः) प्रकाशस्वरूपः सः (अभिद्रुणा) उपासनयायुक्तः (हियानः) ज्ञानस्वरूपः (हितः) अन्तःकरणे प्रवेशितः मनुष्यबुद्धिं रक्षति ।

पदार्थ—(स्यः) वह पूर्वोक्त (सुवानः) सर्वोत्पादक परमात्मा (अव्ययम) रक्षायुक्त पुरुषको (धाराभिः) अपनी कृपामयी वृष्टिसे (अक्षाः) रक्षा करता है (न) जैसे कि, (रथे) कर्मयोगमें स्थित विद्वान् को (वर्म) कर्मयोग (पर्य्यव्यत) सब ओर से रक्षा करता है (इन्दुः) वह प्रकाशस्वरूपपरमात्मा (अभिद्रुणा) उपासना किया हुआ और (हियानः) ज्ञानस्वरूप (हितः) साक्षात्कार किया हुआ मनुष्यकी बुद्धिकी रक्षा करता है ॥

भावार्थ—परमात्माका साक्षात्कार मनुष्यको सर्वथा सुरक्षित करता है ।

परि ष्य सुवानो अक्षा
इन्दुरव्ये मदच्युतः ।
धारा य ऊर्ध्वो अध्वरे
भ्राजा नैति गव्ययुः ॥ ३ ॥

परि । स्यः । सुवानः । अक्षारिति । इंदुः । अव्ये । मदऽच्युतः । धारा । यः । ऊर्ध्वः । अध्वरे । भ्राजा । न ।

एति । गव्युः ॥

पदार्थः—(इन्दुः) परमात्मा (मदच्युतः) आनन्दमयः (अव्ये) रक्षणीये सदाचार्यन्तःकरणे (पर्यक्षाः) स्वज्ञानं स्यन्दयति (स्यः) सः (ऊर्ध्वः) सर्वोपरिवर्तमानः परमात्मा (यः) यः [अध्वरे] अहिंसाप्रधाने यज्ञे [धारा] स्वानन्द-वृष्ट्या [न] यथा [भ्राजा] दीप्तिः स्वप्रकाश्यपदार्थेषु प्रविशति तथा [गव्युः] ज्ञानमयः परमात्मा [एति] स्वसत्तया सर्वं व्याप्नोति ।

पदार्थ—(इन्दुः) प्रकाशस्वरूपपरमात्मा (मदच्युतः) जो आनन्दमय है वह (अव्ये) रक्षायोग्य सत्कर्मी पुरुषके अन्तःकरणमें (पर्य्यक्षाः) अपना ज्ञानप्रवाह वहाता है, (स्यः) वह (ऊर्ध्वः) सर्वोपरि विराजमान परमात्मा (यः) जो (अध्वरे) अहिंसाप्रधानयज्ञोंमें (धारा) अपनी आनन्दमयीवृष्टिसे (न) जैसे कि, (भ्राजा) दीप्ति अपने प्रकाश्यपदार्थोंमें दीप्ति डालती है इसी प्रकार (गव्युः) ज्ञानस्वरूपपरमात्मा (सुवानः)जो सर्वोत्पादक है (एति) वह अपनी व्यापकसत्तासे सर्वत्र व्याप्त है ।

भावार्थ—परमात्मा विद्युतकी दीप्तिके समान सर्वत्र परिपूर्ण है ।

स हि त्वं देव शश्वते
वसु मर्ताय दाशुषे ।
इन्दो सहस्रिणं रयिं
शतात्मानं विवाससि ॥ ४ ॥

सः । हि । त्वं । देव । शश्वते । वसु । मर्ताय । दाशुषे ।

इंदो इति। सहस्रिणं। रयिं। शतऽआत्मानं। विवासासि॥

पदार्थः—(देव) हे दिव्यस्वरूप! (सः, त्वम्) सभवान् (मर्ताय, दाशुषे) स्वसेवकजनाय (शाश्वते) शाश्वत्कर्मयोगिने (सहस्रिणं, वसु) विविधं धनं (शतात्मानम्, रयिम) अनेकधा ऐश्वर्यम् (इन्दो) हे परमात्मन्! (विवासासि) ददातु भवान्।

पदार्थ—(देव) हे दिव्यस्वरूपपरमात्मन्! (स, त्वम्) पूर्वोक्त आप (मर्ताय, दाशुषे) जो आपकी उपासनामें लगा हुआ पुरुष है (शाश्वते) निरन्तर कर्मयोगी है उसके लिये (वसु) धन (सहस्रिणम्) जो अनन्त प्रकारके ऐश्वर्योंवाला है (शतात्मानम्) जिसमें अनन्तप्रकारके बल हैं (रयिम) ऐसे धनको (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूपपरमात्मन्! (विवासासि) आप प्रदान करें।

भावार्थ—सामर्थ्य युक्त पुरुषको परमात्मा ऐश्वर्य प्रदानकरता है इसलिये ऐश्वर्यसम्पन्न होना परमावश्यक है।

वयं ते अस्य वृत्रह-
न्वसो वस्वः पुरुस्पृहः।
नि नेदिष्ठतमा इषः
स्याम सुम्नस्याध्रिगो॥ ५॥

वयं। ते। अस्य। वृत्रऽहन्। वसोइति। वस्वः। पुरुऽस्पृहः। नि। नेदिष्ठऽतमाः। इषः। स्याम। सुम्नस्य। अध्रिगो इत्यध्रिऽगो।

पदार्थः—(वृत्रहन्) हे अविद्यान्तकपरमात्मन् ! (वयम्) वयं सर्वे (अस्य, ते) तववशे (स्याम) भवेम (वसो) हे सर्वाश्रय ! (वस्वः) सर्वविधैश्वर्याधिपो भवान् (पुरुस्पृहः) अनेकजनकाम्यः (निनेदिष्ठतमाः) सर्वसंनिकट-वर्ती च (अध्रिगो) हे ज्ञानगमनपरमात्मन् ! भवान् (इषः) ऐश्वर्यस्य (सुम्नस्य) सुखस्य च भोक्तास्ति ।

पदार्थ—(वृत्रहन्) हे अविद्याविनाशकपरमात्मन् ! (यद्-वृणोत्तद्वृत्रमज्ञानम) नि० । २ । १८ । (वयम्) हम (अस्यते) आपके (स्याम) वशवर्त्ती हों (वसो) हे सर्वाधारपरमात्मन् ! (वस्वः) आप सब प्रकारके ऐश्वर्य्योंके स्वामी हैं, (पुरुस्पृहः) सबके उपास्यदेव हैं (नि. नेदिष्ठतमा.) आप सर्वान्तर्यामी हैं, (अध्रिगो) हे ज्ञानगमनपरमात्मन ! आप (इषः) ऐश्वर्य्योंके और (सुम्नस्य) सुखके भोक्ता हो ।

भावार्थ—परमात्माकी उपासना द्वारा मनुष्य अविद्याको नाश करके विद्याका प्रकाश करता है ।

द्विर्यं प॒ञ्च स्वय॑शसं॒
स्वसा॑रो॒ अद्रि॑संहतम् ।
प्रि॒यमिन्द्र॑स्य॒ काम्यं॑
प्र॒स्ना॒पय॑न्त्यू॒र्मिण॑म् ॥ ६ ॥

द्विः । यं । पंच । स्वऽयंशसं । स्वसा॑रः । अद्रि॑ऽसंहतं । प्रि॒यं । इंद्रस्य । काम्यं॑ । प्र॒ऽस्ना॒पयंति । ऊ॒र्मिणं ॥

पदार्थः—(यम्, ऊर्मिणम्) यं ज्ञानस्वरूपं परमात्मानम् (द्विः, पञ्च) दश (स्वसारः) इन्द्रियवृत्तयः अथवा दश प्राणाः (प्रस्नापयन्ति) साक्षात्कुर्वन्ति (स्वयशसम्) यस्य च स्वाभाविको यशः (अद्रिसंहतम्) यश्च ज्ञानरूपचित्तवृत्ति-विषयः (इन्द्रस्य, प्रियम्) कर्मयोगिनः प्रियश्च यः (काम्यम्) कमनीयोऽस्ति च ।

पदार्थ—(यम, ऊर्मिणम) जो ज्ञानस्वरूप है तिस परमात्माको (द्विः, पञ्च) दश (स्वसारः) इन्द्रियवृत्तियें अथवा दश प्राण (प्रस्नापयन्ति) साक्षात्कार करते हैं (स्वयशसम) जिसका स्वाभाविक यश है (अद्रिसंहतम) जो ज्ञानरूपी चित्तवृत्तिका विषय है (इन्द्रस्य, प्रियम) और जो कर्मयोगीका प्रिय है (काम्यम) कमनीय है ॥

भावार्थ—इस मंत्रमें प्राणायामादिविद्या द्वारा अथवा यों कहो कि चित्तवृत्तियों द्वारा परमात्माके साक्षात्कारका वर्णन किया है ।

परि त्यं हर्यतं हरिं
बभ्रुं पुनन्ति वारेण ।
यो देवान्विश्वाँ इत्परि
मदेन सह गच्छति ॥ ७ ॥

परि । त्यं । हर्यतं । हरिं । बभ्रुं । पुनंति । वारेण । यः । देवान् । विश्वान् । इत् । परि । मदेन । सह । गच्छंति ॥

पदार्थः—(त्यम्) उक्तपरमात्मानं (हरिम्) सृष्टेर्लयादिकर्तारं (हर्यतम्) सर्वप्रियम् (बभ्रुम्) ज्ञानस्वरूपं (वा-

रेण) वरणीयतमपदार्थैर्नोपासते (यः) यश्च (विश्वान्, देवान्) सर्वविदुषः (इत्) हि (मदेन) आनन्देन (सह) साकम् (परिपुनन्ति) परितः पावयति (परिगच्छति) सर्वत्र व्याप्नोति च ॥

पदार्थ—(सम) उक्त परमात्मा (हरिम्) जो अनन्तप्रकारकी सृष्टिका उत्पत्तिस्थिति लय करता है (हर्यतम्) जो सर्व प्रिय है (बभ्रुम्) ज्ञानस्वरूप है (वारेण) वरणीयसे वरणीय पदार्थों द्वारा जिसकी उपासना करते हैं और (यः) जो (विश्वान्,) सब (देवान्) विद्वानोंको (इत्) ही (मदेन) परमानन्दके (सह) साथ (परिपुनन्ति) पवित्र करता है (परिगच्छति) वह सर्वत्र प्राप्त है ।

भावार्थ— इस मन्त्र में परमात्मा का स्वातन्त्र्य वर्णन किया है ।

अस्य वो ह्यवसा पान्तो दक्षसाधनम् ।
यः सूरिषु श्रवो बृहद्दधे स्व१र्ण हर्यतः ॥ ८ ॥

अस्य । वः । हि । अवसा । पान्तः । दक्षऽसाधनं । यः । सूरिषु । श्रवः । बृहत् । दधे । स्वः । न । हर्यतः ॥

पदार्थः—(यः सूरिषु) यश्च परमात्मा कर्मयोगिषु (बृहत्) महत् (श्रवः) ऐश्वर्यम् (दधे) धारयति (अस्य, अवसा) अस्य परमात्मनो रक्षया (वः) यूयम् (पान्तः) आनन्दपानं कुरुत य आनन्दः (दक्षसाधनम्) सर्वविधचातुर्यमूलम् (स्वः,

न) सूर्यस्य इव (हर्यतः) अज्ञाननाशकस्य परमात्मनो-निसर्गगुणश्च ।

पदार्थ—(यः) जो परमात्मा (सूरिषु) कर्मयोगियोंमें (बृहत्) बड़े (श्रवः) ऐश्वर्य्यको (दधे) धारण करता है (हि) क्योंकि (अस्य) उक्तपरमात्माकी (अवसा) रक्षाद्वारा (वः) आपलोग (पान्तः) उसके आनन्दका पान करें जो आनन्द (दक्षसाधनम्) सब प्रकारके चातुर्य्योंका मूल है और (स्वः) सूर्यके (न) समान (हर्यतः) अज्ञानके नाशक परमात्माका स्वभावभूतगुण है ।

भावार्थ—उसपरमात्माके सर्वोत्तम स्वादुमय आनन्दको कर्मयोगी ही पासकते हैं अन्य नहीं ।

स वां यज्ञेषु मानवी
इन्दुर्जनिष्ट रोदसी ।
देवो देवी गिरिष्ठा
अस्रेधन्तं तुविष्वणिं ॥ १ ॥

सः । वां । यज्ञेषु । मानवी इति । इंदुः । जनिष्ट । रोदसी इति । देवः । देवी इति । गिरिऽस्थाः । अस्रेधन् । तं । तुविऽस्वनिं ॥

पदार्थः—(सः) स परमात्मा (वाम्) युवां ज्ञानयोगि-कर्मयोगिनौ (यज्ञेषु) क्रतुषु (जनिष्ट) शुभफलान्युत्पाद्य तैर्योजयति अतः (मानवी) हे उभयथा विद्वांसौ ! मनुष्य-

सृष्टिवर्तिनौ ! तथाच (रोदसी) द्यावापृथिव्योर्मध्ये (देवी) हे दिव्यगुणवत्यः स्त्रियः ! [इन्दुः] प्रकाशमयः [देवः] दिव्यगुणसम्पन्नः परमात्मा [गिरिष्ठाः, तं] सर्वब्रह्माण्डेषु व्याप्तो यस्तं [तुविष्वणि] ज्ञानयज्ञेषु [अस्रेधन्] साक्षात्कुरुत ।

पदार्थ—(सः) वह उक्त परमात्मा (वाम्) तुम कर्मयोगी और ज्ञानयोगियोंके (यज्ञेषु) यज्ञों में (जनिष्ट) शुभफलोंको उत्पन्न करता है इसलिये (मानवी) हे मनुष्यसृष्टिके कर्मयोगी और ज्ञानयोगी विद्वानो ! और (रोदसी) द्युलोक और पृथिवीलोकके मध्यमें (देवी) दिव्यगुणवती स्त्रियो (इन्दुः) वह प्रकाशस्वरूपपरमात्मा (देवः) जो दिव्यगुणयुक्त है (गिरिष्ठाः) जो सब ब्रह्माण्डोंमें स्थित है तुम (तुविष्वणि) ज्ञानयज्ञों में (तम्) उस परमात्मा का (अस्रेधन्) साक्षात्कार करो ।

भावार्थ—जीवमात्रके शुभ अशुभ कर्मोंके फलोंकादाता एकमात्र परमात्माही है ।

इन्द्राय सोम पातवे
वृत्रघ्ने परि षिच्यसे ।
नरे च दक्षिणावते
देवाय सदनासदे ॥ १० ॥

इंद्राय । सोम । पातवे । वृत्रऽघ्ने । परि । सिच्यसे । नरे । च । दक्षिणाऽवते । देवाय । सदनऽसदे ॥

पदार्थः—(सोम) हे सर्वोत्पादक ! (वृत्रघ्ने) अज्ञान-

नाशको भवान् (इन्द्राय) कर्मयोगिनः (पातवे) तृप्तये (परिषिच्यते) साक्षात्क्रियते (देवाय) दिव्यगुणाय (दक्षिणावते, नरे) अनुष्ठानिविदुषे (सदनासदे) यज्ञगृहेषु साक्षात्क्रियते ।

पदार्थ—(सोम) हे सर्वोत्पादकपरमात्मन् ! (वृत्रघ्ने) अज्ञान के नाशक (इन्द्राय) कर्मयोगीकी (पातवे) तृप्ति के लिये (परिषिच्यसे) साक्षात्कार किये जाते हो (दक्षणावते, नरे) अनुष्ठानीविद्वान् (देवाय) जो दिव्यगुणयुक्त है उसके लिये (सदनासदे) यज्ञगृहमें साक्षात्कार किये जाते हो ॥

भावार्थ—परमात्मा कर्मयोगी तथा अनुष्ठानी विद्वानोंका ही साक्षात करणार्ह है ।

ते प्रत्नासो व्युष्टिषु
सोमाः पवित्रे अक्षरन् ।
अपप्रोथन्तः सनुतर्हुरश्चितः
प्रातस्ताँ अप्रचेतसः ॥ ११ ॥

ते । प्रत्नासः । विऽउष्टिषु । सोमाः । पवित्रे । अक्षरन् । अपऽप्रोथंतः । सनुतः । हुरःऽचितः । प्रातरिति । तान् । अप्रऽचेतसः ॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (ते) तव (प्रत्नासः) स्वाभाविकाः (सोमाः) सौम्यगुणाः (व्युष्टिषु) यज्ञेषु (पवित्रे) पवित्रेऽन्तःकरणे (अक्षरन्) प्रवहन्ति (अप्रचेतसः) ये

चाज्ञानिनः (दूराश्रितः) कुटिलचित्ताः (तान्) तान्सर्वान् (अपप्रोथंतः) हिंसकान् न प्रवाहयति भवान्

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (ते) तुम्हारे (प्रत्नासः) स्वाभाविक (सोमाः) सौम्यस्वभाव (पवित्रे) पवित्र अन्तःकरणमें (अक्षरन्) प्रवाहित होते हैं, (अप्रचेतसः) अज्ञानीपुरुष (दूराश्रितः) जो कुटिलचित्तवाले (तान्) उनको आप प्रवाहित नहीं करते क्योंकि वह (अपप्रोथन्तः) हिंसक हैं ।

भावार्थ—परमात्माका आनन्द सौम्यस्वभाववाले ही भोगसकते हैं । कुटिल चित्तवाले नहीं ।

तं सखायः पुरोरुचं
यूयं वयं च सूरयः ।
अश्याम वाजगन्ध्यं
सनेम वाजपस्त्यम् ॥ १२ ॥ २४ ॥

तं । सखायः । पुरःऽरुचं । यूयं । वयं । च । सूरयः । अश्याम । वाजऽगंध्यं । सनेम । वाजऽपस्त्यं ॥

पदार्थः—(त्यम्) तम्परमात्मानम् (तम्) यः (वाजगन्ध्यम्) बलस्वरूपः (पुरोरुचम्) शश्वत्प्रकाशस्वरूपः तं (वयम्,यूयं,च) यूयं वयंच सर्वेऽपि (सूरयः) विद्वांसः (सखायः) मित्रभाववन्तः (वाजपः) तदनन्तशक्त्यनुभवेच्छवः(सनेम) तमुपासीरन् (अश्याम) तदानन्दं च भुञ्ज्युः ॥

पदार्थ—(त्यम्) उस पूर्वोक्तपरमात्माको (तम्) जो (वाजगन्ध्यम्) बलस्वरूप है और (पुरोरुचम्) सदासे प्रकाशस्वरूप है उसको (वयम्) हम (च) और (यूयम्) आप (सूरयः) विद्वान् (सखायः) जो मैत्रीभावसे वर्ताव करते हैं (वाजपः) जो उसकी अनन्त शक्तियोंको अनुभव करना चाहते हैं, वे सब (सनेम) उसकी उपासना करें। और उसके आनन्द को भोगें।

भावार्थ—परमात्माहीके आनन्द भोगनेका प्रयत्न करना चाहिये क्योंकि सच्चा आनन्द वही है।

इत्यष्टनवतितमं सूक्तश्चतुर्विंशो वर्गश्च समाप्तः।

यह अट्ठानवां सूक्त और चौबीसवां वर्ग समाप्त हुआ।

अथाष्टर्चस्यनवनवतितमस्य सूक्तस्य

॥ ९९ ॥ १—८ रेभसूनू काश्यपौ ऋषी ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ विराड्बृहती । २, ३, ५, ६ अनुष्टुप् । ४, ७, ८ निचृदनुष्टुप् ॥ स्वरः—१ मध्यमः । २—८ गान्धारः ॥

आ हर्यताय धृष्णवे
धनुस्तन्वन्ति पौंस्यम् ।
शुक्रां वयन्त्यसुराय निर्णिजं
विपामग्रे महीयुवः ॥ १ ॥

आ । हर्यताय । धृष्णवे । धनुः । तन्वंति । पौंस्यं । शुक्रां । वयंति । असुराय । निःऽनिजं । विपां । अग्रे । महीयुवः ॥

पदार्थः--(महीयुवः) उपासकाः (असुराय) असुषु प्राणेषु रममाणाय राक्षसाय (धृष्णवे) अन्यायेन अन्यशक्तिमर्दकाय (हर्यताय) अदत्तधनादायिने (पौंस्यम्) पौरुषयुक्तम् (धनुः) चापम् (आतन्वन्ति) सज्यं कृत्वा कर्षन्ति (विपाम्) विदुषाम् (अग्रे) समक्षम् (निर्णिजं, शुक्रा) सूर्यमिवौजास्विनीं दीप्तिम् (वयन्ति) प्रसारयन्ति ॥

पदार्थ--(महीयुवः) उपासकलोग (असुराय) जो असुर है और (धृष्णवे) अन्यायसे दूसरोंकी शक्तियोंको मर्दन करता है (हर्यताय) दूसरोंके धनको हरण करनेवाला है उसके लिये (पौंस्यम्) शूरवीरताका (धनुः) धनुष (आतन्वन्ति) विस्तार करते हैं, और (विपाम्) विद्वानोंके (अग्रे) समक्ष (निर्णिजम्, शुक्राम्) वे सूर्यके समान ओजस्विनी दीप्तिका (वयन्ति) प्रकाश करते हैं ॥

भावार्थ--जो लोग तेजस्वी बनना चाहते हैं वे परमात्मोपासक बनें ।

अध क्षपा परिष्कृतो
वाजाँ अभि प्र गाहते ।
यदी विवस्वतो धियो हरिं
हिन्वन्ति यातवे ॥ २ ॥

अध । क्षपा । परिऽकृतः । वाजान् । अभि । प्र । गाहते ।

यदिं । विवस्वंतः । धियः । हरिं । हिन्वंति । यातंवे ॥

पदार्थः—(अध) अथातः इदं वर्ण्यते यत् (क्षपा परिष्कृतः) सैनिकबलेषूपास्यमानः परमात्मा (वाजान्, आभि, प्रगाहते) विविधबलानि वितरति (यदि) यदि (विवस्वतः) याज्ञिकस्य (धियः) कर्माणि (यातवे) कर्मयोगाय (हरिं, हिन्वन्ति) परमात्मानं प्रेरयन्तु तदा ।

पदार्थ—(अध) अब इस बात का वर्णन करते हैं कि (क्षपा-परिष्कृतः) सैनिकबलोंमें उपासना किया हुआ परमात्मा (वाजान, आभि, प्रगाहते,) बलोंका प्रदान करता है पर (यदि) यदि (विवस्वतः) याज्ञिकके (धियः) कर्म (यातवे) कर्म योगके लिये (हरिम, हिन्वन्ति) परमात्मा की प्रेरणा करें ॥

भावार्थ—जो लोग परमात्मोपासक हैं वही युद्ध में विजय पाते हैं ।

तमस्य मर्जयामसि
मदो य इन्द्रपातमः ।
यं गाव आसभिर्दधुः पुरा
नूनं च सूरयः ॥ ३ ॥

तं । अस्य । मर्जयामसि । मदः । यः । इंद्रऽपातमः । यं । गावः । आसऽभिः । दधुः । पुरा । नूनं । च । सूरयः ॥

पदार्थः—(अस्य) अस्य परमात्मनः (तम) तंपूर्वोक्त-

मानन्दम् (मर्जयामसि) शुद्धस्वभावेन वयं धारयामः (यः, मदः) य आनन्दः (इन्दपातमः) कर्मयोगितर्पकः (यं) यमानन्दं (गावः) इन्द्रियाणि (आसभिः) स्ववृत्तिभिः (दधुः) दधति (च, नूनम्) तथाच निश्चयं (सूरयः) विद्वज्जनाः (पुरा) प्राचीनकालादेवोपासते ।

पदार्थ—(अस्य) उक्तपरमात्माके (तम्) उक्तआनन्दको (मर्जयामसि) हमलोग शुद्धभावसे धारण करते हैं, (यः) जो (मदः) आनन्द (इन्द्रपातमः) कर्मयोगीकी तृप्ति करनेवाला है (यम्) जिस आनन्दको (गावः) इन्द्रियें (आसभिः) अपनी वृत्तियोंद्वारा (दधुः) धारण करती हैं (च) और (नूनम्) निश्चयपूर्वक (सूरयः) विद्वानलोग (पुरा) पूर्वकालसे उपासना करते हैं ॥

भावार्थ—कर्म्मयोगी लोग अपने अन्तःकरणको शुद्ध करके परमात्मानन्दका अनुभव करते हैं ।

तं गाथया पुरा-
ण्या पुनानमभ्यनूषत ।
उतो कृपन्त धीतयो
देवानां नाम बिभ्रतीः ॥ ४ ॥

तं । गाथया । पुराण्या । पुनानं । अभि । अनूषत । उतो इति । कृपंत । धीतयः । देवानां । नाम । बिभ्रतीः ॥

पदार्थः—(पुनानम्, तम्) सर्वस्य पावकं तं परमात्मानम्

(पुराण्या, गाथया) अनाद्या वेदवाण्या (अभ्यनूषत) वर्णयन्ति (उतो) अथच (धीतयः) मेधाविनः (देवानाम्) सर्वदेवमध्ये तस्यैव (नाम) नामधेयम् (कृपन्त) दधति ।

पदार्थ—(तम्) उक्त परमात्माको (पुनानम्) जो सबको पवित्र करनेवाला है, उसको (पुराण्या गाथया) अनादिसिद्धवेदवाणी-द्वारा (अभ्यनूषत) वर्णन करते हैं, (उतो) और (धीतयः) मेधावीलोग (देवानाम्) सबदेवोंके मध्यमें उसीके (नाम) नामको (कृपन्त) धारण करते हैं ;

भावार्थ—परमात्माको सर्वोत्कृष्ट मानकर उपासना करनी चाहिये ।

तमुक्षमाणमव्यये वारे
पुनन्ति धर्णसिम् ।
दूतं न पूर्वचित्तय आ
शासते मनीषिणः ॥ ५ ॥ २५ ॥

तं । उक्षमाणं । अव्यये । वारे पुनंति । धर्णसिं । दूतं । न । पूर्वऽचित्तये । आ । शासते । मनीषिणः ॥

पदार्थः—(उक्षमाणम्, तम्) बलस्वरूपं तं परमात्मानं (मनीषिणः) मेधाविनः (अव्यये, वारे) रक्षायुक्तस्थाने (पुनन्ति) वर्णयन्ति (धर्णसिम्) सर्वधारकम् (दूतं, न)

दुःखनिवारकं मान्यमानाः (पूर्वचित्तये) सर्वेभ्यः प्रथमम् (आशासते) प्रार्थयन्ते ।

पदार्थः—(उक्षमाणम्, तम्) उक्तबलस्वरूप परमात्माको (मनीषिणः) मेधावीलोग (अव्यये, वारे) रक्षायुक्तविषयोंमें (पुनन्ति) वर्णन करते हैं, (धर्णसिम्) सर्वाधिकरणको (दूतम्, न) दुःखनिवारकरूपसे (पूर्वचित्तये) सबसे प्रथम (आशासते) प्रार्थना करते हैं ।

भावार्थ—परमात्मा सम्पूर्ण जगतका आधार है इससे उसीकी उपासना प्रथम करनी चाहिये ।

स पुनानो मदिन्तमः
सोमश्चमूषु सीदति ।
पशौ न रेत आदध-
त्पतिर्वचस्यते धियः ॥ ६ ॥

सः । पुनानः । मदिन्ऽतमः । सोमः । चमूषु । सीदति । पशौ । न । रेतः । आऽदधत् । पतिः । वचस्यते । धियः ॥

पदार्थः—(सः) सपरमात्मा (पुनानः) सर्वस्यपावयितास्ति (मदिन्तमः) आनन्दस्वरूपश्च (सोमः) सर्वोत्पादकः (चमूषु) अखिलबलेषु सैनिकेषु (सीदति) तिष्ठति (पशौ, न) द्रव्यवत् (रेतः) प्रकृतेः सूक्ष्मावस्थां (आदधत्) दधाति (धियः, पतिः) स कर्माध्यक्षः (वचस्यते) उपास्यते जनैः ।

पदार्थ—(सः) पूर्वोक्तपरमात्मा (पुनानः) सबको पवित्र करनेवाला है (मदिन्तमः) आनन्दस्वरूप है (सोमः) सर्वोत्पादक है, (चमूषु) सबप्रकारके सैनिकबलोंमें (सीदति) स्थिर है (पशौ, न) द्रव्यके समान (रेतः) रेत इति जलनामसु पठितंनि० प्रकृतिकी सूक्ष्मावस्था को (आदधत) धारण करता है (धियः,पतिः) वह कर्माध्यक्ष (वचस्यते) उपासना किया जाता है ॥

भावार्थ—आनन्दप्रद, विजयादि प्रदाता और प्रलयादिकर्त्ताकेवल परमात्माही है इससे वही उपस्य है ।

स मृज्यते सुकर्मभि-
र्देवो देवेभ्यः सुतः ।
विदे यदासु सन्ददिर्म-
हीरपो वि गाहते ॥ ७ ॥

सः । मृज्यते । सुकर्मऽभिः । देवः । देवेभ्यः । सुतः । विदे । यत् । आसु । संऽददिः । महीः । अपः । वि । गाहते ॥

पदार्थः—(सः) सपरमात्मा (देवः) दिव्यकर्मा (देवेभ्यः, सुतः) यो विद्वद्भ्यःस्तुतः सः (यत्) यदा (विदे) साक्षात्क्रियते तदा कर्मयोगी (आसु) आसुप्रजासु (संददिः) सम्यग्धनस्य प्रदाता भवति, तदैव (महीः,अपः) महतीः कर्मविपत्तीः (विगाहते) पारयति ।

पदार्थ—(सः) पूर्वोक्तपरमात्मा (देवः) देव (देवेभ्यः)

जो विद्वानों के लिये (सुतः) स्तुत किया गया है वह (यतः) जब (वि०) साक्षात्कार किया जाता है तब कर्मयोगी पुरुष (आसु) प्रजाओं में (संददिः) सम्यक् धनों का प्रदाता होता है और तब (महीः. अपः) बड़े २ कर्मों की विपत्तियों को (विगाहते) तर जाता है ।

भावार्थ—कर्मयोगी जो परमात्मोपासक है वह सब बलों का आश्रय हो सकता है ।

सुत इन्दो पवित्र आ
नृभिर्यतो वि नीयसे ।
इन्द्राय मत्सरिन्तम-
श्चमूष्वा नि षीदसि ॥ ८ ॥ २६ ॥

सुतः । इंदो इति । पवित्रे । आ । नृऽभिः । यतः । वि । नीयसे । इन्द्राय । मत्सरिन्ऽतमः । चमूषु । आ । नि । सीदसि ॥

पदार्थः—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूपपरमात्मन् ! भवान् (पवित्रे) पूतेऽन्तःकरणे (सुतः) आवाहितः (नृभिः) कर्मयोगिभिः (यतः) साक्षात्कृतः सन् (विनीयते) विशेषेण साक्षात्त्वं लभते (इन्द्राय) कर्मयोगिने (मत्सरिन्तमः) आनन्दमयो भवान् (चमूषु) सर्वविधबलेषु (आनिषीदसि) एत्यतिष्ठति ।

पदार्थ—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूपपरमात्मन् ! आप (पवित्रे) पवित्र अन्तःकरणमें (सुतः) आवाहन किये हुए (नृभिः) कर्मयोगी पुरुषों द्वारा (यतः) साक्षात्कार किये हुए, आप (विनीयसे) विशेषरूपसे साक्षात्कार को प्राप्त होते हैं, (इन्द्राय) कर्मयोगीके लिये (मत्सारिन्तमः) आनन्दस्वरूप आप (चमूषु) सबप्रकारके बलोंमें (आनिषीदसि) तुम स्थिर होते हो ॥

भावार्थ—जो मनुष्य शुद्धान्तः करणसे कर्मयोगयुक्त होता है, परमात्मा उसीकी सहायता करता है ।

इत्येकोननवतितमं सूक्तंषड्विंशो वर्गश्च समाप्तः ॥

यह निन्यानवाँ सूक्त और छब्बीसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ नवर्चस्य शततम सूक्तस्य ।

१–९ रेभसूनू काश्यपौ ऋषी ॥ पवमानः सोमो देवता छन्दः—१, २, ४, ७, ९ निचृदनुष्टुप् । ३ विराडनुष्टुप् ५, ६, ८ अनुष्टुप् ॥ गान्धारः स्वरः ॥

॥१००॥अभी नवन्ते अद्रुहः प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।
वत्सं न पूर्वे आयुनि जातं रिहन्ति मातरः ॥१॥

अभि । नवंते । अद्रुहः । प्रियं । इंद्रस्य । काम्यम् वत्सं । न । पूर्वे । आयुनि । जातं । रिहंति । मातरः ॥

पदार्थः—(न) यथा (पूर्वे, आयुनि) पूर्वे वयसि (जातम्, वत्सम्) उत्पन्नं सुतम् (मातरः) गावः (रिहन्ति) आस्वादयन्ति, एवम् (अद्रुहः) द्रोहरहिता लोकाः (इन्द्रस्य) कर्मयोगिने (काम्यम्) कमनीयम् (प्रियम्) सर्वप्रियं कर्मयोगम् (अभिनवंते) प्रेम्णा लभन्ते ।

पदार्थ—(न) जैसे कि (पूर्वे) प्रथम (आयुनि) उमरमें (जातं) उत्पन्न हुए (वत्सं) वत्सको (मातरः) गौयें (रिहंति) आस्वादन करतीं हैं, इसीप्रकार (अद्रुहः) रागद्वेषसे रहित पुरुष (इंद्रस्य) कर्म्मयोगीके (काम्यं) कमनीय (प्रियं) सबसे प्यारे कर्म्मयोगको (अभिनवंते) प्रेमभावसे प्राप्त होते हैं ।

भावार्थ—अभ्युदयकी इच्छा करनेवाले मनुष्य को कर्मयोगही सबसे प्रिय मानना चाहिये ।

पुनान इन्दवा भरसोमं द्विबर्हसं रयिम् ।
त्वं वसूनि पुष्यसि विश्वानि दाशुषो गृहे ॥२॥

पुनानः । इंदो इति । आ । भर । सोम । द्विऽबर्हसं । रयिं ।
त्वं । वसूनि । पुष्यसि । विश्वानि । दाशुषः । गृहे ॥

पदार्थः—(इन्दो) हे परमात्मन् ! (सोम) सर्वोत्पादक ! (पुनानः) सर्वान् पावयन् भवान् (द्विबर्हसम्) द्यावापृथिव्योर्वर्धितम (रयिम्) धनम् (आभर) परिपूरयतु (त्वं) भवान्

दाशुषोगृहे) यज्ञशीलस्य दातुर्गृहे (विश्वानि, वसूनि) सर्वाणि रत्नानि (पुष्यसि) भरति ।

पदार्थ—(इंदो) हे प्रकाशस्वरूप (सोम) सर्वोत्पादक परमात्मन ! (पुनानः) सबको पवित्र करते हुए आप (द्विबर्हसं) दोनों लोकोंमें बढ़नेवाले (रयिं) धनसे (आभर) आप हमको परिपूर्ण करें और (त्वं) आप (दाशुषोगृहे) यज्ञशीलदानीपुरुषके घरमें (विश्वानि, वसूनि) सबधनोंको (पुष्यसि) पुष्ट करते हैं ।

भावार्थ—जो पुरुषआत्मा और परमें सुखःदुखादिको समान समझ कर परोपकार करते है परमात्मा उनको उन्नतिशील करता है ।

त्वं धियं मनोयुजं सृजा वृष्टिं न तन्यतुः ।
त्वं वसूनि पार्थिवा दिव्या च सोम पुष्यसि ॥३॥

त्वं । धियं । मनःऽयुजं । सृज । वृष्टिं । न । तन्यतुः । त्वं । वसूनि । पार्थिवा । दिव्या । च । सोम । पुष्यसि ॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (त्वं) भवान् (मनोयुजम्) मनःस्थापकम् (धियम्) कर्मयोगम् (सृज) उत्पादयतु (न) यथा (तन्यतुः) मेघः (वृष्टिम्) वर्षं तनोति एवम् (सोम) हे सर्वोत्पादक ! (त्वम्) भवान् (पार्थिवा) पृथिवी सम्बन्धीनि (दिव्या) द्युलोकसम्बन्धीनि च (वसूनि) धनानि (पुष्यसि) मह्यं भरतु ।

पदार्थ—हे परमात्मन ! (त्वं) तुम (मनोयुजं) मनको स्थिर

करनेवाले (धियं) कर्म्मयोगको (सृज) उत्पन्न करो (न) जैसे कि (तन्यतुः) मेघ (वृष्टिं) वृष्टिका विस्तार करता है, इसीप्रकार (सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन ! (त्वं) तुम (पार्थिवा) पृथिवीसम्बन्धी (च) और (दिव्या) द्युलोकसम्बन्धी (वसूनि) धनोंसे (पुष्यसि) हमको पुष्ट करो

भावार्थ—कर्मयोगी पुरुष ही मनके स्थैर्य को प्राप्त करके विविध ऐश्वर्य का स्वामी बनता है ।

परि ते जिग्युषो यथा धारा सुतस्य धावति ।
रंहमाणा व्य१व्ययं वारं वाजीव सानसिः ॥४॥

परि । ते । जिग्युषः । यथा । धारा । सुतस्य । धावति ।
रंहमाणा । वि । अव्ययं । वारं । वाजीऽइव । सानसिः ॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (सुतस्य) उपासितस्य (ते) तवानन्दस्य (धारा) वीचयः उपासकमभि (परिधावति) एवं सरन्ति (यथा) यथा (जिग्युषः) जयशीलयोधस्य (वाजी, इव) अश्वः शत्रुमभि (रंहमाणा) वेगवती (सानसिः) प्राप्तव्या च सा धारा (अव्ययं, वारम्) रक्षणीयं वरणीयं च पुरुषमभि अज्ञाननिवृत्तयेऽपि एवमेव धावति ।

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (सुतस्य) उपासना किये गए (ते) तुम्हारे आनन्दकी (धारा) लहरे उपासक की ओर (परिधावति) इस प्रकार दौड़ती हैं (यथा) जैसे कि (जिग्युषः) जयशीलयोधाका (वाजी, इव) घोड़ा शत्रुके दमनके लिये दौड़ता है इसी प्रकार (रंहमाणा)

वेगवती और (मानासिः) प्राप्त करनेयोग्यधारा (अव्ययं, वारं) रक्षायोग्य वरणीयपुरुषकी अज्ञाननिवृत्तिकेलिये इसीप्रकार दौड़ती है ।

भावार्थ—परमात्मा का साक्षात्कार करनेवाले ही परमानन्द पाते हैं ।

क्रत्वे दक्षाय नः कवे पर्वस्व सोम धारया ।
इन्द्राय पातवे सुतो मित्राय वरुणाय च ॥५॥२७॥

क्रत्वे । दक्षाय । नः । कवे । पर्वस्व । सोम । धारया । इंद्राय । पातवे । सुतः । मित्राय । वरुणाय । च ॥

पदार्थः—(कवे) हे सर्वज्ञपरमात्मन् ! (नः) अस्माकम् (क्रत्वे) कर्मयोगाय (दक्षाय) ज्ञानयोगाय च (पवस्व) मां पावयतु (सोम) हे सर्वोत्पादक ! (धारया) स्वानन्दवृष्ट्या च पवस्व (च) तथा (इन्द्राय) कर्मयोगिनः (पातवे) तृप्त्यै (मित्राय, वरुणाय) अध्यापकस्य उपदेष्टुश्च तृप्तये (सुतः) उपास्यते भवान् ।

पदार्थ—(कवे) हे सर्वज्ञ परमात्मन् ! (नः) हमारे (क्रत्वे) कर्म्म योगकेलिये (पवस्व) आप हमको पवित्र करें (सोम) हे सर्वोत्पादकपरमात्मन् (धारया) आप अपनी आनन्दमयवृष्टिसे हमको पवित्र करें (च) और (इंद्राय) कर्म्मयोगीकी (पातवे) तृप्तिके लिये (मित्राय) अध्यापक और (वरुणाय) उपदेशककी तृप्तिके लिये आप (सुतः) उपासना कियेजाते हो ।

भावार्थ—परमात्माका साक्षाकार कर्मयोगी अध्यापक तथा उपदेशक सबोंकी तृप्तिकरता है ।

पर्वस्व वाजसातमः पवित्रे धारया सुतः ।
इन्द्राय सोम विष्णवे देवेभ्यो मधुमत्तमः ॥६॥

पर्वस्व । वाजऽसातमः । पवित्रे । धारया । सुतः । इंद्राय । सोम । विष्णवे । देवेभ्यः । मधुमत्ऽतमः ॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (वाजसातमः) सर्वविधैश्वर्यप्रदो भवान् (पवित्रे) पूतेऽन्तःकरणे (धारया) धारणाशक्त्या (सुतः) साक्षात्क्रियते (सोम) हे सर्वोत्पादक ! (इन्द्राय) कर्मयोगिने (विष्णवे) ज्ञानयोगिने (देवेभ्यः) अन्यविद्वद्भ्यश्च (मधुमत्तमः) आनन्दमयो भवान् ।

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (वाजसातमः) सब प्रकार ऐश्वर्योंके देनेवाले आप (पवित्रे) पवित्रअन्तःकरण में (धारया) धारणारूपशक्तिसे (सुतः) साक्षात्कार कियेजाते हो (सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (इंद्राय) कर्मयोगीकेलिये (विष्णवे) ज्ञानयोगीके लिये (देवेभ्यः) अन्य विद्वानोंकेलिये (मधुमत्तमः) आप आनन्दमय हो ।

भावार्थ—वस्तुतः परमात्मा के ऐश्वर्य्य तथा विभूति के अनन्द को ज्ञानयोगी तथा कर्मयोगी ही भोगते हैं अन्य नहीं ।

त्वां रिहन्ति मातरो हरिं पवित्रे अद्रुहः ।
वत्सं जातं न धेनवः पर्वमान विधर्मणि ॥७॥

त्वां । रिहंति । मातरः । हरिं । पवित्रे । अद्रुहः । वत्सं । जातं । न । धेनवः । पर्वमान । विऽधर्मणि ॥

पदार्थः—(पवमान) हे सर्वपावक ! (विधर्मणि) विविधज्ञानवति ज्ञानयज्ञे (त्वाम्) भवन्तं (अद्रुहः) द्रोहरहिता विज्ञानिनः (रिहंति) आस्वादयन्ति (न) यथा (धेनवः) गावः (जातम्, वत्सम्) उत्पन्नं सुतमास्वादयन्ति एवं हि (हरिं) परमात्मानमपि सर्वे प्रेम्णा गृह्णन्ति ।

पदार्थ—(पवमान) हे सबको पवित्रकरनेवाले परमात्मन ! (विधर्मणि) नानाप्रकारके ज्ञानोंको धारणकरनेवाले ज्ञानयज्ञमें (त्वां) तुमको (अद्रुहः) रागद्वेषसे रहितविज्ञानीलोग (रिहंति) आस्वादन करते हैं (न) जैसेकि (धेनवः) गायें (जातं) उत्पन्नहुए (वत्सं) वत्सको आस्वादन करतीं हैं, इसी प्रकार (हरिं) हरिरूप परमात्माको सबलोग प्रेमसे ग्रहण करते हैं ।

भावार्थ— परमात्मा की प्राप्ति का सर्वोपरि साधन प्रेम है ।

पवमान महि श्रवश्चित्रेभिर्यासि रश्मिभिः ।
शर्धन्तमांसि जिघ्नसे विश्वानि दाशुषो गृहे ॥८॥

पवमान । महि । श्रवः । चित्रेभिः । यासि । रश्मिऽभिः ।
शर्धन् । तमांसि । जिघ्नसे । विश्वानि । दाशुषः । गृहे ॥

पदार्थः—(पवमान) हे सर्वस्य पावयितः ! भवान् (महिश्रवः) महायशस्कः (चित्रेभिः) अनेकधा (रश्मिभिः) स्वशक्तिभिः (यासि) व्याप्नोति च (शर्धन्) स्वज्ञानमाश्रयन्

(दाशुषः. गृहे) भक्तान्तःकरणे (विश्वानि, तमांसि) सर्वाण्यज्ञानानि (जिघ्नसे) नाशयति ।

पदार्थ—(पवमान) हे सबको पवित्र करनेवाले परमात्मन् ! आप (महिश्रवः) सर्वोपरि यशवाले हैं (चित्रेभिः) आप नानाप्रकारकी (रश्मिभिः) शक्तियोंके द्वारा (यासि) सर्वत्र प्राप्त हैं । और तुम (शर्धन) अपनी ज्ञानरूपी गतिसे (विश्वानि तमांसि) सब अज्ञानोंको (जिघ्नसे) हनन करते हो, और (दाशुषो गृहे) उपासकके अन्तःकरणमें स्थिर होकर आप उसे ज्ञानसे प्रकाशित करते हैं ।

भावार्थ—परमात्मा के ज्ञान रूपप्रकाश से सब अज्ञानों का नाश होता है ।

त्वं द्यां च महिव्रत पृथिवीं चाति जभ्रिषे ।

प्रति द्रापिममुञ्चथाः पवमान महित्वना ॥९॥

त्वं । द्यां । च । महिऽव्रत । पृथिवीं । च । अति । जभ्रिषे । प्रति । द्रापिं । अमुंचथाः । पवमान । महिऽत्वना ॥

पदार्थः—(महिव्रत) हे महाव्रत परमात्मन् ! (त्वं) भवान् (द्याम्) द्युलोकम् (पृथिवीं) पृथ्वी लोकं च (अतिजभ्रिषे) महैश्वर्ययुक्तं करोति (पवमान) हे पावयितः ! (महित्वना) स्वमहत्त्वेन (द्रापिम्) रक्षारूपतनुत्राणेन (प्रत्यमुंचथाः) आच्छादयति ।

पदार्थ—(महिव्रत) हे बड़ेव्रतवाले परमात्मन् ! (त्वं) आप (द्यां) द्युलोक (च) और (पृथिवीं) पृथिवीलोकको (अति जभ्रिषे)

अत्यन्तऐश्वर्यसम्पन्न बनाते हो (पवमान) हे सबको पवित्र करनेवाले परमात्मन ? (महित्वना) अपने महत्वसे (त्रापि) रक्षारूपी कवचसे (प्रसमुक्षथाः) आच्छादित करते हो ।

भावार्थ——परमात्माने द्युलोक और पृथिवीलोकको ऐश्वर्यशाली बनाकर उसे अपनी रक्षारूपकवचसे आच्छादित किया, ऐसी विचित्र रचनासे इस ब्रह्माण्डको रचा है कि उसके महत्वको कोई नहीं पा सकता ।

इस चतुर्थ अध्यायमें सोमके अनेक नाम आए हैं जिनके अर्थ सायणाचार्य्य जड़ सोमके करते हैं ।

सायणाचार्य्यके मतमें जिन मन्त्रों में द्युलोक, पृथिवीलोकादि लोकलोकान्तरों को उत्पन्न करना लिखा है अर्थात् जिन मन्त्रों में यहाँ तक लिखा है कि द्युभ्वादि लोक सोमने ही उत्पन्न किये, उन मन्त्रों में भी सायणाचार्य्य के मतमें यह व्यवस्था है कि यहाँ जड़ सोमकी स्तुती की गई है ।

यदि ऐसा माना जाय तो यह सिद्ध होता है कि वेदों में भी अन्य ग्रन्थों के समान अर्थवाद वा मिथ्यावाद है पर एसा कदापि नहीं, क्योंकि पूर्वोत्तरकी सङ्गति देखने से यहाँ सोमनाम परमेश्वरका है । इसके अर्थ इस प्रकार हैं कि,, **सूतेचराचरं जगदितिसोमः** "जो इस चराचर जगत को उत्पन्नकरे उसका नाम यहाँ सोम है, यही अर्थ इस चतुर्थ अध्याय में बल पूर्वक प्रतिपादन किया गया है । इस अर्थ को न समझकर कईएक टीकाकारों ने वेदके सत्यार्थ के स्थान में घोर अनर्थ

कर डाले हैं, जैसा कि–

दिवो नाभा विचक्षणोऽव्योवारे महीयते ।
सोमो यः सुक्रतुः कविः ॥ ऋग ९।१२।४।

इसके अर्थ यह किये जाते हैं कि जो सोम भेड़के ऊनके वालोंमें छाना जाता है वह अकाश की नाभी के समान यज्ञ में पूजा जाता है, ऐसे अर्थ करने वाले लोगोंको न्यूनसे न्यून यह-तो सोचना चाहिये कि इस मन्त्र में विचक्षण, कविः, और सुक्रतुः यह तीनों सोमके विशेषण हैं क्या जड़ सोम, विचक्षण-चतुर, कविः--कवित्वशक्ति रखनेवाला सुक्रतुः--शोभनकर्म्मों-वाला कहला सकता है । सायणाचार्य्यने उक्त तीनों विशेषणोंको जड़ सोममें घटाया है जो सर्वथा प्रकरण विरुद्ध है ।

केवल सायणाचार्य्य ही नहीं विल्सन्, और ग्रिफथसाहब भी इसके यही अर्थ करते हैं इन्ही टीकाकारों की प्रणाटी पर चल-कर सररमेश्चन्द्रदत्तने इसके यह अर्थ किये हैं कि जो मेढे के रोमोंमें छाना जाता है और द्युलोककी नाभी में पूजा जाता है वह सोम विचक्षण–बुद्धिमान् है और कवि=ग्रन्थो का रचयिता है तथा सुक्रतु सुन्दर कर्म्मों वाला है । यदि कोई पुरुष साधारण दृष्टि से भी वेद की रचना पर ध्यान डाले तो क्या कोई कह सकता है कि कविः और विचक्षणादि शब्दों से उस सोम का वर्णन है जो मेढ़े के वालों से छाना जाता है कदापि नहीं ।

वास्तव में बात यह है कि इन टीकाकारों ने सायणाचार्य्य को मुख्य रखकर अपनी बुद्धि को परतन्त्र बना दिया अर्थात् इन-

परतन्त्र प्रज्ञों ने यह भी नहीं सोचा कि सायणाचार्य्य किस समय में हुआ और उसके समयमें वेदार्थ करने का क्या प्रकार था, सायणाचार्य्यका समय बहुत नूतन समय है इस समय में पुराण तथा उपपुराण सब बन चुके थे, नाना देववाद की कथायें बहुधा गाई जाती थीं अर्थात् पौराणिक धर्म्म अपनी युवास्थामें पहुंचकर अपनी जरजर्रीभूत वृद्धावस्था की ओर झुक रहा था उस समय वेद में आध्यात्मिकवाद किसको सूझताथा, अन्यथा जब निरुक्त दैवतकाण्ड में यह लिखा है कि **मेधावी कविः क्रान्तदर्शनो भवति, कवतेर्वा । प्रसुवति भद्रं द्विपाद्भ्यश्च चतुष्पाद्भ्यश्च ।** जो बुद्धिमान् हो, क्रान्तदर्शीहो, और सब जीवों के लिये कल्याणकारी हो उसका नाम वेदमें कवि है सैकड़ों मन्त्रोंमें वेद में कविः शब्द परमात्मा के लिये आया है इसी अभिप्रायसे कविर्मनीषी परिभूस्स्वयम्भू य० ४० । ८ इस मन्त्र में कविशब्द परमात्मा के लिये आया है और महीधरने भी यहां कवि के अर्थ सर्वज्ञ परमात्माके ही किये हैं ।

महीधर के आध्यात्मिक अर्थ करने का कारण यह प्रतीत होता है कि महीधर सायणाचार्य्य से बहुत पीछे हुआ है, महीधरके समय में वेदान्त के प्रचारने पौराणिक धर्म्मपर अपना पूरा पूरा प्रभुत्त्व जमा लिया था, इसी लिये महीधर ने कई एक स्थलों में वेदान्तके अर्थोंकी चर्चा की है ।

यद्यपि सायणाचार्य्यने भी कहीं कहीं वेदान्तके मायावादी विभागका पूरा पूरा समर्थन किया है, अर्थात् यह सिद्ध किया है

कि एक ब्रह्म से भिन्न और कोई वस्तु इस संसारमें न थी, तथापि महीधर ने मायावाद के मतकी चर्चा सायणाचार्य्यसे कहीं बढ़ चढ़के की है, इसबातको वे लोग भलीभाँति जान सकते हैं कि जिनोंने यजुर्वेद के चालीसवें अध्यायका महीधर भाष्य ध्यानसे पढ़ा है, इस भाष्य में जीव ब्रह्म की एकता का महीधरने स्पष्ट रीतिसे वर्णन किया है इसी प्रकार पुरुष सूक्त और यजुके ४० वें अध्यायमें महीधरने अपने आपको स्पष्ट रीतिसे शङ्कर मतानुयाई होना सिद्ध कर दिया है, और सायणाचार्य्य जहाँ कहीं द्वैताद्वैतकी चर्चा आती है वहाँ सांख्यके प्रकृति वादको भी दृष्टिगत रखते हैं, अर्थात् ब्रह्मके साथ एक ऐसी शक्ति को स्वीकार करते हैं जो शक्ति जगत का उपादान कारण कही जाती है, और महीधर के मतमें स्वयं परमात्मा रूपी पुरुष ही इस संसार का अभिन्ननिमित्तोपादान कारण है अर्थात आपही निमित्त और आपही उपादान कारण है यह बात

"पुरुषएवेद ँ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्त्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥ यजु० ३१।२ ॥

इसमन्त्रके भाष्यमें महीधरने तीन अनादियों को मिटाकर एक पुरुष को ही सबका निमित्त तथा उपादानकारण माना है, इससे स्पष्ट सिद्ध है कि महीधर बहुत नूतन समयमें हुआ है जब कि शङ्कर मतके पोषक बहुत से ग्रन्थ बन चुके थे अस्तु ।

महीधर तथा सायणके समय को हम नवम मण्डलकी भूमिका में लिख आए हैं यहाँ केवल यही दिखलाना है कि महीधर और सायण उस समयके आचार्य्य हैं जिस समय विधर्म्मी

लोगों के आक्रमणों से भारत परमपीडित हो रहा था, और वैदिक साहित्यकी तो क्या ही कथा किन्तु संस्कृतका साहित्यमात्र सरस्वतीसरित्के समान विनशनदेशमें विलीन होगया था. उस समय में वेदों की चरचा करना किसी वीर पुरुषका ही काम था, पौराणिक हिन्दुधर्म्मकी रक्षाके लिये महीधर और सायणाचार्य्य-ने अत्यन्त सराहनीय काम किया ।

महीधर तथा सायणाचार्य्य इन दो हिन्दु आचार्य्योंके काम में कलङ्क है तो यही है कि इन्होंने उस समयके तान्त्रिकधर्म्म का अनुकरण और अनुसरणकिया, जो तान्त्रिकधर्म्म हिन्दुधर्म्म की अधोगतिका चित्र है । वा यों कहो कि वेदों की उच्चावस्था को न समझकर इन्होंने उन्हे प्राकृत रूप दे दिया, अर्थात् बहुतसे स्थलों में वेदोंके ऐसे निन्दित अर्थ करदिये जिससे जिज्ञासु उदासीन ही नहीं किन्तु वेदों के विपरीत उत्तेजित होकर सन्नद्ध और कटि-बद्ध हो जाते हैं अर्थात मुक्त कण्ठ से यह कहने लगपड़ते हैं कि वेदों में कोई अपूर्व धर्म्मभाव नहीं, इसी भाव को लेकर यूरोप देशीय टीकाकार वेदों को घृणित दृष्टि से देखते हैं जिसके बहुत प्रमाण हम पूर्व दे आए हैं, यहाँ यह दिखलाना परमावश्यक है कि इन टीकाकारोंने इस चतुर्थ अध्यायमें बहुत घृणित अर्थ किये हैं. कहीं सोमका अनडुहचर्ममें कूटना लिखा है, कहीं कन्याजार के समान प्यारा लिखा है, कहीं स्त्रीके जारकी उपमा देकर उसे उपमित किया है, कहीं भेड़की ऊनमें छानने की विधि बतलाकर आकाशकी नाभी के साथ ऊनके कपड़ेकी तुलना की है. इन सब आक्षेपों के उत्तर हमने इस चतुर्थाध्यायके स्थान स्थान

पर दिये हैं, विशेष ध्यान देने योग्य यह बात है कि जहां जहां "अव्योवारेमहीयते" आया है वहां सबने भेड़ की ऊन के ही अर्थ किये हैं वास्तव में यह शब्द कहीं अवि शब्द की षष्ठी का रूप बनाकर अव्यावारे आता है, कहीं अव्ययवारे आता है, कहीं अव्योवारे आता है जिसके अर्थ सर्वरक्षक अविनाशी के हैं, किसी अजा वा अवि के नहीं, क्योंकि यदि ऊन के अर्थ यहां भेड़ के होते तो अव्यय के अर्थ भेड़ के बालों के पक्ष में कैसे घट सकता, क्योंकि अव्यय के अर्थ तो यह हैं कि जिसका विनाश न हो, और जहां अवि शब्द का षष्ठी का रूप बनाकर अव्यावारे है वहां अवि के अर्थ सर्वरक्षक के हैं, क्योंकि यह शब्द "अव रक्षणे" धातु से सिद्ध होता है "अवति रक्षति सर्वमित्यवि"= जो सबकी रक्षा करे उसका नाम "अवि" है, और जहां अव्योवारे है वहां यत् प्रत्यय है, वह भी रक्षा के अर्थों में ही आता है, जहां अव्यय है वहां स्पष्ट रीति से परमात्मा को ही कहता है, एवं यहां तीनों शब्दों से परमात्मा ही उपास्य देव समझना चाहिये कोई जड़ वस्तु नहीं, वेद जिसका अर्थ वेदन अर्थात् ज्ञान है वह जड़ वस्तुओं को उपास्य देव वर्णन नहीं करता।

और जो कई एक लोग यह कहते हैं कि "तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतऋचः—सामानि जज्ञिरे" ऋग्० १०।९०।९ इस मन्त्र में यज्ञ से वेदों की उत्पत्ति मानी है और यज्ञ जड़ वस्तु है क्योंकि यजन रूप क्रिया के साधन कर्मविशेष का नाम यज्ञ है, इसका उत्तर यह है कि यज्ञ नाम यहां परमात्मा का है, क्योंकि इसमें प्रकरण परमात्मा का है अर्थात् उस सहस्र सिरों के स्वामी पुरुष का वर्णन है जो सर्वात्मरूप से सर्वत्र विराजमान है, और इस बात की दृढ़ता के लिये ऋग्वेद का निम्नलिखित प्रमाण है:—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः सुपर्णो गरुत्मान।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदंत्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥

ऋग्वेद १-१६४-४६

इस मन्त्र में (अग्नि) सर्वव्यापक परमात्मा को (इन्द्र) सर्व ऐश्वर्ययुक्त होने से (मित्र) स्नेह प्रदाता होने से (वरुण) सर्व नियन्ता होने से (सुपर्ण) चेतन स्वरूप होने से (गरुत्मान्) सबसे बड़ा होने से (एकं) एकही ब्रह्म को उक्त प्रकार

के नामों से कथन किया गया है, इस मन्त्र में जो "एक" पद है इस पद से ईश्वर की एकता का बलपूर्वक मण्डन किया है।

इससे स्पष्ट सिद्ध है कि वेद एक ब्रह्म की उपासना का कथन करता है इसी प्रकार एकता को वर्णन करने वाले वेद में सैकड़ों मन्त्र हैं जिनका विस्तार के भय से यहां उल्लेख नहीं किया जाता।

सार यह है कि वेद मुख्यता करके आध्यात्मिक अर्थ को प्रतिपादन करता है अर्थात् ईश्वरवाद का प्रतिपादक है, अन्य अर्थों का वर्णन आध्यात्मवाद का अङ्गरूप से है।

और जो निरुक्त दैवतकाण्ड में यह लिखा है कि "परोक्षकृताः प्रत्यक्ष कृतश्च मन्त्राभूयिष्ठा अल्पश आध्यात्मिकाः"=परोक्षार्थ के प्रतिपादक तथा प्रत्यक्ष अर्थ के प्रतिपादक मन्त्र वेद में बहुत हैं और आध्यात्मिक अर्थ के प्रतिपादन करने वाले थोड़े हैं, इसका तात्पर्य यह है कि ईश्वर की विभूति को वर्णन करने वाले मन्त्र वेद में बहुत हैं और ईश्वर की सर्वान्तर्यामी वर्णन करने वाले थोड़े हैं अर्थात् विभूति में नानात्व है उसके वर्णन करने वाले मन्त्र भी नाना हैं, और ईश्वर में एकत्व है इसलिये उसके प्रतिपादक मन्त्र न्यून हैं, परन्तु पूर्वोक्त निरुक्त के पाठ का यह तात्पर्य कदापि नहीं कि परोक्षार्थ तथा प्रत्यक्षार्थ प्रतिपादक मन्त्रों का अर्थ आध्यात्मिक हो ही नहीं सकता, वेद मन्त्रों के आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक, यह तीनों प्रकार के अर्थ हो सकते हैं, और सायण, महीधर, उव्वट, विल्सन तथा ग्रिफथ, इत्यादि टीकाकार आधिदैविक अर्थों पर बहुत बल देते हैं और आधिदैविक के अर्थ भी उनके मत में नाना देवों के हैं एक ब्रह्म के नहीं।

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्नपरः किंचनास॥२॥

ऋग्० १०।१२९।२

इस मन्त्र में स्पष्ट रीति से यह वर्णन किया है कि जब मृत्यु और अमृत न था अर्थात् न कोई मरणधर्मा वस्तु कही जाती थी न मृत्यु से रहित थी और न कोई रात्रि, दिन का चिन्ह था उस समय अपनी शक्ति से विराजमान एकमात्र

परब्रह्म ही था जब इस मन्त्र में नाना देवों को मिटाकर एकमात्र परब्रह्म की प्रधानता वेद वर्णन करता है तो फिर कैसे कहा जासकता है कि वेदों में सर्वोपरि उपास्यदेव एक परमात्मा नहीं, इतना ही नहीं किन्तु वेदों में तो स्पष्ट रीति से यहां तक वर्णन किया गया है कि जो पुरुष उस परमात्मा को नहीं जानते जिसने इस ब्रह्माण्ड को उत्पन्न किया है वे अज्ञानी हैं और केवल वेद की स्तुति करके अपना पेट का पोषण करते हैं, इस विषय में यह मन्त्र प्रमाण है:-

न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव।

नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति॥

ऋग्वे० मण्ड० १० । सू० ८२ । मं० ७

इत्यादि मन्त्रों के आशय को न समझकर मैक्समूलर, विल्सन, और ग्रिफथादि यूरोप देश निवासी विद्वानों ने भी वेदों के विकृत अर्थ करके वैदिकधर्म को जड़प्रकृति का ही उपासक ठहराया है।

सायणाचार्य ने तो अपने भाष्य में यहां तक परस्पर विरुद्ध लिखा है कि भूमिका में एक ईश्वरवाद का समर्थन किया है, और आगे जाकर नाना देवी देवों को ईश्वर माना है, और भूमिका में एक जिज्ञासा ... वेदों की उत्पत्ति मानी है और आगे जाकर मण्डल अष्टम तथा नवम में वेदों को ऋषियों के बनाये हुए कथन किया है, इस प्रकार सैकड़ों प्रकार के परस्पर विरोध हैं जो उक्त टीकाकारों ने वेदाशय से विरुद्ध लिखकर वेदार्थ को दूषित किया है इसी कारण से वेदों में अपूर्वार्थ प्रतीत नहीं होते, अष्टक ७ के अध्याय ५ में वेदार्थ की अपूर्वता हमने बहुत से मन्त्रों में वर्णन की है, जिस अपूर्वता को हम इस उपसंहार में पुनरपि सूत्ररूप से सूचित करते हैं:—

प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति।

महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन्॥

ऋग्वे० मं० ९ । सू० ९७ । मं० ७ ।

इस मंत्र में विद्वान् का वर्णन है कि विद्या में निवास करनेवाले विद्वान् के समान जो सूर्य्यादि ज्योतियों के कार्य्य-कारणभाव को वर्णन करने वाला है जो अखण्डित ब्रह्मचर्य्य व्रत को धारण किये हुए है, और पवित्रता का मित्र तथा पवित्रता को फैलाने वाला है ऐसा श्रेष्ठ

विद्वान् वैदिक वाणी से सुशोभित करता हुआ उन लोगों को आकर प्राप्त होता है जो विद्या के अधिकारी तथा पात्र हैं, इस मंत्र में इस अपूर्वता को वर्णन किया है कि अखण्डित ब्रह्मचर्य व्रत का धारण करना विद्याद्वारा ही होसकता है अन्यथा नहीं, इस अपूर्वता को मिटाकर सायणाचार्य्य ने यह अर्थ किये हैं कि सोमरस दूर से ही गर्जता हुआ पात्रों को आकर प्राप्त होता है, वह प्याले अथवा कलश में पड़कर उष्णा कवि के समान काव्यों की रचना करता है, और सब जन्म जन्मान्तरों का वर्णन करता है, इत्यादि कविता के अनेक गुण उस जड़ सोमरस में वर्णन किये हैं जिसने आजतक कवित्त विषय में एकभी अक्षर नहीं लिखा और न लिखने की सम्भावना कीजाती है ।

और कईएक आधुनिक टीकाकारों ने तो इस मन्त्र के अर्थों को और भी घृणित बनादिया है ।

उनके मत में यहां "वराह" शब्द वराहावतार के लिये आया है, जो शूकर वपुधारी आधुनिक समय में भगवत् अवतार समझा जाता है और जिसको:—

ततो वराह रूपेण निमग्नां पृथिवीं जले ।
मग्नां समुद्धाराशु न्याधात् तत्सलिलोपरि ॥

इन पौराणिक श्लोकों में पृथ्वी का उद्धार कर्त्ता माना जाता है, इस प्रकार वेदों के अपूर्वार्थ को मिटाकर नए २ अर्थ किये गये हैं, सायणाचार्य्य ने तो यहां सोम को उपमेय और वराह को उपमान रखकर यही सिद्ध किया था कि जिसप्रकार पैर से पृथिवी को उत्पाटन करता हुआ वराह आता है इसी प्रकार सोम भी अतिवेग से पात्रों को विदारण करता हुआ आता है, यहां सायण ने तो सोम की ही वराह के साथ तुलना की थी पर अन्य टीकाकारों ने तो ईश्वर को ही साक्षात् वराह बना दिखलाया ।

तात्पर्य्य यह है कि जैसे २ वेदविरुद्ध वाद संसार में फैलते गए वैसे २ वेद विरुद्धार्थ भी लोगों को कल्पना करने पड़े, इसी प्रकार मण्डल० १० । सू० १३० । मं० ३ में जो यज्ञ की प्रतिमा अर्थात् सामग्री का प्रश्न था उसको आधुनिक टीकाकारों ने प्रतिमा पूजन में लगा दिया, इसी प्रकार वेदों के बहुत से स्थलों में निन्दित अर्थ करके लोगों की दृष्टिमें वेदों को निन्दा का पात्र बना दिया है ।

केवल निन्दा का पात्र ही नहीं किन्तु "अधित्वचिगवां" इस वाक्य के उक्त टीकाकारों ने यह अर्थ किये हैं कि सोम बलिवर्द के

चर्म पर कूटा जाता था, "एवंयोपाजारमिवप्रियं" मं० ९। सू० ३२। मं०८ में सोम को स्त्री के जार के समान प्यारा वर्णन किया है।

"वनानि महिषा इव" मण्ड० ९। सू० ३३। मं०७ में महिष आदि पशुओं को जिस प्रकार वन प्यारा होता है इस प्रकार प्यारा वर्णन किया गया है।

"प्रियां न जारोऽभिगीत इन्दुः" मण्ड० ९। सू० ९६। मं० २३। इस मंत्र के उक्त टीकाकारों ने यह अर्थ किये हैं कि गान करने पर अर्थात् स्तुति करने पर सोम इस प्रकार शीघ्रता से आकर प्राप्त होता है जिस प्रकार स्त्री को (जार) लम्पट पुरुष आकर प्राप्त होता है, यह निन्दित अर्थ एक या दो टीकाकारों ने नहीं किये किन्तु सायण, विल्सन, ग्रिफ़थ, सबने इस मंडल में सोम को जार की उपमा वा महिषादि पशुओं की उपमा देकर सोम का महत्व वर्णन किया है, या यों कहो कि बलिवर्द के चमड़ पर सुखाए जाने से या भेड़ की ऊन में छाने जाने से सोम का पद सब से ऊंचा वर्णन किया है, हम यहां इनके इन अर्थों पर यह आशङ्का करते हैं कि यदि इसी सोम का वर्णन इस मण्डल में है तो :—

सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः।
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः॥

मण्ड० ९। सू० ९६। मं ५।

इस मन्त्र में सोम के अर्थ जब जड़ सोम वा सोमरस के किये जाते हैं तो अर्थ यह होते हैं कि सोम विद्वानों को पैदा करता है, द्युलोक और पृथिवी लोक को पैदा करता है, अग्नि और सूर्य को पैदा करता है, और इन्द्र को पैदा करता है तथा विष्णु को पैदा करता है, तो क्या इस जड़ सोम में द्युलोक और पृथ्वी लोक को उत्पन्न करने की शक्ति है? इस प्रश्न के उत्तर में इतना साहस तो किसी को नहीं पड़सकता कि वह यह उत्तर दे कि सोमरस इस संसार को तथा सूर्यादि लोकलोकान्तरों को उत्पन्न करता है किन्तु उत्तर यही होगा कि यह सोम की स्तुति है अर्थात् सोम विषय में यह अर्थवाद है, या यों कहो कि यह मिथ्यावाद है तो क्या वेद मिथ्यावाद का उपदेश करता है जिसको सायणाचार्य्यादि भाष्यकारों ने ईश्वर की वाणी माना है क्या वह इस मिथ्यार्थ का भंडार होसकता है कि सोमरस को संसार के उत्पन्न करने वाला वर्णन करे, कदापि नहीं॥

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ।

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो बाहु ।

सं बाहुभ्यां धमति भूमिं जनयन् देव एकः ॥

इत्यादि मन्त्रों में जो वेद सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त जगन्नियन्ता परमात्मा को सूर्यादि का निर्माता और विश्व का निर्माता और जगत् का कारण निरूपण करता है वह क्या [illegible] के समान [illegible] को जगत् का कारण निरूपण करेगा? और जिस वेद में सत्य का वर्णन इस प्रकार से है कि:-

तन्नु सत्यं पवमानस्यास्तु यत्र विश्वे कारवः संनसन्त ।

ज्योतिर्यदह्ने अकृणोदु लोकं प्रावन्मनुं दस्यवे करभीकम् ॥

ऋ० मं० ९ सू० ९२ म० ५

उक्त पवमान का सत्य यह है जिसको महर्षि ब्रह्माण्ड के कलाकौशल जानने वाले सब हैं अर्थात् उसकी सच्चाई को उल्लंघन नहीं कर सकते, उसी ने सूर्य, चांद को उत्पन्न किया है वही विद्वानों की रक्षा करता है उससे कोई पुरुष जो असत्य तथा कुटिल है वह निर्भय नहीं होसकता, जो इस प्रकार सत्य का धाम परमात्मा है उसकी वाणी वेद में असत्य कथा का लेश भी नहीं होसकता, इससे तात्पर्य यह निकलता है कि सोम के अर्थ "सूते चराचरं जगदिति सोमः"=जो इस चराचर ब्रह्माण्ड को पैदा करे उसका नाम यहां सोम है, जो लोग यह कहा करते हैं कि वेदों को ईश्वरोक्त मानने वाले वा वेदों के उच्चार्थ करने वाले खेंचतान करके वेदों के अर्थ करते हैं उनको यह भी स्मरण रखना चाहिये कि उक्त मन्त्र में "पवते" के अर्थ सायणाचार्य ने "पात्रेषु क्षरति" किये हैं, इससे पूर्व मन्त्र के अर्थ में पवस्व के अर्थ क्षर किये हैं, क्या कोई कह सकता है कि "पूञ् पवने" के अर्थ बहने वा क्षरने के हैं, इससे स्पष्ट सिद्ध है कि पवते के अर्थ यहां पवित्र करना ही है और वह मुख्यतया परमात्मा में ही घट सकता है किसी जड़ वस्तु में नहीं। इतना ही नहीं, किन्तुः—

त्रयो वेदस्य कर्तारो भाण्ड धूर्त निशाचराः ।
जर्भरी तुर्फरीत्यादि पण्डितानां वचः स्मृतम् ॥

इत्यादि आक्षेप जो नास्तिकों ने वेदों पर किये हैं वह इस आधार पर किये हैं कि सायणादि भाष्यकारों ने अपने अर्थों से वेदों को सर्वथा निन्दित बना दिया है, इसीलिये चार्वाक दर्शन में यह लिखागया है कि भाण्ड, धूर्त और निशाचर यह तीनों वेदों के कर्त्ता हैं, क्योंकि जर्फरी, तुर्फरी इत्यादि निरर्थक वाक्य पण्डितों की बनावट है, जर्भरी, तुर्फरी, इत्यादि शब्द ऋग्वेद मं० १० । सू० १०६ । मं० ६ में आते हैं, भाष्यकारों ने उक्त शब्दों के अर्थ अश्विनी कुमारों के लिये हैं कि अश्विनी कुमार अपने भक्तों का भरण करने वाले और दूसरों का हनन करने वाले हैं, और सृण्या अङ्कुश के समान सबको वशीभूत करते हैं, यहां जर्फरी तुर्फरी के अर्थों में कोई अपूर्वता नहीं पाई जाती, और जो सायणाचार्य्य ने "जर्भरी भर्तारावित्यर्थस्तुर्फरी तु हंतारावित्यर्थः" निरुक्त० १३ । ७ का प्रमाण देकर इन शब्दों को निरुक्त की निरुक्ति द्वारा सार्थक सिद्ध किया है यह भी संगत प्रतीत नहीं होता, क्योंकि अश्विनीकुमारों को यदि देवता विशेष मान लिया जाय तो वे किसका भरण पोषण करते हैं और किसको मारते हैं यह बतलाना अति कठिन होजाता है, क्योंकि पूर्व मन्त्र में धर्मेष्ठा यह द्विवचन इस जोड़े के लिये आया है जिसके अर्थ धर्मरक्षक हैं, एक अर्थ सायणाचार्य्य यह भी करते हैं कि सूर्य्य चन्द्रमा होकर अश्विनीकुमार ही अन्तरिक्ष में दीप्तिमान होरहे हैं और इसके लिये "सूर्याचन्द्रमसाविति यास्कः" निरुक्त० १२ । १ । इत्यादि प्रमाण देकर यह सिद्ध किया है कि यास्काचार्य्य भी सूर्य्य चांद को अश्विनीकुमारों का रूप मानते हैं अर्थात् अश्विनीकुमार दो देवता ही सूर्य्य चन्द्रमा का रूप धारण करके अंतरिक्ष में विराजमान हैं ।

ज्ञात रहे कि यास्क का यहां यह अभिप्राय नहीं, यास्क का अभिप्राय यह है कि सूर्य्यचांद के जोड़े का नाम भी अश्विनी है, सेनाधीश और राजा के जोड़े का नाम भी अश्विनी है, एवं अध्यापक उपदेशक का नाम भी अश्विनी है, इस प्रकार अश्विनी के कई एक अर्थ हैं जो प्रकरणानुसारी अर्थ हो वही लेने यहां ठीक हैं, पूर्व प्रकरण अध्यापक और धर्मोपदेशक का है, इसलिये जर्भरी और तुर्फरी यह दोनों अध्यापक तथा उपदेशक के विशेषण हैं अर्थात् धर्मोपदेशक जर्भरी = भरपूर करने वाले गुणों वाला होता है, उपदेशक तुर्फरी = अज्ञान के विनाशक गुणों वाला होता है, इस विषय में सृण्या = अङ्कुश का

दृष्टान्त है कि जिस प्रकार अंकुश आलस्य प्रमादादि दोषों को मिटाकर शिक्षा-प्रद है इसी प्रकार अध्यापक और उपदेशक शिक्षा देते हैं, इस अपूर्वत्व को न समझकर चार्वाकों का यह आक्षेप था कि जर्भरी तुर्फरी इत्यादि अनर्थक वाक्य-प्रलाप पण्डितों की बनावट है।

यह आक्षेप सर्वथा निर्मूल है, क्योंकि जर्भरी "जृभि" धातु से औणादिक प्रत्यय करने से सिद्ध किया गया है और तुर्फरी हिंसार्थक "तृफ" धातु से है, जिस के अर्थ हनन करना है, इन हेतुओं से वेद में एक भी वाक्य निरर्थक नहीं।

पर वेद का अर्थ अति गम्भीर है जो लोग इसका श्रवण मनन निदिध्यासन द्वारा अभ्यास करते हैं वही इसके तत्व को पासकते हैं अन्य नहीं, इसी अभिप्राय से यह कथन किया गया है कि:—

"अक्षण्वंतः कर्णवंतः सखायो मनोजवेष्वसमा बभूवुः" ऋग्वेद० १०-७१-७=आंख कान तथा मन वाले पुरुष ही वेद के तत्व को जान सकते हैं अन्य नहीं, यहां आंख कान और मन वालों से तात्पर्य चर्मचक्षु और स्थूल कर्णगोलक का नहीं किन्तु "दृश्यते अतीन्द्रियार्थ मनेन इत्यक्षी"= जिससे सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्वज्ञान हो उसी का नाम यहां "अक्षी" है और श्रुति वाक्यों के श्रवण करने के साधन का नाम "कर्ण" है, और "मनोजवेषु" इस वाक्य में मन स्पष्ट है अर्थात् श्रवण, मनन और निदिध्यासन का यहां विधान है इसी वेद मन्त्र के सहारे पर "आत्मावारे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः" यह उपनिषद् वाक्य है, अस्तु–पूर्व प्रकृत यह है कि अल्पश्रुत पुरुष वेद के गम्भीर आशय को नहीं जानसकते, इसी कारण वह वेद की अपूर्वता को नहीं समझते, वेद में जैसा "हेय" तथा "उपादेय" का उपदेश है ऐसा अन्य किसी शास्त्र में नहीं पाया जाता, इसी कारण से वेद सर्वविद्याओं

का मूल है, इस चतुर्थ अध्याय में वेद ने बहुत से अपूर्व अर्थों का वर्णन किया है जिनसे वेद का गाम्भीर्य पाया जाता है, जैसाकिः—

भद्रा वस्त्रा समन्या ३ वसानो महान्कविर्निवचनानि शंसन् ।
आ वच्यस्व चम्वोः पूयमानो विचक्षणो जागृविर्देववीतौ ॥
ऋग्० ९ । ९७ । २

अर्थ— ईश्वर आस्तिक पुरुषों के यज्ञों में अपने गुणों का आविर्भाव करता है अर्थात् सब वस्तुओं के संज्ञासंज्ञिभाव का ज्ञान भी यज्ञों द्वारा होता है और महान् कवि परमात्मा यज्ञशील पुरुषों को युद्ध के उपयोगी शस्त्रों का विज्ञान प्रदान करता है, इस मन्त्र में सायणाचार्य महान कवि के अर्थ भी जड़ सोम के ही करते हैं, जैसाकि हम पहिले भी वर्णन कर आये हैं कि इस नवम मंडल को सायणाचार्य ने सर्वत्र जड़ सोम के विषय में ही लगाया है, और उसको यहां तक पुष्ट किया है कि पूर्वोक्त मन्त्र के आगे मन्त्र तीन में "पूयं पात स्वस्तिभिः सदानः" ऋग्० ९ । ९७ । ३ इत्यादि मन्त्रों में उसी जड़ सोम को "स्वस्ति"=कल्याणदाता माना है और यहां एकवचन के स्थान में बहुवचन दिया है, वास्तव में इस मंत्र में यशस्वी परमात्मा से प्रार्थना है कि हे परमात्मन् ! आप सदैव (स्वस्ति) हमको कल्याण प्रदान करें, जैसाकि "न तस्य प्रतिमाऽस्ति यस्य नाम महद्यशः" यजु० ३२ । ३ में परमात्मा को सर्वोपरि यशस्वी वर्णन किया है, इसी प्रकार उक्त मन्त्र में भी निराकार परमात्मा के यश का वर्णन किया है ॥

जो लोग यह कहा करते हैं कि निराकार परमात्मा का यश क्या ? यश तो साकार का होता है, वे लोग महर्षि व्यास रचित

"जन्माद्यस्ययतः" ब्र० सू० १ । १ । २ इस सूत्र की रचना को भूल जाते हैं अर्थात् यह नहीं जानते कि सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय का हेतु जो पुरुष है उससे बड़ा यश किसका होसकता है ॥

कई एक लोगों की यह आशंका है कि ईश्वर का निराकार होना वेद में नहीं पाया जाता, क्योंकि इन्द्र, मित्र तथा वरुणादि नाना देव वेद में हैं ? इसका उत्तर यह है कि यदि इन्द्रादि देव कोई व्यक्ति विशेष होते तो समय समय पर उनके विषय में विचार क्यों परिवर्तन होते रहते ? जो इन्द्र वेद में वीरता का देवता था वह पौराणिक समय में आकर सुकुमारता का देवता बनगया, या यों कहो कि वही इन्द्र पौराणिक समय में अप्सराओं का राजा समझा गया ।

वास्तव में अप्सरा नाम शक्तियों का है, इसी अभिप्राय से निरुक्त "उरुर्वावशोऽस्या:" निरु० ५ । १३ में लिखा है कि जिनका बहुत वशीकार हो उनका नाम उर्वश्यादि अप्सरायें थीं जो पौराणिक समय में आकर वेश्यायें समझी गईं, इस प्रकार देवतावादि शक्तियों के विषय में विचार बदल कर वेदों में साकार वा नाना देववाद का विचार पक्का होगया वास्तव में इन्द्रादि परमात्मा के नाम थे, इसी अभिप्राय से ऋग्० ४ । ७ । ३३ । १८ में लिखा है कि "इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते"= परमात्मा अपनी माया अर्थात् प्रकृति रूप शक्ति से नाना प्रकार के कार्य रूपों को प्राप्त होकर सच्चिदानन्दादि रूपों से व्याप्त होता है, इस भाव वाले सैकड़ों मंत्र वेद में पाये जाते हैं जिनमें निराकार का वर्णन है, इस विषय को हमने अन्यत्र भी अनेक स्थलों में वर्णन किया है, इसलिये यहां अधिक विस्तार की आवश्यकता नहीं, क्योंकि सायणादि साकारवाद के कट्टर

अनुयायी भाष्यकारों ने भी इन्द्र, मित्र, वरुणादि लिखकर ऋग्वेदभाष्य की भूमिका में यह स्पष्ट सिद्ध किया है कि इन्द्रादि सब निराकार परमात्मा के नाम हैं, यदि यह कहा जाय कि आकार रहित एक चिद्घन परमात्मा के नाना नाम कैसे? इसका उत्तर यह है कि जिस प्रकार एक चित् सत्ता के सत्य, ज्ञान, अनन्त यह तीन भिन्न २ नाम हैं अर्थात् (सत्य) त्रिकालाबाध्य सत्य को कहता है जिसका तीनों कालों में नाश न हो, और अज्ञान के नाश करने वाले गुणविशेष को "ज्ञान" कहता है, एवं जिसकी कोई सीमा न हो उसको "अनन्त" शब्द वर्णन करता है, इस प्रकार जब निराकार ब्रह्म के वर्णन करने के लिये भी कई एक भिन्न २ अर्थवाची पदों की आवश्यकता है तो फिर सोम, पवमानादि नामों से परमात्मा का वर्णन किये जाने में क्या दोष है ॥

इसी अभिप्राय से वेद ने परमात्मा की सत्ता को सोमादि नामों से वर्णन किया है ।

विश्वा धामानि विश्वचक्षऋभ्वसः प्रभोस्ते–
सतः परियन्ति केतवः । व्यानशिः पवसे–
सोम धर्मभिः पतिर्विश्वस्य भुवनस्य राजसि ॥

ऋग्० ९ । ८६ । ५

अर्थ—हे परमात्मन्! तुम्हारी शक्तियें सब धामों में व्याप्त हैं, हे सोम! (व्यानशिः) आप सर्वव्यापक होकर सम्पूर्ण संसार में ईश्वर रूप से विराजमान हैं, क्या कोई कह सकता है कि इस मंत्र में जड़सोमरस का वर्णन है और उसी को जगत् के धारण करने वाला वर्णन किया है कदापि नहीं, क्योंकि उक्त मंत्र में व्यापकता के वाचक और सर्वाधार होने के प्रतिपादक

कई शब्द पड़े हैं जिनसे निराकार ईश्वर का वर्णन यहां सोम नाम से स्पष्ट है, फिर भी सायणादि भाष्यकारों ने यहां जड़सोमरस को ही विश्व का धारण करने वाला बतलाया है, सायण की ज्यों की त्यों नकल डा० विल्सन् और चारो वेदों के भाष्यकार ग्रिफथ साहिब ने भी की है, उक्त प्रकार वेदों के अनर्थ देखकर हमने यथार्थ अर्थ करने की चेष्टा की है।

वास्तव में वेदार्थ के परिवर्तन का कारण ब्राह्मण ग्रन्थ तथा उपनिषदों से वेदार्थ का सम्बन्ध टूट जाना है अर्थात् ब्राह्मण ग्रन्थों के मिथ्यार्थ करने के समय में जब यज्ञों के अर्थ हिंसाप्रधान ही सूझने लगे तो बौद्धधर्म का प्रचार हुआ, उस समय निर्वाणवाद की लहर ने उपनिषदर्थ को दबा दिया।

इस भारी उलट फेर के समय में जो वेदधर्म के अनुयायी भी कहलाते थे उन्होंने भी बुद्ध के सविशेषवाद की शरण लेकर वैदिकधर्म को साकारवाद का रूप देकर नाना देववादी बना दिया, इसीलिये यूरोप देश निवासी पण्डित यह कहते हैं कि ऋग्वेद का धर्म तत्त्वों के देवताओं को मानने का था, इसका खण्डन हम नवम मण्डल की भूमिका में कर चुके हैं कि:—

न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमंतरं-
बभूव। नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप-
उक्थ शासश्चरन्ति ॥ ऋग्० १०। ८२। ७

केवल इस प्राणधारी शरीर की तृप्ति करने वाले और सूक्तों को गाकर पढ़ने वाले उस परमात्मा को नहीं जानसकते जिसने इस चराचर विश्व को रचा है, इत्यादि एकमात्र ईश्वर को प्रतिपादन करने वाले मंत्रों की क्या कथा?

यदि ऋग्वेद का धर्म तत्त्वों के देवता को मानता था, इस प्रकार पूर्वोत्तर विचार करने से स्पष्ट सिद्ध होता है कि वैदिकमत में एक ईश्वरवाद है नानादेववाद नहीं।

और वह वेद का ईश्वर भी सविशेषवादियों के समान एकदेशी वा देहधारी नहीं किन्तु निराकार, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, सर्वकर्त्ता तथा सर्वनियन्ता है, जैसाकिः—

परो दिवा पर एना पृथिव्या परो देवेभिरसुरैर्यदस्ति ।
कं स्विद्गर्भंप्रथमंदध्र आपो यत्र देवाः समपश्यंत विश्वे ॥

ऋग्० १० । ८२ । ५

वह परमात्मा द्युलोक और पृथिवी लोक से भी परे है उसकी सत्ता को सब देव और असुर अनुभव करते हैं उसने पहले (आपः) आकाशरूपी गर्भ को धारण किया जिससे यह सम्पूर्ण लोक लोकान्तर उत्पन्न हुए, यहां "आप" शब्द के अर्थ जल नहीं किन्तु आकाश के हैं, और इसी भाव को तैत्ति० २ । १ उपनिषद्वाक्य में वर्णन किया है किः—

तस्माद्वाएतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः,
आकाशाद्वायुः वायोरग्निः अग्नेरापः ॥

इस उपनिषद्वाक्य में आकाशादि क्रम से सृष्टि की उत्पत्ति वर्णन की है वही क्रम यहां है अर्थात् उपनिषत्कार ऋषि ने यह क्रम इसी वेद मंत्र से लिया है, जो लोग "आप" के अर्थ केवल जल समझते हैं और आकाश मानने से संकोच करते हैं उनको यह निम्नलिखित निरुक्त का प्रमाण पढ़ना चाहिये "आकाशं आपः" निरु० २ । १० इसका अर्थ यह है कि "आकाश"

और "आप" यह दोनों एकार्थवाची शब्द हैं, इस प्रकार आकाशादि क्रम से सृष्टि को उत्पन्न करने वाले निराकार ब्रह्म के अर्थ ईश्वर हैं, किसी व्यक्ति विशेष के नहीं ॥

इति शततमं सूक्तं अष्टाविंशतितमोवर्गश्च समाप्तः

यह १०० वां सूक्त और २८ वां वर्ग समाप्त हुआ

इति श्रीमदार्य्यमुनिनोपनिबद्धे

ऋग्संहिताभाष्ये, सप्तमाष्टके

नवमे मण्डले चतुर्थोऽध्यायः

समाप्तः

अथ पञ्चमोऽध्यायः ।

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ।

अथ पञ्चदशर्चस्य एकोत्तरशततमस्य सूक्तस्य—

१—३ ऋषिः—अन्धीगुः श्यावाश्विः । ४—६ ययातिर्नाहुषः । ७-९ नहुषो मानवः । १०-१२ मनुः सांवरणः । १३-१६ प्रजापतिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ६, ७,९, ११-१४, निचृदनुष्टुप् । ४, ५, ८, १५, १६ अनुष्टुप् । १० पादनिचृदनुष्टुप् । २ निचृद्गायत्री । ३ विराड् गायत्री ॥ स्वरः— १, ४-१६ गान्धारः । २, ६ षड्जः ॥

अथ परमात्मनो गुणगुणिभावेन उपासनमुपदिश्यते ।

अब परमात्माके गुणों द्वारा उसकी उपासना कथन करते हैं ।

पुरोजिती वो अन्धसः सुताय मादयित्नवे ।
अप श्वानं श्नथिष्टन सखायो दीर्घजिह्व्यम् ॥ १ ॥

पुरःऽजिती । वः । अंधसः । सुताय । मादयित्नवे । अप । श्वानं । श्नथिष्टन । सखायः । दीर्घऽजिह्व्यं ॥

पदार्थः—(सखायः) हे याज्ञिकाः ! (पुरोजिता) सर्वस्य जेता (अन्धसः) सर्वप्रियः (वः मादयित्नवे) युष्माकमाह्लादको यः परमात्मा तत्स्वरूपज्ञाने यः (श्वानम्) विघ्नकारी तम् (अपश्नथिष्टन) निवारयत (दीर्घजिह्व्यम्) वेदमय विशालवाग्वतः परमात्मन उपासनां कुरुत यूयम् ।

पदार्थ— (वः) आपलोग (पुरोजिती) जो सब के विजेता हैं (अन्धसः) सर्वप्रिय (सुताय) संस्कृत (मादयित्नवे) आह्लादक परमात्मा के स्वरूपज्ञान में (श्वानम्) जो विघ्नकारी लोग हैं उनको (अपश्नथिष्टन) दूरकरें (सखायः) हे सब के मित्रभूत याज्ञिक लोगो ! आप (दीर्घजिह्व्यम्) वेदरूप विशाल वाणी वाले परमात्मा की उपासना करो (जिह्वेति वाङ्नामसुपाठितम्) नि० २ । खं० । २३ ॥

भावार्थ—परमात्मा, शब्दब्रह्म का एकमात्र कारण है इस लिये मुख्यतः करके उसी को बृहस्पति वा वाचस्पति कहा जा सकता है इसी अभिप्राय से परमात्मा के लिये बहुधा कवि शब्द आया है इस तात्पर्य से यहां परमात्मा को दीर्घजिह्व कहा है ।

यो धारया पावकया परिप्रस्यन्दते सुतः ।
इन्दुरश्वो न कृत्व्यः ॥ २ ॥

यः । धारया । पावकया । परिऽप्रस्यंदते । सुतः । इंदुः । अश्वः । न । कृत्व्यः ॥

पदार्थः—(यः) यः परमात्मा (पावकया, धारया) अपवित्रतापसारकस्वसुधामयवृष्ट्या (परिप्रस्यन्दते) सर्वत्र परिपूर्णः (सुतः) स्वसच्चिदानन्दस्वरूपेण देदीप्यमानश्च ।

(कृत्व्यः) गतिशीलः सः (इन्दुः) सर्वव्यापकः परमात्मा (अश्वः, न) विद्युदिव सर्वत्र स्वसत्तया परिपूर्णः ।

पदार्थ—(यः) जो परमात्मा (पावकया, धारया,) अपवित्रताओं को दूरकरनेवाली अपनी सुधामयी वृष्टिमे (परिप्रस्यन्दते) सर्वत्र परिपूर्ण है (सुतः) और सर्वत्र अपने सत्, चित्, आनन्द स्वरूप से देदीप्यमान है, और (कृत्व्यः) वह गतिशील (इन्दुः) सर्वव्यापक परमात्मा (अश्वः, न) विद्युत् के समान सर्वत्र अपनी सत्ता से परिपूर्ण है ।

भावार्थ—यहां विद्युत् का दृष्टान्त केवल परमात्माकी पूर्णता बोधन करने के लिये आया है ।

तं दुरोषमभी नरः सोमं विश्वाच्या धिया ।
यज्ञं हिन्वन्त्यद्रिभिः ॥ ३ ॥

तं । दुरोषं । अभि । नरः । सोमं । विश्वाच्या । धिया ।
यज्ञं । हिन्वंति । अद्रिऽभिः ॥

पदार्थः—(तम्) पूर्वोक्तम् (दुरोषम्) अखण्डनीयं परमात्मानम् (नरः) नेतारः (अद्रिभिः) चित्तवृत्तिभिः (अभिहिन्वन्ति) साक्षात्कुर्वंति (यज्ञम्) यो यज्ञरूपोऽस्ति (सोमम्) सर्वोत्पादकश्चतम् (विश्वाच्या, धिया) विचित्रबुद्ध्या साक्षात्कुर्वन्ति ।

पदार्थ—(तम्) पूर्वोक्त (दुरोषम्) अखण्डनीय परमात्मा को (नरः) नेतालोग (अद्रिभिः) चित्तवृत्तियों द्वारा (अभिहिन्वन्ति)

साक्षात्कार करते हैं, जो परमात्मा (यज्ञम्) यज्ञरूप है, और (सामम्) सर्वोत्पादक है, उसको (विश्वाच्या, धिया) विचित्रबुद्धिसे साक्षात्कार करते हैं, ॥

भावार्थ—परमात्मा को वेदमें यज्ञशब्द से कथन कियागया है जैसाकि "तस्माद्यज्ञात्सर्व हुत ऋचः सामानि जज्ञिरे। वर्णन किया है कि सर्वपूज्य परमात्मा से ऋगादि चारो वेद प्रगट हुए इसी अभिप्राय से यहां भी परमात्मा को यज्ञ रूपमे वर्णन किया है ।

सुतासो मधुमत्तमाः सोम इन्द्राय मन्दिनः ।
पवित्रवन्तो अक्षरन्देवान्गच्छन्तु वो मदाः ॥ ४ ॥

सुतासः । मधुमत्ऽतमाः । सोमाः । इंद्राय । मंदिनः ।
पवित्रऽवंतः । अक्षरन् । देवान् । गच्छंतु । वः । मदाः ॥

पदार्थः—(सुतासः) आविर्भूताः (मन्दिनः) आह्लादकाः (मधुमत्तमाः) आनन्दमयाः (सोमाः) परमात्मसौम्यस्वभावाः (इन्द्राय) कर्मयोगिनं प्राप्नुवन्तु (वः, देवान्) युष्मान् दिव्यगुणान् विदुषः (पवित्रवन्तः) पवित्रतायुक्ताः (मदाः) आह्लादकगुणाः (अक्षरन्) आनन्दवृष्ट्या सह (गच्छन्तु) प्राप्नुवन्तु ।

पदार्थ—(सुतासः) आविर्भाव को प्राप्त हुए (मधुत्तमाः) अत्यन्त आनन्दमय (सोमाः) परमात्मा के सौम्य स्वभाव (मन्दिनः) जो अह्लादक हैं वे (इन्द्राय) कर्मयोगी के लिये प्राप्त हों और (वः) तुम जो (देवान् ,) दिव्यगुणयुक्त विद्वान् हो उनको (मदाः)

वह आह्लादकगुण (पवित्रवन्तः) पवित्रतावाले (अक्षरन्) आनन्द की वृष्टि करते हुए (गच्छन्तु) प्राप्त हों ॥

भावार्थ—परमात्मा के अपहतपाप्मादि धर्मों का धारण करना इस मंत्र में वर्णन कियागया है अर्थात् परमात्मा के सौम्यस्वभावादि कों को जब जीव धारण कर लेता है तो वह शुद्ध हो कर ज्ञानयोगी व कर्म योगी बन सकता है अन्यथा नहीं ।

इन्दुरिन्द्राय पवत इति देवासो अब्रुवन् ।
वाचस्पतिर्मखस्यते विश्वस्येशान ओजसा ॥५॥१॥

इंदुः । इंद्राय । पवते । इति । देवासः । अब्रुवन् । वाचः । पतिः । मखस्यते । विश्वस्य । ईशानः । ओजसा ॥

पदार्थः—सर्वप्रकाशकः परमात्मा (इन्द्राय) कर्मयोगिने (पवते) पवित्रतां प्रददाति (देवासः) विद्वांसः (इत्यब्रुवन्) इति भाषन्ते यत् कर्मयोगी हि तज्ज्ञानपात्रमस्ति (वाचस्पतिः) सपरमात्माऽखिलवागधिपतिः (मखस्यते) ज्ञानयज्ञयोगयज्ञतपोयज्ञादिसर्वयज्ञानामाधिपश्च (ओजसा) स्वबलेन (विश्वस्य, ईशानः) सर्वब्रह्माण्डस्वाम्यस्ति ।

पदार्थ—(इन्दुः) सर्वप्रकाशक परमात्मा (इन्द्राय) कर्मयोगी के लिये (पवते) पवित्रता प्रदान करता है (देवासः) विद्वान् लोग (इत्यब्रुवन्) यह कहते हैं कि कर्मयोगी उद्योगी पुरुषही उस के ज्ञानका पात्र है, (वाचस्पतिः) वह सम्पूर्ण वाणियों का पति परमात्मा है और (मखस्यते) ज्ञानयज्ञ, योगयज्ञ, तपोयज्ञ, इत्यादि सबयज्ञों का अधिष्ठाता है वह परमात्मा (ओजसा) अपने स्वाभाविक बलसे (विश्वस्य) सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका (ईशानः) स्वामी है ।

भावार्थ— परमात्मा कर्मयोगी तथा ज्ञानयोगी को अपने सद्गुणों द्वारा पवित्र करता है अर्थात् परमात्मा के गुण कर्म स्वभावों के धारण करने का नाम ही परमपवित्रता है ।

सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीङ्खयः ।
सोमः पतीरयीणां सखेन्द्रस्य दिवेदिवे ॥ ६ ॥

सहस्रऽधारः । पवते । समुद्रः । वाचंऽईङ्खयः । सोमः ।
पतिः । रयीणां । सखा । इन्द्रस्य । दिवे दिवे ॥

पदार्थः— (सहस्रधारः) विविधानन्दस्यवर्षणकर्त्ता (समुद्रः) सर्वभूतोत्पत्तिस्थानम् (वाचमींखयः) वाक्प्रेरकः (सोमः) परमात्मा (रयीणाम्) ऐश्वर्याणां स्वामी (दिवे दिवे) यःप्रातिदिनम् (इन्द्रस्य, सखा) कर्मयोगिमित्रम् सः (पवते) सन्मार्गच्युतान् पवित्रयति ।

पदार्थः—(सोमः) सर्वोत्पादकः परमात्मा (सहस्रधारः) अनन्तप्रकार के आनन्दों की वृष्टि करने वाला, और (समुद्रः) सम्पूर्ण भूतों का उत्पत्तिस्थान (वाचमीङ्खयः) वाणियों का प्रेरक (रयीणाम्,) सबप्रकार के ऐश्वर्यो का स्वामी (दिवे दिवे) जो प्रतिदिन (इन्द्रस्य) कर्मयोगी का (सखा) मित्र है, वह परमात्मा (पवते) सन्मार्ग से गिरे हुए लोगों को पवित्र करता है ॥

भावार्थ—सहस्रधारः परमात्मा को इस लिये कथन किया गया है कि वह अनन्त शक्तियुक्त है । धाराशब्द के अर्थ यहां शक्ति हैं। सम्यग् द्रवन्ति भूतानि यस्मिन्स "समुद्रः,, इस व्युत्पत्ति से यहां समुद्रनाम परमात्मा का है, इसी अभिप्रायसे उपनिषद् में कहा हैकि, (यतो वा इमानि

भूतानि जायन्ते येन जातानिजीवन्ति) यहां (पवते) के अर्थ सायणाचार्य्य ने क्षरति, किये हैं जो व्याकरणसे सर्वथा विरुद्ध हैं ॥

अयं पूषा र॒यिर्भगः॒ सोमः॑ पुना॒नो अ॑र्षति ।
पति॒र्विश्व॑स्य॒ भूम॑नो॒ व्य॑ख्य॒द्रोद॑सी उ॒भे ॥ ७ ॥

अयं । पूषा । र॒यिः । भगः॑ । सोमः॑ । पु॒नानः॑ । अ॒र्ष॒ति । पतिः॑ । विश्व॑स्य । भूम॑नः । वि अ॒ख्य॒त् । रोद॑सी॒ इति॑ । उ॒भे इति॑ ॥

पदार्थः—(अयं) अयमुक्तपरमात्मा (पूषा) सर्व्वपोषकः (भगः) सर्वैश्वर्य्यदाता (सोमः) सर्वोत्पादकः (पुनानः) सर्व्वेषां पावयिता (भूमन,: विश्वस्य) महतोऽस्य-ब्रह्माण्डस्य (पतिः) स्वाम्यस्ति (रयिः) सम्पूर्णधनस्य हेतुः (उभे, रोदसी) द्यावापृथिव्यौ (व्यख्यत) निर्माति परमात्मा स्वप्रभुत्वेन (अर्षति) सर्व्वत्र विराजते ।

पदार्थः—(अयम्) वहउक्त परमात्मा (पूषा) सबका पोषक है (भगः) ऐश्वर्य्य देनेवाला है (सोमः) सर्वोत्पादक है (पुनानः) सबको पवित्र करने वाला है, (भूमनः, विश्वस्य) इस बृहद् ब्रह्माण्डका (पतिः) स्वामी है और (रयिः) सम्पूर्ण धनों का हेतु है (उभे, रोदसी) द्युलोक और पृथिवीलोक को (व्यख्यत्) निर्माण करने वाला उक्तगुण सम्पन्न परमात्मा अपनी विभुता से (अर्षति) सर्वत्र विराजमान होरहा है ॥

भावार्थः—इस मंत्र में द्युलोक और पृथिवी लोक का प्रकाशक परमात्मा को कथन किया है । इस से स्पष्ट सिद्ध है कि सोमशब्द के अर्थ यहां सृष्टिकर्ता परमात्मा के हैं किसी जड़वस्तु के नहीं ।

समुंप्रिया अनूषत गावो मदाय घृष्वयः ।
सोमासः कृण्वते पथः पवमानास इन्दवः ॥ ८ ॥

सं । ऊं इति । प्रियाः । अनूषत । गावः । मदाय । घृष्वयः ।
सोमासः । कृण्वते । पथः । पवमानासः । इंदवः ।

पदार्थः—(गावः) इन्द्रियाणि (घृष्वयः) दीप्तिमन्ति (प्रियाः) परमात्मानुरागवन्ति च (मदाय) आनन्दाय (समनूषत) परमात्मानं सम्यक् साक्षात्कुर्वन्ति अथच (पवमानासः) पावयितारः (इन्दवः) ज्ञानविज्ञानादिप्रकाशकाः (सोमासः) परमात्मसौम्यस्वभावाः इन्द्रियैः साक्षात्कृताः लोकान्संस्कृत्य (पथः, कृण्वते) सन्मार्गं गमयन्ति ।

पदार्थ—(गावः) इन्द्रियें (घृष्वयः) जो दीप्तिवाली हैं, वे, (उ) और जो (प्रियाः) परमात्मा में अनुराग रखने वाली हैं, वे (मदाय) आनन्द के लिये (समनूषत) परमात्मा का भलीभांति साक्षात्कार करती हैं (सोमासः) परमात्मा के सौम्य स्वभाव (पवमानासः) जो सब को पवित्र करने वाले हैं, (इन्दवः) जो ज्ञानविज्ञानादि गुणों के प्रकाशक हैं, वे इन्द्रियों से साक्षात्कार किये हुए लोगों को संस्कृत करके (पथः कृण्वते) सन्मार्ग के यात्री बनाते हैं ॥

भावार्थः—गावः शब्द के अर्थ यहां इन्द्रियवृत्तियों के हैं किसी गौ, बैल आदि पशु विशेष के नहीं, क्योंकि "सर्वेऽपि रश्मयो गाव उच्यन्ते" नि, २—१०। इसप्रमाण से प्रकाशक रश्मियों का नाम यहां गावः है।

य ओजिष्ठस्तमा भर पवमान श्रवाय्यम् ।
यः पञ्च चर्षणीरभि रयिं येन वनामहै ॥ ९ ॥

यः । ओजिष्ठः । तं । आ । भर । पर्वमान । श्रवाय्यं । यः । पंचं । चर्षणीः । अभि । रयिं । येन वनामहै ॥

पदार्थः—(पवमान) हे सर्वपावक भगवन् ! (यः, ओजिष्ठः) यद्यशः अतिशयौज आश्रयः (श्रवाय्यम्) श्रवणार्हं च (यः) यच्च (पञ्च, चर्षणीः, अभि) पञ्चानां ज्ञानेन्द्रियाणां प्राणानां ॥ संस्कर्ता (येन) येनयशसा (रयिम्) एश्वर्यं (वनामहै) प्राप्नवाम (तं, आभर) तद्यशो मह्यं देहि ।

पदार्थ—(पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (यः) जो यश (ओजिष्ठः) अत्यन्त ओज वाला है (श्रवाय्यम्,) सुनने योग्य है, (यः) जो यश (पञ्च, चर्षणीः) पांचों ज्ञानेंद्रिय, अथवा पांचों प्राणों को संस्कृत करता है, (येन) जिस परमात्मा के यश से (रयिम्) एश्वर्य्य को (वनामहै) हम प्राप्त हों (तं, आभर) उसको दीजिये ।

भावार्थ—यहां परमात्मा के आनन्द को लाभ करके आनन्दित होने का वर्णन है ।

सोमाः पवन्त इन्दवोऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः ।
मित्राः सुवाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः ॥ १० ॥ २

सोमाः । पवंते । इंदवः । अस्मभ्यं । गातुवित्ऽतमाः । मित्राः । सुवानाः । अरेपसः । सुऽआध्यः । स्वःऽविदः ॥

पदार्थः—(इन्दवः) प्रकाशकाः (सोमाः) परमात्मनो ज्ञानादिगुणाः (गातुवित्तमाः) शब्दादिगुणेषुश्रेष्ठाः (मित्राः)

सर्वहिताः (सुवानाः) स्वसत्तया सर्वत्र विद्यमानाः (अरेपसः) अविद्यादिदोषरहिताः (स्वाध्यः) धारणार्हाः (स्वर्विदः) सर्वज्ञानहेतुत्वात्सर्वज्ञाः (अस्मभ्यम्) अस्मदर्थम् (पवन्ते) पवित्रतां प्रददतु ।

पदार्थ--(सोमाः) परमात्मा के ज्ञानादिगुण (इन्दवः) प्रकाशक (गातुवित्तमाः) जो शब्दादि गुणों में श्रेष्ठ हैं (मित्राः) सबके मित्र भूत हैं (सुवानाः) जो स्वसत्ता से सर्वत्र विद्यमान हैं, (अरेपसः) जो अविद्यादि दोषों से रहित हैं, जो (स्वाध्यः) धारण करने योग्य हैं, (स्वर्विदः) जो सर्व ज्ञान के हेतु होने के कारण सर्वज्ञ कहे जा सकते हैं, वे (अस्मभ्यम्) हमको (पवन्ते) पवित्रता प्रदान करें।

भावार्थ--परमात्मा के गुणों के वर्णन करने से ज्ञान और पवित्रता बढ़ती है ।

सुष्वाणासो व्यद्रिभिश्चिताना गोरधित्वचि ।
इषमस्मभ्यमभितः समस्वरन्वसुविदः ॥ ११ ॥

सुस्वानासः । वि । अद्रिऽभिः । चितानाः । गोः । अधि । त्वचि । इषं । अस्मभ्यं । अभितः । सं । अस्वरन् । वसुऽविदः ॥

पदार्थः—(गोः, अधित्वचि) अन्तःकरणे(अद्रिभिः) चित्तवृत्तिभिः (चितानाः) ध्यानविषयाः सन्तः (वि) विशेषेण (सुष्वाणासः) आविर्भूताः परमात्मगुणाः (अस्मभ्यम्) अस्मदर्थम् (अभितः) सर्वतः (इषम्) ऐश्वर्यं (समस्वरन्)

ददति अथचतेगुणाः (वसुविदः) सर्वविधज्ञानस्योत्पादकाः ।

पदार्थ—(गोरधित्वचि) अन्तःकरण में (अद्रिभिः) चित्त-वृत्तियों द्वारा (चिताना:) ध्यानकियेहुए (वि) विशेषरूपसे (सुष्वाणासः) आविर्भाव को प्राप्त हुए उस परमात्मा के गुण (अस्मभ्यम्) हम को (अभितः) सर्वप्रकारसे (इषम्) ऐश्वर्य्य (समस्वरन) देते हैं, और वे, परमात्मा के ज्ञानादि गुण (वसुविदः) सब प्रकार के ज्ञानों के उत्पादक हैं ॥

भावार्थ—यहाँ इन्द्रियों का अधिकरण जो मन है उसका नाम अधित्वक् है इस अभिप्राय से अधित्वचिके माने अन्तःकरण के हो सकते हैं । कई एक लोग इस के यह अर्थ करते हैं कि सोम कूटने वाले अनडुह् चर्म कानाम अधित्वक् है--अर्थात् गोचर्म में सोमकूटने का यहाँ वर्णन है, यह अर्थ वेद के आशय से सर्वथा विरुद्ध है क्यों कि ईश्वर के गुण वर्णन में गोचर्म का क्या काम ।

एते पूता विपश्चितः सोमासो दध्याशिरः ।
सूर्यासो न दर्शतासो जिगत्नवो ध्रुवा घृते ॥ १२ ॥

एते । पूताः । विपःऽचितः । सोमासः । दधिऽआशिरः ।
सूर्यासः । न । दर्शतासः । जिगत्नवः । ध्रुवाः । घृते ।

पदार्थः—(विपश्चितः) विज्ञानवर्धकाः (एते) एते परमात्मनो गुणाः (पूताः) येच शुद्धाः (सोमासः)शान्त्यादिभावप्रदाश्च (दध्याशिरः) धृत्यादिसद्गुणानां धारयितारः (सूर्यासः, न) सूर्य इव (दर्शताशः) सर्वमार्गप्रकाशकाः (जिगत्नवः) गतिशीलाः (घृते) नम्रान्तःकरणेषु (ध्रुवाः) स्थिराः भवन्ति ॥

पदार्थ—(विपश्चितः) विज्ञानके बढ़ाने वाले (एते) पूर्वोक्त, परमात्मा के विज्ञानादिगुण (पूताः) जो पवित्र हैं, (सोमासः) जो शान्त्यादिभावों के देने वाले हैं, (दध्याशिरः) धृत्यादिसद्गुणों के धारण करने वाले हैं, (सूर्यासः) सूर्यके (न) समान (दर्शतासः) सवमार्गों के प्रकाशक हैं (जिगत्नवः) गतिशील (घृते) नम्रान्तःकरणों में (ध्रुवाः) स्थिर होते हैं।

भावार्थ—जो लोग साधनसम्पन्न होकर अपने शील को बनाते हैं उनके अन्तःकरण रूपदर्पण में परमात्मा के सद्गुण अवश्यमेव प्रतिविम्बित होते हैं।

प्र सुन्वानस्यान्धसो मर्तो न वृत तद्वचः।
अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः॥ १३॥

प्र। सुन्वानस्य। अंधसः। मर्तः। न। वृत। तत्।
वचः। अप। श्वानं। अराधसं। हत। मखं। न। भृगवः॥

पदार्थः—(प्रसुन्वानस्य) उत्पादयतुः परमात्मनः (अन्धसः) उपासनीयस्य (तद्वचः) तस्य वाचम् (मर्तः) सन्मार्गे विघ्नकारिपुरुषः (नवृत) नगृह्णातु (श्वानम्) तं विघ्नकारिणम् च (राधसम्) योहि नास्तिकत्वेन सत्कर्म रहितस्तं (न) यथा (भृगवः) परिपक्कबुद्धयः (मखम्) हिंसायज्ञं घ्नन्ति एवं (अपहत) तं विघ्नकारिणमपिनाशयत।

पदार्थ—(प्रसुन्वानस्य) सर्वोत्पादक परमात्मा (अन्धसः) जो उपासनीय है, (तद्वचः) उसकी वाणी को (मर्तः) सन्मार्गमें विघ्न करने वाला पुरुष (नवृत) न ग्रहणकरे, और (श्वानम्) उस विघ्न

कारी को (राधसम्) जो नास्तिकता के भाव से सत्कर्मों से रहित है, उस को (न) जैसे (भृगवः) परिपक्वबुद्धिवाले (मखम्) हिंसारूपी यज्ञका हनन करते हैं इस प्रकार (अपहत) आपलोग उन विघ्नकारियों का हनन करें ॥

भावार्थ—इस मंत्र में हिंसा के दृष्टान्त से नास्तिकों की सङ्गति कात्याग वर्णन किया है ।

आजामिरत्के अव्यत भुजे न पुत्र ओण्योः ।
सरंज्जारो न योषणां वरो न योनिमासदम् ॥ १४ ॥

आ । जामिः । अत्के । अव्यत । भुजे । न । पुत्रः । ओण्योः । सरंत् । जारः । न । योषणां । वरः । न । योनिं । आऽसदं ॥

पदार्थः—(न) यथा (पुत्रः) सुतः (ओण्योः) मातापित्रोः (भुजे) बाहू (अव्यत) रक्षति एवम् (जामिरत्के) स्वोपासकरक्षकस्य परमात्मन आधारे विराजध्वम् यूयम् (न) यथा च (जारः) कफादि दोषाणां हन्ताऽग्निः (योषणाम्) स्त्रियमं (सरत्) प्राप्नोति (न) यथा च (वरः) वरः (योनिम्) वेदिं लभते एवंहि सर्वगुणाधारं परमात्मानं (आसदम्) प्राप्नुवन्तु भवन्तः ।

पदार्थ—(न) जैसे (पुत्रः) पुत्र (ओण्योः) माता पिता की (भुजे) भुजाओं की (अव्यत) रक्षा करता है इसी प्रकार (जामिरत्के) अपने उपासकों की रक्षा करने वाले परमात्मा के आधार पर आप लोग विराजमान हों । और (न) जैसे कि (जारः) "जारयतीति

जारोऽग्निः'' कफादि दोषों का हनन करने वाला अग्नि (योषणाम्) स्त्रियों को (सरत्) प्राप्त होता है और (न) जैसे कि, (वरः) वर (योनिम्) वेदी को (आसदम्) प्राप्त होता है, इसी प्रकार सर्वगुणाधार परमात्मा को आप लोग प्राप्त हों।

भावार्थ—यहां कई एक दृष्टान्तों से परमात्मा की प्राप्ति का वर्णन किया है। कई एक लोग यहां ''जारो न योषणां'' के अर्थ स्त्रैण पुरुष अर्थात् स्त्री लम्पट पुरुष के करते हैं यह अर्थ वेद के आशय से सर्वथा विरुद्ध है क्योंकि वेद सदाचार का रस्ता बतलाता है दुराचार का नहीं।

स वीरो दक्षसाधनो वि यस्तस्तम्भ रोदसी ।
हरिः पवित्रे अव्यत वेधा न योनिमासदम् ॥ १५ ॥

सः । वीरः । दक्षऽसाधनः । वि । यः । तस्तंभ । रोदसीऽइति । हरिः । पवित्रे । अव्यत । वेधाः । न । योनिं । आऽसदं ॥

पदार्थः—(सः) सपरमात्मा (वीरः) सर्वगुणसम्पन्नः (दक्षसाधनः) चातुर्यादिबलानां प्रदाता च (यः) यश्च (रोदसी) द्यावापृथिव्यौ (तस्तम्भ) आधरति सः (हरिः) दुर्गुणानां हन्ता परमात्मा (पवित्रे) पूतेऽन्तःकरणे तिष्ठन् (अव्यत) रक्षति (न) यथा (वेधाः) यजमानः (योनिं) स्वयज्ञमण्डपं (आसदम्) आश्रयति एवं परमात्मा पूतान्तःकरणे ।

पदार्थ—(सः) पूर्वोक्त परमात्मा (वीरः) सर्वगुणसम्पन्न

है (दक्षसाधनः) सब चातुर्य्यादि बलों का देने वाला है, (रोदसी) द्युलोक और पृथिवी लोक को (यः) जो (तस्तम्भ) सहारादिये खड़ा हैं, वह (हरिः) सब दुर्गुणों को हनन करने वाला परमात्मा (पवित्रे) पवित्र अन्तःकरण में विराजमान होकर (अव्यत) रक्षा करता है (न) जैसेकि, (वेधाः) यजमान (योनिम्) अपने यज्ञमण्डपमें (आसदम्) स्थिर होता है इसी प्रकार परमात्मा पवित्र अन्तःकरणों में ज्ञानगति से प्रविष्टहोकर उन को प्रकाश करता है ।

भवार्थ—जो लोग अपने अन्तःकरणों को पवित्र बनाते हैं अर्थात् मन बुद्धि आदिकों को शुद्ध करते हैं उनके अन्तः करणों में परमात्मा का अविर्भाव होता हैं ।

अव्यो वारेभिः पवते सोमो गव्ये अधि त्वचि ।
कनिक्रदद्वृषा हरिरिन्द्रस्याभ्येति निष्कृतम् ॥१६॥३॥

अव्यः । वारेभिः । पवते । सोमः । गव्ये । अधि । त्वचि ।
कनिक्रदत् । वृषा । हरिः । इंद्रस्य । अभि । एति । निःऽकृतं ॥

पदार्थः—(हरिः) परमात्मा (इन्द्रस्य) कर्मयोगिनः (निष्कृतम्) संस्कृतान्तःकरणम् (अभ्येति) आप्नोति (वृषा) सर्वकामप्रदः सः (गव्ये, अधित्वाची) इन्द्रियाधिष्ठातारिमनसि स्थिरो भूत्वा (कनिक्रदत) गर्जन् (पवते) रक्षति (अव्यः) रक्षकः (सोमः) परमात्मा (वारेभिः) पवित्रभावैः स्वभक्तान्रक्षति ।

पदार्थ—(हरिः) उक्त परमात्मा (इन्द्रस्य) कर्मयोगी के (निष्कृतम्) सद्गुणसम्पन्न अन्तःकरण, को (अभ्येति) प्राप्त

होता है, (वृषा) वह सबकामनाओं की वर्षा करने वाला (गव्ये) अधित्वचि, इन्द्रियों के अधिष्ठाता मनमें स्थिर होकर (कनिक्रदत्) गर्जता हुआ (पवते) रक्षा करता है, (सोमः) वह सर्वोत्पादक परमात्मा (अव्यः) जो सर्वरक्षक है वह (वारेभिः) पवित्र सद्भावों से सन्मार्गानुयायियों की रक्षा करता है ॥

भावार्थ—यहां कई एक लोग (गव्ये अधित्वचि) के अर्थ गोचर्म के करते हैं ऐसा करना वेद के आशय से सर्वथा विरुद्ध है न केवल वेदाशय से विरुद्ध है किन्तु प्रसिद्धि सेभी विरुद्ध है क्यों कि अधित्वचि के अर्थ गोचर्म पर गर्जना किये गये है और गोचर्म पर गर्जना अनुभव से सर्वथा विरुद्ध है इस अधित्वचि के अर्थ मनरूप अधिष्ठाता के ही ठीक हैं किसी अन्य वस्तु के नहीं ।

इत्येकशततमं सूक्तं तृतीयो वर्गश्च समाप्तः ।

यह १०१ का सूक्त और तीसरा वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ अष्टर्चस्य द्व्युत्तरशततमस्यसूक्तस्य—

१—८ त्रित ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः-१-४ ८ निचृदुष्णिक् । ५—७ उष्णिक् ॥ ऋषभः स्वरः ॥

अथ परमात्मनोगुणगुणिभावेन उपासनमुपादिश्यते ।

अब परमात्माके गुणों द्वारा उसकी उपासना कथन करते हैं ।

क्राणा शिशुर्महीनां हिन्वन्नृतस्य दीधितिम् ।
विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता ॥ १ ॥

क्राणा । शिशुः । महीनां । हिन्वन् । ऋतस्य । दीधितिं । विश्वा । परि । प्रिया । भुवत् । अध । द्विता ।

(अथ प्रकृतेर्जीवस्य च द्वैतं वर्ण्यते)
अब प्रकृति और जीवरूपसे द्वैत का वर्णन करते हैं।

पदार्थः—(शिशुः) प्रशस्यः सपरमात्मा (महिनाम्) महतः पृथिव्यादिलोकान् (क्राणा) रचयन् (ऋतस्य) सत्यतायाः (दीधितिम्) प्रकाशम् (हिन्वन्) प्रेरयति, अथच (विश्वा, परि) सर्वजनेषु (प्रिया) प्रियत्वं (भुवत्) प्रकटयति (अध) अथ (द्विता) द्वैतभावेन जीवेन प्रकृत्याच लोकं रक्षति।

पदार्थः—(शिशुः) अतिप्रशंसनीय परमात्मा (महीनाम्) बड़े से बड़े पृथिव्यादिलोकों को (क्राणा) रचता हुआ (ऋतस्य) सच्चाई के (दीधितिम्) प्रकाश को (हिन्वन्) प्रेरित करता है और वह (विश्वा, परि) सबलोगों के ऊपर (प्रिया) प्रियभाव (भुवत्) प्रकट करता है (अध) और (द्विता) द्वैतभाव से प्रकृति और जीव द्वारा इस संसार की रक्षा करता है।

भावार्थ—इस मंत्र में द्वैतवाद का वणन स्पष्टरीति से किया गया है।

उप त्रितस्य पाष्योऽरभक्त यद्गुहा पदम्।
यज्ञस्य सप्त धामभिरध प्रियम्॥ २॥

उप। त्रितस्य। पाष्योः। अभक्त। यत्। गुहा। पदं। यज्ञस्य। सप्त। धामऽभिः। अध। प्रियं॥

पदार्थः—(पाष्योः) प्रकृतिपुरुषरूपदृढाधिकरणमाश्रित्य (त्रितस्य) गुणत्रयस्य (पदम्) स्थानम् (उपाभक्त) समसेवत (यत्) यत पदम् (गुहा) प्रकृतिरूपगुहायां (यज्ञस्य) परमात्मसम्बन्धेन (सप्तधामभिः) महत्तत्त्वादिभिः सप्तभिरपि प्रकृतिभिः (अध, प्रियम्) अतिप्रियतां धारयति ।

पदार्थ—(पाष्योः) प्रकृति और पुरुषरूपी जो दृढ अधिकरण हैं उन के आधारपर (त्रितस्य) तीनोंगुणोंके (पदं) पद को (उपाभक्त) सेवनकिया (यत्) जोपद (गुहा) प्रकृतिरूपीगुहा में (यज्ञस्य) परमात्मा के सम्बन्धसे (सप्तधामभिः) महत्तत्त्वादि सातो प्रकृतिओं द्वारा (अध, प्रियं) अत्यन्त प्रियता को धारण करता है ।

भावार्थ—इस मंत्र में महत्तत्त्वादि कार्य्यकारणों द्वारा सृष्टि का निरूपण किया गया है ।

त्रीणि त्रितस्य धारया पृष्ठेष्वेरया रयिम् ।
मिमीते अस्य योजना वि सुक्रतुः ॥ ३ ॥

त्रीणि । त्रितस्य । धारया । पृष्ठेषु । आ । ईरय । रयिं ।
मिमीते । अस्य । योजना । वि । सुऽक्रतुः ॥

पदार्थः—(त्रितस्य, धारया) गुणत्रयस्य धारणाशक्त्या (पृष्ठेषु) ब्रह्माण्डे (त्रीणि) त्रीणि भूतानि (ईरय) प्रेरयन् परमात्मा (रयिम्) ऐश्वर्यम् (मिमीते) उत्पादयति (सुक्रतुः) सुप्रज्ञः सच (अस्य, योजना) अस्य ब्रह्माण्डस्य योजनां करोति ।

पदार्थ—(त्रितस्य धारया) तीनों गुणोंकी धारणारूप शक्तिमे (पृष्ठेषु) इसब्रह्माण्डमें (त्रीणि) तीन प्रकारके भूतों को (ईरय) प्रेरणा करता हुआ परमात्मा (रयिं) ऐश्वर्य्यको (मिमीते) उत्पन्न करता है (सुक्रतुः) शोभनप्रज्ञावाला परमात्मा (अस्य, योजना) इस ब्रह्माण्डकी योजना करता है।

भावार्थ—प्रकृतिके सत्व, रज, तम, तीनों गुणों द्वारा परमात्मा इस ब्रह्माण्ड की रचना करता है।

जज्ञानं सप्त मातरों वेधामशासत श्रिये।
अयं ध्रुवो रयीणां चिकेत यत् ॥ ४ ॥

जज्ञानं । सप्त । मातरः । वेधां । अशासत । श्रिये । अयं । ध्रुवः । रयीणां । चिकेत । यत् ॥

पदार्थः—(सप्तमातरः) महत्तत्त्वादिप्रकृतयः सप्तसंख्याकाः (जज्ञानम) आविर्भूतम् (वेधाम्) परमात्मानम् (श्रियै) ऐश्वर्याय (अशासत) आश्रयन्ते (अयम्) अयं परमात्मा (ध्रुवः) अचलः (यत) यश्च (रयीणाम) सर्वलोकैश्वर्याणां (चिकेत) ज्ञातास्ति।

पदार्थः—(सप्त.मातरः)महत्तत्त्वादि सातों प्रकृतियें (जज्ञानं) आविर्भाव को प्राप्त (वेधां) जो परमात्मा है (श्रिये) ऐश्वर्य्य केलिये उसको (अशासत) आश्रयण करती हैं (अयं) उक्तपरमात्मा (ध्रुवः) अचल रूपसे विराजमान है, और (यत्) जो (रयीणां) सब लोकलोकान्तरोंके ऐश्वर्य का (चिकेत) ज्ञाता है।

भावार्थ—इस में महत्तत्त्वादि सातों प्रकृतियों का वर्णन है।

अस्य व्रते सजोषसो विश्वे देवासो अद्रुहः ।
स्पार्हा भवन्ति रन्तयो जुषन्त यत् ॥ ५ ॥ ४ ॥

अस्य । व्रते । सऽजोषसः । विश्वे । देवासः । अद्रुहः ।
स्पार्हाः । भवंति । रंतयः । जुषंत । यत् ॥

पदार्थः—(अस्य) अस्य परमात्मनः (व्रत) नियमे (सजोषसः) संगताःसन्तः (विश्वे, देवासः) सम्पूर्णविद्वांसः (अद्रुहः) द्रोहरहिताः सन्तः परमात्मानमुपासीरन् (यत) यदि (रन्तयः) रमणशीलास्ते (जुषन्त) प्रेम्णा परमात्मानं भजन्ते तदा (स्पार्हाः) लोकस्यातिहितकारकाः (भवन्ति) भवन्ति ।

पदार्थ—(अस्य) इस परमात्मा के (व्रते) नियम में (सजोषसः) संगतहुए (विश्वे, देवासः) सम्पूर्णविद्वान् (अद्रुहः) द्रोह रहित होकर उक्त परमात्मा की उपासना करें (यत्) यदि (रंतयः) रमणशील उक्तविद्वान् (जुषंत) उक्त परमात्माकी प्रीति से भक्ति करते हैं (स्पार्हाः) तो संसारके अत्यन्त प्रिय करने वाले (भवन्ति) होते हैं ।

भावार्थ—जो लोग राग द्वेष रहित होकर परमात्मा की भक्ति करते हैं वे अपने सामर्थ्यसे संसार का बहुत उपकार कर सकते हैं ।

यमी गर्भमृतावृधो दृशे चारुमजीजनन् ।
कविं मंहिष्ठमध्वरे पुरुस्पृहम् ॥ ६ ॥

यं। ईमिति। गर्भं। ऋतऽवृधः। दृशे। चारुं। अजीजनन्। कविं। मंहिष्ठं। अध्वरे। पुरुऽस्पृहं॥

पदार्थः—(ऋतवृधः) यज्ञकर्मसु कुशला विद्वांसः (यम, ईम्) यस्य परमात्मनः (गर्भम्) ज्ञानरूपगर्भम् दधति (दृशे) लोकप्रकाशाय तेन (चारुम्) सुन्दरसन्तानम (अजीजनन्) उत्पादयन्ति, स परमात्मा (कविम्) सर्वज्ञः (मंहिष्ठम्) पूजनीयतमः (पुरुस्पृहम्) सर्वोपास्यः (अध्वरे) ज्ञानयज्ञे चोपास्यः।

पदार्थ—(ऋतवृधः) यज्ञकर्ममें कुशलविद्वान् (यमी) जिस उक्त परमात्माके (गर्भं) ज्ञानरूपगर्भको धारण करते हैं (दृशे) संसारके प्रकाशके लिये उससे (चारुं) सुन्दर संतान को (अजीजनन्) उत्पन्नकरते हैं, वह परमात्मा (कविं) सर्वज्ञ (मंहिष्ठं) अत्यन्त पूजनीय, और (पुरुस्पृहं) सबका उपास्यदेव है (अध्वरे) ज्ञानयज्ञों में उक्त परमात्मा उपासनीय है।

भावार्थ—जो इस चराचर ब्रह्माण्ड का उत्पादक परमात्मा है उस की उपासना ज्ञानयज्ञ, योगयज्ञ, तपोयज्ञ, इत्यादि अनन्त प्रकार के यज्ञों द्वारा की जाती है।

समीचीने अभीत्मना यह्वी ऋतस्यं मातरा।
तन्वाना यज्ञमानुषग्यदंञ्जते॥ ७॥

समीचीने इति संऽईचीने। अभि। त्मना। यह्वी इति। ऋतस्यं। मातरा। तन्वानाः। यज्ञं। आनुषक्। यत्। अंजते।

पदार्थः—सपरमात्मा (ऋतस्य) अस्यसंसारस्य (मातरा) निर्मातारौ द्युलोकपृथिवीलोकौ रचयति । तौच लोकौ (समीचीने) सुन्दरौ (यह्वी) दीर्घौच (तन्वानाः) अस्य प्रकृतिरूपतन्तुजालस्य विस्तारयितारौ (त्मना)तस्य परमात्मनः स्वसामर्थ्येनोत्पन्नौ च स्तः । (यत्)यदा योगिजनाः (यज्ञम्) इमं ज्ञानयज्ञं (आनुषक्) आनुषङ्गिकरूपेण सेवन्ते तदा (अभ्यञ्जते) उक्तपरमात्मनः साक्षात्कारं प्राप्नुवन्ति ।

पदार्थ—वह परमात्मा (ऋतस्य) इस संसारके (मातरा) निर्माणकरनेवाले द्युलोक और पृथिवी लोकको रचता है वह द्युलोक और पृथिवी लोक (समीचीने) सुन्दर हैं (यह्वी) बड़े हैं (तन्वानाः) इस प्रकृतिरूपी तन्तुजाल के विस्तृ करने वाले हैं और (त्मना) उस परमात्मा के आत्मभूत सामर्थ्य से उत्पन्न हुए हैं (यत्)जब योगीलोग (यज्ञं) इस ज्ञानयज्ञको (आनुषक्) आनुषङ्गिक रूपमे सेवन करते हैं अर्थात् साधन रूपमे आश्रयण करते हैं तो (अभ्यंजते) उक्त परमात्मा के साक्षात्कार को प्राप्त होते हैं ।

भावार्थ—जो लोग इस कार्य्य संसार और इस के कारणभूत ब्रह्म के साथ यथायोग्य व्यवहार करते हैं वे शक्ति सम्पन्न हो कर इस संसार की यात्रा करते हैं ।

क्रत्वा शुक्रेभिरक्षभिर्ऋणोरप व्रजं दिवः ।
हिन्वन्नृतस्य दीधितिं प्राध्वरे ॥ ८ ॥ ५ ॥

क्रत्वा । शुक्रेभिः । अक्षऽभिः । ऋणोः । अप । व्रजं । दिवः । हिन्वन् । ऋतस्य । दीधितिं । प्र । अध्वरे ॥

पदार्थः—हे परमात्मन्! भवान् (व्रजम्) ज्ञानरूप प्रकाशेन व्रजनाद्व्रजोऽन्धकारं तत् (कृत्वा) कर्मणा (शुक्रेभिः, अक्षभिः) बलवद्भिर्ज्ञानेन्द्रियैश्च (दिवः) द्युलोकात् (अपर्णोः) अपसारयतु (प्राध्वरे) अस्मिन् ज्ञानयज्ञे च (ऋतस्य, दीधितिम्) सत्यताप्रकाशम् (हिन्वन्) प्रेरयन् मदज्ञानमपनयतु।

पदार्थ—हे परमात्मन्! आप (व्रजं) व्रजतीति व्रजः-अन्धकार, जो ज्ञानरूपप्रकाशसे दूरभागजाय उसको (कृत्वा) कर्मों के द्वारा (शुक्रेभिः, अक्षभिः) बलवान् ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा (दिवः) द्युलोकसे (अपर्णोः) दूर करें और (प्राध्वरे) इस ज्ञानयज्ञ में (ऋतस्य दीधितिं) सच्चाई के प्रकाशको (हिन्वन्) प्रेरणा करते हुए आप हमारे अज्ञान को दूर करें।

भावार्थ—इस मंत्र में अज्ञान की निवृत्ति के साधनों का वर्णन है अर्थात् जो पुरुष ज्ञानादि द्वारा जप तप आदि संयम सम्पन्न हो कर तेजस्वी बनते हैं वे अज्ञान को निवृत्त करके प्रकाशस्वरूप ब्रह्म में विराजमान होते हैं

इति द्व्युत्तरशततमंसूक्तं पञ्चमो वर्गश्च समाप्तः।
यह १०२ का सूक्त और पाचवाँ वर्ग समाप्त हुआ।

प्र पुनानाय वेधसे सोमाय वच उद्यतम्।
भृतिं न भरा मतिभिर्जुजोषते॥ १॥

प्र। पुनानाय। वेधसे। सोमाय। वचः। उत्ऽयतं।
भृतिं। न। भर। मतिऽभिः। जुजोषते॥

पदार्थः—(सोमाय) सर्वोत्पादकाय (वेधसे) जगतः कर्त्रे (पुनानाय) सर्वस्य पावकाय (जुजोषते) शुभकर्माणि योजकाय परमात्मने (मतिभिः) भक्त्या मम स्तुतिभिः (वचः) वाक् (उद्यतम्) उद्यता भवतु । (भृतिं, न) भृत्यमिव मां सपरमात्मा (भर) भरतु ।

पदार्थ—(सोमाय) सर्वोत्पादक (वेधसे) जो सबका विधाता परमात्मा है, (पुनानाय) सबको पवित्र करने वाला है, (जुजोषते) जो शुभकर्मों में युक्त करने वाला है उस के लिये (मतिभिः) हमारी भक्तिरूपी (वचः) वाणी स्तुतियों के द्वारा (उद्यतम्) उद्यत हों, और उक्त परमात्मा (भृतिम्) भृत्य के (न) समान हमें (भर) ऐश्वर्य्य से परिपूर्ण करे, ॥

भावार्थ—जो लोग परमात्मपरायण होते हैं परमात्मा उन्हें अवश्यमेव ऐश्वर्य्यों से भरपूर करता है, वा यों कहो कि जिसप्रकार स्वामी भृत्य को भृति देकर प्रसन्न होता है इसी प्रकार परमात्मा अपने उपासकों का भरण पोषण करके उन्हे उन्नतिशील बनाता है ।

परि वाराण्यव्यया गोभिरञ्जानो अर्षति ।
त्री सधस्था पुनानः कृणुते हरिः ॥ २ ॥

परि । वाराणि । अव्यया । गोभिः । अंजानः । अर्षति ।
त्री । सधऽस्था । पुनानः । कृणुते । हरिः ॥

पदार्थः—(गोभिः, अञ्जानः) अन्तःकरणवृत्तिभिः साक्षात्कृतः परमात्मा (अव्यया) स्वरक्षायुक्तशक्त्या (वाराणि) वरणार्हाणि अन्तःकरणानि (पर्यर्षति) प्राप्नोति ।(त्री,

सधस्था) कारणसूक्ष्मस्थूलात्मकत्रिविधशरीराणि (पुनानः) पवित्रयन् (हरिः) अन्तःकरणस्य मलविक्षेपादिदोषनाशकः (कृणुते) उपासकमपि पावयति ।

पदार्थ—(गोभिरञ्जानो) अन्तःकरण की वृत्तियों द्वारा साक्षात्कारकोप्राप्त हुआ परमात्मा (अव्यया) अपनी रक्षायुक्त शक्तिसे (वाराणि) वरणयोग्य अर्थात् पात्रता को प्राप्त अन्तःकरणों को (परि, अर्षति) प्राप्त होता है, (त्री, सधस्था) कारण, सूक्ष्म और स्थूल तीनों शरीरोंको (पुनानः) पवित्र करता हुआ (हरिः) वह अन्तःकरण के मलविक्षेपादिदोषों को हरणकरने वाला परमात्मा (कृणुते) उपासक को पवित्र करता है ।

भावार्थ—जो लोग अन्तःकरण के मलविक्षेपादि दोषों को दूर करते हैं वे लोग परमात्मज्ञान के अधिकारी बन कर परमात्मज्ञान का लाभ करते हैं ।

परि॑ कोश॑ मधु॒श्चुत॑म॒व्यये॒ वारे॑ अर्षति ।
अ॒भि वाणी॒रृषी॑णां स॒प्त नू॒षत ॥ ३ ॥

परि॑ । कोश॑म् । म॒धु॒ऽश्चुत॑म् । अ॒व्यये॑ । वारे॑ । अ॒र्ष॒ति॒ ।
अ॒भि । वाणीः॑ । ऋषी॑णाम् । स॒प्त । नू॒ष॒त॒ ॥

पदार्थः—(मधुश्चुतम्) प्रेमरूपमाधुर्यस्रोतः (कोशम्) अन्तःकरणम् (अव्यये, वारे) रक्षायुक्तं वरणीयंच तत्र परमात्मा (पर्यर्षति) विराजते (वाणीः, अभि) भक्तिमभिलक्ष्य (ऋषीणाम्, सप्त) ज्ञानेन्द्रियाणां सप्तच्छिद्रान् (नूषत) अलंकरोति ।

पदार्थ—(मधुश्चुतम्) जो प्रेमरूपी माधुर्य्य का स्रोत (कोशम्) अन्तःकरण है (अव्यये) रक्षायुक्त (वारे) वरणीय जो स्थिर है, उसमें (परि, अर्षति,) परमात्मा प्राप्त होता है, और (वाणीः, अभि) भक्ति को लक्ष्य रखकर (ऋषीणाम्, सप्त) जो ज्ञानेन्द्रियों के सप्त छिद्र हैं उन को (नूषत) विभूषित करता है ॥

भावार्थ—परमात्मा उपासक की ज्ञानेन्द्रियों को निर्मलकरके उनमें शुद्ध ज्ञान प्रकाशित करता है ।

परि॑ णे॒ता म॑ती॒नां वि॒श्वदे॑वो॒ अदा॑भ्यः ।
सोमः॑ पुना॒नश्च॒म्वो॑र्विश॒द्धरिः॑ ॥ ४ ॥

परि॑ । ने॒ता । म॒ती॒नाम् । वि॒श्वऽदे॑वः । अदा॑भ्यः । सोमः॑ । पु॒ना॒नः । च॒म्वोः॑ । वि॒शत् । हरिः॑ ।

पदार्थः—(विश्वदेवः) अखिलविश्वप्रकाशकः (अदाभ्यः) अनाभिभाव्यः परमात्मा (मतीनां, नेता) सर्वेषां बुद्धेर्नेतास्ति (सोमः) सर्वोत्पादकः (हरिः) परमात्मा (चम्वोः) जीवप्रकृत्योः (परिविशत्) प्रविशति ।

पदार्थ—(विश्वदेवः) जो सम्पूर्ण विश्वका प्रकाशक परमात्मा है, (अदाभ्यः) किसी से तिरस्कृत नहीं हो सकता किन्तु सर्वोपरि होकर विराजमान है, (हरिः) परमात्मा (चम्वोः) जीव और प्रकृतिरूपी दोनों प्रकृतियों में (परिविशत्) प्रवेशकरता है ॥

भावार्थ—परमात्मा शुभ बुद्धियों का प्रदान करने वाला है।

परि॒ दैवी॒रनु॑ स्व॒धा इन्द्रे॑ण याहि स॒रथ॑म् ।
पु॒ना॒नो वा॒घद्वा॒घद्भि॒रम॑र्त्यः ॥ ५ ॥

परि॑ । दैवीः॑ । अनु॑ । स्वधाः॑ । इन्द्रे॑ण । याहि॑ । सऽरथ॑म् ।
पुनानाः॑ । वाघत् । वाघत्ऽभिः॑ । अम॑र्त्यः ॥

पदार्थः—(इन्द्रेण) कर्मयोगिणा (सरथम्) समानभावं प्राप्य (पुनानाः) सर्वेषां पावकः परमात्मा (स्वधाः) स्वधया सृष्टिं कुर्वन् (दैवीः, अनु) दैव्याः सम्पत्तेरनुकुलं (परियाहि) याति (वाघद्भिः) वैदिकैश्च सह (अमर्त्यः) अव्ययः परमात्मा (वाघत्) शब्दायमानः स्वप्रकाश्यप्रकाशक भावरूपयोगेन वैदिकान्पवित्रयति ।

पदार्थ—(इन्द्रेण) कर्मयोगी के साथ (सरथम्) समान भाव को प्राप्त होकर (पुनानाः) सबको पवित्र करने वाला परमात्मा (स्वधाः) स्वधा से सृष्टि करता हुआ (देवीरनु) दैवी सम्पत्ति के अनुकूल (परियाहि) गमन करता है । और (वाघद्भिः) वैदिक लोगों के साथ (वाघत्) सशब्द (अमर्त्यः) अमरणधर्मा परमात्मा अपने प्रकाश्य-प्रकाशकभावरूपी योग से वैदिक लोगों को पवित्र करता है । ॥

भावार्थ—इस मंत्र में दैवी सम्पत्ति के गुणों का वर्णन किया है ।

परि॒ सप्ति॒र्न वा॒ज॒युर्दे॒वो दे॒वेभ्यः॑ सु॒तः ।
व्या॒न॒शिः पव॑मानो॒ वि धा॑वति ॥ ६ ॥ ६ ॥

परि॑ । सप्तिः॑ । न । वाजऽयुः । देवः । देवेभ्यः॑ । सु॒तः ।
वि॒ऽआ॒नशिः॑ । पव॑मानः । वि । धा॒व॒ति॒ ॥

पदार्थः—(देवः) दिव्यस्वरूपः परमात्मा (देवेभ्यः, सुतः) विद्वद्भ्यः संस्कृतोऽयः (वाजयुः) ऐश्वर्यसम्पन्नश्च

(व्यानाशिः) सर्वव्यापकः (पवमानः) पावयिता सपरमात्मा (सातिः, न) विद्युदिव (परिधावति) सर्वत्र विराजते ।

पदार्थ—(देवः) उक्त दिव्यस्वरूप परमात्मा (देवेभ्यः, सुतः) जो विद्वानों के लिये संस्कृत है, और (वाजयुः) ऐश्वर्यसम्पन्न (व्यानशिः) सर्वव्यापक (पवमानः) सबको पवित्र करने वाला वह परमात्मा (सातिः) विद्युत् के (न) समान (परिधावति) सर्वत्र विराजमान हो रहा है ।

भावार्थ—इस में परमात्मा की व्यापकता को विद्युत् के दृष्टान्त से स्पष्ट किया है ।

इतित्र्युत्तरैकशततमं सूक्तं षष्ठोवर्गश्च समाप्तः

यह १०३ का सूक्त और छठा वर्ग समाप्त हुआ ।

सखाय आ निषीदत पुनानाय प्रगायत ।
शिशुं न यज्ञैः परि भूषत श्रिये ॥ १ ॥

सखायः । आ । निसीदत । पुनानाय । प्र । गायत । शिशुं । न । यज्ञैः । परि । भूषत । श्रिये ॥

पदार्थः—(सखायः) हे उपासकाः ! यूयम् (आ, निषीदत) यज्ञवद्यामागत्य विराजध्वम् (पुनानाय) सर्वशोधकाय परमात्मने (प्रगायत) साधु गानं कुरुत (श्रिये) ऐश्वर्याय (शिशुम्, न) शंसनीयमिव (यज्ञैः) ज्ञानयज्ञादिभिः (परि, भूषत) अलंकुरुत ।

पदार्थ—(सखायः) हे उपासक लोगो ! आप (आनिषीदत) यज्ञवेदी पर आकर स्थिर हों (पुनानाय) जो सबको पवित्रकरने वाला है, उसके लिये [प्रगायत]गायन करो[श्रिये] ऐश्वर्य के लिये[शिशुम्] "यःशंसनीयोभवतिसशिशुः"प्रशंसा के योग्य है उसको [यज्ञैः) ज्ञानयज्ञादि द्वारा (परिभूषत) अलंकृत करो।

भावार्थ—उपासक लोग परमात्मा का ज्ञानयज्ञादि द्वारा ध्यान करके उसके ज्ञान को सर्वत्र प्रचार करते हैं।

समीं वत्सं न मातृभिः सृजता गयसाधनम्।
देवाव्यं१मदमभि द्विशवसम् ॥ २ ॥

सं । ईमिति । वत्सं । न । मातृऽभिः । सृजत । गयऽसाधनं ।
देवऽअव्यं । मदं । अभि । द्विऽशवसं ॥

पदार्थः—(गयसाधनम्) ज्ञानसाधनम् (देवाव्यम्) देवरक्षकम् (मदम्) आनन्दमयं (द्विशवसम्) महाबलिनम् (वत्सं, न) सर्वाभिव्यक्तशक्तिमिव स्थितं (ईम्) इमं परमात्मानम् (मातृभिः, संसृजत) विद्वांसः बुद्धिवृत्तिभिः साक्षात्कुर्वन्ति ।

पदार्थ—(गयसाधनम्) ज्ञानका साधन जो परमात्मा है (देवाव्यम्) देवों का रक्षक (मदम्) जो आनन्दस्वरूप है (द्विशवसम् जो बलिष्ठ है (वत्सं, न) जो सर्वाभिव्यक्त शक्ति के समान है (ईम्) इसको (मातृभिः, संसृजत) विद्वान्लोग बुद्धिवृत्तिद्वारा साक्षात्कार करते हैं ॥

भावार्थ—परमात्मा दैवीसम्पत्तिवाले पुरुषों को अपनी दिव्य शक्तियों से विभूषित करता है और जो लोग अनाचारी आसुरी भाव सम्पन्न हैं उन को परमात्मा ज्ञान की ज्योतिसे देवपुरुषों के समान लाभ नहीं होता तात्पर्य यह है कि दिव्यपुरुषों में परमात्मा की ज्योति प्रतिबिम्बित होती है और तमरूप भावों से दूषित पुरुषों में नहीं ।

पुनातां दक्षसाधनं यथा शर्धाय वीतये ।
यथा मित्राय वरुणाय शन्तमः ॥ ३ ॥

पुनात । दक्षऽसाधनं । यथा । शर्धाय । वीतये । यथा । मित्राय । वरुणाय । शंऽतमः ॥

पदार्थः—(दक्षसाधनम्) सम्पूर्णज्ञानानामेकमात्राधारः। परमात्मा यस्तस्योपासनां (शर्धाय) बलाय (वीतये) तृप्तये (पुनात) कुरुत (यथा) येन प्रकारेण (मित्राय) उपदेशकाय (वरुणाय) अध्यापकायच (शन्तमः) ससुखदः स्यात तथोपासीध्वम् ।

पदार्थ—(दक्षसाधनम्) सम्पूर्ण ज्ञानों का एक मात्र आधार जो परमात्मा है,उसकी उपासना (शर्धाय) बलके लिये (वीतये) तृप्ति के लिये (पुनात,) आपलोग करें (यथा) जिसप्रकार (मित्राय)उपदेशक के लिये और (वरुणाय) अध्यापक के लिये (शन्तमः) सुखों का विस्तार करने वाला वह परमात्मा हो, उस प्रकार आप उसके ज्ञान को लाभ करें ।

भावार्थ—जिसप्रकार ग्रह उपग्रहों काकेन्द्र सूर्य है इसीप्रकार सबज्ञानों का आधार परमात्मा है जो लोग ज्ञानी तथा विज्ञानी बन कर

देश का सुधार करना चाहते हैं उन को चाहिये परमात्मा से ज्ञानरूपी दीप्ति का लाभ करें।

अस्मभ्यं त्वा वसुविदमभि वाणीरनूषत ।
गोभिष्टे वर्णमभि वासयामसि ॥ ४ ॥

अस्मभ्यं। त्वा। वसुऽविदं। अभि। वाणीः। अनूषत।
गोभिः। ते। वर्णं। अभि। वासयामसि ॥

पदार्थः--(वसुविदम्) विविधैश्वर्यप्रदं भवन्तं (अस्मभ्यम्) अस्माकम् (वाणीः) स्तुतिवाक् अभ्यनूषत) वर्णयतु (ते) तव (वर्णं) वर्णनम् (गोभिः) चित्तवृत्तिभिः (अभिवासयामसि) चित्ते वासयाम।

पदार्थ--(वसुविदम्) सम्पूर्णप्रकारके ऐश्वर्यों को देने वाले आपको (अस्मभ्यम्) हमारी (वाणीः) स्तुतिरूपवाणी (अभ्यनूषत) वर्णन करे (ते) तुम्हारे (वर्णम्) वर्णन को (गोभिः) चित्तवृत्तियों द्वारा (अभिवासयामसि) अपने चित्तमें बसायें ॥

भावार्थ--परमात्मा अनन्तगुणसम्पन्न है उस के गुणों के वर्णन को जो पुरुष श्रवण मनन और निदिध्यासन द्वारा चित्त में बसाते हैं वे पुरुष अवश्यमेव ज्ञानयोगी बनते हैं।

स नो मदानां पत इन्दो देवप्सरा असि ।
सखेव सख्ये गातुवित्तमो भव ॥ ५ ॥

सः । नः । मदानां । पते । इंदोऽइति । देवऽप्सराः । असि । सखाऽइव । सख्ये । गातुवित्ऽतमः । भव ॥

पदार्थः--(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (मदानांपते) आनन्दानां स्वामिन् ! (सः) प्रसिद्धो भवान् (देवप्सराः) दिव्यरूपः (असि) अस्ति (नः) अस्मभ्यम् (सखेव, सख्ये) यथा सखा स्वमित्रम् (गातुवित्तमः) मार्गं दर्शयति एवं भवानामिमार्गदर्शकः (भव) भवतु ।

पदार्थ--(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (मदानां, पते) आनन्दपते परमात्मन् ! (सः) पूर्वोक्तगुणसम्पन्नआप (देवप्सराः) दिव्यरूप (असि) हो (नः) हमारे लिये (सखेव, सख्ये) जैसे मित्र अपने मित्र के लिये (गातुवित्तमः) मार्ग दिखलाता है इसी प्रकार आप भी रास्ता दिखलानेवाले (भव) हों ॥

भावार्थ--परमात्मा सबको सन्मार्ग दिखलाने वाला है और जिसप्रकार मित्र अपने मित्रका हितचिन्तन करताहै इसप्रकार परमात्मा सबका हितचिन्तन करने वाला है

सनेमि कृध्य१स्मदा रक्षसं कंचिदत्रिणम् ।
अपादेवं द्वयुमंहो युयोधि नः ॥ ६ ॥ ७ ॥

सनेमि । कृधि । अस्मत् । आ । रक्षसं । कं । चित् । अत्रिणं । अप । अदेवं । द्वयुं । अंहः । युयोधि । नः ॥

पदार्थः--हे परमात्मन् ! भवान् (अस्मत्) अस्माद्यज्ञकर्तुः (सनेमि) शाश्वतिकमैत्रीं (कृधि) उत्पादयतु

(कञ्चिदत्रिणम्) कञ्चिदपि हिंसकम् (रक्षसं) राक्षसम् (अपादेवम्) दिव्यसम्पत्तिगुणरहितम् (द्वयुम्) सत्यासत्यमायायुक्तम् मर्त्तोऽपसारयतु (नः) अस्माकम् (अंहः) पापम् (युयोधि) अपहन्तु ।

पदार्थ—हे परमात्मन्! आप इस यज्ञकर्ताके (सनेमि) सनातनकाल के मैत्रीभवनको (कृधि,) धारण करें (कञ्चिदत्रिणम्) कोई भी हिंसक क्यों न हो उसको (रक्षसम्) जो राक्षस हो (अपादेवम्) जो दैवीसम्पत्ति के गुणों से रहित है (द्वयुम्) झूठ सच की माया से मिला हुआ है, उसको हमसे दूर करो और (नः) हमारे (अंहः) पापों को (युयोधि) दूर करो ।

भावार्थ—परमात्मा पापी पुरुषों का हननकरके निष्कपटता का प्रचार करता है ।

तं वः सखायो मदाय पुनानमभि गायत ।
शिशुं न यज्ञैः स्वदयन्त गूर्तिभिः ॥ १ ॥

तं । वः । सखायः । मदाय । पुनानं । अभि । गायत ।
शिशुं । न । यज्ञैः । स्वदयंत । गूर्तिऽभिः ॥

पदार्थः—(सखायः) हे उपासकाः! (यज्ञैः, स्वदयन्तः) यतोयूयं यज्ञैः परमात्मानं स्तुथ अतः (गूर्तिभिः) स्तुतिभिः (तं) उक्तपरमात्मानम् (वः, पुनानम्) युष्माकं पावयितारम् (शिशुम्) शंसनीयम् (मदाय) आनन्दाय (अभिगायत) सम्यग्गायत ।

पदार्थ— (सखायः) हे उपासक लोगो ! (यज्ञैः स्वदयन्तः) जो कि आपलोग यज्ञद्वारा परमात्मा का स्तवन करते हैं (गूर्तिभिः) स्तुतियों द्वारा (तम्) उस परमात्मा को (वः पुनानम्) जो आपसबका पवित्रकरनेवाला है (शिशुम्) प्रशंसनीय है, उसको आनन्दके लिये (अभिगायत) गायन करें ॥

भावार्थ—जो लोग परमात्मा के यश को गायन करते हैं वे अवश्यमेव परमात्मज्ञान को प्राप्त होते हैं ।

सं वत्स इव मातृभिरिन्दुर्हिन्वानो अंज्यते ।
देवावीर्मदो मतिभिः परिष्कृतः ॥ २ ॥

सं । वत्सः । इव । मातृऽभिः । इंदुः । हिन्वानः । अज्यते ।
देवऽअवीः । मदः । मतिऽभिः । परिऽकृतः ॥

पदार्थः—(देवावीः) देवानां रक्षकः(इन्दुः)प्रकाशमयः परमात्मा (हिन्वानः) उपास्यमानः (मतिभिः) चित्तवृत्तिभिः (समज्यते) उपास्यते । सः (मदः, वत्सः, इव) परमानन्द इव (मतिभिः) ज्ञानेन्द्रियैः (परिष्कृतः) संस्कृतः सन् ध्यानविषयोभवति ।

पदार्थ—(देवावीः) देवताओं कारक्षक (इन्दुः)प्रकाशस्वरूप परमात्मा (हिन्वानः) । उपास्यमान (मतिभिः) चित्तवृत्तियों द्वारा (समज्यते) उपासन किया जाता है वह (मदः वत्स, इव) परमानन्द के समान (मातृभिः) ज्ञानेन्द्रियों द्वारा (परिष्कृतः) परिष्कारकोप्राप्त ध्यान विषय होताहै ।

भावार्थ—जो लोग अपनी चित्तवृत्तियों को निर्मल करके उस

परमात्मा का ध्यान करतेहैं परमात्मा अवश्यमेव उनके ध्यानका विषय होता है ।

अयं दक्षाय साधनोऽयं शर्धाय वीतये ।
अयं देवेभ्यो मधुमत्तमः सुतः ॥ ३ ॥

अयं । दक्षाय । साधनः । अयं । शर्धाय । वीतये । अयं । देवेभ्यः । मधुमत्ऽतमः । सुतः ॥

पदार्थः—(अयम्) अयं परमात्मा (दक्षाय,साधनः) चातुर्य्यस्यैकमात्रसाधनोऽस्ति (अयम) अयंच (शर्धाय) बलाय (वीतये) तृप्तयेच (मधुमत्तमः) आनन्दमयः (अयं) अयंच (देवेभ्यः) विद्वद्भ्यः (सुतः) अभिव्यक्तोऽस्ति ।

पदार्थ—(अयम्) वहपरमात्मा जो (दक्षाय,साधनः) चातुर्य का एकमात्र साधनहै (अयम्) वह (शर्धाय) बलके लिये (मधुमत्तमः) आनन्दमय है (अयम्) वह (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये (सुतः) अभिव्यक्त है ।

भावार्थ—सब प्रकार की नीति का साधन एकमात्र परमात्माहै जो विद्वान् नीतिनिपुण होना चाहते हैं वे भी एकमात्र परमात्मा की शरण लें ।

गोमन्न इन्दो अश्ववत्सुतः सुदक्ष धन्व ।
शुचिं ते वर्णमधि गोषु दीधरम् ॥ ४ ॥

गोऽमत् । नः । इंदोऽइति । अश्वऽवत् । सुतः । सुऽदक्ष । धन्व । शुचिं । ते । वर्णं । अधि । गोषु । दीधरं ॥

पदार्थः—(इन्दो) हेप्रकाशस्वरूप परमात्मन् ? (सुदक्ष) हेसर्वज्ञ (सुतः) भवान् सर्वत्राभिव्यक्तः (नः) अस्मभ्यम् (गोमत्) ज्ञानयुक्तम् (अश्ववत्) क्रियायुक्तं च ऐश्वर्यं (धन्व) उत्पादयतु येन (ते) तव (शुचिं, वर्णम्) शुद्धस्वरूपम् (अधिगोषु) मनोबुद्ध्यादिषु (दीधरम्) धारयाम ।

पदार्थ—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् । (सुदक्ष) सर्वज्ञ (सुतः) आप सर्वत्र अभिव्यक्त हैं (नः) हमको (गोमत्) ज्ञानयुक्त (अश्ववत्) क्रियायुक्त ऐश्वर्य को (धन्व) प्राप्त करायें ताकि (ते) तुम्हारे (शुचिवर्णम्) शुद्धस्वरूप को (अधिगोषु) मन बुद्धि आदिकों में (दीधरम्) धारणकरें ।

भावार्थ—जोलोग परमात्मा के शुद्धस्वरूप का ध्यान करते हैं परमात्मा उन के ज्ञानको अपनी ज्योति से अवश्यमेव देदीप्यमानकरताहै ।

स नो॑ हरी॒णां प॑त॒ इन्दो॑ दे॒वप्स॑रस्तमः ।
सखे॑व॒ सख्ये॒ नर्यो॑ रु॒चे भ॑व ॥ ५ ॥

सः । नः । ह॒री॒णा॒म् । प॒ते॒ । इन्दो॒ इति॑ । दे॒वप्स॑रःऽतमः । सखा॑ । इ॒व॒ । सख्ये॑ । नर्यः॑ । रु॒चे । भ॒व॒ ॥

पदार्थः—(हरीणां, पते) हे अखिलप्रकाशाधार ! भवान् (देवप्सरस्तमः) दिव्यतमतेजोयुक्तोऽस्ति (सः) सभवान् (नः, नर्यः) अस्माकं याजकानां (रुचे, भव) दीप्तये भवतु (सख्ये , सखा, इव) यथा सखा स्वमित्रस्य तेजोवर्धको भवति ।

पदार्थ—(हरीणां, पते) हे अखिलप्रकाशाधार! (इन्दो) परमात्मन्! आप (देवप्सरस्तमः) दिव्य से दिव्य तेजवाले हैं (सः) वह आप (नः, नर्यः) हमसब यज्ञकर्ताओं की (रुचे, भव) दीप्ति के लिये हों (सख्ये, सखा, इव) जिस प्रकार मित्र मित्रके लिये तेजोवर्द्धक होता है।

भावार्थ—जिस प्रकार सूर्य्य अन्य पदार्थों के तेज को देदीप्यमान करता है इसी प्रकार परमात्मा भी ज्ञान विज्ञानादि तेजों में लोगों को देदीप्यमान करता है।

सनेमि त्वमस्मदाँ अदेवं कं चिदत्रिणम्।
साह्वाँ इन्दो परि बाधो अप द्वयुम् ॥ ६ ॥

सनेमि। त्वं। अस्मत्। आ। अदेवं। कं। चित्। अत्रिणं।
सह्वान्। इंदोऽइति। परि। बाधः। अपद्वयुं ॥ ८ ॥

पदार्थ—(इन्दो) हे भगवन्! (त्वम) भवान् (सनेमि) मयीदृशीं कृपां करोतु यया (अदेवम्) दिव्यसम्पद्राहितं (अत्रिणम्) हिंसकम् (आ) अथच (द्वयुम्) सत्यानृत रूपमायया युक्तं (कश्चित, साह्वान्) कतिपयान् शत्रून् (बाधः) बाधकान् (अस्मत्) अस्मत्तः (परिजहि) अपसारयतु ॥

पदार्थ—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! (त्वम्) आप (सनेमि) हम पर ऐसी कृपा करें जिससे (अदेवम्) जो अदैवी सम्पत्ति का पुरुष है (अत्रिणम्) जो हिंसक है (आ) और जो (द्वयुम्) सत्यानृतरूपी मा॰ या युक्त है. ऐसे (कश्चित् साह्वान्,) सबशत्रु जो कई एक हैं (बाधः) हम को पीड़ादेने वाले हैं उनको (अस्मत्) हमसे (परिजहि) दूरकरें ॥

भावार्थ—परमात्मा मायावी पुरुषों से अपने भक्तों की रक्षा अवश्यमेव करताहै अर्थात् परमात्मा के सामने मायावी पुरुषों की माया और दम्भियों का दम्भ कदापि नहीं चलता ।

इन्द्रमच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः ।
श्रुष्टी जातास इन्दवः स्वर्विदः ॥ १ ॥

इन्द्रं । अच्छ । सुताः । इमे । वृषणं । यन्तु । हरयः । श्रुष्टी । जातासः । इन्दवः । स्वःऽविदः ॥

पदार्थः— (स्वर्विदः) ज्ञानादिगुणाः (इन्दवः) ये प्रकाशस्वरूपाः (जातासः) सर्वत्र विद्यमानाः (सुताः) उपासनया साक्षात्त्वं प्राप्ताः (हरयः) दुःखस्य हर्तारः (इमे) इमे परमात्मगुणाः (वृषणम्) कर्मद्वारा उद्योगवर्धकं (इन्द्रम्) कर्मयोगिनम् (श्रुष्टी) सत्वरं (अच्छ,यन्तु) साधु लभन्ताम् ।

पदार्थ—(स्वर्विदः) ज्ञानादिगुण (इन्दवः) जो प्रकाशस्वरूप हैं (जातासः)जो सर्वत्र विद्यमान हैं और जो (सुताः) संस्कृत अर्थात् उपासना द्वारा जो साक्षात्कार को प्राप्त हैं (हरयः)जो सब दुःखों के हरण करने वाले हैं (इमे) ये परमात्मा के सब गुण (वृषणम्) कर्मद्वारा उद्योगकी वृष्टि करने वाले (इन्द्रम्) कर्मयोगी को (श्रुष्टी) शीघ्र (अच्छ, यन्तु) प्राप्त हों ॥

भावार्थ—जो पुरुष उद्योगी हैं अर्थात् कर्मयोगी हैं उन को पर परमात्मा के गुणों की उपलब्धि अवश्यमेव होती हैं

अयं भराय सानसिरिन्द्राय पवते सुतः ।
सोमो जैत्रस्य चेतति यथा विदे ॥ २ ॥

अयं। भराय। सानसिः। इन्द्राय। पवते। सुतः। सोमः। जैत्रस्य। चेतति। यथा। विदे॥

पदार्थः—(अयं) अयं परमात्मा (सानसिः) सर्वैरुपास्यः (सोमः) सर्वोत्पादकः (सुतः) सर्वत्र विद्यमानः (यथाविदे) यथार्थज्ञानिने (भराय) स्वकर्तव्यपूर्णाय (जैत्रस्य) जयशीलाय (इन्द्राय) कर्मयोगिने (चेतति) बोधमुत्पादयति, स्वज्ञानेन च (पवते) पुनाति।

पदार्थ (अयम्) उक्त परमात्मा जो (सानसिः) सबका उपास्य देव है (सोमः) सर्वोत्पादक है (सुतः) सर्वत्र विद्यमान है वह गुणसम्पन्न परमात्मा (यथाविदे) यथार्थज्ञानी के लिये (भराय) जो स्वकर्तव्य से भरपूर है (जैत्रस्य) जो जयशील है (इन्द्राय) कर्मयोगी है उसको (चेतति) बोधन करता है और अपने ज्ञानद्वारा (पवते) पवित्र करता है॥

भावार्थ—परमात्मा विजयी पुरुषों को धर्मसे जो विजय करने वाले हैं उनको अवश्यमेव अपने ज्ञानसे बोधन करता है और अपने ऐश्वर्य से उन्हें सदैव उत्साहित बनाता है।

अस्येदिन्द्रो मदेष्वा ग्राभं गृभ्णीत सानसिम्।
वज्रं च वृषणं भरत्समप्सुजित्॥ ३॥

अस्य। इत्। इन्द्रः। मदेषु। आ। ग्राभं। गृभ्णीत। सानसिं। वज्रं। च। वृषणं। भरत्। सम्। अप्सुऽजित्॥

पदार्थः—(सानसिम्) सर्वभजनीयम् (ग्राभम) ग्रहणीयम् (आ) अथ (वृषणम्) वर्षणशीलम् (वज्रं, संभरत्) विद्युतः

कर्त्तारम् (अस्य, इत्) अस्यैव (इन्द्रः) कर्मयोगी (अप्सुजित्) सर्वकामनानां स्ववशीभूतकारकः (मदेषु) आनन्दलाभाय (गृभ्णीत) उपासनां कुर्वीत ।

पदार्थ—(सानसिम्) सर्वभजनीय परमात्मा को (गृभम्) जो ग्रहण करने के योग्य है (आ) और (वृषणम्) वर्षणशील (वज्रम्) विद्युत् को (संभरत्) बनाता है (अस्य, इत्) उसी की ही (इन्द्रः) कर्मयोगी (अप्सुजित्) जो सबकामनाओं को वशीभूतकरनेवाला है (गृभ्णीत) उपासनाको (मदेषु) आनन्दकी प्राप्ति के लिये करे ।

भावार्थ—कर्मयोगी को चाहिये कि वह एकमात्र परमात्मा की ही अनन्यभक्ति करे अन्य किसी की उपासना न करे

प्र धन्वा सोम जागृविरिन्द्रायेन्दो परि स्रव ।
द्युमन्तं शुष्ममाभरा स्वर्विदम् ॥ ४ ॥

प्र । धन्व । सोम । जागृविः । इंद्राय । इंदोऽइति । परि । स्रव । द्युऽमंतं । शुष्मं । आ । भर । स्वःऽविदं ॥

पदार्थः—(सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! भवान् (जागृविः) जागरणशीलोऽस्ति । (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (इन्द्राय) कर्मयोगिने (परिस्रव) आविर्भूय तं प्राप्नोतु यः कर्मयोगी (द्युमन्तम्) दीप्तिमान् (स्वर्विदम्) विज्ञानी तं (शुष्मम्) बलेन (आभर)परिपूरयतु (प्रधन्व) तं जगदुपकाण्य प्रेरयतु च ।

पदार्थ—(सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् । आप (जागृविः) जागरणशील हैं (इन्दो) हेप्रकाशस्वरूप ! कर्मयोगी के लिये (परिस्रव)

आप प्राप्त हों जो कर्म्मयोगी (द्युमन्तं) दीप्तिवाला (स्वर्विदं) विज्ञानी है उसको (शुष्मं) बलसे (आभर) आप पूर्ण करें, और आप (प्रधन्व) कर्म्म-योगीको प्रेरणा करें ताकि वह संसारकी भलाई करे ।

भावार्थ—परमात्मा अपनी शक्तियोंसे सदैव जागृत है और वह कर्मयोगी को सदैव जागर्ति देकर सावधान करता है ।

इन्द्राय वृषणं मदं पवस्व विश्वदर्शतः ।
सहस्रयामा पथिकृद्विचक्षणः ॥ ५ ॥ ९ ॥

इंद्राय । वृषणं । मदं । पवस्व । विश्वऽदर्शतः । सहस्रऽयामा । पथिऽकृत् । विऽचक्षणः ॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! भवान् (इन्द्राय) कर्मयोगिने (वृषणम्) सर्वकामान् वर्षुकः (मदम्) आनन्दम् (पवस्व) कर्मयोग्यर्थमुत्पादयतु (विश्वदर्शतः) भवान्सर्वज्ञः (सहस्रयामा) अनन्तशक्तियुक्तः (विचक्षणः) चतुरः (पथिकृत) स्वानुयायिपथानां सुगमकर्ता च ।

पदार्थ—हे परमात्मन ! आप (इन्द्राय) कर्म्मयोगीके लिये (वृषणं) सब कामनाओंकी वृष्टि करनेवाले हैं (मदं) आनन्द (पवस्व) कर्म्मयोगीको दें । आप (विश्वदर्शतः) सर्वज्ञ हैं (सहस्रयामा) अनन्त शक्तियुक्त हैं और (विचक्षणः) चतुर है (पथिकृत) अपने अनुयायियोंके पथोंको सुगम करनेवाले हैं ।

भावार्थ—परमात्मा कर्मयोगीके लिये सब प्रकारके ऐश्वर्य्य प्रदान करता है, और उनको अपने ज्ञानसे प्रकाशित करता है ।

अस्मभ्यं गातुवित्तमो देवेभ्यो मधुमत्तमः ।
सहस्रं याहि पथिभिः कनिक्रदत् ॥ ६ ॥

अस्मभ्यं । गातुवित्ऽतमः । देवेभ्यः । मधुमत्ऽतमः । सहस्रं । याहि । पथिऽभिः । कनिक्रदत् ॥

पदार्थः—(देवेभ्यः) दिव्यसम्पत्तिमद्भ्यः (मधुमत्तमः) आनन्दमयो भवान् (अस्मभ्यम्) अस्मदर्थम् (गातुवित्तमः) शुभमार्गप्रापको भवतु (सहस्रं, पथिभिः) अनन्तशक्तिप्रदमार्गैः (कनिक्रदत) गर्जन् (याहि) ज्ञानरूपगत्याः प्रदानं कुरुताम् ।

पदार्थ—(देवेभ्यः) दैवीसम्पत्तिवाले पुरुषोंकेलिये (मधुमत्तमः) आनन्दमयपरमात्मन् (अस्मभ्यं) हमारे लिये (गातुवित्तमः) शुभमार्गों की प्राप्ति करनेवाले हो और (सहस्रं, पथिभिः) अनन्तशक्तिमदमार्गोंसे (कनिक्रदत) गर्जते हुए (याहि) आप ज्ञानरूपी गतिका प्रदान करें ।

भावार्थ—परमात्मा अनन्तमार्गों द्वारा अपने ज्ञानका प्रकाश करता है अर्थात् इस विविध रचनासे उसके भक्त अनन्त प्रकारसे उसके ज्ञानको उपलब्ध करते हैं अनन्त ब्रह्माण्डोंकी रचना द्वारा और इस विशाल नभोमण्डल में अपनी दिव्य ज्योतियोंसे परमात्मा सदैव गर्ज रहा है परमात्माका यही गर्जन है और निराकार परमात्मा किसी प्रकार भी गर्जन नहीं करता ।

पवस्व देववीतय इन्दो धाराभिरोजसा ।
आ कलशं मधुमान्त्सोम नः सदः ॥ ७ ॥

पवस्व । देवऽवीतये । इंदो इति । धाराभिः । ओजसा । आ । कलशं । मधुऽमान् । सोम । नः । सदः ।

पदार्थः—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (देववीतये) देवमार्गप्राप्तये (धाराभिः) आनन्दवर्षैः (ओजसा) स्वविज्ञानयुक्तबलेन च (पवस्व) पुनातु माम् (सोम) हे परमात्मन् ! (मधुमान्) आनन्दमयो भवान् (नः, कलशम्) मदन्तःकरणम् (असदः) प्राप्नोतु ॥

पदार्थ—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूपपरमात्मन् ! (देववीतये) देवमार्गकी प्राप्तिकेलिये (धाराभिः) आनन्दकी वृष्टिसे और (ओजसः) अपने विज्ञानयुक्तबलसे (पवस्व) हमको पवित्र करें और (सोम) हे परमात्मन् ! (मधुमान्) आनन्दमय आप (नः कलशं) हमारे अन्तःकरणमें (असदः) आकर विराजमान हों ।

भावार्थ—ब्रह्मानन्द जो सब आनन्दोंसे बढ़कर आनन्द है जिसको उपनिषत्कारोंने "रसो वैसः रसं ह्येवायं लब्धा आनन्दी भवति" इत्यादि वाक्योंमें वर्णन किया है वह आनन्दरूपपरमात्मा अपने भक्तोंको अवश्यमेव अपने ब्रह्मानन्दसे आनन्दित करता है ।

तव॑ द्र॒प्सा उ॑द॒प्रुत॒ इन्द्रं॒ मदा॑य वावृधुः ।
त्वां दे॒वासो॑ अ॒मृता॑य॒ कं प॑पुः ॥ ८ ॥

तव॑ । द्र॒प्साः । उ॒द॒ऽप्रुतः॑ । इन्द्र॑ । मदा॑य । वा॒वृ॒धुः॒ । त्वाम् । दे॒वासः॑ । अ॒मृता॑य । कम् । प॒पु॒रिति॑ पपुः ॥

पदार्थः—(तव, द्रप्साः) भवतः शीघ्रगतिकाः शक्तयः याश्च (उदप्रुतः) जलप्रवाहवत् वहन शीलास्ताः (इन्द्रम्) कर्मयोगिनः (मदाय) आनन्दाय (ववृधुः) वर्धन्ते (कम्) आनन्दमयं (त्वाम्) भवन्तम् (देवासः) विद्वांसः (अमृताय) शाश्वतिकजीवनाय (पपुः) पिबन्ति ।

पदार्थ—(तव, द्रप्साः) तुमारी शीघ्रगतिवाली शक्तियें जो (उदप्रुतः) जलोंके प्रवाहके समान बहती हैं वे (इन्द्रं) कर्म्मयोगीके (मदाय) आनन्दके लिये (वत्रृधुः) बढ़ती हैं और (त्वां) तुम जो (कं) आनन्दस्वरूप हो इससे (देवासः) विद्वान लोग (अमृताय) सदाके जीवनके लिये (पपुः) पीते हैं ॥

भावार्थ—ब्रह्मानन्द वा ब्रह्मामृतरूपी रस जो सब रसोंसे अधिक स्वादु है उसका पान ब्रह्मपरायण ज्ञानयोगी और कर्मयोगी ही कर सक्ते हैं अन्य नहीं ।

आ नः सुतास इन्दवः पुनाना धावता रयिम् ।
वृष्टिद्यावो रीत्यापः स्वर्विदः ॥ ९ ॥

आ । नः । सुतासः । इंदवः । पुनानाः । धावत । रयिं ।
वृष्टिऽद्यावः । रीतिऽआपः । स्वःऽविदः ॥

पदार्थः—(इन्दवः) हे प्रकाशस्वरूप (सुतासः) सर्वत्र विद्यमानो भवान् (नः) अस्मान् (पुनान) पवित्रयन् (रयिं) धनं (आधावत) प्रापयन्तु (वृष्टिं, द्यावः) द्युलोकमभिलक्ष्य वर्षणशीलः (रीत्यापः) सर्वगः भवान् (स्वर्विदः) आनन्दमयः मामप्यानन्दयतु ॥

पदार्थ—(इन्दवः) हे प्रकाशस्वरूप ! (सुतासः) सर्वत्र विद्यमानपरमात्मन् आप (नः) हमको (पुनानाः) पवित्र करते हुए (रयिं) धनको (आधावत) प्राप्त करायें (वृष्टिं, द्यावः) द्युलोकको लक्ष्य रखकर वृष्टि करनेवाले (रीत्यापः) सर्वव्यापक आप ! (स्वरविदः) आनन्दस्वरूप हैं हमको भी आनन्दित करें ।

भावार्थ—जिस प्रकार बाह्य जगत्में परमात्माकी शक्तियोंसे अनन्त

प्रकारकी वृष्टि होती है इसी प्रकार कर्मयोगी और ज्ञानयोगी पुरुषोंके अन्तःकरणमें परमात्माकी ज्ञानरूपी वृष्टि सदैव होती रहती है इसको योगशास्त्रकी परिभाषामें धर्म मेघ समाधिके नामसे कहागया है अर्थात् धर्मरूपी मेघसे योगीजन सदैव सुसिञ्चित रहते हैं।

सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यो वारं वि धावति ।
अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत् ॥ १० ॥ १० ॥

सोमः । पुनानः । ऊर्मिणा । अव्यः । वारं । वि । धावति ।
अग्रे । वाचः । पवमानः कनिक्रदत् ।

पदार्थः—(सोमः) सर्वोत्पादकः सः (ऊर्म्मिणा) स्वकीयानन्दप्रवाहैः (अव्यः) सर्वान्रक्षन् (वारं) सद्गुणसम्पन्नजनं (विधावति) प्राप्नोति यश्च परमात्मा (अग्रे, वाचः) सर्वोत्कृष्टाध्यात्मिकविद्यात्मकवाणीं (कनिक्रदत्) गर्जन् (पवमानः) पावयति ।

पदार्थ—(सोमः) सर्वोत्पादकपरमात्मा (ऊर्मिणा) अपने आनन्दकी लहरोंसे (अव्यः) सबकी रक्षा करता हुआ (वारं) सद्गुणसम्पन्नपुरुषको (विधावति) प्राप्त होते हैं। जो परमात्मा (अग्र, वाचः) सर्वोपरि आध्यात्मिक विद्यारूपवाणीको (कनिक्रदत्) गर्जाता हुआ (पवमानः) पवित्र बनाता है।

भावार्थ—जो पुरुष सद्गुणसम्पन्न हैं उनको परमात्मा अपने आनन्दमें निमग्न करता है अर्थात् ब्रह्माम्बुधिमें वे लोग अपने आपको सदैव शान्तिमय वारिसे स्नान कराते हैं।

धीभिर्हिन्वन्ति वाजिनं वने क्रीळन्तमत्यविम् ।
अभि त्रिपृष्ठं मतयः समस्वरन् ॥ ११ ॥

धीभिः । हिन्वन्ति । वाजिनं । वने । क्रीळंतं । अतिऽअविं । अभि । त्रिऽपृष्ठं । मतयः । सं । अस्वरन् ॥

पदार्थः—(धीभिः) स्तुतिभिः (वाजिम्) बलस्वरूपं तं विद्वांसः (हिन्वन्ति) सर्वोत्कृष्टत्वेन वर्णयन्ति (अत्यविम) यः परमात्मा सर्वेषां रक्षकः (वने, क्रीलन्तम्) सर्वत्र जगति विमान (त्रिपृष्ठम्) लोकत्रयम्, कालत्रयम्, सवनत्रयमित्यादि सर्वत्रिकेषु विराजते तं च (मतयः) बुद्धिमन्तः (समस्वरन्) स्तुवन्ति ।

पदार्थ—(धीभिः) स्तुतियों द्वारा (वाजिनं) उस बलस्वरूपको (हिन्वन्ति) सर्वोपरिरूपसे वर्णन करते हैं जो परमात्मा (अत्यविं) सबकी रक्षा करने वाला है (वने क्रीळंतं) सर्वत्र विद्यमान है, (त्रिपृष्ठं) तीनों लोक, तीनों काल और तीनों सवन इत्यादि सब त्रिकोंमें विद्यमान है उस को (मतयः) बुद्धिमान लोग (समस्वरन) स्तुति करते हैं ।

भावार्थ—परमात्मा कालातीत है अर्थात् भूत भविष्यत् और वर्तमान यह तीनों काल उसकी इयत्ता अर्थात् हद नहीं बांध सक्ते तात्पर्य यह है कि कालकी गति कार्य्य पदार्थोंमें है कारणोंमें नहीं वा यों कहो कि नित्य पदार्थोंमें कालका व्यवहार नहीं होता किन्तु अनित्योंमें होता है इसी अभिप्रायसे परमात्माको यहां कालातीतरूपसे वर्णन किया है ।

असर्जि कलशाँ अभि मीळ्हे सप्तिर्न वाजयुः ।
पुनानो वाचं जनयन्नसिष्यदत् ॥ १२ ॥

असर्जि । कलशान् । अभि । मीळ्हे । सप्तिः । न । वाजऽयुः । पुनानः । वाचं । जनयन् । असिस्यदत् ॥

पदार्थः—(वाजयुः) सर्वबलाश्रयः परमात्मा (मील्हे) संग्रामे (सप्तिर्न) विद्युदिव (कलशानभि) पूतान्तःकरणे (असर्जि) साक्षात्क्रियते, स च (वाचं, पुनानः) वाणीं पावयन् (जनयन्) उत्तमभावानुत्पादयन् (असिस्यदत्) शुद्धान्तःकरणं सिञ्चन् विराजते ।

पदार्थ—(वाजयुः) सबलोकोंको प्राप्त परमात्मा (मील्हे) संग्राममें (सप्तिर्न) विद्युत्के समान (कलशानभि) पवित्रअन्तः करणोंमें (असर्जि) साक्षात्कारकिया जाता है, वह परमात्मा (वाचं पुनानः) वाणीको पवित्र करके (जनयन्) उत्तमभावोंको उत्पन्न करता हुआ (असिस्यदत्) शुद्ध-अन्तःकरणोंको सिञ्चन करता हुआ स्थिर होता है ।

भावार्थ—उपासकों को चाहिये कि वे उपासनासे प्रथम अपने अन्तःकरणोंको शुद्धकरें, क्योंकि वह उपास्य देवस्वच्छ अन्तःकरणोंमें ही अपनी अभिव्यक्तिको प्रकट करता है ।

पव॑ते हर्य॒तो हरि॒रति॒ ह्वरां॑सि॒ रंह्या॑ ।
अ॒भ्यर्ष॑न्त्स्तो॒तृभ्यो॑ वी॒रव॒द्यशः॑ ॥ १३ ॥

पव॑ते । ह॒र्य॒तः हरिः॑ । अति॑ । ह्वरां॑सि । रंह्या॑ । अ॒भि॒ऽअर्ष॑न् । स्तो॒तृऽभ्यः॑ । वी॒रऽव॑त् । यशः॑ ॥

पदार्थः—(हर्यतः) सर्वपूज्यः (हरिः) परमात्मा (रंह्या) ज्ञानवेगेन (ह्वरांसि) अनेक कौटिल्यानि (अति) अतिक्रम्य (पवते) पुनाति (स्तोतृभ्यः) स्वोपासकेभ्यः (वीरवद्यशः) वीरसन्तान सहितं यशः (अभ्यर्षन्) दत्त्वा (पवते) पुनाति ।

पदार्थ—(हर्यतः) वह सर्वपूज्य परमात्मा (हरिः) जो सब, अपगुणोंके हरण करनेवाला है, वह (रंह्य) ज्ञानरूपवेग से (ह्वरांसि) सब प्रकारकी कुटिलताओंको (अति) अतिक्रमणकरके (पवते) पवित्र करता है और (स्तोतृभ्यः) उपासकोंको (वीरवत् यशः) वीरसन्तान और यश (अभ्यर्षन) देकर (पवते) पवित्र करता है।

भावार्थ—परमात्मा परमात्मपरायण लोगों को सरल भाव प्रदान करके उनकी कुटिलताओं को दूर करता है और उनको बीर सन्तान देकर लोक परलोक में तेजस्वी बनाता है।

अया पवस्व देवयुर्मधोर्धारा असृक्षत ।
रेभन्पवित्रं पर्येषि विश्वतः ॥ १४ ॥ ११ ॥

अया । पवस्व । देवऽयुः । मधोः । धाराः । असृक्षत । रेभन् । पवित्रं । परि । एषि विश्वतः ॥

पदार्थः(देवयुः) विदुषां पावयिता सः (मधोः, धाराः) यस्यानन्दधाराः (असृक्षत) आविर्भाव्यन्ते, हेपरमात्मन् ! (अया) आभिर्धाराभिः (पवस्व) पुनातु माम्, यतो भवान् (विश्वतः) सर्वतः (पवित्रम्) पूतान्तः करणं (रेभन्) शब्दायमानः (पर्येषि) प्राप्नोति ।

पदार्थ—(देवयुः) वह परमात्मा विद्वानोंको पवित्र करनेवाला है (मधोः धारा) जिसकी आनन्दमय धारा (असृक्षत) अविर्भावको प्राप्त की जाती है। (अया) उक्त धारासे हे परमात्मन ! (पवस्व) आप हमको पवित्र करें क्योंकि आप (विश्वतः) सब प्रकारसे (पवित्रं) पवित्र अन्तः करणको (रेभन्) शब्दायमान होते हुए (पर्येषि) प्राप्त होते हैं।

भावार्थ—परमात्मा का शब्दायमान होना इसी तात्पर्य से है कि वह अपने वेदरूपी शब्दब्रह्म द्वारा शब्दायमान है अर्थात् वेद के सदोपदेश द्वारा लोगों को बोधित करता है।

इति षडुधिकशततमं सूक्त-
मेकादशोवर्गश्च समाप्तः

यह १०६ सूक्त और ११ वां वर्ग समाप्त हुआ

१—२६सप्तर्षय ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः–१, ४, ६, ९, १४, १७, २१ विराड्बृहती । २, ५ भुरिग्बृहती । ८, १०, १२, १३, १९, २५ बृहती । २३ पादनिचृद्बृहती । ३, १६ पिपीलिकामध्या गायत्री । ७, ११, १८, २०, २४, २६, निचृत् पंक्तिः।१५, २२, पंक्तिः। स्वरः–१,२, ४–६, ८–१०, १२–१४, १७, १९, २१, २३, २५ मध्यमः । ३, १६ षड्जः ७, ११, १५, १८, २०, २२, २४, २६, पञ्चमः॥

परीतो षिञ्चता सुतं सोमो य उत्तमं हविः ।
दधन्वाँ यो नर्यो अप्स्वन्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥ १॥

परि।इतः।सिञ्चत।सुतं।सोमः। यः।उतऽतमं।हविः।दधन्वान्।यः। नर्यः। अप्ऽसु।अंतः। आ। सुसाव। सोमं। अद्रिभिः॥

पदार्थः—(सोमम्) सर्वोत्पादकम् (सुतम्) सर्वत्र विद्यमानम्

(अप्स्वन्तः) प्रकृतेः सूक्ष्मकारणे विराजमानं परमात्मानम् (अद्रिभिः) चित्तवृत्तिभिर्विद्वांसो होतारः (आसुषाव) सम्यक्साक्षात्करोति (यः,सोमः) यः परमात्मा (उत्तमं, हविः) विदुषां मान्यतमः (नर्यः) सर्वजनस्यहितः (दधन्वान्) सर्वेषा धारकः तं (इतः) यज्ञादि कर्मानन्तरं ज्ञानवृत्तिरूप-वृष्ट्या (परिषिञ्चत) यूयं परिक्षरत ।

पदार्थ—(सोमम्) सर्वोत्पादक परमात्मा को (सुतम्) जो सर्वत्र विद्यमान है (अप्स्वन्तः) जो प्रकृति के सूक्ष्म कारण में विराजमान है उसको (अद्रिभिः) चित्तवृत्तियों द्वारा यज्ञ का अधिष्ठाता (आसुषाव) भलीभांति साक्षात्कार करता है (यः, सोमः) जो सोम (उत्तमं हविः) विद्वानों का सर्वोपरिपूजनीय है (नर्यः) सब नरों का हितकारी है तथा (दधन्वान्) सब को धारण करता हुआ जो सर्वत्र विद्यमान है उसको (इतः) यज्ञादि कर्मों के अनन्तर ज्ञानवृत्तिरूप वृष्टि से (परिषिञ्चत) परिसिञ्चन करें ॥

भावार्थ—सोम जो सम्पूर्ण संसार की उत्पत्ति का कारण है और जो सौम्य स्वभावों का प्रदान करने वाला है वह सोमरूप परमात्मा संसार में ओत प्रोत होरहा है उसका अपनी ज्ञानरूपी वृत्तियों द्वारा साक्षात् करना ही वृत्तियों से सिञ्चन करना है ।

नूनं पुनानोऽविभिः परि स्रवादब्धः सुरभिन्तरः ।
सुते चित्त्वाप्सु मदामो अन्धसा श्रीणन्तो गोभिरुत्तरम् ॥२॥

नूनं । पुनानः । अविऽभिः । परि । स्रव । अदब्धः । सुरभिऽतरः ।
सुते । चित् । त्वा । अपऽसु । मदामः । अंधसा । श्रीणंतः । गोभिः । उतऽतरं

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (नूनम्) निश्चयम् (अविभिः) स्वरक्षाभिः (पुनानः) पवित्रयन् (परिस्रव) मदन्तःकरणे विराजताम् (अदब्धः) भवान् अखण्डनीयः (सुरभिन्तरः) अत्यन्त शोभनीयः, वयं (उत्तरम्) अति प्रेम्णा (गोभिः) ज्ञानवृत्त्या (श्रीणन्तः) तत्वां साक्षात्कुर्वन्तः (अन्धसा) मनोमय कोशेन (अप्सु) कर्मसु (सुतेचित्) साक्षात्काराय (त्वा, मदामः) त्वां स्तुमः।

पदार्थ—हे परमात्मन ! (नूनम्) निश्चय करके (अविभिः) अपनी रक्षाओं से (पुनानः) पवित्र करते हुए आप (परिस्रव) हमारे अन्तःकरण में आकर विराजमान हों. आप (अदब्धः) अखण्डनीय हैं (सुरभिन्तरः) अत्यन्त शोभनीय हैं, हम लोग (उत्तरम्) अत्यन्त प्रेम से (गोभिः) ज्ञानरूप वृत्तियों द्वारा (श्रीणन्तः) तुम्हारा साक्षात्कार करते हुए (अन्धसा) मनोमय कोश से (अप्सु) कर्मों में (सुते, चित्) साक्षात्कार के लिये (त्वा) तुम्हारा (मदामः) स्तवन करते हैं ॥

भावार्थ—परमात्मा सच्चिदानन्द स्वरूप हैं आपका स्वरूप अखण्डनीय है इसलिये आपका ध्यान व्यापकभाव से ही किया जा सक्ता है अन्यथा नहीं।

परि॑ सुवा॒नश्चक्ष॑से दे॒वमाद॑नः॒ क्रतु॒रिन्दु॒र्विच॑क्ष॒णः ॥३॥
परि॑ । सु॒वा॒नः । चक्ष॑से । दे॒व॒ऽमाद॑नः । क्रतुः॑ ।
इन्दुः॑ । वि॒ऽच॒क्ष॒णः ॥

पदार्थः-(चक्षसे) सर्वेषां ज्ञानवृद्धये (परिसुवानः) ज्ञानदीप्त्या उपासक ध्यानगोचरो भवति (देवमादनः) सविदुषामानन्ददायिता (क्रतुः) यज्ञरूपः (इन्दुः)स्वयं प्रकाशः (विचक्षणः) अपूर्व प्रतिभोऽर्थात्सर्वज्ञः।

पदार्थ-(चक्षसे) सब लोगों की ज्ञान वृद्धि के लिये (परिसुवानः) ज्ञानरूपी दीप्ति से प्रकट हुआ परमात्मा उपासकों के ध्यानगोचर होता है, वह परमात्मा (देवमादनः)विद्वानों को आनन्द देने वाला है (क्रतुः)

यशरूप है (इन्दुः) स्वयंप्रकाश है (विचक्षणः) विलक्षण प्रतिभा वाला अर्थात् सर्वज्ञ है।

भावार्थ—जिस समय उस निराकार का ध्यान किया जाता है उस समय उसके सद्गुण उपासक के हृदय में आविर्भाव को प्राप्त होते हैं अर्थात् उसके सतचित् आनन्द इत्यादि रूप प्रतीत होने लगते हैं यही परमात्म देव का साक्षात्कार है।

पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि।
आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देव हिरण्ययः॥४॥

पुनानः। सोम। धारया। अपः। वसानः। अर्षसि। आ। रत्नऽधाः। योनिं। ऋतस्य। सीदसि। उत्सः। देव। हिरण्ययः॥

पदार्थः–(सोम) हे सर्वोत्पादक! (अपः, पुनानः) अस्मत्कर्माणि पावयन् (वसानः) अन्तः करणे च निवसन् (धारया) आनन्दवृष्ट्या (अर्षसि) अस्मान्प्राप्नोति (रत्नधाः) भवान् सकलैश्वर्यधारकः (ऋतस्य, योनिम्) सत्यरूपयज्ञस्थानम् (आसीदसि) एत्य प्राप्नोति (देव) हे दिव्यस्वरूप! (उत्सः) सर्वाश्रयो भवान् (हिरण्ययः) ज्योतिःस्वरूपश्च।

पदार्थ—(सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन्! (अपः, पुनानः) हमारे कर्मों को पवित्र करते हुए आप (वसानः) हमारे अन्तकरण में निवास करते हुए (धारया) आनन्द की वृष्टि से (अर्षसि) हमको प्राप्त होते हैं (रत्नधाः) आप सम्पूर्ण ऐश्वर्यों के धारण करने वाले हैं (ऋतस्य, योनिम्) सत्य रूपी यज्ञ के स्थान को (आसीदसि) प्राप्त होते हैं।

(देव) हे दिव्यस्वरूप परमात्मन्! (उत्सः) आप सबका निवास स्थान और (हिरण्ययः) ज्योतिस्वरूप हैं, अप इति कर्मनामसुपठितम्—अ० २-खं-२

भावार्थ—वह ज्योतिस्वरूप परमात्मा अपनी दिव्य ज्योति से उपासक के अज्ञान को छिन्न भिन्न करके उसमें विमल ज्ञान का प्रकाश करता है।

दुहान ऊर्धर्दिव्यं मधुं प्रियं प्रत्नं सधस्थमासदत्।
आपृच्छ्यं धरुणं वाज्यर्षति नृभिर्धूतो विचक्षणः ॥५॥

दुहानः। ऊर्धः। दिव्यं। मधु। प्रियं। प्रत्नं। सधऽस्थं। आ। असदत्। आऽपृच्छ्यं। धरुणं। वाजी। अर्षति नृभिः। धूतः। विऽचक्षणः।

पदार्थः—(दुहानः) सर्वेषां परिपूरयिता (ऊधः) सर्वाश्रयश्च सः (मधु) आनन्दस्वरूपं (प्रत्नम्) प्राचीनम् (सधस्थम्) अन्तरिक्षम् (प्रियम्) प्रेमाश्रयं (आसदत्) आश्रयति, स परमात्मा (वाजी) बलस्वरूपः (विचक्षणः) सर्वज्ञः (नृभिः, धूतः) भक्तैरुपासितः(आपृच्छ्यम्) जिज्ञासुम् (धरुणम्) धारणावन्तं च यजमानं (अर्षति) प्राप्नोति।

पदार्थ—(दुहानः) सबको परिपूर्ण करने वाला (ऊधः) सबका अधिकरणस्वरूप परमात्मा (मधु) आनन्दस्वरूप (प्रत्नम्) प्राचीन (सधस्थम्) अन्तरिक्ष स्थान को (प्रियम्) जो प्रिय है, उसको (आसदत्) आश्रय करता है वह परमात्मा (वाजी) जो बलस्वरूप (विचक्षणः) विलक्षण बुद्धि वाला (नृभिः, धूतः) उपासकों से उपासना किया हुआ (धरुणम्) धारणा वाले (आपृच्छ्यम्) जिज्ञासु=यजमान को (अर्षति) प्राप्त होता है।

भावार्थ—जो पुरुष धारणा ध्यानादि साधनों से सम्पन्न हैं वे ही उस निराकार ज्योति के ज्ञान के पात्र बन सक्ते हैं अन्य नहीं ।

पुनानः सोम जागृविरव्यो वारे परि प्रियः ।
त्वं विप्रो अभवोऽङ्गिरस्तमो मध्वा यज्ञं मिमिक्ष नः ॥६॥

पुनानः । सोम । जागृविः । अव्यः । वारे । परि । प्रियः ।
त्वं । विप्रः । अभवः । अङ्गिरःऽतमः । मध्वा । यज्ञं ।
मिमिक्ष । नः ॥

पदार्थः—(सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (पुनानः) सर्वान्पावयन् भवान् (जागृविः) शश्वन्निज चेतन सत्तया विराजमानः (अव्यः) सर्वरक्षकः (वारे) स्वद्वरणकर्तुरन्तःकरणे (परि, प्रियः) नितान्त प्रियः (त्वं, विप्रः) भवान्मेधाव्यस्ति (अङ्गिरस्तमः, अभवः) सर्व प्राणेषु अति प्रियतमः (मध्वा) स्वानन्देन (नः) अस्माकम् (यज्ञम्) क्रतुं (मिमिक्ष) सिञ्चतु ।

पदार्थ—(सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (पुनानः) आप सबको पवित्र करते हुए (जागृविः) सदैव अपनी चेतन सत्ता से विराजमान हैं (अव्यः) सर्व रक्षक हैं (वारे) आपको वरण करने वाले पुरुष के अन्तःकरण में (परि, प्रियः) आप अत्यन्त प्रिय हैं (त्वम्) आप (विप्रः) मेधावी हैं विप्र इति मेधावि नामसु पठितम् (अङ्गिरस्तमः,अभवः) सब प्राणों में प्रियतम अर्थात् प्राणों के भी प्राण हैं (मध्वा) अपने आनन्द से (नः) हमारे (यज्ञम्) यज्ञ को (मिमिक्ष) सिञ्चन करें ।

भावार्थ—परमात्मा उपासकों के यज्ञों को अपनी ज्ञानमयी वृष्टि द्वारा सुसिञ्चित करके आनन्दित करते हैं ।

सोमो॑ मीढ्वान्प॑वते गातुवित्त॑म ऋषिर्विप्रो॑ विचक्षणः।
त्वं क॒विर॑भवो देववीत॑म आ सूर्यं॑ रोहयो दिवि ॥७॥

सोम॑ः । मीढ्वान् । पवते । गातुवित्ऽत॑मः । ऋषि॑ः ।
विप्र॑ः । विऽचक्षणः । त्वं । कविः । अभवः । देवऽवीत॑मः ।
आ । सूर्यं॑ । रोहयः । दिवि ॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! भवान (सोमः) सर्वोत्पादकः (मीढ्वान्) सर्व कामनापूरकः (गातुवित्तमः) सर्वोपरिमार्गस्य दर्शयिता (ऋषिः) स्वव्यापक शक्त्या सर्वत्र विद्यमानः (विप्रः) मेधावी (विचक्षण) सर्वोपरिज्ञानवान् (कविः) सर्वज्ञः (अभवः) अस्ति (देववीतमः) विदुषां प्रियतमः (दिवि) द्युलोके च (सूर्यम्, आ रोहयः) सूर्यम् प्रादुर्भावयति, एवं भवान् स्वभक्तान्तःकरणम् (पवते) पुनाति ।

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (त्वम्) आप (सोमः) सर्वोत्पादक हैं (मीढ्वान्) सब कामनाओं के पूर्ण करने वाले (गातुवित्तमः) सर्वोपरि मार्ग के दिख लाने वाले हैं, (ऋषिः) ऋच्छति गच्छति सर्वत्र प्राप्नोतीति ऋषिः=जो अपनी व्यापक शक्ति से सर्वत्र विद्यमान हो उसका नाम यहां ऋषि है (विप्रः) मेधावी (विचक्षणः) सर्वोपरि विज्ञानी हैं (कविः) सर्वज्ञ (अभवः) हैं (देववीतमः) सब विद्वानों के परमप्रिय तथा (दिवि) द्युलोक में (सूर्यम्) सूर्य का (आरोहयः) प्रादुर्भाव करते हैं, उक्त गुणशाली आप उपासकों के अन्तःकरणों को (पवते) पवित्र करते हैं।

भावार्थ—इस मंत्र का आशय यह है कि परमात्मा ज्ञानादि गुणों द्वारा उपासक के हृदय को दीप्तिमान बनाते हैं ।

सोमं उ पुवाणः सोतृभिरधि ष्णुभिरवीनाम् ।
अश्वयेव हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया ॥८॥

सोमः । ऊं इति । सुवानः । सोतृऽभिः । अधि । स्तुऽभिः । अवीनां । अश्वयाऽइव । हरिता । याति । धारया । मंद्रया । याति । धारया ॥

पदार्थः—(सोतृभिः) साक्षात्कर्तृभिरुपासकैः (अधिसुवानः) साक्षात्कृतः (सोमः) सर्वोत्पादकः भवान् (अवीनाम्) रक्षायुक्त वस्तूनां (ष्णुभिः) रक्षायुक्त साधनैः (अश्वया, इव) विद्युदिव (हरिता) कर्माधिष्ठाता परमात्मा (मन्द्रया, धारया) आह्लादक धारया (याति) स्वोपासकान्तःकरणे प्रविशति ।

पदार्थ—आपको साक्षात्कार करने वाले (सोतृभिः) उपासकों द्वारा (अधि,सुवानः) साक्षात्कार को प्राप्त हुए (सोम) सर्वोत्पादक आप (अवीनाम्) रक्षायुक्त वस्तुओं के (ष्णुभिः) रक्षायुक्त साधनों से (अश्वया) विद्युत् के (इव) समान (हरिता) कर्मों का अधिष्ठाता परमात्मा (मन्द्रया, धारया) आनन्दित करने वाली धारा से (याति) उपासकों के अन्तःकरण को प्राप्त होता है ।

भावार्थ—जिस प्रकार विद्युत् अपनी शक्तियों द्वारा नाना कार्य्यों का हेतु होती है इसी प्रकार परमात्मा अपने ज्ञान कर्मरूपी शक्ति द्वारा सब ब्रह्माण्डों की रचना का हेतु है ।

अनूपे गोमान्गोभिरक्षाः सोमो दुग्धाभिरक्षाः ।
समुद्रं न संवरणान्यग्मन्मन्दी मदाय तोशते ॥ ९ ॥

अनूपे । गोऽमान् । गोभिः । अक्षारिति । सोमः । दुग्धाभिः । अक्षारिति । समुद्रं । न । संऽवरणानि । अग्मन् । मंदी । मदाय । तोशते ॥

पदार्थः—(सोमः) सर्वोत्पादकः परमात्मा (दुग्धाभिः) ज्ञानदोहक चित्तवृत्तिभिः (अक्षाः) साक्षात् क्रियते (गोमान्) ज्ञानरूप दीप्तिमान्सः (गोभिः) अन्तःकरणवृत्तिभिः (अनूपे) अनूपेऽन्तःकरण देशे (अक्षाः) प्रवाहितो भवति (न) यथा (समुद्रम्) समुद्राभिमुखम् (संवरणानि) समुद्रगामिन्यो नद्यः (अग्मन्) प्राप्नुवन्ति, एवमेव (मन्दी) आनन्दमयः स परमात्मा (मदाय) आनन्दाय (तोशते) अज्ञानावरणे भङ्क्त्वा साक्षात्-क्रियते ।

पदार्थ—(सोमः) सर्वोत्पादक परमात्मा (दुग्धाभिः) ज्ञान को दोहन करने वाली चित्तवृत्तियों द्वारा (अक्षाः) साक्षात्कार को प्राप्त होता है (गोमान्) वह ज्ञान रूपी दीप्ति वाला परमात्मा (गोभिः) अन्तः करण की वृत्ति द्वारा (अनूपे) अनूपरूपी अन्तःकरण देश में (अक्षाः) प्रवाहित होता है (न) जैसे (समुद्रम्) समुद्र के अभिमुख (संवरणानि) समुद्र को जाने वाली नदियें (अग्मन्) प्राप्त होती हैं, इसी प्रकार (मन्दी) आनन्दस्वरूप परमात्मा (मदाय) आनन्द के लिये (तोशते) अज्ञान रूपी आवरण को भंग करके साक्षात्कार किया जाता है ।

भावार्थ—इस मंत्र में अज्ञान को भंग करके परमात्मा का साक्षात्कार करना वर्णन किया गया है ।

आ सोम सुवानो अद्रिभिस्तिरो वाराण्यव्यया ।
जनो न पुरि चम्वोर्विशद्धरिः सदो वनेषु दधिषे ॥१०॥

आ । सोम । सुवानः । अद्रिऽभिः । तिरः । वाराणि । अव्यया । जनः । न । पुरि । चम्वोः । विशत् । हरिः । सदः । वनेषु । दधिषे ॥

पदार्थः—(सोम) हे सर्वोत्पादक ! (अद्रिभिः) चित्तवृत्तिभिः (सुवानः) साक्षात्कृतो भवान् (वाराणि) वरणीयान्तःकरणानि (आविशत्) प्रविशति (हरिः) कर्माधिष्ठाता परमात्मा (अव्यया) सर्वरक्षकः (तिरः) अज्ञानं तिरस्कृत्य (वनेषु) भक्तियुक्तान्तःकरणेषु विराजते तादृशान्तःकरणं च (सदः) स्थिति स्थानं निर्माय (दधिषे) ज्ञानं प्रकाशयति (न) यथा (जनः) जनसमुदायः (चम्वोः) अधिष्ठानरूपां (पुरि) पुरीं (विशत्) प्रविशति, एवं परमात्मज्ञानमपि पुरी रूपेऽन्तःकरणे प्रविशति ।

पदार्थ—(सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (अद्रिभिः) चित्तवृत्तियों द्वारा (सुवानः) साक्षात्कार को प्राप्त हुए आप (वाराणि) वरणीयान्तःकरणों को (आविशत्) प्रवेश करते हैं (हरिः) कर्मों का अधिष्ठाता परमात्मा (अव्यया) जो सर्वरक्षक है वह (तिरः) अज्ञान को तिरस्कार करके (वनेषु) भक्तिभाजन अन्तःकरणों में विराजमान होता है और उनको (सदः) स्थिति का स्थान बनाकर (दधिषे) ज्ञान का प्रकाश करता है (न) जिस प्रकार (जनः) जनसमुदाय (चम्वोः) अधिष्ठानरूप (पुरि) पुरी को प्रवेश करता है, इसी प्रकार परमात्मज्ञान पुरीरूप अन्तःकरण में प्रवेश करता है ।

भावार्थ—इस मंत्र में परमात्मा की व्यापकता वर्णन कीगई है ।

स मामृजे तिरो अण्वानि मेष्यो मीळ्हे सप्तिर्न वाजयुः ।
अनुमाद्यः पवमानो मनीषिभिः सोमो विप्रेभिर्ऋक्वभिः ॥११

सः । ममृजे । तिरः । अण्वानि । मेष्यः । मीळ्हे । सप्तिः । न । वाजऽयुः । अनुऽमाद्यः । पवमानः । मनीषिऽभिः । सोमः । विप्रेभिः । ऋक्वऽभिः ॥

पदार्थः—(मेष्यः) सर्वकामनापूरकः (वाजयुः) ऐश्वर्ययुक्तः परमात्मा (मीह्ळे, न) यथा युद्धे (सप्तिः) अश्वः सत्तास्फूर्तियुक्तो भवति एवं हि ओजस्वी परमात्मा (अण्वानि) शब्दादि पञ्चतन्मात्रं (तिरः) तिरस्कृत्य (ममृजे, सः) बुद्धिवृत्तिविषयः स क्रियते (सोमः) सर्वोत्पादकः सः (विप्रेभिः) मेधाविभिः (ऋक्वभिः) कालेकाले यज्ञं कुर्वद्भिः (मनीषिभिः) मनस्विभिः साक्षात्कृतः (पवमानः) सर्वं पुनानः (अनुमाद्यः) आनन्दं प्रददाति ।

पदार्थ—(मेष्यः) मिषति इति "मेष्यः"=सब कामनाओं को पूर्ण करने वाला (वाजयुः) ऐश्वर्य्ययुक्त भगवान् (मीळ्हे) युद्धमें (न) जिस प्रकार (सप्तिः) अश्व सत्तास्फूर्तिवाला होता है, इस प्रकार ओजस्वी (अण्वानि) शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, इन पञ्चतन्मात्राओंको (तिरः) तिरस्कार करके (सः, ममृजे) वह बुद्धिवृत्ति का विषय किया जाता है, और (सोमः) उक्त सर्वोत्पादक परमात्मा (विप्रेभिः) जो मेधावी है, और (ऋक्वभिः) जो समय २ पर यज्ञ करनेवाले हैं, ऐसे (मनीषिभिः) मनस्वी पुरुषों द्वारा साक्षात्कार किया हुआ (पवमानः) सबको पवित्र करने वाला वह परमात्मा (अनुमाद्यः) आनन्द प्रदान करता है ।

भावार्थ—जो सर्वोपरि ब्रह्मानन्द है जिसके आगे और सब आनन्द फीके हैं वह एकमात्र परमात्मपरायण होनेसे ही उपलब्ध होता है अन्यथा नहीं ।

प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा ।
अंशोः पयसा मदिरो न जागृविरच्छा कोशं मधुश्चुतम् ॥१२॥

प्र । सोम । देवऽवीतये । सिंधुः । न । पिप्ये । अर्णसा ।

अंशोः । पयसा । मदिरः । न । जागृविः । अच्छ । कोशं । मधुऽश्चुतं ॥ १२ ॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! भवान् (देववीतये) विदुषां तृप्तये (अर्णसा) जलेन (सिन्धुः, न) सिन्धुरिव (प्रपिप्ये) वर्धते (अंशोः) जीवात्मनः (पयसा) अभ्युदयेन (मदिरः) आह्लादकानन्दः (न) यथा (मधुश्चुतम्, कोशम्) आनन्दकोशमन्तःकरणं (अच्छ) प्राप्नोति, एवं हि (जागृविः) चैतन्यस्वरूपः परमात्मा स्वोपासकतृप्तये जीवान्तःकरणमानन्दस्रोतः करोति ।

पदार्थ—(सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! आप (देववीतये) विद्वानोंकी तृप्तिके लिये (अर्णसा) जलसे (सिन्धुः) सिन्धुके (न) समान (प्रपिप्ये) वृद्धिको प्राप्त होते हैं (अंशोः) जीवात्माके (पयसा) अभ्युदयसे (मदिरः) आह्लादक आनन्द (न) जैसे (मधुश्चुतम्, कोशम्) आनन्दके कोश अन्तःकरण को (अच्छ) प्राप्त होता है इसी प्रकार (जागृविः) चैतन्यस्वरूप परमात्मा उपासकों की तृप्ति के लिये जीवके अन्तःकरण को आनन्द का स्रोत बनाता है ।

भावार्थ—परमात्मा सर्वव्यापक है उसका आनन्द यद्यपि सर्वत्र परिपूर्ण है तथापि उसको चित्तकी निर्मलता द्वारा उपलब्ध करनेवाले उपासक प्राप्त करसकते हैं अन्य नहीं ।

आ हर्यतो अर्जुने अत्के अव्यत प्रियः सूनुर्नमर्ज्यः ।
तमीं हिन्वन्त्यपसो यथारथं नदीष्वा गभस्त्योः ॥ १३ ॥

आ । हर्यतः । अर्जुने । अत्के । अव्यत । प्रियः । सूनुः ।

न । मर्ज्यः । तं । ईं । हिन्वंति । अपसः । यथा । रथं । नदीषु । आ । गभस्त्योः ॥ १३ ॥

पदार्थः—(अर्जुने) कर्मणामर्जन विषय: (अत्के) यो निरूप्यते (हर्यतः) सर्वप्रियः परमात्मा (अव्यत) अस्मान् रक्षति (न) यथा (सूनुः) सन्ततिः (मर्ज्यः) मार्जनयोग्या भवति एवं परमात्मापि सन्ततिस्थानीयं मा रक्षति (तमीम्) तं च (अपसः) कर्माणि (हिन्वन्ति) प्रेरयन्ति (यथा) यथाच (गभस्त्योः) बलयोः समक्षम् (रथम्) वेगं (नदीषु) संग्रामेषु प्रेरयन्ति, एवं रथरूपजीवं कर्मरूपसंग्रामे परमात्मा प्रेरयति ।

पदार्थ—(अर्जुने) कर्मों के अर्जन विषय में (अत्के) जो निरूपण किया जाता है वह (हर्यतः) सर्वप्रिय परमात्मा (अव्यत) हमारी रक्षा करता है (न) जैसे (सूनुः) सन्तति (मर्ज्यः) मार्जन करने योग्य होती है इसी प्रकार (प्रियः) सर्वप्रिय परमात्मा सन्ततिस्थानीय हमलोगों की रक्षा करता है (तमीम्) उक्त परमात्मा की (अपसः) कर्म (हिन्वन्ति) प्रेरणा करते हैं (यथा) जिसप्रकार (गभस्त्योः) बलके समक्ष (रथम्) वेग को (नदीषु) संग्रामों में प्रेरणा करते हैं, इसी प्रकार रथ रूप जीव को कर्मरूप संग्राम के अभिमुख परमात्मा प्रेरणा करता है ।

भावार्थ—इस मंत्र का भाव यह है कि संचित कर्म, प्रारब्ध और क्रियमाण इन तीनों प्रकार के कर्मों का ज्ञाता एकमात्र परमात्मा ही है ।

अभि सोमांस आयवः पवन्ते मद्यं मदम् ।
समुद्रस्याधि विष्टपि मनीषिणो मत्सरासः स्वर्विदः ॥१४॥

अभि । सोमासः । आयवः । पवंते । मद्यं । मदं । समुद्रस्य । अधि । विष्टपि । मनीषिणः । मत्सरासः । स्वःऽविदः ॥१४॥

पदार्थः—(आयवः) गतिशीलं (सोमासः, अभि) परमात्मानमभि (मद्यम्) अह्लादाय (मदम्) आनन्दाय च (पवन्ते) पवित्रयन्ति (समुद्रस्य) अन्तरिक्षस्य (अधिवि-ष्टपि) उपरि (मनीषिणः) मननशीलाः (मत्सरासः) ब्रह्मा-नन्दस्यपातारः (स्वर्विदः) विज्ञानिनः तस्य परमात्मनो रसं पिबन्ति ।

पदार्थ—(आयवः) ज्ञानशील विद्वान् (सोमासः) सर्वोत्पादक परमात्मा के (अभि) अभिमुख (मद्यम्) आह्लाद तथा (मदम्) आनन्द के लिये (पवन्ते) आत्मा को पवित्र करते हैं (समुद्रस्य) अन्तरिक्ष देश के (अधिविष्टपि) ऊपर (मनीषिणः) मननशील (मत्सरासः) ब्रह्मानन्द का पान करनेवाले (स्वर्विदः) विज्ञानी लोग परमात्मा के रस को पान करते हैं ।

भावार्थ—ज्ञानी और विज्ञानी लोग ही अपने जप तप आदि संयमों द्वारा परमात्मा के आनन्द को उपलब्ध करते हैं और वही अधिकारी होते हैं अन्य नहीं ।

तरत्समुद्रं पवमान ऊर्मिणा-
राजा देव ऋतं बृहत् ।
अर्षन्मित्रस्य वरुणस्य धर्मणा
प्र हिन्वान ऋतं बृहत् ॥ १५ ॥ १४ ॥

तरत् । समुद्रं । पवमानः । ऊर्मिणा । राजा । देवः । ऋतं । बृहत् । अर्षत् । मित्रस्य । वरुणस्य । धर्मणा । प्र । हिन्वानः । ऋतं । बृहत् ॥ १५ ॥

पदार्थः—(ऊर्मिणा) स्वानन्दवीचिभिः (पवमानः) पवित्रयिता परमात्मा (समुद्रम्) अन्तरिक्षलोकं (तरत्) अवगाहते (राजा) सर्वप्रकाशकः (देवः) दिव्यरूपः (बृहत्, ऋतं) सर्वोपरि सत्यताश्रयः परमात्मा (प्रार्षत्) सर्वत्र गतिशीलो भवति (मित्रस्य) अध्यापकस्य (वरुणस्य) उपदेशकस्य च (धर्मणा) धर्मैः (बृहत्, ऋतम्) सर्वोपरि सत्यता प्रेरयन् ताभ्यां लोककल्याणं वर्धयति ॥

पदार्थ—(ऊर्मिणा) अपने आनन्द की लहरों से (पवमानः) पवित्र करनेवाला परमात्मा (समुद्रम्) अन्तरिक्षलोक को (तरत्) अवगाहन करता है (राजा) "राजते प्रकाशत इति राजा"=सबको प्रकाश करनेवाला (देवः) दिव्यस्वरूप (बृहत्, ऋतम्) सर्वोपरि सत्य के धारण करनेवाला परमात्मा (प्रार्षत) सर्वत्र गतिशील होता है और (मित्रस्य) अध्यापक तथा (वरुणस्य) उपदेशक के (धर्मणा) धर्मोंद्वारा (बृहत्, ऋतम) सर्वोपरि सत्य को (हिन्वानः) प्रेरणा करता हुआ अध्यापक और उपदेशकों द्वारा देश का कल्याण करता है ॥

भावार्थ—जिस देश में अध्यापक तथा उपदेशक अपनी शुभशिक्षा द्वारा लोगों को सुशिक्षित करते हैं परमात्मा उस देश का अवश्यमेव कल्याण करता है ।

नृभिर्येमानो हर्यतो विचक्षणो
राजा देवः समुद्रियः ॥ १६ ॥

नृऽभिः । येमानः । हर्यतः । विऽचक्षणः । राजा । देवः । समुद्रियः ॥ १६ ॥

पदार्थः—(समुद्रियः) अन्तरिक्षदेशव्यापी (देवः) दिव्यस्वरूपः (राजा) अखिल ब्रह्माण्ड नियन्ता (विचक्षणः) सर्वद्रष्टा (हर्यतः) सर्वप्रियः परमात्मा (नृभिः) सदुपदेशकैः (येमानः) उपदिष्टः कर्मयोगिने शुभफलप्रदाता भवति ।

पदार्थ—(समुद्रियः) अन्तरिक्षदेशव्यापी (देवः) दिव्यस्वरूप (राजा) सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों का नियन्ता (विचक्षणः) सर्वद्रष्टा (हर्यतः) सर्वप्रिय परमात्मा (नृभिः) सदुपदेशक मनुष्यों द्वारा (येमानः) उपदेश किया हुआ कर्मयोगी के लिये शुभफलों का प्रदाता होता है ।

भावार्थ—परमात्मा के ज्ञान से कर्मयोगी नानाविध फलों को लाभ करता है, यहां कर्मयोगी यह उपलक्षण मात्र है वास्तव में ज्ञानयोगी, उद्योगी, तपस्वी और संयमी सब प्रकार के पुरुषों का यहां ग्रहण है ॥

इन्द्राय पवते मदः सोमो मरुत्वते सुतः ।
सहस्रधारो अत्यव्यमर्षति तमी मृजन्त्यायवः ॥ १७ ॥

इन्द्राय । पवते । मदः । सोमः । मरुत्वते । सुतः । सहस्रऽधारः । अति । अव्यं । अर्षति । तं । ईमिति । मृजंति । आयवः ॥ १७ ॥

पदार्थः—(मरुत्वते, सुतः) कर्मयोगिना साक्षात्कृतः

(सोमः) सर्वोत्पादकः परमात्मा (मदः) आल्हादको भूत्वा (इन्द्राय) कर्मयोगिने (पवते) पवित्रतां प्रददाति (सहस्र-धारः) विविधशक्तिमान् परमात्मा (अति, अव्यम्) अतिरक्षां (अर्षति) प्राप्नोति (तमीम्) तं च (आयवः) कर्मयोगिनः (मृजन्ति) साक्षात्कुर्वन्ति ।

पदार्थ—(मरुत्वते) कर्मयोगी द्वारा (सुतः) साक्षात्कार किया हुआ (सोमः) सर्वोत्पादक परमात्मा (मदः) आल्हादक बनकर (इन्द्राय) कर्मयोगी के लिये (पवते) पवित्रता प्रदान करता है (सहस्रधारः) अनन्तशक्ति युक्त परमात्मा (अति, अव्यम्) अत्यन्त रक्षा को (अर्षति) प्राप्त होता अर्थात् करता है (तम्) उक्त परमात्मा को (आयवः) कर्मयोगी लोग (मृजन्ति) साक्षात्कार करते हैं ।

भावार्थ—यहाँ भी कर्मयोगी उपलक्षणमात्र है वास्तव में सब प्रकार के योगियों का यहाँ ग्रहण है कि वह परमात्मा का साक्षात्कार करके सुरक्षित रहकर आल्हादक तथा सुखकारी पदार्थों का उपभोग करते हैं ॥

पुनानश्चमू जनयन्मतिं-
कविः सोमो देवेषु रण्यति ।
अपो वसानः परि गोभि-
रुत्तरः सीदन्वनेष्वव्यत ॥ १८ ॥

पुनानः । चमू इति । जनयन् । मतिं । कविः । सोमः । देवेषु । रण्यति । आपः । वसानः । परि । गोभिः । उत्ऽतरः । सीदन् । वनेषु । अव्यत ।

पदार्थः—(चमू) जीवप्रकृतिरूपे संसाराधारीभूते उभयशक्ती (पुनानः) पावयन् (मतिम्) बुद्धिम् (जनयन्) उत्पादयन् (कविः) सर्वज्ञः (सोमः) परमात्मा (देवेषु) सूर्यादिदिव्यशक्तिमत्पदार्थेषु (रण्यति) सर्वव्यापकत्वेन विराजते (आपः, वसानः) कर्माध्यक्षः सः (गोभिः, उत्तरः) ज्ञानेन्द्रियैः साक्षात्कृतः (परिसीदन्) अन्तःकरणे विराजते (वनेषु) सर्वलोकेषु (परि, अव्यत) सर्वथा रक्षति च ।

पदार्थ—(चमू) जीव तथा प्रकृतिरूपी संसार के आधारभूत दोनों शक्तियों को (पुनानः) पवित्र करता तथा (मतिम्) बुद्धि को (जनयन्) उत्पन्न करता हुआ (कविः) सर्वज्ञ (सोमः) सर्वोत्पादक परमात्मा (देवेषु) सूर्यादि दिव्यशक्तिवाले पदार्थों में (रण्यति) सर्वव्यापक भाव से विराजमान होता है (आपः, वसानः) कर्मों का अध्यक्ष परमात्मा (गोभिः, उत्तरः) ज्ञानेन्द्रियों द्वारा साक्षात्कार किया हुआ (परिसीदन्) अन्तःकरणों में विराजमान होता तथा (वनेषु) सम्पूर्ण लोक लोकान्तरों में (परि, अव्यत) सब ओर से रक्षा करता है ॥

भावार्थ—द्युभ्वादि लोक लोकान्तर एकमात्र परमात्मा ही के आधार पर स्थित होने से योगीजन सर्वत्र सुरक्षित रहता है ॥

तवाहं सोम रारण सख्य इन्दो दिवेदिवे ।
पुरूणि बभ्रो नि चरन्ति मामव परिधीरति ताँ इहि॥१९॥

तव । अहं । सोम । रारण। सख्ये । इंदो इति । दिवेऽदिवे । पुरूणि । बभ्रो इति । नि । चरंति । मां । अव । परिऽधीन् । अति । तान् । इहि ॥ १९ ॥

पदार्थः—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप (सोम) सर्वोत्पादक परमात्मन् (दिवेदिवे) प्रत्यहम् (तव, सख्ये) तव मैत्रीविषये (अहं, रारण) त्वां स्मरामि (बभ्रो) हे सर्वाधार ! (पुरूणि) बहूनि (निचरन्ति) नीचकर्माणि कुर्वन्ति ये राक्षसाः (तान्, परिधीन्) तान् राक्षसान् (अतीहि) अभिभावय (अव) मा च रक्ष ।

पदार्थ—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप (सोम) सर्वोत्पादक-परमात्मन् ! (दिवेदिवे) प्रतिदिन (तव, सख्ये) तुम्हारी मैत्री में (अहं, रारण) मैं सदैव तुम्हारा स्मरण करता हूं (बभ्रो) हे सर्वाधिकरण परमात्मन ! (पुरूणि) बहुत (निचरन्ति) नीचभावों से जो राक्षस (माम्) मुझको पीड़ा देते हैं (तान्, परिधीन्) उन राक्षसों को (अतीहि) अतिक्रमण करके मेरी (अव) रक्षा करो ।

भावार्थ—इस मंत्र में यह प्रार्थना कीगई है कि हे परमात्मन ! वैदिक कर्मानुष्ठान में विघ्न करने वाले मनुष्यों से हमारी रक्षा करें, "रक्षत्यस्मादितिरक्षः, रक्ष एव राक्षसः" यहां राक्षस शब्द से विघ्नकारी मनुष्यों का ग्रहण है किसी जातिविशेष का नहीं ।

उताहं नक्तमुत सोम ते दिवा सख्याय बभ्र ऊधनि ।
घृणा तपन्तमति सूर्यं परः शकुना इव पप्तिम ॥२०॥१५॥

उत । अहं । नक्तं । उत । सोम । ते । दिवा । सख्याय । बभ्रो इति । ऊधनि । घृणा । तपन्तं । अति । सूर्यं । परः । शकुनाःऽइव । पप्तिम ॥ २० ॥

पदार्थः—(बभ्रो) हे सर्वाश्रय परमात्मन् ! (ते, सख्याय) तव मैत्र्यै (दिवा) दिने (उत) अथ (नक्तम्)

रात्रौ (सोम) हे सर्वोत्पादक ! (ते, अधनि) तव समीपे (घृणा, तपन्तं) स्वदीप्त्या प्रकाशमानं (अति, सूर्यम्) स्वप्रकाशेन सूर्यमप्यतिक्रामन्तं (परः) परमं भवन्तम्प्राप्नोमि इतीच्छावानहं (शकुना, इव) पक्षिण इव (पतिम) गतिशीलो भवेयम् ।

पदार्थ—(बभ्रो) हे सर्वाधिकरण परमात्मन् ! (ते, सख्याय) तुम्हारी मैत्री के लिये (दिवा) दिन (उत) अथवा (नक्तम्) रात्रि (सोम) हे सोम (ते,अधनि) तुम्हारे समीप (घृणा, तपन्तम्) जो तुम अपनी दीप्ति से देदीप्यमान हो (अति, सूर्यम्) अपने प्रकाश से सूर्य को भी अतिक्रमण करनेवाले हो, तथा (परः) सर्वोपरि हो, उक्त गुणसम्पन्न आपको (शकुना, इव) शकुन पक्षी के समान (पतिम) प्राप्त होने के लिये गतिशील बनूं ।

भावार्थ—" बिभवतीति बभ्रुः "=जो सबको धारण करने वाला परमात्मा है उसी की उपासना करनी योग्य है ।

मृज्यमानः सुहस्त्य समुद्रे वाचमिन्वसि ।
रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाभ्यर्षसि ॥ २१ ॥

मृज्यमानः । सुऽहस्त्य । समुद्रे । वाचं । इन्वसि । रयिं । पिशंगं । बहुलं । पुरुऽस्पृहं । पवमानः । अभि । अर्षसि ॥२१॥

पदार्थः-(सुहस्त्य) हे सर्वसामर्थ्यानां हस्तगतकारक परमात्मन् ! भवान् (समुद्रे) अन्तरिक्षे (वाचम्) वाणीं (इन्वसि) प्रेरयति (मृज्यमानः) उपास्यमानश्च (बहुलम्) प्रचुरम् (पिशङ्गम्) सौवर्णम् (रयिम) धनम् (पुरुस्पृहम्) सर्वप्रियम् (पवमान) हे पावयितः ! (अभ्यर्षसि) ददाति भवान् ।

पदार्थ—(मुहस्त्य) हे सर्वसामर्थ्यों को हस्तगत करनेवाले परमात्मन् ! आप (समुद्रे) अन्तरिक्ष में (वाचम्) वाणी की (इन्वसि) प्रेरणा करते हैं (मृज्यमानः) उपासना किये हुए आप (बहुलम्) बहुत सा (पिशङ्गम्) सुवर्णरूपी (रयिम्) धन (पुरुस्पृहम्) जो सबको प्रिय है (पवमान) हे सबको पवित्र करनेवाले परमात्मन् (अभ्यर्षसि) आप देते हैं।

भावार्थ—परमात्मा की उपासना करने से सब प्रकार के ऐश्वर्य मिलते हैं, इसलिये ऐश्वर्य्य की चाहना वाले पुरुष को उसकी उपासना करनी चाहिये।

मृजानो वारे पवमानो अव्यये वृषाव चक्रदो वने।
देवानां सोम पवमान निष्कृतं गोभिरञ्जानो अर्षसि॥२२॥

मृजानः। वारे। पवमानः। अव्यये। वृषा। अव। चक्रदः। वने। देवानां। सोम। पवमान। निःऽकृतं। गोभिः। अंजानः। अर्षसि॥ २२॥

पदार्थः—(मृजानः) भवान् सर्वेषां शोधकः (अव्यये, वारे) रक्ष्यं वरणीयं पुरुषं (पवमानः) पवित्रयन् (वृषा) सर्वकामान् वर्षुकः (वने) संपूर्ण ब्रह्माण्डे (अव,चक्रदः) शब्दायसे (सोम) हे सर्वोत्पादक ! (पवमान) सर्वपावक ! (देवानां) विदुषां (निष्कृतम्) संस्कृतमन्तःकरणं (अर्षसि) प्राप्नोति (गोभिः) ज्ञानवृत्तिभिश्च साक्षात्क्रियते भवान्।

पदार्थ—(मृजानः) आप सबको शुद्ध करनेवाले हैं (अव्यये, वारे) रक्षायुक्त वरणीय पुरुष को (पवमानः) पवित्र करनेवाले (वृषा)

सब कामनाओं की वर्षा करनेवाले आप (वने) सब ब्रह्माण्डों में (अव, चक्रदः) शब्दायमान होरहे हैं (सोम) हे सर्वोत्पादक (पवमान) सब को पवित्र करनेवाले परमात्मन् (देवानाम्) विद्वानों के (निष्कृतम्) संस्कृत अन्तःकरण को (अर्षसि) प्राप्त होते हैं, आप कैसे हैं (गोभिः, अञ्जानः) इन्द्रियों द्वारा ज्ञानरूपी वृत्तियों से साक्षात्कार किये जाते हैं ।

भावार्थ— अभ्युदय और निःश्रेयस का हेतु एकमात्र परमात्मा ही है, इसलिये उसी की उपासना करना चाहिये ।

पवस्व वाजसातयेऽभि विश्वानि काव्या ।
त्वं समुद्रं प्रथमो वि धारयो देवेभ्यः सोममत्सरः ॥२३॥

पवस्व । वाजऽसातये । अभि । विश्वानि । काव्या । त्वं । समुद्रं । प्रथमः । वि । धारयः । देवेभ्यः । सोम । मत्सरः ॥२३॥

पदार्थः—(विश्वानि, काव्या) सकलसर्वज्ञताभावान् (अभि) लक्ष्यीकृत्य (पवस्व) मां पुनातु भवान् (सोम) हे सर्वोत्पादक ! (देवेभ्यः) विद्वद्भ्यः (मत्सरः) आनन्दप्रदोऽस्ति (त्वं) भवान् (समुद्रं) अन्तरिक्षमेवकलशं (प्रथमः) पूर्वम् (वि,धारयः) दधाति (वाजसातये) ऐश्वर्यधारणाय (पवस्व) मा पुनातु ।

पदार्थ—(विश्वानि, काव्या) सर्वज्ञता के सम्पूर्ण भावों को (अभिः) लक्ष्य रखकर (पवस्व) आप हमको पवित्र करें, (सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये आप (मत्सरः) अत्यन्त आनन्दप्रद हैं, और (त्वम्) तुमने (समुद्रम्) अन्तरिक्षरूपी कलश को (प्रथमः) सबसे प्रथम (विधारयः) धारण किया है, आप (वाजसातये) ऐश्वर्य्य धारण करने के लिये (पवस्व) हमको पवित्र बनायें ।

भावार्थ— हे परमात्मन्! इस नभोमण्डल अर्थात् कोटि २ ब्रह्माण्डों को एकमात्र आपने ही धारण किया है, इसलिये आप कृपा करके हमारे भावों को पवित्र बनायें जिससे हम आपकी उपासना में प्रवृत्त रहें ॥

स तू पवस्व परि पार्थिवं रजो
दिव्या च सोम धर्मभिः ।
त्वां विप्रासो मतिभिर्विचक्षण-
शुभ्रं हिन्वन्ति धीतिभिः ॥ २४ ॥

सः । तु । पवस्व । परि । पार्थिवं । रजः । दिव्या । च । सोम । धर्मऽभिः । त्वां । विप्रासः । मतिऽभिः । विऽचक्षण । शुभ्रं । हिन्वंति । धीतिऽभिः ॥ २४ ॥

पदार्थः—(पार्थिवं, रजः) पृथ्वीपरमाणून् (दिव्या, च) द्युलोकस्थान्यभूत परमाणूंश्च (सः, तु) सः त्वं (परिपवस्व) शोधयतु (सोम) हे सर्वोत्पादक (धर्मभिः) तव गुणैः (त्वां) भवन्तम् (विप्रासः) मेधाविनः (मतिभिः) स्वबुद्धिभिः साक्षात्कुर्वन्ति (विचक्षण) हे सर्वज्ञ ! (शुभ्रम्) सर्वोपरि शुद्धं भवन्तं (धीतिभिः) कर्मयोगशक्तिभिः कर्मयोगिनः (हिन्वन्ति) प्रेरयन्ति ।

पदार्थ— (पार्थिवम्, रजः) पृथिवी के परमाणु (च) और (दिव्या) द्युलोकस्थ अन्य भूतों के परमाणुओं को (सः,तु) वह आप (परि, पवस्व) भले प्रकार पवित्र करें (सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (धर्मभिः) तुम्हारे गुणों द्वारा (त्वाम्) तुम्हारा (विप्रासः) मेधावी लोग (मतिभिः) अपनी बुद्धि से साक्षात्कार करते हैं (विचक्षण) हे सर्वज्ञ ! (शुभ्रम्) सर्वोपरि शुद्धस्वरूप आपको (धीतिभिः) कर्मयोग की शक्तियों द्वारा कर्मयोगी लोग तुम्हारी (हिन्वन्ति) प्रेरणा करते हैं ।

भावार्थ— इस ब्रह्माण्ड के परमाणुरूप सूक्ष्म कारण को एकमात्र परमात्मा ही धारण करता तथा पवित्र करता है, इसलिये हे भगवन ! हम में भी वह शक्ति प्रदान करें कि हम कर्मयोगी बनकर ऐश्वर्यशाली हों ॥

पवमाना असृक्षत पवित्रमति धारया ।
मरुत्वन्तो मत्सरा इन्द्रिया हया मेधामभि प्रयांसि च ।२५।

पवमानाः । असृक्षत । पवित्रं । अति । धारया । मरुत्वंतः । मत्सराः । इंद्रियाः । हयाः । मेधां । अभि । प्रयांसि । च ॥२५॥

पदार्थः—(धारया) स्वकृपामयवृष्ट्या (पवित्रं) पवित्रान्तःकरणं (अभि) अभिलक्ष्य (अति, असृक्षत) त्वत्साक्षात्कारः क्रियते (पवमानाः) तव पवित्रं स्वभावाः (मरुत्वन्तः) विद्वद्भिः साक्षात्कृताः (मत्सराः) आनन्दप्रदाः (इन्द्रियाः) कर्मयोगिहिताः (हयाः) गतिशीलाः (च) तथा (मेधाम्) बुद्धिम् (प्रयांसि) ऐश्वर्यं च ददतः तैः पवस्व ।

पदार्थ— (धारया) अपनी कृपामयी दृष्टि से (पवित्रम्) पवित्र अन्तःकरण को (अभि) लक्ष्य रखकर (अति, असृक्षत) तुम्हारा साक्षात्कार किया जाता है (पवमानाः) तुम्हारे पवित्र स्वभाव (मरुत्वन्तः) जो विद्वानों द्वारा साक्षात्कार किये गये हैं (मत्सराः) आनन्ददायक हैं (इन्द्रियाः) कर्मयोगियों के हितकर हैं (हयाः) गतिशील हैं (च) और (मेधाम्) बुद्धि तथा (प्रयांसि) ऐश्वर्यों को देनेवाले जो आपके स्वभाव हैं उनसे आप हमको पवित्र करें ॥

भावार्थ—परमात्मा के अपहतपाप्मादि स्वभाव उपासना द्वारा मनुष्य को शुद्ध करते हैं, इसलिये मनुष्य को उसकी उपासना में सदा रत रहना चाहिये ।

अपो वसा॑नः॒ परि॒ कोश॑मर्ष॒-
तीन्दु॑र्हिया॒नः सो॒तृभिः॑ ।
ज॒नय॒ञ्ज्योति॑र्म॒न्दना॑ अवी॒-
वश॒द्गाः कृ॑ण्वा॒नो न नि॒र्णिज॑म् ॥ २६ ॥ १६ ॥

अपः॑ । व॒सा॑नः । परि॑ । कोश॑ं । अ॒र्ष॒ति॒ । इंदुः॑ । हि॒या॒नः । सो॒तृऽभिः॑ । ज॒नय॑न् । ज्योतिः॑ । म॒न्दनाः॑ । अवि॒व॒श॒त् । गाः । कृ॒ण्वा॒नः । न । नि॒र्णिज॑म् ॥ २६ ॥

पदार्थः—(सोतृभिः) कर्मयोगिभिः (हियानः) प्रेर्यमाणः (इन्दुः) प्रकाशस्वरूपः परमात्मा (कोशम्) तदन्तःकरणं (पर्यर्षति) प्राप्नोति (अपः, वसानः) कर्मणामध्यक्षः सः (ज्योतिः) सूर्यादिज्योतींषि (जनयन्) उत्पादयन् (गाः) पृथिव्यादि लोकान् (अविवशत) दीपयन् (निर्णिजम्) स्वरूपं (कृण्वानः, न) स्पष्टं कुर्वन्निव (मन्दनाः) स आनन्दस्वरूपः स्वरूपमभिव्यनक्ति ।

पदार्थ—(सोतृभिः) कर्मयोगियों से (हियानः) प्रेरणा किया हुआ (इन्दुः) प्रकाशस्वरूप परमात्मा (कोशम्) उनके अन्तःकरण को (पर्यर्षति) प्राप्त होता है (अपः, वसानः) कर्मों का अध्यक्ष परमात्मा (ज्योतिः) सूर्यादि ज्योतियों को (जनयन) उत्पन्न करके (गाः) पृथिव्यादि लोकों को (अविवशत) देदीप्यमान करता हुआ और (निर्णिजम्) अपने स्वरूप को (कृण्वानः) स्पष्ट करते हुए के (न) समान (मन्दनाः) अभिव्यक्त करता है ।

भावार्थ—सूर्य चन्द्रादि नाना ज्योतियों को उत्पन्न करनेवाला परमात्मा सब कर्मों का अध्यक्ष है, वह अपनी कृपा से हमारे अन्तःकरण को प्राप्त हो ।

इति सप्तोत्तर शततमंसूक्तं शोडषोवर्गश्च समाप्तः ।

यह १०७ का सूक्त और सोलहवां वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ षोडषर्चस्य अष्टोत्तरशततमस्य सूक्तस्य-

ऋषिः–१, २ गौरिवीतिः । ३, १४–१६ शक्तिः । ४, ५ उरुः ।
६, ७ ऋजिश्वाः । ८, ९ ऊर्द्धसद्मा । १०, ११ कृतयशाः ।
१२ १३ ऋणञ्चयः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः
१, ९, ११ उष्णिक् ककुप् । ३ पादनिचृदुष्णिक् ।
५, ७, १५ निचृदुष्णिक् । २ निचृद्बृहती । ४,
६, १०, १२ स्वराड्बृहती । ८, १६ पङ्क्तिः ।
१४ निचृत्पङ्क्तिः । १३ गायत्री ॥ स्वरः
१, ३, ५, ७, ९, ११, १५ ऋषभः ।
२, ४, ६, १०, १२ मध्यमः ।
८, १४, १६ पञ्चमः ।
१३ षड्जः ।

पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः ।
महि द्युक्षतमो मदः ॥ १ ॥

पवस्व । मधुमत्ऽतमः । इन्द्राय । सोम । क्रतुवित्ऽतमः । मदः ।
महि । द्युक्षऽतमः । मदः ॥ १ ॥

पदार्थः—(सोम) हे सर्वोत्पादक ! भवान् (मधुमत्तमः) आनन्दस्वरूपः (क्रतुवित्तमः) सर्वकर्मवेत्ता च (द्युक्षतमः) दीप्तिमान् (महि, मदः) आनन्दहेतुः (मदः) हर्षस्वरूपः (इन्द्राय) कर्मयोगिनं भवान् (पवस्व) पुनातु ।

पदार्थः—(सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन्! आप (मधुमत्तमः) आनन्दस्वरूप और (क्रतुवित्तमः) सब कर्मों के वेत्ता हैं (द्युक्षतमः) दीप्तिवाले हैं (महि, मदः) अत्यन्त आनन्द के हेतु (मदः) हर्षस्वरूप आप (इन्द्राय) कर्मयोगी को (पवस्व) पवित्र करें।

भावार्थ—इस मंत्र में परमात्मा से शुभकर्म्मों की ओर लगने की प्रार्थना कीगई है कि हे शुभकर्मों में प्रेरक परमात्मन्! आप हमारे सब कर्मों को भलीभांति जानते हुए भी अपनी कृपा से हमें शुभकर्मों की ओर प्रेरित करें कि हम कर्मयोगी बनकर आपकी समीपता लाभ करसकें।

यस्य॑ ते पी॒त्वा वृ॑ष॒भो वृ॑षा॒यते॒ऽस्य पी॒ता स्व॒र्विदः॑ ।
स सु॑प्र॒केतो॑ अ॒भ्य॑क्रमी॒दिषो॒ऽच्छा॒ वाजं॒ नैत॑शः ॥ २ ॥

यस्य॑ । ते॒ । पी॒त्वा । वृ॒ष॒ऽय॒ते । अ॒स्य । पी॒ता । स्व॒ःऽविदः॑ ।
सः । सु॒ऽप्र॒के॑तः । अ॒भि । अ॒क्र॒मी॒त् । इषः॑ । अच्छ॑ । वाजं॑ ।
न । एत॑शः ॥ २ ॥

पदार्थः—(यस्य, ते, पीत्वा) यं तवानन्दं पीत्वा (वृषभः) कर्मवृष्टिकारकः कर्मयोगी (वृषायते) सदुपदेशको भवति (अस्य, पीता) इममानन्दं पीत्वा (सुप्रकेतः) सुप्रज्ञोजनः (इषः, अभ्यक्रमीत) शत्रूनतिक्रामति (एतशः) अश्वः (न) यथा (वाजं, अच्छ) संग्राममतिक्रामति एवं हि कर्मयोगी सर्वं बलान्यतिक्रामति, इमं पीत्वा (स्वर्विदः) विज्ञानी भवति।

पदार्थ—(यस्य, ते) जिस तुम्हारे (पीत्वा) आनन्द के पान करने से (वृषभः) कर्मों की वृष्टि करनेवाला कर्मयोगी (वृषायते) वर्षतीति वृषः, वृषु सिञ्चने, इस धातु से सदुपदेश द्वारा सिञ्चन करनेवाले

पुरुष के लिये यहां 'इष' शब्द आया है जिसके अर्थ सदुपदेश के हैं (अस्य, पीता) इस आनन्द के पीने से (सुप्रकेतः) शोभन प्रज्ञा वाला होकर (इषः, अभ्यक्रमीत्) शत्रुओं को अतिक्रमण कर जाता है (एतशः) अश्व (न) जैसे (वाजम्) संग्राम का (अच्छ) अतिक्रमण करता है इसी प्रकार कर्मयोगी पुरुष सब बलों का अतिक्रमण करता और (स्वार्विदः) विज्ञानी बनता है ।

भावार्थ—इस मंत्र का आशय यह है कि वेद के सदुपदेश द्वारा कर्मयोगी शोभन प्रज्ञावाला होजाता है, यहाँ अश्व के दृष्टान्त से कर्मयोगी के बल और पराक्रम का वर्णन किया है कि जिस प्रकार अश्व संग्राम में विजय प्राप्त करता है, इसी प्रकार कर्मयोगी विज्ञान द्वारा सब शत्रुओं का पराजय करने वाला होता है ।

त्वं ह्यं१ङ्ग दैव्या पवमान जनिमानि द्युमत्तमः ।
अमृतत्वाय घोषयः ॥ ३ ॥

त्वं । हि । अंग । दैव्या । पवमान । जनिमानि । द्युमत्ऽतमः । अमृतऽत्वाय । घोषयः ॥ ३ ॥

पदार्थः—(पवमान) हे सर्वस्य पावक परमात्मन् ! (त्वं, दैव्या, जनिमानि) पवित्र जन्मान्यभिलक्ष्य (द्युमत्तमः) दीप्तिमान्भवान् (अमृतत्वाय) अमृतभावाय (घोषयः) घोषणं करोति (हि) निश्चयेन (अंग) हे सर्वप्रिय ! भवानेव सर्वेषां कल्याणं करोति ।

पदार्थ—(पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (त्वम्, दैव्या, जनिमानि) पवित्र जन्मों को लक्ष्य रखकर (द्युमत्तमः)

दीप्तिवाले आप (अमृतत्वाय) अमृतभाव का (घोषयः) घोषण करते हैं (हि) निश्चय करके (अंग) हे सर्वप्रिय परमात्मन् ! आप ही सब का कल्याण करने वाले हैं ।

भावार्थ—वही परमपिता परमात्मा विद्वान् तथा सत्कर्मी जीवों को कल्याण के देने वाले और वही सबका पालन पोषण करने वाले हैं ।

येना नवंग्वो दुध्यङ्ङपोर्णुते येन विप्रांस आपिरे ।
देवानां सुम्ने अमृतस्य चारुणो येन श्रवांस्यानशुः ॥४॥

येनं । नवंऽग्वः । दुध्यङ् । अपऽऊर्णुते । येनं । विप्रांसः । आपिरे । देवानां । सुम्ने । अमृतंस्य । चारुंणः । येनं । श्रवांसि । आनशुः ॥ ४ ॥

पदार्थः—(येन) येन तवानन्देन (नवग्वः) नवाः (दध्यङ्) ध्यानिजनाः (अपोर्णुते) सदुपदेशेन लोकान् सुस्थापयन्ति (येन) येन च (विप्रासः) मेधाविनः (आपिरे) प्राप्यंते (येन) येन च (देवानां) विदुषा (चारुणः, अमृतस्य, सुम्ने) अमृतायेव चारुसुखाय जिज्ञासुर्विराजते, येन च (श्रवासि) यशासि (आनशुः) भुञ्जन्ति स केवलं भवत एवानन्दः ।

पदार्थ—(येन) जिस तुम्हारे आनन्द से (नवग्वः) नवीन पुरुष (दध्यङ्) ध्यानी लोग (अपोर्णुते) सदुपदेशों द्वारा लोगों को सुरक्षित करते हैं (येन) जिससे (विप्रासः) मेधावी लोग (आपिरे) प्राप्त होते हैं (देवानाम्, सुम्ने, चारुणः, अतमृस्य) विद्वानों के अमृतरूपी सुख में जिज्ञासु विराजमान होता है (येन) जिससे (श्रवांसि) यशों को

(आनशुः) भोगता है, वह एकमात्र आप ही का आनन्द है।

भावार्थ—परमात्मा ही अपने अनादिसिद्ध ज्ञान द्वारा लोगों को सन्मार्ग की प्रेरणा करता, वही सद्विद्यारूपी वेदों से सबका सुधार करता और वही सबको आनन्द प्रदान करने वाला है।

एष स्य धारया सुतोऽव्यो वारेभिः पवते मदिन्तमः।
क्रीळन्नूर्मिरपामिव ॥ ५ ॥ १७ ॥

एषः। स्यः। धारया। सुतः। अव्यः। वारेभिः। पवते। म-दिन्ऽतमः। क्रीळन्। ऊर्मिः। अपांऽइव ॥ ५ ॥

पदार्थः—(एषः, स्यः) स परमात्मा (अव्यः) यो हि सर्वरक्षकः सः (वारेभिः, सुतः) सुसाधनैः साक्षात्कृतः (धारया, पवते) आनन्दवृष्ट्या पुनाति (मदिन्तमः) आनन्दस्वरूपः सः (अपाम्, ऊर्मिः, इव) समुद्र वीचय इव (क्रीलन्) क्रीडन् अखिलब्रह्माण्डं निर्माति।

पदार्थ—(एषः, स्यः) वह पूर्वोक्त परमात्मा (अव्यः) जो सर्वरक्षक है (वारेभिः, सुतः) श्रेष्ठ साधनों द्वारा साक्षात्कार किया हुआ (धारया) आनन्द की वृष्टि से (पवते) पवित्र करता है (मदिन्तमः) वह आनन्दस्वरूप (अपाम्, ऊर्मिः, इव) समुद्र की लहरों के समान (क्रीलन्) क्रीड़ा करता हुआ सब ब्रह्माण्डों को निर्माण करता है।

भावार्थ—यहां समुद्र की लहरों का दृष्टान्त अनायास के अभिप्राय से है साकार के अभिप्राय से नहीं अर्थात् जिस प्रकार मनुष्य अनायास ही श्वासादि व्यवहार करता है इसी प्रकार लीलामात्र से परमात्मा इस संसार की रचना करता है।

य उस्रिया अप्या अन्तरश्मनो निर्गा अकृन्तदोजसा ।
अभि व्रजं तत्निषे गव्यमश्व्यं वर्मीव धृष्णवा रुज ॥६॥

यः । उस्रियाः । अप्याः । अंतः । अश्मनः । निः । गाः ।
अकृंतत् । ओजसा । अभि । व्रजं । तत्निषे । गव्यं । अश्व्यं
वर्मीऽइव । धृष्णो इति । आ । रुज ॥ ६ ॥

पदार्थः—(यः) यः परमात्मा (अप्याः, उस्रियाः) व्याप्तिशीलस्वशक्तिभिः (अन्तरश्मनः) मेघान्तः (ओजसा, अकृन्तत्) बलेन छिन्दन् (निर्गाः) सदा शब्दायते (व्रजं, अभि) ब्रह्माण्डमभि (तत्निषे) सर्वत्र व्याप्तः, यश्च (गव्यम) ज्ञानसम्बन्धिनीं (अश्व्यम्) कर्मसम्बन्धिनीं च शक्तिं (वर्मीव) कवचमिव धारयाति तस्मादिदं प्रार्थनीयं यत् (धृष्णो) हे धृतिरूप परमात्मन् ! (आरुज) भवाम् मम बाधकशक्तीर्नाशयतु ।

पदार्थ—(यः) जो परमात्मा (अप्याः, उस्रियाः) अपनी व्याप्तिशील शक्तियों से (अन्तरश्मनः) मेघों के भीतर (ओजसा, अकृन्तत्) बल से छेदन करता हुआ (निर्गाः) निरन्तर शब्दायमान होकर (व्रजम्) इस ब्रह्माण्डरूपी समुदाय के समक्ष (अभि, तत्निषे) चारों ओर व्याप्त होरहा है और जो (गव्यम्) ज्ञान तथा (अश्व्यम्) कर्म की शक्तियों को (वर्मीव) कवच के समान धारण कर रहा है उससे यह प्रार्थना है कि (धृष्णो) हे धृतिरूप परमात्मन् ! (आरुज) आप हमारी बाधक शक्तियों को नाश करें ।

भावार्थ—वह पूर्ण परमात्मा जो इस ब्रह्माण्ड में सर्वत्र परिपूर्ण होरहा है वही मङ्गलमय प्रभु सब विघ्नों को निवृत्त करके कल्याण का देने वाला और वही सब पापों का क्षय करने वाला है ।

आ सोता परि षिञ्चताश्वं न स्तोममप्तुरं रजस्तुरम् ।
वनक्रक्षमुदप्रुतम् ॥ ७ ॥

आ । सोत । परि । सिंचत । अश्वं । न । स्तोमं । अप्ऽतुरं । रजःऽतुरं । वनऽक्रक्षं । उदऽप्रुतम् ॥ ७ ॥

पदार्थः—(अश्वम्, न) यः विद्युदिव (अप्तुरम्) अन्तरिक्षपदार्थान् सुगत्या योजयति (रजस्तुरम्) तेजस्विपदार्थेभ्यश्च गतिं ददाति यश्च (वनक्रक्षं, उदप्रुतम्) सर्वत्रैव ओतप्रोतोऽस्ति तम् (स्तोमम्) स्तुत्यर्हं परमात्मानं (परि, सिञ्चत) उपासनारूप वारिणा सम्यक् सिंचत (आ) समन्तात् (सोत) साक्षात्कुरुत ।

पदार्थ—(अश्वम्, न) जो विद्युत् के समान (अप्तुरम्) अन्तरिक्षस्थ पदार्थों को गति देने वाला (रजस्तुरम्) तेजस्वी पदार्थों को गति देने वाला, और (वनक्रक्षम्, उदप्रुतम्) जो सर्वत्र ओतप्रोत होरहा है ऐसे (स्तोमम्) स्तुति योग्य परमात्मा को (परिसिञ्चत ,आ) अपनी उपासनारूप वारि से भलेप्रकार सिञ्चन करते हुए उसका (सोत) साक्षात्कार करें ।

भावार्थ—विद्युदादि नानाविध क्रियाशक्तियों का प्रदाता, निर्माता तथा प्रकाशक एकमात्र परमात्मा ही है, वही सबका उपासनीय और वही सबको कल्याण का देने वाला है ॥

सहस्रधारं वृषभं पयोवृधं प्रियं देवाय जन्मने ।
ऋतेन य ऋतजातो विवावृधे राजा देव ऋतं बृहत् ॥८॥

सहस्रऽधारं । वृषभं । पयःऽवृधं । प्रियं । देवाय । जन्मने ।

ऋतेन॑ । यः । ऋत॒ऽजा॑तः । वि॒ऽव॒वृ॒धे । राजा॑ । दे॒वः । ऋ॒तं । बृ॒हत् ॥ ८ ॥

पदार्थः—(सहस्रधारम्) योऽनेकधानन्दधाराभिः (वृषभं) कामनानां पूरकः (पयोवृधम्) योऽन्नाद्यैश्वर्येण परिपूर्णः (प्रियम्) यः सर्वप्रियः तस्य परमात्मनः (देवाय, जन्मने) दिव्यजन्मने प्रार्थनां करोमि (यः) यश्च (ऋतेन) प्रकृतिरूपर्तेन (ऋतजातः) ऋतजातोऽस्ति (विववृधे) यः सर्वत्र विशेषेण वृद्धिं प्राप्तः यश्च (देवः) दिव्यस्वरूपः (राजा) सर्वभूतस्वामी च (ऋतं, बृहत) सर्वोपरि सत्यः तमुपासीमहि वयम् ।

पदार्थ—(सहस्रधारम्) जो अनन्त प्रकार की आनन्द धाराओं से (वृषभम) कामनाओं का पूर्ण करने वाला (पयोवृधम) जो अन्नादि ऐश्वर्य्यों से परिपूर्ण और (प्रियम्) जो सर्वप्रिय है, ऐसे परमात्मा से मैं (देवाय, जन्मने) दिव्यजन्म के लिये प्रार्थना करता हूं, जो (ऋतेन) प्रकृतिरूपी ऋत से (ऋतजातः) ऋतजात अर्थात् सर्वत्र विद्यमान है (विवृधे) जो सर्वत्र विशेषरूप से वृद्धि को प्राप्त (यः) जो (देवः) दिव्य स्वरूप और जो (राजा) सब भूतों का स्वामी है वही (ऋतं बृहत) एकमात्र सर्वोपरि सत्य है, उसी परमात्मा की हम लोग उपासना करें ।

भावार्थ—इस मंत्र में प्रकृति को "ऋत" इस अभिप्राय से कहा गया है कि प्रकृति परिणामी नित्य है—अर्थात परिणाम को प्राप्त होकर नाश नहीं होती, शेष सब अर्थ स्पष्ट है ।

अ॒भि द्यु॒म्नं बृ॒हद्यश॒ इष॑स्पते दिदी॒हि दे॑व देव॒युः ।
वि कोशं॑ मध्य॒मं यु॑व ॥ ९ ॥

अभि । द्युम्नं । बृहत् । यशः । इषः । पते । दिदीहि । देव । देवऽयुः । वि । कोशं । मध्यमं । युव ॥ ९ ॥

पदार्थः—(द्युम्नम्) दीप्तिमत् (बृहद्यशः) बृहद्यशोयुक्तमैश्वर्यं (इषस्पते) हे ऐश्वर्यपते परमात्मन् ! (अभि, दिदीहि) मह्यं ददातु (देवयुः) दीप्तिमान् (देव) हे दिव्यरूप ! (मध्यमं, कोशम्) अन्तरिक्षकोशं (वि,युव) विशेषेण मया योजयतु ।

पदार्थ—(द्युम्नम्) दीप्ति वाला (बृहत्, यशः) बड़े यश वाला (इषस्पते) हे ऐश्वर्यों के पति परमात्मन् ! (अभि, दिदीहि) आप हमको ऐश्वर्य्य प्रदान करें (देवयुः) दीप्ति को प्राप्त (देव) दिव्यस्वरूप परमात्मन् ! (मध्यमम्, कोशम्) अन्तरिक्ष कोश को (वि,युव) आप हमें विशेषरूप से समाश्रित करें ।

भावार्थ—इस मन्त्र में परमात्मा से ऐश्वर्यप्राप्ति की प्रार्थना की गई है कि हे परमात्मन् ! आप ऐश्वर्य्यरूप सम्पूर्ण कोषों के पति हैं, कृपा करके हमें भी विशेषरूप से सम्पत्तिशील बनावें ।

आ वच्यस्व सुदक्ष चम्वोः सुतो विशां वह्निर्न विश्पतिः ।
वृष्टिं दिवः पवस्व रीतिमपां जिन्वा गविष्टये धियः ॥१०॥१८

आ । वच्यस्व । सुऽदक्ष । चम्वोः । सुतः । विशां । वह्निः । न । विश्पतिः । वृष्टिं । दिवः । पवस्व । रीतिं । अपां । जिन्व । गोऽइष्टये । धियः ॥ १० ॥

पदार्थः—(सुदक्ष) हे सर्वज्ञ ! (चम्वोः) जीवप्रकृति-

रूप व्याप्यपदार्थेषु (सुतः) सर्वत्र विद्यमानः (विशाम्) प्रजानाम् (वह्निः, न) अग्निरिव (विश्पतिः) धारकः, भवान् (आ, वच्यस्व) मन मनसि आगच्छ (दिवः) द्युलोकस्य (वृष्टिम्) वर्षणम् (पवस्व) पुनातु (अपा, रीतिम्) कर्मणा गतिं च पुनातु (गविष्टये, धियः) ज्ञानस्य कर्मणा चाभिलाषिणं जनं (जिन्व) शक्त्या परिपूरयतु ।

पदार्थ—(सुदक्ष) हे सर्वज्ञ परमात्मन्! आप (चम्वोः) प्रकृति तथा जीवरूप व्याप्य पदार्थों में (सुतः) सर्वत्र विद्यमान (विशाम्) सब प्रजाओं के (वह्निः) अग्नि (न) समान (विश्पतिः) वोढा=नेता हैं, आप (आ, वच्यस्व) हमें प्राप्त हों (दिवः) द्युलोक की (वृष्टिम्) वृष्टि को (पवस्व) पवित्र करें (अपां, रीतिम्) कर्मों की गति को पवित्र करें (गविष्टये) ज्ञान और (धियः) कर्मों की इच्छा करनेवाले पुरुष को (जिन्व) अपनी शक्ति से परिपूर्ण करें।

भावार्थ—जिस प्रकार अग्नि एक पदार्थ को स्थानान्तर को प्राप्त कर देती है अर्थात् अपनी तेजोमयी शक्ति से गतिशील बना देती है, इसी प्रकार परमात्मा ज्ञानी तथा शुभकर्मी पुरुष को गतिशील बनाता है जिससे पुरुष शक्तिसम्पन्न होकर उसकी समीपता को उपलब्ध करता है ॥

एतमु त्यं मदच्युतं सहस्रधारं वृषभं दिवो दुहुः ।
विश्वा वसूनि बिभ्रतम् ॥ ११ ॥

एतं । ऊं इति । त्यं । मदऽच्युतं । सहस्रऽधारं । वृषभं । दिवः । दुहुः । विश्वा । वसूनि । बिभ्रतं ॥११ ॥

पदार्थः—(त्यमेतमु) एतं परमात्मानं (मदच्युतम्)

आनन्दपूर्ण (सहस्रधारम्) अनन्तशक्तिमन्तम् (दिवोवृषभम्) द्युलोकादानन्दवृष्टिकर्त्तारम् (विश्वा, वसूनि) सकलैश्वर्याणि (बिभ्रतम्) दधतम् (दुहुः) एवंभूतं तं ज्ञानवृत्तिभिः परिपूरयन्ति ।

पदार्थ—(त्यमेतम्) उस उक्त परमात्मा को (मदच्युतम्) जो आनन्द से भरपूर (सहस्रधारम्) अनन्त शक्तियों वाला (दिवोवृषभम्) द्युलोक से आनन्द की वृष्टि करने वाला (विश्वावसूनि) और जो सब ऐश्वर्यों के (बिभ्रतम्) धारण करनेवाला है, उसको (दुहुः) ज्ञानवृत्तियों से परिपूर्ण करते हैं ।

भावार्थ—ज्ञानवृत्तियें परमात्मा का साक्षात्कार इस प्रकार करती हैं कि आवरण भङ्ग करके सर्वव्यापक परमात्मा को अभिव्यक्त करती हैं, इसी का नाम वृत्तिव्याप्ति है ।

वृषा वि जज्ञे जनयन्नमर्त्यः प्रतपञ्ज्योतिषा तमः ।
स सुष्टुतः कविभिर्निर्णिजं दधे त्रिधात्वस्य दंससा ॥१२॥

वृषा । वि । जज्ञे । जनयन् । अमर्त्यः । प्रऽतपन् । ज्योतिषा । तमः । सः । सुऽस्तुतः । कविऽभिः । निःऽनिजं । दधे । त्रिऽधातु । अस्य । दंससा ॥ १२ ॥

पदार्थः—(अमर्त्यः) अमरणधर्मा स परमात्मा (वृषा) सर्वकामनाप्रदः (जनयन्) स्वज्योतिः प्रकाशयन् (विजज्ञे) जायमान उच्यते (ज्योतिषा) स्वज्ञानज्योतिषा च (तमः, प्रतपन्) अज्ञानं दूरीकुर्वन् (कविभिः) विद्वद्भिः वर्णितः (निर्णिजम्) निराकारपदं (दधे) दधाति (अस्य, दंससा) अस्या-

पूर्वकर्मणा (त्रिधातु) गुणत्रयाश्रयभूता प्रकृतिः स्थिरास्ति (सः) इत्थंभूतः परमात्मा (सुस्तुतः) सम्यगुपासितः सद्गतिं प्रददाति ।

पदार्थ—(अमर्त्यः) अमरणधर्मा परमात्मा (वृषा) जो सब कामनाओं की वृष्टि करनेवाला है वह (जनयन्) अपनी ज्योति को प्रकाश करता हुआ (विजज्ञे) जायमान कथन किया जाता है (ज्योतिषा) अपनी ज्ञानरूपी ज्योति से (तमः, प्रतपन्) अज्ञान को दूर करता हुआ (कविभिः) विद्वानों से वर्णित (निर्णिजम्) निराकार के पद को (दधे) धारण करता है, और (अस्य, वंससा) इसके अपूर्व कर्मों से (त्रिधातु) तीनों गुणों की आश्रयभूत प्रकृति स्थिर है (सः) उक्त गुण-सम्पन्न परमात्मा (सुस्तुतः) भलीभाँति उपासना किया हुआ सद्गति प्रदान करता है ।

भावार्थ—इस मंत्र में परमात्मा को जायमान उपचार से कथन किया गया है वस्तुतः नहीं, वास्तव में वह अजर, अमरादि गुण सम्पन्न है, वह अपने उपासकों की कामनाओं को पूर्ण करने वाला और उनको सद्गति का प्रदाता है ॥

स मुन्वे यो वसूनां यो रायामानेता य इळानाम् ।
सोमो यः सुक्षितीनाम् ॥ १३ ॥

सः । मुन्वे । यः । वसूनां । यः । रायां । आऽनेता । यः । इळानां । सोमः । यः । सुऽक्षितीनां ॥ १३ ॥

पदार्थः—(सः) स परमात्मा (सुन्वे) सर्वं संसारमुत्पादयति (यः) यश्च (सोमः) सर्वोत्पादकः (वसूनां) धनानां

(रायाम्) ऐश्वर्याणा च (आनेता) प्रेरकः (यः) यश्च (इलाना, सुक्षितीना) सर्वेषा लोकाना चाधिष्ठातास्ति सममज्ञानविषयो भवतु ।

पदार्थ—(सः) वह परमात्मा (यः) जो (सुन्वे) सब संसार को उत्पन्न करता (यः) जो (सोमः) सर्वोत्पादक (वसूनाम्) सब धनों (रायाम्) ऐश्वर्यों का (आनेता) प्रेरक, और (यः) जो (इलानां, सुक्षितीनाम्) सम्पूर्ण लोकलोकान्तरों का अधिष्ठाता है वह हमारे ज्ञान का विषय हो ।

भावार्थ—सब पदार्थों का अधिष्ठाता परमात्मा है अर्थात् परमात्मा सब पदार्थों का आधार और सब पदार्थ आधेय हैं, हे भगवन् ! आप हमारे ज्ञान की वृद्धि करें कि हम लोग आपकी समीपता को प्राप्त होकर आनन्द का उपभोग करसकें ।

यस्य न इन्द्रः पिबाद्यस्य मरुतो यस्य वार्यमणा भर्गः ।
आयेन मित्रावरुणा करामह एन्द्रमवसे महे ॥ १४ ॥

यस्य । नः । इन्द्रः । पिबात् । यस्य । मरुतः । यस्य । वा । अर्यमणा । भगः । आ । येन । मित्रावरुणा । करामहे । आ । इन्द्रं । अवसे । महे ॥ १४ ॥

पदार्थः—यः परमात्मा (नः) अस्माकं स्वामी (यस्य) यस्यानन्दं (इन्द्रः) कर्मयोगी (पिबात्) पिबति (यस्य, मरुतः) यदानन्दं विद्वद्गणः पिबति (यस्य) यदानन्दं (अर्यमणा) कर्मणा सह (भगः) कर्मयोगी पिबति (येन) येन च (मित्रा, वरुणा) अध्यापकोपदेशकौ (करामहे) सदुपदिशतः (महे,

अवसे) अत्यन्त रक्षायै (इन्द्रम्) यः परमात्मा कर्मयोगिनमुत्पादयति स एवास्माभिरुपास्यदेवो ज्ञातव्यः ।

पदार्थ—(नः) हमारा स्वामी परमात्मा (यस्य) जिसके आनन्द को (इन्द्रः) कर्मयोगी (पिबात्) पान करते (यस्य) जिसके आनन्द को (मरुतः) विद्वानों का गण पान करता (यस्य) जिसके आनन्द को (अर्यमणा) कर्मों के साथ (भगः) कर्मयोगी उपलब्ध करता और (येन) जिससे (मित्रावरुणा) अध्यापक तथा उपदेशक (करामहे) सदुपदेश करते हैं (महे, अवसे) अत्यन्त रक्षा के लिये (इन्द्रम्) कर्मयोगी को जो उत्पन्न करता है वही हमारा उपास्यदेव है ।

भावार्थ—जो परमात्मा नाना प्रकार की विद्यायें और इन विद्याओं के वेत्ता कर्मयोगी तथा ज्ञानयोगियों को उत्पन्न करता जिससे शिक्षा प्राप्त करके अध्यापक तथा उपदेशक धर्मोपदेश करते और जो दुष्टदमन के लिये रक्षक उत्पन्न करता है वही हमारा पूजनीय देव है उसी की उपासना करनी योग्य है।

इन्द्रा॑य सोम॒ पात॑वे॒ नृभि॑र्य॒तः स्वा॑यु॒धो म॒दिन्त॑मः ।
पव॑स्व॒ मधु॑मत्तमः ॥ १५ ॥

इ॒न्द्राय॑ । सो॒म॒ । पात॑वे । नृ॒ऽभिः॑ । य॒तः । सु॒ऽआ॒यु॒धः । म॒दिन्ऽत॑मः । पव॑स्व । मधु॑मत्ऽतमः ॥ १५ ॥

पदार्थः—(सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (इन्द्राय, पातवे) कर्मयोगितृप्तये (नृभिर्यतः) मनुष्यैः साक्षात्कृतो भवान् (मधुमत्तमः) अत्यन्त मधुरान् (मदिन्तमः) आह्लादकांश्चगुणान्धारयति (स्वायुधः) स्वाभाविक शक्तिप्रदो भवान् (पवस्व) मज्ज्ञानविषयो भवतु ।

पदार्थ—(सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन ! (इन्द्राय, पातवे) कर्मयोगी की तृप्ति के लिये (नृभिः, यतः) साक्षात्कार किये हुए आप जो (मधुमत्तमः) अत्यन्त मीठे और (मदिन्तमः) आह्लादक गुणों को धारण किये हुए हैं (स्वायुधः) स्वाभाविक शक्तिमद् आप (पवस्व) हमारे ज्ञान का विषय हों।

भावार्थ—हे आनन्दवर्द्धक तथा आह्लादजनक गुण सम्पन्न परमात्मन् ! आप ऐसी कृपा करें कि हम लोग ज्ञानयोगी तथा कर्मयोगी बनकर आपका साक्षात्कार करते हुए आनन्द को प्राप्त हों ॥

इन्द्रस्य हार्दि सोमधानमा विश समुद्रमिव सिन्धवः ।
जुष्टो मित्राय वरुणाय वायवे दिवो विष्टम्भ उत्तमः ॥१६॥१९॥

इन्द्रस्य । हार्दि । सोमऽधानं । आ । विश । समुद्रंऽइव । सिंधवः । जुष्टः । मित्राय । वरुणाय । वायवे । दिवः । विष्टंभः । उत्ऽतमः ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (इन्द्रस्य) कर्मयोगिनः (हार्दि) हृदय रूपम् (सोमधानम्) अन्तःकरणम् (आविश) प्राप्नोतु (इव) यथा (सिन्धवः) नद्यः (समुद्रं) समुद्रं प्राप्नुवन्ति एवं मद्वृत्तयः भवन्तं प्राप्नुवन्तु (मित्राय) अध्यापकाय (वरुणाय) उपदेशकाय च (वायवे) कर्मयोगिने (जुष्टः) प्रीतियुक्तः (दिवः) द्युलोकस्य (उत्तमः, विष्टम्भः) सर्वोपरि सहायकः ।

पदार्थ—हे परमात्मन ! (इन्द्रस्य) कर्मयोगी के (हार्दि) हृदयरूप (सोमधानम्) अन्तःकरण को (आविश) प्राप्त हों (इव) जिसप्रकार

(सिन्धवः) नदियें (समुद्रम्) समुद्र को प्राप्त होती हैं इसी प्रकार हमारी वृत्तियें आपको प्राप्त हों, आप (मित्राय) अध्यापक के लिये और (वरुणाय) उपदेशक के लिये (वायवे) ज्ञानयोगी के लिये(जुष्टः) प्रीति से युक्त और आप (दिवः) द्युलोक का (उत्तम) सर्वोपरि (विष्टम्भः) सहारा हैं ।

भावार्थ—कोटि २ ब्रह्माण्ड जिस परमात्मा के आधार पर स्थिर हैं और जो कर्मयोगी तथा ज्ञानयोगी इत्यादि योगी जनों का विद्याप्रदाता है वही एकमात्र उपास्य देव है ।

इति अष्टोत्तरशततमंसूक्तमेकोनविंशो वर्गश्च समाप्तः ।

यह १०८ वां सूक्त और १९वां वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ द्वाविंशत्यृचस्य नवोत्तरशततमस्य सूक्तस्य

१–२२ अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वरा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ७, ८, १०, १३, १४, १५, १७, १८ आर्ची भुरिग्गायत्री । २–६, ९, ११, १२, १९, २२ आर्ची स्वराड्गायत्री । २०, २१ आर्ची गायत्री । १६ पादनिचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अथ कर्मयोगिनः गुणा वर्ण्यन्ते—

अब कर्मयोगी के गुणों का वर्णन करते हैं:—

परि प्र धन्वेन्द्राय सोम स्वादुर्मित्राय पूष्णे भगाय ॥ १ ॥

परि । प्र । धन्व । इन्द्राय । सोम । स्वादुः । मित्राय । पूष्णे भगाय ॥ १ ॥

पदार्थः—(मित्राय) मित्रतारूपगुणवते (पूष्णे) सदुपदेशैः पोषकाय (भगाय) ऐश्वर्य्यसम्पन्नाय (इन्द्राय) कर्मयोगिने (सोम) हे परमात्मन् ! भवान् (स्वादुः) स्वादुफलं (परि, प्र, धन्व) प्रेरयतु ।

पदार्थ—(मित्राय) मित्रतारूप गुणवाले (पूष्णे) सदुपदेश द्वारा पुष्टि करने वाले (भगाय) ऐश्वर्य्य वाले (इन्द्राय) कर्मयोगी के लिये (सोम) हे सोम ! आप (स्वादुः) उत्तम फल के लिये (परि, प्र, धन्व) भलेप्रकार प्रेरणा करें ॥

भावार्थ—परमात्मा उद्योगी तथा कर्मयोगियों के लिये नानाविध स्वादु फलों को उत्पन्न करता है अर्थात् सब प्रकार के ऐश्वर्य्य और धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन चारो फलों का भोक्ता कर्मयोगी तथा उद्योगी ही होसकता है अन्य नहीं, इसलिये पुरुष को कर्मयोगी तथा उद्योगी बनना चाहिये ।

इन्द्र॑स्ते सोम सु॒तस्य॑ पेयाः॒ क्रत्वे॒ दक्षा॑य॒ विश्वे॑ च दे॒वाः ॥ २ ॥

इन्द्रः॑ । ते॒ । सो॒म॒ । सु॒तस्य॑ । पे॒याः॒ । क्रत्वे॑ । दक्षा॑य । विश्वे॑ । च॒ । दे॒वाः ॥ २ ॥

पदार्थः—(सोम) हे सर्वोत्पादक ! (ते) तव (सुतस्य) साक्षात्कार रसं (इन्द्रः) कर्मयोगी (क्रत्वे) विज्ञानाय (दक्षाय) चातुर्याय (पेयाः) पिबेत् (च) तथा च (विश्वे) सर्वे (देवाः) देवगणाः तवानन्दं पिबन्तु ।

पदार्थ—(सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (ते) तुम्हारे

(सुतस्य) साक्षात्काररूप रस को (इन्द्रः) कर्मयोगी (क्रत्वे) विज्ञान तथा (दक्षाय) चातुर्य्य के लिये (पेयाः) पान करे (च) और (विश्वे, देवाः) सब देव तुम्हारे आनन्द को पान करें ।

भावार्थ—परमात्मानन्द के पान करने का अधिकार एकमात्र दैवीसम्पत्ति वाले पुरुषों को ही होसकता है अन्य को नहीं, इसी अभिप्राय से यहां कर्मयोगी, ज्ञानयोगी तथा देवों के लिये ब्रह्मामृत का वर्णन किया गया है।

एवामृताय महे क्षयाय स शुक्रो अर्ष दिव्यः पीयूषः ॥ ३ ॥

एव । अमृताय । महे । क्षयाय । सः । शुक्रः । अर्ष । दिव्यः । पीयूषः ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! भवान् (शुक्रः) बलस्वरूपः (दिव्यः) दिव्यस्वरूपश्च (पीयूषः) विद्वद्भ्यः अमृतं (सः) स भवान् (महे) शश्वन्निवासाय (अमृताय) मुक्तिसुखाय च (क्षयाय) दोषनाशाय च (एव, अर्ष) एवं मां प्राप्नोतु येन सदैवाहमानन्दं भोक्तुं शक्नुयाम ।

पदार्थ—हे परमात्मन ! (शुक्रः) आप बलस्वरूप (दिव्यः) दिव्यस्वरूप (पीयूषः) विद्वानों के लिये अमृत हैं (सः) उक्त गुणसम्पन्न आप (महे) सदा के निवासार्थ (अमृताय) मुक्ति सुख तथा (क्षयाय) दोषनिवृत्ति के लिये (एव) इस प्रकार (अर्ष) प्राप्त हों जिससे हम सदैव आपके आनन्द को भोग सकें ।

भावार्थ—यहां मुक्तिरूप सुख का "पीयूष" शब्द से वर्णन किया है, ब्रह्मानन्द का नाम ही पीयूष है, और उसीको अमृत, पीयूष, मुक्ति इत्यादि नानाप्रकार के शब्दों से कथन किया गया है ।

पर्वस्व सोम महान्त्संमुद्रः पिता देवानां विश्वाभि धाम ॥४॥

पर्वस्व । सोम । महान् । समुद्रः । पिता । देवानां । विश्वा । अभि । धाम ॥ ४ ॥

पदार्थः—(सोम) हे सर्वोत्पादक ! भवान् (समुद्रः) सम्पूर्ण लोकलोकान्तर प्रभवः (महान्) सर्वेभ्यो महान् व्यापकत्वात् (देवानां, पिता) सूर्य्यादि देवानां निर्माता (विश्वा, अभि, धाम) सर्वं लक्ष्यीकृत्य मां पुनातु ।

पदार्थ—(सोम) हे सर्वोत्पादक ! आप (समुद्रः) " सम्यग् द्रवन्ति भूतानि यस्मात् स समुद्रः "=जिससे पृथिव्यादि सम्पूर्ण लोकलोकान्तर उत्पन्न होते हैं उसका नाम यहां " समुद्र " है, और (महान्) सब से बड़ा (देवानां) सूर्य्यादि देवों का (पिता) निर्माण करने वाला (विश्वा, अभि, धाम) सबको लक्ष्य रखकर हे ईश्वर ! आप हमको पवित्र करें।

भावार्थ—परमापिता परमात्मा जो आकाशवत् सर्वत्र परिपूर्ण है उसी की उपासना से मनुष्य मुक्तिधाम को प्राप्त होसकता है अन्यथा नहीं।

शुक्रः पंवस्व देवेभ्यः सोम दिवे पृथिव्यै शं चं प्रजायैं ॥५॥

शुक्रः । पवस्व । देवेभ्यः । सोम । दिवे । पृथिव्यै । शं । च । प्रजायैं ॥ ५ ॥

पदार्थः—(सोम) हे सर्वोत्पादक ! (देवेभ्यः, पवस्व) विदुषो भवान्पुनातु (दिवे) द्युलोकाय (पृथिव्यै) पृथिवी

लोकाय (च) तथा च (प्रजायै) प्रजार्थं (शं) कल्याणं करोतु भवान् (शुक्रः) यतो बलस्वरूपो भवान् ॥

पदार्थ—(देवेभ्यः) आप सब विद्वानों को (पवस्व) पवित्र करें (सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् (दिवे) द्युलोक (पृथिव्यै) पृथिवी लोक (च) और (प्रजायै) प्रजा के लिये (शं) कल्याणकारी हों (शुक्रः) क्योंकि आप बलस्वरूप हैं ॥

भावार्थ—परमात्मा सम्पूर्ण प्रजाओं के लिये आनन्द की वृष्टि करनेवाला है अर्थात् वही आनन्द का स्रोत होने के कारण उसीसे आनन्द की लहरें इतस्ततः प्रचार पाती हैं किसी अन्य स्रोत से नहीं ॥

दिवो धर्तासि शुक्रः पीयूषः सत्ये विधर्मन्वाजी पवस्व ॥ ६ ॥

दिवः । धर्ता । असि । शुक्रः । पीयूषः । सत्ये । विऽधर्मन् । वाजी । पवस्व ॥ ६ ॥

पदार्थः—(दिवः, धर्ता, असि) भवान् द्युलोकस्य धारकः (सत्ये, विधर्मन्) सत्यता यज्ञे (पीयूषः) अमृतमस्ति (शुक्रः) दीप्तिमान् (वाजी) बलवान् (पवस्व) मां पवित्रयतु ॥

पदार्थ—(दिवः धर्ता, असि) हे परमात्मन् ! आप द्युलोक के धारक, और (सत्ये, विधर्मन्) सत्यरूप यज्ञ में (पीयूषः) अमृत हैं (शुक्रः) दीप्तिमान्, तथा (वाजी) बलस्वरूप आप (पवस्व) हमको पवित्र करें ॥

भावार्थ—द्युलोक का धारक, अमृत, देदीप्यमान् तथा बलस्वरूप परमात्मा जिसने सूर्य्य, चन्द्रमादि सब लोकलोकान्तरों को निर्माण किया है वही हम सबका एकमात्र उपास्य देव है अन्य नहीं ॥

पवस्व सोम द्युम्नी सुधारो महामवीनामनु पूर्व्यः ॥ ७ ॥

पवस्व । सोम । द्युम्नी । सुऽधारः । महान् । अवीनां । अनु । पूर्व्यः ॥ ७ ॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् (द्युम्नी) यशःस्वरूपो भवान् (सुधारः) अमृतधारारूपः (महान्, अवीना) महत। रक्षकानां मध्ये (अनु, पूर्व्यः) मुख्योस्ति, इत्थंभूतो भवान् (पवस्व) मां पुनातु ॥

पदार्थ—(सोम) हे सोमगुणसम्पन्न तथा सर्वोत्पादक परमात्मन ! आप (द्युम्नी) यशस्वरूप (सुधारः) अमृतस्वरूप, तथा (महान, अवीनां) बड़े २ रक्षकों में (अनु, पूर्व्यः) सब से मुख्य रक्षक होने से आप (पवस्व) हमको पवित्र करें ।

भावार्थ—सर्वोपरि परमात्मा जिसका यश महान्=सबसे बड़ा है, वही हमारा रक्षक और वही एकमात्र उपास्य देव है ॥

नृभिर्येमानो जज्ञानः पूतः क्षरद्विश्वानि मन्द्रः स्वर्वित् ॥ ८ ॥

नृऽभिः । येमानः । जज्ञानः । पूतः । क्षरत् । विश्वानि । मन्द्रः । स्वःऽवित् ॥ ८ ॥

पदार्थः—(नृभिः, येमानः) संयमिभिः साक्षात्कृतः (जज्ञानः) सर्वत्राविर्भूतः (पूतः) पवित्रः (मन्द्रः) आनन्दस्वरूपः (स्वर्वित्) सर्वज्ञो भवान् (विश्वानि) सर्वाणि ऐश्वर्याणि (क्षरत) मह्यं ददातु ॥

पदार्थ—(नृभिः, येमानः) संयमी पुरुषों द्वारा साक्षात्कार किये हुए (जज्ञानः) सर्वत्र आविर्भाव को प्राप्त (पूतः) पवित्र (मन्द्रः) आनन्दस्वरूप (स्वर्वित्) सर्वज्ञ (विश्वानि) सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य (क्षरत्) हमको देवें ॥

भावार्थ—परमात्मा का साक्षात्कार संयमी पुरुषों को ही होता है अर्थात् जप, तप, संयम तथा अनुष्ठान द्वारा वही लोग साक्षात्कार करते हैं, वह परमात्मा अपनी दिव्य ज्योतियों से सर्वत्र आविर्भाव को प्राप्त और नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव है, वह पिता हमें सब प्रकार का सुख प्रदान करे ॥

इन्दुः पुनानः प्रजामुराणः करद्विश्वानि द्रविणानि नः ॥ ९ ॥

इन्दुः । पुनानः । प्रजां । उराणः । करत् । विश्वानि । द्रविणानि । नः ॥ ९ ॥

पदार्थः—(इन्दुः) सर्वप्रकाशकः (पुनानः) पावयिता (प्रजा, उराणः) प्रजैश्वर्यं वर्धयन् (विश्वानि, द्रविणानि) अखिलैश्वर्य्याणि (नः) अस्मभ्यं (करत्) ददातु ॥

पदार्थ—(इन्दुः) सर्वप्रकाशक (पुनानः) सबको पवित्र करनेवाला (प्रजां, उराणः) प्रजाओं के ऐश्वर्य्य को विशाल करता हुआ परमात्मा (विश्वानि, द्रविणानि) सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य (नः) हमको (करत्) प्रदान करे ॥

भावार्थ—जो परमात्मा सम्पूर्ण प्रजाओं के ऐश्वर्य्य को बढ़ाता और जो स्वतःप्रकाश तथा स्वयंभू है वही हमारा उपास्यदेव है उसी की उपासना करता हुआ पुरुष आनन्द लाभ करता है अन्यथा नहीं ॥

पवस्व सोम क्रत्वे दक्षायाश्वो न निक्तो वाजी धनाय ॥ १० ॥ २० ॥

पवस्व । सोम । क्रत्वे । दक्षाय । अश्वः । न । निक्ता । वाजी । धनाय ॥ १० ॥

पदार्थः—(सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् (क्रत्वे) विज्ञानाय (दक्षाय) चातुर्याय च (निक्ता) वेगवान् (अश्वः, न) विद्युदिव (वाजी) बलस्वरूपो भवान् (धनाय) धनार्थं (पवस्व) मां पुनातु ॥

पदार्थ—(सोम) हे सोमगुणसम्पन्न परमात्मन् (क्रत्वे) विज्ञान के लिये (दक्षाय) चातुर्य प्राप्ति के लिये (अश्वः, न) विद्युत्समान (निक्ता) वेगवान् (वाजी) बलस्वरूप परमात्मन् (धनाय) धन के लिये (पवस्व) पवित्र करें ॥

भावार्थ—जिस प्रकार विद्युत् प्रत्येक पदार्थ को देदीप्यमान करता और सब पदार्थों का प्रकाशक तथा उद्दीपक है, इसी प्रकार परमात्मा सबको उद्बोधन करके अपने २ कर्मों में प्रवृत्त करता है और कर्मयोगी पुरुष को सदैव धन का लाभ होता है।

तं ते सोतारो रसं मदाय पुनन्ति सोमं महे द्युम्नाय ॥ ११ ॥

तं । ते । सोतारः । रसं । मदाय । पुनन्ति । सोमं । महे । द्युम्नाय ॥ ११ ॥

पदार्थः—(सोतारः) उपासकाः (ते) तव (तं, रसं) तमानन्दं (मदाय) आनन्दितः स्यामितीच्छया (सोमं) शान्तिरूपं (महे, द्युम्नाय) महैश्वर्याय धारणया (पुनन्ति) पवित्रयन्ति ॥

पदार्थ—(सोतारः) उपासक लोग (ते) तुम्हारे (तं) उस (सोमं) शान्तिरूप (रसं) आनन्द को (मदाय) आनन्दित होने के लिये तथा (महे, द्युम्नाय) बड़े ऐश्वर्य्य प्राप्ति के लिये धारणा द्वारा (पुनन्ति) पवित्र करते हैं ॥

भावार्थ—इस मंत्र का भाव यह है कि उपासक लोग इस विराट स्वरूप को देखकर ईश्वर की धारणा अपने हृदय में करते हैं, यही इस ऐश्वर्य्य को पवित्र बनाना है ॥

शिशुं जज्ञानं हरिं मृजन्ति पवित्रे सोमं देवेभ्य इन्दुम् ॥१२॥

शिशुं । जज्ञानं । हरिं । मृजन्ति । पवित्रे । सोमं । देवेभ्यः । इन्दुम् ॥ १२ ॥

पदार्थः—(शिशुं) सर्वोपरि प्रशंसनीयं (जज्ञानं) सर्वत्र विद्यमानं (हरिं) सर्वदुःखहर्तारं (इन्दुं) प्रकाशस्वरूपं (सोमं) सौम्यस्वभावं परमात्मानं (पवित्रे) पवित्रान्तःकरणे (देवेभ्यः) दिव्यगुणप्राप्तये (मृजन्ति) ऋत्विग्जनाः साक्षात्कुर्वन्ति ॥

पदार्थ—(शिशुं) सर्वोपरि प्रशंसनीय (जज्ञानं) सर्वत्र विद्यमान (हरिं) सब दुःखों को हरण करनेवाला (इन्दुं) प्रकाशस्वरूप (सोमं) सौम्यस्वभाव परमात्मा को (पवित्रे) पवित्र अन्तःकरण में (देवेभ्यः) दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिये (मृजन्ति) ऋत्विग् लोग साक्षात्कार करते हैं ॥

भवार्थ—जो ऋतु २ में यज्ञों द्वारा परमात्मा का यजन करते हैं उनका नाम "ऋत्विग्" है अर्थात् इस विराटस्वरूप की महिमा को देखकर

जो आध्यात्मिक यज्ञादि द्वारा परमात्मा की उपासना करते हैं उन्हीं को परमात्मा का साक्षात्कार होता है ।

इन्दुः पविष्ट चारुर्मदायापामुपस्थे कविर्भगाय ॥ १३ ॥

इन्दुः । पविष्ट । चारुः । मदाय । अपां । उपस्थे । कविः । भगाय ॥ १३ ॥

पदार्थः—(इन्दुः) प्रकाशस्वरूपः परमात्मा (कविः) यः सर्वज्ञः (अपां, उपस्थे) कर्मणां सन्निधौ (भगाय) ऐश्वर्य्यप्राप्तये (चारुः, मदाय) सर्वोपर्यानन्दप्राप्तये (पविष्ट) मां पुनातु ।

पदार्थ—(इन्दुः) प्रकाशस्वरूप परमात्मा (कविः) जो सर्वज्ञ है वह (अपां, उपस्थे) कर्मों की सन्निधि में (भगाय) ऐश्वर्य्यप्राप्ति तथा (चारुः, मदाय) सर्वोपरि आनन्दप्राप्ति के लिये (पविष्ट) हमको पवित्र बनाता है ।

भावार्थ—इस मंत्र का भाव यह है कि जो पुरुष यज्ञादि कर्म तथा अन्य सत्कर्म करते हैं उन्हीं को परमात्मा पवित्र बनाता है जिससे वह ऐश्वर्य्य प्राप्ति द्वारा आनन्दोपभोग करते हैं ।

बिभर्ति चार्विन्द्रस्य नाम येन विश्वानि वृत्रा जघान ॥१४॥

बिभर्ति । चारु । इन्द्रस्य । नाम । येन । विश्वानि । वृत्रा । जघान ॥ १४ ॥

पदार्थः—स परमात्मा (इन्द्रस्य) कर्मयोगिनः (चारु)

सुन्दरं (नाम) शरीरं (बिभर्ति) निर्मीति (येन) येन शरीरेण (विश्वानि) सकलानि (वृत्रा) अज्ञानानि (जघान) कर्मयोगी नाशयति ।

पदार्थ—(इन्द्रस्य) परमात्मा कर्मयोगी के (चारु, नाम) सुन्दर शरीर को (बिभर्ति) निर्माण करता है (येन) जिससे वह (विश्वानि) सम्पूर्ण (वृत्रा) अज्ञान (जघान) नाश करता है ।

भावार्थ—इस मन्त्र का तात्पर्य यह है कि यद्यपि स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण यह तीनों प्रकार के शरीर सब जीवों को प्राप्त हैं परन्तु कर्मयोगी के सूक्ष्म शरीर में परमात्मा एक प्रकार का दिव्यभाव उत्पन्न कर देता है जिससे अज्ञान का नाश और ज्ञान की वृद्धि होती है, इस भाव से मन्त्र में कर्मयोगी के शरीर को बनाना लिखा है ।

पिबन्त्यस्य विश्वे देवासो गोभिः श्रीतस्य नृभिः सुतस्य॥१५॥

पिबन्ति । अस्य । विश्वे । देवासः । गोभिः । श्रीतस्य । नृभिः । सुतस्य ॥ १५ ॥

पदार्थः—(नृभिः, सुतस्य) संयमिपुरुषैः साक्षात्कृतस्य (गोभिः, श्रीतस्य) ज्ञानवृत्तादृढाभ्यस्तस्य (अस्य) अस्य परमात्मन आनन्दम् (विश्वे, देवासः) सर्वेविद्वांसः (पिबन्ति) अनुभवन्ति ।

पदार्थ—(नृभिः, सुतस्य) संयमी पुरुषों द्वारा साक्षात्कार किया हुआ (गोभिः, श्रीतस्य) जो ज्ञानवृत्तियों से दृढ़ अभ्यास किया गया है,

(अस्य) उससे परमात्मा के आनन्द को (विश्वे, देवासः) सम्पूर्ण विद्वान् (पिबन्ति) पान करते हैं ॥

भावार्थ—परमात्मा का आनन्द इन्द्रियसंयम द्वारा दृढ़ अभ्यास के विना कदापि नहीं मिलसकता, इसलिये पुरुष को चाहिये कि वह श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन द्वारा दृढ़ अभ्यास करके परमात्मा के आनन्द को लाभ करे ॥

प्र सुवानो अक्षाः सहस्रधारस्तिरः पवित्रं वि वारमव्यम् ॥१६॥

प्र । सुवानः । अक्षारिति । सहस्रधारः । तिरः । पवित्रं । वि । वारं । अव्यम् ॥ १६ ॥

पदार्थः—(सहस्रधारः) अनन्तसामर्थ्ययुक्तः परमात्मा (सुवानः) साक्षात्कृतः (विवारं, अव्यं, तिरः) आवरणं तिरस्कृत्य (पवित्रं) पूतान्तःकरणं (प्र, अक्षाः) स्वज्ञानप्रवाहै सिञ्चति ॥

पदार्थ—(सहस्रधारः) अनन्तसामर्थ्ययुक्त परमात्मा (सुवानः) साक्षात्कार किया हुआ (विवारं, अव्यं, तिरः) आवरण को तिरस्कार करके (पवित्रं) पवित्र अन्तःकरण को (अक्षाः) अपने ज्ञान के प्रवाह से सिञ्चन करता है ॥

भावार्थ—जब तक मनुष्य में अज्ञान बना रहता है तब तक वह परमात्मा का साक्षात्कार कदापि नहीं करसकता, इसलिये जिज्ञासु को आवश्यक है कि वह परमात्मा के स्वरूप को ढकनेवाले अज्ञान का नाश करके परमात्म दर्शन करे, अज्ञान, अविद्या तथा आवरण यह सब पर्य्याय शब्द हैं ॥

स वाज्यक्षाः सहस्ररेता अद्भिर्मृजानो गोभिः श्रीणानः ॥१७॥

सः। वाजी। अक्षारिति। सहस्रऽरेताः। अत्ऽभिः। मृजानः। गोभिः। श्रीणानः ॥ १७ ॥

पदार्थः—(अद्भिः, मृजानः) कर्मद्वारा साक्षात्कृतः (गोभिः, श्रीणान.) ज्ञानवृत्तिभिः अभ्यासेन परिपक्वः (सहस्ररेताः) अनन्तसामर्थ्यशाली (वाजी) ऐश्वर्य्यशाली (सः) स परमात्मा स्वज्ञानसुधया (अक्षाः) मा सिञ्चति ।

पदार्थ—(अद्भिः, मृजानः) कर्मों द्वारा साक्षात्कार करके (गोभिः, श्रीणानः) ज्ञानरूप वृत्तियों के अभ्यास से परिपक्व किया हुआ (सहस्ररेताः) अनन्त सामर्थ्यशाली परमात्मा (वाजी) जो ऐश्वर्य्यशाली है (सः) वह अपने ज्ञानसुधा से (अक्षाः) हमको सिञ्चन करता है ॥

भावार्थ—जब दृढ़ अभ्यास से परमात्मा का परिपक्व ज्ञान होजाता है तब परमात्मज्ञान जो अमृत के समान है वह उपासक को आनन्द प्रदान करता है, इसी का नाम यहां सिञ्चन करना है ॥

प्र सोम याहीन्द्रस्य कुक्षा नृभिर्येमानो अद्रिभिः सुतः ॥१८॥

प्र। सोम। याहि। इन्द्रस्य। कुक्षा। नृऽभिः। येमानः। अद्रिऽभिः। सुतः ॥ १८ ॥

पदार्थः—(सोम) हे सर्वोत्पादक ! भवान् (इन्द्रस्य) कर्मयोगिनः (कुक्षा) अन्तःकरणे (याहि) गच्छतु कथंभूतः

(अद्रिभिः, सुतः) चित्तवृत्तिभिः साक्षात्कृतः (नृभिः, येमानः) संयमिनां लक्ष्यीभूतश्च ॥

पदार्थ—(अद्रिभिः,सुतः) चित्तवृत्तियों के संयम द्वारा साक्षात्कार किये हुए (नृभिः, येमानः) संयमी पुरुषों के लक्ष्य (सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! आप (इन्द्रस्य) कर्मयोगी के (कुक्षा) अन्तःकरण में (याहि) प्राप्त हों ॥

भावार्थ—इस मंत्र का भाव यह है कि जो पुरुष उसी एकमात्र परब्रह्म परमात्मा को अपना लक्ष्य बनाते हैं उनको परमपिता परमात्मा अवश्य देदीप्यमान करते हैं ॥

असर्जि वाजी तिरः पवित्रमिन्द्राय सोमः सहस्रधारः ॥ १९ ॥

असर्जि । वाजी । तिरः । पवित्रं । इन्द्राय । सोमः । सहस्रधारः ॥ १९ ॥

पदार्थः—(सहस्रधारः) अनन्तसामर्थ्यवान् (सोमः) सर्वोत्पादकः परमात्मा (इन्द्राय) कर्मयोगिने (असर्जि) उपदिष्टः (वाजी) बलस्वरूपः सः (तिरः) अज्ञानं तिरस्कृत्य (पवित्रं) अन्तःकरणं पवित्रयति ॥

पदार्थ—(सहस्रधारः) अनन्तसामर्थ्ययुक्त (सोम) सर्वोत्पादक परमात्मा (इन्द्राय) कर्मयोगी के लिये (असर्जि) उपदेश द्वारा प्राप्त होते हैं (वाजी) वह बलस्वरूप परमात्मा (तिरः) अज्ञान को तिरस्कार करके (पवित्रं) अन्तःकरण को पवित्र बनाते हैं ।

भावार्थ—परमपिता परमात्मा जो इस चराचर ब्रह्माण्ड का अधिपति है वह अनन्त सामर्थ्ययुक्त है उसके सामर्थ्य को उपदेशों द्वारा कर्मयोगी लाभ करता है ।

अञ्जन्त्येनं मध्वो रसेनेन्द्राय वृष्ण इन्दुं मदाय ॥ २० ॥

अंजन्ति । एनं । मध्वः । रसेन । इन्द्राय । वृष्णे । इन्दुं । मदाय ॥ २० ॥

पदार्थः—(एनं) इमं परमात्मानं (मध्वः, रसेन) तन्माधुर्यरसेन (वृष्णे) सर्वकामप्रदाय (इन्द्राय) कर्मयोगिने (मदाय) आनन्दाय च (इन्दुं) स्वप्रकाशं तं (अंजन्ति) उपासका ज्ञानवृत्त्यात्मनि योजयन्ति ।

पदार्थ—(एनं) उक्त परमात्मा को (मध्वः, रसेन) उसके माधुर्य्ययुक्त रस से (वृष्णे) सब कामनाओं को पूर्ण करने वाले (इन्द्राय) कर्मयोगी के (मदाय) आनन्द के लिये (इन्दुं) स्वप्रकाश परमात्मा का उपासक लोग (अंजन्ति) ज्ञानवृत्तिद्वारा योग करते हैं ।

भावार्थ—परमात्मयोग के अर्थ ब्रह्मविषयणीवृत्तिद्वारा परमात्मा के योग का नाम "परमात्मयोग" है अर्थात् उपासक लोग ज्ञानवृत्ति द्वारा परमात्मा के समीपी होकर परमात्मरूप माधुर्य रस को पान करते हुए तृप्त होते हैं ॥

देवेभ्यस्त्वा वृथा पाजसेऽपो वसानं हरिं मृजन्ति ॥ २१ ॥

देवेभ्यः । त्वा । वृथा । पाजसे । अपः । वसानं । हरिं । मृजन्ति ॥ २१ ॥

पदार्थः—(देवेभ्यः) विद्वद्भ्यः (पाजसे) बलाय (अपः, वसानं) प्रकृतिरूप व्याप्य वस्तुनि निवसन्तं (हरिं)

अविद्याहर्त्तारं (त्वा) भवन्तं (वृथा) कर्मफलमनभिलष्य (मृजन्ति) उपासकाः साक्षात्कुर्वन्ति ॥

पदार्थ—(देवेभ्यः) विद्वानों के लिये (पाजसे) बल के लिये (अपः, वसानं) प्रकृतिरूप व्याप्यवस्तु में निवास करते हुए (हरिं) अविद्या का हरण करने वाले (त्वां) तुमको (वृथा) कर्मफलों में अनासक्त होकर (मृजन्ति) उपासक लोग साक्षात्कार करते हैं ॥

भावार्थ—विद्याप्राप्ति द्वारा विद्वान् बनना, बलवान् होना तथा नानाविध ऐश्वर्य प्राप्त करके ऐश्वर्य्यशाली बनना परमात्मा की उपलब्धि से विना कदापि नहीं होसकता, इसलिये ऐश्वर्य्य की इच्छा करनेवाले पुरुषों का कर्तव्य है कि वह ज्ञानद्वारा परमात्मा को उपलब्ध करें ॥

इन्दुरिन्द्राय तोशते नि तोशते श्रीणन्नुग्रो रिणन्नपः॥२२॥२१॥

इन्दुः । इन्द्राय । तोशते । नि । तोशते । श्रीणन् । उग्रः । रिणन् । अपः ॥ २२ ॥

पदार्थः—(इन्दुः) सर्वप्रकाशकः परमात्मा (इन्द्राय) कर्मयोगिने (तोशते) साक्षात्क्रियते (उग्रः) उग्ररूपः सः (श्रीणन्) प्रेरयन् (अपः, रिणन्) मन्दकर्माण्यपनयन् (नि, तोशते) अज्ञानं नाशयति ॥

पदार्थ—(इन्दुः) सर्वप्रकाशक परमात्मा (इन्द्राय) कर्मयोगी के लिये (तोशते) साक्षात्कार किया जाता है (उग्रः) उग्रस्वरूप परमात्मा (श्रीणन्) अपनी प्रेरणा द्वारा (अपः, रिणन्) मन्दकर्मों को दूर करता हुआ (नि, तोशते) निरन्तर अज्ञान का नाश करता है ॥

भावार्थ—इस मंत्र का आशय यह है कि सुख की इच्छावाले पुरुष को मन्दकर्मों का सर्वथा त्याग करना चाहिये, जबतक पुरुष मन्द कर्म नहीं छोड़ता तबतक वह परमात्मपरायण कदापि नहीं होसकता और न सुख उपलब्ध करसकता है, इसी अभिप्राय से मंत्र में अज्ञान के नाश द्वारा मन्दकर्मों के त्याग का विधान किया है ॥

इति नवोत्तरशततमंसूक्तमेकविंशो वर्गश्च समाप्तः ।

यह १०९ वां सूक्त और २१ वां वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ द्वादशर्चस्य दशोत्तरशततमस्य सूक्तस्य

१—१२ त्र्यरुणत्रसदस्यू ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, १२ निचृदनुष्टुप् । ३ विराडनुष्टुप् । १०, ११ अनुष्टुप् । ४, ७, ८ विराड्बृहती । ५, ६ पादनिचृद्बृहती । ९ बृहती ॥ स्वरः-१-३,१०१२ गान्धारः । ४—९ मध्यमः ॥

पर्यू॒ षु प्र ध॑न्व॒ वाज॑सातये॒ परि॑ वृ॒त्राणि॑ स॒क्षणिः॑ ।
द्वि॒षस्त॒रध्या॑ ऋण॒या न॑ ईयसे ॥ १ ॥

परि॑ । ऊं॒ इति॑ । सु । प्र । ध॒न्व॒ । वाज॑ऽसातये । परि॑ । वृ॒त्राणि॑ । स॒क्षणिः॑ । द्वि॒षः । त॒रध्यै॑ । ऋ॒ण॒ऽयाः । नः॒ । ई॒य॒से॒ ॥ १ ॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! भवान् (वाजसातये) ऐश्व-

र्य्यप्रदानायास्मान् (परि, प्र, धन्व) साधु प्राप्नोतु (सक्षणि) सोढा भवान् (वृत्राणि) अज्ञानानि नाशयितुं मां प्राप्नोतु (ऊं) अथ च (ऋणयाः) ऋणस्यापनेता भवान् (द्विषः) शत्रून् (तरध्यै) नाशयितुं (नः) अस्मान् (ईयसे) प्राप्नोतु ।

पदार्थ—हे परमात्मन ! आप (वाजसातये) ऐश्वर्य्यप्रदान के लिये हमको (परि, प्र, धन्व) भलीभांति प्राप्त हों (सक्षणि) सहनशील आप (वृत्राणि) अज्ञानों को नाश करने के लिये हमें प्राप्त हों (ऊं) और (ऋणयाः) ऋणों को दूर करनेवाले आप (द्विषः) शत्रुओं को (परि, तरध्यै) भलेप्रकार नाश करने के लिये (नः) हमको (ईयसे) प्राप्त हों ।

भावार्थ—जो पुरुष ईश्वरपरायण होकर उसकी आज्ञा का पालन करते हैं वही परमात्मा को उपलब्ध करनेवाले कहे जाते हैं, या यों कहो कि उन्हीं को परमात्मप्राप्ति होती है और वही अपने ऋणों से मुक्त होते और वही शत्रुओं का नाश करके संसार में अभय होकर विचरते हैं, स्मरण रहे कि पूर्वस्थान को त्यागकर स्थानान्तरप्राप्तिरूप प्राप्ति परमात्मा में नहीं घटसकती ।

अनु हि त्वा सुतं सोम मदामसि महे समर्यराज्ये ।
वाजाँ अभि पवमान प्र गाहसे ॥ २ ॥

अनु । हि । त्वा । सुतं । सोम । मदामसि । महे । समर्यऽराज्ये । वाजान् । अभि । पवमान । प्र । गाहसे ॥ २ ॥

पदार्थः—(सोम) हे सर्वोत्पादक ! (महे, समर्यराज्ये) न्याययुक्ते महति राज्ये (त्वा, सुतं) साक्षात्कारं प्राप्तो भवान्

(अनु, मदामसि) मामानन्दयतु (पवमान) हे सर्वपावक भगवन् (वाजान्, अभि) ऐश्वर्याण्यभिलक्ष्य (प्र. गाहसे) प्राप्नोति माम् ।

पदार्थ—(सोम) हे सोमगुणसम्पन्न परमात्मन (महे. समर्यराज्ये) न्याययुक्त बड़े राज्य में (त्वा, सुतं) साक्षात्कार को प्राप्त आप (अनु, मदामसि) हमको आनन्दित करें (पवमान) हे सबको पवित्र करनेवाले भगवन् (वाजान, अभि) ऐश्वर्यों को लक्ष्य रखकर (प्र, गाहसे) हमको प्राप्त हों ।

भावार्थ—मंत्र में ऐश्वर्यों के लक्ष्य का तात्पर्य्य यह है कि ईश्वर में आध्यात्मिक तथा आधिभौतिक दोनों प्रकार के ऐश्वर्य्य हैं, जो पुरुष मुक्ति सुख को लक्ष्य रखते हैं उनको निःश्रेयसरूप आध्यात्मिक ऐश्वर्य्य प्राप्त होता है और जो सांसारिक सुख को लक्ष्य रखकर ईश्वरपरायण होते हैं उनको परमात्मा अभ्युदयरूप आधिभौतिक ऐश्वर्य्य प्रदान करते हैं ।

अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्मना पयः ।
गोजीरया रंहमाणः पुरंध्या ॥ ३ ॥

अजीजनः । हि । पवमान । सूर्यं । विऽधारे । शक्मना । पयः । गोऽजीरया । रंहमाणः । पुरंऽध्या ॥ ३ ॥

पदार्थः—(पवमान) हे सर्वपावक परमात्मन् ! भवान् (पयः, विधारे) जलधारकेऽन्तरिक्षप्रदेशे (शक्मना) स्वशक्त्या (सूर्यं) रविम् (अजीजनः) उत्पादयति (गोजीरया) पृथिव्यादि लोकानां प्रेरिका या शक्तिः (पुरंध्या) याऽतिमहती ततोऽपि (रंहमाणः) अधिक वेगवानस्ति ।

पदार्थ—(पवमान) हे सबको पवित्र करनेवाले परमात्मन् ! आप (पयः, विधारे) जलों को धारण करनेवाले अन्तरिक्ष देश में (शक्मना) अपनी शक्ति से (सूर्यं) सूर्य्य को (अजीजनः) उत्पन्न करते हैं और (गोजीरया, पुरंध्या) पृथिव्यादि लोकों को प्रेरणा करनेवाली बड़ी शक्ति से भी (रंहमाणः) अत्यन्त वेगवान् हैं ।

भावार्थ—इस मन्त्र का भाव यह है कि वह परमपिता परमात्मा जो अभ्युदय तथा निःश्रेयस का दाता है उसका प्रभुत्व विद्युत् से भी अधिकतर है ।

अजीजनो अमृत मर्त्येष्वाँ ऋतस्य धर्मन्नमृतस्य चारुणः ।
सदासरो वाजमच्छा सनिष्यदत् ॥ ४ ॥

अजीजनः । अमृत । मर्त्येषु । आ । ऋतस्य । धर्मन् । अमृतस्य । चारुणः । सदा । असरः । वाजं । अच्छ । सनिस्यदत् ॥ ४ ॥

पदार्थः—(अमृत) हे शश्वदेकभाववन् परमात्मन् ! भवान् ((मर्त्येषु, आ) जनानां संमुखी भवनाय (चारुणः, अमृतस्य, धर्मन्) रुचिराविनाशि परमाणुधारकेऽन्तरिक्षे (अजीजनः) ग्रहादीन् उत्पादयामास (सदा, असरः) सदा विचरति च, अतः (वाजं, अच्छ) ऐश्वर्य्यमभिलक्ष्य (सनिष्यदत) मद्भक्तेर्विषयो भवतु ।

पदार्थ—(अमृत) हे सदा एकरस तथा जरामरणादि धर्मों से रहित परमात्मन ! आप (मर्त्येषु, आ) मनुष्यों के सम्मुख होने के लिये (चारुणः, अमृतस्य, धर्मन) सुन्दर अविनाशी परमाणुओं को धारण करने

वाले अन्तरिक्ष देश में (अजीजनः) सूर्य्यादि दिव्य पदार्थों को उत्पन्न करके (सदा, असरः) सदैव विचरते हो, इसलिये (वाजं, अच्छ) ऐश्वर्य्य को लक्ष्य रखकर (सनिष्यदत्) हमारी भक्ति का विषय हों ॥

भावार्थ—हे परमात्मन् ! आप सदा एकरस, सर्वत्र विराजमान और सदैव सब प्राणियों को अहर्निश देखते हुए विचरते हैं, अतएव प्रार्थना है कि आप हमें अपनी भक्ति का दान दें कि हम आपकी आज्ञा का पालन करते हुए ऐश्वर्य्यशाली हों, विचरने से तात्पर्य्य अपनी व्यापकशक्तिद्वारा सर्वत्र विराजमान होने का है चलने का नहीं ॥

अभ्यभि हि श्रवसा ततर्दिथोत्सं न कं चिज्जनपानमक्षितम् ।
शर्याभिर्न भरमाणो गभस्त्योः ॥ ५ ॥

अभिऽअभि । हि । श्रवसा । ततर्दिथ । उत्सं । न । कं । चित् । जनऽपानं । अक्षितं । शर्याभिः । न । भरमाणः । गभस्त्योः ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! त्वं (श्रवसा) स्वकीयज्ञानरूप ऐश्वर्येण (अभ्यभि) प्रत्येकोपासकस्य (ततर्दिथ) दुर्गुणान् नाशयसि (न) यथा कश्चिद् (कंचित्) कमपि (जनपानं, उत्सं) उदपानं संशोध्य जलं निर्मलं करोति (न) यथा (गभस्त्योः) सूर्य्यः किरणयोः (शर्याभिः) शक्तिभिः (भरमाणः) पूर्णं कुर्वाणः (अक्षितं) दोषरहितं करोति ॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! आप (श्रवसा) अपने ज्ञानरूप ऐश्वर्य्य से (अभ्यभि) प्रत्येक उपासक के (ततर्दिथ) दुर्गुणों का नाश करते हैं (न) जैसे कोई (अक्षितं) जल से भरे हुए (उत्सं) उत्सरण योग्य जलवाले

(जनपानं, कंचित्) वापी आदि जलाधार को मलिन जल निकालकर स्वच्छ बनाता है (हि) निश्चयकरके (न) जैसे सूर्य्य (गभस्त्योः) अपनी किरणों की (शर्याभिः) कर्मशक्तिद्वारा (भरमाणः) सब विकारों को दूर करके प्रजा का पालन करता है ॥

भवार्थ—इस मंत्र का आशय यह है कि जिस प्रकार सूर्य्य अपनी गरमी तथा प्रकाश शक्ति से प्रजा के सब विकार तथा अपगुणों को दूर करके शुभगुण देता है, इसी प्रकार परमात्मा सदाचारी पुरुषों के दोष दूर करके उनमें सद्गुणों का आधान कर देता है, इसलिये पुरुष को कर्मयोगी तथा सदाचारी होना परमावश्यक है ॥

आदीं के चित्पश्यमानास आप्यं वसुरुचो दिव्या अभ्यनूषत ।
वारं न देवः सविता व्यूर्णुते ॥ ६ ॥ २२ ॥

आत् । ईं । के । चित् । पश्यमानासः । आप्यं । वसुऽरुचः । दिव्याः । अभि । अनूषत । वारं । न । देवः । सविता । वि । ऊर्णुते ॥ ६ ॥

पदार्थः—(आप्यं) पूजनीयं तं (केचित्) केचिज्जनाः (पश्यमानासः) ज्ञानदृष्ट्या पश्यन्तः (अभ्यनूषत) स्तुवन्ति (आत्) अथवा (ईं, वारं) वरणीयं तं (वसुरुचः, दिव्याः) ऐश्वर्य्यमिच्छवो विद्वांसः (देवः, सविता) दिव्यः सूर्य्यः (वि, ऊर्णुते) यथा स्वप्रकाशनाच्छादयति (न) तथा वर्णयन्ति ॥

पदार्थ—(आप्यं) पूजनीय परमात्मा को (केचित्) कई एक लोग (पश्यमानासः) ज्ञानदृष्टि से देखते हुए (अभ्यनूषत) स्तुति करते

हैं (आत्) अथवा (ईं, द्वारं) इस वरणीय परमात्मा को (वसुरुचः, दिव्याः) ऐश्वर्य्य चाहने वाले विद्वान् (देवः, सविता) दिव्यरूप सूर्य्य (वि, ऊर्णुते) जिस प्रकार अपने प्रकाश से आच्छादन कर लेता है (न) इस प्रकार वर्णन करते हैं ॥

भावार्थ—भाव यह है कि जिस प्रकार सूर्य्य की प्रभा चहुंओर व्याप्त होजाती है इसी प्रकार ब्रह्मविद्यावेत्ता पुरुषों की ब्रह्मविषयिणी बुद्धि विस्तृत होकर सब ओर परमात्मा का अवलोकन करती है और ऐसे पुरुष परमात्मपरायण होकर ब्रह्मानन्द का उपभोग करते हैं ॥

त्वे सोम प्रथमा वृक्तबर्हिषो महे वाजाय श्रवसे धियं दधुः ।
स त्वं नो वीर वीर्याय चोदय ॥ ७ ॥

त्वे इति । सोम । प्रथमाः । वृक्तऽबर्हिषः । महे । वाजाय । श्रवसे । धियं । दधुः । सः । त्वं । नः । वीर । वीर्याय । चोदय ॥ ७ ॥

पदार्थः—(सोम) सर्वोत्पादक ! (प्रथमाः) प्राचीनाः (वृक्तबर्हिषः) उच्छिन्नकामाः (त्वे) भवति (महे, वाजाय) महते यज्ञाय (श्रवसे) ऐश्वर्य्याय च (धियं, दधुः) कर्मरूप बुद्धिं दधति (वीर) हे सर्वोपरि बलवान् (सः, त्वं) स भवान् (नः) अस्मान् (वीर्याय) वीरपुरुषगतगुणाय (चोदय) प्रेरयतु ॥

पदार्थ—(सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् (प्रथमाः) प्राचीन लोग (वृक्तबर्हिषः) जिन्होंने अपनी कामनाओं को उच्छेदन करदिया है वह (त्वे) आपमें (महे, वाजाय) बड़े यज्ञ के लिये अथवा (श्रवसे)

ऐश्वर्य्य के लिये (धियं, दधुः) कर्मरूप बुद्धि को धारण करते हैं (वीर) हे सर्वोपरि बलस्वरूप परमात्मन् (सः, त्वं) वह आप (नः) हमको (वीर्याय) वीरपुरुषों में होनेवाले गुणों के लिये (चोदय) प्रेरणा करें ॥

भावार्थ—इस मंत्र में परमात्मा से यह प्रार्थना कीगई है कि हे भगवन् ! हम बड़े २ यज्ञ करते हुए ऐश्वर्य सम्पादन करें अथवा वीर पुरुषों के गुणों को धारण करते हुए बलवान् बनें, क्योंकि आपही की कृपा से मनुष्य वीरतादि गुणों को धारण करसक्ता है अन्यथा नहीं ॥

दिवः पीयूषं पूर्व्यं यदुक्थ्यं महो गाहाद्दिव आ निरधुक्षत ।
इन्द्रमभि जायमानं समस्वरन् ॥ ८ ॥

दिवः । पीयूषं । पूर्व्यं । यत् । उक्थ्यं । महः । गाहात् । दिवः । आ । निः । अधुक्षत । इन्द्रं । अभि । जायमानं । सं । अस्वरन् ॥ ८ ॥

पदार्थः—(दिवः, पीयूषं) यः द्युलोकस्यामृतम् (पूर्व्यं) सनातनः (यत्) यः (उक्थ्यं) प्रशंसनीयः (महः, गाहात्) अति गहनात् (दिवः) द्युलोकात् (आ, निः, अधुक्षत) साध्वदोहि (इन्द्रं, अभि) कर्मयोगिनमभिलक्ष्य (जायमानं) यो विद्यमानस्तं (परमात्मानं) साधवः (सं, अस्वरन्) स्तुवन्ति ॥

पदार्थ—(दिवः, पीयूषं) जो द्युलोक का अमृत (पूर्व्यं) सनातन (उक्थ्यं) प्रशंसनीय (यत्) जो (महः, गाहात्) बड़े गहन (दिवः) द्युलोक से (आ, निः, अधुक्षत) भलीभांति दोहन किया गया है (इन्द्रं, अभि) जो कर्मयोगी को लक्ष्य रखकर (जायमानं) विद्यमान है, उस परमात्मा की उपासक लोग (सं, अस्वरन्) भलेप्रकार स्तुति करते हैं ॥

भावार्थ—द्युलोक का अमृत परमात्मा को इस अभिप्राय से कथन कियागया है कि " पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादोस्यामृतं दिवि " ऋग्० १०।९०।३ इस मंत्र में यह वर्णन किया है कि यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उसके एकदेश में है और अनन्त परमात्मा अमृतरूप से द्युलोक में विस्तृत होरहा है अर्थात् उसका अमृतस्वरूप अनन्त नभोमण्डल में सर्वत्र परिपूर्ण होरहा है, ऐसे सर्वव्यापक परमात्मा की उपासक लोग स्तुति करते हैं ॥

अध यदिमे पवमान रोदसी इमा च विश्वा भुवनाभि मज्मना।
यूथे न निष्ठा वृषभो वि तिष्ठसे ॥ ९ ॥

अध । यत् । इमे इति । पवमान । रोदसी इति । इमा । च । विश्वा । भुवना । अभि । मज्मना । यूथे । न । निःऽस्थाः । वृषभः । वि । तिष्ठसे ॥ ९ ॥

पदार्थः—(पवमान) हे सर्वपावक परमात्मन् (इमे, रोदसी) इमे द्यावापृथिव्यौ (अध, यत्) अथ च (इमा, च, विश्वा, भुवना) इमान्सर्वान् लोकान् (मज्मना) बलेन (अभि, तिष्ठसे) दधासि (न) यथा (निष्ठाः, वृषभः) स्थिरशक्तिः स्वामी (यूथे) स्वमण्डलमध्ये तिष्ठन् स्थिरो भवति ॥

भावार्थ—(पवमान) हे सबको पवित्र करनेवाले परमात्मन (इमे, रोदसी) द्युलोक पृथिवीलोक (अध, यत्) और जो (इमा, च, विश्वा, भुवना) यह सब लोकलोकान्तर हैं उन सबको (मज्मना) बल से (अभि,तिष्ठसे) भलेप्रकार धारण कर रहे हो (न) जिसप्रकार (निष्ठाः, वृषभः) स्थिर शक्तिवाला स्वामी (यूथे) अपने मण्डल का मध्यवर्ति होकर स्थिर होता है ॥

भावार्थ—जिस प्रकार मण्डलाधिपति अपने मण्डल के मध्य में स्थिर होकर सबको स्वाधीन रखता है इसी प्रकार परमात्मा सम्पूर्ण लोक-लोकान्तरों को बल से धारण करके सर्वत्र स्थित होरहा है, या यों कहो कि उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय रूप परमात्मशक्ति सदा एकरस दृढ़ता से विराजमान रहती है उसमें कभी रुकावट नहीं होती ॥

सोमः पुनानो अव्यये वारे शिशुर्न क्रीळन्पवमानो अक्षाः ।
सहस्रधारः शतवाज इन्दुः ॥ १० ॥

सोमः । पुनानः । अव्यये । वारे । शिशुः । न । क्रीळन् । पवमानः । अक्षारिति । सहस्रऽधारः । शतऽवाजः । इन्दुः ॥१०॥

पदार्थः—(सोमः) सर्वोत्पादकः परमात्मा (अव्यये, वारे) रक्षायुक्ते पदार्थे (शिशुः, न) प्रशंसनीयवस्तु इव (क्रीळन्) क्रीडन् (पवमानः) सर्वपावकः (सहस्रधारः) अनन्तशक्तियुक्तः (शतवाजः) विविधबलयुक्त (इन्दुः) प्रकाशस्वरूपः सः (पुनानः) पवित्रीकुर्वन् (अक्षाः) स्वसुधा-वारिणा सिंचति ॥

पदार्थ—(सोमः) सर्वोत्पादक (पवमानः) सबको पवित्र करने-वाला (अव्यये, वारे) रक्षायुक्त पदार्थों में (शिशुः, न, क्रीळन्) प्रशंसनीय वस्तुओं के समान क्रीड़ा करता हुआ (सहस्रधारः) अनन्तप्रकार की शक्तियों से युक्त (शतवाजः) अनन्त प्रकार के बलों वाला (इन्दुः) प्रकाशस्वरूप परमात्मा (पुनानः) ज्ञानवृद्धिद्वारा पवित्र करता हुआ (अक्षाः) अपनी सुधावारि से सबको सिंचन करता है ॥

भावार्थ—परमात्मा के गुण तथा शक्तियें अनन्त हैं और जिससे

उसके स्वरूप का निरूपण किया जाता है वह गुण भी उसमें अनन्त हैं, इस लिये अनन्तस्वरूप की अनन्तरूप से ही उपासना करनी चाहिये ॥

एष पुनानो मधुमाँ ऋतावेन्द्रायेन्दुः पवते स्वादुरूर्मिः ।
वाजसनिर्वरिवोविद्वयोधाः ॥ ११ ॥

एषः । पुनानः । मधुऽमान् । ऋतऽवा । इन्द्राय । इन्दुः । पवते । स्वादुः । ऊर्मिः । वाजऽसनिः । वरिवःऽवित् । वयःऽधाः ।११।

पदार्थः—(एषः) उक्तगुणसम्पन्नः परमात्मा (पुनानः) सर्वं पवित्रयन् (मधुमान्) आनन्दमयः (ऋतवा) ज्ञानादि यज्ञ-स्वामी (इन्दुः) प्रकाशस्वरूपः (इन्द्राय) कर्मयोगिने (पवते) पवित्रतां प्रददाति (वाजसनिः) अन्नाद्यैश्वर्यप्रदः (वरिवोवित्) धनाद्यैश्वर्यज्ञः (वयोधाः) आयुषः प्रदाता (स्वादुः, ऊर्मिः) आनन्दवीचीर्वाहयेति ॥

पदार्थ—(एषः) उक्त गुणसम्पन्न परमात्मा (पुनानः) सबको पवित्र करने वाला (मधुमान्) आनन्दमय (ऋतवा) ज्ञानादि यज्ञों का स्वामी (इन्दुः) प्रकाशस्वरूप (इन्द्राय, पवते) कर्मयोगी के लिये पवित्रता प्रदान करने वाला (वाजसनिः) अन्नादि ऐश्वर्यों का दाता (वरिवो-वित्) धनादि ऐश्वर्य प्रदान करने वाला (वयोधाः) आयु की वृद्धि करने वाला (स्वादुः, ऊर्मिः) आनन्द की लहरें बहाता है ॥

भावार्थ—इस मंत्र का आशय यह है कि जो पुरुष उक्त गुणों वाले परमात्मा की ओर क्रियाशक्ति तथा ज्ञानशक्ति से बढ़ते हैं उनको परम-पिता परमात्मा अवश्य प्राप्त होते और उन पर सब ओर से आनन्द की वृष्टि करते हैं ॥

स पवस्व सहमानः पृतन्यून्त्सेधन्रक्षांस्यप दुर्गहाणि ।
स्वायुधः सासह्वान्त्सोम शत्रून् ॥ १२ ॥ २३ ॥

सः । पवस्व । सहमानः । पृतन्यून् । सेधन् । रक्षांसि । अप ।
दुःऽगहानि । सुऽआयुधः । ससह्वान् । सोम । शत्रून् ॥ १२ ॥

पदार्थः—(सः) स परमात्मा (दुर्गहानि) दुर्दमानि (पृतन्यून्, रक्षांसि) संग्रामाभिलाषि राक्षसान् (अप, सेधन्) अपनयन् (पवस्व) मां रक्षतु (सहमानः) सहनशीलः (स्वायुधः) स्वयंभूः (शत्रून्, ससह्वान्) शत्रून् तिरस्कुर्वन् मा संरक्षतु ॥

पदार्थ—(सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! आप (पृतन्यून्, रक्षांसि) संग्राम की कामना करनेवाले राक्षसों को (दुर्गहानि) जो दुर्गम हैं (अप, सेधन्, पवस्व) दूर करते हुए हमारी रक्षा करें (सहमानः) सहनशील (स्वायुधः) स्वयम्भू (शत्रुन्) शत्रुओं का (ससह्वान्) तिरस्कार करते हुए (सः) आप हमें अभय प्रदान करें ॥

भावार्थ—इस मंत्र में परमात्मा से यह प्रार्थना कीगई है कि हे भगवन् ! आप कुमार्ग में प्रवृत्त दुष्ट पुरुषों से हमारी रक्षा करें, जिन से रक्षा कीजाती है उनका नाम "राक्षस" है, सो हे पिता ! आप सम्पूर्ण विघ्नकारी पुरुषों से हमारी रक्षा करते हुए हमें अभय प्रदान करें ॥

इति दशोत्तरशततमंसूक्तं त्रयोविंशोवर्गश्च समाप्तः ।

यह ११०वां सूक्त और तेईसवां वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ तृचस्यैकादशोत्तरशततमस्य सूक्तस्य:—

१—३ अनानतः पारुच्छेपिर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ निचृदष्टिः । २ भुरिगष्टिः । ३ अष्टिः ॥ मध्यमः स्वरः ॥

अथ शूरः किं कुर्यादित्युपदिश्यते:—

अब शूरवीर का कर्तव्य कथन करते हैं:—

अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषांसि—
तरति स्वयुग्वभिः सूरो न स्वयुग्वभिः ।
धारा सुतस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः ।
विश्वा यद्रूपा परियात्यृक्वभिः सप्तास्येभिर्ऋक्वभिः ॥१॥

अया । रुचा । हरिण्या । पुनानः । विश्वा । द्वेषांसि । तरति । स्वयुग्वऽभिः । सूरः । न । स्वयुग्वऽभिः । धारा । सुतस्य । रोचते । पुनानः । अरुषः । हरिः । विश्वा । यत् । रूपा । परिऽयाति । ऋक्वऽभिः । सप्तऽआस्येभिः । ऋक्वभिः ॥१॥

पदार्थः—(हरिः) परक्षहारकः शूरः (अरुषः) उग्रतेजस्वी (पुनानः) स्ववीरकर्मणा पावयन् (सुतस्य, धारा) संस्कारधारया (रोचते) शोभते (हरिण्या) शत्रुहारिण्या (अया, रुचा) अनया दीप्त्या (पुनानः) पावयन् (स्वयुग्वाभिः) स्व स्वाभाविकशक्तिभिः (विश्वा, द्वेषांसि) सर्वशत्रून् (तरति)

समापयति (न) यथा (सूरः) सूर्य्यः (स्वयुग्वभिः) स्वशक्तिभिरन्धकारं नाशयति एवं हि शूरो दुष्टान् (सप्तास्येभिः) सप्तमुखैः (ऋक्वभिः) किरणैः (विश्वा, रूपा) नानारूपं दधत् यथा सूर्यः (परियाति) प्राप्नोति, एवं हि (ऋक्वभिः) ज्ञानेन्द्रियाणां सप्तच्छिद्रनिःसृत तेजोभिः (यत्) यतः शूरः परपक्षं प्राप्नोति, अतएव सप्तकिरणवता सूर्येणोपमीयते ॥

पदार्थ—(हरिः) " हरतीति हरिः "=परपक्ष को हरण करने वाला शूरवीर (अरुषः) उग्र तेज वाला (पुनानः) अपने वीर कर्मों से पवित्र करने वाला (सुतस्य, धारा) संस्कार की धारा से (रोचते) दीप्तिमान् होता है (हरिण्या) शत्रुओं को हनन करने वाली (अया) इस (रुचा) दीप्ति से (पुनानः) पवित्र करता हुआ (स्वयुग्वभिः) अपनी स्वाभाविक शक्तियों द्वारा (विश्वा, द्वेषांसि) सब शत्रुओं को (तरति) हनन करता है (न) जैसे (सूरः) सूर्य्य (स्वयुग्वभिः) अपनी स्वाभाविक शक्तियों से अन्धकार का नाशक होता है (यत्) जैसे (सप्तास्येभिः) सात मुखों वाली (ऋक्वभिः) किरणों से (विश्वा, रूपा) नाना रूपों को धारण करता हुआ सूर्य्य (परियाति) प्राप्त होता है, इसी प्रकार (ऋक्वभिः) ज्ञानेन्द्रियों के सप्त छिद्रों से निकले हुए तेज द्वारा शूरवीर परपक्ष को प्राप्त होता है, इसलिये वह सूर्य्य की सप्त किरणों की तुलना करता है ॥

भावार्थ—इस मंत्र में रूपकालंकार से शूरवीर की सूर्य्य के साथ तुलना कीगई है अर्थात् जिसप्रकार सूर्य्य अपने तेजोमय प्रभामण्डल से अन्धकार को छिन्न भिन्न करता है इसी प्रकार शूरवीर योधा शत्रुओं को छिन्न भिन्न करके स्वयं स्थिर होता है ॥

त्वं त्यत्पणीनां विदो वसु सं मातृभिर्मर्जयसि स्व आ दम ऋतस्य धीतिभिर्दमे ।

परावतो न साम तद्यत्रा रणन्ति धीतयः ।
त्रिधातुभिररुषीभिर्वयो दधे रोचमानो वयो दधे ॥ २ ॥

त्वं । त्यत् । पणीनां । विदः । वसु । सं । मातृऽभिः । मर्जयसि । स्वे । आ । दमे । ऋतस्य । धीतिऽभिः । दमे । पराऽवतः । न । साम । तत् । यत्र । रणंति । धीतयः । त्रिधातुऽभिः । अरुषीभिः । वयः । दधे । रोचमानः । वयः । दधे ॥ २ ॥

पदार्थः—(यत्र) अस्मिन् युद्धे (धीतयः) युद्धकुशलाः (परावतः) दूरस्थाद्देशादेव (रणन्ति) मंगलगीतं गायन्ति (न) यथा (साम) सामगीयते, हे शूर ! (त्वं) त्वं (पणीना) परपक्षैश्वर्य्यवतः (त्यत्, वसु) बलातीतं धनं (ऋतस्य, धीतिभिः) कर्मणां यज्ञैः (विदः) लभमानः (दमे) स्ववशमानयसि (आ) अथ च (दमे) स्ववशे कृत्वा (मातृभिः, संमर्थयासि) माता पितृदत्तशक्त्या पुनरपि सम्यक् समर्जयसि (त्रिधातुभिः) त्रिधातुनिर्मितेन (अरुषीभिः) कान्तिमता शरीरेण (वयः, दधे) पुनरप्यैश्वर्यं दधासि (रोचमानः) दीप्यमानः सन् (वयः, दधे) पुनरपि ऐश्वर्यं दधासि ॥

पदार्थ—(यत्र) जिस युद्ध में (धीतयः) युद्धकुशल लोग (परावतः) दूर से ही (रणन्ति) मंगलमय गीत गाते हैं (न) जैसे (साम) सामगान होता है, हे शूरवीर ! (त्वं) तुम (पणीनां) परपक्ष के ऐश्वर्य्य वालों से (त्यत्, वसु) जो धन छीना गया है उसको (ऋतस्य, धीतिभिः) कर्मयज्ञद्वारा (विदः) लाभ करके (दमे) अपने वशीभूत करते

हो (आ) और (दमे) अपने अधीन धन को (मातृभिः, सं, मर्जयसि) माता पितादत्त शक्ति द्वारा फिर भलीभांति अर्जन करके (त्रिधातुभिः) तीन धातुओं से बने हुए (अरुषीभिः) कान्ति वाले इस शरीर द्वारा (वयः, दधे) ऐश्वर्य को धारण करते हो और (रोचमानः, वयः, दधे) दीप्तिवाले ऐश्वर्य्यशाली होकर स्वतंत्रतापूर्वक अपने जीवन को आनन्द में परिणत करते हो॥

भावार्थ—इस मंत्र का भावार्थ यह है कि जिस प्रकार ब्रह्मोपासक ब्रह्मयज्ञ में ब्रह्म के ज्ञानादि ऐश्वर्यों को धारण करते हैं इसी प्रकार शूरवीर कर्मयज्ञ में परमात्मा के अभ्युदयरूप ऐश्वर्य को धारण करते हुए इस त्रिधातुमय शरीर के प्रयत्न को सफल करते हैं ॥

पूर्वामनु प्रदिशं याति चेकितत्सं रश्मिभि-
र्यतते दर्शतो रथो दैव्यो दर्शतो रथः ।
अग्मन्नुक्थानि पौंस्येन्द्रं जैत्राय हर्षयन् ।
वज्रश्च यद्भवथो अनपच्युता समत्स्वनपच्युता ॥३॥२४॥

पूर्वाम् । अनु । प्रऽदिशम् । याति । चेकितत् । सम् । रश्मिऽभिः । यतते । दर्शतः । रथः । दैव्यः । दर्शतः । रथः । अग्मन् । उक्थानि । पौंस्या । इन्द्रम् । जैत्राय । हर्षयन् । वज्रः । च । यत् । भवथः । अनपऽच्युता । समत्ऽसु । अनपऽच्युता ॥३॥

पदार्थः—(दर्शतः) दर्शनीयं (रथः) शूरगमनं (दैव्यः) दैव्यशक्तियुक्तं (रश्मिभिः) उत्साहरूप किरणैः (सं, यतते) तम्यग्यत्नशीलं भवति (चेकितत्) युद्धविद्याज्ञाता योधः (पूर्वां, प्रदिशं) प्रशस्यगतिं (याति) प्राप्नोति

यदा (पौंस्या, उकूथानि) पुंस्त्वसम्बन्धिस्तवनानि (अग्मन्) विजेतारं प्राप्नुवन्ति (जैत्राय, हर्षयन्) तदा विजेता मोदयन् (इन्द्रं) स्वस्वामिनं प्राप्नोति (यत्) यतः (समत्सु) संग्रामेषु (अनपच्युता, भवथः) अपतितौ स्वामिसेवकौ सद्गतिं लभेते (च) अथ च (वज्रः) तच्छस्त्रमपि अवर्जनीयत्वात्समरेऽव्याहतगतिं लभते ॥

पदार्थ—(दर्शतः) दर्शनीय (रथः) शूरवीर का गमन (दैव्यः) दिव्यशक्तियुक्त (रश्मिभिः) उत्साहरूप किरणों द्वारा (सं, यतते) भलीभांति यत्नशील होता है (चेकितत्) युद्धविद्या के जाननेवाला योधा (पूर्वां, प्रदिशं) प्रशंसनीय गति को (याति) प्राप्त होता है (पौंस्या, उकूथानि) पुंस्त्वसम्बन्धि स्तवन जब (अग्मन्) विजेता को प्राप्त होते हैं तब (जैत्राय) विजेता उत्साहयुक्त होकर स्वामी को (हर्षयन्) प्रसन्न करता हुआ (इन्द्रं) अपने स्वामी को प्राप्त होता है (यत्) क्योंकि (समत्सु) संग्रामों में (अनपच्युता, भवथः) न गिरे हुए स्वामी तथा सेवक सद्गति के भागी होते हैं (च) और (वज्रः) उनका शस्त्र भी अवर्जनीय होकर संसार में अव्याहत गति को प्राप्त होता है ॥

भावार्थ—इस मंत्र में शूरवीर के तेज की दिव्य तेज से तुलना कीगई है कि जिस प्रकार द्युलोकवर्ती तेज अंधकार को दूर करके सर्वत्र प्रकाश का संचार करता है इसी प्रकार शूरवीर का तेज तमोरूप शत्रुओं को हनन करके अभ्युदयरूप ऐश्वर्य्य का संचार करता है ॥

इत्येकादशोत्तरशततमंसूक्तं चतुर्विंशतिवर्गश्चसमाप्तः ।

यह १११ वां सूक्त और चौबीसवां वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ चतुर्ऋचस्य द्वादशोत्तरशततमस्य सूक्तस्य–

१–४ शिशुर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः
१–३ विराट् पङ्क्तिः । ४ निचृत् पङ्क्तिः ॥
पञ्चमः स्वरः ॥

अथ प्रसंगप्राप्तोगुणकर्मानुसारेण वर्णानां धर्मो वर्ण्यते:–

अब प्रसङ्गप्राप्त गुणकर्मानुसार वर्णों के धर्मों का वर्णन करते हैं:–

नानानं वा उं नो धियो वि व्रतानि जनानाम् ।
तक्षा रिष्टं रुतं भिषग्ब्रह्मा सुन्वन्तमिच्छतीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥१॥

नानानं । वै । ऊं इति । नः । धियः । वि । व्रतानि । जनानां ।
तक्षा । रिष्टं । रुतं । भिषक् । ब्रह्मा । सुन्वंतं । इच्छति । इन्द्राय ।
इन्दो इति । परि । स्रव ॥ १ ॥

पदार्थः—(न) अस्माकं (धियः) कर्माणि (नानानं) बहुधा भिन्नानि भवन्ति (वै,ऊं) अथवा (जनानां) मनुष्याणां (व्रतानि, वि) कर्माणि बहुविधानि भवन्ति (तक्षा) काष्ठकारः (रिष्टं) स्वाभिमतकाष्ठं (इच्छाति) वाञ्छति (भिषक्) वैद्यः (रुतं) रोगचिकित्सामिच्छति (ब्रह्मा) वेदवेत्ता (सुन्वंतं) वेदविद्या संस्कृतं जनं वाञ्छति, अतः (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! भवान् (इन्द्राय) सत्यादिगुणसम्पन्नं राज्यमिच्छुमेवजनं (परि, स्रव) अभिषिञ्चतु राजसिंहासने ॥

पदार्थ—(नः) हमारे (धियः) कर्म (नानानं) भिन्न २ प्रकार के होते हैं (वै) निश्चय करके (ऊं) अथवा (जनानां) सब मनुष्यों के (व्रतानि) कर्म (वि) विविध प्रकार के होते हैं (तक्षा) "तक्षतीति तक्षः"=लकड़ी गढ़ने वाला पुरुष (रिष्टं) अपने अनुकूल लकड़ी को (इच्छति) इच्छा करता है (भिषक्) वैद्य (रुतं) रोगचिकित्सा की इच्छा करता है (ब्रह्मा) वेदवेत्ता पुरुष (सुन्वंतं) वेदविद्या से संस्कृत पुरुष की इच्छा करता है, इसलिये (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन ! आप (इन्द्राय) "इन्दतीति इन्द्रः"=जो अपने न्यायादि नियमों से राजा बनने के सद्गुण रखता है उसीको (परि, स्रव) राजसिंहासन पर अभिषिक्त करें ॥

भावार्थ—इस मन्त्र का अभिप्राय यह है कि जिसप्रकार पुरुष अपने अनुकूल पदार्थ को सुसंस्कृत करके बहुमूल्य बना देता है इसी प्रकार राज्याभिषेक योग्य राजपुरुष को परमात्मा संस्कृत करके राज्य के योग्य बनाता है ॥

जरतीभिरोषधीभिः पर्णेभिः शकुनानां ।
कार्मारो अश्मभिर्द्युभिर्हिरण्यवन्तमिच्छतीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥२॥

जरतीभिः । ओषधीभिः । पर्णेभिः । शकुनानां । कार्मारः । अश्मऽभिः । द्युऽभिः । हिरण्यऽवंतं । इच्छति । इन्द्राय । इन्दो इति । परि । स्रव ॥ २ ॥

पदार्थः—(जरतीभिः) प्राचीनाभिः (ओषधीभिः) लताभिर्निर्मितैः (शकुनानां, पर्णेभिः) उन्नतिशीलजनानां-नभोयानादिविमानैः (कार्मारः) शिल्पिनः (अश्मभिः, द्युभि)

वज्रादिशस्त्रैः (हिरण्यवंतं) ऐश्वर्य्यवन्तं राजानम् (इच्छति) वाऽच्छाति (इन्द्राय) उक्तैश्वर्य्यवते राज्ञे (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! भवान् (परि, स्रव) अभिषेकहेतुर्भवतु ॥

पदार्थ—(जरतीभिः) प्राचीन (ओषधीभिः) ओषधियों से निर्मित (शकुनानां, पर्णेभिः) उन्नतिशील पुरुषों के नभोयानादि विमानों द्वारा (कार्मारः) शिल्पी लोग (अश्मभिः, द्युभिः) दीप्ति वाले वज्रादि शस्त्रों से (हिरण्यवन्तं) ऐश्वर्य्य वाले राजा की (इच्छन्ति) इच्छा करते हैं (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (इन्द्राय) उक्त ऐश्वर्य्य-सम्पन्न राजा के लिये (परि, स्रव) अभिषेक का कारण बनें ॥

भावार्थ—जो राजा दीप्तिवाले अस्त्रशस्त्र तथा विमानादि द्वारा सर्वत्र गतिशील होता है वह परमात्मा की कृपा से ही उत्पन्न होता है, या यों कहो कि पूर्वकृत प्रारब्ध कर्मों के अनुसार परमात्मा ही ऐसे राजा को अभिषिक्त करता है ॥

कारुरहं ततो भिषगुंपलप्रक्षिणीं नना ।
नानांधियो वसूयवोऽनु गा इंव तस्थिमेन्द्रांयेन्दो परिं स्रव ॥३॥

कारुः । अहं । ततः । भिषक् । उपलऽप्रक्षिणीं । नना । नानाऽधियः । वसुऽयवः । अनुं । गाःऽइंव । तस्थिम । इन्द्रांय । इन्दो इतिं । परिं । स्रव ॥ ३ ॥

पदार्थः—(कारुः, अहं) अहं शिल्पविद्याशक्तिं दधामि (ततः) ततश्च (भिषक्) चिकित्सकोऽपि भवतुमर्हामि (नना) नम्रा च मे बुद्धिः सर्वत्र यथेष्टं गमीयतुं शक्या (उपलप्राक्षिणी)

पाषाणानां संस्कर्त्री ममबुद्धिर्मा मन्दिराणां निर्मातारमपि शक्नोति कर्तुम् (नानाधियः) एवं नानाकर्मवन्तो मद्भावाः (वसुयवः) ऐश्वर्य्यं कामयमाना विद्यन्ते, वयं च (अनु, गाः) इन्द्रिय वृत्तय इवोच्चावचविषयगमनशीलाः (तस्थिम) स्मः, अतः (इन्दो) हे परमात्मन् (इन्द्राय) परमैश्वर्याय मद्वृत्तिं (परि, स्रव) प्रवाहय ॥

पदार्थ—(कारुः; अहं) मैं शिल्पविद्या की शक्ति रखता (ततः) पुनः (भिषक्) वैद्य भी बन सकता हूं (नना) मेरी बुद्धि नम्र है अर्थात् मैं अपनी बुद्धि को जिधर लगाना चाहूं लगा सकता हूं (उपलप्रक्षिणी) पाषाणों का संस्कार करने वाली मेरी बुद्धि मुझे मन्दिरों का निर्माता भी बनासकती है, इस प्रकार (नानाधियः) नाना कर्मों वाले मेरे भाव (वसुयवः) जो ऐश्वर्य्य को चाहते हैं वे विद्यमान हैं, हम लोग (अनु, गाः) इन्द्रियों की वृत्तियों के समान ऊंच नीच की ओर जानेवाले (तस्थिम) हैं, इसलिये (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! हमारी वृत्तियोंको (इन्द्राय) उच्चैश्वर्य्य के लिये (परि, स्रव) प्रवाहित करें ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में परमात्मा से उच्चोद्देश्य की प्रार्थना कीगई है कि हे भगवन् ! यद्यपि मेरी बुद्धि मुझे कवि, वैद्य तथा शिल्पी आदि नाना भावों की ओर लेजाती है तथापि आप ऐश्वर्य्यप्राप्ति के लिये मेरे मन की प्रेरणा करके मुझे उच्चैश्वर्य्य की ओर प्रेरित करें ।

रमेशचन्द्रदत्त तथा अन्य कई एक यूरोपियन भाष्यकारों ने इस मंत्र के यह अर्थ किये हैं कि मैं कारू अर्थात् सूत बुननेवाला हूं, मेरा पिता वैद्य और मेरी माता धान कूटती है, इस प्रकार नाना जाति वाले हम एकही परिवार के अंग हैं, इससे उन्होंने यह सिद्ध किया है कि वेदों में ब्राह्मणादि वर्णों का वर्णन नहीं, अस्तु—इसका हम विस्तारपूर्वक खण्डन उपसंहार में करेंगे ॥

अश्वो वोळ्हा सुखं रथं हसनामुपमन्त्रिणः । शेपो रोमण्वन्तौ
भेदौ वारिन्मण्डूक इच्छतीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥४॥२५॥

अश्वः । वोळ्हा । सुऽखं । रथं । हसनां । उपऽमंत्रिणः । शेपः ।
रोमण्ऽवंतौ । भेदौ । वाः । इत् । मंडूकः । इच्छति ।
इन्द्राय । इन्दो इति । परि । स्रव ॥ ४ ॥

पदार्थः—(अश्वः) क्षणेन सर्वत्र व्यापनादश्वो विद्युत (वोळ्हा) सर्वपदार्थ प्रापयिता (सुखं) सुखदं (रथं) यथा गतिं (इच्छति) कामयते (उपमंत्रिणः) यथा मंत्रिजनः (हसना) आल्हादजनक क्रियां वाञ्च्छाति (मंडूकः) यथा वा मण्डनकर्ता (वारित) वरणीयवस्तु वाञ्च्छति (शेपः) यथा सूर्य्यप्रकाशः (रोमण्वन्तौ, भेदौ) प्रकृतेः प्रत्येक पदार्थे विभागमिच्छति, एवं हि योग्यतामनुसृत्य विभागमिच्छन् (इन्दो) हे परमात्मन् ! (इन्द्राय) योग्य राजानं (परि, स्रव) अभिषिञ्च ॥

पदार्थ—(अश्वः) " अश्नुतेऽध्वानमित्यश्वः " निरु० १ । १३ । ५ = जो शीघ्रगामी होकर अपने मार्गों का अतिक्रमण करे उसका नाम " अश्व " है, इस प्रकार यहां अश्व नाम विद्युत् का है (वोळ्हा) सब पदार्थों को प्राप्त कराने वाला वा प्राप्त होने वाला विद्युत् जिसप्रकार (रथं) गति को (इच्छति) चाहता है, जैसे (उपमंत्रिणः) उपमन्त्री लोग (हसनां) आह्लादजनक क्रिया की इच्छा करते हैं, जैसे (मंडूकः) " मंडयतीति मण्डूकः " = मण्डन करने वाला पुरुष (वारित्) वरणीय पदार्थ की ही इच्छा करता है, जैसे (शेपः) सूर्य्य का प्रकाश (रोमण्वन्तौ) प्रकृति के

प्रत्येक पदार्थ में (भेदौ) विभाग की इच्छा करता है, इसी प्रकार योग्य-तानुसार विभाग की इच्छा करते हुए (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (इन्द्राय) ऐश्वर्य्यसम्पन्न राजा को (परि, स्रव) अभिषिक्त करें ॥

भावार्थ—मंत्र का अर्थ स्पष्ट है, यहां यह लिखना अनुपयुक्त नहीं कि इस मंत्र के अर्थ सायणाचार्य्य तथा आजकल के कई एक वैदिक ज्ञानाभिमानियों ने अत्यन्त निन्दित किये हैं जो ऐश्वर्य्य प्रकरण से कोई सम्बन्ध नहीं रखते, उनका हम विस्तारपूर्वक खण्डन उपसंहार में करेंगे ॥

इति द्वादशोत्तरशततमसूक्तं पंचविंशोवर्गश्च समाप्तः ।

यह ११२ वां सूक्त और पचीसवां वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ एकादशर्चस्य त्रयोदशोत्तरशततमस्य सूक्तस्य:—

१–११ कश्यप ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः
१, २, ७ विराट् पङ्क्तिः । ३ भुरिक् पङ्क्तिः ४
पङ्क्तिः । ५, ६, ८–११ निचृत् पङ्क्तिः ॥
पञ्चमः स्वरः ॥

अथ प्रसङ्गसंगत्या राजधर्मो निरूप्यते:—

अब प्रसंग संगति से राजधर्म का निरूपण करते हैं:—

शर्यणावति सोममिन्द्रः पिबतु वृत्रहा ।
बलं दधान आत्मनि करिष्यन्वीर्यं महदिन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥१॥

शर्यणाऽवति । सोमम् । इन्द्रः । पिबतु । वृत्रऽहा । बलम् । दधानः । आत्मनि । करिष्यन् । वीर्यम् । महत् । इन्द्राय । इन्दो इति । परि । स्रव ॥ १ ॥

पदार्थः—(शर्यणावति) कर्मयोगिनि (सोमं) ईश्वरानन्दं (इन्द्रः) परमैश्वर्यं प्राप्स्यन् राजा (पिबतु) पिबेत् स राजा (वृत्रहा) शत्रुरूपमेघान्नाशयति (बलं, दधानः) बलं धारयन् (आत्मनि) स्वस्मिन् (महत्, वीर्यं) अति बलं (करिष्यन्) उत्पादयन् राज्यार्हो भवति (इन्द्राय) ईदृशे राज्ञे (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! भवान् (परि,वस्र) अभिषेकहेतुर्भवतु ॥

पदार्थ—(शर्यणावति) कर्मयोगी में (सोमं) ईश्वरानन्दरूप (इन्द्रः) "इन्दतीतीन्द्रः"=परमैश्वर्य्य को प्राप्त होने वाला राजा (पिबतु) पान करे, वह राजा (वृत्रहा) शत्रुरूप बादलों के नाश करने वाला होता है (बलं, दधानः) बल को धारण करता हुआ और (आत्मनि) अपने आत्मा में (महत्, वीर्यं) बड़े बल को (करिष्यन) उत्पन्न करता हुआ राज्यपद के योग्य होता है (इन्द्राय) ऐसे बल वीर्य्य सम्पन्न राजा के लिये (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (परि, स्रव) राज्याभिषेक का निमित्त बनें ॥

भावार्थ—इस मंत्र का भाव यह है कि जो राजा कर्मयोगी तथा ज्ञानयोगियों के सदुपदेश से ब्रह्मानन्द पान करता है वह राजा बनने योग्य होता है, हे परमात्मन् ! ऐसे राजा को राज्याभिषेक से अभिषिक्त करें ॥

आ पवस्व दिशां पत आर्जीकात्सोम मीढ्वः ।
ऋतवाकेन सत्येन श्रद्धया तपसा सुत इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥२॥

आ । पवस्व । दिशाम् । पते । आर्जीकात् । सोम । मीढ्वः । ऋतऽवाकेन । सत्येन । श्रद्धया । तपसा । सुतः । इन्द्राय । इन्दो इति । परि । स्रव ॥ २ ॥

पदार्थः—(सोम) हे सोमस्वभाव (मीढ्वः) कामप्रद (दिशां, पते) सर्वव्यापक परमात्मन् ! भवान् (आर्जीकात्) सरलता भावेन प्रजासु(आ, पवस्व) पवित्रतामुत्पादय (ऋतवाकेन, सत्येन) वाक्सत्यतया (श्रद्धया) श्रद्धया च (तपसा) तपसा च (सुतः) यो राज्यार्हः तस्मै (इन्द्राय) राज्ञे (परि, स्रव) अभिषेकहेतुर्भवतु ॥

पदार्थ—(सोम) हे सर्वोत्पादक (मीढ्वः) कामप्रद (दिशां, पते) सर्वव्यापक परमात्मन् ! आप (आर्जीकात्) सरलभाव से प्रजा में (आ, पवस्व) पवित्रता उत्पन्न करते हुए (ऋतवाकेन, सत्येन) वाणी के सत्य से (श्रद्धया, तपसा) श्रद्धा तथा तप से (सुतः) जो राज्याभिषेक के योग्य है, ऐसे (इन्द्राय) राजा के लिये (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन ! आप (परि, स्रव) राज्याभिषेक का निमित्त बनें ॥

भावार्थ—इस मंत्र का आशय यह है कि जो राजा सरल भाव से प्रजा पर शासन करता हुआ श्रद्धा, तप तथा सत्यादि गुणों को धारण करता है ऐसे कर्मशील राजा के राज्य को परमात्मा अटल बनाता है ॥

पर्जन्यवृद्धं महिषं तं सूर्यस्य दुहिताभरत् ।
तं गंधर्वाः प्रत्यगृभ्णन्तं सोमे रसमादधुरिन्द्रायेन्दो परि स्रव ।३।

पर्जन्यऽवृद्धं । महिषं । तं । सूर्यस्य । दुहिता । आ । अभरत् ।

तं । गंधर्वाः । प्रति । अगृभ्णन् । तं । सोमे । रसं । आ । अदधुः । इन्द्राय । इन्दो इति । परि । स्रव ॥ ३ ॥

पदार्थः—(पर्जन्यवृद्धं) यो गम्भीरघटेव वृद्धिं प्राप्तः (सूर्य्यस्य, दुहिता) द्युलोकपुत्री श्रद्धा (तं) उक्त गुण सम्पन्नं (महिषं) पूजार्हं राजानं (आभरत) ऐश्वर्यगुणैः पूरयति (तं) तं राजानं (गंधर्वाः) गानवेत्तारः ये च (प्रति, अगृभ्णन्) प्रत्येक भाव ग्राहकाः (तं) तमीश्वरभावात्मकं रसं (सोमे) जगदुत्पादके परमात्मनि (रसं) यो रसस्तं (आदधुः) धारयन्तः (इन्द्राय) पूर्वोक्त राजाय गायन्तु (इन्दो) हे परमात्मन् ! (परि, स्रव) राजाभिषेक हेतुर्भवतु भवान् ॥

पदार्थ—(पर्जन्यवृद्धं) सघन घटा के समान वृद्धि को प्राप्त (सूर्यस्य, दुहिता) द्युलोक की पुत्री श्रद्धा (तं) उक्त गुणसम्पन्न (महिषं) पूजायोग्य राजा को (आभरत) ऐश्वर्य्यरूप गुणों से भरपूर करती है (तं) उस राजा की (गन्धर्वाः) गानविद्या के वेत्ता जो (प्रति, अगृभ्णन) प्रत्येक भाव ग्रहण करने वाले हैं (सोमे) "सूते चराचरञ्जगदिति सोमः"= जो सम्पूर्ण संसार की उत्पत्ति करे उसका नाम यहां "सोम" है (तं, रसं) उक्त परमात्मा विषयक रस को (आदधुः) धारण करते हुए गन्धर्व लोग (इन्द्राय) उपर्युक्त गुणसम्पन्न राजा के लिये गान करें (इन्दो) हे प्रकाश-स्वरूप परमात्मन् ! आप (परि, स्रव) ऐसे राजा के लिये राज्याभिषेक का निमित्त बनें ॥

भावार्थ—इस मंत्र का भाव यह है कि श्रद्धायुक्त राजा ही ऐश्वर्य्यशाली होता और परमात्मा उसी को राज्याभिषेक के योग्य बनाता है अर्थात् आस्तिक राजा ही अटल ऐश्वर्य्य भोगता है अन्य नहीं ॥

ऋतं वदन्नृतद्युम्न सत्यं वदन्त्सत्यकर्मन् ।
श्रद्धां वदन्त्सोम राजन्धात्रा सोम परिष्कृत इन्द्रायेन्दो परि स्रव ।४।

ऋतं । वदन् । ऋतऽद्युम्न । सत्यं । वदन् । सत्यऽकर्मन् ।
श्रद्धां । वदन् । सोम । राजन् । धात्रा । सोम । परिऽकृतः ।
इन्द्राय । इन्दो इति । परि । स्रव ॥ ४ ॥

पदार्थः—(ऋतं, वदन्) यज्ञादिकमुपदिशन् (ऋतद्युम्न) हे यज्ञकर्मज दीप्त्या दीप्तिमन् (सत्यं, वदन्) सत्यभाषणशीलः (सत्यकर्मन्) सत्यतामनुसृत्य कर्मकर्ता (राजन्)हे राजन् ! भवान् (श्रद्धां, वदन्) श्रद्धामुपदिशन् (सोम) हे सोम्यस्वभाव (धात्रा) संसारधारकेण (सोम, परिष्कृतः) परमात्मना शोधितोभवान् (इन्द्राय) इत्थंभूताय राज्ञे (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (परि, स्रव) अभिषेक हेतुर्भवतु ॥

पदार्थ—(ऋतं, वदन्) यज्ञादिकों का उपदेश करते हुए (ऋतद्युम्न) यज्ञकर्मरूप दीप्ति से दीप्तिमान् (सत्यं, वदन्) सत्य भाषण करने वाले (सत्यकर्मन) सत्य के आश्रित कर्म करने वाले (राजन) हे राजन् ! आप (श्रद्धां, वदन) श्रद्धा का उपदेश करते हुए (सोम) सौम्यस्वरूप युक्त (धात्रा) संसार को धारण करने वाले (सोम, परिष्कृतः) परमात्मा से परिष्कार किये गये (इन्द्राय राजा के लिये (इन्दो) हे परमात्मन ! आप (परि,स्रव) राज्याभिषेक का निमित्त बनें ॥

भावार्थ—जो स्वयं यज्ञादि कर्म करता, औरों को यज्ञादि कर्म करने का उपदेश करता, सत्यभाषण और सत्य के आश्रित कर्म करने वाले राजा के राज्य को परमात्मा अटल बनाता है ॥

सत्यमुग्रस्य बृहतः सं स्रवन्ति संस्रवाः ।
सं यन्ति रसिनो रसाः पुनानो ब्रह्मणा हर इन्द्रायेन्दो परि स्रव ५-२६

सत्यंऽउग्रस्य । बृहतः । सं । स्रवंति । संऽस्रवाः । सं । यंति । रसिनः । रसाः । पुनानः । ब्रह्मणा । हरे । इन्द्राय । इन्दो इति । परि । स्रव ॥ ५ ॥

पदार्थः—(सत्यमुग्रस्य, बृहतः) संग्रामे सत्याश्रयणान्महतः यस्य पुरुषस्य (संस्रवाः) सत्यता स्रोतसा बहूनि स्रोतांसि (संस्रवन्ति) स्यन्दन्ते (रसिनः)रसिकस्य (रसाः) रसाः (सं, यंति) यं साधु प्राप्नुवन्ति (ब्रह्मणा) वेदवेत्रा यः (पुनानः) पावितः (हरे) हे हरणशील (इन्दो) प्रकाशस्वरूप परमात्मन् (इन्द्राय) ईदृशे राज्ञे (परि, स्रव) अभिषेकहेतुर्भव ॥

पदार्थ—(उग्रस्य, सत्यं, बृहतः) संग्राम में सत्यता होने से बढ़े हुए जिस पुरुष के (संस्रवाः) सत्यरूप स्रोत में अनेक सत्य के प्रवाह (सं, स्रवन्ति) बह रहे हैं (रसिनः) रसिक पुरुषों के (रसाः) रस (सं,यन्ति) जिसको भलीभांति प्राप्त होते हैं (ब्रह्मणा) वेदवेत्ता विद्वान् से (पुनानः) जो पवित्र किया गया है (इन्द्राय) ऐसे राजा के लिये (हरे) हे हरणशील (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (परि,स्रव) राज्याभिषेक का निमित्त बनें ॥

भावार्थ—वेदवेत्ता विद्वान् से शिक्षा पाया हुआ जो राजा अपने सत्यादि धर्मों का त्याग नहीं करता उसका राज्य अवश्यमेव चिरस्थायी होता और वह सांसारिक अनेक रसों का भोक्ता होता है ॥

अब ऐश्वर्यनिरूपण के पश्चात् मोक्षधर्म का निरूपण करते हैंः—

यत्र॑ ब्र॒ह्मा प॑वमान छन्द॒स्यां॒३॒॑ वाचं॒ वद॑न् ।
ग्राव्णा॒ सोमे॑ मही॒यते॒ सोमे॑नान॒न्दं ज॒नय॒न्निन्द्रा॑येन्दो॒ परि॑ स्रव ॥६॥

यत्र॑ । ब्र॒ह्मा । प॒व॒मा॒न॒ । छ॒न्द॒स्या॑म् । वाच॑म् । वद॑न् । ग्राव्णा॑ । सोमे॑ । म॒ही॒यते॑ । सोमे॑न । आ॒ऽन॒न्दम् । ज॒नय॑न् । इन्द्रा॑य । इन्दो॒ इति॑ । परि॑ । स्र॒व ॥ ६ ॥

पदार्थः—(यत्र) यस्यां संन्यासावस्थायां (ब्रह्मा) वेदवेत्ता विद्वान् (छन्दस्यां, वाचं, वदन्) वेदवाचं वर्णयन् (ग्राव्णा) चित्तवृत्तिनिरोधेन (सोमे) परमात्मनि (महीयते) मोक्षं पूज्यपदं लभते (सोमेन) सोमस्वभावेन (आनन्दं, जनयन्) आनन्दमुत्पादयन् यस्तस्मै (इन्द्राय) योगीन्द्राय संन्यासिने (इन्दो) प्रकाशस्वरूप (पवमान) सर्वव्यापक (परि, स्रव) स्वज्ञानेन पूर्णाभिषेकं करोतु ॥

पदार्थ—(यत्र) जिस संन्यासावस्था में (ब्रह्मा) वेदवेत्ता विद्वान् (छन्दस्यां, वाचं, वदन) वेदविषयक वाणी का वर्णन करता हुआ (ग्राव्णा) गुणातीतिग्रावा तेन ग्राव्णा, चित्तवृत्ति निरोधेन=चित्तवृत्तिनिरोध द्वारा (सोमे) सौम्यस्वरूप परमात्मा में (महीयते) मोक्षाख्य पूज्यपद को लाभ करता है (सोमेन) सोमस्वभाव से (आनन्दं, जनयन्) आनन्द को लाभ करनेवाले (इन्द्राय) योगेन्द्र संन्यासी के लिये (पवमान) सबको पवित्र करने वाले (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन ! आप (परि, स्रव) अपने ज्ञान द्वारा पूर्णाभिषेक करें ॥

भावार्थ—इस मंत्र का आशय यह है कि वेदवेत्ता विद्वान संन्या-

सावस्था में वेदरूप वाणी का प्रकाश करता हुआ अर्थात् वैदिकधर्म का उपदेश करता हुआ चित्तवृत्तिनिरोध द्वारा परमात्मा में लीन होकर इतस्ततः विचरता है वह सब के पवित्र करनेवाला होता है, हे परमात्मन् ! आप ऐसे संन्यासी को पूर्णाभिषिक्त करें ॥

यत्र ज्योतिरजस्रं यस्मिँल्लोके स्वर्हितं । तस्मिन्मां धेहि पवमानामृते लोके अक्षित इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ७ ॥

यत्रं । ज्योतिः । अजस्रं । यस्मिन् । लोके । स्वः । हितं । तस्मिन् । मां । धेहि । पवमान । अमृते । लोके । अक्षिते । इन्द्राय । इन्दो इति । परि । स्रव ॥ ७ ॥

पदार्थः—(यत्र) यत्र मोक्षे (अजस्रं, ज्योतिः) सततं ज्योतिः प्रकाशते (यस्मिन्, लोके) यत्र ज्ञाने च (स्वः, हितं) केवल सुखमेव (तस्मिन्, अमृते) यत्रामृतावस्थायां (अक्षिते) वृद्धिक्षयरहितायां (पवमान) हे सर्वस्य पावयितः (मां,धेहि) मां निवासयतु (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूपः (इन्द्राय) उक्त ज्ञानयोगिने भवान् (परि,स्रव) पूर्णाभिषेक हेतुरस्तु ॥

पदार्थ—(यत्र) जिस मोक्ष में (अजस्रं, ज्योतिः) निरन्तर ज्योति का प्रकाश होता तथा (यस्मिन्, लोके) जिस ज्ञान में (स्वः, हितं) सुख ही सुख होता है (तस्मिन्, अमृते) उस अमृत अवस्था में (अक्षिते) जो वृद्धि तथा क्षय से रहित है (पवमान) हे सब को पवित्र करने वाले परमात्मन (मां, धेहि) मुझे रक्खें (इन्दो) हे प्रकाशकस्वरूप परमात्मन् (इन्द्राय) उक्त ज्ञानयोगी के लिये आप (परि, स्रव) पूर्णाभिषेक का कारण बनें ॥

भावार्थ—इस मंत्र में यह प्रार्थना कीगई है कि हे परमात्मन ! ज्ञान

योगी तथा कर्मयोगी के लिये सदुपदेशरूप वाणी प्रदान करें और वृद्धि तथा क्षय से रहित अमृत अवस्था प्राप्त करायें जिससे वेदरूप वाणी का प्रकाश हो और आप अपनी कृपा से ज्ञानयोगी को अभिषिक्त करें ॥

यत्र राजा वैवस्वतो यत्रावरोधनं दिवः ।
यत्रामूर्यह्वतीरापस्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ८ ॥

यत्र । राजा । वैवस्वतः । यत्र । अवऽरोधनं । दिवः । यत्र । अमूः । यह्वतीः । आपः । तत्र । मां । अमृतं । कृधि । इन्द्राय । इन्दो इति । परि । स्रव ॥ ८ ॥

पदार्थः—(यत्र) यस्यामवस्थायां (वैवस्वतः, राजा) काल एव राजास्ति (यत्र, अवरोधनं, दिवः) यत्राह्नो रात्रेश्च वशीकरणम् (यत्र, अमूः, यह्वतीः, आपः) यत्रोक्ताध्यात्मिक ज्ञानस्य बाहुल्य (तत्र) तस्मिन्पदे (मां) मां (अमृतं, कृधि) अमृतं करोतु (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! भवान् (इन्द्राय) उक्त ज्ञानयोगिने (परि, स्रव) पूर्णाभिषेकहेतुर्भवतु ॥

पदार्थ—(यत्र) जिस अवस्था में (वैवस्वतः, राजा) काल ही राजा है (यत्र, अवरोधनं, दिवः) जहां दिन तथा रात का वशीकरण है (यत्र, अमूः, यह्वतीः, आपः) जहां उक्त आध्यात्मिक ज्ञानों का बाहुल्य है (तत्र) उस पद में (मां) मुझको (अमृतं, कृधि,) अमृत बनाओ (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! आप (इन्द्राय) ज्ञानयोगी के लिये (परि, स्रव) पूर्णाभिषेक के निमित्त बनें ॥

भावार्थ—इस मंत्र का भाव यह है कि परमात्मा ज्ञानयोगी को सत्य तथा अनृत के निर्णय में अभिषिक्त करता है अर्थात् ज्ञानयोगीरूप

राजा सत्य तथा अनृत का निर्णय करके अपने विवेकरूप राज्य को अटल बनाता है ॥

यत्रानुकामं चरणं त्रिनाके त्रिदिवे दिवः ।
लोका यत्र ज्योतिष्मन्तस्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥९॥

यत्र । अनुऽकामम् । चरणम् । त्रिऽनाके । त्रिऽदिवे । दिवः ।
लोकाः । यत्र । ज्योतिष्मन्तः । तत्र । माम् । अमृतम् । कृधि ।
इन्द्राय । इन्दो इति । परि । स्रव ॥ ९ ॥

पदार्थः—(त्रिनाके, त्रिदिवे, दिवः) ज्ञानसम्बन्धि स्वर्गलोके (यत्र, अनुकामं, चरणं) यत्र स्वेच्छया विचरणं (यत्र, ज्योतिष्मन्तः) यत्र केवलज्ञानमेव (लोकाः) दृश्यते (तत्र) तत्र पदे (मां) मां (अमृतं) मोक्षसुखभागिनं (कृधि) करोतु (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप ! भवान् (इन्द्राय) उक्तज्ञानयोगिनः (परि, स्रव) पूर्णाभिषेकहेतुर्भवतु ॥

पदार्थ—(त्रिनाके, त्रिदिवे, दिवः) ज्ञानरूप स्वर्गलोक में (यत्र, अनुकामं, चरणं) जहां स्वेच्छानुसार विचरण होता है (यत्र) जिसमें (ज्योतिष्मन्तः) केवल ज्ञान ही का (लोकाः) दर्शन है (तत्र) वहां (मां) मुझको (अमृतं) मोक्षसुख का भागी (कृधि) करो (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (इन्द्राय) ज्ञानयोगी के लिये (परि, स्रव) पूर्णाभिषेक का निमित्त बनें ॥

भावार्थ—मुक्त पुरुष मुक्ति अवस्था में अव्याहतगति होकर विचरता है अर्थात उसको उस अवस्था में किसी प्रकार का बन्धन नहीं रहता,

या यों कहो कि वह स्वतंत्रतापूर्वक ईश्वरीय सत्ता में सम्मिलित होता है, हे परमपिता परमात्मन् ! आप ज्ञानयोगी तथा कर्मयोगी को अभिषिक्त करके वह अवस्था प्राप्त करायें ॥

यत्र कामा निकामाश्च यत्र ब्रध्नस्य विष्टपम् ।
स्वधा च यत्र तृप्तिश्च तत्र मामृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥१०॥

यत्र । कामाः । निऽकामाः । च । यत्र । ब्रध्नस्य । विष्टपं । स्वधा । च । यत्र । तृप्तिः । च । तत्र । मां । अमृतं । कृधि । इन्द्राय । इन्दो इति । परि । स्रव ॥ १० ॥

पदार्थः—(यत्र) यस्मिन् (कामाः) सर्वकामाः (निकामाः) निष्कामाः क्रियन्ते (च) तथा च (यत्र, ब्रध्नस्य) यत्र ब्रह्मज्ञानस्य (विष्टपं) सर्वोपर्युच्चपदमस्ति (स्वधा) अमृतं चास्ति (तृप्तिः, च) तया तृप्तिश्च (तत्र) तत्र स्थाने (मां) मां (अमृतं, कृधि) मोक्षपदभागिनं करोतु (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! भवान् (इन्द्राय) ज्ञानयोगिने (परि,स्रव) पूर्णाभिषेकहेतुर्भवतु ॥

पदार्थ—(यत्र, कामाः) जहां सब काम (निकामाः) निष्काम किये जाते हैं (च) और (यत्र) जहां (ब्रध्नस्य) ब्रह्मज्ञान का (विष्टपं) सर्वोच्च पद है (यत्र) जहां (स्वधा) अमृत (च) और उससे (तृप्तिश्च) तृप्ति है (तत्र) वहां (मां) मुझको (अमृतं, कृधि) मोक्षपद प्राप्त करायें (इन्दो) हे परमात्मन् ! आप (इन्द्राय) ज्ञानयोगी के (परि, स्रव) पूर्णाभिषेक का निमित्त बनें ॥

भावार्थ—हे परमात्मन ! जो ब्रह्मज्ञान का उच्चपद है और जहां

स्वधा से तृप्ति होती है वह मोक्षरूप सुख मुझे प्रदान कीजिये, या यों कहो कि वह मुक्ति सुख जिससे एकमात्र ब्रह्मानन्द का ही अनुभव होता है अन्य विषय सुख आदि जिस अवस्था में सब तुच्छ होजाते हैं वह मुक्ति अवस्था मुझे प्राप्त करायें ॥

यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते ।
कामस्य यत्राप्ताः कामास्तत्र माममृतं-
कृधीन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥ ११ ॥ २७ ॥

यत्र । आऽनन्दाः । च । मोदाः । च । मुदः । प्रऽमुदः । आसते । कामस्य । यत्र । आप्ताः । कामाः । तत्र । मां । अमृतं । कृधि । इन्द्राय । इन्दो इति । परि । स्रव ॥ ११ ॥

पदार्थः—(यत्र, आनन्दाः, च) यत्र आनन्दाः सन्ति (मोदाः, च) मोक्षश्चास्ति (मुदः, प्रमुदः) आनान्दितो हर्षितश्च मुक्त पुरुषो (आसते) विराजते (कामस्य, यत्र, आप्ताः, कामाः) यत्र च कामनावतः सर्वेकामाः प्राप्ताः (तत्र) तस्यां मोक्षावस्थायां (मां, अमृतं, कृधि) मां मोक्षसुखभागिनं करोतु (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप ! भवान् (इन्द्राय) ज्ञानयोगिने (परि, स्रव) पूर्णाभिषेकहेतुर्भवतु ॥

पदार्थ—(यत्र) जहां (आनन्दाः) आनन्द (च) और (मोदाः) हर्ष है (मुदः, च, प्रमुदः) और जहां आनन्दित तथा हर्षित मुक्त पुरुष (आसते) विराजमान होता है (कामस्य, यत्र, आप्ताः कामाः) और जहां कामना वालों को सब काम प्राप्त हैं (तत्र) वहां (मां) मुझको (अमृतं) मोक्षसुख का भागी (कृधि) करें (इन्दो) हे परमात्मन् ! आप (इन्द्राय) ज्ञानयोगी के लिये (परि, स्रव) पूर्णाभिषेक का निमित्त बनें ॥

भावार्थ—हे भगवन् ! जिस अवस्था में आनन्द तथा मोद होता है और जहां सब कामनायें पूर्ण होती हैं वह अवस्था मुझे प्राप्त करायें, या यों कहो कि हे परमात्मन ! उस मुक्ति अवस्था में जहां आनन्द ही आनन्द प्रतीत होता है अन्य सब भाव उस समय तुच्छ होजाते हैं वह मुक्ति अवस्था मुझे प्राप्त हो ॥

इति त्रयोदशोत्तरशततमं सूक्तं सप्तविंशोवर्गश्च समाप्तः ।

यह ११३वां सूक्त और सत्ताईसवां वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ चतुर्ऋचस्य चतुर्दशोत्तरशततमस्य सूक्तस्यः—

१-४ कश्यप ऋषि ॥ पवमानः सोमो देवता ॥

छन्दः—१, २ विराट् पङ्क्तिः । ३, ४ पङ्क्तिः ॥

पञ्चमः स्वरः ॥

अथ मुक्तैश्वर्य्यं निरूप्यते:—

अब मुक्तपुरुष के ऐश्वर्य का निरूपण करते हैं:—

य इन्दोः पवमानस्यानु धामान्यक्रमीत् ।
तमाहुः सुप्रजा इति यस्ते सोमा-
विधन्मन इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ १ ॥

यः । इन्दोः । पवमानस्य । अनु । धामानि । अक्रमीत् ।

तं । आहुः । सुऽप्रजाः । इति । यः । ते । सोम । अविधत् । मनः । इन्द्राय । इन्दो इति । परि । स्रव ॥ १ ॥

पदार्थः—(यः) यो जनः (पवमानस्य) सर्वपावकस्य (इन्दोः) प्रकाशमय परमात्मनः (धामानि) ज्ञानकर्मोपासनारूपकाण्डत्रयस्य (अनु, अक्रमीत्) अनुष्ठानं करोति (तं) तं जनं (सुप्रजाः, इति, आहुः) शुभजन्मानं कथयन्ति (सोम) हे परमात्मन् ! (यः) यः पुरुषः (ते) त्वयि (मनः) चेतः (अविधत्) योजयाति तस्मै (इन्द्राय) उपासकाय (इन्दो) हे परमात्मन् (परि, स्रव) ज्ञानगत्या प्रवहतु ॥

पदार्थ—(यः) जो पुरुष (पवमानस्य) सबको पवित्र करने वाले (इन्दोः) प्रकाशस्वरूप परमात्मा के (धामानि) कर्म, उपासना तथा ज्ञानरूप तीनो काण्डों का (अनु, अक्रमीत्) भलेप्रकार अनुष्ठान करता है (तं) उसको (सुप्रजाः, इति, आहुः) शुभ जन्म वाला कहा जाता है (सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् (यः) जो पुरुष (ते) तुम्हारे में (मनः) मन (अविधत्) लगाता है (इन्द्राय) उस उपासक के लिये (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप ! आप (परि, स्रव) ज्ञानगति से प्रवाहित हों ॥

भावार्थ—जो पुरुष कर्म, उपासना तथा ज्ञान द्वारा परमात्मप्राप्ति का भलेप्रकार अनुष्ठान करता है, या यों कहो कि जब उपासक अनन्य भक्ति से परमात्मपरायण होकर उसी की उपासना में तत्पर रहता है तब परमात्मा उसके अन्तःकरण में स्वसत्ता का आविर्भाव उत्पन्न करते हैं ॥

ऋषे मंत्रकृतां स्तोमैः कश्यपोद्वर्धयन्गिरः ।
सोमं नमस्य राजानं यो जज्ञे
वीरुधां पतिरिन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ २ ॥

ऋषे । मंत्रऽकृतां । स्तोमैः । कश्यप । उत्ऽवर्धयन् । गिरः । सोमं । नमस्य । राजानं । यः । जज्ञे । वीरुधां । पतिः । इन्द्राय । इन्दो इति । परि । स्रव ॥ २ ॥

पदार्थः—(ऋषे) हे सर्वव्यापक (कश्यप) सर्वद्रष्टः परमात्मन् ! भवान् (मंत्रकृतां, स्तोमैः) मंत्रानुष्ठानकर्तॄणां स्तुतियुक्तानामुपासकानां (गिरः) उपासनारूप वाचः (उद्वर्धयन्) उन्नमयन् उपासक कल्याणं करोतु (यः) यः उपासकः (सोमं) सोमस्वभावं (राजानं) परमात्मानं (नमस्य) प्रभुं मत्वा (जज्ञे) प्रकटो भवति, भवान् (वीरुधां, पतिः) वनस्पतीनां स्वामी अतः (इन्द्राय) यः उपासकस्तदर्थं (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् (परि, स्रव) ज्ञानद्वारा व्याप्नुहि ॥

पदार्थ—(ऋषे) हे सर्वव्यापक (कश्यप) सर्वद्रष्टा परमात्मन् ! आप (मंत्रकृतां, स्तोमैः) स्तुतियुक्त मंत्रानुष्ठान करने वाले उपासकों की (गिरः) उपासनारूप वाणियों को (उद्वर्धयन्) बढ़ाते हुए उपासक का कल्याण करें (यः) जो उपासक (सोमं, राजानं) सोमस्वभाव परमात्मा को (नमस्य) प्रभु मानकर (जज्ञे) प्रकाशित होता है (वीरुधां, पतिः) आप वनस्पतियों के स्वामी हैं, इसलिये (इन्द्राय) उपासक के लिये (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् (परि, स्रव) ज्ञानद्वारा उसके हृदय में व्याप्त हों ॥

भावार्थ—जो परमात्मा चराचर ब्रह्माण्डों का पति है उससे यहां ज्ञानयोग की प्रार्थना कीगई है कि हे परमात्मन् ! ज्ञानवर्द्धक वाणियों द्वारा उपासक के हृदय में ज्ञान की वृद्धि करें ॥

अब मुक्त पुरुष की अवस्था का निरूपण करते हैं:—

सप्त दिशो नानासूर्याः सप्त होतार ऋत्विजः ।
देवा आदित्या ये सप्ततेभिः सोमाभि
रक्ष न इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ३ ॥

सप्त । दिशः । नानाऽसूर्याः । सप्त । होतारः । ऋत्विजः । देवाः । आदित्याः । ये । सप्त । तेभिः । सोम । अभि । रक्ष । नः । इन्द्राय । इन्दो इति । परि । स्रव ॥ ३ ॥

पदार्थः—मुक्तपुरुषाय (सप्त, दिशः) भूरादयः सप्तलोकाः (नानासूर्याः) नानाविध दिव्य प्रकाशवन्तो भवन्ति (सप्त) इन्द्रियाणां सप्तछिद्राणि प्राणगति द्वारा (होतारः) होतारो भवन्ति, तथा च (ऋत्विजः) ऋत्विजोऽपि भवन्ति (ये, सप्त, देवाः) यानि प्रकृतेरमहत्तत्त्वादीनि सप्तकार्याणि तानि मंगलप्रदानि भवन्ति (आदित्यः) सूर्य्यः सुखप्रदो भवति (तेभिः) तैः शक्तिकार्य्यैः (सोम) हे सोम (नः) अस्मान् (अभि, रक्ष) सर्वतः परिपालय (इन्दो) हे प्राणप्रद (इन्द्राय) कर्मयोगिने (परि, स्रव) सुधावृष्टिं कुरु ॥

पदार्थ—मुक्त पुरुष के लिये (सप्त, दिशः) भूरादि सातो लोक (नानासूर्याः) नाना प्रकार के दिव्य प्रकाश वाले होजाते हैं, और (सप्त) इन्द्रयों के सातो छिद्र प्राणों की गतिद्वारा (होतारः) होता तथा (ऋत्विजः) ऋत्विक् होजाते हैं (ये, सप्त, देवाः) प्रकृति के महत्तत्त्वादि सात कार्य्य उसके लिये मंगलमय होते हैं (आदित्याः) सूर्य्य सुखप्रद होता है (तेभिः) उक्त शक्तियों द्वारा मुक्त पुरुष यह प्रार्थना करता है कि (सोम) हे सोम!

(नः) हमारी (अभि, रक्ष) रक्षा कर (इन्दो) हे प्राणप्रद ! (इन्द्राय) कर्मयोगी के लिये आप (परि, स्रव) सुधा की वृष्टि करें ॥

भावार्थ—इस मंत्र में मुक्तपुरुष की विभूति का वर्णन कियागया है कि उसकी सब लोकों में दिव्यदृष्टि होजाती है " दिशा " शब्द का तात्पर्य्य यहां लोक में है और वह भूः, भुवः तथा स्वरादि सात लोक हैं अर्थात् विकृति रूपसे कार्य्य और प्रकृतिरूप से जो कारण हैं वह सातों अखण्डनीय शक्तियें उसके लिये मंगलप्रद होती हैं ॥

सं०—अब मुक्तपुरुष की ऐश्वर्य्यरक्षा के लिये विघ्नों की निवृत्ति कथन करते हैं:—

यत्ते राजञ्छृतं हविस्तेन सोमाभि रक्ष नः ।
अरातीवा मा नस्तारीन्मो च नः
किं चनाममदिन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ४ ॥ २८ ॥

यत् । ते । राजन् । शृतं । हविः । तेन । सोम । अभि । रक्ष । नः । अरातिऽवा । मा । नः । तारीत् । मो इति । च । नः । किं । चन । आममत् । इन्द्राय । इन्दो इति । परि । स्रव ॥ ४ ॥

पदार्थः—(राजन्) हे परमात्मन् (ते) तव (यत्, शृतं) यत्परिपक्वं (हविः) ज्ञानरूपफलं (तेन) तद्द्वारा (सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् (नः) अस्मान् (अभि,रक्ष) अभितः परिपालय (अरातिवा) शत्रुः (नः) अस्मान् (मा, तारीत्) मा पराभूत (च) तथा (नः) अस्माकं (किंचन) मोक्ष

सम्बन्धि किंचिदप्यैश्वर्यं (मो, आममत्) न नाशयेत् (इन्दो) हे परमात्मन् (इन्द्राय) कर्मयोगिने (परि, स्रव) सुधा-वृष्टिं करोतु ॥

पदार्थ—(राजन्) हे सर्वोपरि विराजमान परमात्मन् (ते) तुम्हारा (यत्) जो (शृतं) परिपक्व (हविः) ज्ञानरूप फल है (तेन) उसके द्वारा (सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् (नः) हमारी (अभि, रक्ष) सर्व प्रकार से रक्षा करें (अरातिवा) शत्रुलोग (नः) हमको (मा, तारीत्) मत सतावें (च) और (नः) हमारे (किंचन) मोक्ष सम्बन्धि किसी भी ऐश्वर्य्य को (मा, आममत्) नष्ट न करें (इन्दो) हे परमात्मन् (इन्द्राय) कर्मयोगी के लिये (परि, स्रव) सुधा की वृष्टि करें ॥

भावार्थ—इस मंत्र में मुक्तिरूप फल का उपसंहार करते हुए सब विघ्नों की शान्ति के लिये प्रार्थना कीगई है कि हे सर्वरक्षक भगवन् ! वैदिक कर्म तथा वैदिक अनुष्ठान के विरोधी शत्रुओं से हमारी सब प्रकार से रक्षा करें ताकि वह हमारे किसी अनुष्ठान में विघ्नकारी न हों और अपनी परम कृपा से मोक्ष सम्बन्धी ऐश्वर्य्य हमें प्रदान करें, यह हमारी आपसे सविनय प्रार्थना है ॥

इति चतुर्दशोत्तरशततमं सूक्तं सप्तमोऽनुवाकः

अष्टाविंशतितमोवर्गश्च समाप्तः

इति श्रीमदार्य्यमुनिनोपनिबद्धे-

ऋक्संहिताभाष्ये सप्तमेऽष्टके

नवमं मण्डलं समाप्तम्

उपसंहार

इस नवम मंडल में १०९७ मंत्र हैं, सायणादि भाष्यकार इन सब मन्त्रों को सोम कूटने में लगाते हैं, केवल सायणादि स्वदेशी भाष्यकारों की ही यह चालि नहीं किन्तु विलसन. ग्रिफ्थ तथा मोक्षमूलर आदि यूरोपियन भाष्यकार भी प्रायः सब मन्त्रों को सोम कूटने में ही लगाते हैं. यहां हमको यूरोपियन भाष्यकारों के ऐसे अर्थ करने का खेद इसलिये नहीं कि वह प्रायः सायणादि भाष्यकारों की चालि से वेदों के अर्थ करते हैं परन्तु अत्यन्त खेद इस बात का है कि सायणाचार्य्य ने यहां सब मन्त्रों में अर्थ पुनरुक्ति मानी है अर्थात् एक ही अर्थ को यह सब मन्त्र दुहराते हैं. यह सायणाचार्य्य के भाष्य का निष्कर्ष है, यदि सायणाचार्य्य लिखित ऋग्वेदभाष्य की कोई भूमिका पढ़े तो उसको स्पष्ट प्रतीत होगा कि सायणाचार्य्य ने वेदों को ईश्वरकृत माना है और इस बात की सिद्धि के लिये **"तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः"** ऋग्० ८।४।१८ इस मन्त्र का प्रमाण दिया है कि उस सर्वपूज्य परमात्मा से वेदों की उत्पत्ति हुई जो सम्पूर्ण विश्व का कर्त्ता है, इसी बात को हिन्दूधर्म के शास्त्रकार और बड़े २ भाष्यकार मानते चले आये हैं, जैसाकि "शास्त्रयोनित्वात्" ब्र० सू० १।१।३ इस सूत्र में स्वा० शङ्कराचार्य्य जी ने वेदों की उत्पत्ति=आविर्भाव ईश्वर से माना है, और इस सूत्र के भाष्य में यह भी कहा है कि वेदों में पुनरुक्ति नहीं, इसी प्रकार रामानुजाचार्य्य ने भी वेदों का कर्त्ता ईश्वर को ही माना है ।

अब यहां विचार योग्य बात यह है कि ईश्वर ने इन ग्यारहसौ के लगभग मन्त्रों में एक ही अर्थ का पिष्टपेषण क्यों किया ? और उस सर्वज्ञकर्त्ता ने ऐसा करने में क्या लाभ समझा ? जब हम यहां इस बात की मीमांसा करते हैं तो उत्तर यह मिलता है कि ईश्वर ने ऐसा नहीं किया किन्तु एकही अर्थ के प्रतिपादक इन मन्त्रों को सायणादि भाष्यकारों ने बना दिया है, जैसाकि:—

सोमो मीढ्वान्पवते गातुवित्तम ऋषिर्विप्रो विचक्षणः ।
त्वं कविरभवो देववीतम आ सूर्यं रोहयो दिवि ॥

ऋग्० ९।१०७।७

इस मंत्र के सायणाचार्य्य ने यह अर्थ किये हैं कि "सोम" जो सब कामनाओं

का देनेवाला है वह (पवते) रसरूप होने से बहता है, वह सब गाने वालों में उत्तम गाने वाला, ऋषि, विप्र, विचक्षण=बुद्धिमान् और कवि है, अधिक क्या उसने ही आकाश में सूर्य्य को उत्पन्न किया है, क्या कोई कह सकता है कि "सोम" जो सायणाचार्य्य के अर्थ में एक प्रकार का ओषध मानागया है वह कवि, गानेवाला और सूर्य्य को उत्पन्न करनेवाला होसकता है, तुच्छ से तुच्छ बुद्धि वाले की समझ में भी यह बात नहीं आसकती कि सोमलता ने सूर्य्य को उत्पन्न किया अथवा सोमलता अच्छा गासकती है वा कवियों की भांति अच्छे काव्य बना सकती है, फिर यह अनर्थ कैसे होसकता है कि सोमलता अच्छा गाती और अच्छे काव्य बनाती है, यदि यह कहाजाय कि यह अर्थवाद है अर्थात् सोमलता की यह स्तुति कीगई है तो क्या वेद में कहीं अन्यत्र भी ऐसा अर्थवाद है, जहां असंभव और प्रकृतिविरुद्ध अर्थों का ग्रन्थन किया हो कदापि नहीं, किन्तु यह लिखा है कि "को अद्धा वेद क इह प्रवो०" ऋग्० ८।७।१७= कौन साक्षात् जानता है, कौन कहसकता है कि नाना प्रकार की विचित्र रचना वाली सृष्टि कहां से हुई ? यह प्रश्न है, और आगे चलकर इसी सूक्त में इसका उत्तर यह दिया है कि जो इसका स्वामी इस महदाकाश में है वही इस तत्व को जानता है अन्य नहीं, इत्यादि दार्शनिक तत्वों का भाण्डार जो ब्रह्मविद्या है उसका एकमात्र आधार वेद है वह मिथ्यास्तुतिरूप अर्थवादों का आधार कभी होसकता है कदापि नहीं, इस शैली से यह प्रतीत होता है कि "**सूर्य्याचन्द्रमसौधाता यथापूर्वमकल्पयत्**" ऋग्० ८।८।४८ जैसा इस मंत्र में सूर्य्य चन्द्रादिकों का कर्त्ता परमात्मा धाता नाम से कथन किया गया है इसी प्रकार "**सोमो मीढ्वान् पवते**" इस मंत्र में भी सोम नाम परमात्मा का है, और इसके अर्थ "**सूते चराचरं जगदिति सोमः**" इस व्युत्पत्ति से हम यह कर आये हैं कि जो इस चराचर जगत को हिरण्यगर्भ की अवस्था में लाता है अर्थात् प्रकृति से सब बीजों को उत्पन्न करता है उसका नाम यहां "**सोम**" है, और यहां यह भी स्मरण रहे कि यह शब्द "**षूङ् प्राणिगर्भविमोचने**" से बनता है जिसके अर्थ प्राणियों का गर्भद्वारा उत्पन्न होना है, और जो "सोम" शब्द "**षुञ् अभिषवे**" से बनता है उसके अर्थ सोमलता के होते हैं, यहां योग्यता से "सोम"

शब्द के अर्थ ईश्वर के हैं, क्योंकि सूर्य्य को उत्पन्न करनेवाला, कवि तथा सर्वज्ञ आदि चैतन्य के गुणोंवाला कोई चेतन पदार्थ ही होसकता है जड़ नहीं॥

इसी अर्थ की पुष्टि में यह प्रमाण है कि "यो देवानां नामधा एक एव तं संप्रश्नं भुवना यंत्यन्या" ऋग्० १०।८२।३ इस मंत्र में सब दिव्य वस्तुओं के नाम को धारण करने वाला एक वही परमात्मा माना गया है, इसलिये जिस प्रकार अग्नि, इन्द्र तथा वरुणादि परमात्मा के नाम हैं इसी प्रकार सोम भी परमात्मा का नाम है, जिसकी पुष्टि में यह प्रमाण है कि:—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकंसद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वा नमाहुः ॥

ऋग्० १।१६४।४६

इस मंत्र में जो "गरुत्मान्" पढ़ा है उसका यह अर्थ है कि जो महत्वयुक्त पदार्थ हैं वह परमात्मा का नाम है, इसका तात्पर्य्य यह है कि प्राकृत पुरुषों को बोधन करने के लिये यही प्रकार है, क्योंकि परमात्मा महान है और महत्वयुक्त पदार्थों के नामों से वह भलीभांति बोधन किया जाता है, इस लिये विद्युदादि चमत्कार युक्त उसके नाना नाम हैं उन्हीं में से सोम भी एक नाम है, इसी कारण निरुक्तादि वेद के कोषों ने "सोम" शब्द की व्याख्या ईश्वर-परक भी की है, इस अर्थ को केवल हमी कथन नहीं करते किन्तु विष्णु के सहस्र नाम मानने वाले लोग "सोमऽपोऽमृतपः सोमः" इत्यादि वाक्यों द्वारा सोमादि नामों से ही विष्णु के सहस्र नामों की पूर्ति करते हैं, इस प्रकार यहां सोम नाम परमात्मा का था जिसको न समझकर लोगों ने सोमलता पर लगाकर अर्थ का अनर्थ करदिया है॥

जिस प्रकार मिथ्यार्थ करके १०९७ मन्त्रों के अर्थों का अनर्थ कर वेद को अर्थ पुनरुक्ति का कलंक लगाया है, इसी प्रकार अन्य भी कई कलंक वेद के तुच्छ अर्थ करके लगाये हैं, जैसाकि (१) "वनानि महिषा इव" ऋग्० ९।३३।८ इस मंत्र के यह अर्थ किये हैं कि हे सोम! तू हमको ऐसा प्यारा है जैसाकि भैंसों को घास प्यारा होता है (२) "कन्याजारमिव-प्रियम्"=तू हमको ऐसा प्यारा है जैसाकि कन्याओं को जार प्रिय होता है, (३) "योषा जारमिव प्रियम्" ऋग्० ९।३२।५=तू हमको ऐसा प्यारा है जैसा स्त्रियों को जार प्रिय होता है, वास्तव में इन वाक्यों के

अर्थ बहुत ऊंचे थे अर्थात् भैसों के लिये घास तथा कन्या और स्त्रियों के लिये जार विधान के कदापि न थे, इनके सत्यार्थ जो देखना चाहे वह उक्त प्रतीकों के अंकों से हमारे इस नवम मण्डल के भाष्य में देखले।

इसी प्रकार "**हरिश्चन्द्रोमरुद्गणः**" ऋग्० ९। ६६। २६ इस मंत्र से अल्पदर्शी लोग हरिश्चन्द्र राजा का नाम समझकर वेद में इतिहास समझने लगते हैं परन्तु हरिश्चन्द्र यहां विद्वानों का विशेषण है. इन सब बातों का उत्तर इस मंडल के पढ़ने से भलेप्रकार ज्ञात होजाता है।

और जो सोमयज्ञ के विषय में हिंसा सूचक मंत्र उद्धृत करके वेद को दूषित किया जाता है, जैसाकि "**वृहद्धो वय उच्यते सभासु**" ऋ० ६। २८। ६ इस मंत्र के अर्थ किये गये हैं कि सोम का सब से बड़ा अन्न भक्ष्य है, इसलिये गौ, अश्वादि पदार्थ जो सर्वोपरि हैं उन्हीं की बलि देनी चाहिये, इसका उत्तर यह है कि यहां गोरक्षा के निमित्त जो अन्न दिया जाता है उसका वर्णन है बलिदान का नहीं॥

और जो "**त्री यच्छता महिषाणामघो मास्त्री सरांसि मघवा सोम्यापाः**" ऋग्० ५। २९। ८ इस मंत्र के अर्थ में तीनसौ भैंसों का मांस खाना और तीन तालाब शराब के पीना कथन किया गया है वह सर्वथा मिथ्या है, क्योंकि "**महिष**" शब्द वेद में बड़े वा पूज्य के लिये आता है, जैसाकि "**पर्जन्य वृद्धं महिषं**" ऋग्० ९। ११३। ३ इस मंत्र में बड़े के अर्थ में आया है, इसी प्रकार तीनसौ महिषों से तात्पर्य यहां बड़े २ शूरवीरों का है अर्थात् जो योद्धा तीनसौ बड़े २ शूरवीरों को विजय करता और भूमि, अन्तरिक्ष तथा द्युलोक में जो अपनी बाण-विद्या से तीन सर शरों से भर देता है वह उत्तम योद्धा कहलाता है, यह राजप्रकरण का मन्त्र है इसमें भैसों के मांस तथा शराब का क्या प्रकरण, इसी प्रकार जो मन्त्र मद्य मांस के विषय में उद्धृत किये जाते हैं वह वास्तव में मद्य मांस के अर्थ नहीं देते किन्तु मिथ्यार्थ करके मद्य मांस के पोषक माने जाते हैं, वस्तुतः कारण यह है कि जिन कोषों से आजकल वेद के अर्थ कियेजाते हैं वह वेदार्थ के कोष नहीं किन्तु बहुत अर्वाचीन संस्कृत भाषा के कोष हैं, जैसाकि अमरकोष में "**वाजी**" नाम केवल घोड़े का है, इसके अनुसार "**ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं**" इस मन्त्र में पढ़े

हुए " वाजी " शब्द के अर्थ कियेजायं तो अर्थ यही होंगे कि जो घोड़े को पकता हुआ देखते हैं और उसके पकने में सुगन्धि पाते हैं उनका उद्यम हमको प्राप्त हो, परन्तु जब हम निरुक्त को देखते हैं तो "वाज" के अर्थ अन्न, यश, बल तथा ऐश्वर्य्यादि अनेक पाते हैं जिससे "वाजि" शब्द के अन्नवाला, बलवाला, धनवाला इत्यादि अनेक अर्थ होते हैं, इस वैदिक कोष के अनुसार जब " ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं " ऋग्० १।१६२।१२ इस मन्त्र के अर्थ किये जाते हैं तो अर्थ यह होते हैं कि जो लोग वसंतऋतु में यवादि सस्यों की खेतियों को पका हुआ देखकर यह कहते हैं कि " सुरभिर्निर्हरेति " = यह पककर सुगन्धि युक्त होगई अब इन्हें काटना चाहिये, इस प्रकार वैदिक कोष और अमरादि आधुनिक कोषों से वैदिक अर्थों में सैकड़ों कोसों का अन्तर पड़ जाता है, इसी रीति से " महिष " शब्द के अर्थ यहां भैंसा करलेने में अत्यन्त अनर्थ होगया है, निरु० अ० ३ खं० १३ में "महिष" शब्द बड़ के नामों में पढ़ा है, फिर निरु० अ० ७ खं० २६ के दैवतकाण्ड में " महिष " शब्द के अर्थ महान्त देवगणों के किये हैं, इस वैदिक कोप में सर्वत्र " महिष " शब्द के अर्थ " महान् के हैं भैंसे के कहीं नहीं, इस प्रकार मीमांसा करने से ज्ञात होता है कि सायणादि भाष्यकारों ने आधुनिक अमरकोषादि कोषों की सहायता से जो वेद के अर्थ किये हैं वह सर्वथा मिथ्या हैं।

और जो कई एक लोग यह आक्षेप करते हैं कि जिसको वेदों में सोमरस कहागया है वह एक प्रकार का मदकारी द्रव्य था, या यों कहो कि वह एक प्रकार की मदिरा थी, इसका उत्तर यह है कि जहां "सोम" ओषधविशेप के अर्थों में भी आया है वहां उसके अर्थ मदिरा कदापि नहीं, क्योंकि सोम मदकारी पदार्थ न था किन्तु आह्लादक था, आह्लादक और मादक में भेद यह है कि जो केवल आनन्द उत्पन्न करे और मस्तिष्क में किसी प्रकार का बुद्धिनाशक विकार न करे उसको "आह्लादक" और जो बुद्धि में विकार उत्पन्न करके उन्मत्त करे उसको "मादक" कहते हैं, ऋग्वेद मण्डल दश में इसका स्पष्ट रीति से भेद वर्णन किया है कि " हृत्सु पीतासु युध्यन्ते दुर्मदासो न सुरायाम् " ऋग्० ८।२।१२ = सोमरस के पीने से योद्धा लोग युद्ध करते हैं परन्तु सुरा = शराब के समान उन्मत्त नहीं

होते किन्तु सावधान वृत्तियों से युद्ध करते हैं विकलेन्द्रिय होकर नहीं, इस से स्पष्ट पायाजाता है कि सोमरस मदकारी द्रव्य न था।

इसी प्रकार भारतीय तथा यूरुप निवासी कई एक भाष्यकारों ने यह भी आक्षेप किये हैं कि आर्यों में वर्णव्यवस्था बुद्ध से पहले न थी, जब हम उनको यह उत्तर देते हैं कि "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहुरा-जन्यः कृतः" ऋग्० १०।९०।२ इस मंत्र में चारो वर्णों के नाम स्पष्ट हैं तो वह लोग यह प्रश्न उठाते हैं कि जिस सूक्त का यह मंत्र है वह सूक्त कई सहस्र वर्ष पीछे वेद में मिलाया गया है, इसप्रकार वह लोग वेद में मिलावट भी मानते हैं, इसका उत्तर यह है कि यदि वेदों में मिलावट होती तो वेदों की भाषा का भेद अवश्य होता, परन्तु स्मरण रहे कि इस सूक्त की भाषा तथा अन्य स्थलों की भाषा का अंशमात्र भी भेद नहीं, यदि कोई मिलाता तो एक स्थान में मिलाता, यह सूक्त प्रायः चारो वेदों में एक प्रकार का ही पाया जाता है, इससे भिन्न यह भी युक्ति है कि वेद के मंत्रों की संख्या में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद सनातन काल से ऐसा ही चला आता है जैसाकि अब है, केवल यही मंत्र नहीं किन्तु वर्णव्यवस्था के प्रतिपादक अन्यत्र भी कई एक मंत्र पाये जाते हैं, जैसाकि "तमेव ब्रह्माणं ऋषिं चाहु" ऋग् १०।१०७।६ इस मंत्र में ब्राह्मण तथा ऋषि आदि गुणकृत पदवियें पाई जाती हैं, इसी अभिप्राय से गीता में भी कथन किया है कि "चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्म विभा-गशः"=चारो वर्ण गुण और कर्म के भेद से परमात्मा ने ही भिन्न २ रचे हैं, भगवान् बुद्ध से पश्चात् वर्णव्यवस्था मानने वालों को यह भी सोचना चाहिये कि गीता जो महाभारत के भीष्मपर्व का एक भाग है वह बुद्ध से लगभग १५०० वर्ष पहले बना है, उसमें चारो वर्णों का वर्णन कैसे आजाता यदि हिन्दुओं में वर्णव्यवस्था बुद्ध से अनन्तर होती, इस प्रकार मीमांसा करने से जो वेदों पर आक्षेप किये जाते हैं वह सर्वथा निर्मूल प्रतीत होते हैं, अस्तु—

इन आक्षेपों का समूलोच्छेद और ब्राह्मणादि वर्णों का विभेद तथा आर्य्यजाति के सिद्धान्तों का विस्तृत विवर्ण दशममण्डल की अवतरणिका में करेंगे, इसलिये यहां संक्षेप से ही समाप्त करते हैं॥

॥ इति शम्॥ आर्य्यमुनिः

ओ३म्

सम्पूर्ण आर्य्यजनता को विदित हो कि श्री १०८ महर्षि स्वा० दयानन्द सरस्वतीकृत ऋग्वेदभाष्य जो लगभग ४५ वर्ष से अपूर्ण पड़ा था उसको निरुक्त व्याकरण-वेदकाव्य सर्वज्ञ आचार्य "श्री पं० आर्य्यमुनिजी" जी महाराज एक रजिस्टर्ड "वेदभाष्य समिति" की संरक्षता में पूर्ण कर रहे हैं जिसके मंत्री रायसाहिब ज्वालाप्रसाद जी इन्जिनियर सुपरिंटेंडेन्ट आफ वर्क्स बनारस हिन्दूयूनीवरसिटी हैं।

हर्ष का विषय है कि इस भाष्य के तीन खण्ड प्रथम छपकर निकल चुके हैं और अब इस चतुर्थखण्ड में "नवममण्डल" समाप्त होगया, विविध विषयों से पूर्ण इस खण्ड को मंगाकर वेदसाहित्य के प्रेमी शीघ्र स्वाध्याय आरम्भ करें, मू० डाकव्यय सहित ४)

अब आपको यह विशेष सूचना देता हूं कि इसी वेद के दशममण्डल का भाष्य छपना प्रारम्भ है, यदि परमात्मा की पूर्ण कृपा रही तो इसे भी शीघ्र ही वेद साहित्य प्रेमियों के स्वाध्यायार्थ अर्पण करेंगे।

इसके अतिरिक्त उपनिषद्शास्त्र के प्रेमियों को ज्ञात हो कि उक्त पं० जी महाराजकृत "उपनिषदार्य्यभाष्य" प्रथम भाग जिसमें "ईशादि" आठ उपनिषदों का विस्तारपूर्वक भाष्य है, वह चिरकाल से समाप्त होगया था और जिसकी बहुत मांग आरही थी, वह अबकी बार संशोधन कर मोटे उत्तम सफेद कागज और मोटे टाइप में रायल साइज़ पर छप रहा है, मू० ५) रु० रक्खागया है।

"वैदिककाल का इतिहास" इस ग्रन्थ को पं० जी ने बड़े परिश्रम से चिरकाल में तैयार कर पाया है जो शीघ्र छपेगा, पाठकवृन्द अपनी दरख्वास्तें भेजें।

श्री पं० आर्य्यमुनिजी महाराजकृत ग्रन्थः—

ऋग्वेदभाष्य-प्रथम खण्ड	॥)	ऋग्वेदभाष्य-तृतीय खण्ड	४)
,, द्वितीय खण्ड	२)	,, चतुर्थ खण्ड	३॥)

नवीन ग्रन्थः—

योगार्य्यभाष्य द्वितीयावृत्ति	१।)	वेदान्ततत्वकौमुदी	॥)
वेदमर्यादा	॥)	भिष्मपितामह का जीवनचरित्र और	
षड्दर्शनादर्श	॥)	शरशय्या समय का सदुपदेश	॥)

सब प्रकार का पत्रव्यवहार करने तथा ग्रन्थों के मंगाने का पता यह है:-

प्रबन्धकर्त्ता—वेदभाष्य कार्य्यालय

धर्मकूप—काशी

लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, पुस्तकालय
L.B.S. National Academy of Administration, Library

मसूरी

MUSSOORIE

यह पुस्तक निम्नांकित तारीख तक वापिस करनी है।

This book is to be returned on the date last stamped

दिनांक Date	उधारकर्त्ता की सख्या Borrower's No.	दिनांक Date	उधारकर्त्ता को संख्या Borrower's No.

GL H 294 59212
RIG

121559
LBSNAA

H
294.59212

अवाप्ति सं० 12945
वर्ग स. ACC. No.
Class No. पुस्तक स.
लेखक Book No.
Author
शीर्षक ऋग्वेद
Title

294.59212 12945
ऋग्वेद
LIBRARY
LAL BAHADUR SHASTRI
National Academy of Administration
MUSSOORIE

Accession No. 121559

1. Books are issued for 15 days only but may have to be recalled earlier if urgently required.
2. An over-due charge of 25 Paise per day per volume will be charged.
3. Books may be renewed on request, at the discretion of the Librarian.
4. Periodicals, Rare and Reference books may not be issued and may be consulted only in the Library.
5. Books lost, defaced or injured in any way shall have to be replaced or its double price shall be paid by the borrower.

Help to keep this book fresh, clean & moving